ओ३म्

ऋग्वेद

हिन्दी भाष्य

भाग-५

Scanned by CamScanner

ऋग्वेद (हिन्दी भाष्य)

(नवम् एवं दशम्-मण्डल)

नवम् मण्डल के भाष्यकर्ता पं. आर्यमुनि जी, पं. शिवशंकर जी काव्यतीर्थ एवं पं. हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार

दशम् मण्डल के भाष्यकर्ता पं. हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार एवं आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री जी

भाग (५)

प्रकाशक :

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
''दयानन्द भवन'' ३/५ आसफ अली रोड
(रामलीला मैदान) नई दिल्ली-११०००२
दूरभाष : ०११-२३२७४७७१, २३२६०६८५
टेलीफैक्स : ०११-२३२७४२१६
E-mail : sarvadeshik@yahoo.co.in
Web. : www.vedicaryasamaj.com

सृष्टि सम्वत् : १९६०८५३१११
दयानन्दाब्द : १८७
विक्रमी सम्वत् : २०६७
पुनर्मुद्रित : नवम्बर, २०१०

मूल्य : ३००/- रुपये

मुद्रक : तिलक प्रिंटिंग प्रेस
२०४६, सीताराम बाजार, दिल्ली-११०००६
दूरभाष : ०११-२३२३१३६६

Scanned by CamScanner

प्रकाशकीय

चारों वेदों का सम्पूर्ण हिन्दी भाष्य पुनर्मुद्रित करके हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। प्रस्तुत हिन्दी भाष्य उसी श्रृंखला की एक कड़ी है। वेद को ऋषि दयानन्द ने ज्ञान का सूर्य बतलाकर संसार को उससे प्रकाश लेने का सन्देश दिया था।

सर्वविदित है कि वेद मानव मात्र के लिए ज्ञान का आदि स्त्रोत हैं। वेद ही संस्कृति तथा ज्ञान विज्ञान के मूल स्रोत हैं। भारतीय सभ्यता और संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। प्राचीन काल से भारतीय समाज का वैयक्तिक जीवन, सामाजिक व्यवस्था तथा राष्ट्रीय संगठन वेदों की दृढ़ आधारशिला पर अवलम्बित रहा है। आर्य समाज वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानता है अतः वेद ही सारे संसार के पथ प्रदर्शक हैं।

वर्तमान युग भौतिक युग है, इस युग में मानव में धन प्राप्ति की इच्छा अत्यन्त बलवती हो गयी है जिसके कारण धर्म तथा सच्चाई से वह कोसों दूर होता जा रहा है। चारों तरफ दम्भ तथा आडम्बर का प्रभाव परिलक्षित हो रहा है। ऐसी स्थिति में देश का भविष्य युवा वर्ग, धर्म तथा सत्य की शिक्षा की कमी के कारण भौतिकता की चकाचौंध में अन्धा होता जा रहा है। यह सत्य है कि वेद का स्वाध्याय जब समाप्त होने लगता है तो मानव समाज में अन्धकार व्याप्त हो जाता है। अन्ध विश्वास और अन्ध परम्पराएं मानव समाज में अपनी पैठ बना लेती हैं, जिसके कारण मानव तथा समाज की जीवनी शक्ति अवरूद्ध ही नहीं समाप्त प्राय हो जाती है।

शतपथ ब्राह्मण में वेदाध्ययन का महत्व दर्शाते हुए कहा गया है कि धन से परिपूर्ण पृथ्वी का दान करने से जितना फल प्राप्त होता है वेदों के अध्ययन से उससे भी बढ़कर अविनाशी अक्षय लोक को मनुष्य प्राप्त करता है। महर्षि दयानन्द ने कहा था, वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। अतः वेद के पढ़ने-पढ़ाने का क्रम जब तक पुनः प्रारम्भ नहीं किया जायेगा तब तक हम अपने धर्म का सच्चा ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। वेद भाष्य के इस प्रकाशन में मेरे जिन सहयोगियों की सक्रिय भूमिका रही उनमें सर्व श्री मधुर प्रकाश व ब्र. दीक्षेन्द्र आर्य का नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इसी तरह यदि श्री स्वामी अग्निवेश जी व स्वामी सुमेधानन्द जी का वरदहस्त एवं श्री मिठाई लाल सिंह, श्री आनन्द चौहान, श्री माया प्रकाश त्यागी, श्री आर. एस. तोमर 'एडवोकेट', प्रो. विट्ठलराव के माध्यम से श्री दयानन्द गौरी, श्री अनिल आर्य, डॉ. लक्ष्मणदाय आर्य आदि का अग्रिम आर्थिक सहयोग एवं श्री सत्यव्रत सामवेदी, श्री रामसिंह आर्य एवं श्री विरजानन्द का आश्वासन नहीं मिलता तो यह संकल्प पूरा नहीं हो सकता था। इसी तरह उन अन्य सभी आर्यजनों का भी सकारात्मक सहयोग रहा जिन्होंने अग्रिम राशि भेजकर अपने वेद के सैट बुक कराये। मैं इन सभी का हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ। हमारी कामना है कि प्रत्येक आर्य समाज स्वाध्याय का केन्द्र बने और प्रत्येक आर्य स्वाध्यायशील हो, इसी भावना से प्रेरित होकर वेदों के पुनः प्रकाशन का महान कार्य आप सबके सहयोग से पूर्णता को प्राप्त हुआ इसके लिए आप सबको साधुवाद अर्पित करता हूँ।

ऋषि निर्वाण दिवस (दीपावली)
5 नवम्बर, 2010
नई दिल्ली

स्वामी आर्यवेश
संयोजक, सार्वदेशिक सभा संचालन समिति
"दयानन्द भवन" 3/5, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2

Scanned by CamScanner

प्राक्कथन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की संचालन समिति का कार्य हमें 19 मई, 2009 को सौंपा गया था। उस समय सभा की आर्थिक स्थिति शोचनीय थी। हम लोगों ने ईश्वर भरोसे कार्य प्रारम्भ किया। उधार रुपया लेकर पहले कर्मचारियों का वेतन दिया फिर दिल्ली के रामलीला मैदान में सार्वदेशिक सभा के सौ वर्ष पूरे होनें के उपलक्ष्य में भव्य आर्य महासम्मेलन किया। यह महासम्मेलन बहुत सफल रहा। इसके पश्चात् कुम्भ मेले के अवसर पर हरिद्वार में एक मास तक वेद प्रचार का पावन कार्य किया। नशामुक्ति अभियान की सर्वत्र प्रशंसा हुई। कन्या बचाओ एवं भ्रूण हत्या बन्द करने हेतु ब्रह्मचारिणी पूनम आर्या व प्रवेश आर्या के नेतृत्व में बहुत प्रशंसनीय कार्य हुआ। संचालन समिति के मंत्री स्वामी आर्यवेश जी एक मास तक वहीं रहे। उन्होंने व उनके सभी साथियों ने वहां प्रशंसनीय कार्य किया। इसके पश्चात् लगभग 70-75 आर्य विद्वानों का आर्य समाज हरिद्वार में सफल चिन्तन शिविर आयोजित किया गया। इसमें आर्य समाज के भावी कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विस्तार से विवेचना हुई और अब वेदों के प्रकाशन का गुरूतर कार्य आप सबके सहयोग से प्रारम्भ किया है। प्रभु इस कार्य में सफलता दें, यही प्रार्थना है। कामना यही है कि वेद घर-घर में पहुंचे जिससे अविद्या रूपी अंधकार वेदज्ञान के प्रकाश से दूर हो सके। वैदिक धर्म का सूर्य उदय होने से ही संसार का कल्याण होगा।

मनुष्य की आत्मा के सम्मुख ज्ञान प्राप्ति ही सर्वोच्च लक्ष्य है। ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है किन्तु मनुष्य का आत्मा जब अज्ञान की ओर झुकता है तो उसका पतन हो जाता है। ज्ञान का आदि स्त्रोत वेद है अतः वेद का पावन ज्ञान जब धरती पर फैलेगा तो सारे अनर्थ समाप्त हो जायेंगे। इसलिए महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कहा था "वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" आर्य जन स्वाध्याय की महिमा को जानें तथा वेद को स्वयं पढ़कर अन्यों को पढ़ाएं। वर्तमान में भौतिक उन्नति की ओर ही ध्यान दिया जा रहा है, भोगवाद की आंधी में स्त्री पुरुष बहे जा रहे हैं, मर्यादाएं टूट रही हैं, यह सब तभी रूक पायेगा जब वेद का ज्ञान सभी को मिल पायेगा।

हमारी आर्यजनों से पुरजोर अपील है कि घर-घर वेद पहुंचाने का संकल्प लें। मेरी कामना है कि आर्य समाजें, आर्य शिक्षण संस्थाएं, दानी महानुभाव तुरन्त वेदों की प्रति लेनें का प्रयास करेंगे, ईश्वर आर्यों को सामर्थ्य दें और वैदिक धर्म का जय-जयकार सर्वत्र हो, यही कामना, भावना एवं ईश्वर से प्रार्थना है। वेदों के प्रचार एवं प्रसार का हमारा अभियान निरन्तर चलता रहेगा।

स्वामी सुमेधानन्द सरस्वती

अध्यक्ष, सार्वदेशिक सभा संचालन समिति

"दयानन्द भवन" 3/5, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-2

Scanned by CamScanner

ओ३म्

ऋग्वेद

भाषा भाष्य

Scanned by CamScanner

ओ३म्

प्रकाशकीय वक्तव्य

ऋग्वेद-भाष्य के इस खण्ड (जिसमें नवम तथा दशम मण्डल सम्मिलित हैं) के प्रकाशन में अप्रत्याशित विलम्ब के कारण वेद के स्वाध्याय-कर्त्ताओं को जो कष्ट हुआ है, उसके लिए हमें महान् खेद है।

विलम्ब का कारण यह हुआ कि जिस प्रकार अन्य भाष्य हमें प्रामाणिक एवम् अधिकारी विद्वानों का उपलब्ध हो गया था, वैसा इन दो मण्डलों पर नहीं हो सका। नवम मण्डल का कुछ भाग पं० आर्यमुनि जी का मिला तो कुछ पं० शिवशंकर जी काव्यतीर्थ का। वह भी मध्य-मध्य में किन्हीं मन्त्रों पर नहीं था। उन मन्त्रों का भाष्य गुरुकुल विश्व विद्यालय काँगड़ी के वरिष्ठ स्नातक श्री पं० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार से कराया गया। इस प्रकार नवम मण्डल का भाष्य तो सम्पूर्ण हुआ और वह मुद्रित भी हो गया।

तत्पश्चात् दशम मण्डल का भाष्य भी पं० हरिश्चन्द्र जी ने ही करना प्रारम्भ किया। किन्तु दैवदुर्विपाक से कुछ ही (२०--२५) मन्त्रों का भाष्य लिखते ही उनका देहान्त हो गया। भाष्य की समस्या पुनः सामने आ खड़ी हुई। कई विद्वानों से पत्र-व्यवहार किया गया, किन्तु हम अपने प्रयत्न में सफल न हो पाये। अन्त में हमारी प्रार्थना पर आर्यजगत् के स्व-नामधन्य विद्वान् आचार्य वैद्यनाथ जी शास्त्री एम० ए० ने दशम मण्डल का भाष्य करना स्वीकार करके बड़ी योग्यता पूर्वक लिखा। वही भाष्य दशम मण्डल का पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत है।

परम पिता परमात्मा का अतिशय धन्यवाद है कि हम अपने चारों वेदों के हिन्दी भाष्य प्रकाशित करने के इस अति कठिन महान् संकल्प को पूर्ण करने में सफल हो सके हैं।

महर्षि दयानन्द भवन,
रामलीला मैदान,
नई दिल्ली-२
१-१०-१९७६

आर्य जनता का सेवक
ओम्प्रकाश पुरुषार्थी
सभा-मन्त्री

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

भूमिका

दक्षिण अफ्रीका का दौरा करके लौटते ही आर्य समाज स्थापना शताब्दी की तैयारी में लगना पड़ा। परिस्थितिवश शताब्दी का उत्सव बम्बई से हटाकर दिल्ली ले जाया गया। अतः उसकी तैयारी और विशेषतः वेद सम्मेलन की तैयारी के लिए आर्य समाज स्थापना शताब्दी के आग्रह पर मुझे दिल्ली जाना पड़ा और कार्य-सम्पादन के लिए एक मास पूर्व जाना पड़ा।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री लाला राम गोपाल जी शाल-वाले और मन्त्री श्री ओ३म् प्रकाश जी पुरुषार्थी एवम् उपमन्त्री श्री सच्चिदानन्द जी शास्त्री ने अनुरोध किया कि सभा द्वारा हाथ में लिए गए वेद भाष्य के कार्य की पूर्त्यर्थ मैं दशम मण्डल का भाषा भाष्य कर दूं क्योंकि और कोई उत्तम भाष्य छापने योग्य उपलब्ध नहीं था जो सभा की आकांक्षा को पूरा कर सके। सभा के यशस्वी मन्त्री पुरुषार्थी जी पांच-छः मास पूर्व से ही यह आग्रह लगातार कर रहे थे। निश्चय आपस में बैठकर सभा में किया गया कि भाष्य होता जावे और छपता भी जावे।

मैं इस अनुरोध को टाल न सका और भाष्य करना स्वीकार कर लिया। इसका कारण एक तो यह था जो सभा-पक्ष में प्रबल था कि इस वेद भाष्य का प्रारम्भ मुझसे ही हुआ था, अतः समापन जो एक कठिन कार्य था वह भी मेरे द्वारा ही पूरा किया जावे। दूसरा कारण यह था कि दशम मण्डल पर पाश्चात्यों और उनके अनुयायी एतद्देशीय विद्वानों की आपत्तियां भी हैं और यह कठिन भी है। अतः इस पर ऐसा प्रयत्न होना चाहिए कि वह एक मानदण्ड की एक दिशा बने। मैंने भाष्य का कार्य प्रारम्भ करने और सभा को शीघ्र देने का विचार कर लिया।

परन्तु इस भाष्य के कार्य को प्रारम्भ न कर सका। इसका कारण एक दुर्घटना थी जिसमें प्राण बच गए--यही भगवान् की बड़ी कृपा है। २६ दिसम्बर ७५ को वेद सम्मेलन बड़ी शान के साथ सम्पन्न हुआ। इसका संयोजक मैं ही था और कार्य को बड़ी तत्परता से पूरा किया। सम्मेलन समाप्त होने पर जब मैं मंच से उतरने लगा तो मंच का एक पट्टा टूट गया और मैं शिर के बल गिर गया। बहुत बड़ा घाव शिर में हो गया। आठ टांके अस्पताल में लगे और आठ दिन अस्पताल और १५-२० दिन सभा-भवन में ही रहना पड़ा क्योंकि डाक्टरी इलाज चल रहा था।

Scanned by CamScanner

इर्विन हास्पीटल और आल इण्डिया रिसर्च इन्स्टीट्यूट आफ मैडिकल साईंसेज के शल्य चिकित्सा विशेषज्ञों की सलाह होने पर मैं १७ जनवरी को बड़ोदा घर पर वापस आया और घर पर फरवरी मास तक चिकित्सा होती रही। परेश कृपया सब ठीक हुआ। मैंने भाष्य का कार्य प्रारम्भ किया और इसे आज पूरा कर दिया। भाष्य के पूरा करने पर प्रसन्नता का होना स्वाभाविक है। सभा-मन्त्री श्री पुरुषार्थी बम्बई में मिले और भाष्य की पूर्ति का समाचार पाकर बहुत प्रसन्न हुए। भगवान् की अति कृपा से यह कठिन कार्य पूर्ण हुआ।

भाष्य को महर्षि दयानन्द की प्रक्रिया से सर्वोत्तम बनाने का यत्न किया गया है। जहां मन्त्रों से वैज्ञानिक विचार झलकते थे वहां पर उनका भाष्य वैसा ही किया गया है। इस सूक्त में दार्शनिक विचारधारा के भी मन्त्र हैं उनका भली प्रकार उद्घाटन किया गया है। जिन मन्त्रों को लोग दुरूह और विना अर्थ वाला समझते थे उनका भी अर्थ करके दिखाया गया है। बहुत स्थलों पर टिप्पणी देकर समझाने का प्रयत्न किया गया है।

इस भाष्य को पूरा करने में जहां मुझे पर्याप्त परिश्रम करना पड़ा वहां मेरी विदुषी पत्नी श्रीमती उर्मिला देवी शास्त्री और योग्या सुपुत्री कुमारी शर्मिष्ठा शास्त्री एम० ए० एडवोकेट ने हस्तलेख को ठीक तैयार करने आदि अनेक कार्यों में पर्याप्त सहयोग दिया। इनका यह कार्य प्रशंसनीय है। महर्षि दयानन्द का वेद सम्बन्धी कार्य फले-फूले बढ़े और सर्वत्र फैले, यही मेरी इच्छा है।

—वैद्यनाथ शास्त्री

बड़ोदा,
वि०—१५-६-१९७६

Scanned by CamScanner

॥ ओ३म् ॥

अथ दशमं मण्डलम्

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

सूक्त १

ऋषिः — १—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः —१, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः धैवतः ॥

अग्रे बृहन्नुषसामूर्ध्वो अस्थान्निर्जगन्वान्तमसो ज्योतिषागात् ।
अग्निर्भानुना रुशता स्वङ्ग आ जातो विश्वा सद्मान्यप्राः ॥१॥

पदार्थः (**बृहन्**) महान् शक्तिवाला (**अग्निः**) अग्नि (**रुशता**) प्रकाशमान (**भानुना**) तेज से तथा (**उषसाम्**) प्रातःसायं कीं उषाओं की (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**निर्जगन्वान्**) निकलता हुआ (**अग्रे**) पहले (**तमसः**) अन्धकार के (**ऊर्ध्वः**) ऊपर (**अस्थात्**) विराजमान होता है तथा (**स्वङ्गः**) अपनी उत्तम अंगभूत दीप्तियों से युक्त (**जातः**) होकर (**विश्वा**) समस्त (**सद्मानि**) स्थानों वा लोकों को (**आप्राः**) व्याप्त करता है ।

भावार्थः—महान् अग्नि सूर्यरूप में अथवा अन्य प्रकाशक शक्तियों के रूप में उषाओं से निकल कर अपने प्रकाश से अन्धकार पर अधिकार जमाता है और अपनी शक्तियों से समस्त विश्व को प्रकाशित एवं परिपूर्ण करता है ॥१॥

स जातो गर्भो असि रोदस्योरग्ने चारुर्विभृत ओषधीषु ।
चित्रः शिशुः परि तमांस्यक्तून्प्र मातृभ्यो अधि कनिक्रदद्गाः ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थ:—(**जातः**) प्रकट (**अग्ने**) अग्नि (**चारुः**) उत्तम है और वही (**रोदस्योः**) पृथिवी और द्युलोक में (**गर्भः**) गर्भवत् गुप्त (**असि**) है। (**सः**) वह (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**विभृतः**) छिपा है। (**चित्रः**) विचित्र (**शिशुः**) ओषधि का शिशु अग्नि (**अक्तून्**) रात्रिसम कालमे (**तमांसि**) अन्धकारों के ऊपर (**परि**) अधिकार जमाता है। (**मातृभ्यः**) आकाशस्थ मेघादिकों से (**कनिक्रदत्**) गर्जता हुआ (**प्र गाः**) आता है।

भावार्थः—यह अग्नि द्यु और पृथिवी लोक में व्याप्त है, ओषधि वनस्पतियों में भी है, अन्धकार को दूर करता है और मेघों में बिजली के रूप में गर्जता हुआ प्रकट होता है ॥२॥

विष्णुरित्था परममस्य विद्वाञ्जातो बृहन्नभि पाति तृतीयम् ।
आसा यदस्य पयो अक्रत स्वं सचेतसो अभ्यर्चन्त्यत्र ॥३॥

पदार्थ:—(**बृहन्**) महान् (**विष्णुः**) व्यापनशील (**जातः**) प्रसिद्ध यह अग्नि (**इत्था**) इस प्रकार (**अस्य**) इस लोक के (**परमम्**) परम लोक को (**विद्वान्**) प्राप्त होकर (**तृतीयम्**) अपने तृतीय रूप सूर्य का (**अभिपाति**) पालन करता है, (**यद्**) जब विद्वान् लोग (**सचेतसः**) विज्ञानयुक्त होकर (**अस्य**) इस अग्नि के (**आसा**) मुख से अथवा माध्यम से (**पयः**) जल और विविध तरल पदार्थों को (**अक्रत**) बनाते हैं और (**अत्र**) इसके (**स्वम्**) तत्त्व वा सम्पत्ति की (**अर्चन्ति**) प्रशंसा करते हैं।

भावार्थः—यह व्याप्त अग्नि अपने तृतीय रूप (भाई) सूर्य की द्युलोक में रक्षा करता है और विज्ञान जानने वाले इसके माध्यम से बहुत से तरल पदार्थों का निर्माण करते हैं तथा इसकी सम्पत्ति की प्रशंसा करते हैं ॥३॥

अत उ त्वा पितुभृतो जनित्रीरन्नावृधं प्रति चरन्त्यन्नैः ।
ता ईं प्रत्येषि पुनरन्यरूपा असि त्वं विक्षु मानुषीषु होता ॥४॥

पदार्थ:—(**अतः**) इस लिए (**पितुभृतः**) अन्न को धारण करने वाली (**जनित्रीः**) उत्पादन शक्तियां ओषधि आदि (**अन्नावृधम्**) अन्न को बढ़ाने वाले (**त्वा**) इस अग्नि को यज्ञ में (**अन्नैः**) अन्नों के द्वारा (**प्रतिचरन्ति**) प्राप्त होती हैं, यह अग्नि पुनः (**ईम्**) वर्षाजल को (**प्रति**) प्राप्त होकर (**अन्यरूपाः**) अन्य रूपों में विद्यमान (**ताः**) उनको (**एषि**) पहुंचता है, (**त्वम्**) यह अग्नि

Scanned by CamScanner

(मानुषीसु) मानवी (विक्षु) प्रजाओं में (होता) अन्न आदि पदार्थों का ग्रहण कर रूपान्तर में दाता (असि) है।

भावार्थः—अन्न आदि पदार्थों की उत्पादक शक्तियां यज्ञ में अन्न के द्वारा इस अग्नि को प्राप्त होती हैं। पुनः यह अग्नि वृष्टि के द्वारा इन्हें रूपान्तर से प्राप्त होता है और यह अग्नि ही मानवी प्रजा में यज्ञ आदि के द्वारा पदार्थों को ग्रहण करने वाला और अन्न आदि को पचाने वाला है ॥४॥

होतारं चित्ररथमध्वरस्य यज्ञस्ययज्ञस्य केतुं रुशन्तम्।
प्रत्यर्धिं देवस्यदेवस्य मह्ना श्रिया त्व१ग्निमतिथिं जनानाम् ॥५॥

पदार्थः—(अध्वरस्य) हिंसारहित (यज्ञस्य यज्ञस्य) प्रत्येक यज्ञ के (केतुम्) प्रकाशक (होतारम्) ग्रहण करने वाले (मह्ना) प्रकाश से (रुशन्तम्) दीप्तिमान् (श्रिया) श्री से (प्रत्यर्धिम्) बढ़ाने वाले, (देवस्य देवस्य) प्रत्येक यज्ञ देवता के लिए (चित्ररथम्) विचित्र रथवत् हव्यवाहक (त्वां) इस (जनानाम्) लोगों के (अतिथिम्) यज्ञादि कर्म में सेवनीय (अग्निम्) अग्नि को हम जानें।

भावार्थः—प्रत्येक यज्ञ के सिद्ध करने में साधन, प्रत्येक दिव्य शक्ति तक यज्ञ प्रदत्त तत्त्व को पहुंचाने वाले प्रकाशशील शक्तिशाली और लोगों के द्वारा अतिथिवत् स्वीकार्य और श्री से बढ़ाने वाले इस अग्नि को हम जानें ॥५॥

स तु वस्त्राण्यध पेशनानि वसानो अग्निर्नाभा पृथिव्याः।
अरुषो जातः पद इळायाः पुरोहितो राजन्यक्षीह देवान् ॥६॥

पदार्थः - (अध) और (सः) वह (तु) ही (अग्निः) अग्नि (पेशनानि) सुवर्ण आदि धातु रूप (वस्त्राणि) आच्छादनों को (वसानः) धारण करता हुआ (पृथिव्याः) पृथिवी के (नाभा) अन्तराल में विद्यमान हैं (राजन्) दीप्तिमान, (अरुषः) हिंसारहित, (जातः) प्रकट और (पुरोहितः) सबके आगे रहने वाला है और (इह) इस (इडायाः) पृथिवी के (पदे) ऊपर वेदि में (देवान्) देवों की उसके द्वारा (यक्षि) होम आदि से संगति करो।

भावार्थः—हे मनुष्य ! पृथिवी पर वेदि बनाकर उस अग्नि को माध्यम बनाकर देवों का संगतिकरण यज्ञ आदि के द्वारा कर जो कि अत्यन्त

Scanned by CamScanner

प्रकाशमान है और सुवर्ण आदि धातुओं को उत्पन्न कर धारण करता हुआ पृथिवी की नाभि में स्थित है ॥६॥

आ हि द्यावापृथिवी अग्न उभे सदा पुत्रो न मातरा ततन्थ ।
प्र याह्यच्छोशतो यविष्ठाथा वह सहस्येह देवान् ॥७॥

पदार्थः—(मातरा) माता-पिता को (पुत्रः न) पुत्र की भांति (अग्ने) यह अग्नि (सदा) सर्वदा (हि) ही (उभे) दोनों (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी को (आततन्थ) प्रकाश से पूरित करता है । (यविष्ठ) अत्यन्त बलशाली, (सहस्य) शक्तिशाली यह अग्नि (अच्छ) निश्चय ही (उषतः) जानने की कामना करने वाले को (याहि) प्राप्त होता है तथा (देवान्) दिव्य पदार्थों को (इह) यहां (यक्षि) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पुत्र माता-पिता को बढ़ाता है उसी प्रकार यह अग्नि द्युलोक और पृथिवी का विस्तार करता है । इसके ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा वालों को यह शक्तिमान् अग्नि प्राप्त होता है और इस लोक में विविध दिव्य पदार्थों को प्राप्त कराता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

पिप्रीहि देवाँ उशतो यविष्ठ विद्वाँ ऋतूँर्ऋतुपते यजेह ।
ये दैव्या ऋत्विजस्तेभिरग्ने त्वं होतॄणामस्यायजिष्ठः ॥१॥

पदार्थः—(अग्ने) यह अग्नि (यविष्ठ) बलशाली और (ऋतुपते) ऋतुओं का पालक है यही, (ऋतून्) ऋतुओं को प्राप्त कराता हुआ (उषतः) कामनावान् (देवान्) विद्वान् और मनुष्य आदि का (पिप्रीहि) पालन करता है और (इह) इस लोक में (यज) संगतिकरण के कार्य को कायम रखता है,(ये) जो (दैव्याः) दिव्य (ऋत्विजः) ऋत्विग् है, (तेभिः) उनके साथ (त्वम्) यह अग्नि (होतॄणाम्) यज्ञ करने वालों में (यजिष्ठः) अतिश्रेष्ठ (असि) है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः - यह अग्नि बलशाली, ऋतुओं का दाता और उनका पालक है। यह यज्ञ करने वाले मनुष्यों और विद्वानों की रक्षा करता है और इस लोक में समस्त संगतिकरण की वैज्ञानिक क्रिया को पूरा करता है। जो विश्व में दैवी पदार्थ विश्वयज्ञ के ऋत्विग् हैं उनके साथ यह यज्ञ करने वालों का श्रेष्ठतम साधन है ॥१॥

वेषि होत्रमुत पोत्रं जनानां मन्धातासि द्रविणोदा ऋतावा ।

स्वाहा वयं कृणवामा हवींषि देवो देवान्यजत्वग्निरर्हन् ॥२॥

पदार्थः--(**अग्ने**) यह अग्नि (**होत्रम्**) हवनीय पदार्थों में व्याप्त होता है, (**पोत्रम्**) पावनीय वस्तुओं में व्याप्त होता है (**उत**) और (**जनानाम्**) लोगों के लिए (**मन्धाता**) ज्ञान का आश्रयभूत, (**द्रविणोदाः**) धन का दाता तथा (**ऋतावा**) सृष्टि नियमों पर चलने वाला है, (**वयम्**) हम (**हवींषि**) हवियों को (**स्वाहा**) मन्त्र के साथ (**कृणवाम**) प्रदान करें और (**अग्निः**) यज्ञमान (**देवः**) दिव्य गुण युक्त (**अर्हन्**) होकर (**देवान्**) विद्वानों का सत्कार करे तथा यज्ञ के देवों की संगतिकरण वा ज्ञान करे।

भावार्थः—यह अग्नि हवनीय और पवनीय पदार्थों में व्याप्त होता है। यह सृष्टि के नियमों पर चलने वाला और लोगों के लिए ज्ञान का आश्रय और धन आदि का दाता है। हम सबको चाहिए कि मन्त्रपूर्वक अग्नि में आहुति प्रदान करें और यजमान देवत्व को प्राप्त कर विद्वानों का सत्कार करे और यज्ञ के देवों का ज्ञान प्राप्त करे ॥२॥

आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम तदनु प्रवोळ्हुम् ।

अग्निर्विद्वान्त्स यजात्सेदु होता सो अध्वरान्त्स ऋतून्कल्पयाति ॥३॥

पदार्थः—हम (**देवानाम्**) विद्वान् लोगों के (**पन्थाम्**) मार्ग पर (**आगन्म**) चलें, (**अपि**) और (**यत्**) जो (**शक्नवाम**) कर सकते हैं (**तत्**) उसके (**अनु**) क्रम से (**प्रवोढुम्**) पूरा करने में समर्थ हों। (**सः**) वह (**विद्वान्**) ज्ञानवान् (**अग्निः**) यजमान (**यजात्**) यज्ञ करे, (**सः**) वह (**इत उ**) ही इसका (**होता**) होता है, (**सः**) वही (**अध्वरान्**) हिंसारहित यज्ञों को करता है और (**सः**) वही (**ऋतून्**) ऋतुओं को (**कल्पयाति**) पूर्णतया निभाता है।

भावार्थः—हम अग्नि विद्या के जानने में विद्वानों के बताये मार्ग का अनुगमन करें। जिस कर्म को करने की शक्ति हम रखते हैं उसे विधिवत्

Scanned by CamScanner

पूरा करें। विद्वान् यजमान ही यज्ञ करता है, हिंसारहित कर्मों को करता, ऋतुओं को भली प्रकार निभाता है ॥३॥

यद्वो॑ व॒यं प्र॑मि॒नाम॑ व्र॒तानि॑ वि॒दुषां॑ देवा॒ अवि॑दुष्टरासः ।
अ॒ग्निष्टद्विश्व॒मा पृ॑णाति वि॒द्वान्येभि॑र्दे॒वाँ ऋ॒तुभि॑ः क॒ल्पया॑ति ॥४॥

पदार्थ—(**देवाः**) हे विद्वान् लोगो ! (**अविदुस्तरासः**) न जानते हुये अथवा न जानकार होकर (**यद्**) जब हम (**वः विदुषाम्**) आप विद्वानों के नियम व्रत आदि का (**प्रमिनाम**) उल्लंघन करें तो (**अग्निः**) स्विष्टकृत् (**अग्निः**) अग्नि अथवा (**विद्वान्**) ज्ञानवान् मनुष्य (**तद्**) उस (**विश्वम्**) समस्त कर्म को प्राप्त होकर (**आ पृणाति**) उसी प्रकार पूरा करें जिस प्रकार अग्नि (**येभिः**) इन (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**देवान्**) उनके दिव्य गुणों को पूरा करता है।

भावार्थः—यदि हम न जानते हुए विद्वानों द्वारा बताये नियम आदि का यज्ञ में भङ्ग करें तो स्विष्टकृत् अग्नि अथवा अधिक विद्वान् उसे ज्ञान देकर पूर्ण करें जिस प्रकार अग्नि ऋतुओं के साथ उसके समस्त गुणों का संगमन करता है ॥४॥

यत्पा॑क॒त्रा मन॑सा दी॒नद॑क्षा॒ न य॒ज्ञस्य॑ मन्व॒ते मर्त्या॑सः ।
अ॒ग्निष्टद्धोता॑ क्रतु॒विद्वि॑जा॒नन्यजि॑ष्ठो दे॒वाँ ऋ॑तु॒शो य॑जाति ॥५॥

पदार्थः—(**दीनदक्षाः**) हीनशक्ति (**मर्त्यासः**) मनुष्य (**यद्**) जब (**पाकत्रा**) पवित्र (**मनसा**) मन से (**यज्ञस्य**) यज्ञ के विषय में (**न**) नहीं (**मन्वते**) जान सकें (**तद्**) तब (**होता**) सदा हवन करने वाला (**ऋतुविद्**) कर्मों की प्रक्रिया को जानने वाला (**यजिष्ठ**) अत्यन्त यज्ञकुशल (**अग्निः**) विद्वान् (**विजानन्**) मर्म को जानता हुआ (**ऋतुशः**) ऋतुओं के अनुसार (**देवान्**) देवों के निमित्त यज्ञ का सम्पादन करावे।

भावार्थः—समझने की शक्ति से न्यून मनुष्य जब यज्ञ कर्म के विषय में कोई त्रुटि करें वा कुछ न समझ पावें तो नियमित यज्ञ करने वाला यज्ञ की प्रक्रिया का ज्ञाता विद्वान् ऋतुओं के अनुसार उनसे यज्ञ करावे ॥५॥

विश्वे॑षां॒ ह्य॑ध्व॒राणा॒मनी॑कं चि॒त्रं के॒तुं जनि॑ता त्वा ज॒जान॑ ।
स आ य॑जस्व नृ॒वती॒रनु॒ क्षाः स्पा॒र्हा इषः॑ क्षु॒मती॑र्वि॒श्वज॑न्याः ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थ—(**विश्वेषाम्**) समस्त (**अध्वराणाम्**) यज्ञों के (**अनीकम्**) अद्भुत (**चित्रम्**) विचित्र (**केतुम्**) प्रकाशक (**त्वा**) इस अग्नि को (**जनिता**) इसकी जनक शक्तियों ने (**जजान**) उत्पन्न किया है । (**स**) वह अग्नि (**नृवतीः**) मनुष्यों से बसी हुई (**क्षाः**) भूमियों (**अनु**) में (**स्पार्हाः**) चाहने योग्य (**क्षुमतीः**) अन्नों से पूर्ण (**विश्वजन्याः**) सर्व हितकारी (**इषः**) ज्ञान को (**आ यजस्व**) प्रदान करता है ।

भावार्थ:—यह अग्नि समस्त यज्ञों का प्रकाशक एवं साधन है, इसके जनक कारणों ने इसे ऐसा ही उत्पन्न किया है और यह यज्ञ द्वारा समस्त पृथिवी के लोगों को अन्न आदि और ज्ञान का दाता है ॥६॥

यं त्वा द्यावापृथिवी यं त्वापस्त्वष्टा यं त्वा सुजनिमा जजान ।
पन्थामनु प्रविद्वान्पितृयाणं द्युमदग्ने समिधानो वि भाहि ॥७॥

पदार्थ—(**यं त्वा**) जिस इस अग्नि को द्युलोक और पृथिवी उत्पन्न करते हैं, (**यं त्वा**) जिस इस अग्नि को (**आपः**) जल और (**यं त्वा**) जिस इस अग्नि को (**सुजनिमा**) उत्तम उत्पादक (**त्वष्टा**) मेघ (**जजान**) उत्पन्न करता है, वह यह (**द्युमद्**) प्रकाशमान (**समिधानः**) समिधाओं से प्रदीप्त (**अग्ने**) अग्नि (**पितृयाणम्**) कर्मकाण्ड के कर्त्ता विद्वानों के द्वारा चले जाने वाले (**पन्थाम्**) मार्ग को (**प्रविद्वान्**) प्राप्त कराता हुआ (**अनु वि भाहि**) प्रकाशित रहे ।

भावार्थः—इस अग्नि को सूर्य, पृथिवी, जल और मेघ विभिन्न प्रकारों में उत्पन्न करते हैं । यह कर्मकाण्डी विद्वानों द्वारा चले जाने वाले मार्ग को प्राप्त कराता हुआ हमारे गृहों में सदा प्रकाशित रहे ॥७॥

यह दशम मण्डल में द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५—७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इनो राजन्नरतिः समिद्धो रौद्रो दक्षाय सुषुमाँ अदर्शि ।
चिकिद्वि भाति भासा बृहतासिक्नीमेति रुशतीमपाजन् ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः— (**इनः**) सबका राजा, (**राजन्**) प्रकाशमान, (**अरतिः**) अपनी गति से युक्त, (**समिद्धः**) दीप्तिमान (**रौद्रः**) भयंकर तथा (**सुषुमान्**) उत्तम सामर्थ्यों वाला यह सूर्य रूप अग्नि (**दक्षाय**) जगत् को शक्ति देने के लिए (**अदर्शि**) दिखाई पड़ता है, (**चिकित्**) सब में ज्ञान को जागृत करने वाला (**बृहता**) महान् (**भासा**) प्रकाश से (**वि भाति**) प्रकाशमान होता है, प्रातः काल में वह (**असिक्नीम्**) काली रात्रि को हटाता हुआ (**रुशतीम्**) उषा को प्राप्त करता है और सायंकाल में उषा को हटाता हुआ काली रात्रि को प्राप्त करता है।

भावार्थ—ग्रहों का राजा, प्रकाशमान वृहत् सूर्य जगत् को बल देने के लिए प्रकाशित होता है। वह प्रकाश से प्रकाशमान सूर्य प्रातः काल में रात्रि को हटाकर उषा को और सायंकाल में उषा को हटाकर रात्रि को प्राप्त करता है ॥१॥

कृष्णां यदेनीमभि वर्पसा भूज्जनयन्योषां बृहतः पितुर्जाम् ।
ऊर्ध्वं भानुं सूर्यस्य स्तभायन्दिवो वसुभिररतिर्वि भाति ॥२॥

पदार्थः—वह अग्नि (**यद्**) जब (**कृष्णाम्**) कृष्ण वर्णवाली (**एनीम्**) जाती हुई रात्रि को (**वर्पसा**) अपने प्रकाशमान रूप से (**बृहतः**) महान् (**पितुः**) आदित्य से (**जाम्**) पैदा होने वाली (**योषाम्**) उषा को (**जनयन्**) प्रकट करता हुआ (**अभिभूत्**) दबा लेता है तब (**अरतिः**) गमनशील अग्नि (**दिवः**) द्युलोक के (**वसुभिः**) आच्छादक अपने तेजों से (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**भानुम्**) प्रकाश को (**ऊर्ध्वम्**) ऊपर रोकते वा फैलाते हुए (**विभाति**) प्रकाशमान होता है।

भावार्थ—अग्नि अपने तेज से काली रात्रि के अन्धकार को दूर कर, सूर्य से उषा को पैदा कर, द्युलोक में प्रकाश से सूर्य को ऊपर चमका कर स्वयं प्रकाशित हो रहा है ॥२॥

भद्रो भद्रया सचमान आगात्स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात् ।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥३॥

पदार्थः—(**भद्रः**) कल्याणकारी तथा (**जारः**) रात्रि को जीर्ण करने वाला सूर्य (**स्वसारम्**) उषा के (**पश्चात्**) पीछे (**अभ्येति**) दौड़ता है, तथा (**भद्रया**) उस कल्याणी उषा से (**सचमानः**) समकाल में युक्त होकर (**आगात्**) प्राप्त होता है (**अग्निः**) अग्नि (**सुप्रकेतैः**) उत्तम प्रकार से दिखाई पड़ने वाले

Scanned by CamScanner

(उशद्भिः) कमनीय (वर्णैः) वर्णों वाले (द्युभिः) दीप्त तेजों से (वितिष्ठन्) सर्वत्र वर्तमान होकर (रामम्) रात्रि के अन्धकार को (अभि अस्थात्) दबाता है।

भावार्थः—यहाँ अलंकार से सूर्य और उषा के वर्णन से अग्नि की प्रशंसा की गई है। सूर्य द्युलोक से उत्पन्न उषा के पीछे दौड़ता है और उससे युक्त होकर समान काल में विद्यमान होता है। यह सूर्य रात्रि का जीर्ण करने वाला होने से जार है। अग्नि अपने प्रकाश और तेज से सायं-काल रात्रि के अन्धकार को, जिसको राम कहा जाता है, दबाता है ॥३॥

अस्य यामासो बृहतो न वग्नूनिन्धाना अग्नेः सख्युः शिवस्य ।
ईड्यस्य वृष्णो बृहतः स्वासो भामासो यामन्नक्तवश्चिकित्रे ॥४॥

पदार्थः—(यामन्) यज्ञ में (बृहतः) महान् (सख्युः) ऋत्विजों और देवों के मित्र (शिवस्य) कल्याणकारक (अस्य) इस अग्नि की (यामासः) रश्मियाँ (इन्धानाः) दीप्त हुई (वग्नून्) मन्त्र पाठ करने वालों की मन्त्रमयी वाणी को (न) नहीं रोकती, (ईड्यस्य) प्रशंसनीय (वृष्णः) कामनाओं के पूरक (बृहतः) महान् (स्वासः) सामग्री आदि के ग्रहण करने में उत्तम मुख वाले इस अग्नि के (अक्तवः) हवि से सिक्त (भामासः) तीक्ष्ण तेज (चिकित्रे) सर्वत्र फैलते हैं।

भावार्थः—यज्ञ में कल्याणकारी अग्नि के तेज से दीप्त होकर मन्त्रपाठ में बाधक नहीं होते हैं। अग्नि महान् है और सामग्री आदि को ग्रहण करने में इसका मुख बहुत विस्तृत है। हवन समय इसका तीक्ष्ण तेज सर्वत्र फैलता है ॥४॥

स्वना न यस्य भामासः पवन्ते रोचमानस्य बृहतः सुदिवः ।
ज्येष्ठेभिर्यस्तेजिष्ठैः क्रीळुमद्भिर्वर्षिष्ठेभिर्भानुभिर्नक्षति द्याम् ॥५॥

पदार्थः—(यस्य) जिसका वर्णन चल रहा है, (रोचमानस्य) दीप्यमान (बृहतः) महान् (सुदिवः) उत्तम दीप्ति वाले उस अग्नि के (भामासः) दीप्त प्रकाश (स्वना न) मरुतों [वायुओं] के साथ (पवन्ते) सर्वत्र प्राप्त होते हैं, वही यह अग्नि (ज्येष्ठेभिः) श्रेष्ठ (तेजिष्ठैः) तेजस्वितम (क्रीडुमद्भिः) क्रीडन-शील (वर्षिष्ठैः) बृहत्तम (भानुभिः) तेजों से (द्याम) द्युलोक को (नक्षति) व्याप्त करता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः--यज्ञाग्नि में डाले गये पदार्थों से युक्त अग्नि का तेज सर्वत्र वायुओं के साथ फैलता है। अग्नि के तीव्र और फैलने वाले तेज द्युलोक तक व्याप्त होते हैं ॥५॥

अस्य शुष्मासो ददृशानपवेर्जेहमानस्य स्वनयन्नियुद्भिः ।
प्रत्नेभिर्यो रुशद्भिर्देवतमो वि रेभद्भिररतिर्भाति विभ्वा ॥६॥

पदार्थः—(देवतमः) यज्ञ देवों में मुख्य (विभ्वा) व्यापनशील (यः) जो अग्नि (अरतिः) गतिशील है, तथा (प्रत्नेभिः) सनातन (रेभद्भिः) वायु के साथ शब्द रूप (रुशद्भिः) प्रकाशमान तेजों से (विभाति) प्रकाशित होता है, (ददृशानपवेः) मेघों में रहकर वज्र को दिखाने वाले (जेहमानस्य) गतियुक्त (अस्य) उस इस अग्नि के (शुष्मासः) शुष्कता आदि गुण (नियुद्भिः) वायुओं के साथ (स्वनयन्) शब्दायमान होते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि स्वभाव से तेज वाला है। मेघस्थ विद्युत् भी इसके ही कारण है। यह वायु के साथ जब मिल जाता है तो इसके शोषक आदि गुण शब्द करते हैं। जलती अग्नि चटचटाती है और बिजली भी कड़कती है ॥६॥

स आ वक्षि महि न आ च सत्सि दिवस्पृथिव्योररतिर्युवत्योः ।
अग्निः सुतुकः सुतुकेभिरश्वै रभस्वद्भी रभस्वाँ एह गम्याः ॥७॥

पदार्थः--(सः) वह (अग्निः) अग्नि (नः) हमारे यज्ञ में (महि) महान् देवों को (आ यक्षि) संगतिकरण कराता है (युवत्योः) परस्पर मिश्रित (दिवापृथिव्योः) द्यु और पृथिवी लोकों के मध्य (अरतिः) गतिमान् वह अग्नि हमारे यज्ञ में (आ सत्सि) स्थिति पाता है (सुतुकः) त्वरायुक्त वह अग्नि (सुतुकेभिः) वेगवाले (रभस्वद्भिः) अत्यन्त गतिमान् (अश्वैः) प्रकाश किरणों से युक्त (रभस्वान्) गतिशील हुआ (इह) इस लोक व्यवहार में (आ गम्याः) प्राप्त होवे।

भावार्थ - अग्नि हमारे यज्ञों में यज्ञ देवों का संगतिकरण कराता है। द्युलोक और पृथिवी दोनों में स्थित अग्नि हमारे यज्ञों में स्थान रखता है। वह अत्यन्त वेगवाला है और सभी गतियों में अधिक गतिशील है। वह वेगवाले प्रकाश से युक्त होकर अत्यन्त वेगवाला होकर इस लोक के अनेक व्यवहारों का साधन बनता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में तृतीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ४

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१—४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्र ते यक्षि प्र त इयर्मि मन्म भुवो यथा वन्द्यो नो हवेषु ।
धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्न इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन् ॥१॥

पदार्थ—(**राजन्**) हे प्रकाशमान (**अग्ने**) स्वप्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**ते**) तुम्हारी आज्ञा के पालनार्थ (**प्र यक्षि**) हम यज्ञ करते हैं, (**ते**) तुम्हारे लिए (**मन्म**) मननीय स्तुति (**प्र इयर्मि**) करते हैं, (**यथा**) इसलिए कि (**नः**) हमारे (**हवेषु**) स्तुति आदि कार्यों में (**वन्द्यः**) वन्दनीय आप ही (**भुवः**) होते हैं, (**प्रत्न**) हे अनादि भगवन् ! (**इयक्षवे**) यज्ञ करने वाले (**पूरवे**) मनुष्य के लिए (**त्वम्**) आप ही (**धन्वन्**) मरुदेश में (**प्रपा न**) प्रपा=प्याऊ के समान हैं ।

भावार्थः—प्रकाशस्वरूप भगवान् ही की आज्ञापालनार्थ यज्ञ आदि उत्तम कर्म किये जाते हैं और इन सभी कर्मों में हमारा एकमात्र उपास्य वही है । वह अनादि प्रभु यज्ञकर्त्ता उपासक के लिये मरुप्रदेश में प्याऊ के समान है । अर्थात् कठिनाइयों में वही रक्षक और सहारा है ॥१॥

यं त्वा जनासो अभि सञ्चरन्ति गाव उष्णमिव व्रजं यविष्ठ ।
दूतो देवानामसि मर्त्यानामन्तर्महाँश्चरसि रोचनेन ॥२॥

पदार्थः—(**यविष्ठ**) हे सर्व शक्तिमान् भगवन् (**उष्णम्**) उष्णता वाले (**व्रजम्**) गोशाला को जाने वाली (**गाव इव**) गायों के समान (**जनासः**) लोग (**त्वा**) आपकी (**संचरन्ति**) शरण लेते हैं, (**देवानाम्**) विद्वान् (**मर्त्यानाम्**) मनुष्यों का तू (**महान्**) महान् (**दूतः**) पूज्य (**असि**) है, तू (**रोचनेन**) प्रकाश से (**अन्तः**) सभी के अन्दर (**चरसि**) विराजमान होता है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर आप शक्तिशाली, महान् और सभी के पूजनीय हो । लोग उसी प्रकार आपकी शरण लेते हैं जिस प्रकार गौएँ शीत से आर्त्त होकर गरम गोशाले को जाती हैं । तू विद्वान् और मनुष्यों सभी का पूज्य है और सबके अन्दर अपने तेज से विराजमान है ॥२॥

शिशुं न त्वा जेन्यं वर्धयन्ती माता बिभर्ति सचनस्यमाना ।
धनोरधि प्रवता यासि हर्यञ्जिगीषसे पशुरिवावसृष्टः ॥३॥

पदार्थ—(**जेन्यम्**) होनहार (**शिशुम्**) शिशु को (**सचनस्यमाना**) साथ में रखती हुई (**वर्धयन्ती**) पालने वाली (**माता इव**) माता जिस प्रकार (**बिभर्ति**) धारण करती है तथा (**हर्यन्**) खाद्य आदि पदार्थों को चाहता हुआ (**अवसृष्टः**) बन्धन से छूटा (**पशुः इव**) पशु जिस प्रकार जाता है उसी प्रकार तू (**धनोः**) हृदयाकाश में (**प्रवता**) प्रवण मार्ग से (**देवान्**) विद्वान् योगियों को (**अधि यासि**) प्राप्त होता है और (**जिगीषसे**) इन्हें अधिगत एवं ज्ञात होता है ।

भावार्थः—भगवान् भक्तों को माता के समान प्राप्त होता है तथा उनके हृदयकाश में उन्हें ज्ञात होता हैं योग आदि की अवस्था में ।।३।।

मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वमग्ने त्वमङ्ग वित्से ।

शये वव्रिश्चरति जिह्वयादन्रेरिह्यते युवतिं विश्पतिः सन् ।।४।।

पदार्थ—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप (**अमूर**) मरणधर्मा मनुष्यस्वभाव से परे हैं, तथा (**चिकित्वः**) समस्त ज्ञानों से युक्त हैं, (**मूराः**) मरणधर्मा एवं मूढ़ (**वयम्**) हम तुम्हारे (**महित्वम्**) महत्त्व को पूर्णत: (**न**) नहीं (**विद्मः**) जानते, (**अङ्ग**) हे भगवन् (**त्वम्**) तू ही (**वित्से**) जानता है, (**विश्पतिः**) प्रजा का स्वामी (**सन्**) होकर तू (**वव्रिः**) सब रूपों में (**शये**) व्यापक हो रहा है और (**चरति**) सबको गति दे रहा है, तू ही समय पर (**युवतिम्**) मिश्रण और अमिश्रण से विविध रूप बनी हुई सृष्टि को (**जिह्वया**) प्रलय कालिक जिहीर्षा शक्ति से (**अदन्**) ग्रहण करता हुआ (**रेरिह्यते**) अपने अन्दर प्रकृति कारण में समेट लेता है ।

भावार्थः—मनुष्य भगवान् की पूरी महिमा को नहीं जान सकता है, यह तो पूर्णतया वही जानता है, वह प्रजा का स्वामी होकर सभी रूपों में व्यापक हो रहा है और समय आने पर प्रलयकाल में इस सृष्टि को प्रकृति रूपी कारण में समेट लेता है ।।४।।

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः ।

अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ।।५।।

पदार्थः—(**नव्यः**) सदा ही नूतन अपना स्तुत्य (**पलितः**) पुरातन पालक भगवान् (**धूमकेतुः**) धूमिल ज्ञातव्य चिह्नों वाला (**कूचित्**) कहां नहीं अर्थात् सर्वत्र (**जायते**) पदार्थों को प्रकट कर रहा है, (**वने**) जगत् में (**सनयासु**) पुरानी नई सभी वस्तुओं में (**तस्थौ**) व्यापक होकर स्थित है, (**वृषभः इव**)

Scanned by CamScanner

अग्नि अथवा सूर्य के समान (**अस्नाता**) न लिप्त हुआ (**आपः**) समस्त लोकों में (**प्रवेति**) व्यापक होता है, (**सचेतसः**) ज्ञानी (**मर्ताः**) मनुष्य ही (**यम्**) जिस को (**प्रणयन्त**) अपने अन्दर जान लेता है,वह ऐसा है ।

भावार्थः—परमेश्वर सबका पालक है, जगत् की नवीन प्राचीन सभी वस्तुओं में व्यापक हो रहा है और सबका पालक है । वह जगत् में व्यापक है और निर्लेप होकर व्यापक है । जैसे अग्नि और सूर्य जगत् में जगत् की वस्तुओं के धर्मों से लिप्त नहीं होते वैसे वह भी व्यापक होते हुए भी लिप्त नहीं होता है । उसके जानने के चिह्न सबके द्वारा नहीं जाने जाते केवल ज्ञानी ही उसे जान सकता है ॥५॥

तनूत्यजेव तस्करा वनर्गू रशनाभिर्दशभिरभ्यधीताम् ।
इयं ते अग्ने नव्यसी मनीषा युक्ष्वा रथं न शुचयद्भिरङ्गैः ॥६॥

पदार्थः—जिस प्रकार (**वनर्गू**) वन में गये हुए, (**तनूत्यजा**) चोरी में जीवन देने वाले (**तस्करा**) दो चोर (**रशनाभिः**) रस्सियों द्वारा (**दशभिः**) दश अंगुलियों को प्रयुक्त कर किसी को (**अधीताम्**) बांध देते हैं उसी प्रकार जन्म और मृत्यु ने संसार में जीव को दश इन्द्रियों के विषयों से बांध रखा है, (**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् ! (**ते**) तेरी प्राप्ति के लिए मैं (**इयम्**) इस (**नव्यसी**) नूतन प्रशस्त (**मनीषा**) समाधि बुद्धि का सहारा लेता हूँ, (**न**) यथा (**रथम्**) रथ में अच्छे घोड़े जोते जाते हैं तद्वत् तू (**शुचयद्भिः**) पवित्र और प्रकाशमय (**अङ्गैः**) शरीरांगों से हमें युक्त करता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार दो चोर जंगल में जाकर अपने दोनों हाथों से किसी को रस्सी से बांधते हैं वैसे ही जन्म और मृत्यु ने हमें दश इन्द्रियों के विषयों से जकड़ा है । भगवान् की प्राप्ति के लिए समाधि प्रज्ञा का प्रयोग करने पर वह भक्त-योगी के समस्त शरीरांगों को प्रकाश से और पवित्रता से युक्त कर देता है ॥६॥

ब्रह्म च ते जातवेदो नमश्चेयं च गीः सदमिद्वर्धनी भूत् ।
रक्षा णो अग्ने तनयानि तोका रक्षोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७॥

पदार्थः—(**जातवेदस्**) हे वेदज्ञान के दाता प्रभो ! (**ते**) आपकी प्राप्ति के लिए प्रयुक्त (**ब्रह्म**) हमारी स्तुति (**च**) और (**नमः**) नमस्कार (**च**) और

Scanned by CamScanner

(**इयम्**) यह (**गोः**) वेदवाणी हमारे लिए (**सदमित्**) सदा ही (**वर्धनी**) वृद्धिकर हो, (**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् तू (**अप्रयुच्छन्**) तत्पर हुआ (**नः**) हमारे (**तनयानि**) पुत्रों (**तोका**) पौत्रों की रक्षा कर (**उत**) तथा (**नः**) हमारे (**तन्वः**) शरीरों की भी रक्षा कर।

भावार्थः—हे प्रभो ! जो प्रार्थना, स्तुति, उपासना आदि आपकी प्राप्ति के लिए हम करते हैं वह हमारे लिए उन्नति और वृद्धि की दाता हो। आप हमारे पुत्र, पौत्रों और शरीर आदि की सदा रक्षा करें ॥७॥

यह दशम मण्डल में चतुर्थ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५

ऋषिः—१—७ त्रितः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१ विराट्त्रिष्टुप्। २—५ त्रिष्टुप्। ६, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

एकः समुद्रो धरुणो रयीणामस्मद्धृदो भूरिजन्मा वि चष्टे।
सिषक्त्यूधर्निण्योरुपस्थ उत्सस्य मध्ये निहितं पदं वेः ॥१॥

पदार्थः—(**समुद्रः**) जलों का समुद्रावण करने वाला (**रयीणाम्**) समस्त धनों का धारक (**भूरिजन्मा**) विविध नाम जन्म और स्थानों वाला (**एकः**) एक अग्नि (**अस्मद्**) हमारे (**हृदः**) हृदयों के (**विचष्टे**) विविध गतियों का सम्पादन करता है, (**निण्योः**) पृथिवी और द्युलोक के (**उपस्थे**) मध्य में (**ऊधः**) ओस बिन्दुओं को (**सिषक्ति**) सिक्त करता है, (**उत्सस्य**) उदक धारक लोक [वायुमण्डल] के (**मध्ये**) मध्य में (**पदम्**) पद को (**वेः**) प्राप्त किये हैं।

भावार्थः—अग्नि उदकों का धारक, धनों का धारक, विविध कार्यों का साधक और हृदयरूपी यन्त्र की गतियों का संचालक है। वह पृथिवी और आकाश के मध्य ओस बिन्दुओं को बरसाता और अन्तरिक्ष में भी अपना स्थान रखे हुए हैं ॥१॥

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**महिषाः**) वायुएं अथवा प्राणशक्तियां (**समानम्**) समान स्थान वाले (**नीडम्**) गृह वा रहने के स्थान को (**वसानाः**) आच्छादन करते हुए अथवा उसमें निवास करते हुए (**वृषणः**) वर्षा कर्म का सम्पादन करते हुए (**अर्वतीभिः**) अग्नि की शक्तियों से (**संजग्मिरे**) संयुक्त होते हैं, (**कवयः**) क्रान्त-दर्शन वाली सूर्य किरणें (**ऋतस्य**) जल के (**पदम्**) स्थान वा गति की (**निपान्ति**) रक्षा करती हैं तथा (**गुहा**) अन्तरिक्ष में (**पराणि**) दूसरे श्रेष्ठ (**नामानि**) जलों को धारण करती हैं।

भावार्थः—अग्नि के ही स्थान में विद्यमान प्राण अग्नि की गतिशील शक्तियों से युक्त होते हैं, और वर्षा आदि कर्मों को करते हैं। सूर्य की किरणें जल की स्थिति की रक्षा करती हैं और जलों को अन्तरिक्ष में धारण करती हैं ।।२।।

ऋतायिनी मायिनी सं दधाते मित्वा शिशुं जज्ञतुर्वर्धयन्ती ।
विश्वस्य नाभिं चरतो ध्रुवस्य कवेश्चित्तन्तुं मनसा वियन्तः ।।३।।

पदार्थः—(**ऋतायिनी**) जल की धारिका, (**मायिनी**) ज्ञान के साधनभूत द्यु और पृथिवी लोक इस अग्नि को (**संदधाते**) धारण करते हैं, और (**शिशुम्**) बच्चे की भांति (**मित्वा**) परिमाण में उसे उत्पन्न करते हैं और (**वर्धयन्ती**) बढ़ाते हुए रहते हैं, (**विश्वस्य**) समस्त (**चरतः**) जंगम और (**ध्रुवस्य**) स्थावर जगत् के (**नाभिम्**) केन्द्र बन्धनभूत (**कवेः चित्**) क्रान्तदर्शन अग्नि के (**तन्तुम्**) सूत्र को विद्वज्जन (**मनसा**) मन से (**वियन्तः**) विविध प्रकार से जानकर सुखी होते हैं ।

भावार्थः—जल को धारण करने वाले और अनेक ज्ञानों की प्राप्ति के केन्द्रभूत साधन द्युलोक और पृथिवी बच्चे की तरह इस अग्नि को पैदा करते हैं और मात्रा में इसे बढ़ाते रहते हैं। जड जंगम जगत् के बन्धनभूत अग्नि के सूत्र को विद्वान् जन जानकर सुख लाभ करते हैं ।।३।।

ऋतस्य हि वर्तनयः सुजातमिषो वाजाय प्रदिवः सचन्ते ।
अधीवासं रोदसी वावसाने घृतैरन्नैर्वावृधाते मधूनाम् ।।४।।

पदार्थः—(**ऋतस्य**) सृष्टि नियम के (**वर्तनयः**) मार्ग को जानने वाले (**प्रदिवः**) ज्ञानवान् मनुष्य लोग (**इषः**) ज्ञान प्राप्त के लिए (**वाजाय**) धन-अन्न प्राप्ति के लिए (**सुजातम्**) उत्तमता से प्रकट होने वाले अग्नि को (**सचन्ते**)

Scanned by CamScanner

प्रयोगार्थ प्राप्त करते हैं (वावसाने) सबके छादक (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक (प्रवीवासम) जगत् में व्याप्त विद्युद्रूप अग्नि को (मधूनाम) जलों के धारक (घृतैः) स्नेहन (अन्नैः) पोषकतत्वों से (वावृधाते) बढ़ाते हैं।

भावार्थः—ज्ञान और अन्न आदि की प्राप्ति के लिए सृष्टि-नियम के मार्ग को जानने वाले ज्ञानवान् मनुष्य प्रयोग में लाते हैं। द्युलोक और पृथिवी लोक जलीय स्नेहन और पोषक तत्त्वों से विद्युदात्मक अग्नि को बढ़ाते रहते हैं ॥४॥

सप्त स्वसॄररुषीर्वावशानो विद्वान्मध्व उज्जभारा दृशे कम् ।
अन्तर्येमे अन्तरिक्षे पुराजा इच्छन्वव्रिमविदत्पूषणस्य ॥५॥

पदार्थः—(विद्वान्) सत्तावान् (वावशानः) शब्दयुक्त अग्नि (कम्) सुखपूर्वक (दृशे) लोगों के देखे जाने और लोगों को दिखाने के लिए (सप्त) सात (अरुषीः) प्रकाशवाली (स्वसॄः) ज्वालाओं को (मध्व) हवि आदि पदार्थों से (उत् जभार) प्राप्त करता है,(अन्तरिक्षे) आकाश में स्थित (पुराजाः) पहले उत्पन्न होने वाला वह अग्नि उन ज्वालाओं को (अन्तः येमे) अन्तर्लीन रखता है (इच्छन्) चाहता हुआ वह (पूषणस्य) पार्थिव लोक के (वव्रिम्) रूप को (अविदत्) प्राप्त होता है।

भावार्थः— सत्तामय अग्नि यज्ञ की हवि आदि से सात प्रकार की ज्वालाओं को प्राप्त करता है। आकाश में स्थित वह अपनी इन ज्वालाओं को अन्तर्लीन किये रहता है। वह ही पार्थिव लोक के रूप को अर्थात् पृश्नि वर्ण को प्राप्त होता है ॥५॥

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।
आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ॥६॥

पदार्थः—(कवयः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (सप्त) सात (मर्यादाः) मनुष्य को खा जाने वाले पाप (ततक्षुः) बताये हैं वा नियत किये हैं, (तासाम्) उनमें से (एकाम्) किसी एक को (इत्) भी करने वाला (अंहुरः) पापी (अभि अगात्) बन जाता है, (ह) निश्चय ही (स्कम्भः) अवरुद्ध मार्ग वह मनुष्य (उपमस्य) समीपवर्त्ती (आयोः) जल के (नीडे) स्थान=गड्ढे में अथवा (पथाम्) अनेक रास्तों के (विसर्गे) चक्कर में अथवा (धरुणेषु) जलों में (तस्थौ) गिरकर पड़ जाता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—विद्वान् लोग सात पापों का वर्णन करते हैं। वे सात पाप हैं—चोरी, ब्रह्महत्या, गोहत्या, गुरु की स्त्री से व्यभिचार, सुरापान, बुरे कर्मों का वार-वार सेवन, पाप करके पुनः झूठ बोलना। इनमें से किसी एक का करने वाला पापी होता है। इस प्रकार सारी प्रगतियों में रुका हुआ वह गड्ढे में गिरता है, पानी में डूबता है अथवा अनेक मार्गों के चक्कर में पड़ता है ॥६॥

असंच्च सच्चं परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे ।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥७॥

पदार्थः—(**असत्**) अव्यक्त (**च**) और (**सत्**) व्यक्त जगत् (**परमे**) परम (**व्योमन्**) आकाश में (**दक्षस्य**) सूर्य के (**जन्मन्**) स्थानभूत (**अदितेः**) प्रकृति के (**उपस्थे**) क्रोड में विद्यमान रहता है। (**नः**) हम सब में (**ह**) निश्चय ही (**प्रथमजा**) प्रथम उत्पन्न (**अग्निः**) अग्नि (**ऋतस्य**) जल की (**पूर्वे**) पूर्व (**आयुनि**) अवस्था में (**वृषभः**) वर्षक भी है (**च**) और (**धेनुः च**) पूरक भी है।

भावार्थः—अव्यक्त और व्यक्त जगत् परम आकाश में सूर्य के उत्पत्ति स्थान और प्रकृतिरूपी कारण में उपस्थित रहते हैं। सृष्टि उत्पत्ति की पूर्वावस्था हम सब में सर्वप्रथम उत्पन्न होने वाला अग्नि ही वृषभ और धेनु अर्थात् धन और ऋण रूप शक्ति होता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६

ऋषिः—१ –७ त्रितः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१ आर्चीस्वराट्-त्रिष्टुप् । ४, ५, विराट्त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ २ विराट्पङ्क्तिः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिः । **स्वरः**—१, ४, ५, ७, धैवतः । २, ३, ६ पञ्चमः ॥

अयं स यस्य शर्मन्नवोभिरग्नेरेधते जरिताभिष्टौ ।
ज्येष्ठेभिर्यो भानुभिर्ऋषूणां पर्येति परिवीतो विभावा ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**जरिता**) यजमान स्तोता (**यस्य**) जिस (**अग्नेः**) अग्नि के (**अभिष्टौ**) यज्ञ में होने वाले (**अवोभिः**) पालन कार्यों से (**शर्मन्**) अपने गृह में (**एधते**) समृद्धि को प्राप्त करता है (**अयम्**) यह (**सः**) वही अग्नि है, (**विभावा**) दीप्तिमान् (**यः**) जो अग्नि (**ऋषूणाम्**) सूर्यरश्मियों के (**ज्येष्ठेभिः**) प्रशस्त (**भानुभिः**) प्रकाशों वा तेजों से (**परिवीतः**) घिरा हुआ (**पर्येति**) सर्वत्र जाता है।

भावार्थः—यह वही अग्नि है कि यज्ञ में जिसकी प्रशंसा करने वाला यजमान घर में सुख-समृद्धि प्राप्त करता है। यह सूर्य की प्रशस्त रश्मियों के तेज से आवृत सर्वत्र विचरता है ॥१॥

यो भानुभिर्विभावा विभात्यग्निर्देवेभिर्ऋतावाजस्रः ।
आ यो विवाय सख्या सखिभ्योऽपरिह्वृतो अत्यो न सप्तिः ॥२॥

पदार्थः—(**ऋतावा**) सृष्टिनियम से बद्ध, (**विभावा**) दीप्तिमान् (**अजस्रः**) निरन्तर रहने वाला (**यः**) जो (**अग्निः**) अग्नि (**देवेभिः**) प्रकाशमान (**भानुभिः**) तेजों से (**विभाति**) प्रकाशमान रहता है तथा (**यः**) जो (**अपरिह्वृतः**) अनवरुद्ध (**सखिभ्यः**) इससे सम्पर्क और जानकारी रखने वालों के लिए (**सख्या**) अत्यन्त उपयोगी कार्यों को सिद्ध करता है, (**सप्तिः**) वेगवान् (**अत्यः न**) अश्व के समान (**आ विवाय**) निरन्तर गति करता है।

भावार्थः—हम लोग उस अग्नि को जानें। सृष्टि के नियमों में बन्धा हुआ निरन्तर प्रकाशमान रहता है तथा अपने कार्यों को करता है और उसका परिज्ञान रखने वालों के उपयोगी कार्यों को सिद्ध करने में वेगवान् अश्व की भांति लगाया जा सकता है ॥२॥

ईशे यो विश्वस्या देववीतेरीशे विश्वायुरुषसो व्युष्टौ ।
आ यस्मिन्मना हवींष्यग्नावरिष्टरथः स्कभ्नाति शूषैः ॥३॥

पदार्थः—यह वही अग्नि है (**यः**) जो (**विश्वस्या**) समस्त (**देववीतेः**) यज्ञकर्म अथवा जगत् के लोकों के प्रकाश करने और नियन्त्रण करने में (**ईशे**) समर्थ है, (**विश्वायुः**) सबको जीवन देने वाला होकर(**उषसः**) उषा के (**व्युष्टौ**) प्रकाशन में (**ईशे**) समर्थ है, (**यस्मिन्**) जिस (**अग्नौ**) अग्नि में (**मना**) विचारपूर्ण (**हवींषि**) हवियां दी जाती है, वही (**अरिष्टरथः**) अनवरुद्ध गति

वाला (शूषैः) अपनी शक्तियों से समस्त लोकों को (आ स्कम्नाति) नियन्त्रित रखता है ।

भावार्थः—यह अग्नि ही जगत् के लोकों के धारण में समर्थ है, यही उषा को प्रकाशित करता है, इसी में विचारपूर्वक हवियां दी जाती हैं और इसकी गति विना रोक-टोक सर्वत्र है और लोकों का अपनी शक्ति से यह नियन्त्रण करता है ॥३॥

शूषेभिर्वृधो जुषाणो अर्कैर्देवाँ अच्छा रघुपत्वा जिगाति ।
मन्द्रो होता स जुह्वा३यजिष्ठः सम्मिश्लो अग्निरा जिघर्ति देवान् ॥४॥

पदार्थः—(शूषेभिः) हवि आदि की शक्तियों से (वृधः) बढ़ाया हुआ (अर्कैः) ऋचाओं से (जुषाणः) हवि दिया हुआ (रघुपत्वा) शीघ्रगामी अग्नि (देवान्) यज्ञ देव वा दिव्य भौतिक शक्तियों को (अच्छा) अच्छी प्रकार से (जिगाति) पहुंचता है । (मन्द्रः) प्रशस्त (होता) यज्ञ में डाले गए पदार्थों का ग्रहण करने वाला, (जुह्वा) मन्त्रों से सम्बोधित (यजिष्ठः) यज्ञ का श्रेष्ठ साधन, (संमिश्लः) समस्त पदार्थों से संयुक्त (सः) वह (अग्निः) अग्नि (देवान्) देवों को हवि (आ जिघर्ति) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—हवि आदि के यज्ञ में शक्तियों से वृद्धि को प्राप्त अग्नि मन्त्रों से आहुति दिया गया समस्त यज्ञ देवों को [जगत् के पदार्थों को] शीघ्रगामी होकर पहुँचता है और यज्ञ में प्रदान की गई वस्तुओं के सार को उन तक पहुँचाता है ॥४॥

तमुस्रामिन्द्रं न रेजमानमग्निं गीर्भिर्नमोभिरा कृणुध्वम् ।
आ यं विप्रासो मतिभिर्गृणन्ति जातवेदसं जुह्वं सहानाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (इन्द्रम् न) विद्युत् के समान, (रेजमानम्) चमकने वाले (उस्राम्) समस्त उपयोगों के साधक (तम्) उस (अग्निम्) अग्नि को) गीर्भिः) वेद मन्त्रों द्वारा (नमोभिः) अन्न आदि सामग्री से (आ कृणुध्वम्) उपयोग में लाओ (यम्) जिस (जातवेदसम्) समस्त पदार्थों में विद्यमान (सहानाम्) बलों के (जुह्वम्) देने वाले अग्नि की (विप्रासः) मेधावी लोग (मतिभिः) स्तुतियों से (आ गृणन्ति) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि की मेधावी लोग प्रशंसा करते हैं

Scanned by CamScanner

तुम भी मन्त्रों के द्वारा सामग्री घृत आदि से यज्ञ में उसका उपयोग करो ॥५॥

सं यस्मिन्विश्वा वसूनि जग्मुर्वाजे नाश्वाः सप्तीवन्त एवैः ।
अस्मे ऊतीरिन्द्रवाततमा अर्वाचीना अग्न आ कृणुष्व ॥६॥

पदार्थः—(**न**) यथा (**एवैः**) गतियों से (**सप्तीवन्तः**) शीघ्र गमन में समर्थ (**अश्वाः**) घोड़े (**वाजे**) संग्राम में जाते हैं, उसी प्रकार (**यस्मिन्**) जिस अग्नि के विज्ञान आदि से साधन बना लेने पर (**विश्वा**) समस्त (**वसूनि**) धनादि पदार्थ (**संजग्मुः**) संगत होते हैं वैसा यह (**अग्ने**) अग्नि (**अस्मे**) हमारे लिए (**इन्द्रवाततमाः**) विद्युत् के द्वारा शक्ति और वेग प्रदान किये हुए (**अर्वाचीनाः**) नवीन-नवीन (**ऊतीः**) रक्षा-साधन (**आकृणुष्व**) प्रदान करे ।

भावार्थः—जिस प्रकार वेग वाले घोड़े संग्राम में लगाये जाते हैं उसी प्रकार अग्नि को विज्ञान आदि-से अपना साधन बनाने पर सारे अन्नादि पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं। वह अग्नि विद्युत् चालित नवीन-नवीन रक्षा-साधनों को प्रदान कर सकता है ॥६॥

अधा ह्यग्ने मह्ना निषद्या सद्यो जज्ञानो हव्यो बभूथ ।
तं ते देवासो अनु केतमायन्नधावर्धन्त प्रथमास ऊमाः ॥७॥

पदार्थः—(**अध हि**) इसलिए कि (**अग्ने**) यह अग्नि (**महना**) शक्ति से (**जज्ञानः**) उत्पन्न हुआ (**सद्यः**) अपने उत्पत्तिकाल में ही (**निषद्य**) स्थित हो (**हव्यः**) हवन के सामर्थ्य वाला होता है, (**ते**) उसके (**तम्**) इस (**केतम्**) लक्षण को (**देवासः**) विद्वान् लोग (**अनु आयन्**) जानें (**अध**) तथा (**प्रथमासः**) उत्कृष्ट और (**ऊमाः**) रक्षित हुए (**अवर्धन्त**) बढ़ें ।

भावार्थः—अग्नि अपने उत्पत्ति काल से हवन करने योग्य गुण और शक्तियों से युक्त होता है, विद्वान् लोग उसके इस लक्ष्य को जानें और यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करके उत्कृष्टता से बढ़ें ॥७॥

यह दशम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ७

ऋषिः—१–७ त्रितः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः १, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः —धैवतः ॥

स्वस्ति नो दिवो अग्ने पृथिव्या विश्वायुर्धेहि यजथाय देव ।
सचेमहि तव दस्म प्रकेतैरुरुष्या ण उरुभिर्देव शंसैः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् ! आपकी कृपा से (**दिवः**) द्युलोक से और (**पृथिव्याः**) पृथिवी लोक से (**नः**) हमारे लिए (**स्वस्ति**) सुख हो, (**देव**) हे देव ! (**यजथाय**) यज्ञ आदि उत्तम कर्मों के करने के लिए (**नः**) हमें (**विश्वायुः**) समस्त उपयोगी साधन (**धेहि**) दीजिए (**दस्म**) हे आत्म साक्षात्कार योग्य प्रभो ! (**तव**) तुम्हारे (**प्रकेतैः**) ज्ञानों से हम (**सचेमहि**) युक्त होवें, (**देव**) हे देव ! अपने (**उरुभिः**) विविध (**शंसैः**) रक्षक गुणों द्वारा (**नः**) हमारी (**उरुष्य**) रक्षा कर ।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! द्यु पृथिवी आदि समस्त लोकों में हमें सुख मिले, उत्तम कर्मों के करने के लिए हम धन, पुत्र, आयु आदि समस्त साधन प्रदान करें । हम आपके ज्ञानों से युक्त होवें और अपने समस्त रक्षण गुणों और शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा करें ॥१॥

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।
यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**इमाः**) यह (**मतयः**) स्तुतियां (**तुभ्यम्**) आपकी स्तुति के लिए ही (**जाताः**) प्रकट हुई हैं, ये (**अश्वैः**) घोड़ों (**गोभिः**) गौवों सहित (**राधः**) समस्त धन को (**तुभ्यम्**) तेरा, तेरी आज्ञा पालनार्थ वा तुम्हें प्राप्त करने के लिए (**अभि गृणन्ति**) बतलाती हैं, (**सुजात**) हे स्वप्रकाश से प्रकाशित (**वसो**) सबको बसाने वाले प्रभो ! (**यदा**) जब (**मर्तः**) मनुष्य (**ते**) तुम्हारे द्वारा प्रदत्त (**भोगम्**) धनादि के भोग को (**अनु आनट्**) प्राप्त करता है तब वह (**मतिभिः**) ज्ञान से (**दधानः**) आपको धारण कर प्राप्त करता है ।

भावार्थः—हे परमात्मन् ! सारी वेदवाणियां और स्तुतियां तेरा गान करती हैं । विश्व में अश्व, गाय आदि से युक्त समस्त धन तेरा ही है, यही

Scanned by CamScanner

वेद मन्त्र और विद्वान् लोग कहते हैं। जब मनुष्य तुम्हारे द्वारा प्रदत्त समझ कर संसार के धनादि पदार्थों का भोग करता है तब ज्ञान से तुझे जानता और प्राप्त करता है ॥२॥

अग्निं मन्ये पितरमग्निमापिमग्निं भ्रातरं सदमित्सखायम् ।
अग्नेरनीकं बृहतः सपर्यं दिवि शुक्रं यजतं सूर्यस्य ॥३॥

पदार्थ—मैं (**अग्निम्**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को ही (**पितरम्**) पिता मानता हूं, (**अग्निम्**) उस प्रकाशक को ही (**आपिम्**) बन्धु मानता हूं, (**अग्निम्**) उसी ज्ञानवान् भगवान् को (**भ्रातरम्**) भ्राता मानता हूँ, उसी को मैं (**सदमित्**) सदा साथी (**सखायम्**) सखा मानता हूं, (**बृहतः**) महान् (**अग्नेः**) भगवान् के (**अनीकम्**) अद्भुत तेज की (**दिवि**) आकाश में स्थित (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**यजतम्**) प्रशस्त (**शुक्रम्**) तेज की भांति (**सपर्यम्**) प्रशस्त करता हूँ।

भावार्थः— भगवान् की स्तुति करने वाले को स्तुति करते समय उसे अपना पिता, बन्धु, भ्राता और सदा साथ रहने वाला सखा मानकर चलना चाहिए। जिस प्रकार आकाश में सूर्य का महान् तेज है उसी प्रकार भगवान् का प्रकाश उससे बढ़कर भी है ॥३॥

सिध्रा अग्ने धियो अस्मे सनुत्रीर्यं त्रायसे दम आ नित्यहोता ।
ऋतावा स रोहिदश्वः पुरुक्षुर्द्युभिरस्मा अहभिर्वाममस्तु ॥४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! (**अस्मे**) हमारी (**धियः**) बुद्धियां और कृतियां (**सिध्राः**) सिद्ध होकर (**सनुत्रीः**) हमें फलदायक हों, (**नित्य होता**) सदा ऐश्वर्यों का दाता तू (**दमे**) घर में (**यम्**) जिसकी (**त्रायसे**) रक्षा करता है (**सः**) वह (**ऋतावा**) सत्य ज्ञान वाला, (**रोहिदश्वः**) सफल अश्वों वाला और (**पुरुक्षुः**) बहुत अन्न का स्वामी होता है, (**द्युभिः**) प्रकाशमय (**अहभिः**) दिनों के साथ (**अस्मै**) इसको (**वामम्**) श्रेष्ठ धन और ज्ञान (**अस्तु**) प्राप्त हो।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हमारा ज्ञान और कर्म हमें फलदाता हो। तू सदा रक्षक है और जिसकी रक्षा करता है वह सत्य ज्ञान सत्यकर्म वाला पशु और धनधान्य से पूर्ण होता है और सदा नये प्रकाश के साथ अन्न धन आदि उसे प्राप्त होते हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

द्युभिर्हितं मित्रमिव प्रयोगं प्रत्नमृत्विजमध्वरस्य जारम् ।
बाहुभ्यामग्निमायवोऽजनन्त विक्षु होतारं न्यसादयन्त ॥५॥

पदार्थः—(**आयवः**) मनुष्य लोग (**द्युभिः**) समस्त प्रकाशों से (**हितम्**) युक्त (**मित्रम् इव**) मित्र के समान (**प्रयोगम्**) उत्तम योगदान देने वाले (**प्रत्नम्**) अनादि, (**ऋत्विजम्**) ऋतुओं के उत्पादक (**अध्वरस्य**) संसार यज्ञ के (**जारम्**) प्रलयकर्त्ता (**होतारम्**) पुनः सृष्टिकाल में देने वाले (**अग्निम्**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को (**बाहुभ्याम्**) दोनों बाहुओं से (**अजनन्त**) नमस्कार करते हैं और (**विक्षु**) प्रजाओं में उसको (**नि असादयन्त**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—मनुष्य समस्त प्रकाशों वाले, अनादि, मित्र के समान सहयोग देने वाले, ऋतुओं के कर्त्ता, संसार के प्रलय कर्त्ता और दाता प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को हाथ जोड़कर नमस्कार करते हैं और प्रत्येक प्रजा में उसे देखते हैं ॥५॥

स्वयं यजस्व दिवि देव देवान्किं ते पाकः कृणवदप्रचेताः ।
यथायज ऋतुभिर्देव देवानेवा यजस्व तन्वं सुजात ॥६॥

पदार्थः—(**देव**) हे देव परमेश्वर ! (**दिवि**) दिव्य यज्ञ [सृष्टि यज्ञ] में (**स्वयम्**) स्वयं ही तू (**देवान्**) सृष्टि के तत्त्वों की (**यजस्व**) संगति लगाता है (**अप्रचेताः**) मूढ़ (**पाकः**) दुःखों से सन्तप्त मनुष्य (**ते**) तेरे लिए (**किम्**) क्या स्तुति आदि (**कृणवत्**) कर सकता है, (**यथा**) जिस प्रकार (**देव**) हे देव ! तू (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**अयजः**) संगत करता है (**एवा**) उसी प्रकार (**सुजात**) हे स्वप्रकाश ! तू (**तन्वम्**) संसार शरीर की भी (**यजस्वा**) संगति बैठाता है।

भावार्थः—परमेश्वर सृष्टि की रचना रूपी दिव्य यज्ञ में सृष्टि के तत्त्वों और पदार्थों का यज्ञ अर्थात् संगतिकरण करता है। दुःख से पीड़ित मूढ़ मनुष्य उसकी क्या उपासना कर सकता है ? जिस प्रकार वह महान् देव काल के अनुसार सृष्टि के पदार्थों को संगत करता है वैसे ही संसार में शरीर की भी संगति बैठाता है ॥६॥

भवा नो अग्नेऽवितोत गोपा भवा वयस्कृदुत नो वयोधाः ।
रास्वा च नः सुमहो हव्यदातिं त्रास्वोत नस्तन्वो३ अप्रयुच्छन् ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अग्ने**) हे भगवन् ! तू (**नः**) हमारा (**अविता**) रक्षक (**भव**) हो, (**उत**) और (**गोपाः**) पालक (**भव**) हो, तू (**नः**) हमारा (**वयः कृत्**) प्राणदाता (**उत**) और (**वयोधाः**) प्राणधारक हो, (**सुमहः**) अत्यन्त उत्कृष्ट तेज वाला तू (**नः**) हमें (**हव्यदातिम्**) भोग्य पदार्थ (**च**) भी (**रास्व**) दे (**उत**) और (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर (**नः**) हमारे (**तन्वः**) शरीरों की भी (**त्रास्व**) रक्षा कर !

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर तू हमारा रक्षक और पालक, प्राणदाता और प्राणधारक बन। हमें भोग्य पदार्थों को दे और हमारे शरीरों की रक्षा कर ॥७॥

यह दशम मण्डल में सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ८

ऋषिः—१—६ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः ॥ **देवता**—१—६ अग्निः । ७—९ इन्द्रः ॥ **छन्दः** १, ५—७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**— धैवतः ॥

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति ।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥१॥

पदार्थः—(**अग्निः**) अग्नि (**बृहता**) महान् (**केतुना**) प्रकाश आदि चिह्नों से युक्त (**प्र याति**) सर्वत्र विचरता है, (**वृषभः**) वृष्टि का दाता वह (**रोदसी**) द्युलोक और पृथिवी लोक पर्यन्त (**आ रोरवीति**) विद्युत् के रूप में गर्जता है, (**महिषः**) महान् वह अग्नि (**दिवः चित्**) द्यु आकाश की (**अन्तान्**) दिशाओं और (**उपमान्**) उप दिशाओं को (**उदानट्**) व्याप्त करता है, (**अपाम्**) जलों के (**उपस्थे**) कारण स्थान अन्तरिक्ष में (**ववर्ध**) बढ़ता है ।

भावार्थः—अपने प्रकाश आदि लक्षणों से युक्त अग्नि सर्वत्र विद्यमान रहता है, वह द्युलोक और पृथिवी पर्यन्त विद्युत् आदि के रूप में गड़गड़ाता है, वह दिशाओं-उपदिशाओं में व्याप्त है और अन्तरिक्ष में विशेष वृद्धि को प्राप्त है ॥१॥

Scanned by CamScanner

मुमोद् गर्भो वृष॒भः क॒कुद्मा॑नस्रे॒मा व॒त्सः शिमी॑वाँ अरावीत् ।
स दे॒वता॒त्युद्य॑तानि कृ॒ण्वन्त्स्वेषु॒ क्षये॑षु प्रथ॒मो जि॑गाति ॥२॥

पदार्थः—(**वृषभः**) वृष्टि का कर्त्ता (**ककुद्मान्**) अतितेज वाला, (**गर्भः**) सबका ग्रहण करने वाला अग्नि (**मुमोद**) सबको मुदित करता है, (**अस्त्रेमा**) प्रशस्त (**शिमीवान्**) अपने कार्यों के करने में तत्पर (**वत्सः**) रात्रि और उषा का वत्स वह (**अरावीत्**) सन्नाटा उत्पन्न करता है। वह (**देवताति**) भौतिक शक्तियों, लोकों और किरणों में तथा (**स्वेषु**) अपने (**क्षयेषु**) स्थानों में (**उद्यतानि**) आवश्यक कार्यों की व्यवस्था (**कुर्वन्**) करता हुआ (**प्रथमः**) सबसे प्रथम हुआ (**जिगाति**) विराजमान होता है।

भावार्थ—यह अग्नि तेजों वाला, सबका ग्रहण करने वाला है और रात्रि तथा उषा से उत्पन्न होने से अग्नि अथवा सूर्यरूप में उनका पुत्र है, यह समस्त जगत् को मुदित करता है और रात्रि में सन्नाटे को उत्पन्न करता है। जगत् में कार्य करने वाली दैवी शक्तियों और रहने के स्थानों में अपनी करणीय क्रिया को करता हुआ यह सर्वप्रथम दैवी पदार्थ का नाम धारण करता है ॥२॥

आ यो मूर्धानं॑ पि॒त्रोरर॑ब्ध॒ न्य॑ध्व॒रे द॑धिरे॒ सूरो॒ अर्णः॑ ।
अस्य॒ पत्म॒न्नरु॑षी॒रश्व॑बुध्ना ऋ॒तस्य॒ योनौ॑ त॒न्वो॑ जुषन्त ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो अग्नि (**पित्रोः**) द्युलोक और पृथिवी के (**मूर्धानम्**) शिरोभाग को (**आ ररब्ध**) बनाता वा धारण करता है, (**सूरः**) सरणशील उस अग्नि के (**अर्णः**) तेज को अथवा गति को (**यज्ञे**) संसार में गतिशील पदार्थ (**नि दधिरे**) धारण करते हैं (**अस्य**) इसके (**पत्मन्**) पतन समय में (**अरुषीः**) दीप्तिमान् (**अश्वबुध्नाः**) विद्युद् अथवा गति से बन्धे हुए (**तन्वः**) आयतन लोक वा पदार्थ (**ऋतस्य**) जगत् के (**योनौ**) कारण प्रकृति में (**जुषन्त**) लीन हो जाते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि ही द्यु और पृथिवी लोक की मूर्धा बना हुआ है, जगत् के सभी गतिशील पदार्थ इसके तेज अथवा ताप वा गति को धारण करते हैं। इसके प्रलय समय में विद्युत् अथवा इसकी गति से बन्धे हुए समस्त लोक वा पदार्थ जगत् के मूल कारण प्रकृति में लीन हो जाते हैं ॥३॥

Scanned by CamScanner

उषउँषो हि वसो अग्रमेषि त्वं यमयोरभवो विभावा ।
ऋतायं सप्त दधिषे पदानि जनयन्मित्रं तन्वे३ स्वायैं ॥४॥

पदार्थः—(वसो) यह वसु भूत अग्नि (उष-उषः) प्रत्येक उषा में (हि) चूंकि (अग्रम) पूर्व ही (एषि) आता है, अतः (त्वम्) यह (यमयोः) दिन और रात्रि दोनों में (विभावा) दीप्तिमान् (अभवः) होता है, यह अग्नि (स्वाय) अपने (तन्वः) शरीर से (मित्रम्) घोर ज्वलन रूप को (जनयन्) उत्पन्न करके (ऋताय) यज्ञकार्य के लिए (सप्त) सात (पदानि) ज्वालाओं को (दधिषे) धारण करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि दोनों समय की सभी उषाओं में प्रथम रहता है अतः दिन और रात्रि दोनों में दीप्तिमान् रहता है । अपने शरीर से ही यह 'मित्र' नाम को धारण करके यज्ञ आदि कार्यों के लिए सात ज्वालाओं को धारण करता है । जब अग्नि घोर रूप में दिखाई पड़ता है तब इसका नाम मित्र है ॥४॥

भुवश्चक्षुर्मह ऋतस्य गोपा भुवो वरुणो यदृताय वेषि ।
भुवो अपां नपाज्जातवेदो भुवो दूतो यस्य हव्यं जुजोषः ॥५॥

पदार्थः—यह अग्नि (महः) महान् (ऋतस्य) शाश्वत सृष्टि नियम का (चक्षुः) प्रकाशक (भुवः) है, (गोपाः) इन्द्रियों का पालक भी (भुवः) होता है, (यत्) जब (ऋताय) जल के आदान के लिए (वेषि) गतिमान् होता है तब यह (वरुणः) वरुण हो जाता है, (जातवेदः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में वर्तमान यह अग्नि (अपाम्) वृष्टि जलों का (नपात्) न नष्ट करने वाला एवं पौत्र (भुवः) है, (यस्य) जिस यजमान की (हव्यम्) हवि को (जुजोष) ग्रहण करता है उसका (दूतः) दूत (भुवः) होता है ।

भावार्थः—यह अग्नि शाश्वत नियम का प्रकाशक है । चक्षु होकर सब पदार्थों का प्रत्यक्ष कराता है । यह इन्द्रिय शक्ति का रक्षक है जब यह सूर्य किरणों द्वारा जल को खींचकर ग्रहण करता है तब इसे वरुण कहा जाता है । यह वृष्टि जल का पौत्र है अर्थात् विनाश न करने वाला है । जलों से मेघ पैदा होता है, मेघ से विद्युद्रूप अग्नि उत्पन्न होता है अतः जलों का यह नपात्=पौत्र है । यजमान द्वारा डाली गई आहुति को यह ग्रहण करके

Scanned by CamScanner

उसके दूत का काम करता और सर्वत्र उस आहुति के तत्त्व को पहुँचा देता है ॥५॥

भुवो यज्ञस्य रजसश्च नेता यत्रा नियुद्भिः सचसे शिवाभिः ।
दिवि मूर्धानं दधिषे स्वर्षां जिह्वामग्ने चकृषे हव्यवाहम् ॥६॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**च**) और (**रजसः**) लोकों का (**नेता**) संचालक है, (**यत्र**) उस अन्तरिक्ष में, जिसमें (**शिवाभिः**) कल्याणकारक (**नियुद्भिः**) किरणों और प्राणों से संयुक्त वायु का (**सचसे**) सहयोग प्राप्त करता है, (**दिवि**) द्युलोक में यह (**मूर्धानम्**) शिरोरूप (**स्वर्षाम्**) सबके सम्भक्ता आदित्य को धारण करता है तथा यज्ञ में (**हव्यवाहम्**)हवि को वहन करने वाली (**जिह्वाम्**) ज्वाला को (**चकृषे**) धारण करता है।

भावार्थः—आकाश में कल्याणकारक किरणों से वा पवन गतियों से युक्त वायु का सहयोग लेकर यह अग्नि यज्ञ के पदार्थों और लोकों का संचालक है। द्युलोक में सूर्य को धारण किये हैं शिर की भांति और यज्ञ में अपनी ज्वाला से हवि का ग्रहण करता है ॥६॥

अस्य त्रितः क्रतुना वव्रे अन्तरिच्छन्धीतिं पितुरेवैः परस्य ।
सचस्यमानः पित्रोरुपस्थे जामि ब्रुवाण आयुधानि वेति ॥७॥

पदार्थः—(**त्रितः**) तीनों स्थानों में रहने वाला वायु (**अन्तः**) अन्तरिक्ष में (**धीतिम्**) भाग वा स्थान को (**इच्छन्**) चाहते हुए (**एवैः**) अपनी गतियों से (**परस्य**) श्रेष्ठ (**पितुः**) जगत् के पालक (**अस्य**) इस विद्युद्रूप अग्नि के (**क्रतुना**) कर्म से (**वव्रे**) साथी वरण करता है, (**पित्रोः**) द्यु और पृथिवी के (**उपस्थे**) अन्तराल में (**सचस्यमानः**) सहयुक्त हुआ (**जामि**) शब्दों को (**ब्रुवाणः**) करता हुआ (**आयुधानि**) आयुधों को (**वेति**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—पृथिवी, अन्तरिक्ष और ऊपर द्युलोक में रहने वाला वायु त्रित है। वह आकाश में अपने लिए स्थान चाहता हुआ इन्द्र अर्थात् विद्युद्रूपी इस अग्नि को मित्र बनाता है और अन्तरिक्ष में आवाज करता हुआ मेघ के काटने में अपने उपयोगी साधनों को प्राप्त करता है ॥७॥

स पित्र्याण्यायुधानि विद्वानिन्द्रेषित आप्त्यो अभ्ययुध्यत् ।
त्रिशीर्षाणं सप्तरश्मिं जघन्वान्त्वाष्ट्रस्य चिन्निः ससृजे त्रितो गाः ॥८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**आप्त्यः**) जलों से उत्पन्न (**सः**) वह (**त्रितः**) वायु (**इन्द्रेषितः**) विद्युत् के द्वारा प्रेरित (**पित्र्याणि**) जलरूपी पिता के (**आयुधानि**) आयुधों को (**विद्वान्**) प्राप्त करता हुआ (**अभ्ययुध्यत्**) त्वष्टा=सूर्य के पुत्र मेघ से युद्ध करताहै। (**सप्तरश्मिम्**) सप्त परिधियों में बन्धे (**त्रिशीर्षाणम्**) तीन शिरों वाले मेघ को मारता है, (**त्वाष्ट्रस्य चित्**) त्वष्टा के पुत्र मेघ के भी (**गाः**) गर्जना शब्दों को (**निः ससृजे**) अपहृत कर लेता है।

भावार्थः—जलों से उत्पन्न वायु आप्त्य त्रित है। वह विद्युद्रूपी अग्नि से प्रेरित हो जल के विविध उपकरणों को प्राप्त त्वष्टा अर्थात् सूर्य की किरणों से आकृष्ट जल से उत्पन्न त्वाष्ट्र=मेघ से युद्ध करता है और सात परिधियों में बन्धे तीन शिर वाले मेघ को मार गिराता है और उसकी गर्जना को भी समाप्त करता है ॥८॥

भूरीदिन्द्र उदिनंक्षन्तमोजोऽवाभिनत्सत्पंतिर्मन्यमानम् ।
त्वाष्ट्रस्य चिद्विश्वरूपस्य गोनांमाचक्राणस्त्रीणि शीर्षा परा वर्क् ॥९॥

पदार्थः—(**सत्पतिः**) सत्ता वाले पदार्थों का पालक (**इन्द्रः**) विद्युद्रूप अग्नि (**भूरि इत्**) अत्यधिक (**ओजः**) बल (**उदिनक्षन्तम्**) व्याप्त (**मन्यमानम्**) अपने को मानने वाले मेघ को (**अवाभिनत्**) भेदन करता है। (**गोनाम्**) जलों के स्वामी (**विश्वरूपस्य**) विविध रूपों वाले (**त्वाष्ट्रस्य**) मेघ के (**त्रीणि**) तीनों (**शीर्षा**) शिरों को (**आचक्राणः**) शब्द करता हुआ (**परा वर्क्**) काट डालता है।

भावार्थः—इन्द्र=विद्युद्रूप अग्नि जो कि सभी सत्ता वाले पदार्थों की धारक है अपने को बहुत बलशाली मानने वाले मेघ का विदारण करता है। तथा विविध रूपों वाले मेघ के शिरों को काटता है और वृष्टि कराता है ॥९॥

यह दशम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९

ऋषिः—१—९ त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः सिन्धुद्वीपो चाम्बरीषः ॥ देवता—आपः ॥ छन्दः—१—४, ६ गायत्री । ५ वर्धमानागायत्री । ७ प्रतिष्ठागायत्री । ८, ९ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—७ षड्जः । ८, ९ गान्धारः ॥

Scanned by CamScanner

आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ॥१॥

पदार्थः—(**हि**) यतः (**आपः**) जल (**मयोभुवः**) सुखदाता (**स्थ**) हैं (**ताः**) वे (**नः**) हमें (**ऊर्जे**) अन्न (**दधातन**) प्रदान करें, हमारे लिए (**महे**) बहुत (**रणाय**) रमणीय (**दृशे**) ज्ञान का (**दधातन**) साधन बनें ।

भावार्थः—जल सुखदायी हैं और वे हमें अन्न देवें तथा ज्ञान के साधन बनें ॥१॥

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उशतीरिव मातरः ॥२॥

पदार्थः—(**वः**) इनका (**यः**) जो (**शिवतमः**) अत्यन्त कल्याण कर (**रसः**) सारभूत रस है, (**तस्य**) उसको (**नः**) हमें (**इह**) इस लोक में ये (**भाजयत**) देवें (**उषतीः**) पुत्र का कल्याण चाहने वाली (**मातरः इव**) माताओं के समान हमें कल्याणकारी हों ।

भावार्थः—इन जलों का कल्याणकारी रस इस लोक में हमें प्राप्त हो और ये माता के समान हमारे लिये कल्याण करने वाले हों ॥२॥

तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।

आपो जनयथा च नः ॥३॥

पदार्थः—(**वः**) ये जल (**यस्य**) जिस अन्न के (**क्षयाय**) निवास वा प्राप्ति के लिए (**जिन्वथ**) उपयोगी हैं (**तस्मै**) उसके प्राप्त्यर्थ हम (**अरम्**) पर्याप्त (**गमाम**) यत्न करें । ये (**आपः**) जल (**नः**) हमें (**जनयथ**) वह प्राप्त करावें ।

भावार्थः—ये जल जिन वस्तुओं की प्राप्ति के लिए उपयोगी हैं उन की प्राप्ति में हम पर्याप्त यत्न करें और हमें उनकी प्राप्ति करावें ॥३॥

शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शं योरभि स्रवन्तु नः ॥४॥

पदार्थः—(**देवीः**) सुखमयी (**आपः**) जल (**नः**) हमारे (**अभिष्टये**)

Scanned by CamScanner

अभीष्ट की प्राप्ति के लिए तथा (पीतये) रक्षा के लिए (शम्) कल्याणकारी होवें। (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) वर्षा करें।

भावार्थः—उत्तम जल हमारे अभीष्ट और रक्षा के लिए कल्याणकारी साधन बनें। सदा हम पर सुख की अभिवृष्टि करें ॥४॥

ईशा॑ना॒ वार्या॑णां॒ क्षय॑न्तीश्चर्षणी॒नाम् ।

अ॒पो या॑चामि भेष॒जम् ॥५॥

पदार्थः—(अपः) जल जो कि (वार्याणाम्) जलोत्पन्न अन्न, वनस्पति आदि की (ईशानाः) स्वामी हैं और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों को (क्षयन्तीः) निवास देने वाली हैं (भेषजम्) औषध वा सुखरूप हैं, उनको हम (याचामि) चाहते हैं।

भावार्थः– जल अन्न आदि के उत्पादक हैं, मनुष्यों के जीवन के साधन है, और सभी ओषधियों की ओषधि हैं। हम उन्हें चाहें ॥५॥

अ॒प्सु मे॒ सोमो॑ अब्रवीद॒न्तर्विश्वा॑नि भेष॒जा ।

अ॒ग्निं च॑ वि॒श्वश॑म्भुवम् ॥६॥

पदार्थः—(सोमः) चन्द्रमा अथवा सोमलता (मे) मेरे लिए (अप्सु) जलों के (अन्तः) मध्य में (विश्वानि) समस्त (भेषजा) ओषधियों (च) और (विश्व शम्भुवम्) विश्व का कल्याण करने वाले (अग्निम्) अग्नि का होना (अब्रवीत्) प्रकट करता है।

भावार्थः—चन्द्रमा अथवा सोमलता अपने गुण और कार्यों से प्रकट होते हैं। जल में समस्त प्रकार की ओषधियों का सार है और विश्व के लिए उपयोगी विद्युत् भी उसी में है ॥६॥

आप॑: पृणी॒त भे॑ष॒जं वरू॑थं त॒न्वे॒३॒॑ मम॑ ।

ज्योक्च॒ सूर्यं॑ दृ॒शे ॥७॥

पदार्थः—(आपः) जलीय प्राण (सूर्यम्) सूर्य को (ज्योक्) लम्बे समय तक (दृशे) देखने के लिए (मम) मेरे (च) और (तन्वे) शरीर के लिए (वरूथम्) श्रेष्ठ (भेषजम्) औषध को (पृणीत) पूर्ण करते हैं।

भावार्थः—जलीय प्राण हमें लम्बे समय तक सूर्य को देखने के लिए

Scanned by CamScanner

अर्थात् लम्बी आयु के लिए और शरीर की समस्त शक्तियों के लिए श्रेष्ठ औषध देते रहते हैं ।।७।।

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि ।

यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ।।८।।

पदार्थः—(**आपः**) मेरे शरीरस्थ प्राण (**यत्**) जो (**किम्**) कुछ(**मयि**) मुझ में (**दुरितम्**) दुष्ट स्वभाव वा कर्म हैं, (**च**) और (**वा**) अथवा (**यद्**) जो (**अहम्**) मैं (**अभि दुद्रोह**) किसी से द्रोह करता हूँ, (**वा**) अथवा (**यद्**) जो कुछ मैं किसी को (**शेपे**) शाप देता हूँ, (**उत**) अथवा जो (**अनृतम्**) झूठ व्यवहार करता हूँ उस (**इदम्**) इस सबको (**प्रवहत**) अपने साथ सदा रखते हैं ।

भावार्थः—शरीरस्थ हम जो कुछ भी भले-बुरे कार्य करते हैं आत्मा के साथ उसके लिए उत्तरदायी रहते हैं और मृत्यु के अनन्तर भी उसे धारण करते हैं ।।८।।

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि ।

पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ।।९।।

पदार्थः—(**रसेन**) रस से युक्त (**आपः**) जलों को हम (**समगस्महि**) प्राप्त करते हैं जिनसे (**पयस्वान्**) रसयुक्त शरीर वाला होकर (**अन्वचारिषम्**) पहले दूसरे जन्मों में जो कुछ किया है (**अग्ने**) अग्नि (**मा**) मुझको दूसरे जन्म में (**आगहि**) प्राप्त कराता है, (**तम्**) कर्मों के नियम से पालने वाले उस (**मा**) मुझको (**अद्य**) आज वर्त्तमान में भी (**वर्चसा**) दीप्ति से (**संसृज**) सम्बन्ध कराता है ।

भावार्थः—सभी प्राणियो को पिछले किये हुए कर्मों का फल वायु, जल और अग्नि आदि पदार्थों के माध्यम से इस जन्म वा अगले जन्म में प्राप्त होता ही है ।।९।।

यह दशम मण्डल् का नवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

Scanned by CamScanner

सूक्त—१०

ऋषिः – १, ३, ५—७, ११, १३ यमी वैवस्वती । २, ४, ८—१०, १२, १४ यमो वैवस्वतः ॥ देवता—१, ३, ५—७, ११, १३ यमो वैवस्वतः । २,४,८ — १०, १२, १४, यमी वैवस्वती ॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ११ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ९, १०, १२ त्रिष्टुप् । ७, १३ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १४ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवताः ॥

नोटः— यह सूक्त यय-यमी अर्थात् पति पत्नी का संवाद है। पति नपुंसक होने की अवस्था में पत्नी को नियोग के लिए आज्ञा देता है। दैवत पक्ष में रात्रि और सूर्य का संवाद है।

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरू चिदर्णवं जगन्वान् ।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधि क्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥१॥

पदार्थ—यमी कहती है—((सखी) पत्नी होने से सखी मैं (**सख्या**) सख्य भाव से (**सखायम्**) पतिरूपी सखा तुझ से (**आ उ ववृत्याम् चित्**) समागम करूं। (**पुरु चित्**) वहुत (**तिरः**) दूर लम्बे (**अर्णवम्**) संसार समुद्र को (**जगन्वान्**) पार करने की इच्छा वाला (**वेधाः**) गृहस्थ (**पितुः**) पत्नी के पिता के (**नपातम्**) नाती अथवा स्वयं के पुत्र को संसार के (**प्रतरम्**) नियम व्यवहार को (**दीध्यानः**) ध्यान में रखते हुए (**क्षमि अधि**) भूमितुल्य पत्नी में (**आ दधीत**) आधान करे।

भावार्थः—पत्नी असमंर्थ पति के प्रति स्वभावतः कहती है कि "मैं सखीभूत तेरे साथ समागम करूं। संसार सागर को तरने और व्यवहार को पूर्ण करने के लिए ही गृहस्थ को अपने वंश को न गिरने देने वाले पुत्र के लिए पत्नी में गर्भ धारण करना चाहिए ॥१॥

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत्सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

पदार्थः— पति उत्तर देता है—हे पत्नि ! (**ते**) तेरा (**सखा**) पति रूप सखा (**एतत्**) इस (**सख्यम्**) सख्य वा समागम को (**न वष्टि**) नहीं चाहता है, (**यत्**) इस लिए कि (**सलक्ष्मा**) अपने पति के समान शक्ति और लक्षण वाली पत्नी (**विषुरूपा**) विविध सन्तानों वाली (**भवाति**) होती, [पत्नी ठीक हो परन्तु

Scanned by CamScanner

पति नपुंसक हो तो ऐसा नहीं होता है अतः यह तुम्हारा पति तुझसे समागम नहीं चाहता है] (**महः**) महान् (**असुरस्य**) प्राणवान् पुरुष के (**वीराः**) वीर (**पुत्रासः**) पुत्र ही (**उर्विया**) इस पृथिवी पर (**दिवः**) ज्ञान प्रकाश और दिव्य गुण के (**धर्तारः**) धारण करने वाले (**परिख्यन्**) देखे जाते हैं ।।

भावार्थः—पति उत्तर देता है कि नपुंसक होने से वह पत्नी के समान सन्तान उत्पादन में समर्थ नहीं है अतः वह इस समागम को नहीं चाहता है। पुंस्त्व वाले महान् शक्तिशाली के ही वीर पुत्र होते देखे जाते हैं और वे ही उत्तम गुणों से युक्त और संसार में सफल होते हैं ।।२।।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित्त्यजसं मर्त्यस्य ।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्व१मा विविश्याः ॥३॥

पदार्थः—पत्नी कहती है—(**ते**) वे (**अमृतासः**) दीर्घायु पुरुष (**घ**) अवश्य (**एतत्**) यह (**उशन्ति**) चाहते हैं कि (**एकस्य चित्**) किसी भी एक (**मर्त्यस्य**) मनुष्य के (**त्यजसम्**) पुत्र हो । (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**अस्मे**) मुझ में (**निधायि**) बद्ध है तू (**जन्युः**) पुत्रोत्पादन में समर्थ पत्नी का (**पतिः**) पति है अतः मेरे (**तन्वम्**) शरीर में गर्भरूपेण (**आ विविश्याः**) प्रविष्ट हो ।

भावार्थः—पत्नी कहती है कि वंश को दीर्घायु वाला रखने वाले मनुष्य चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के सन्तान हो । मेरा मन तुझ में बन्धा है अतः तू ही मुझ जाया में गर्भरूप में प्रविष्ट हो ।।३।।

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम ।

गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥४॥

पदार्थः—पति कहता है—(**कत् ह**) कौन-सा उपाय वा समागम आदि कर्म है (**यत्**) जिसे हमने (**पुरा**) पहले (**न**) नहीं (**चकृम**) किया, (**नूनम्**) निश्चय ही (**अनृतम्**) असत्य (**रपेम**) बोलते हैं हम (**ऋता**) सत्य (**वदन्तः**) बोलते हुए भी यदि हमने पूर्व कुछ नहीं किया ऐसा कहें । (**गन्धर्वः**) गृहस्थ पुरुष (**अप्सु**) वीर्य आदि में पूर्ण हो, (**योषा च**) और स्त्री (**अप्या**) वीर्यादि से सशक्त हो (**सा**) वह स्त्री ही (**नः**) हम गृहस्थों में (**नाभिः**) आधार वा आश्रय है, (**तत्**) वह यह (**नौ**) हम दोनों में (**परमम्**) अत्यन्त (**जामि**) अन्योन्य विपरीत दोष है ।

भावार्थः—पति कहता है कि सन्तानोत्पत्ति के लिए क्या कुछ है जो

Scanned by CamScanner

हमने पहले नहीं किया। यदि हम कहें कि नहीं किया है तो सत्य बोलने वाले हम वस्तुतः झूठ बोलेंगे। गृहस्थ पुरुष वीर्य आदि में पूर्ण होना चाहिए और स्त्री भी वीर्यवती होनी चाहिए। तभी सन्तान होती है। स्त्री वस्तुतः सन्तान का आधार है। परन्तु हम दोनों में यह परम दोष है कि एक सन्तान-उत्पत्ति के योग्य है और दूसरा नपुंसक है ।।४।।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ।।५।।

पदार्थः—पत्नी कहती है—(**विश्वरूपः**) समस्त रूपों को देने वाले (**सविता**) सबके उत्पादक (**जनिता**) जनक (**देवः**) देव (**त्वष्टा**) परमेश्वर ने (**गर्भे नु**) गर्भधारण के विषय में अथवा अपने-अपने माता के गर्भ में रहने की अवस्था में ही (**नौ**) हम दोनों को (**दम्पती**) पति-पत्नी (**कः**) बनाया (**अस्य**) इसके (**व्रतानि**) नियमों का सभी लोग (**नकिः**) नहीं (**प्रमिनन्ति**) नाश करते हैं (**नौ**) हमारे (**अस्य**) इस पति-पत्नी भाव को (**पृथिवी**) पृथिवी (**उत**) और (**द्यौः**) सूर्य भी (**वेद**) प्राप्त होते हैं अर्थात् अनुकरण करते हैं।

भावार्थः—सबके रचयिता और सृष्टि-कर्त्ता भगवान् ने गर्भ-धारण के लिए ही हम दोनों को पति-पत्नी बनाया है। उसका यह नियम अटल है और इस भाव का अनुकरण पृथिवी और सूर्य भी करते हैं। वे भी पिता और माता के रूप में व्यवहृत होते हैं ।।५।।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्र वोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ।।६।।

पदार्थः—पति कहता है (**अस्य**) इस (**प्रथमस्य**) प्रथम वा पूर्व (**अह्नः**) दिन की बात को (**कः**) कौन (**वेद**) जानता है, गर्भ धारण होने वा न होने के इस मूल कारण को (**कः**) कौन (**ईम् ददर्श**) निश्चय देखता है, (**इह**) इस विषय में (**कः**) कौन (**प्रवोचत्**) बतला सकता है, (**मित्रस्य**) सबके मित्र (**वरुणस्य**) वरणीय भगवान् का (**धाम**) प्रताप (**बृहद्**) बहुत बड़ा है, (**आहनः**) हे कटाक्ष करने वाली स्त्री (**नॄन्**) मनुष्यों का (**वीच्य**) विवेक करके भी (**कद् उ**) कौन निश्चय से (**ब्रवः**) क्या कह सकता है।

भावार्थः—हे पत्नि ! पूर्व के समय की जो बातें कहती हो उसे कौन जानता है, सन्तान होगी ही वा न होगी—इसके मूल कारण को भी किसने

Scanned by CamScanner

देखा है और कौन इस विषय में निश्चय से कुछ कह सकता है। सबके मित्र पूज्य परमेश्वर का प्रताप महान् है अतः कटाक्ष करने वाली मत बनो ! अरे मनुष्यों का ज्ञान से विवेचन करके भी कोई कुछ निश्चित रूप में उनके विषय में नहीं कह सकता है ॥६॥

यमस्य मा यम्यं१ काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

पदार्थः—पत्नी कहती है (**मा**) मुझ (**यम्यम्**) यमी=पत्नी को (**समाने**) एक साथ (**योनौ**) स्थान में (**सहशयेय्याय**) साथ सोने के लिए (**यमस्य**) पति का (**कामः**) काम (**आ अगन्**) प्राप्त हो, (**इव**) जैसे (**जाया**) दूसरी स्त्री (**पत्ये**) अपने पति के लिए करती है वैसे मैं भी (**पत्ये**) तुझ पति के लिए (**तन्वम्**) अपने देह को (**रिरिच्याम्**) प्रदान करूं, हम (**रथ्या**) रथसम्बन्धी (**चक्रा**) चक्रों के (**इव**) समान (**विवृहेव चित्**) गृहस्थ धर्म के भार को वहन करें ।

भावार्थः—पत्नी कहती है कि एक स्थान में साथ सोने के लिए मुझे पति का समागम सम्बन्धी काम प्राप्त हो । जैसे अन्य स्त्रियां अपने पतियों को अपना शरीर प्रदान करती हैं वैसे ही अपने तुझ पति को अपना अङ्ग प्रदान करूं और हम दोनों इस गृहस्थाश्रम के भार को रथ के चक्रों के समान वहन करें ॥७॥

न तिष्ठन्ति न नि मिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति ।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन वि वृह रथ्येव चक्रा ॥८॥

पदार्थः—पति कहता है—(**इह**) इस लोक में (**ये**) जो (**स्पशः**) गुप्तचर के समान देखने वाले (**देवानाम्**) देवों के (**स्पशः**) द्रष्टा ये दिन और रात्रियें (**चरन्ति**) व्यतीत हो रहे हैं वे किसी के लिए (**तिष्ठन्ति**) खड़े रहते (**न**) नहीं, (**न**) न वे (**निमिषन्ति**) पल भर भी झपकते हैं, (**आहनः**) हे आक्षेपकारिणी पत्नी ! (**मत्**) मुझ से (**अन्येन**) दूसरे पुरुष के साथ (**तूयम्**) शीघ्र (**याहि**) सम्बन्ध कर और (**तेन**) उसके साथ (**रथ्यां**) रथसम्बन्धी (**चक्रा**) चक्रों के (**इव**) समान (**वि वह**) गृहस्थ धर्म का भार वहन कर ।

भावार्थः—पति कहता है कि हे प्रिये ! इस संसार में देवों के चारदृश की तरह कार्य कर रहे रात्रि और दिन किसी के लिए न रुके रहते हैं और

Scanned by CamScanner

न क्षणभर भी झपकते हैं । निरन्तर चलते रहते हैं अतः उन्हें गंवाना ठीक नहीं । तू अन्य पुरुष को शीघ्र प्राप्त हो और रथ के पहिए के समान गृहस्थाश्रम के धर्म का वहन कर ॥८॥

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात् ।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥९॥

पदार्थः---पत्नी कहती है कि—प्रभु (**रात्रिभिः**) कुछ रात्रियों और (**अहभिः**) कुछ दिनों के साथ (**दशस्येत्**) मेरे मनोरथ को पूरा करे, (**सूर्यस्य**) सूर्य का (**चक्षुः**) तेज (**मुहुः**) फिर से (**उन्मिमीयात्**) उदय को प्राप्त हो, (**दिवा**) द्युलोक और (**पृथिव्या**) पृथिवी के समान (**सबन्धू**) सहगत हुए (**मिथुना**) हम दोनों का जोड़ा रहे और (**यमी**) पत्नी (**यमस्य**) पति से स्थापित (**बिभृयात्**) गर्भ को धारण करे यही (**अजामि**) अच्छा है ।

भावार्थः—रात्रि और दिन के साथ मेरा मनोरथ पूर्ण हो, सूर्य का प्रकाश पुनः उदय को प्राप्त हो, द्युलोक और पृथिवी के समान जोड़ा हमारा रहे और मेरे पति द्वारा ही मुझे गर्भ रहे । यही ठीक है । ऐसा पत्नी कहती है ॥९॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥१०॥

पदार्थः—पति कहता है—(**घा**) निश्चय ही (**ता**) वे (**उत्तरा**) उत्तर अर्थात् [नियोग सम्बन्धी बाद के] (**युगानि**) काल भी (**आ गच्छात्**) प्राप्त होते हैं (**यत्र**), जिनमें (**जामयः**) पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ स्त्रियां (**अजामि**) नियोग कर्म से (**कृण्वन्**) सन्तान उत्पन्न करती हैं, (**सुभगे**) हे सौभाग्यशालिनि! तू (**वृषभाय**) वीर्यवान् पुरुष के (**बाहुम्**) बाहु का (**उप बर्बृहि**) सहारा ले और इस प्रकार (**मत्**) सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ नपुंसक पति से (**अन्यम्**) अतिरिक्त (**पतिम्**) पति की (**इच्छस्व**) इच्छा कर ।

भावार्थः—नपुंसक पति कहता है कि हे देवि ! विवाह के अनन्तर पति को सन्तान उत्पत्ति में असमर्थ पाने वाली सन्तति-उत्पत्ति में समर्थ स्त्रियां उस नपुंसक पति को छोड़ कर अन्य पति को नियुक्त पति स्वीकार कर सकती हैं । अतः मुझ से अन्य पति की इच्छा कर ॥१०॥

Scanned by CamScanner

किं भ्रातासद्यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वे३तद्रपामि तन्वा मे तन्वं१ सं पिपृग्धि ॥११॥

पदार्थः—पत्नी कहती है—(**किम्**) क्या तू (**भ्राता**) भाई (**असत्**) हो गया है (**यत्**) कि (**अनाथम्**) पतिवत् नहीं (**भवाति**) हो रहा है (**किम् उ**) क्या मैं (**स्वसा**) तुम्हारी बहन हूं (**यत्**) कि (**निर्ऋतिः**) दुःखी हो (**विगच्छात्**) चली जाऊं, मैं (**काममूता**) काम से मूर्च्छित हुई (**एतत्**) यह(**बह्वे**) बहुत कुछ (**रपामि**) बक रही हूँ, तू (**मे**) मेरे (**तन्वा**) शरीर से (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**संपिपृग्धि**) संगत कर ।

भावार्थः—पत्नी कहती है कि क्या तुम पति न होकर भाई हो जो पति के कार्य को नहीं करना चाहते, क्या मैं आपकी पत्नी न होकर बहन हूं जो इस प्रकार दुःखी होकर अन्यत्र चली जाऊँ ? यह सब कुछ मैं काम से मूर्छित होकर कह रही हूँ । अरे ! मेरे शरीर से अपने शरीर को संगत कर ॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्वं१ सं पपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

पदार्थः—पति कहता है कि (**वा उ**) यही विकल्प ठीक है कि जब मैंने असमर्थ हो तुझे दूसरे पति से नियोग की आज्ञा दे दी—तो तू बहन समान हो गई और मैं भाई समान हो गया । अब (**ते**) तेरे (**तन्वा**) शरीर से (**तन्वम्**) अपने शरीर को (**न**) नहीं (**संपपृच्याम्**) संगत करूं, यही ठीक है क्योंकि (**पापम्**) पापी (**आहुः**) कहते हैं, विद्वान् लोग और समाज के लोग उसको (**यः**) जो (**स्वसारम्**) इस प्रकार बहन स्वीकार किये के साथ (**निगच्छात्**) संगम करे, (**सुभगे**) हे सौभाग्यवति ! तू (**मत्**) मुझ से (**अन्येन**) अन्य के साथ (**प्रमुदः**) आमोद-प्रमोद का (**कल्पयस्व**) अनुभव कर । (**ते**) तेरा (**भ्राता**) भरण पोषण मात्र करने वाला भाई बन गया यह व्यक्ति (**एतत्**) इस समागम को (**न**) नहीं (**वष्टि**) चाहता है ।

भावार्थः—पति कहता है—कि जब असमर्थ पति पत्नी को नियोग की आज्ञा दे देता है तब स्वयं भ्राता हो जाता है अतः उसके साथ पुनः समागम करने वाले को समाज और राष्ट्र के जन पापी कहते हैं । इसलिए अन्य पति के साथ समागम कर । यह भाई हुआ पति अब तेरे साथ समागम कर्म नहीं करना चाहता ॥१२॥

Scanned by CamScanner

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम ।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ॥१३॥

पदार्थः—पत्नी पति की परीक्षा लेने के लिए पुनः ताना देकर कहती है—(**यम**) हे पते ! तू (**बत**) खेद है कि (**बतः**) निर्बल वा असमर्थ है, मैं (**ते**) तेरे (**मनः**) मन (**च**) और (**हृदयम्**) हृदय को (**नैव**) नहीं ही (**अविदाम्**) जानने में समर्थ हो रही हूँ । क्या मुझे अन्य पति की इच्छा करने को कहकर यह चाहता है कि (**किल**) निश्चय (**युक्तम्**) समर्थ (**त्वा**) तुझ से (**अन्या**) कोई अन्य स्त्री (**वृक्षम्**) वृक्ष को (**लिबुजा इव**) लता के समान (**परिष्वजाते**) आलिंगन करे ।

भावार्थः—पत्नी ताना देती हुई परीक्षा करने के लिए नियोग की आज्ञा देने वाले पति को कहती है—कि हे पति देव ! खेद है कि तुम निर्बल और असमर्थ हो । तुम्हारे मन और हृदय को समझने में मैं असमर्थ हूं । क्या मुझे अन्य नियुक्त पति की आज्ञा देकर चाहते हो कि दूसरी कोई स्त्री वृक्ष को लता के समान तुम्हारा आलिंगन करे ॥१३॥

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् ।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥१४॥

पदार्थः—पति कहता है—(**यमि**) हे पत्नी ! (**त्वम्**) तू (**अन्यम्**) अन्य पति का (**उ**) विना सन्देह (**वृक्षम्**) वृक्ष को (**लिबुजा इव**) लता के समान आलिंगन कर । (**अन्यः**) अन्य नियुक्त पति (**उ**) निश्चय ही (**त्वाम्**) तुम्हारा (**परिष्वजाते**) आलिंगन करे, (**त्वम्**) तू (**वा**) सर्वथा (**तस्य**) उसके (**मनः**) मन को (**इच्छ**) चाहे और (**सः**) वह (**वा**) निश्चय ही (**तव**) तेरे मन को चाहे (**अध**) और संशय आदि से दूर रहकर (**सुभद्राम्**) कल्याणकारिणी (**मतिम्**) भावना और बुद्धि को (**कृणुष्व**) अपना अथवा रख ।

भावार्थः—असमर्थ पति अन्तिम आज्ञा देता है । हे देवि लता जैसे वृक्ष का आलिंगन करती है वैसे ही तू अन्य पुरुष अर्थात् नियुक्त पति का आलिंगन कर, उसका मन तेरा हो और तेरा मन उसका हो । तू संशय आदि से रहित होकर कल्याणकारिणी मति को धारण कर ॥१४॥

नोटः—यह सारा सूक्त नियोग का है । इसमें भाई-बहन के विवाह की कल्पना भ्रान्त धारणा है और कोरी अनभिज्ञता है ।

यह दशम मण्डल में दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ११

ऋषिः—१—९ हविर्धान आंगिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृज्जगती । ३—५ विराड्जगती । ७—९ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—६ निषादः । ७—९ धैवतः ॥

वृषा वृष्णे दुदुहे दोहसा दिवः पयांसि यह्वो अदितेरदाभ्यः ।
विश्वं स वेद वरुणो यथा धिया स यज्ञियो यजतु यज्ञियाँ ऋतून् ॥१॥

पदार्थः—(**वृषा**) वर्षा का कारणभूत (**यह्वः**) महान् (**अदाभ्यः**) न दबाया जाने वाला अग्नि (**अदितेः**) पृथिवी पर (**वृष्णे**) घी आदि की यज्ञ में वर्षा करने वाले व्यक्ति के लिए (**दोहसा**) दोहन के द्वारा (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**पयांसि**) जलों को (**दुदुहे**) दुहता है अर्थात् वृष्टि कराता है, (**यथा**) जिस प्रकार (**सः**) वह (**वरुणः**) सूर्य (**धिया**) अपने कार्य क्रिया से (**विश्वम्**) समस्त विश्व को (**वेद**) प्राप्त होता है उसी प्रकार (**सः**) वह यह (**यज्ञियः**) जल का कारणभूत अग्नि (**यज्ञियान्**) यज्ञ के योग्य (**ऋतून्**) ऋतुओं की (**यजतु**) संगति लगाता है ।

भावार्थः—वर्षा का कारणभूत महान् शक्तिशाली अग्नि पृथिवी पर यजमान के लिए अन्तरिक्ष को दुहकर वृष्टि कराता है । जैसे सूर्य अपनी क्रियाओं से समस्त विश्व को प्राप्त है वैसे ही यह जल का कारण अग्नि भी समस्त यज्ञयोग्य ऋतुओं की संगति लगाता है ॥१॥

रपद्गन्धर्वीरप्या च योषणा नदस्य नादे परि पातु मे मनः ।
इष्टस्य मध्ये अदितिर्नि धातु नो भ्राता नो ज्येष्ठः प्रथमो वि वोचति ॥२॥

पदार्थः—(**गन्धर्वी**) मेघ में धारण की जाने वाली (**च**) और (**अप्या**) जलीय (**योषणा**) विद्युत् (**रपद्**) गर्जती हुई (**नदस्य**) गर्जनशील मेघ के (**नादे**) गर्जन में (**मे**) मुझ मनुष्य के (**मनः**) मन की (**परि पातु**) सब ओर से रक्षा करे अर्थात् डर न लगे, (**अदितिः**) अग्नि (**नः**) हमें (**इष्टस्य**) यज्ञ आदि इष्ट कर्म के (**मध्ये**) मध्य में (**निधातु**) लगाता है, (**नः**) हम में से (**ज्येष्ठः**) सबसे बड़ा (**प्रथमः**) श्रेष्ठ भ्राता (**विवोचति**) विशेष रूप से अग्नि के विषय में बताता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मेघ सम्बन्धी जलीय योषा=विद्युत् गर्जती हुई मेघगर्जना में मेरे मन को ठीक रखे, विक्षुब्ध न करे। अग्नि हमें यज्ञ आदि इष्ट कार्यों में बीच में लगाता है और हम में से जो बड़ा और श्रेष्ठ है वह इसके विषय में अधिक ज्ञान देता है ॥२॥

सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती।

यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ॥३॥

पदार्थः—(**यद्**) जब (**उषताम्**) कामना करने वालों में से लोग (**क्रतुम् अनु**) प्रार्थनोपासना के अनन्तर (**होतारम्**) हवन योग्य (**उशन्तम्**) हवि आदि चाहने वाले (**ईम्**) इस (**अग्निम्**) अग्नि को (**विदथाय**) यज्ञार्थ (**जीजनन्**) उत्पन्न करते हैं तब (**सो चित्**) वही प्रसिद्ध (**क्षुमती**) शब्दयुक्त (**यशस्वती**) यशवाली (**स्वर्वती**) सूर्य को लिए हुये (**भद्रा**) कल्याणमयी (**उषा**) उषा (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**नु**) जल्दी ही (**उवास**) उदित होती है।

भावार्थः—जब स्तुति आदि के अनन्तर यज्ञार्थ लोग हवि को देने योग्य अग्नि को जलाते हैं तो सूर्य को लिए हुए यशस्विनी उषा का उदय होता है। अर्थात् उषःकाल प्रार्थनोपासना यज्ञ आदि के लिए होता है ॥३॥

अध त्यं द्रप्सं विभ्वं विचक्षणं विराभरदिषितः श्येनो अध्वरे।

यदी विशो वृणते दस्ममार्या अग्निं होतारमध धीरजायत ॥४॥

पदार्थः—(**अध**) अनन्तर (**विः**) गतिशील (**श्येनः**) वायु अथवा अग्नि का सोमात्मक तेजस्वीरूप विद्युत् (**अध्वरे**) इस संसार-यज्ञ में (**इषितः**) अग्नि से प्रेरित (**विचक्षणम्**) प्रकाशमान (**विभ्वम्**) महान् (**त्यम्**) उस (**द्रप्सम्**) सोमात्मक शक्ति को (**आभरद्**) हरण कर लेता है। पुनः (**यदि**) यदि (**आर्या**) आर्य (**विशः**) प्रजाएं (**होतारम्**) हवि आदि के ग्रहण योग्य (**दस्म**) दर्शनीय (**अग्निम्**) अग्नि को (**वृणते**) प्राप्त करते हैं तब (**धीः**) यज्ञ आदि कार्य सम्पन्न होते हैं।

भावार्थः—अग्नि का एक भाग सोमात्मक है वही द्रप्स है, उसके विना अग्नि यज्ञ आदि के कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ नहीं रहता। जब अग्नि श्यायमान होता है तब वह श्येन कहा जाता है। यही वायु का रूप है। वह सोमात्मक अग्नि को जब द्युलोक में पहुंचा देता है तब होता अग्नि

Scanned by CamScanner

को आर्य प्रजा प्राप्त करती है और यज्ञ आदि कार्य होते है। प्रकाशशील पदार्थ सूर्य आदि आर्य प्रजा कहे जाते हैं ॥४॥

सदासि रण्वो यवसेव पुष्यते होत्राभिरग्ने मनुषः स्वध्वरः ।
विप्रस्य वा यच्छशमान उक्थ्यं वाजं ससवाँ उपयासि भूरिभिः ॥५॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**पुष्यते**) पुष्टि चाहने वाले के लिए (**यवसा इव**) घास तृण आदि की भांति (**सदा**) सदा (**रण्वः**) रमणीय (**असि**) होता है, (**मनुषः**) मनुष्य के (**होत्राभिः**) यज्ञकर्मों से यह (**स्वध्वरः**) उत्तम यज्ञ वाला होता है, (**यत्**) जब (**विप्रस्य**) मेधावी (**वा**) अथवा यजमान के (**उक्थ्यम्**) स्तुति को (**शशमानः**) प्राप्त करता हुआ (**वाजम्**) अन्नादि हवि (**ससवान्**) ग्रहण एवं विभक्त करता हुआ (**भूरिभिः**) बहुत से देवों के साथ (**उपयासि**) उपस्थित होता है।

भावार्थः—जिस प्रकार पशु के लिए घास आदि तृण अच्छे दिखाई पड़ते हैं उसी प्रकार यह अग्नि रमणीय दिखाई पड़ता है। वह मनुष्य के यज्ञ आदि कर्मों से स्वध्वर है, मन्त्रमय स्तुति और यज्ञान्न आदि को प्राप्त कर अग्नि विविध यज्ञदेवों के साथ यज्ञ में विद्यमान होता है ॥५॥

उदीरय पितरा जार आ भगमियक्षति हर्यतो हृत्त इष्यति ।
विवक्ति वह्निः स्वपस्यते मखस्तविष्यते असुरो वेपते मती ॥६॥

पदार्थः—(**जारः**) रात्रि के नक्षत्र आदि की दीप्ति का जीर्ण करने वाला आदित्य (**आ**) जैसे द्यु और पृथिवी के प्रति (**भगम्**) प्रकाश को फैलाता है उसी प्रकार अग्नि भी अपनी ज्योति को (**पितरा**) द्यु और पृथिवी पर्यन्त (**उदीरय**) बढ़ाता है, (**हर्यतः**) जिन जगत् की दैवी शक्तियों का यज्ञभाग से सम्बन्ध है उनके प्रति यजमान (**इयक्षति**) यज्ञ करता है, (**हृतः**) हृदय से (**इष्यति**) उन्हें जानने की इच्छा करता है और (**विवक्ति**) उनके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन करता है, (**वह्निः**) अग्नि (**स्वपस्यते**) अपने कार्य करता हैं, (**मखः**) यज्ञ (**तविष्यते**) वृद्धि को प्राप्त होता है और (**असुरः**) दुष्ट मनुष्य (**मती**) बुद्धि से (**वेपते**) कम्पायमान होता है।

भावार्थः—जैसे सूर्य अपने प्रकाश से द्यु और पृथिवी को प्राप्त होता है और रात्रि के नक्षत्रों की ज्योति को दबा लेता है उसी प्रकार अग्नि इन दोनों लोकों में अपने तेज को बढ़ाता है। यजमान यज्ञभागीय जगत् की

Scanned by CamScanner

शक्तियों (देवों) के प्रति यज्ञ करता है, हृदय से उनको जानने का प्रयत्न करता है और उनके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन करता है। अग्नि अपना कार्य करता है, यज्ञ बढ़ता है और दुष्ट व्यक्ति की बुद्धि कम्पित होती है ॥६॥

यस्तें अग्ने सुमतिं मर्तो अक्षत्सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।

इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान्भूषति द्यून् ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**मर्तः**) मनुष्य (**अग्ने**) अग्नि के (**ते**) तत्सम्बन्धी (**सुमतिम्**) ज्ञान को (**अक्षत्**) प्राप्त कर लेता है (**सः**) वह (**सहसः**) शक्ति के (**सूनो**) पुत्र अत्यन्त शक्तिशाली है अग्नि, ऐसा वह (**अति प्र शृण्वे**) अधिकतर सुनता और जानता है। (**सः**) वह (**इषम्**) ज्ञान को और अन्न को (**दधानः**) धारण करता हुआ, (**अश्वैः**) घोड़ों से (**वहमानः**) ले जाया जाता हुआ (**द्युमान्**) प्रकाशमान, ज्ञानवान् (**अमवान्**) बलवान् (**द्यून्**) सब दिन (**आ भूषति**) होता है।

भावार्थः—जो मनुष्य शक्ति के पुंज अग्नि के ज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह उसके विषय में विशेष जानकार हो जाता है और ज्ञान, अन्न और अश्व आदि को प्राप्त कर सब दिन ज्ञान से प्रकाशमान और बलवान् होता है ॥७॥

यदग्न एषा समितिर्भवाति देवी देवेषु यजता यजत्र ।

रत्ना च यद्विभजासि स्वधावो भागं नो अत्र वसुमन्तं वीतात् ॥८॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यजत्र**) यष्टव्य है, (**यत्**) जब (**यजता**) यजनीय (**देवेषु**) देवों में (**एषा**) यह (**देवी**) दिव्य (**समितिः**) समिति= अधिक देवों का संमिलन (**भवाति**) हो जाता है (**स्वधावः**) अन्न आदि को यज्ञ में ग्रहण करने वाला यह अग्नि (**यद्**) जब (**रत्ना**) बहुमूल्य पदार्थों को (**च**) भी (**विभाजासि**) समस्त देवों में विभाजित करता है (**अत्र**) तब (**वसुमन्तम्**) बहुमूल्य (**नः**) हमारे द्वारा दिये गये (**भागम्**) भाग को भी (**वीतात्**) सब तक पहुँचाता है।

भावार्थः—अग्नि यज्ञ में यष्टव्य है। जब यज्ञ में बहुत से यष्टव्य देवों का दिव्य समागम हो जाता है और अग्नि उनके भाग को सबको देता है तब हमारा दिया भाग भी वह उन सब तक पहुंचाता है। वह इस भाग के पहुंचाने में कोई भेदभाव नहीं रखता है ॥८॥

Scanned by CamScanner

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥६॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**नः**) हमारे (**सधस्थे**) सर्वसाधारण के लिए खुले हुए स्थान वाले (**सदने**) यज्ञगृह में (**श्रुधि**) स्तुति के सुनने-सुनाने का साधन बनता है (**अमृतस्य**) जल के (**द्रवित्नुम्**) बरसाने वाले (**रथम्**) प्रकाश चक्र को (**युक्ष्व**) युक्त करता है। (**देव पुत्रे**) प्रकाश के पुत्र (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी में (**नः**) हमारे आहुति में दिये भाग को (**आ वह**) पहुँचाता है, (**देवानाम्**) देवों में कोई भी (**माकिः अप भूः**) अपमानित न हो (**इह**) यहां पर यह (**स्याः**) सदा रहे।

भावार्थः—अग्नि हमारे यज्ञगृह में स्तुति आदि के सुनने-सुनाने का साधन बनता है, वृष्टि के लिए प्रकाश चक्र को वहन करता है, प्रकाश के पुत्र द्यु और पृथिवी में यज्ञ में दिये गये पदार्थों के तत्त्व को पहुंचाता है। कोई भी देव अपने भाग से वंचित नहीं होता और ऐसा यह अग्नि सदा ही हमारे यज्ञगृह में बना रहे ॥६॥

यह दशम मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२

ऋषिः—१—९ हविर्धान आङ्गिः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१, ३, विराट्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

द्यावा ह क्षामा प्रथमे ऋतेनाभिश्रावे भवतः सत्यवाचा ।
देवो यन्मर्तान्यजथाय कृण्वन्त्सीदद्धोता प्रत्यङ् स्वमसुं यन् ॥१॥

पदार्थः—(**प्रथमे**) प्रधान भूत (**द्यावा क्षामा**) द्यु और पृथिवी लोक (**ह**) निश्चय ही (**अभिश्रावे**) यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों के शब्द में (**ऋतेन**) यज्ञ द्वारा (**सत्य वाचा**) सत्य वाणी से युक्त हुए (**भवतः**) हो जाते है, (**यत्**) जब (**देवः**) दिव्य अग्नि (**होता**) हवन सामग्री को ग्रहण करने वाला होता हैं तब (**यजथाय**) यज्ञ करने के लिए (**मर्तान्**) मनुष्यों को (**कृण्वन्**) प्रेरित करता

Scanned by CamScanner

हुआ (प्रत्यङ्) प्रत्यक्ष ही (स्वम्) अपनी (असुम्) प्राणशक्ति को (यन्) प्राप्त होकर (सीदत्) वेदि में स्थित होता है ।

भावार्थः—जब यज्ञ होता है तब मन्त्रों की ध्वनि से द्यु और पृथिवी भी यज्ञ द्वारा सत्यवाणी से गूंज उठते हैं । अग्नि मनुष्य को यज्ञ के लिए प्रेरित करता है और अपनी शक्ति को प्राप्त कर वेदि में स्थान लेता है ।।१।।

देवो देवान्परिभूर्ऋतेन वहा नो हव्यं प्रथमश्चिकित्वान् ।
धूमकेतुः समिधा भाऋजीको मन्द्रो होता नित्यो वाचा यजीयान् ॥२॥

पदार्थः—(परिभूः) महाशक्ति, (प्रथमः) मुख्य (चिकित्वान्) सबसे जाना जाने योग्य, (धूमकेतुः) धुवें से अनुमानित होने वाला (समिधा) समिधा से (भाऋजीकः) उत्तम दीप्ति वाला (मन्द्रः) प्रशंसनीय (होता) समस्त पदार्थों का धारक (नित्यः) सदा रहने वाला (वाचा) मन्त्र वाणी सहित (यजीयान्) यज्ञ के संपादन का साधन (देवः) अग्नि (ऋतेन) सत्य नियम से (नः) हमारे (हव्यम्) हव्य पदार्थों को (देवान्) देवों के प्रति (वह) ले जाता है ।

भावार्थः—यज्ञ में समिधा से दीप्त, धूम से ज्ञात होने वाला शक्तिशाली अग्नि मन्त्र के साथ दिये गये हव्य पदार्थ को ग्रहण कर देवों तक पहुंचाता है ॥२॥

स्वावृग्देवस्यामृतं यदी गोरतो जातासो धारयन्त उर्वी ।
विश्वे देवा अनु तत्ते यजुर्गुर्दुहे यदेनी दिव्यं घृतं वाः ॥३॥

पदार्थः—(देवस्य) प्रकाशमान अग्नि का (स्वावृक्) स्वभूत (अमृतम्) जल (यदि) जब उत्पन्न होता है तब (अतः) इस (गोः) उदक से (जातासः) उत्पन्न शक्ति और ओषधियां आदि (उर्वी) द्यु और पृथिवी लोक को (धारयन्ते) अपने प्रभाव से पूरित करते हैं, (विश्वेदेवाः) सभी विद्वान् (ते) इस अग्नि के (तत्) इस (यजुः) दान का (अनुगुः) गुण गान करते हैं (यत्) जो यह (एनी) श्वेत दीप्ति (दिव्यम्) दिव्य द्युलोक में उत्पन्न (घृतम्) तेज को (क्षरत्) गिराता है वही यह (वाः) वृष्टिजल का (दुहे) दोहनन कार्य है ।

भावार्थः—अग्नि का स्वभूत यज्ञीय पदार्थ जल के रूप में आता है उस जल से उत्पन्न ओषधि और शक्ति को द्यु और पृथिवीलोकस्थ पदार्थ

Scanned by CamScanner

प्राप्त करते हैं। अग्नि के इस वृष्टिरूप दान कर्म की विद्वान् लोग प्रशंसा करते हैं। उसका जो यह वृष्टि दान है यही वस्तुतः आकाश से घृत का क्षरण है ॥३॥

अर्चामि वां वर्धायापो घृतस्नू द्यावाभूमी शृणुतं रोदसी मे ।
अहा यद् द्यावोऽसुनीतिमयन्मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम् ॥४॥

पदार्थः—(**अपः**) लोकों की (**वर्धाय**) वृद्धि के लिये (**घृतस्नू**) वृष्टि के जल के दाता (**वाम्**) दोनों (**द्यावा भूमी**) द्यु और भूमि की (**अर्चामि**) मन्त्रों से प्रशस्ति करता हूँ (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी (**मे**) मेरे (**हवम्**) शब्द को (**शृणुतम्**) सब तक सुनाने के साधन बनें (**यत्**) जब (**अहा**) सायं प्रातः के यज्ञ कर्म में (**द्यावः**) विद्वान् ऋत्विज् (**असुनीतिम्**) ज्ञानयुक्त कर्म को (**अयन्**) प्राप्त करते हैं तब (**अत्र**) इस कर्म में (**पितरा**) माता-पिता भी (**नः**) हमें (**शिशीताम्**) शक्ति देते हैं।

भावार्थः—लोकों की अभिवृद्धि के लिए जल के दाता द्यु और पृथिवी की मैं मन्त्रों से प्रशंसा करता हूं। वे मेरे शब्द को सब तक सुनाने के साधन बनें। सायं प्रातः होने वाले यज्ञ में जब ऋत्विग् ज्ञानयुक्त कर्म करते हैं तब माता-पिता भी इसमें शक्ति देते हैं ॥४॥

किं स्विन्नो राजा जगृहे कदस्याति व्रतं चकृमा को वि वेद ।
मित्रश्चिद्धि ष्मा जुहुराणो देवाञ्छ्लोको न यातामपि वाजो अस्ति ॥५॥

पदार्थः—(**किं स्वित्**) तो क्या (**राजा**) दीप्तिमान् अग्नि (**नः**) हमारे हवि आदि को (**जगृहे**) ग्रहण करता है, (**कत्**) अथवा क्या (**अस्य**) अग्नि के (**व्रतम्**) कार्य वा नियम का हम (**अति चकृम**) अतिक्रमण करते हैं ? (**कः**) कौन (**विवेद**) इस रहस्य को जानता है। (**हि स्म**) अवश्य (**मित्रः**) मित्रभूत यह अग्नि (**जुहुराणः चिद्**) यदि विपरीत रूप से भी हवि से सेवित है तो (**देवान्**) देवों को (**याताम्**) हमारा हव्य पहुँचायेगा, (**न**) संप्रति (**श्लोकः**) स्तुति और (**वाजः**) हवि आदि भी देवों के प्रति जाते हैं।

भावार्थः—क्या अग्नि यज्ञ में हवि को ग्रहण करता है ? यदि नहीं तो क्या हम इस अग्नि के प्रति कर्म का अतिक्रमण करते हैं ? इस रहस्य को कौन जानता है ? परन्तु मित्र तो यदि गलती से बुलाया जावे तब भी मित्र है अतः मित्रभूत अग्नि के लिए हमने कोई भूल से अतिक्रमण भी कर

Scanned by CamScanner

दिया है तो वह मित्रवत् ही बर्तेगा । हमारे हव्य और स्तुतियां सभी उचित देवों तक अग्नि द्वारा निश्चय पहुंचाये जाते हैं ॥५॥

दुर्मन्त्वत्रामृतस्य नाम सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति ।

यमस्य यो मनवते सुमन्त्वग्ने तमृष्व पाह्यप्रयुच्छन् ॥६॥

पदार्थः—(**यत्**) जो यह (**सलक्ष्मा**) समान गुणों वाली=गुणों की साम्यावस्था वाली प्रकृति (**विषु रूपा**) विविध रूपों वाली (**भवाति**) होती है, इस विषय में (**अमृतस्य**) अमर प्रभु का (**नाम**) प्रताप (**दुर्मन्तु**) गहन है, (**यः**) जो (**यमस्य**) नियन्त्रक शक्ति के (**सुमन्तु**) ज्ञानयोग्य गुण को (**मनवते**) जानता है (**तम**) उसकी (**ऋष्व**) महान् (**अग्ने**) अग्नि (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर (**पाहि**) रक्षा करता है ।

भावार्थः—साम्यावस्था में विद्यमान प्रकृति रूपी जगत् का कारण विविध कार्यरूपों को धारण करता है । इस विषय में अजर-अमर भगवान् का प्रभाव व कार्य गहन है । जो नियन्त्रक शक्ति के ज्ञानयोग्य गुण को जानता है, महान् अग्नि उसके लिए रक्षा का साधन बनता है ॥६॥

यस्मिन्देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।

सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्य१क्तून्परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ॥७॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस अग्नि के होने पर (**देवाः**) विश्व की दिव्य शक्तियां (**विदथे**) जगत् में (**मादयन्ते**) विचरण करती हैं (**विवस्वतः**) वायु के (**सदने**) स्थान आकाश में (**धारयन्ते**) अपने कार्य कलापों को धारण करती हैं, (**सूर्ये**) सूर्य में (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**अदधुः**) धारण करती हैं, (**मासि**) चन्द्रमा में (**अक्तून्**) रात्रि को स्थापित करती हैं और सूर्य चन्द्र (**अजस्रा**) निरन्तर (**द्योतनिम्**) दीप्ति (**परिचरतः**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—यह वह अग्नि है जिसके होने पर ही जगत् की दिव्य शक्तियां जगत् में अपने-अपने कार्यों को करती हैं, वायु के स्थान आकाश में अपने कार्यकलापों को करती हैं, सूर्य में प्रकाश और चन्द्रमा में रात्रि स्थापित करती हैं और सूर्य तथा चन्द्र निरन्तर दीप्ति प्राप्त करते हैं ॥७॥

यस्मिन्देवा मन्मनि सञ्चरन्त्यपीच्ये३ न वयमस्य विद्म ।

मित्रो नो अत्रादितिरनागान्त्सविता देवो वरुणाय वोचत् ॥८॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस अग्नि के (**मन्मनि**) शक्तिशाली रहने पर (**देवा**) विश्व की दिव्य शक्तियां (**संचरन्ति**) अपनी गति और क्रिया का संचार करती हैं, (**अस्य**) इस उस अग्नि के (**अपीच्ये**) अन्तर्हित में स्थित तत्त्व को (**वयम्**) हम (**न**) नहीं (**विद्म**) जानते हैं, (**अत्र**) इस विषय में (**मित्र**) वायु (**अदिति**) पृथिवी, (**सविता**) सूर्य (**देवः**) देव (**वरुणाय**) वरुण=अग्नि के रहस्य को (**अनागान्**) अपराधरहित (**नः**) हम लोगों को (**वोचत्**) प्रकट करते हैं।

भावार्थः—इस अग्नि के होने पर ही विश्व की शक्तियां अपनी गति और क्रिया का संचार करती हैं,इस अग्नि में छिपे तत्त्व को हम नहीं जानते हैं। इस विषय में वायु, पृथिवी, सूर्य हमें बतला रहे हैं कि अग्नि कैसा शक्तिशाली और क्या है ॥८॥

श्रुधी नो अग्ने सदने सधस्थे युक्ष्वा रथममृतस्य द्रवित्नुम् ।
आ नो वह रोदसी देवपुत्रे माकिर्देवानामप भूरिह स्याः ॥९॥

पदार्थः—(**सधस्थे**) सहस्थान (**सदने**) आकाश में (**अग्नि**) यह अग्नि (**नः**) हमारे शब्दों को (**श्रुधि**) सब पर सुनाता हैं (**अमृतस्य**) अमृतरूप प्रकाश के (**द्रवित्नुम्**) गतिशील (**रथम्**) चक्र को (**युक्ष्व**) अपने से युक्त करता है, (**नः**) हमारे लिए (**देवपुत्रे**) प्रकाश के पुत्र (**रोदसी**) द्यु और भूमि को (**वह**) धारण करता है, (**देवानाम्**) दिव्य शक्तियों में किसी का भी (**माकिः अप भूः**) निरादर न हो (**इह**) इस विश्व में यह अग्नि (**स्याः**) विद्यमान रहे।

भावार्थः—आकाश में यह अग्नि हमारे शब्दों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक सुनाने का साधन बनाया जा सकता है। यह गतिशील प्रकाश पुंज को अपने साथ युक्त करता है। द्यु और पृथिवी को धारण करता है। इसकी इस प्रशंसा से अन्य शक्तियों का निरादर नहीं है। यह इस जगत् में सदा बना रहे ॥९॥

यह दशम मण्डल में बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१३

ऋषिः - १—५ विवस्वानादित्यः ॥ देवता —हविर्धाने ॥ छन्दः—१ पाद-निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ५ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—४ धैवतः । ५ निषादः ॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥१॥

पदार्थः—(**वाम्**) इन दोनों मन और वाणी को मैं (**पूर्व्यम्**) अनादि काल से विद्यमान (**ब्रह्म**) वेदज्ञान का वेद मन्त्र से (**युजे**) संयुक्त करता हूँ (**सूरेः**) ऋत्विक् की (**पथ्या इव**) स्तुति के समान (**नमोभिः**) नमस्कार से युक्त हमारा (**श्लोकः**) स्तवन (**एतु**) सर्वत्र जावे । (**अमृतस्य**) अमर भगवान् के (**विश्वे**) समस्त (**पुत्राः**) पुत्र-पुत्री अर्थात् मानवमात्र (**ये**) जो विद्वान् जन (**दिव्यानि**) दिव्य (**धाम**) तेज और ज्ञान में (**आ तस्थुः**) स्थित हैं सभी सुनें ।

भावार्थः—मैं अपने मन और वाणी को अनादिकालिक भगवान् की वाणी वेदमन्त्र और ज्ञान से युक्त करता हूं । जिस प्रकार स्तावक की स्तुति सर्वत्र पहुंचती है उसी प्रकार हमारा स्तवन सर्वत्र पहुंचे और दुनिया के सभी मनुष्यमात्र और दिव्य ज्ञान प्रकाश में स्थित विद्वान् लोग इस वेद वाणी को सुनें ॥१॥

यमे इव यतमाने यदैतं प्र वां भरन्मानुषा देवयन्तः ।
आ सीदतं स्वमु लोकं विदाने स्वासस्थे भवतमिन्दवे नः ॥२॥

पदार्थः—(**यमे इव**) युगल के समान ये मन और वाणी (**यतमाने**) अपने कर्मों में नियन्त्रित रहते हुए (**एतम्**) इस यज्ञ आदि कर्म को करते हैं तब (**देवयन्तः**) देवत्व की भावना वाले (**मानुषाः**) मनुष्य (**वाम्**) इन दोनों की (**प्र भरन्**) भली प्रकार रक्षा करते हैं । ये दोनों (**स्वम् उ**) अपने (**लोकम्**) कार्यक्षेत्र को (**विदाने**) प्राप्त होकर (**स्वासस्थे**) स्वस्थ भाव में (**आ सीदतम्**) स्थित हों और (**नः**) हमें (**इन्दवे**) प्रकाशक भगवान् की प्राप्ति के लिए (**भवतम्**) हों ।

भावार्थः—अपने में नियन्त्रित ये मन और वाणी युगल के समान यज्ञ-कर्म में प्रवृत्त हों । देवत्व भावना को प्राप्त हुए मनुष्य इनकी रक्षा करते

Scanned by CamScanner

हैं। ये दोनों अपने कार्य क्षेत्र को जान या प्राप्त कर स्वस्थ अवस्था में रहें और हमें ऐश्वर्यशाली भगवान् के प्राप्त कराने में प्रवृत्त रहें ॥२॥

पञ्च पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।

अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ॥३॥

पदार्थः – मैं साधक यज्ञकर्त्ता (**रुपः**) शरीर के (**पंच**) पांच (**पदानि**) पदों–पंच कोषों पर (**अन्वरोहम्**) स्थित होऊ, (**व्रतेन**) कर्म और नियम पालन द्वारा (**चतुष्पदीम्**) चार पदों वाली का (**अन्वेमि**) अनुसरण करू । वाणी के चार पद परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी हैं। (**अक्षरेण**) ओ३म् रूपी अक्षर के साथ (**एताम्**) इस वाणी को (**प्रति मिमे**) युक्त करू तथा (**ऋतस्य**) सृष्टिनियम और ज्ञान के (**नाभौ**) नाभि-केन्द्र भगवान् में (**अधि सं पुनामि**) अपनी आत्मा को स्थित कर पवित्र करू ।

भावार्थः साधक को चाहिए कि वह यज्ञ तो करे ही, परन्तु उसके द्वारा शरीर के पांच कोषों पर अधिकार रखे। वाणी के चार पद परा, पश्यन्ती, मध्यमा और बैखरी को जाने और ओ३म् रूपी अक्षर को उस वेद वाणी के पद से युक्त करे। सृष्टि के नियम और ज्ञान के केन्द्र भगवान् में स्थिति पाकर अपनी आत्मा को पवित्र करे ॥३॥

देवेभ्यः कमवृणीत मृत्युं प्रजायै कममृतं नावृणीत ।

बृहस्पतिं यज्ञमकृण्वत ऋषिं प्रियां यमस्तन्वं१ प्रारिरेचीत् ॥४॥

पदार्थः—हे यज्ञ करने वालो ! (**यमः**) भगवान् ने (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**कम्**) किसे (**मृत्युम्**) मृत्यु वा मारक को (**अवृणीत**) चुना है, किसी को नहीं (**प्रजायै**) प्रजा के लिए (**कम्**) किस (**अमृतम्**) अमरत्व अथवा अमारक को (**न**) नहीं (**अवृणीत**) चुना है, (**बृहस्पतिम्**) वेद वाणी के ज्ञान को यजमान लोग (**यज्ञम्**) यज्ञ में ऋत्विग् (**अकृण्वत**) बनाते हैं। भगवान् हमारे (**प्रियाम्**) प्यारे (**तन्वम्**) शरीर को (**प्रारिरेचीत्**) उत्पन्न करता है ॥

भावार्थः – जगत् के नियन्त्रणकर्त्ता भगवान् ने देवों के मारने वाले को चुना है, और प्रजा के लिए अमरत्व को नहीं चुना है—ऐसा सिद्धान्त नहीं है। मृत्यु और अमरत्व अपने कर्मों से हैं। यह जानकर यज्ञ में वेदज्ञ ऋत्विग् बनाना चाहिए और समझना चाहिए कि हमारे इस प्यारे शरीर की रचना भगवान् ही करता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

सप्त क्षरन्ति शिशवे मरुत्वते पित्रे पुत्रासो अप्यवीवतन्नृतम् ।
उभे इदस्योभयस्य राजत उभे यतेते उभयस्य पुष्यतः ॥५॥

पदार्थः—(**पित्रे**) पिता के लिए (**पुत्रासः**) पुत्र के समान (**मरुत्वते**) प्राणों के स्वामी (**शिशवे**) अन्तर्विद्यमान आत्मा के लिए (**सप्त**) सात छन्दों वाले मन्त्र (**ऋतम्**) सत्य ज्ञान का (**क्षरन्ति**) क्षरण करते वा वर्षाते हैं, (**अपि अवीवतन्**) और संगति भी लगाते हैं (**उभे**) दोनों मन और वाणी (**अस्य उभयस्य**) इन दोनों के (**इत्**) ही अर्थात् देवजात और मनुष्यजात प्रजा को(**राजतः**) प्रकाशमान करते हैं, दोनों ही (**यतेते**) अपने कार्यों में प्रयत्न करते हैं और (**उभयस्य**) दोनों को (**पुष्यतः**) पुष्ट करते हैं ।

भावार्थः—पिता के लिए पुत्रों के समान सात छन्दों से युक्त वेद-वाणियां अन्तर्विद्यमान आत्मा के लिए ज्ञान की वर्षा करती हैं और कर्म से संगत भी करती हैं । ये मन और वाणी दोनो प्रकार के लोगो अर्थात् देव और मनुष्य को ज्ञान कर्म से प्रकाशित करते, अपने कार्यों में प्रवृत्त रहते और दोनो को ही पुष्ट करते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल का तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१४

ऋषिः—१—१६ यमः ॥ **देवता**—१-५, १३–१६ यमः । ६ लिंगोक्ताः । ७ ९ लिंगोक्ताः पितरो वा । १०—१२ श्वानौ ॥ **छन्दः**—१,१२ भुरिक्त्रिष्टुप् । २, ३, ७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । १३, १४ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप् । १५ विराड्बृहती ॥ **स्वरः**-१—१२ धैवतः । १३, १४, १६ गान्धारः । १५ मध्यमः ॥

परेयिवांसं प्रवतो महीरनु बहुभ्यः पन्थामनुपस्पशानम् ।
वैवस्वतं सङ्गमनं जनानां यमं राजानं हविषा दुवस्य ॥१॥

पदार्थः (**प्रवतः**) उत्तम कर्म वालों को (**महीः**) उत्तम लोक को (**अनु परेयिवांसम्**) प्राप्त कराने वाले (**बहुभ्यः**) बहुत से जीवों के लिए (**पन्थाम्**) मार्ग को (**अनुपस्पशानम्**) दिखाने वाले, (**वैवस्वतम्**) सूर्य के भी

स्वामी, (जनानाम्) लोगों के कर्मों के अनुसार उन्हें (संगमनम्) संगमन कराने वाले (राजानम्) राजा (यमम्) जगत् के नियन्ता भगवान् की हे मनुष्य ! वा हे जीव ! तू (हविषा) श्रद्धाभाव से (दुवस्य) स्तुति कर ।

भावार्थः—हे मनुष्य वा जीव ! तू श्रद्धाभाव से उस भगवान् की सदा स्तुति किया कर जो उत्तम कर्म वालों को उत्तम लोक देने वाला, और सभी का मार्ग दर्शक, सूर्य का भी स्वामी, लोगों के कर्मों के अनुसार फल की संगति लगाने वाला और जगत् का नियन्ता है ॥१॥

यमो नो गातुं प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ ।
यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या३ अनु स्वाः ॥२॥

पदार्थः—(यमः) जगत् का नियन्ता भगवान् (प्रथमः) सब में मुख्य है । वह (नः) हमारे (गातुम) समस्त व्यवहारों को (विवेद) जानता है, (एषा) यह (गव्यूतिः) भगवान् का मार्ग (उ) निश्चय (न अप भर्तवै) तोड़ा नहीं जा सकता है (यत्र) जिस मार्ग पर (नः) हमारे (पूर्वे) पूर्व (पितरः) पिता-माता (परा ईयुः) चले हैं और अब माता-पिता चलते हैं (एना) इसे (स्वाः) अपना (पथ्या) मार्ग (जज्ञानाः) जानकर हे जीवो चलो !

भावार्थः—जगत् का नियन्ता भगवान् सब में मुख्य है। वह हमारे समस्त कर्मों और व्यवहारों को जानता है। उसका यह जानने वाला मार्ग अथवा उसका नियम किसी प्रकार तोड़ा नहीं जा सकता है। जिस रास्ते पर हमारे पूर्व माता-पिता चले और अब हमारे माता-पिता चलते हैं उसी को अपना मार्ग बनाकर हे जीवो जगत् में चलो और अपने व्यवहार करो ॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अङ्गिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधानः ।
याँश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

पदार्थः—(मातली) आकाश का ज्ञान रखने वाला मनुष्य (कव्यैः) शब्दों से, (यमः) मन, वाणी आदि का नियन्ता मनुष्य (अंगिरोभिः) तपस्वियों से, (बृहस्पतिः) वेदज्ञ (ऋक्वभिः) वेदज्ञों से (वावृधानः) आनन्द को प्राप्त करता है (ये) जो (देवाः) विद्वान् (यान्) जिनको (वावृधुः) आनन्द आदि से बढ़ाते हैं और जो (देवान्) देवों को (वावृधुः) बढ़ाते हैं इनमें से (अन्ये) कुछ

Scanned by CamScanner

(**स्वाहा**) उत्तम वाणी, दान आदि के सत्कार से (**मदन्ति**) प्रसन्न होते हैं और दूसरे (**स्वधया**) भोजन पान से प्रसन्न होते हैं ।

भावार्थः—आकाश का ज्ञान रखने वाले विद्वान् उत्तम शब्दों से, इन्द्रियों के वशी तपस्वियों से और वेदज्ञों से मिलकर प्रसन्न होते हैं । जो विद्वानों को उनके योग्य साधनों से बढ़ाता है और विद्वान् जिनको बढ़ाते हैं इनमें से कुछ ऐसे हैं जो वाणी से और दान से आनन्द पाते हैं और कुछ भोजन और पान आदि से आनन्द पाते हैं ॥३॥

इमं यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥४॥

पदार्थः—(**यम**) हे इन्द्रियों को वश में रखने वाले (**राजन्**) तेजस्विन् विद्वन् ! तू (**अंगिरोभिः**) तपस्वी (**पितृभिः**) माता-पिता आदि श्रेष्ठ विद्वानों के साथ (**संविदानः**) एकमति होकर (**हि**) निश्चय (**इमम्**) इस (**प्रस्तरम्**) यज्ञासन पर (**आ सीद**) विराजमान हो, (**कविशस्तः**) विद्वानों द्वारा उच्चारित (**मन्त्राः**) वेद मन्त्र (**त्वा**) तुम्हें (**आ वहन्तु**) ज्ञान प्राप्त करावें तथा तू (**हविषा**) हवि आदि से यज्ञ देवों को (**मादस्व**) प्रसन्न कर और स्वयं प्रसन्न हो ।

भावार्थः—हे इन्द्रियों के वशी, तेजस्वी विद्वन् ! तू तपस्वी विद्वान् (पितृभिः) जीवित माता-माता और प्रपिता आदि के साथ एकमति होकर इस यज्ञासन पर बैठ और विद्वानों द्वारा उच्चारित मन्त्र तुझे ज्ञान दें और तू हवि से यज्ञ देवों को प्रसन्न कर और स्वयं प्रसन्न हो ॥४॥

अङ्गिरोभिरा गहि यज्ञियेभिर्यम वैरूपैरिह मादयस्व ।
विवस्वन्तं हुवे यः पिता तेऽस्मिन्यज्ञे बर्हिष्या निषद्य ॥५॥

पदार्थः—(**यम**) हे वशी पुरुष ! तू (**यज्ञियेभिः**) यज्ञ करने योग्य, (**अंगिरोभिः**) तपस्वी (**वैरूपैः**) नाना विद्याओं के ज्ञाता विद्वानों से साथ (**इह**) इस यज्ञ में (**आ गहि**) आ और (**मादयस्व**) प्रसन्न हो (**विवस्वन्तम्**) विविध धन और ज्ञानों वाले उसको (**यः**) जो (**ते**) तेरा (**पिता**)जीवित पिता है (**तम्**) उसको भी (**अस्मिन्**) इस (**यज्ञे**) यज्ञ में बुलाता हूं । मैं ऋत्विग् और वह भी (**बर्हिषि**) यज्ञासन पर (**निषद्य**) बैठकर प्रसन्न होवे ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे वशी पुरुष ! तू यज्ञ करने योग्य तपस्वी विविध विद्या के विद्वानों के साथ इस यज्ञ में आ और प्रसन्न हो। विविध धनों वाला, ज्ञानी तुम्हारा जीवित पिता भी इस यज्ञ में आसन पर बैठकर प्रसन्न होवे ॥५॥

अङ्गिरसो नः पितरो नवग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।

तेषां वयं सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥६॥

पदार्थः—(**नः**) हमारे (**पितरः**) जीवित पितृजन जो (**अंगिरसः**) अग्नि विद्या के जानने वाले हैं, (**अथर्वाणः**) अहिंसक व्यवहार वाले हैं, (**भृगवः**) तपस्वी हैं, (**सोम्यासः**) सोम विद्या के ज्ञाता हैं और (**नवग्वा**) नई-नई बुद्धियों को देते हैं (**वयम्**) हम (**तेषाम्**) उन (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ के ज्ञान वालों की (**सुमतौ**) सुमति में सदा रहें और (**भद्रे**) कल्याणकारक (**सौमनसे**) सौमनस्य में (**स्याम**) रहें।

भावार्थः—हमारे जीवित पितर जो अग्नि विद्या के ज्ञाता, अहिंसक, तपस्वी और सोमज्ञान के ज्ञाता हैं हमें सदा उनकी सम्मति में और सोमनस्य में रहना चाहिए ॥६॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः ।

उभा राजाना स्वधया मदन्ता यमं पश्यासि वरुणं च देवम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्य (**प्रेहि**) चलो, (**प्रेहि**) चलो, उन (**पूर्व्येभिः**) पुराने अनादि (**पथिभिः**) मार्गों से (**यत्र**) जिनसे (**नः**) हमारे (**पूर्वे**) पहले (**पितरः**) पिता-माता आदि (**परा इयुः**) चले हैं, इस प्रकार उन मार्गों पर चलते हुए (**राजाना**) सबके प्रकाशक और शासक (**स्वधया**) प्रकृति के साथ (**मदन्तौ**) विराजमान (**उभौ**) दोनों (**देवम्**) देव (**यमम्**) परमेश्वर (**च**) और (**वरुणम्**) जीव को (**पश्यासि**) देखो।

भावार्थ—हे मनुष्य जिन अनादि मार्गों से हमारे पूर्व माता-पिता आदि चले हैं उन पर चलते हुये जगत् के नियन्ता भगवान् और जीव को प्रकृति के साथ विराजमान देख ॥७॥

सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेनेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।

हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छस्व तन्वा सुवर्चाः ॥८॥

पदार्थः हे जीव ! (**पितृभिः**) किरणों के साथ (**परमे**) परम (**व्योमन्**) आकाश में (**सं गच्छस्व**) जा, (**यमेन**) वायु के साथ (**संगच्छस्व**) संयुक्त हो (**इष्टा पूर्तेन**) अपने किये हुए यज्ञ और पूर्त्त आदि कर्मों से युक्त हुआ तू (**अवद्यम्**) अप्रशस्त शरीर को (**हित्वा**) छोड़कर (**पुनः**) फिर (**अस्तम्**) गृह को प्राप्त हो और (**सुवर्चाः**) तेजस्वी (**तन्वा**) शरीर के साथ (**सम्**) युक्त होकर (**इह**) इस संसार में (**आ गच्छस्व**) आओ ।

भावार्थः– जीव शरीर से निकल कर किरणों के द्वारा महान् आकाश में जाता है, वायु के साथ रहता है, अपने अच्छे कर्मों के अनुसार अनुत्तम शरीर को छोड़कर नये घर में आता है और नये तेजस्वी शरीर के साथ संसार में पुनः आता है ॥८॥

अपेत वीत वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ॥९॥

पदार्थः– हे दुष्कृत वाले जीव ! (**अतः**) इस पितृयान मार्ग वाले स्थान से (**अपेत**) दूर हो, (**वीत**) भागो (**च**) और (**वि सर्पत**) हटो (**एतम्**) इस (**लोकम्**) लोक को (**पितरः**) कर्मकाण्डी पितृयान के गामी (**अक्रन्**) प्राप्त करते हैं, (**यमः**) वायु वा परमेश्वर (**अहोभिः**) प्रकाशमान (**अद्भिः**) कर्मों (**अक्तुभिः**) रात्रियों से (**व्यक्तम्**) प्रकट (**अवसानम्**) इस स्थान को (**अस्मै**) पितृयान मार्ग वाले जीव को (**ददाति**) देता है ।

भावार्थः– दुष्ट कर्म वाले जीव पितृयान मार्ग वाली अवस्था को नहीं प्राप्त कर सकते हैं परमेश्वर प्रकाशमान रात्रि के माध्यम और कर्मों से प्राप्य इस अवस्था को पितृयान-गामी जीव को देता है ॥९॥

अति द्रव सारमेयौ श्वानौ चतुरक्षौ शबलौ साधुना पथा ।
अथा पितॄन्त्सुविदत्राँ उपेहि यमेन ये सधमादं मदन्ति ॥१०॥

पदार्थः–हे मनुष्य ! तू (**सारमेयौ**) सरमा=उषा के पुत्र, (**चतुरक्षौ**) सर्वत्र दृष्टि रखने वाले (**श्वानौ**) गतिमान् (**शबलौ**) काले और श्वेत रात्रि और दिन के जोड़े का (**अति द्रव**) अतिक्रमण कर, (**अथा**) और उन (**सुविदत्रान्**) उत्तम ज्ञान वाले (**पितॄन्**) जीवित माता-पिता और विद्वानों के (**उपेहि**) पास जा (**ये**) जो (**यमेन**) जगत् के नियन्ता भगवान् के (**सधमादम्**) सम्पर्क में (**मदन्ति**) आनन्दित हो रहे हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे मनुष्य ! तू चौतरफ अपना प्रभाव रखने वाले द्रुत गति से बीत रहे रात्रि और दिन का ख्याल न कर उन ज्ञानी पितृजनों के पास जाकर उनकी संगति कर जो भगवान् के ज्ञान में आनन्दित हो रहे हैं ॥१०॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ ।

ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥

पदार्थः—(**यम**) हे जगन्नियन्तः ! (**राजन्**) हे सबके राजा ! तू (**ताभ्याम्**) दोनों उन रात्रि और दिन के जोड़ों से इस जीव वा मनुष्य को (**परि देहि**) बचा (**यौ**) जो (**ते**) तेरे (**चतुरक्षौ**) सर्वत्र आंख रखने वाले (**पथिरक्षी**) मार्ग के रक्षक (**नृचक्षसौ**) मनुष्यवत् दृष्टि रखने वाले (**रक्षितारौ**) रक्षक भूत (**श्वानौ**) कुत्ते के समान रात्रि और दिन हैं। तथा इस मनुष्य को (**स्वस्ति**) सुख (**च**) और (**अनमीवम्**) नीरोगता (**धेहि**) दे।

भावार्थः—हे सबके राजा जगत् के नियन्ता भगवन् ! तू इस मनुष्य की कुत्ते के समान-मनुष्य की आयु को समाप्त करने वाले सर्वत्र विद्यमान रात्रि और दिन के जोड़ों से इस मानव की रक्षा कर और इसे सुख और स्वस्थता दे ॥११॥

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु ।

तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रम् ॥१२॥

पदार्थः—(**यम**) भगवान् के (**दूतौ**) दूत (**उरूणसौ**) जल्दी पता पाने वाले, (**असुतृपौ**) लोगों की आयु का हरण करने से प्राणों से तृप्त होने वाले (**उदुम्बलौ**) विस्तीर्ण बल वाले ये रात्रि और दिन के जोड़े (**जनान्**) प्राणियों को (**अनु**) लक्ष्य करके (**चरतः**) विचरते हैं, (**तौ**) वे (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**सूर्याय**) सूर्य के (**दृशये**) देखने के लिए (**इह**) इस संसार में (**अद्य**) आज (**भद्रम्**) कल्याण को (**पुनः**) फिर-फिर (**दाताम्**) देवें।

भावार्थः—दिन और रात्रि सभी प्राणियों पर अपना प्रभाव रखते हैं। ये यम के कुत्ते कहे गये हैं और लोगों की आयु को काटते वा कम करते रहते हैं। वे हमारे लिए सूर्य को देखने का बहुत दिनों तक साधन बनें और इस संसार में पुनः वर्तमान में भी भगवान् की कृपा से कल्याण-कारी सुख देवें ॥१२॥

Scanned by CamScanner

यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः ।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**यमाय**) वायु के लिए (**सोमम्**) सोम का (**सुनुत**) निचोड़ करो (**यमाय**) वायु और सूर्य के लिए यज्ञ में (**हविः**) हवि डालो (**अग्नि-दूतः**) अग्नि जिसका दूत है ऐसा (**अरंकृतः**) सुष्ठु सम्पादित (**यज्ञः**) यज्ञ मैं क्षिप्त पदार्थ (**ह**) निश्चय से (**यमम्**) वायु और सूर्य को (**गच्छति**) पहुँचता है ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वायु की शुद्धि के लिए सोम आदि पदार्थों का निष्पादन करो और यज्ञ में हवि आदि अग्नि में डालो । यह अच्छी प्रकार विधि से डाला गया पदार्थ वायु और सूर्य तक पहुंचता है क्योंकि इसका पहुंचाने वाला अग्नि यज्ञ का दूत है ॥१३॥

यमाय घृतवद्धविर्जुहोत प्र च तिष्ठत ।
स नो देवेष्वा यमद्दीर्घमायुः प्र जीवसे ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**यमाय**) वायु और सूर्य किरणों की शुद्धि के लिए (**घृतवद्**) घृत मिश्रित (**हविः**) सामग्री (**जुहोत**) यज्ञाग्नि में डालो (**च**) और (**प्रतिष्ठत**) इस नियम पर सदा स्थिर रहो, (**देवेषु**) सभी देवों के मध्य (**सः**) वह यम (**प्रजीवसे**) उत्कृष्ट जीवन के लिए (**नः**) हमें (**दीर्घम्**) दीर्घ (**आयुः**) आयु (**आ यमत्**) देता है ।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि वे घृत युक्त सामग्री को वायु और सूर्य की किरणों को शुद्ध करने के लिए यज्ञाग्नि में डालें । यह वायु और सूर्य हमारे लिये लम्बी आयु के साधन बनते हैं ॥१४॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन ।
इदं नम ऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! (**राज्ञे**) प्रकाशमान (**यमाय**) सूर्य और वायु की शुद्धि के लिए (**मधुमत्तमम्**) मधु आदि मधुर पदार्थों से युक्त (**हव्यम्**) हव्य पदार्थ को (**जुहोतन**) यज्ञाग्नि में डालो (**ऋषिभ्यः**) ऋषियों के लिए (**पूर्वजेभ्यः**) पूर्वज=जीवित माता-पिता आदि के लिए और (**पूर्व्येभ्यः**) ज्ञानपूर्ण (**पथिकृद्भ्यः**) मार्ग दिखाने वालों के लिए (**इदम्**) यह (**नमः**) ज्ञान और अन्न हो ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मनुष्यों को उचित है कि वे सूर्य की किरणों और वायु की शुद्धि के लिए मधु आदि मधुर पदार्थों से युक्त हवि यज्ञ की अग्नि में डालें। ऋषियों, पूर्वज जीवित माता-पिता और मार्ग दिखाने वालों के लिए ज्ञान की वृद्धि करें और उन्हें अन्न आदि खाने को दें ॥१५॥

त्रिकद्रुकेभिः पतति षळुर्वीरेकमिद् बृहत् ।
त्रिष्टुब्गायत्री छन्दांसि सर्वा ता यम आहिता ॥१६॥

पदार्थः—(**एकम्**) एक (**इत्**) ही यह यम=सूर्य (**बृहत्**) महान् है, (**त्रिकद्रुकेभिः**) उदय, मध्याह्न और अस्तमन रूपी तीन क्रियाओं से (**षड्**) छः (**ऊर्वीः**) ऋतुओं को (**पतति**) प्राप्त होता है (**सर्वा**) सभी (**ता**) वे (**छन्दांसि**) छन्द (**त्रिष्टुप्**) त्रिष्टुप् (**गायत्री**) गायत्री आदि (**यमे**) सूर्य में (**अव्यक्ता**) सौरी वाणी के रूप में (**आहिता**) धृत हैं ।

भावार्थः—एक है यह सूर्य और महान् है। वह उदय, मध्याह्न और अस्तमन् क्रमों से छः ऋतुओं को बनाता है त्रिष्टुप्, गायत्री आदि सभी छन्द सौरी वाक् रूप में यम=सूर्य में व्याप्त हैं ॥१६॥

यह दशम मण्डल में चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १५

ऋषिः—१—१४ शंखो यामायनः ॥ देवता—पितरः ॥ छन्दः—१, २, ७, १२—१४ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ९, १० त्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ११ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—१०, १२—१४ धैवतः ॥ ११ निषादः ॥

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

पदार्थः—हमारे जीवित पितृजनों में जो अपने ज्ञानक्रिया, कुशलता आदि कार्यों में (**अवरे**) नीची कक्षा के हैं (**उत् ईरताम्**) उन्नत हों, (**मध्यमाः**) जो मध्यम कक्षा के हैं (**उद् ईरताम्**) उन्नति करें, (**परासः**) उत्तम कक्षा के और

Scanned by CamScanner

भी (उत् ईरताम्) उन्नत हों, (सोम्यासः) सोम विद्या के ज्ञाता (पितरः) पितर भी (उत् ईरताम्) उन्नत हों, (ते) वे (पितरः) पितृजन (हवेषु) स्तुति, प्रार्थना यज्ञ आदि में (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ये) जो (ऋतज्ञाः) यज्ञ विद्या और सृष्टि नियम के जानने वाले हैं और (अवृकाः) शोषण न करने वाले हैं और (असुम्) प्राणों को (ईयुः) धारण करते हैं और लम्बी आयु वाले हैं ।

भावार्थः—हमारे जीवित पितृजन में जो ज्ञान और क्रियाकुशलता में अवर, मध्यम और उन्नत कक्षा के हैं सभी उन्नति को प्राप्त हों। जो सोम विद्या के ज्ञाता हैं वे भी उन्नति करें। हमारे यज्ञ आदि कामों में सम्मिलित होकर अपने ज्ञान और अनुभव तथा लम्बे काल के प्रयोगों के साथ हमारी रक्षा करें ॥१॥

इदं पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयुः ।

ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नूनं सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

पदार्थः—(ये) जो (पूर्वासः) पूर्ण ज्ञान वाले हैं, (ये) जो (उपरासः) न्यून ज्ञान वाले (ईयुः) हैं (अद्य) अब उन (पितृभ्यः) पितृजनों के लिए (इदम्) यह (नमः) अन्न जल (अस्तु) है, उनमें से (ये) जो (पार्थिवे) पृथिवी सम्बन्धी (रजसि) लोक में (आ निषत्ताः) उच्च पदों पर और उच्च स्थिति में हैं (वा) और (नूनम्) निश्चय ही (ये) जो (सुवृजनासु) उत्तम कर्म करने वाली विदुषी (विक्षु) प्रजाजनों में विद्यमान हैं।

भावार्थः—हमारे पितृजन जो पूर्ण ज्ञान वाले और जो न्यून ज्ञान वाले हैं, जो इस पृथिवी पर उत्तम पदों पर हैं, जो विदुषी प्रजा अर्थात् विद्वज्जनों में स्थान पाते हैं उन सबके लिए अन्न जल प्राप्त हो अर्थात् हमारे द्वारा दिया जावे ॥२॥

आहं पितृन्त्सुविदत्राँ अवित्सि नपातं च विक्रमणं च विष्णोः ।

बर्हिषदो ये स्वधया सुतस्य भजन्त पित्वस्त इहागमिष्ठाः ॥३॥

पदार्थः—(अहम्) मैं यजमान (सुविदत्रान्) उत्तम ज्ञान और अनुभव वाले (पितृन्) माता-पिता आदि प्रयोगात्मक ज्ञान वाले विद्वानों को (आ अवित्सि) प्राप्त करूं, (विष्णोः) व्यापक भगवान् के (नपातम्) अविनाशी स्वरूप (च)

Scanned by CamScanner

और (विक्रमणम्) विक्रमण सृष्टिरूप पराक्रम को (आ अविदित्सि) जानता हूं, (ये) जो (वर्हिषदः) आकाश का ज्ञान रखने वाले विद्वज्जन (स्वधया) अपने पराक्रम से (सुतस्य) बनाये गये (पित्वः) सोमरस आदि को (भजन्ते) सेवन करते हैं वे (इह) इस हमारे यज्ञ में (आगमिष्ठाः) आवें।

भावार्थः—हमें चाहिए कि हम ज्ञानी पिता, माता, विद्वान् आदि के पास जावें, भगवान् के अविनाशी स्वरूप और सृष्टिरूपी पराक्रम को जानते हुए जो विद्वज्जन स्वयं द्वारा तैयार किये गए सोम आदि का सेवन करते हैं अपने यज्ञ और व्यवहार कार्य में उन्हें बुलायें और उनको आदर दें ॥३॥

बर्हिषदः पितर ऊत्य१र्वागिमा वो हव्या चकृमा जुषध्वम् ।
त आ गतावसा शंतमेनाथा नः शं योररपो दधात ॥४॥

पदार्थः—(वर्हिषदः) आकाश का ज्ञान रखने वाले (पितरः) हे हमारे ज्ञानी माता-पिता गुरुजन ! आप लोगों की (ऊत्वी) रक्षा (अर्वाक्) हमें सदा प्राप्त रहे, (इमा) इन (हव्या) हव्य आदि पदार्थों को (वः) आप लोगों को (चकृम) प्रदान करते हैं (ते) वे आप लोग (जुषध्वम्) इनसे यज्ञ करो (आ गत) आइये (शंतमेन) सुखकारी (अवसा) रक्षा और प्रीति के साथ (अथा) और (नः) हमारे लिए (शम्) सुख (योः) दुःखराहित्य एवम् (अरपः) निष्पापत्व (दधात) धारण कराइये।

भावार्थः—आकाश आदि की विद्या के ज्ञानी हमारे माता-पिता और गुरुजन हमारे यज्ञों में आवें, बैठें और हमारे दिये हवि आदि पदार्थों से यज्ञ करें और हमारे लिए सदा अपनी सुखमयी कृपा से सुख, दुःख राहित्य और निष्पापता की भावना प्रदान करें ॥४॥

उपहूताः पितरः सोम्यासो बर्हिष्येषु निधिषु प्रियेषु ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्त्वधि ब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥५॥

पदार्थः—(सोम्यासः) सोमविद्याविद् (पितरः) माता-पिता, गुरु, ज्ञानीजन (उपहूता) हमारे द्वारा बुलाये गये (वर्हिष्येषु) यज्ञ-सम्बन्धी (प्रियेषु) प्रिय (निधिषु) कार्यों में सम्मिलित हों, (ते) वे (इह) इस यज्ञ में (आ गमन्तु) आवें (ते) वे (अधि श्रुवन्तु) हमारे वचनों को सुनें (ते) वे (अस्मान्) हमें (अधिब्रुवन्तु) उपदेश करें और (अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—बुलाये गए माता-पिता गुरुजन आदि हमारे यज्ञों में आवें, हमारे वचनों को सुनें, हमें उपदेश करें और हमारी रक्षा करें ॥५॥

आच्या जानु दक्षिणतो निषद्येमं यज्ञमभि गृणीत विश्वे ।
मा हिंसिष्ट पितरः केन चिन्नो यद्व आगः पुरुषता कराम ॥६॥

पदार्थः—(**विश्वे**) हे समस्त (**पितरः**) पितृजन ! (**दक्षिणतः**) दायें ओर (**जानु**) जांघ को (**आ अच्य**) मोड़कर (**निषद्य**) बैठकर अर्थात् वीर आसन से बैठकर (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) हमारे यज्ञ में (**अभि गृणीत**) उपदेश करो, (**केन चित्**) किसी भी (**पुरुषता**) मानवदोष से (**वः**) आप लोगों के लिए (**यत्**) यदि कोई (**आगः**) अपराध (**कराम:**) हम कर बैठें तो (**नः**) हम पर (**मा**) मत (**हिंसिष्ट**) कोप करें ।

भावार्थः—हमारे पितृजन दाहिनी तरफ जांघ को मोड़कर वीर आसन से बैठकर हमारे यज्ञ में हमें उपदेश दें । यदि मानवदोषवशात् कोई अपराध उनके प्रति हो जावे तो हम पर कोप न करें ॥६॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयिं धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्यः पितरस्तस्य वस्वः प्र यच्छत त इहोर्जं दधात ॥७॥

पदार्थः—(**पितरः**) हे पितृजन (**अरुणीनाम्**) प्रकाशमान ज्वालाओं के (**उपस्थे**) स्थान वेदी पर (**आसीनासः**) बैठे हुए आप लोग (**दाशुषे**) दानदाता (**मर्त्याय**) मनुष्य के लिए (**रयिम्**) धन (**धत्त**) दीजिए, (**ते**) वे आप लोग (**तस्य**) उसके (**पुत्रेभ्यः**) पुत्र-पौत्र आदि के लिए (**वस्वः**) धनादि पदार्थ (**प्रयच्छत**) दीजिए (**इह**) इस यज्ञ में (**ऊर्ज्जम्**) अन्न आदि (**दधात**) डालें ।

भावार्थः—हमारे पितृजन यज्ञवेदी पर बैठे हुए दानदाता मनुष्य को धन दें, उसके पुत्र और पौत्र आदि को भी धन दें और यज्ञ वेदि में भी अन्न आदि की आहुति दें ॥७॥

ये नः पूर्वे पितरः सोम्यासोऽनूहिरे सोमपीथं वसिष्ठाः ।
तेभिर्यमः संरराणो हवींष्युशन्नुशद्भिः प्रतिकाममत्तु ॥८॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**नः**) हमारे (**पूर्वे**) ज्ञानपूर्ण (**सोम्यासः**) सोम-विद्याविद् (**पितरः**) पितृजन (**वसिष्ठाः**) उत्तमधन वाले होकर (**सोमपीथम्**)

Scanned by CamScanner

सोमविद्या को (अनु ऊहिरे) शिष्य आदि को देते हैं, (उशद्भिः) ज्ञान का विस्तार चाहने वाले (तेभिः) उन पितृजनों के साथ (संरराणः) रहता हुआ (यमः) नियमों का पालक विद्यार्थी (हवींषि) हवि आदि पदार्थों को (उशन्) चाहता हुआ (प्रतिकामम्) इच्छानुसार (अत्तु) खावे ।

भावार्थः—सोम विद्याविद् ज्ञानपूर्ण पितृजनों के साथ जो विद्यार्थी सोमविद्या आदि की प्राप्ति कर रहा है उसे उनके साथ रहते हुए भोजन-पान आदि पर्याप्त रूप में प्राप्त होता रहे—ऐसा हमें ध्यान रखना चाहिए ॥८॥

ये तातृपुर्देवत्रा जेहमाना होत्राविदः स्तोमतष्टासो अर्कैः ।
आग्ने याहि सुविदत्रेभिरर्वाङ्सत्यैः कव्यैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥९॥

पदार्थः—(ये) जो (होत्राविदः) यज्ञ कर्म में निपुण हैं, (स्तोमतष्टासः) वेद मन्त्रों के रहस्य को खोलने वाले हैं तथा (अर्कैः) वेद मन्त्रों के साथ (देवत्रा) यज्ञ आदि कर्मों के निमित्त (तातृपुः) धन आदि से तृप्त नहीं हैं अर्थात् इन कार्यों के सम्पदानार्थ जिनके पास पर्याप्त धन नहीं हैं उनको (अग्ने) हे विद्यार्थिन् ! तू (सुविदत्रेभिः) ज्ञान वाले, (घर्मसद्भिः) यज्ञ आदि करने वाले, (सत्यैः) सत्यवादी (कव्यैः) मेधावी (पितृभिः) उन पितृजनों के साथ (आयाहि) हमारे पास आओ और प्राप्त करो ।

भावार्थः—जो यज्ञ कर्म में निपुण, वेद के रहस्यों को खोलने वाले यज्ञ, पठन-पाठन आदि कार्यों के लिए धन से तृप्त नहीं है उनके साथ विद्यार्थीजन इस कार्य के पूर्त्यर्थ गृहस्थों के पास आवें और धन आदि प्राप्त करें ॥९॥

ये सत्यासो हविरदो हविष्पा इन्द्रेण देवैः सरथं दधानाः ।
आग्ने याहि सहस्रं देववन्दैः परैः पूर्वैः पितृभिर्घर्मसद्भिः ॥१०॥

पदार्थः—(ये) जो (सत्यासः) सत्यभूत (हविरदः) यज्ञ में अग्नि में डाली गई हवि के ग्रहण करने वाले हैं (हविष्पाः) जल को पीने वा उसकी रक्षा करने वाले हैं (इन्द्रेण) वायु के साथ और (देवैः) अन्य दिव्य पदार्थों के साथ (सरथम्) समान प्रकाश को (दधानाः) धारण करने वाले हैं उन (सहस्रम्) बहु (परैः) परे (पूर्वैः) पूर्व विद्यमान (देववन्दैः) विद्वानों द्वारा प्रशंसा किये

Scanned by CamScanner

जाने योग्य (**घर्मसद्भिः**) ताप धारण करने वाले (**पितृभिः**) सूर्य किरणों के साथ (**अग्ने**) यह अग्नि (**आ याहि**) हमें प्राप्त होता है ।

भावार्थः—अग्नि वायु के साथ बिखरने वाली, अन्य दिव्य पदार्थों के साथ युक्त हुई जल को खींचने और धारण करने वाली, हवियों को ग्रहण करने वाली, ताप-धारक पितृ=सूर्य किरणों के साथ हमें प्राप्त होता है ॥१०॥

अग्निष्वात्ताः पितर एह गच्छत सदःसदः सदत सुप्रणीतयः ।
अत्ता हवींषि प्रयतानि बर्हिष्यथा रयिं सर्ववीरं दधातन ॥११॥

पदार्थः—(**सुप्रणीतयः**) अच्छी नीतियों वाले (**अग्निष्वात्ताः**) अग्नि की विद्या को सुष्ठु रूप से ग्रहण कर जानने वाले (**पितरः**) हे पितृजन ! (**इह**) हमारे घर में (**आ गच्छत**) आइये (**सदः सदः**) उत्तम-उत्तम स्थानों पर (**सदत**) बैठिये (**अथ**) अनन्तर (**प्रयतानि**) हमारे द्वारा दिये गये (**हवींषि**) खाद्य पदार्थों को (**अत्त**) खाइये (**बर्हिषि**) यज्ञ में (**सर्ववीरम्**) पुत्र-पौत्र आदि से युक्त (**रयिम्**) धन को हमें दीजिए ।

भावार्थः—अग्नि के विज्ञान को जिन्होंने भली प्रकार ग्रहण किया है और जो अच्छी नीति वाले हैं वे पितृजन हमारे घरों में आवें, उत्तम आसनों पर बैठें, हमारे द्वारा दिये अन्न आदि को खावें और हमें पुत्र-पौत्र धन आदि से पूर्ण करें ॥११॥

त्वमग्न ईळितो जातवेदोऽवाड्ढव्यानि सुरभीणि कृत्वी ।
प्रादाः पितृभ्यः स्वधया ते अक्षन्नद्धि त्वं देव प्रयता हवींषि ॥१२॥

पदार्थ—(**जातवेदः**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (**ईडितः**) प्रशसित (**त्वम् अग्ने**) यह अग्नि (**हव्यानि**) इसमें डाले गए हव्यों को (**सुरभीणि**) सुगन्धमय (**कृत्वी**) करके (**अवाट्**) सब देवों तक पहुंचाता है, (**स्वधया**) अन्न से युक्त (**प्रयता**) दी गई इन (**हवींषि**) हवियों को (**पितृभ्यः**) सूर्य किरणों को (**प्र अदाः**) देता है (**ते**) वे इसको (**अक्षन्**) खाती हैं और (**देवः**) यह देव अग्नि (**त्वं**) स्वयं भी (**अद्धि**) खाता है ।

भावार्थः—अग्नि यज्ञ में इसमें डाले गये हवनीय पदार्थों को सुगन्धयुक्त करके देवों तक पहुंचाता है, सूर्य किरणों को देता है । वे भी इसे ग्रहण करती हैं और यह स्वयं भी खाता है ॥१२॥

Scanned by CamScanner

ये चेह पितरो ये च नेह याँश्च विद्म याँ उं च न प्रविद्म ।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥१३॥

पदार्थ--(**ये**) जो (**च**) भी (**पितरः**) सूर्य किरणें (इह) यहां प्रत्यक्ष-भूत है, (**च**) और (**ये**) जो (**इह**) यहां (**न**) प्रत्यक्षभूत नहीं हैं, (**च**) और (**यान्**) जिन किरणों को (**विद्म**) हम जानते हैं (**च**) और (**यान्**) जिनको (**न उ**) नहीं भी (**प्रविद्म**) जानते हैं (**त्वम्**) यह (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान अग्नि (**यति**) यदि (**वेत्थ**) प्राप्त हैं तो (**स्वधाभिः**) अन्न आदि पदार्थों से (**सुकृतम्**) भली प्रकार किये (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**ते**) उनको (**जुषस्व**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—सूर्य की जो किरणें यहां प्रत्यक्ष हैं और जो देशान्तर में होने से अप्रत्यक्ष हैं,जिनको हम जानते हैं और जिनको नहीं जानते हैं उनको सभी पदार्थों में विद्यमान अग्नि सर्वथा पहुंचा हुआ है और हमारे द्वारा यज्ञ में दी गई आहुतियों को उन्हें पहुंचाता है ।।१३।।

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते ।
तेभिः स्वराळसुनीतिमेतां यथावशं तन्वं कल्पयस्व ॥१४॥

पदार्थः—(**ये**) जो पितृजन (**अग्निदग्धाः**) अग्नि को जलाने वाले अर्थात् गृहस्थ है वा गृहमेधी हैं (**ये**) जो (**अनग्निदग्धाः**) गृहस्थ नहीं हैं, (**दिवः**) परमेश्वर के ज्ञान के (**मध्ये**) बीच में (**स्वधया**) अपनी योग आदि शक्ति सहित विद्यमान हो (**मादयन्ते**) प्रसन्नता को प्राप्त करते हैं (**तेभिः**)उनके साथ (**स्वराड्**) शरीर में विद्यमान प्रकाशमय अग्नि—आत्मा ऐसी (**असुनीतिम्**) प्राण धारण नीति को अपनाता है कि (**यथावशम्**) अपने आप योगशक्ति (**तन्वम्**) दूसरे शरीर में जाने के कार्य को (**कल्पयस्व**) पूर्ण करता है अर्थात् शरीरान्तर में प्रवेश करने में समर्थ होता है ।

भावार्थः - जो पितृजन गृहस्थ हैं और जो गृहस्थ नहीं हैं और परमात्मा के ज्ञान में योग से युक्त होकर आनन्द प्राप्त करते हैं उनकी प्रकाशमान आत्मा प्राणों और सूक्ष्म शरीर पर अधिकार प्राप्त करके दूसरे शरीर में प्रविष्ट हो सकती है । परन्तु उस शरीर के भागों को प्राप्त नहीं कर सकती हैं ।।१४।।

यह दशम मण्डल में पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

Scanned by CamScanner

सूक्त १६

ऋषिः १ १४ दमनो यामायनः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ४, ७, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ६, ९ त्रिष्टुप् । १० स्वराट्त्रिष्टुप् । ११ अनुष्टुप् । १२ निचृदनुष्टुप् । १३, १४ विराड्नुष्टुप् ॥ स्वरः– १—१० धैवतः । ११—१४ गान्धारः ॥

मैनमग्ने वि दहो माभि शोचो मास्य त्वचं चिक्षिपो मा शरीरम् ।
यदा शृतं कृणवो जातवेदोऽथेमेनं प्र हिणुतात्पितृभ्यः ॥१॥

पदार्थः—(जातवेदः) ज्ञानवान् (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (एनम्) इस मनुष्य को (मा) मत (विदहः) सर्वथा भस्म करना, (मा) मत (अभि शोचः) सन्तापयुक्त करो, (अस्य) इसके (त्वचम्) चर्मेन्द्रिय को (मा) मत (चिक्षिपः) नष्ट करना, (शरीरम्) सूक्ष्म और कारणशरीर को भी (मा) मत नष्ट करना, (यदा) जब तुम (अथ) अनन्तर (शृतम्) पके कर्मफल को (कृणवः) देते हो तो (एनम्) इसको (ईम्) निश्चय ही (पितृभ्यः) माता-पिता के पास (प्रहिणुतात्) भेजना ।

भावार्थः—परमात्मा इस मनुष्य को सर्वथा जलाकर नष्ट नहीं करता है, न सर्वथा संतप्त करता है, इसके चर्मेन्द्रिय शक्ति और सूक्ष्म शरीर को भी नहीं नष्ट करता है । यह सूक्ष्म शरीर नित्य आत्मा के साथ विद्यमान रहता है । जब परमेश्वर कर्म फल देता है तो इस आत्मा को पुनः माता-पिता के पास भेजता है अर्थात् इसे पुनः माता-पिता जन्म लेने पर मिलते हैं ॥१॥

शृतं यदा करसि जातवेदोऽथेमेनं परि दत्तात्पितृभ्यः ।
यदा गच्छात्यसुनीतिमेतामथा देवानां वशनीर्भवाति ॥२॥

पदार्थः—(जातवेदः) हे परमेश्वर ! (अथ) मरणानन्तर (यदा) जब (शृतम्) कर्म फल (करसि) प्रदान करते हो और (एनम्) इस जीव को पुनः (पितृभ्यः) माता-पिता को (परिदत्तात्) देते हो और (यदा) जब यह जीव (एताम्) इस (असुनीतिम्) प्राण व्यवहार को (गच्छाति) धारण कर लेता है (अथ) तब यह (देवानाम्) इन्द्रियों और उनके विषयों के (वशनीः) वश में हो जाता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—परमेश्वर जब जीव को पुनर्जन्म देकर कर्मफल की व्यवस्था से पुनः माता-पिता देता है और जीव इस प्रकार के प्राणव्यवहार अथवा जीवन को प्राप्त कर लेता है तब इन्द्रियों के वश में हो जाता है ॥२॥

सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! मरणान्तर तेरा (**चक्षुः**) नेत्र (**सूर्यम्**) सूर्य को (**गच्छतु**) प्राप्त हो जाता है (**आत्मा**) आत्मा (**वातम्**) प्राण वायु को प्राप्त होता है (**धर्मणा**) किये कर्मो के अनुसार आत्मा (**द्याम्**) द्युलोक को (**च**) और पृथिवी लोक (**च**) भी (**गच्छ**) जाता है (**यदि**) यदि (**तत्र**) उन लोकों की प्राप्ति में (**ते**) तुम्हारी आत्मा का (**हितम्**) कर्मफल है तो यह (**शरीरैः**) शरीर धारण कर (**अपः**) जलों में, (**वा**) भी (**गच्छ**) जाता है और(**ओषधीषु**) ओषधि और वृक्ष आदि में भी (**प्रति तिष्ठ**) स्थिति पाता है ।

भावार्थः—जीव जब शरीर छोड़ देता है तब चक्षुः सूर्य को प्राप्त हो जाता है आत्मा प्राणवायु को प्राप्त होता है और कर्मफलानुसार नये शरीर धारण कर पृथिवी लोक, आकाश और जलों में जाता है तथा ओषधि और वनस्पतियों में भी जाकर फल भोगता है ॥३॥

अजो भागस्तपसा तं तपस्व तं ते शोचिस्तपतु तं ते अर्चिः ।
यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदस्ताभिर्वहैनं सुकृतामु लोकम् ॥४॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) हे विद्वन् ! इस मनुष्य देह का जो भाग (**अजः**) अज और नित्य आत्मा है (**तम्**) उसको (**तपसा**) ज्ञान और तपसे (**तपस्व**) तपा (**ते**) तुम्हारा (**शोचिः**) तेज (**ते**) उसे (**तपतु**) तपावे, (**तम्**) उसे (**ते**) तुम्हारी (**अर्चिः**) दीप्ति दीप्त करे (**याः**) जो (**ते**) तेरी (**शिवाः**) कल्याणमयी (**तन्वः**) नीति-कलेवर है (**ताभिः**) उनसे (**एनम्**) इसको (**सुकृताम्**) उत्तम कर्म करने वालों के (**लोकम्**) लोक को (**उ**) निश्चय (**वह**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! इस शरीर में जो भाग अजर अमर है वह आत्मा है । तू इसे अपने ज्ञान से, तेज से, प्रकाश से तपा और अपनी

Scanned by CamScanner

कल्याणमयी नीति से उसे सुकृत कर्म करने वालों के लोक को प्राप्त करने योग्य बना ॥४॥

अव॑ सृज॒ पुन॑रग्ने पि॒तृभ्यो॒ यस्त॒ आहु॑त॒श्चर॑ति स्व॒धाभि॑: ।
आयु॒र्वसा॑न॒ उप॑ वेतु॒ शेष॒: सं ग॑च्छतां त॒न्वा॑ जातवेदः ॥५॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे विद्वन् ! (**यः**) जो मनुष्य (**ते**) तेरे शिक्षण में (**आहुतः**) समर्पित हुआ (**स्वधाभिः**) अन्न जल आदि से (**चरति**) सेवा करता है उसे (**पितृभ्यः**) माता-पिता और विद्वानों की सेवा के लिए (**पुनः**) अपने पास से फिर उनके पास (**अव सृज**) तैयार करके भेज, हे विद्यावित् ! यह (**वसानः**) ज्ञान को धारण किये हुये (**शेषः**) शेष गृहस्थ आदि की (**आयुः**) जीवन समय को (**उपवेतु**) व्यतीत करे और (**तन्वा**) शरीर को (**संगच्छताम्**) उत्तमता से रखें ।

भावार्थः - हे विद्वन्! जिस मनुष्य को माता-पिता ने आपके शिक्षण में रखा है और वह अन्न आदि से आपकी सेवा करता है उसे योग्य बना कर पुनः माता-पिता के पास वापस करें कि वह शेष गृहस्थ आयुर्भाग को उनके साथ बितावे और शरीर को स्वस्थ और उत्तम रखे ॥५॥

यत्ते॑ कृ॒ष्णः श॑कु॒न आ॑तु॒तोद॑ पिपी॒लः स॒र्प उ॒त वा॒ श्वाप॑दः ।
अ॒ग्निष्टद्वि॒श्वाद॑ग॒दं कृ॑णोतु॒ सोम॑श्च॒ यो ब्रा॑ह्म॒णाँ आ॑वि॒वेश॑ ॥६॥

पदार्थः—हे माता-पिता ! (**यत्**) जिस (**ते**) आपके शरीर भाग को (**कृष्णः**) काले (**शकुनः**) पक्षी (**पिपीलः**) चींटी चींटे, (**सर्पः**) सर्प (**उत वा**) अथवा (**श्वापदः**) कुत्ते आदि किसी जानवर ने काटा है (**तत्**) उस (**विश्वात्**) सब से (**अग्निः**) वैद्य और (**सोमः**) ओषधि (**यः**) जो (**ब्राह्मणान्**) औषधिविद् विद्वानों के ज्ञान में (**आविवेश**) विद्यमान है (**अगदम्**) स्वस्थ (**कृणोतु**) करें ।

भावार्थः—जीवित माता-पिता आदि को यदि पक्षी, कीड़े-मकौड़े, सर्प अथवा कुत्ते आदि जानवर काट खायें तो वैद्य और ओषधि उन्हें इस से नीरोग करते रहें ॥६॥

अ॒ग्नेर्वर्म॒ परि॒ गोभि॑र्व्ययस्व॒ सं प्रोर्णु॑ष्व॒ पीव॑सा॒ मेद॑सा च ।
नेत्त्वा॑ धृ॒ष्णुर्हर॑सा॒ जर्हृ॑षाणो द॒धृग्वि॑ध॒क्ष्यन्प॑र्य॒ङ्खया॑ते ॥७॥

पदार्थः—इस जीव का मृतशरीर (**अग्नेः**) अग्नि की (**वर्म**) ज्वाला से (**गोभिः**) घृतादि के द्वारा (**परिव्ययस्व**) जलकर नष्ट हो जाता है, यह जीव दूसरे जन्म में (**पीवसा**) स्थूल (**मेदसा च**) मेदस् आदि से (**संप्रोर्णुष्व**) शरीर धारण कर युक्त होता है (**धृष्णुः**) प्रचण्ड, (**हरसा**) तेज से (**जर्हृषाणः**) अति तीव्र हुआ (**दधृग्**) कठोर यह अग्नि (**त्वा इत्**) इस जीव के शरीर को (**न विधक्ष्यन् पर्यङ्ख्याते**) जलाता हुआ पुनः न भस्मीभूत करे ।

भावार्थः—जीव के मृत शरीर को घृतादि के द्वारा प्रवृद्ध अग्नि अपनी ज्वालाओं से जलाकर नष्ट कर देता है अगले जन्म में जीव पुनः कर्मानुसार स्थूल और मेदस् आदि धातुओं वाले शरीर से युक्त होता है । यह प्रचण्ड अग्नि अगले जन्मों में मरने पर वार-वार इस शरीर को न जलावे अतः जीव को मोक्ष प्राप्त करना चाहिये । न वार-वार जन्म और मृत्यु हो और न अग्नि शरीर को जलावे ॥७॥

इ॒मम॑ग्ने चम॒सं मा वि जि॑ह्वरः प्रि॒यो दे॒वाना॑मु॒त सो॒म्याना॑म् ।
ए॒ष यश्च॑म॒सो दे॑व॒पान॒स्तस्मि॑न्दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ते ॥८॥

पदार्थ—(**अग्ने**) हे मनुष्य ! (**इमम्**) इस (**चमसम्**) शरीररूपी चमस पात्र को (**मा**) मत (**वि जिह्वरः**) उद्देश्य से भ्रष्ट न होने दे, यह (**देवानाम्**) इन्द्रियों का (**उत**) और (**सोम्यानाम्**) प्राणों का भी (**प्रियः**) प्यारा है, (**यः एष**) जो यह (**चमसः**) शरीर है वह (**देवपानः**) आत्मा के भोग का साधन है, (**तस्मिन्**) इसमें (**देवाः**) विद्वान् जन (**अमृताः**) अमरत्व को प्राप्त कर (**मादयन्ते**) आनन्दित होते हैं ।

भावार्थः—मनुष्य को चाहिए कि वह अपने इस शरीर को उद्देश्य से भ्रष्ट न होने दे । यह शरीर इन्द्रिय और प्राणों सभी का प्यारा आश्रय है । जीवात्मा के भोग का यह साधन है और इसी में विद्वान् जन अमरत्व=मोक्ष को भी सिद्ध करते हैं । यह शरीर भोग और अपवर्ग का साधन है—ऐसा समझना चाहिए ॥८॥

क्र॒व्याद॑म॒ग्निं प्र हि॑णोमि दू॒रं य॒मरा॑ज्ञो गच्छतु रिप्रवा॒हः ।
इ॒हैवायमित॑रो जा॒तवे॑दा दे॒वेभ्यो॑ ह॒व्यं व॑हतु प्रजा॒नन् ॥९॥

पदार्थः—(**क्रव्यादम्**) अन्त्येष्टि कर्म में मृत शरीर को खाने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को मैं गृहस्थ (**दूरम्**) दूर स्थान, अर्थात् गांव वा शहर से बाहर

Scanned by CamScanner

(**प्र हिणोमि**) रखता हूँ (**रिप्रवाहः**) शरीरादि पदार्थों का जलाने वाला यह अग्नि (**यमराज्ञः**) वायु और सूर्य किरणों वाले खुले स्थान में (**गच्छतु**) रहे, (**इतरः**) इससे पृथक् (**अयम्**) यह (**जातवेदाः**) जो (**प्रजानन्**) सबको ज्ञात हैं और (**देवेभ्यः**) यज्ञ देवों के लिए (**हव्यम्**) हवनीय पदार्थों को (**वहतु**) पहुँचाता है, वह (**इह**) यहां घर में (**एव**) ही स्थापित रहे ।

भावार्थः—मृत शरीर को खाने वाले अग्नि के स्थान श्मशान को गांव शहर आदि से दूर प्रदेश में रखना चाहिए और खुले वायु और धूप आदि के स्थानों में होना चाहिए । यज्ञ में देवों के लिए निक्षिप्त सामग्री को वहन करने वाले अग्नि को घर में स्थापित करना चाहिए ॥९॥

यो अ॒ग्निः क्र॒व्या॒त्प्र॒वि॒वेश॑ वो गृ॒हमि॒मं पश्य॒न्नित॑रं जा॒तवे॑दसम् ।
तं ह॑रामि पितृय॒ज्ञाय॑ दे॒वं स घ॒र्ममि॑न्वात्पर॒मे स॒धस्थे॑ ॥१०॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**क्रव्यात्**) क्रव्याद (**अग्निः**) अग्नि, हे मनुष्यो (**वः**) तुम्हारे (**गृहम्**) घर में (**प्रविवेश**) प्रवेश पा गया है (**तम्**) उसको (**इमम्**) इस (**इतरम्**) दूसरे (**देवम्**) देव (**जातवेदसम्**) जातवेदस् अग्नि को (**इतरम्**) उससे भिन्न (**पश्यन्**) देखते हुये (**पितृयज्ञाय**) पितृमेध अर्थात् अन्त्येष्टि कर्म के लिए श्मशान में ले जाता हूं, (**सः**) वह अग्नि (**परमे सधस्थे**) विस्तृत यज्ञ गृह में (**धर्मम्**) यज्ञ को (**इन्वात्**) प्राप्त करे ।

भावार्थः—मृतक कक्ष आदि में अग्नि जलता है और शव के साथ श्मशान में ले जाया जाता है वह शव जलाने के लिए होता है और उसे क्रव्याद कहते हैं । अन्त्येष्टि ही पितृमेध है यही पितृयज्ञ कहा गया है । गृह में स्थापित अग्नि जो उससे भिन्न है वह यज्ञ के लिए होता है॥१०॥

यो अ॒ग्निः क्र॑व्य॒वाह॑नः पि॒तॄन्यक्ष॑दृता॒वृधः॑ ।
प्रेदु॑ ह॒व्यानि॑ वोचति दे॒वेभ्य॑श्च पि॒तृभ्य॒ आ ॥११॥

पदार्थः—(**ऋतावृधः**) सत्य नियम पर आधारित (**यः**) जो अग्नि (**क्रव्यवाहनः**) क्रव्याद है वह (**पितॄन्**) सूर्य किरणों को (**यक्षत्**) प्राप्त होता है अतः वह (**पितृभ्यः**) पितृयज्ञ के लिए (**प्रवोचति**) कहा जाता है (**च उ इव**) और दूसरा भी है जो (**देवेभ्यः**) यज्ञ देवों के लिए (**हव्यानि**) हुत पदार्थों को (**देवेभ्य इति**) देवों के लिए ही प्राप्त कराता है ऐसा (**प्रवोचति**) कहा जाता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—अन्त्येष्टि संस्कार में मृत शरीर को जलाकर उसके परमाणुओं को सामग्री आदि से शुद्ध कर दिया जाता है कि वह सड़ने-गलने से रोग आदि को न पैदा करे अतः वह सूर्य किरण तक पहुँचकर समाप्त हो जाता है। अतः वह पितृमेध मात्र है और उसे क्रव्यादग्नि सम्पन्न करता है। परन्तु यज्ञों में देवों के निमित्त आहुति दी जाती है अतः वह देवों तक पहुंचाया जाता है और यह कार्य जातवेदस् अग्नि करता है ॥११॥

उशन्तस्त्वा नि धीमह्युशन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आ वह पितृन्हविषे अत्तवे ॥१२॥

पदार्थः—(**त्वा**) इस अग्नि को (**उशन्तः**) इच्छा के साथ हम (**नि धीमहि**) स्थापित करते हैं तथा (**उशन्तः**) चाहते हुए (**समिधीमहि**) प्रदीप्त करते हैं, यह भी (**उशन्**) चाहा गया हुआ ही (**उशतः**) चाहने वाले (**पितृन्**) माता-पिता आदि को हमारे द्वारा दी गई (**हविषे**) हवि को (**अत्तवे**) प्राप्त कराने के लिए (**आ वह**) ले जाता है ।

भावार्थः—हम इच्छापूर्वक अग्नि को उत्तम कर्मों के करने के लिए स्थापित करते हैं और प्रज्वलित करते हैं। इस प्रकार चाहा गया अग्नि अग्नि में दी गई हवि को जीवित माता-पिता आदि तक उनके ग्रहणार्थ ले जाता है। माता-पिता भी इस यज्ञ से लाभान्वित होते हैं ॥१२॥

यं त्वमग्ने समदहस्तमु निर्वापया पुनः ।
कियाम्ब्वत्र रोहतु पाकदूर्वा व्यल्कशा ॥१३॥

पदार्थः—(**त्वम् अग्ने**) यह अग्नि (**यम्**) जिस श्मशान प्रदेश को (**समदहः**) जला देता है (**तम् उ**) उसी को (**पुनः**) फिर (**निर्वापय**) घास आदि उगने के योग्य बना देता है, (**अत्र**) इसमें (**कियाम्बु**) पानी भी पड़ता है और (**व्यल्कशा**) विविध शाखाओं वाली (**पाकदूर्वा**) दूर्वा घास भी (**रोहतु**) उगती है ।

भावार्थः—जिस श्मशान प्रदेश को अग्नि जला देता है उसी में पानी भी पड़ता है और दूर्वा आदि लच्छेदार घास पैदा होती है । इस प्रकार वह पुनः हरा भरा हो जाता है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

शीर्तिके शीर्तिकावति ह्लादिके ह्लादिकावति ।
मण्डूक्या३ सु संगम इमं स्व१ग्निं हर्षय ॥१४॥

पदार्थः—(शीतिके) शैत्ययुक्त (शीतिकावति) शीतल गुण और परिणाम वाली तथा (ह्लादिके) आह्लादक और (ह्लादिकावति) आह्लादक गुण और परिणाम वाली ओषधियें (माडूक्या) वृष्टि के साथ (सु संगमः) संयुक्त होती है और (इमम्) इस (अग्निम्) मनुष्य को (सु) सुष्ठु रूप में (हर्षय) हर्षित करती है ।

भावार्थः—शीतल और शीतल गुण परिणाम, ह्लादक और ह्लादक गुण परिणाम वाली ओषधि वृष्टि के पड़ने पर उत्पन्न होकर रोगी मनुष्य के रोग को दूर करके उसे आनन्दित करती है ॥१४॥

यह दशम मण्डल का सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १७

ऋषिः—१—१४ देवश्रवा यामायनः ॥ देवता १, २, सरण्यूः । ३—६ पूषा । ७–९ सरस्वती । १०, १४, आपः । ११—१३ आपः सोमो वा॥ छन्दः—१, ५, ८ विराट्त्रिष्टुप् । २, ६, १२ त्रिष्टुप् । ३, ४, ७, ९—११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ १३ ककुम्मतीबृहती । १४ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, १२ धैवतः । १३ मध्यमः ॥ १४ गान्धारः ॥

त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोतीतीदं विश्वं भुवनं समेति ।
यमस्य माता पर्युह्यमाना महो जाया विवस्वतो ननाश ॥१॥

पदार्थ—(त्वष्टा) आकाश मध्यवर्ती तमोभाग (दुहित्रे) उषा पुत्री से (वहतुम्) विवाह (कृणोति) करता है (इति) अतः (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) लोक (समेति) अपने कार्य में प्रवृत्त होता है । वह उषा (यमस्य) सूर्य की माता होती हुई भी कालान्तर से (पर्युह्यमाना) विवाहित हुई (महः) महान् (विवस्वतः) सूर्य की (जाया) होती हुई (ननाश) नष्ट हो जाती है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मध्यम स्थानीय तमोभाग उषा को आदित्य में प्रवृष्ट कर देता है, इस कारण से उषा के उदय काल में, अब तम जा रहा है, सूर्य उदय होगा—ऐसा समझकर समस्त प्राणी अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं। यह उषा भी आदित्य की माता हुई भी कालान्तर से महान् सूर्य की जाया होकर नष्ट हो जाती है। आदित्य उदय काल में उषा के बाद उदित होता है अतः उषा उसकी माता है। परन्तु उदय के समय एक काल में उषा और सूर्य दोनों विद्यमान हो जाते हैं अतः यह उषा उसकी जाया है ॥१॥

अपागूहन्नमृतां मर्त्येभ्यः कृत्वी सवर्णामददुर्विवस्वते।
उताश्विनावभरद्यत्तदासीदजहादु द्वा मिथुना सरण्यूः ॥२॥

पदार्थः—किरणें (**अमृताम्**) अमृत धर्मिणी वृषाकपायी नामवाली अरुणोदय काल की उषा को (**मर्त्येभ्यः**) मनुष्यों से (**अपागूहन्**) छिपा लेती हैं, पुनः उसे अरुण के उदय होने पर (**सवर्णाम्**) सरण्यू नाम की सवर्ण प्रभा के रूप में (**कृत्वी**) करके (**विवस्वते**) आदित्य के लिए (**अददुः**) दे देती हैं, (**उत**) और भी (**यत्**) जो (**आसीद्**) होता है वह यह कि (**सरण्यूः**) सरण्यू (**अश्विनौ**) तमोभाग और ज्योतिर्मय भाग को (**अभरत्**) धारण करती है (**उ इति**) और इस प्रकार अपने पूर्व रूप को (**अजहात्**) छोड़ देती है, पुन रात्रि में (**द्वा मिथुना**) मध्यम तमोभाग और सन्नाटे को पैदा करती है।

भावार्थः—किरणें अमृत धर्मिणी वृषाकपायी नाम की अरुणोदय कालिक उषा को मनुष्यों से छिपा देती है। पुनः अरुण के उदय होने पर समान वर्ण वाली करके उसे आदित्य के समोप कर देती हैं। दी हुई सरण्यू अश्विनी अर्थात् तमोभाग और ज्योतिर्मय भाग को धारण करती है। वह पूर्वरूप को छोड़ देती है और आदि के सहारे पुनः रात्रि में मध्यम तमोभाग और रात्रि के सन्नाटे को उत्पन्न करती हैं ॥२॥

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत्पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(**अनष्टपशुः**) पशुओं का स्वामी (**भुवनस्य गोपाः**) भुवनों का पालक, (**विद्वान्**) सर्वज्ञ (**सः**) वह (**पूषा**) सबका पोषक (**अग्निः**) प्रकाश-

Scanned by CamScanner

स्वरूप परमेश्वर (त्वा) तुझ जीव को (इतः) इस उत्तम मार्ग को (प्रच्यावयतु) प्राप्त करावे, (त्वा) तुझे (एतेभ्यः) इन (पितृभ्यः) माता-पिता और (सुविदत्रियेभ्यः) ज्ञानी (देवेभ्यः) विद्वानों को (परिददत्) देवे ।

भावार्थः—पशु आदि का स्वामी, जगत् का पालक, सर्वज्ञ परमेश्वर हे जीव ! तुझे अच्छी अवस्था को प्राप्त करावे । वह उत्तम माता-पिता और विद्वानों को तुम्हें अगले जन्म में देवें ॥३॥

आयुर्विश्वायुः परि पासति त्वा पूषा त्वा पातु प्रपथे पुरस्तात् ।
यत्रासते सुकृतो यत्र ते ययुस्तत्र त्वा देवः सविता दधातु ॥४॥

पदार्थः—(विश्वायुः) सबको जीवन देने वाला, (आयुः) व्यापक (सविता) सबका उत्पादक (देवः) देव (पूषा) परमेश्वर हे जीव ! (त्वा) तेरी (परिपासति) रक्षा करे, (त्वा) तेरा (प्रपथे) उत्तम मार्ग में (पातु) रक्षा करे (त्वा) तुझे (पुरस्तात्) सामने से ((पातु) रक्षा करे (यत्र) जिस अवस्था को (सुकृतः) उत्तम कर्म करने वाले (आसते) प्राप्त करते हैं, (यत्र) जहां (ते) वे (ययुः) जाते हैं (तत्र) वहां (त्वा) तुझे (दधातु) भेजे ।

भावार्थः—सर्वव्यापक परमेश्वर जो जगत् उत्पादक है तुझ जीव की रक्षा करे, मार्ग में रक्षा करे और सामने भी तुम्हारी रक्षा करे। उत्तम कर्म करने वाले जिस शरीर वा पवस्था को प्राप्त करते, उसको तुझे देवे ॥४॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् ।
स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरोऽप्रयुच्छन्पुर एतु प्रजानन् ॥५॥

पदार्थः—(स्वस्तिदा) कल्याणदाता (आघृणिः) प्रकाश का पुंज, (सर्ववीरः) समस्त शक्तियों से युक्त (पूषा) परमेश्वर (इमाः) इन (सर्वाः) सब (आशाः) दिशाओं को (अनु वेद) जानता है, (सः) वह (अस्मान्) हमें (अभयतमेन) भयरहित मार्ग से (नेषत्) ले जावे, (प्रजानन्) हमारे कर्मों को जानता हुआ (अप्रयुच्छन्) निरन्तर (पुरः) हमारे आगे (एतु) रहे ।

भावार्थ—सबको सुख देने वाला, प्रकाशस्वरूप, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर समस्त दिशाओं को जानता है । वह हमें निर्भय मार्ग से ले चले। हमारे कर्मों को जानता हुआ वह निरन्तर हमारे आगे हो ॥५॥

Scanned by CamScanner

प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ॥६॥

पदार्थ—(**पूषा**) सबका पोषक भगवान् (**पथाम्**) मार्गों के (**प्रपथे**) बीच में (**अजनिष्ट**) विद्यमान है, (**पूषा**) सबका पोषक भगवान् (**दिवः**) आकाश के (**प्रपथे**) मार्ग में भी और (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**प्रपथे**) मार्ग में भी विद्यमान है, वह (**उभे**) दोनों ही (**प्रियतमे**) प्रियतम (**सधस्थे**) स्थानों में (**अभि**) विद्यमान है, (**प्रजानन्**) सब कुछ जानता हुआ (**आच**) यहां (**परा च**) वहां सर्वत्र (**चरति**) व्यापक हो रहा है ।

भावार्थः—सर्वपालक प्रभु मार्गों के मध्य, आकाश और पृथिवी के मध्य तथा द्युलोक और पृथिवी के मध्य विद्यमान है। वह यहां वहां सर्वत्र व्यापक हो रहा है ॥६॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने ।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥७॥

पदार्थः– (**देवयन्तः**) देवत्व भाव को प्राप्त हुए यज्ञकर्त्ता विद्वान् (**सरस्वतीम्**) अन्तरिक्षस्थ वाणी के लिए (**हवन्ते**) यज्ञ करते हैं, (**अध्वरे**) यज्ञ के (**तायमाने**) विस्तारित करने पर (**सरस्वतीम्**) माध्यमिका वाक् के प्रति (**हवन्ते**) हवन करते हैं। (**सुकृतः**) उत्तम कर्म करने वाले भी (**सरस्वतीम्**) इस सरस्वती के प्रति (**अह्वयन्त**) आह्वान करते हैं और यह (**सरस्वती**) माध्य-मिका वाक् (**दाशुषे**) यज्ञ आदि करने वाले को (**वार्यम्**) उत्तम धन अथवा वृष्टि-जल को (**दात्**) देती है ।

भावार्थः—देवत्व भाव को प्राप्त होकर यज्ञकर्त्ता लोग अन्तरिक्ष में विद्यमान माध्यमिका वाणी के प्रति अपने द्वारा किये जाने वाले यज्ञों आदि में आहुति देते हैं। उत्तम कर्म के कर्त्ता भी इसके प्रति आहुति प्रदान करते हैं। यह वाक् यजमान को वर्षा और उत्तम अन्नादि प्रदान करती है ॥७॥

सरस्वति या सरथं ययाथ स्वधाभिर्देवि पितृभिर्मदन्ती ।
आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयस्वानमीवा इष आ धेह्यस्मे ॥८॥

पदार्थः—(**सरस्वति**) यह अन्तरिक्षस्थ वाणी (**देवि**) दिव्य वाणी है

Scanned by CamScanner

(या) जो (सरथम्) एक समान स्थान अन्तरिक्ष में (ययाथ) गतिमान् रहती है, यह (स्वधाभिः) हवि आदि रूप अन्न और (पितृभिः) यज्ञ देवों के साथ (मदन्ती) यज्ञभाग को लेकर तृप्त होती हुई अपने कार्य करती है। यह वाणी (अस्मिन्) हमारे इस (बर्हिषि) यज्ञ अथवा अन्तरिक्ष में (आसद्य) स्थित होकर (मादयस्व) वर्षा आदि से सबको तृप्त करती और (अस्मे) हमारे लिए (अनमीवाः) रोगरहित (इषः) अन्न को (आ धेहि) देती है।

भावार्थः—यह माध्यमिका वाक् दिव्य वाणी है, यह यज्ञ के देवों के साथ हवि के भाग को ग्रहण करती है और अन्तरिक्ष में स्थित हुई वृष्टि का साधन बनती है और लोगों को नीरोगतायुक्त अन्न आदि प्रदान करती है ॥८॥

सरस्वतीं यां पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
सहस्रार्घमिळो अत्र भागं रायस्पोषं यजमानेषु धेहि ॥९॥

पदार्थः—(याम्) जिसको (पितरः) माता-पिता ज्ञानी जन (यज्ञम्) यज्ञ (अभिनक्षमाणः) करते हुए (दक्षिणा) दक्षिण दिशा में बैठकर (हवन्ते) हवि आदि पदार्थ देते हैं वह (सरस्वती) माध्यमिका वाक् (अत्र) इस यज्ञ में (सहस्रार्घम्) बहुतों द्वारा प्रशंसित (इलः) अन्न के (भागम्)भाग को और (रायः) धन की (पोषम्) पुष्टि को (यजमानेषु) यजमानों को (धेहि) देवे।

भावार्थः—ज्ञानी पितृजन और विद्वान् जन दक्षिण दिशा में बैठकर यज्ञ करते हैं और सरस्वती को हवि प्रदान करते हैं। वह माध्यमिका वाणी अन्न और धन यजमान को प्रदान करे ॥९॥

आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु ।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि ॥१०॥

पदार्थः—(मातरः) जगत् की माता=कारण (आपः) जलें (अस्मान्) हमें (शुन्धयन्तु) शुद्ध करें, (घृतप्वः) किरणों से शुद्ध हुई वे (घृतेन) अपनी स्निग्धता से (नः) हमें (पुनन्तु) शुद्ध पवित्र करें, (देवीः) दिव्य गुणों वाली ये जलें (विश्वम्) समस्त (रिप्रम्) गन्दगी को (हि) निश्चय से (प्रवहन्ति) बहा ले जाती है, (उत इत्) और भी (आभ्यः) इनसे (पूतः) स्वच्छ किया हुआ मैं (शुचिः) शुद्ध (आ एमि) हो जाता हूं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जलें जगत् का कारण हैं। ये हमारे शरीर की बाह्य अशुद्धियों को दूर करती हैं। समस्त गन्दगी को ये बहा ले जाती हैं। इनसे हम सभी साफ-सुथरे हो जाते हैं ॥१०॥

द्रप्सश्चस्कन्द प्रथमाँ अनु द्यूनिमं च योनिमनु यश्च पूर्वः ।
समानं योनिमनु सञ्चरन्तं द्रप्सं जुहोम्यनु सप्त होत्राः ॥११॥

पदार्थः—(**द्रप्सः**) द्रुत गति वाला विद्युदात्मक सोम तत्त्व (**प्रथमान्**) पूर्व कालिक सृष्टि के (**द्यून्**) द्युलोक आदि को (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**चस्कन्द**) प्राप्त था (**च**) और (**इमम्**) इस (**योनिम्**) आकाश (**अनु**) में भी (**च**) और (**यः**) जो (**पूर्वः**) पूर्व सृष्टि में आकाश था, उसमें भी विद्यमान था। (**सप्त**) सात (**होत्राः**) यज्ञ करने वाले हम लोग (**समानम्**) समान (**योनिम्**) आकाश अथवा कारण (**अनु**) में (**संचरन्तम्**) अपना कार्यकलाप करने वाले (**द्रप्सम्**) सोम के (**अनु**) प्रति (**जुहोमि**) आहुति देते हैं।

भावार्थः—सोम एक प्रकार का विद्युदात्मक तत्व है जो पूर्व सृष्टि में द्यु आदि लोकों में व्याप्त था और इस सृष्टि में भी है। वह आकाश में है और पहली सृष्टि के आकाश में भी था। ऋत्विजों को इस तत्त्व का ज्ञान करना चाहिए ॥११॥

यस्ते द्रप्सः स्कन्दति यस्ते अंशुर्बाहुच्युतो धिषणाया उपस्थात् ।
अध्वर्योर्वा परि वा यः पवित्रात्तं ते जुहोमि मनसा वषट्कृतम् ॥१२॥

पदार्थः—हे जगत् के कर्ता प्रभो! (**ते**) आपका (**यः**) जो (**द्रप्सः**) सोमात्मक तत्त्व (**स्कन्दति**, सर्वत्र व्याप्त हो रहा है, (**ते**) आपका (**यः**) जो (**अंशुः**) सोमतत्त्व (**बाहुच्युतः**) प्राण और उदान से निकल कर (**धिषणायाः**) वाणी के (**उपस्थात्**) उद्गम स्थान=आकाश से सर्वत्र फैलता है, (**वा**) अथवा (**यः**) जो (**अध्वर्योः**) वायु के (**परि**) चारों तरफ है, (**यः**) जो (**पवित्रात्**) वज्र से प्राप्त है और जो (**वषट्कृतम्**) सूर्य द्वारा उत्पादित हो रहा है (**ते**) आपके (**तम्**) उस सोमतत्त्व को मैं (**मनसा**) मन से (**जुहोमि**) ग्रहण करता हूँ।

भावार्थः—सृष्टिकर्त्ता भगवान् की सृष्टि में जो सोमात्मक विद्युत्तत्त्व

Scanned by CamScanner

सर्वत्र व्याप्त है और प्राण उदान से, आकाश से, वायु से, मेघस्थ वज्र से प्रकट होता है उसका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ॥१२॥

यस्ते॑ द्र॒प्सः स्क॒न्नो यस्ते॑ अं॒शुर॒वश्च॒ यः प॒रः स्रु॒चा ।
अ॒यं दे॒वो बृह॒स्पति॒ः सं तं सि॑ञ्चतु॒ राध॑से ॥१३॥

पदार्थः—हे भगवन् ! (ते) आपका (यः) जो (द्रप्सः) सोमतत्त्व (स्कन्नः) व्याप्त है (ते) आपका (यः) जो (अंशुः) किरण (स्रुचा) मेघस्थ विद्युत् से (अवः) इधर (च) और (यः) जो (परः) उधर व्याप्त हो रहा है (तम्) उस (इमम्) इसको (अयम्) यह (बृहस्पतिः) वेद का ज्ञाता (देवः) विद्वान् हमारे लिए (राधसे) धनादि की प्राप्त्यर्थ (सम् सिञ्चतु) प्राप्त करावे ।

भावार्थः—भगवान् का सोमत्तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है और यह मेघस्थ विद्युत् से सर्वत्र इधर-उधर व्याप्त हो रहा है । उसको विद्वान् जानकर हमारी समृद्धि के लिए उसका प्रयोग करें ॥१३॥

पय॑स्वती॒रोष॑धय॒ः पय॑स्वन्माम॒कं वचः॑ ।
अ॒पां पय॑स्व॒दित्पय॒स्तेन॑ मा स॒ह शु॑न्धत ॥१४॥

पदार्थः—(ओषधयः) ओषधियां (पयस्वतीः) सारभूत तत्त्व से युक्त हैं उनके प्रयोग से (मामकम्) मेरा (वचः) वचन भी (पयस्वत्) सारमय और मधुर हो, (अपाम्) जलों का (पयः) जल (पयस्वत्) सारयुक्त होता है (तेन सह) उससे हे आयुर्वेदज्ञ जन ! (मा) मुझको (शुन्धत) शुद्ध करो ।

भावार्थः—ओषधियां सारभूत तत्त्व से युक्त हैं, उनके प्रयोग से वाणी को मधुर और अच्छी बनाना चाहिए । जलों से वैज्ञानिक ढंग पर निर्मित जल सारभूत होता है और आयुर्वेदज्ञों को चाहिए कि उससे रोग का निवारण करें ॥१४॥

यह दशम मण्डल में सतरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१८

ऋषिः—१—१४ सङ्कुसुको वामायनः ॥ देवता—१—४ मृत्युः । ५ धाता । ६ त्वष्टा । ७—१३ पितृमेधः । १४ पितृमेधः प्रजापतिर्वा ॥ छन्दः—१, ५, ७—९ निचृत्त्रिष्टुप् । २—४, ६, १२, १३ त्रिष्टुप् । १० भुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत्पङ्क्तिः । १४ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—१०, १२, १३, धैवतः । ११ पञ्चमः । १४ गान्धारः ॥

परं मृत्यो अनु परेहि पन्थां यस्ते स्व इतरो देवयानात् ।
चक्षुष्मते शृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजां रीरिषो मोत वीरान् ॥१॥

पदार्थः—(**मृत्यो**) यह मृत्यु (**परम्**) दूसरे उस (**पन्थाम्**) मार्ग(**अनु**) पर (**परेहि**) ले जावे उस मनुष्य को जो देवयान मार्ग के गमन योग्य नहीं है और (**यः**) जो मार्ग (**ते स्वः**) साधारणतः उसका अपना तथा (**देवयानात्**) देवयान मार्ग से (**इतरः**) पृथक् और भिन्न हैं, परमेश्वर की (**ब्रवीमि**) प्रार्थना करता हूँ कि (**चक्षुष्मते** , नेत्र वाले, (**शृण्वते**) श्रवण वाले के समान कार्य करने वाला (**ते**) यह मृत्यु (**न**) हमारी **प्रजाम्**) सन्तति को (**मा**) मत (**रीरिषः**) मारे (**उत**) और (**वीरान्**) हमारे वीरों को (**मा**) मत मारे ।

भावार्थः—देवयान मार्ग पर न जाने योग्य मनुष्य को मृत्यु देवयान से पृथक् अपने साधारण मार्ग(पैदा हो मरो) अथवा पितृयाण से ले जाता है । उसका यह कार्य नेत्र वाले और कान वाले मनुष्य के समान विवेचन किया हुआ सा है । भगवान् से प्रार्थना है कि वह मृत्यु हमारे सन्तान और वीर पुरुषों आदि को न मारे ॥१॥

मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ।
आप्यायमानाः प्रजया धनेन शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः ॥२॥

पदार्थः—(**यज्ञियासः**) हे यज्ञशील जनो ! आप लोग (**मृत्योः**) मृत्यु के (**पदम्**) साधारण पद को (**योपयन्तः**) न प्राप्त करते हुए (**यत्**) जब (**ऐत**) इस जीवन से पृथक् हो तब (**द्राघीयः**) लम्बी (**प्रतरम्**) उत्तम(**आयुः**) आयु को (**दधानाः**) धारण करते हुए, (**प्रजया**) सन्तान (**धनेन**) धन से (**आप्यायमानाः**) परिपूर्ण हुए (**शुद्धाः**) शुद्ध और (**पूताः**) पवित्र (**भवत**) होओ ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—यज्ञशील, दानी मनुष्य मृत्यु के साधारण पद—पैदा होना और मरना—के अतिरिक्त (पितृयाण) अवस्था को प्राप्त होते हैं और लम्बी आयु, सन्तान और धन-धान्य से पूर्ण होकर शुद्ध पवित्र गृहस्थ आदि के रूप में उत्पन्न होते हैं ॥२॥

इमे जीवा वि मृतैराववृत्रन्नभूद्भद्रा देवहूतिर्नो अद्य ।
प्राञ्चो अगाम नृतये हसाय द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥३॥

पदार्थः—(**इमे**) ये (**जीवाः**) जीव जन (**मृतैः**) मरणधर्मा वस्तुओं से (**वि आ अववृत्रन्**) विरक्त हो जाते हैं (**देवहूतिः**) यज्ञ कर्म (**नः**) हम इन सबके लिए (**अद्य**) आज-कल, सदा (**भद्रा**) कल्याणकारक (**अभूत**) होवे, (**द्राघीयः**) दीर्घ, (**प्रतरम्**) उत्कृष्ट (**आयुः**) आयु को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**प्राञ्चः**) प्रज्ञावान् ये सब (**नृतये**) नृत्य (**हसाय**) हंसने के लिए (**अगाम**) होवें ।

भावार्थः—विनश्वर पदार्थों से विरक्त होने वाले कर्मकाण्डी जन यज्ञ जैसे कल्याणकारी कर्म को करके लम्बी आयु प्राप्त कर नृत्य, हास आदि के योग्य जीवन को मरणानन्तर प्राप्त करते हैं ॥३॥

इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।
शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥४॥

पदार्थ—भगवान् कहते हैं ! (**जीवेभ्यः**) जीवों के लिए (**इमम्**) इस (**परिधिम्**) कर्म मर्यादा को (**दधामि**) स्थापित करता हूँ, (**एषाम्**) इन जीवों में से (**अपरः**) कोई भी (**एतम्**) इस (**अर्थम्**) मर्यादा से (**नु**) निश्चय ही (**मा**) मत (**गात्**) हटे (**शरदः**) शरद् की (**शतम्**) शती तक (**पुरूचीः**) उससे अधिक भी (**जीवन्तु**) जीवें (**मृत्युम्**) मृत्यु को (**अन्तः**) दूर (**दधताम्**) रखें ।

भावार्थः—जीवों के लिए भगवान् ने वेदज्ञान की परिधि बांध दी है (कोई भी इस परिधि वा स्थापित मर्यादा से न हटे) सभी सौ शरद् ऋतुओं तक अथवा उससे भी अधिक काल तक जीवन धारण करें और मृत्यु को अपने से दूर रखें ॥४॥

Scanned by CamScanner

यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु ।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम् ॥५॥

पदार्थ —(**यथा**) जैसे (**अहानि**) दिन और रात्रि (**अनुपूर्वम्**) पूर्वापर के अनुक्रम से (**भवन्ति**) परिवर्तित होते हैं, (**यथा**) जैसे (**ऋतवः**) ऋतुएं (**ऋतुभिः**) ऋतुओं के साथ (**यन्ति**) क्रम से होती हैं, (**यथा**) जिस प्रकार (**अपरः**) दूसरा (**पूर्वम्**) पूर्व को (**न**) नहीं (**जहाति**) छोड़ता है (**एव**) ऐसे ही (**धातः**) हे धारक परमेश्वर (**एषाम्**) इन जीवों की(**आयूंषि**) आयु को (**कल्पय**) करते हो ।

भावार्थः जिस प्रकार दिन और रात्रि पूर्वापर क्रम से होते हैं, जिस प्रकार ऋतुएं ऋतुओं के साथ अनुक्रम से होती हैं, जिस समय का एक भाग पूर्व वाले के क्रम को नहीं त्यागता है, वैसे भगवान् जीवों की आयु के चक्र को चलाता है। जन्म के बाद मृत्यु और मृत्यु के बाद जन्म ॥५॥

आ रोहतायुर्जरसं वृणाना अनुपूर्वं यतमाना यति ष्ठ ।
इह त्वष्टा सुजनिमा सजोषा दीर्घमायुः करति जीवसे वः ॥६॥

पदार्थः (**अनुपूर्वम्**) अनुपूर्व क्रम से (**यतमानाः**) यत्नवान् हुए आप (**यति**) जितने भी (**स्थ**) हो (**जरसम्**) परिपक्वता को (**वृणाना**) प्राप्त करते हुए, हे मनुष्यो ! (**आयुः**) आयु को (**आ रोहत**) भोगो, (**सुजनिमा**) उत्तम जन्म वाला (**त्वष्टा**) सूर्य (**इह**) इस जीवन में (**सजोषाः**) साथी बना हुआ (**वः**) आपके (**जीवसे**) जीने के लिए (**दीर्घम्**) लम्बी (**आयुः**) आयु (**करति**) करे ।

भावार्थ —हे मनुष्यो ! आप जितने भी हो अनुक्रम से यत्न करते हुए परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त हो आयु को भोगो। तुम्हारे जीने के लिए सूर्य जो काल का जनक है, दीर्घ आयु प्रदान करे ॥६॥

इमा नारीरविधवाः सुपत्नीराञ्जनेन सर्पिषा सं विशन्तु ।
अनश्रवोऽनमीवाः सुरत्ना आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः— (**अविधवाः**) पतियुक्त (**इमाः**) ये (**नारीः**) स्त्रियाँ (**सुपत्नीः**) उत्तम पत्नी होकर (**आंजनेन**) अंजन आदि और (**सर्पिषा**) घृत आदि सुगन्धित पदार्थों से शोभित हुई (**संविशन्तु**) अपने घरों में जावें, तथा (**अनश्रवः**) विना आंसु बहाये (**अनमीवाः**) नीरोग (**सुरत्नाः**) उत्तम रत्न आदि से सुसज्जित (**जनयः**) सन्तानों को उत्पन्न करने में समर्थ (**अग्रे**) अग्रणी बनी (**योनिम्**) गृह में (**आ रोहन्तु**) आवें ।

भावार्थ—पति से युक्त उत्तम पत्नी स्त्रियाँ अंजन और सुगन्ध आदि से युक्त होकर घर में प्रवेश करें तथा सदा सुखी रहती हुई उत्तम सन्तान को उत्पन्न कर घर में आभूषण आदि से युक्त रहें ॥७॥

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि ।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ ॥८॥

पदार्थः—(**नारि**) हे स्त्रि (**जीवलोकम्**) जीवित पति को (**अभि**) लक्ष्य करके (**उदीर्ष्व**) उठ खड़ी हो, (**गतासुम्**) मृत (**एतम्**) इस पति के पास (**उप शेषे**) क्यों पड़ी है, (**एहि**) आ, (**हस्ताग्राभस्य**) हाथ ग्रहण करने वाले (**दिधिषोः**) नियुक्त (**तव**) इस (**पत्युः**) पति के साथ (**इदम्**) इस (**जनित्वं**) सन्तान जनने को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**संबभूथ**) सम्बन्ध कर ।

भावार्थः –जब कोई स्त्री जो सन्तान आदि करने में समर्थ है विधवा हो जाती है तब वह नियुक्त पति के साथ सन्तान उत्पत्ति के लिए नियोग कर सकती है ॥८॥

धनुर्हस्तादाददानो मृतस्यास्मे क्षत्राय वर्चसे बलाय ।
अत्रैव त्वमिह वयं सुवीरा विश्वाः स्पृधो अभिमातीर्जयेम ॥९॥

पदार्थः—(**मृतस्य**) मरे हुए क्षत्रिय के (**हस्तात्**) हाथ से (**धनुः**) धनु आदि और अधिकारों को (**आददानः**) लेता हुआ, हे क्षत्रिय बालक ! (**अस्मे**) हमारे लिए (**क्षत्राय**) राष्ट्र-रक्षण (**वर्चसे**) वर्चस, और (**बलाय**) बल के लिए समर्थ हो । (**अत्र**) यहां (**एव**) ही (**त्वम्**) तू ठहर ! (**सुवीराः**) उत्तम सन्तानों और वीरों वाले (**वयम्**) हम लोग (**विश्वाः**) समस्त (**अभिमातीः**) अभिमान करने वाली (**स्पृधः**) शत्रु सेना पर (**जयेम**) विजय प्राप्त करें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मृत क्षत्रिय राजा के हाथ से उसका पुत्र उसके धनुष आदि राजचिन्हों और अधिकार को लेकर प्रजा के लिए राष्ट्र-रक्षा, वर्चस् और बल से युक्त होवे। वह अपने राज्य में ही रहे और उत्तम वीरों से युक्त होकर समस्त शत्रुसेना पर विजय प्राप्त करे ॥९॥

उप॑ सर्प मा॒तरं॒ भूमि॑मे॒तामु॑रु॒व्यच॑सं पृथि॒वीं सु॒शेवा॑म्।
ऊर्ण॑म्रदा युव॒तिर्दक्षि॑णावत ए॒षा त्वा॑ पातु॒ निर्ऋ॑तेरु॒पस्था॑त् ॥१०॥

पदार्थः—हे जीव ! (**सुशेवाम्**) उत्तम सुख वाली, (**पृथिवीम्**) विस्तीर्ण (**उरु व्यचसम्**) बहुत प्रस्तार वाली (**एताम्**) इस (**मातरम्**) माता (**भूमिम्**) भूमि को (**उप सर्प**) प्राप्त हो, (**उर्णम्रदा**) सुकुमार मृदु (**दक्षिणावते**) दक्ष जीवों के लिए (**युवति**) युवती के समान (**एषा**) यह (**त्वा**) तुझे (**निर्ऋतेः**) क्लेश के (**उपस्थाद्**) स्थान से (**पातु**) सुरक्षित रखे।

भावार्थः - सृष्टि की आदिम अवस्था में अमैथुनी सृष्टि होती है। उसी के विषय में कहा जा रहा है कि जीव सुकुमार विस्तृत पृथिवी के गर्भ में आता है और वह युवती स्त्री के समान यह इस जीव की रक्षा करती है और दुःख नहीं होने देती है ॥१०॥

उच्छ्व॑ञ्चस्व पृथिवि॒ मा नि बा॑धथाः सूपाय॒नास्मै॑ भव सूपव॒ञ्चना।
मा॒ता पु॒त्रं यथा॑ सि॒चाभ्ये॑नं भूम ऊर्णुहि ॥११॥

पदार्थः—(**पृथिवि**) यह भूमि (**उत् श्वञ्चस्व**) उफनी हुई होती है, (**मा**) नहीं (**नि बाधथाः**) पीड़ित करती है (**अस्मै**) इस जीव के लिए (**सूपायना**) उत्तम परिचारिका तथा (**सूपवञ्चना**) सुस्थिर (**भव**) होती है (**माता यथा**) माता के समान (**पुत्रम्**) पुत्र को (**सिचा**) अपने आच्छादन से (**भूमे**) यह भूमि (**अभि उर्णुहि**) आच्छादित करती है।

भावार्थः—यह भूमि अमैथुनी सृष्टि की कारणभूत हुई उफनी रहती है, जीव को अपने गर्भ में धारण कर सुरक्षित रखती है। जिस प्रकार माता पुत्र को अपने आंचल में छिपा रखती है वैसे यह जीव को अपने अन्तराल में रखती है ॥११॥

Scanned by CamScanner

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम् ।
ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥१२॥

पदार्थः—(**पृथिवी**) भूमि (**उच्छ्वसमाना**) उफनी (**सुतिष्ठतु**) सुष्ठु रूप से स्थिर रहे (**सहस्रम्**) सहस्रों (**मितः**) परिगणित पार्थिव परमाणु (**हि**) निश्चय से (**उप श्रयन्ताम्**) इसमें संयुक्त रहे, (**ते**) वे परमाणु (**घृतश्चुतः**) घृत की तरह चिकने हुए (**अस्मै**) इस जीव के लिए (**गृहाः**) घर (**भवन्तु**) बने रहें (**अत्र**) इस अवस्था में ये इस जीव के लिए (**विश्वाहा**) सदा (**शरणाः**) आश्रय (**सन्तु**) होवें ।

भावार्थः—पृथिवी उफनी रहकर स्थिर रहती है । इसके पार्थिव परमाणु सटे रहते हैं । ये ही इस जीव के लिए मिलकर घर बनते हैं और इसके लिए इस अवस्था में आश्रय बने रहते हैं ॥१२॥

उत्ते स्तभ्नामि पृथिवीं त्वत्परीमं लोगं निदधन्मो अहं रिषम् ।
एतां स्थूणां पितरो धारयन्तु तेऽत्रा यमः सादना ते मिनोतु ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**ते**) तुम्हारे लिए (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**उत् स्तभ्नामि**) दृढ़ करता हूँ (**त्वत्परीमम्**) तुम्हारे ऊपर यह पृथिवी न आ पड़े इस रूप में (**इमम्**) इस (**लोगम्**) जन समूह को (**निदधत्**) धारण करता हुआ मैं किसी को (**मा**) नहीं (**रिषम्**) कष्ट देता, (**ते**) तुम्हारे लिए (**एताम्**) इस (**स्थूणाम्**) दृढ़ स्तम्भसमान भूमि को (**पितरः**) सूर्य किरणें एवं आकर्षण शक्तियां (**धारयन्तु**) धारण करती हैं । (**यमः**) जगन्नियन्ता मैंने (**अत्र**) इसे (**ते**) तुम्हारा (**सदना**) रहने का स्थान (**मिनोतु**) बनाया है ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! तुम्हारे लिए मैं परमेश्वर इस पृथिवी को तुम्हारे रहने के लिए दृढ़ करता हूँ । इस पर लोगों को ऐसा धारण करता हूं कि पृथिवी कभी तुम्हारे ऊपर न हो और तुम्हें कोई कष्ट न हो । इस दृढ़ पृथिवी को सूर्य की आकर्षण शक्तियां धारण करती हैं और इसे जगन्नियन्ता मैंने तुम्हारे रहने का स्थान बनाया है ॥१३॥

प्रतीचीने मामहनीष्वाः पर्णमिवा दधुः ।
प्रतीचीं जग्रभा वाचमश्वं रशनया यथा ॥१४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः--(इष्टवाः) वाण के (पर्णम्) पुच्छ के समान विद्वान् लोग (माम्) मुझको (प्रतीचीने) कष्ट आदि से रहित (अहनि) दिन में (आ दधुः) पुष्ट करें, (यथा) जैसे (रशनया) रस्सी से (अश्वम्) घोड़े को वश में किया जाता है वैसे (प्रतीचीम्) प्रत्यग्ज्ञान वाली (वाचम्) वाणी को अर्थात् वेदवाणी को (जग्रभ) ग्रहण करूं ।

भावार्थः—जिस प्रकार बाण में पुच्छ धृत है उसी प्रकार विद्वज्जन मुझे उत्तम निर्वाध दिनों में ला देते हैं और हमारे बुरे दिन भी उत्तम बन जाते हैं । जिस प्रकार रास से घोड़ा काबू में रखा जाता है वैसे ही ज्ञानमयी वेदवाणी को मैं अपने काबू में करूं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१९

ऋषिः—१—८ मथितो यामायनो भृगर्वा वारुणिश्च्यवनो वा भार्गवः ॥ देवता—१[१], २—८ आपो गावो वा । २[२] अग्नीषोमौ ॥ छन्दः—१, ३—५ निचृदनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ७, ८ अनुष्टुप् । ६ गायत्री ॥ स्वरः—१ -५, ७, ८ गान्धारः । ६ षड्जः ॥

नि वर्तध्वं मानु गातास्मान्त्सिषक्त रेवतीः ।
अग्नीषोमा पुनर्वसू अस्मे धारयतं रयिम् ॥१॥

पदार्थः—(रेवतीः) धन आदि से युक्त जलें (निवर्तध्वम्) हमारे पास रहें, (मा) नहीं (गात) जावें (अस्मान्) हमें (सिसक्त) सिक्त करें, (पुनर्वसू) पुनर्वसू नक्षत्र अथवा वसाने वाले (अग्नि सोमा) अग्नि और सोम (अस्मे) हमारे लिए (रयिम्) धन को (धारयतम्) धारण करावें ।

भावार्थः--जलों का रस रेवती है उससे और अन्न आदि धनों से युक्त जलें हमें सुलभ रहें तथा हमें सिक्त करती रहें । सबको वसाने वाले अग्नि और सोम=अग्नि वायु हमारे लिए धनादि पदार्थों की प्राप्ति के साधन बनें ॥१॥

Scanned by CamScanner

पुनरेना नि वर्तय पुनरेना न्या कुरु ।
इन्द्र एणा नि यच्छत्वग्निरेना उपाजतु ॥२॥

पदार्थः—हे इन्द्र=आत्मन् ! (**एनाः**) इन अन्यत्र जाने वाले जलतत्त्वों को अपने शरीर में रस रूप में लौटा (**पुनः**) फिर (**एनाः**) इन्हें (**नि आकुरु**) अपने अधीन कर (**इन्द्रः**) विद्युत् इन्हें (**नियच्छतु**) अपने काबू में रखे (**अग्निः**) अग्नि (**एनाः**) इन्हें (**उप आजतु**) उपयोगी बनावे ।

भावार्थः—हे आत्मन् ! शरीर में विद्यमान जल तत्त्वों को इसमें रोक रख, इन्हें अपने नियन्त्रण में रख। शरीरस्थ विद्युत् इन्हें काबू में रखे और शरीरस्थ अग्नि इन्हें अपने उपयोगी बनावे ॥२॥

पुनरेता नि वर्तन्तामस्मिन्पुष्यन्तु गोपतौ ।
इहैवाग्ने नि धारयेह तिष्ठतु या रयिः ॥३॥

पदार्थः—(एताः) ये गौवें (**पुनः**) फिर चरागाह आदि से (**निवर्त्तन्ताम्**) वापस आवें, (**अस्मिन्**) इस (गोपतौ) गोपालक में (**पुष्यन्तु**) पुष्ट होवें, (**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**इह**) इस गोपति में (**एव**) ही (**नि धारय**) स्थापित कर (**या**) जो (**रयिः**) धन है वह (**इह**) इसमें (**तिष्ठतु**) स्थित रहे ।

भावार्थः—ये गौवें चरागाहों में जावें और मुझ गोपति के पास सदा वापस आती रहें और पुष्टि को प्राप्त करती रहें। प्रकाशस्वरूप परमेश्वर मुझ गोपालक के पास इन्हें सदा बना रखे और धन मेरे पास स्थित रहे ॥३॥

यन्नियानं न्ययनं संज्ञानं यत्परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनं यो गोपा अपि तं हुवे ॥४॥

पदार्थः - (**यत्**) जो (**नियानम्**) जीवों का नीचे जाना है, जो (**नि अयनम्**) निम्न लोक में रहना है (**संज्ञानम्**) जो उनका ज्ञान प्राप्त करना है, (**यत्**) जो (**परा अयनम्**) परम ऊंचे पद को प्राप्त करना है, (**यद्**) जो (**आवर्त्तनम्**) मोक्ष से वापस आना है उस सबका मैं (**हुवे**) ग्रहण करता हूं अर्थात् ज्ञान प्राप्त

Scanned by CamScanner

करता हूँ (यः) जो (गोपाः) इन्द्रियों का पालक जीव है (तम्) उसको (अपि) भी (हुवे) जानता हूँ ।

भावार्थः—विद्वान् को योग्य है कि वह जीवों का नीचे जाना, निकृष्ट योनियों में रहना, उनके ज्ञान प्राप्त करने की अवस्था, मोक्ष को प्राप्त होना और उससे पुनः समय पर पुनरावर्तन होना और इन्द्रियों के पालक जीव को सब प्रकार से जाने ॥४॥

य उदानड् व्ययनं य उदानट् परायणम् ।
आवर्तनं निवर्तनमपि गोपा नि वर्तताम् ॥५॥

पदार्थः—(**गोपाः**) यह रक्षक परमेश्वर है जो (**वि अयनम्**) विविध लोकों को(**उद् आनट्**) उत्तम मार्ग से प्राप्त कराता है, (**यः**) जो (**परा अयनम्**) उत्तम मार्ग को (**उद् आनट्**) प्राप्त कराता है, (**आवर्त्तनम्**) इस लोक में आना (**निवर्त्तनम्**) पुनः लौटना (**अपि**) भी (**निवर्तताम्**) नियमपूर्वक चलाता है ।

भावार्थः—यह जगत् का रक्षक भगवान् है जो जीवों के विविध लोकों में जाने, मोक्ष को प्राप्त करने, मोक्ष से वापस आने और पुनः कर्मानुसार वापस जाने की व्यवस्था करता है ॥५॥

आ निवर्त नि वर्तय पुनर्न इन्द्र गा देहि । जीवाभिर्भुनजामहै ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! तू ही (**निवर्त**) संसार को नियम से चलाता है, (**आ नि वर्तय**) संसार में लौटाकर लाता है, (**पुनः**) फिर (**नः**) हमें (**गाः**) इन्द्रियाँ (**देहि**) देता है (**जीवाभिः**) प्राणशक्तियों से युक्त हो हम (**भुनजामहै**) भोग को प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—परमात्मा ही संसार को नियम से चलाता है । वह हम जीवों को योनियों से लौटा कर इसमें लाता है । हमें इन्द्रियां आदि देता है और हम प्राणों से अर्थात् इन्द्रिय वृत्तियों से युक्त होकर भोग को भोगते हैं ॥६॥

परि वो विश्वतो दध ऊर्जा घृतेन पयसा ।
ये देवाः के च यज्ञियास्ते रय्या सं सृजन्तु नः ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे विद्वज्जन ! (**विश्वतः**) सर्वत्र स्थित (**वः**) आप लोगों को (**ऊर्जा**) दुग्ध से बने पदार्थ से, (**घृतेन**) घी से (**पयसा**) दूध से (**परि दधे**) परिपुष्ट करता हूँ [मैं गृहस्थ], (**ये**) जो (**के च**) कोई भी (**देवाः**) यज्ञदेव (**यज्ञियाः**) यज्ञयोग्य हैं (**ते**) वे (**नः**) हमें (**रय्या**) गौ आदि धन से (**संसृजन्तु**) संयुक्त करें ।

भावार्थः—हे विद्वज्जन ! आप जहां कहीं भी हों मैं गृहस्थ दुग्ध-निर्मित पदार्थ, घृत और दूध से आप लोगों को परिपुष्ट करता हूं । जो यज्ञार्ह देव हैं वे हमें गौ आदि धन से युक्त करें ॥७॥

आ निवर्तन वर्तय नि निवर्तन वर्तय ।
भूम्याश्चतस्रः प्रदिशस्ताभ्य एना नि वर्तय ॥८॥

पदार्थः—हे गोपालक ! तू गौवों को (**आवर्तय**) लौटा फिरा, हे गावो! तुम (**निवर्तन**) वापस आओ, हे गोपालक तू इन्हें (**निवर्तय**) घुमाने ले जा । हे गायो ! तुम (**निवर्तन**) जाओ, (**भूम्याः**) भूमि की (**चतस्रः**) चार (**प्रदिशः**) दिशाएं हैं । (**ताभ्यः**) वहां से घुमा फिराकर (**एनाः**) इन्हें (**निवर्तय**) ला ।

भावार्थः—गोपालक को चाहिए कि गायों को बाहर ले जावे और सब तरफ चराते हुए घुमावे फिरावे और वापस लावे ॥८॥

यह दशम मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २०

ऋषिः—१–१० विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१ आसुरीत्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । २, ९ अनुष्टुप् । ३ पादनिचृद् गायत्री । ४, ५, ७ निचृद्गायत्री । ६ गायत्री । ८ विराड्गायत्री ॥ **स्वरः**—१, १० धैवतः । २, ९ गान्धारः । ३—८ षड्जः ॥

भद्रं नो अपि वातय मनः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**नः**) हमारे (**मनः**) चित्त व मन को (**भद्रम्**) उत्तम मार्ग की ओर (**अपि वातय**) प्रेरित कर ।

भावार्थः—परमेश्वर हमारे मन को उत्तम मार्ग पर चलावे ।

Scanned by CamScanner

अग्निमीळे भुजां यविष्ठं शासा मित्रं दुर्धरीतुम् ।
यस्य धर्मन्त्स्व१रेनीः सपर्यन्ति मातुरूधः ॥२॥

पदार्थः—(भुजाम्) हवि को भोगने वाले (देवानाम्) देवों के मध्य (यविष्ठम्) गतिमान् (शासा) अनुशासन नियन्त्रण में रखने से (मित्रम्) मित्र, (दुर्धरीतुम्) संग्राम आदि में दुर्धर्ष (अग्निम्) अग्नि की मैं (ईडे) प्रशंसा करता हूँ, (यस्य) जिस अग्नि के (धर्मन्) गुण और कार्य में (स्वः) सूर्य अथवा समस्त देवों के समूह को (एनीः) ये आहुतियां (मातुः) माता के (ऊधः) स्तन के समान (सपर्यन्ति) परिचरण करती हैं ।

भावार्थः—यज्ञ देवों में अधिक गतिशील नियन्त्रण में रखने में मित्र और संग्राम में दुर्धर्ष अग्नि के गुणों को जानकर उसका उपयोग रचनात्मक और युद्ध आदि कार्यों में करना चाहिए । जैसे माता का स्तन बच्चे को मिलता है उसी प्रकार अग्नि के गुण और कर्म के द्वारा हवि समस्त लोगों और यज्ञ देवों तक पहुंचती है ॥२॥

यमासा कृपनीळं भासाकेतुं वर्धयन्ति । भ्राजते श्रेणिदन् ॥३॥

पदार्थः—(कृपनीडम्) कर्म अथवा सामर्थ्य के आधार (भासा केतुम्) ज्वाला के प्रकट करने वाले (यम्) जिस अग्नि को (आसा) मन्त्र स्तुति द्वारा (वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं (श्रेणीदन्) अभीष्ट फल समूह को देने वाला वह अग्नि (भ्राजते) भासमान होता है ।

भावार्थः—जो अग्नि सामर्थ्य का आधार और ज्वालाओं का प्रकाशक है और जिसको यज्ञकर्त्ता बढ़ाते हैं वह समस्त कामनाओं का पूरक होकर दीप्तिमान् रहता है ॥३॥

अर्यो विशां गातुरेति प्र यदानड् दिवो अन्तान् ।
कविरभ्रं दीद्यानः ॥४॥

पदार्थः—(विशाम्) प्रजाओं का (अर्यः) स्वामी (गातुः) गतियुक्त अग्नि (यद्) यतः (ऐति) गति करता है अतः (दिवः) आकाश के (अन्तान्) और छोर तक (प्र आनट) व्याप्त होता है, वह (कविः) क्रान्त दर्शन है और (अभ्रम्) मेघ को (दीधानः) दीप्ति देने वाला है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—अग्नि समस्त प्रजाओं का स्वामी और गतिशील है अतः वह आकाश की समस्त दिशाओं तक व्याप्त है! वह अधिक प्रकाश वाला है और मेघ में भी दीप्ति को पहुंचाता है ।।४।।

जुषद्धव्या मानुषस्योर्ध्वस्तस्थावृभ्वा यज्ञे ।
मिन्वन्त्सद्म पुर एति ।।५।।

पदार्थः—अग्नि (**मानुषस्य**) मनुष्य द्वारा प्रदत्त (**हव्या**) हवियों को (**यज्ञे**) यज्ञ में (**जुषद्**) सेवन करते हुए (**ऋभ्वा**) ज्वाला से युक्त हो (**ऊर्ध्वः**) ऊपर (**तस्थौ**) उठता है (**सद्म**) वेदि को (**मिन्वन्**) इयत्ता करता हुआ (**पुरः**) आगे (**एति**) आता है ।

भावार्थः—मनुष्यों द्वारा प्रदत्त हवि को ग्रहण कर ज्वालाओं से ऊपर को उठता है । वेदि की परिधि को प्राप्त होकर वह यजमान आदि के सामने ही रहता है ।।५।।

स हि क्षेमो हविर्यज्ञः श्रुष्टीदस्य गातुरेति ।
अग्निं देवा वाशीमन्तम् ।।६।।

पदार्थः—(**सः**) वह अग्नि (**हि**) निश्चय (**क्षेमः**) सुख का हेतु है, (**हविः**) वही हवि का ग्राहक है, (**यज्ञः**) वही यजनीय है, (**अस्य**) इस अग्नि के (**गातुः**) गतिएं (**श्रुष्टी**) जल्दी (**इत्**) ही (**एति**) व्याप्त हो जाती हैं, (**वाशीमन्तम**) वेद मन्त्र से प्रज्वालित (**अग्निम्**) यज्ञ की अग्नि के समीप(**देवाः**) देव लोग आते हैं ।

भावार्थः—अग्नि सुख का हेतु है, हवि का ग्रहण करने वाला है, यजनीय है और जल्दी से उसकी गति सर्वत्र पहुंच जाती है । यज्ञ में वेद मन्त्रों के साथ प्रज्वालित अग्नि के पास सभी यज्ञ देव आते हैं ।।६।।

यज्ञासाहं दुव इषेऽग्निं पूर्वस्य शेवस्य । अद्रेः सूनुमायुमाहुः ।।७।।

पदार्थः—(**यज्ञसहम**) यज्ञ में डाले पदार्थों के ढोने वाले, उस (**अग्निम्**) अग्नि के (**दुवः**) परिचरण की मैं (**पूर्वस्य**) पूर्ण (**शेवस्य**) लौकिक पारलौकिक सुख की प्राप्ति के लिए (**इषे**) इच्छा करता हूं, जिस अग्नि को वैज्ञानिक (**अद्रेः**) मेघ का (**सूनुम**) पुत्र और (**आयुम**) गति का आधार (**आहुः**) कहते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जिस अग्नि को वैज्ञानिक मेघ का पुत्र और गति का आधार कहते हैं उसका मैं उपयोग करता हूं वह यज्ञ में प्रयुक्त किया हुआ आहुति का ढोने वाला और लौकिक पारलौकिक सुखों का हेतु है ॥७॥

नरो ये के चास्मदा विश्वेत्ते वाम आ स्युः । अग्निं हविषा वर्धन्तः ॥८॥

पदार्थः—(ये) जो (के च) कोई भी (अस्मत्) हमारे (नरः) मनुष्य पुत्र पौत्र आदि हैं (ते) वे (आ) सर्वथा (विश्वेत्) समस्त (वामे) उत्तम धन में (आ स्युः) स्थित रहें, और (हविषा) हवि से (अग्निम्) अग्नि को (वर्धन्तः) बढ़ाते हुए रहें ।

भावार्थः—जो कोई भी हमारे पुत्र पौत्र आदि हैं वे सदा हवि से अग्नि को बढ़ाते रहें और उत्तम धन धान्य की परिस्थिति में सदा बने रहें ॥८॥

कृष्णः श्वेतोऽरुषो यामो अस्य ब्रध्न ऋज्र उत शोणो यशस्वान् ।
हिरण्यरूपं जनिता जजान ॥९॥

पदार्थः—(जनिता) जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता ने इस अग्नि को हिरण्यरूपम्) ज्योतिर्मय (जजान) उत्पन्न किया है । यह अग्नि (कृष्णः) काली ज्वाला वाला (श्वेतः) श्वेत प्रकाश वाला, (अरुषः) दीप्ति वाला है (अस्य) इसकी (यामः) गति (ब्रध्नः) बड़ी, (ऋज्रः) शीघ्रगामी, (उत) और (शोणः) तापमयी और (यशस्वान्) यशस्वी है ।

भावार्थः—जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर ने इस अग्नि को ज्योतिर्मय और काली, श्वेत और लाल ज्वालाओं वाला बनाया है । इसकी गति बड़ी क्षिप्र, तापमयी और उत्कृष्ट है ॥९॥

एवा ते अग्ने विमदो मनीषामूर्जो नपादमृतेभिः सजोषाः ।
गिर आ वक्षत्सुमतीरियान इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१०॥

पदार्थः—(विमदः) विगतमद यजमान (अमृतेभिः) अमृतमय हवियों से (सजोषा) युक्त हो (ऊर्जः) विद्युद्रूपी बल के (नपातम्) पौत्र (ते) उस (अग्ने) अग्नि के (मनीषाम्)ज्ञान को (एव) इस प्रकार से प्राप्तकर (गिरः) वाणी से उसका (आवक्षत्) वर्णन करता है, (सुमतीः) उत्तम बुद्धि को (इयानः)

Scanned by CamScanner

प्राप्त कराता हुआ यह अग्नि (**इषम्**) अन्न, (**ऊर्जम्**) बल और (**सुक्षितिम्**) उत्तम सन्तति को तथा (**विश्वम्**) समस्त धनों को (**आ भाः**) देता है।

भावार्थः—मद से रहित यजमान समिधा हवि आदि से अग्नि को यज्ञ में प्रदीप्त करता है। यह अग्नि बल से जल को उत्पन्न करता है। जल मेघ बनाता है। उससे पुनः उत्पन्न होता है अतः बल का यह पौत्र है। यजमान इस प्रकार इस अग्नि के ज्ञान को प्राप्त करता है और बुद्धि द्वारा प्रयुक्त यह अग्नि उसके लिए अन्न बल और उत्तम सन्तति देने का कारण बनता है ॥१०॥

यह दशम मण्डल में बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२१

ऋषिः—१—८ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१, ४, ८ निचृत्पङ्क्तिः । २ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ३, ५, ७ विराट्पङ्क्तिः । ६ आर्चीपङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

आग्निं न स्ववृक्तिभिर्होतारं त्वा वृणीमहे ।
यज्ञाय स्तीर्णबर्हिषे वि वो मदे शीरं पावकशोचिषं विवक्षसे ॥१॥

पदार्थः—(**न**) संप्रति (**होतारम्**) ग्रहण करने वाले (**त्वा**) इस (**अग्निम्**) अग्नि (**स्ववृक्तिभिः**) स्तुतियों के मन्त्रों के साथ (**वृणीमहे**) प्राप्त करते हैं, (**स्तीर्णवर्हिषे**) बिछे हुए कुशों वाले, इस (**यज्ञाय**) यज्ञ के सम्पादन के लिए (**वः**) मनुष्यों के (**विमदे**) आनन्द के लिए (**विवक्षसे**) महत् कार्य के लिए (**शीरम्**) सर्वत्र विद्यमान (**पावक शोचिषम्**) दीप्ति से शुद्ध करने वाले इस अग्नि को हम प्रयुक्त करें।

भावार्थः—अपनी वेदमन्त्रमयी स्तुतियों के साथ कुशादि बिछे हुए यज्ञ के सम्पादनार्थ, सबके आनन्द के लिए महान् दीप्तिमान, यज्ञ को ग्रहण करने वाले, सब में विद्यमान अग्नि को हम स्वीकार करते हैं ॥१॥

त्वामु ते स्वाभुवः शुम्भन्त्यश्वराधसः ।
वेति त्वामुपसेचनी वि वो मद ऋजीतिरग्न आहुतिर्विवक्षसे ॥२॥

पदार्थः—(**स्वाभुवः**) स्वयं दीप्तिमान, (**अश्वराधसः**) प्रचुर धनवाले, (**ते**) वे यजमान लोग (**त्वाम् उ**) इस अग्नि को(**शुम्भन्ति**)यज्ञ वेदी में सुशोभित करते हैं (**त्वाम् उ**) इसको (**उप सेचनी**) सिंचन करने वाली (**ऋजीतिः**) ऋजुगामिनी (**आहुतिः**) आहुति (**वः**) इस अग्नि के (**विमदे**) तृप्ति के लिए (**वेति**) प्राप्त होती है, (**अग्ने**) यह अग्नि (**विवक्षसे**) महान् होता है।

भावार्थः - धन धान्य से पूर्ण यजमान लोग यज्ञवेदी में अग्नि को सुशोभित करते हैं। इस पर क्षरण होने वाली आहुति पड़ती है इसकी तृप्ति के लिए। यह अग्नि बड़ी शक्ति वाला है ॥२॥

त्वे धर्माण आसते जुहूभिः सिञ्चतीरिव ।

कृष्णा रूपाण्यर्जुना वि वो मदे विश्वा अधि श्रियो धिषे विवक्षसे ॥३॥

पदार्थः—(**सिञ्चतीः इव**) वृष्टि की जलें जिस प्रकार पृथिवी को सिक्त करते हैं उसी प्रकार (**धर्माणः**) यज्ञ के करने वाले यजमान (**जुहूभिः**)होमपात्रों से (**त्वे**) इस अग्नि को (**आसते**) घी सींचकर दीप्त करते हैं (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष और तृप्ति के लिए यह अग्नि (**कृष्णा**) काली (**अर्जुना**) श्वेत ज्वाला वाले रूपों को तथा (**विश्वाः**) समस्त (**श्रियः**) श्री को (**अधि धिषे**) प्रचुरता से धारण करता है, यह अग्नि (**विवक्षसे**) महान् होता है।

भावार्थः —जिस प्रकार वृष्टि जल पृथिवी को सिक्त करता है उसी प्रकार यज्ञकर्त्ता यजमान इस अग्नि को यज्ञपात्रस्थ घृत आदि से सिक्त करते हैं। यह अग्नि सबके आनन्द और सुख के लिए काली और श्वेत ज्वालाओं के रूपों को प्रचुरता से धारण करता है और समस्त श्री को धारण करता है। यह महान् है ॥३॥

यमग्ने मन्यसे रयिं सहसावन्नमर्त्य ।

तमा नो वाजसातये वि वो मदे यज्ञेषु चित्रमा भरा विवक्षसे ॥४॥

पदार्थः— हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हे (**सहसावन्**) शक्तिशालिन् (**अमर्त्य**) अविनश्वर! आप (**यम्**)जिस (**रयिम्**) धन को (**मन्यसे**) अच्छा समझते हो (**तम्**) उस धन को (**नः**) हमें (**वाजसातये**) ज्ञान की प्राप्ति के लिए (**वः**) सबके (**विमदे**) सुख के लिए (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**चित्रम्**) विशेष रूप से (**आ आभर**) दें (**विवक्षसे**) आप महान् हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे शक्तिमन्, अमर, अजर, भगवन् जिस धन को आप उत्तम समझते हैं वह ज्ञान की प्राप्ति के लिए और सबके आनन्द के लिए हमें यज्ञों में प्रदान करें। आप महाशक्ति हैं ॥४॥

अग्निर्जातो अथर्वणा विदद्विश्वानि काव्या ।
भुवद्दूतो विवस्वतो वि वो मदे प्रियो यमस्य काम्यो विवक्षसे ॥५॥

पदार्थः—(**अथर्वणा**) नियम न तोड़ने वाले अहिंसक विद्वान् से (**जातः**) जनित (**अग्निः**) अग्नि (**विश्वानि**) समस्त (**काव्या**) स्तोतृकर्मों को (**विदत्**) प्राप्त करता है, (**विवस्वतः**) यजमान का (**दूतः**) दूत (**भुवत्**) होता है (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष के लिए (**यमस्य**) नियमधारी यजमान का (**प्रियः**) प्रिय और (**काम्यः**) काम्य होता है (**विवक्षसे**) वह महान् है।

भावार्थः—अहिंसक विद्वान् के द्वारा वेदि में जनित अग्नि समस्त स्तोतृकर्मों को प्राप्त होता है। यजमान का दूत होता हुआ उसका प्रिय और काम्य होता है। यह अग्नि महान् है ॥५॥

त्वां यज्ञेष्वीळतेऽग्ने प्रयत्यध्वरे ।
त्वं वसूनि काम्या वि वो मदे विश्वा दधासि दाशुषे विवक्षसे ॥६॥

पदार्थः—(**त्वाम्**) इस (**अग्ने**) अग्नि को (**अध्वरे**) यज्ञ के (**प्रयति**) प्रवृत्त होने पर (**यज्ञेषु**) सभी यज्ञों में ऋत्विग् और यजमान (**ईडते**) प्रशंसा से युक्त करते हैं (**त्वम्**) यह अग्नि (**विश्वा**) समस्त (**काम्या**) कमनीय (**वसूनि**) धनों को (**वः**) सबके हर्ष के लिए (**दाशुषे**) दाता को (**दधासि**) देता है (**विवक्षसे**) यह महान् है।

भावार्थः—इस अग्नि की यज्ञ के प्रवृत्त होने पर सभी यज्ञों में ऋत्विग् और यजमान प्रशंसा करते हैं। यह महान् है और सबके हर्ष के लिए यजमान को कमनीय धन प्रदान करता है ॥६॥

त्वां यज्ञेष्वृत्विजं चारुमग्ने नि षेदिरे ।
घृतप्रतीकं मनुषो वि वो मदे शुक्रं चेतिष्ठमक्षभिर्विवक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(**घृतप्रतीकम्**) घृत से परिपूर्ण (**शुक्रम्**) तेजोयुक्त, (**अक्षभिः**) इन्द्रियों से (**चेतिष्ठम्**) चिन्तन किये जाने योग्य, (**ऋत्विजम्**) प्रत्येक ऋतु को

Scanned by CamScanner

बनाने वाले (**चारुम्**) उत्तम (**त्वाम् अग्ने**) इस अग्नि को (**मनुषः**) मनुष्य लोग (**यज्ञेषु**) यज्ञों में (**निषेदिरे**) स्थापित करते हैं, (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष के लिए यह (**विवक्षसे**) महान् है ।

भावार्थः—धृत से सिक्त, तेजोयुक्त इन्द्रियों द्वारा जाने जाने योग्य, ऋतुओं के उत्पादक उत्तम अग्नि को लोग यज्ञ में स्थापित करते हैं। वह सबके सुख के लिए है और महान् है ॥७॥

अग्ने शुक्रेण शोचिषोरु प्रथयसे बृहत् ।
अभिक्रन्दन्वृषायसे वि वो मदे गर्भं दधासि जामिषु विवक्षसे ॥८॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**शुक्रेण**) तेजोमय (**शोचिषा**) दीप्ति से (**उरु**) बृहत् (**प्रथयसे**) विस्तार करता है, (**बृहत्**) महान् वह (**अभिक्रन्दन्**) गर्जता हुआ (**वृषायसे**) वर्षा करता है (**वः**) सबके (**मदे**) सुख के लिए (**जामिषु**) ओषधियों में (**गर्भं**) वीज शक्ति को (**दधासि**) धारण करता है, (**विवक्षसे**) वह महान् है।

भावार्थः—अग्नि अपने तीव्र तेज से अथवा दीप्ति से विस्तार करता है अपनी गति-विधियों का, वही गर्जता हुआ वर्षा करता है। सबके सुख के लिए ओषधियों में शक्ति धारण करता है। वह महान् है ॥८॥

यह दशम मण्डल में इक्कीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २२

ऋषिः—१—१५ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वासुक्रद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ४, ८, १०, १४ पादनिचृद्बृहती । ३, ११ विराड्बृहती । २, ६, १२, १३ निचृदनुष्टुप् । ५ पादनिचृदनुष्टुप् । ७ आर्च्यनुष्टुप् । ९ अनुष्टुप् । १५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१, ३, ४, ८, १०, ११, १४ मध्यमः । २, ५—७, ९, १२, १३ गान्धारः । १५ धैवतः ॥

कुह॑ श्रुत इन्द्रः॒ कस्मि॑न्न॒द्य जने॑ मि॒त्रो न श्रू॑यते ।
ऋषी॑णां वा॒ यः क्षये॒ गुहा॑ वा॒ चर्कृ॑षे गि॒रा ॥१॥

पदार्थः—(**अद्य**) आज (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**कुह**) कहां (**श्रुतः**) सुना जाता है (**मित्रः न**) वह मित्र के समान (**श्रूयते**) सुना जाता है (**कस्मिन्**) किस (**जने**) जन समूह में (**श्रूयते**) सुना जाता है, वह (**ऋषीणाम्**) ऋषियों के (**क्षये**) निवास स्थान में (**गुहा**) बुद्धि में (**गिरा**) वेदवाणी और उपासना से (**चर्कृषे**) प्रकाशित किया जाता है।

भावार्थः—भगवान् आज कहां पर सुना जाता है ? वह मित्र के समान सुना जाता है। किस जनसमूह में सुना जाता है ? वह वस्तुतः ऋषियों के स्थान में सुना जाता है, बुद्धि वा अन्तःकरण में सुना जाता है और उपासना से एवम् वेदज्ञान से प्राप्त किया जाता है ॥१॥

इह श्रुत इन्द्रो अस्मे अद्य स्तवे वज्र्यृचीषमः ।
मित्रो न यो जनेष्वा यशश्चक्रे असाम्या ॥२॥

पदार्थः—(**वज्री**) शक्तिशाली, (**ऋचीषमः**) स्तुति के योग्य (**इन्द्रः**) भगवान् (**इह**) इस संसार में (**श्रुतः**) सुना और जाना जाता है, (**अस्मे**) हमारे द्वारा (**अद्य**) आज (**स्तवे**) स्तुति किया जाता है, (**यः**) जो (**जनेषु**) लोगों में (**मित्रः न**) सूर्य की भांति (**असामि**) पूर्ण (**यशः**) यश को (**आ चक्रे**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—इस संसार में हम शक्तिशाली भगवान् का श्रवण करें और उसकी स्तुति उपासना आदि करें। वह लोगों को पूर्ण यश प्रदान करता है ॥२॥

महो यस्पतिः शवसो असाम्या महो नृम्णस्य तूतुजिः ।
भर्ता वज्रस्य धृष्णोः पिता पुत्रमिव प्रियम् ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**इन्द्रः**) इन्द्र (**महः**) महान् (**शवसः**) बल का (**पतिः**) स्वामी (**असामि आ**) सर्वथा, पूर्णतः सर्वत्र, (**महतः**) महान् (**नृम्णस्य**) धन का (**तूतुजिः**) दाता (**धृष्णोः**) धर्षक (**वज्रस्य**) वज्र का धारक है, (**पुत्रम्**) पुत्र को (**पिता इव**) पिता के समान सबकी रक्षा करता है।

भावार्थ—जो परमेश्वर महान् बल का पति और अनन्त गुणों वाला है, जो धन का दाता, वज्र का स्वामी और पुत्र को पिता के समान सबका रक्षक है उसी की हे मनुष्यो प्रार्थनोपासना करो ॥३॥

Scanned by CamScanner

युञ्जानो अश्वा वातस्य धुनी देवो देवस्य वज्रिवः ।
स्यन्ता पथा विरुक्मता सृजानः स्तोष्यध्वनः ॥४॥

पदार्थः—हे (**वज्रिवः**) शक्तिशालिन् भगवन् ! आप ही महान् (**देवः**) देव हो (**देवस्य**) दिव्य-गुणयुक्त (**वातस्य**) वायु की शक्ति रूप (**धुनी**) इन्द्रिय आदि के प्रेरक (**अश्वा**) गतिमान् प्राण और अपान को (**युजानः**) शरीर में युक्त करते हुए (**विरुक्मता**) विशेष प्रकाशमय मार्ग से (**स्यन्तौ**) जाने वाले इनको (**अध्वनः**) मार्ग के पार (**सृजानः**) ले जाते हुए (**स्तोषि**) हम से स्तुति किया जाता है ।

भावार्थः—परमेश्वर वायु के प्रकारभूत, शरीर के और इन्द्रियों के व्यापार के प्रेरक प्राण और अपान को शरीर में युक्त करता है और प्रकाशमय मार्ग से उनको चलाकर इस संसार-मार्ग के पार पहुँचा देता है। हम सदा उसी की स्तुति करें ।।४।।

त्वं त्या चिद्वातस्याश्वागा ऋज्रा त्मना वहध्यै ।
ययोर्देवो न मर्त्यो यन्ता नकिर्विदाय्यः ॥५॥

पदार्थः—(**ययोः**) जिन दोनों प्राण और अपान का (**यन्ता**) नियन्ता (**देवः**) कोई देव (**न**) नहीं (**नकिः**) न कोई (**मर्त्यः**) मनुष्य है और न कोई (**विदाय्यः**) पूर्णतः उनका ज्ञाता है (**त्यौ**) उन दोनों (**चित्**) ही (**ऋज्रा**) ऋजुगामी (**अश्वा**) गतिवालो को हे इन्द्र ! (**त्वम्**) तुम (**त्मना**) स्वयं ही (**वहध्यै**) वहन करने के लिए (**आ अगाः**) प्राप्त होते हो ।

भावार्थः—महान् शक्ति वाले इन प्राण और अपान को न कोई देव नियन्त्रण कर सकता है और न कोई भी मनुष्य । न इनका पूर्णतः कोई ज्ञाता है। इनका संचालन भगवान् स्वयं करता है। वह प्राणों का भी प्राण है ।।५।।

अध ग्मन्तोशना पृच्छते वां कदर्था न आ गृहम् ।
आ जग्मथुः पराकाद्दिवश्च ग्मश्च मर्त्यम् ॥६॥

पदार्थः—(**उशनाः**) भोगों को चाहने वाला मनुष्य (**अध**) अनन्तर (**पृच्छते**) पूछता है कि (**ग्मन्ता**) गमनशील (**वाम्**) ये दोनों प्राण और अपान

(कदर्थाः) किस प्रयोजन से (नः) हमारे (गृहम्) गृहरूप शरीर में (मर्त्यम्) जो मरणधर्मा है (पराकात्) दूरवर्त्ती (दिवः) सूर्य (च) और (ग्मः च) भूमि से भी (आ जग्मथुः) आये हैं ।

भावार्थः—भोगों को भोगने वाला मनुष्य पूछता है कि ये प्राण और अपान किस प्रयोजन से दूरवर्त्ती सूर्य और पृथिवी जीव के मरणधर्मा शरीर में आये हैं ।।६।।

आ न इन्द्र पृक्षसेऽस्माकं ब्रह्मोद्यतम् ।

तत्वा याचामहेऽवः शुष्णं यद्धन्नमानुषम् ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (नः) हमें (आपृक्षसे) सब प्रकार से अपने सम्पर्क में रख (अस्माकम्) हमारा (ब्रह्म) स्तवन (उद्यतम्) आपके लिए ऊपर उठा हुआ है (त्वा) तुझ से हम (तत्) उसी (अमानुषम्) अमानवी (अवः) रक्षण की (याचामहे) याचना करते हैं (यत्) जो (शुष्णम्) आसुरी बलों और दुःख आदि का शोषक और समस्त आपदाओं का (हन्) हन्ता है ।

भावार्थः—हे सर्वशक्तिमन् भगवन् ! आप हमें सदा अपने सम्पर्क में रखें । हमें वह बल और रक्षण प्रदान करें जो मनुष्य को प्राप्त नहीं है । हमारा महान् स्तवन आपके लिए उद्यत है । आपका यह रक्षण ही समस्त दुःखों का शोषक है और आपदाओं का नाशक है ।।७।।

अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः ।

त्वं तस्यामित्रहन्वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥

पदार्थः—(अकर्मा) उत्तम कर्म न करने वाला (दस्युः) उत्तम कर्मों का नाश करने वाला (अन्यव्रतः) वेदविहित कर्म का न करने वाला (अमानुषः) असुर प्रकृति, (नः) हमें (अभि) लक्ष्य करके (अमन्तुः) अवमान करने वाले (दासस्य) पुण्य के उपक्षय करने वाले (तस्य) इसका (अमित्रहन्) हे काम-क्रोधादि शत्रुओं के हन्ता इन्द्र (त्वम्) तू (वधः) हन्ता होकर (दम्भय) विनष्ट कर ।

भावार्थः—हे काम आदि शत्रुओं के नाश करने वाले भगवन् ! जो उत्तम कर्मों को नहीं करने वाले, वेदविहित कर्मों के क्षय करने वाले, राक्षसी प्रवृत्ति के मनुष्य हैं आप उनके दुर्गुणों का विनाश करके दूर करें ।।८।।

Scanned by CamScanner

त्वं न इन्द्र शूर शूरैरुत त्वोतासो बर्हणा ।
पुरुत्रा ते वि पूर्तयो नवन्त क्षोणयो यथा ॥९॥

पदार्थः—(शूर) हे महाशूर (इन्द्र) भगवन् (बर्हणा) संग्राम आदि अवसरों में (शूरैः) महती शक्तियों के साथ (त्वम्) तू (नः) हमारी रक्षा कर । (उत) और (त्वोतासः) तुम्हारे द्वारा रक्षित हम सदा सुरक्षित रहें । (ते) तुम्हारी (पूर्तयः) स्तुतियां (पुरुत्रा) बहुत से स्तावकों को (वि नवन्ते) विशेष रूप से व्याप्त होती हैं (यथा) जिस प्रकार (क्षोणयः) मनुष्य लोग अपने स्वामी को नमन करते हैं ।

भावार्थः—भगवान् की शक्तियां प्रभूत हैं । वह हर संसार रूपी संग्राम में हमारी रक्षा करता है । उसके द्वारा रक्षित हम सदा जगत् में अपना कार्य करते हैं । उसकी स्तुतियां स्तावकों के द्वारा की जाती हैं जिस प्रकार मनुष्य अपने मालिक को नमन करते हैं ॥९॥

त्वं तान्वृत्रहत्ये चोदयो नॄन्कार्पाणे शूर वज्रिवः ।
गुहा यदी कवीनां विशां नक्षत्रशवसाम् ॥१०॥

पदार्थः—(वज्रिवः) हे मेघ आदि पदार्थों के स्वामिन् (शूर) शक्तिशालिन् भगवन् ! (कार्पाणे) घोर (वृत्रहत्ये) मेघवध में (तान्) प्रसिद्ध (नॄन्) मरुतों को (चोदयः) प्रेरित करते हो, (यदि) क्योंकि (कवीनाम्) क्रान्तदर्शन (नक्षत्र-शवसाम्) नक्षत्र ग्रहों आदि में रहने वाली (विशाम्) प्रजा के (गुहा) स्थान में आप विद्यमान हो ।

भावार्थः—मेघ आदि समस्त पदार्थों का स्वामी परमेश्वर मेघ को मार कर वर्षा करने के युद्ध में मरुद्गण वायुओं को प्रेरित करता है । क्योंकि वह नक्षत्र आदि में रहने वाली क्रान्तदर्शन सूर्य आदि के स्थान आकाश में वह व्यापक हो रहा है ॥१०॥

मक्षू ता त इन्द्र दानाप्नस आक्षाणे शूर वज्रिवः ।
यद्ध शुष्णस्य दम्भयो जातं विश्वं सयावभिः ॥११॥

पदार्थः—(वज्रिवः) विद्युद्रूपी वज्र को धारण करने वाले (शूर) हे शक्तिशालिन् (इन्द्र) भगवन् ! (आक्षाणे) वृत्रवध युद्ध में (दानाप्नसः) वृष्टि

Scanned by CamScanner

देने वाले कर्म के कर्त्ता (ते) आपके (मक्षू) शीघ्र किये जाने वाले (ता) समस्त कार्यों की प्रशंसा की जाती है (यत् ह) जो कि आप (सयावभिः) मिश्रण और अमिश्रण की क्रियाओं के साथ (शुष्णस्य) मेघ के (विश्वम्) समस्त (जातम्) समूह को (दम्भयः) विदारित करते हो ।

भावार्थः—मेघवध युद्ध में वृष्टि हेतु मिश्रण और अमिश्रण की क्रिया से शक्तिशाली भगवान् मेघ के समूह को जो मार गिराता है उसका यह कार्य प्रशंसनीय है ॥११॥

माकुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ॥१२॥

पदार्थः—(वज्रिवः) वज्रधारिन्, (शूर) शक्तिशालिन् (इन्द्र) हे इन्द्र—भगवन् (अस्मे) हमारी (अभिष्टयः) अभिलाषायें और (वस्वीः) धन-सम्पदाए (अकुध्र्यग्) निष्फल (मा भूवन्) न होवें, (वयम् वयम्) हम सभी सदा (ते) आपकी (सुम्ने) रक्षा में (आसाम्) इन प्रजाओं के बीच में (स्याम) रहें ।

भावार्थः—हे वज्रधारिन् शक्तिशालिन् भगवन् ! हमारा धनादि पदार्थ और अभीष्ट कभी निष्फल न हो । हम सदा लोगों के बीच में आपके रक्षण में रहें ॥१२॥

अस्मे ता त इन्द्र सन्तु सत्याहिंसन्तीरुपस्पृशः ।
विद्याम यासां भुजो धेनूनां न वज्रिवः ॥१३॥

पदार्थः—(वज्रिवः) वज्रधारिन् (इन्द्र) परमेश्वर ! (अहिंसन्ती) किसी की हानि न करने वाली (अस्मे) हमारी (ता) वे (ते) तुम्हारे (उपस्पृशः) समीप पहुँचने वाली स्तुति प्रार्थना आदि क्रियायें (सत्या) सत्य (सन्तु) सिद्ध हों (यासाम्) जिनके फलस्वरूप (धेनूनाम् न) गौओं के समान (भुजः) योग्य पदार्थों को (विद्याम) जानें और प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् भगवन् ! तुम तक पहुँचने वाली और किसी को हानि न पहुँचाने वाली हमारी स्तुतियां आदि सत्य हों, और उनके फलस्वरूप गौओं की भांति हम अपने भोगों को जानें और भोगें ॥१३॥

Scanned by CamScanner

अहस्ता यदपदी वर्धत क्षाः शचीभिर्वेद्यानाम् ।
शुष्णं परि प्रदक्षिणिद्विश्वायवे नि शिश्नथः ॥१४॥

पदार्थः—हे भगवन् ! (**यत्**) यदि (**अहस्ता**) हस्तरहित, (**अपदी**) पांव से रहित (**क्षाः**) पृथिवी (**वेद्यानाम्**) जानने योग्य सूर्य आदि पदार्थ देवों के (**शचीभिः**) क्रिया कलापों से (**वर्धत**) बढ़ती है तो इस कारण से कि आप (**विश्वायवे**) विश्व के मनुष्यों के कल्याण (**परि प्रदक्षिणित्**) पृथिवी को इस प्रकार दायें-बायें घेर कर विराजमान (**शुष्णम्**) मेघ को (**निशिश्नथ**) नितराम् ताडित करते हो।

भावार्थः—हे शक्तिशालिन् भगवन् ! विना हाथ और विना पैर की पृथिवी यदि सूर्य आदि देवों की गतिविधियों से वृद्धि को प्राप्त करती है तो इसमें हेतु यह है कि आप उसको चारों तरफ घेरे हुए मेघ को मनुष्य के कल्याणार्थ ताड़ित कर वर्षा करते हो ॥१४॥

पिबापिबेदिन्द्र शूर सोमं मा रिषण्यो वसवान वसुः सन् ।
उत त्रायस्व गृणतो मघोनो महश्च रायो रेवतस्कृधी नः ॥१५॥

पदार्थः—(**शूर**) हे शक्तिशालिन् (**इन्द्र**) भगवन् ! (**वसवान्**) धनों का नेता तथा (**वसुः**) प्रशस्त (**सन्**) होता हुआ तू (**सोमम् इत्**) जगत् के पदार्थों की (**पिबापिब**) निरन्तर रक्षा कर (**मा**) मत (**रिषण्य**) हानि पहुँचा ; (**उत**) और (**गृणतः**) स्तावक (**मघोनः**) यज्ञकर्त्ता की (**त्रायस्व** रक्षा कर (**च**) और (**महः**) महान् (**रायः**) धन के प्रदान से (**नः**) हमें (**रेवतः**) धनवाला (**कृधि**) कर।

भावार्थः—शक्तिशाली प्रभु धन का नायक और प्रशस्त है । वह जगत् के पदार्थों की रक्षा करता है। उन्हें हानि नहीं पहुंचाता है, स्तुति करने वाले और यज्ञशील जनों की रक्षा करता है। वह हमें धन प्रदान कर धनयुक्त करे ॥१५॥

यह दशम मण्डल में बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—२३

ऋषिः—१—७ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ आर्चीभुरिग् जगती । ३ निचृज्जगती । ६ आर्चीस्वराड्जगती । स्वरः—१, ५, ७ धैवतः । २—४, ६ निषादः ॥

यजा॑मह॒ इन्द्रं॒ वज्र॑दक्षिणं॒ हरी॑णां र॒थ्यं१॒॑ विव्र॑तानाम् ।
प्र श्मश्रु॒ दोधु॑वदू॒र्ध्वथा॑ भू॒द्वि सेना॑भि॒र्दय॑मानो॒ वि राध॑सा ॥१॥

पदार्थः—(**बज्रदक्षिणम्**) बज्रधारण में दक्ष, (**विव्रतानाम्**) विविध कर्म वाले (**हरीणाम्**) किरणों के (**रथ्यम्**) धारक नेता (**इन्द्रम्**) विद्युत् की (**यजामहे**) संगतिकरण करते हैं, वह (**सेनाभिः**) मरुद्गण के द्वारा मेघ को (**दयमानः**) काटता हुआ (**श्मश्रु**) पृथिवी पर उत्पन्न घास वृक्ष आदि को (**प्रदोधुवत्**) कम्पित करता हुआ (**ऊर्ध्वथा**) ऊपर (**भूद्**) होता है (**वि राधसा**) विशेष धन से (**वि**) विविध प्रकार से युक्त करता है ।

भावार्थः—हम वज्रधारण में दक्ष किरणों के प्रसारक विद्युत् को संगतिकरण करके जानें । वह मरुद्गण के साथ मेघ को गिराता है पृथिवी पर होने वाले लता घास वृक्ष आदि को कम्पायमान कर मेघ के ऊपर विराजता है । वह विविध धनों की प्राप्ति का साधन बनाया जावे ॥१॥

हरी॒ न्व॑स्य॒ या व॒ने वि॒दे वस्विन्द्रो॑ म॒घैर्म॒घवा॑ वृत्र॒हा भु॑वत् ।
ऋ॒भुर्वाज॑ ऋभु॒क्षाः प॑त्यते॒ शवोऽव॑ क्ष्णौमि॒ दास॑स्य॒ नाम॑ चित् ॥२॥

पदार्थः—(**नु**) निश्चय ही (**अस्य**) इस विद्युत् के (**या**) जो दो (**हरी**) अश्व=ऋणात्मक धनात्मक भेद हैं वे (**वने**) जल आदि में (**वसु**) समस्त वस्तुओं को (**विदे**) व्याप्त करते हैं । (**इन्द्रः**) यह विद्युत् (**मघैः**) अपनी शक्तियों अथवा यज्ञों से (**मघवा**) शक्ति वाला अथवा मखवान् और (**वृत्रहा**) मेघ का मारने वाला (**भुवत्**) कहा जाता है तथा वह (**ऋभुः**) दीप्त (**वाजः**) शक्ति वाला (**ऋभुक्षाः**) महान् इन्द्र (**शवः**) अन्न आदि की (**पत्यते**) रक्षा करता है । मैं उसके सहयोग से (**दासस्य**) सूखा दुष्काल आदि के (**नाम चित्**) प्रभाव को (**अवक्ष्णौमि**) विनष्ट करूं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इन्द्र=विद्युत् के दो अश्वः=ऋणात्मक, धनात्मक भेद जो समस्त लोकों जलादि पदार्थों में व्याप्त हो रहे हैं। इन अपनी शक्तियों से इन्द्र मघवा और वृत्रहा कहा जाता है। वह दीप्त महान् और अन्न आदि का रक्षक है। मैं उसका ज्ञाता उसके सहयोग से दुष्काल आदिके प्रभाव को नष्ट करूं ॥२॥

यदा वज्रं हिरण्यमिदथा रथं हरी यमस्य वहतो वि सूरिभिः ।
आ तिष्ठति मघवा सनश्रुत इन्द्रो वाजस्य दीर्घश्रवसस्पतिः ॥३॥

पदार्थः (**सनश्रुतः**) सदा प्रख्यात (**दीर्घश्रवसः**) बहुत यश के देने वाला (**वाजस्य**) धन का (**पतिः**) स्वामी (**मघवा**) मखवान् (**इन्द्रः**) इन्द्र (**यत्**) जब (**हिरण्यम्**) हिरण्य के समान चमकदार (**वज्रम् इत्**) वज्र को ग्रहण करता है (**अथ**) तब (**तम्**) उस (**रथम्**) तापचक्र पर (**सूरिभिः**) सूर्य की किरणों के साथ (**आ तिष्ठति**) विराजमान रहता है (**यम्**) जिस (**अस्य**) इसके रथ को (**हरी**) दो वैद्युत प्रकार (**विवहतः**) वहन करते हैं।

भावार्थः— यह इन्द्र कीर्त्तियुक्त धनों का स्वामी है जब यह अपने चमकीले वज्र को धारण करता है तब सूर्य किरणों के साथ अपने उस तापचक्र पर विराजता है जिसे ये दो वैद्युत तत्त्व वहन करते हैं ॥३॥

सो चिन्नु वृष्टिर्यूथ्या३ स्वा सचाँ इन्द्रः श्मश्रूणि हरिताभि प्रुष्णुते ।
अव वेति सुक्षयं सुते मधूदिद् धूनोति वातो यथा वनम् ॥४॥

पदार्थः—(**सो**) वह (**चित् नु**) ही महती (**वृष्टिः**) वृष्टि है, जिसमें (**इन्द्रः**) इन्द्र (**स्वा**) अपने (**यूथ्या**) मरुद्गण आदि यूथों के (**सचा**) साथ (**हरिता**) तेज से (**श्मश्रूणि**) पृथिवी पर हुए घास वृक्ष आदि को (**अभि प्रुष्णुते**) सिक्त करता है, वह (**सुक्षयम्**) सभी स्थानों (**उत् इत्**) और (**मधु**) जगत् के पदार्थों को (**सुते**) इस उत्पन्न संसार में (**अव वेति**) प्राप्त होता है और (**धूनोति**) कम्पायमान करता है। (**यथा**) जिस प्रकार (**वातः**) वायु (**वनम्**) जंगल को हिला देता है।

भावार्थः—उसी को महती वृष्टि कहा जाता है जिसमें इन्द्र अपने मरुद्गण आदि समूहों के साथ पृथिवी पर विद्यमान वृक्ष आदि को सिक्त करता है और समस्त स्थानों और पदार्थों को जगत् में कम्पायमान कर देता है जिस प्रकार वायु जंगल को झकझोर देता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

योे वाचा विवाचो मृध्रवाचः पुरू सहस्राशिवा जघान ।
तत्तदिदस्य पौंस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) विद्युत्पदार्थ (वाचा) गर्जन तर्जन आदि कड़क से (विवाचः) अस्पष्ट वाणी वाले, (मृध्रवाचः) हिंसक आवाज वाले, (पुरु) बहुत से (सहस्रा) अत्यधिक (अशिवा) अकल्याणकारी जन्तुओं को (जघान) नष्ट कर देता है, (यः) जो (पिता इव) पिता के समान जगत् की (तविषीम्) शक्ति को और (शवः) बल को (वावृधे) बढ़ाता है (अस्य) इस इन्द्र के (तत्तत् इव) उस उस (पौंस्यम्) बल की हम (गृणीमसि) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हम इस इन्द्र के उन-उन कार्यों की प्रशंसा करते हैं जिनमें वह विविध प्रकार के अकल्याणकारक क्रमि कीटों आदि को बिजली की कड़क से नष्ट कर देता है और पुत्र को पिता के समान जगत् के बल और शक्ति को वृष्टि से बढ़ाता है ॥५॥

स्तोमं त इन्द्र विमदा अजीजनन्नपूर्व्यं पुरुतमं सुदानवे ।
विद्मा ह्यस्य भोजनमिनस्य यदा पशुं न गोपाः करामहे ॥६॥

पदार्थः—(विमदाः) मद आदि से रहित हम सब (सुदानवे) उत्तम योगदान वाले (ते) इस (इन्द्र) इन्द्र के लिए (पुरुतमम्) बहुत (अपूर्व्यम्) उत्कृष्ट (स्तोमम्) प्रशंसा (अजीजन्) करते हैं (हि) निश्चय से (अस्य) इस (इनः) समर्थ का (यत्) जो (भोजनम्) रक्षण हैं उसको (विद्मः) जानते हैं (पशुम्) पशु को (गोपाः न) गोपालक के समान (आ करामहे) समक्ष रखें ।

भावार्थः—अभियान आदि से रहित हम सब इन्द्र की उत्कृष्ट शब्दों में प्रशंसा करते हैं । हम उस समर्थ के योगदान को भली प्रकार जानकर उसे अपने समक्ष रखें जिस प्रकार गोपालक अपने पशुओं को समक्ष रखता है ॥६॥

माकिर्न एना सख्या वि यौषुस्तव चेन्द्र विमदस्य च ऋषेः ।
विद्मा हि ते प्रमतिं देव जामिवदस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**इन्द्र**) यह इन्द्र है । (**तव**) इसके (**च**)और अन्य के, (**च**) और (**विमदस्य**) विमद नामक साम वाले (**ऋषेः**) मन्त्र के साथ (**नः**) हम सबका (**सख्या**) सहयोग वा मैत्रीभाव (**माकिः**) न (**वियौषुः**) वियुक्त होवें, (**देव**) दिव्य (**ते**) उसके (**हि**) निश्चय (**प्रमतिम्**) प्रकृष्ट ज्ञान को (**जामवद्**) भगिनी के समान (**विद्म**) जानें, तथा (**अस्मे**) हमारे लिए (**ते**) उसका (**सख्या**) सम्पर्क (**शिवानि**) कल्याणकारी (**सन्तु**) हो ।

भावार्थः-- इस इन्द्र और लोगों का, तथा विमद साम मन्त्र का सम्पर्क सदा हमसे बना रहना चाहिए । हम तत्सम्बन्धी ज्ञान को जाने और यह सम्पर्क सदा कल्याणकारी हो ॥७॥

यह दशम मण्डल में तेईसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २४

ऋषिः—१—६ **विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ देवता** — १—३ **इन्द्रः । ४—६ अश्विनौ ॥ छन्दः** —१ **आस्तारपङ्क्तिः । २ आर्चीस्वराट्-पङ्क्तिः । शङ्कुमतीपङ्क्तिः । ४, ६ अनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः** —१ ३ **पञ्चमः । ४—६ गान्धारः ॥**

इन्द्र सोममिमं पिब मधुमन्तं चमू सुतम् ।
अस्मे रयिं नि धारय वि वो मदे सहस्रिणं पुरूवसो विवक्षसे ॥१॥

पदार्थः— (**पुरूवसो**) सभी लोकों और धनों के स्वामिन् (**इन्द्र**) परमेश्वर (**चमू**) भूमि और आकाशपर्यन्तस्थित (**सुतम्**) उत्पन्न (**मधुमन्तम्**) जल आदि से युक्त (**इमम्**) इस (**सोमम्**) जगत् की (**पिब**) रक्षा कर, (**वः**) सबके (**विमदे**) हर्ष के लिए (**अस्मे**) हमें (**सहस्रिणम्**) सहस्रों प्रकार के (**रयिम्**) धन को (**नि धारय**) दे, (**विवक्षसे**) तू महान् है ।

भावार्थः – हे समस्त लोकों के स्वामिन् परमेश्वर ! आप आकाश और भूमिपर्यन्त विद्यमान समस्त जगत् की रक्षा करें । सबके सुख के लिए सहस्रों प्रकार के धन को दें । प्रभो ! आप महान् हो ॥१॥

Scanned by CamScanner

त्वां यज्ञेभिरुक्थैरुप हव्येभिरीमहे ।
शचीपते शचीनां वि वो मदे श्रेष्ठं नो धेहि वार्यं विवक्षसे ॥२॥

पदार्थः – (**शचीपते**) हे बुद्धि के स्वामिन् परमेश्वर ! हम (**यज्ञेभिः**) यज्ञों द्वारा, (**उक्थेभिः**) मन्त्रों द्वारा (**हव्येभिः**) आहुतियों द्वारा (**त्वाम्**) आप की आज्ञा को (**उप ईमहे**) स्वीकार और पालन करते हैं, प्रभो ! (**शचीनाम्**) ज्ञान आदि से युक्त अर्थात् ज्ञान सम्बन्धी (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**वार्यम्**) वरणीय धन को (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए (**नो**) हमें (**धेहि**)दो (**विवक्षसे**) आप महान् हो ।

भावार्थः—हे समस्त ज्ञानों के आगार परमेश्वर ! हम यज्ञ, मन्त्र और आहुति आदि से आपकी आज्ञा को स्वीकार कर उसका पालन करते हैं। आप हमें सबके सुख के लिए बुद्धि आदि से युक्त श्रेष्ठ धन को प्रदान कीजिए ॥२॥

यस्पतिर्वार्याणामसि रध्रस्य चोदिता ।
इन्द्र स्तोतॄणामविता वि वो मदे द्विषो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे भगवन् ! (**यः**) जो तू (**वार्याणाम्**) श्रेष्ठ धनों का (**पतिः**) स्वामी (**असि**) है, (**रध्रस्य**) स्तुति करने वालों को (**चोदिता**) उत्तम मार्ग पर चलाने वाला है, और (**स्तोतॄणाम्**) स्तोत्रियों का (**अविता**) रक्षक है (**नः**) हमारी (**द्विषः**) हमसे द्वेष करने वाली (**अंहसः**) बुराइयों से (**पाहि**) हमारी रक्षा कर (**वः**) सबके (**विमदे**) सुख के लिए मैं होऊं, (**विवक्षसे**) आप महान् हो ।

भावार्थः—हे प्रभो ! आप समस्त श्रेष्ठ धनों के स्वामी हो, स्तुति करने वालों को उत्तम मार्ग पर चलाने वाले हो,आप ही स्तावकों के रक्षक हो। विश्व के सुख के लिए हमारे परम द्वेषी जो दुर्गुण हैं उनसे हमारी रक्षा करें। प्रभो आप महान् हैं ॥३॥

युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**शक्रा**) शक्तिशाली, (**मायाविना**) प्रज्ञा वाले (**समीची**)एक साथ रहने वाले (**युवम्**) तुम दोनों ऋत्विग् और यजमान (**निरमंथतम्**) अरणि में से अग्नि का यज्ञ में मन्थन करते हो, (**नासत्य**) हे सत्यभूत ! आप दोनों (**यद्**) जब (**विमदेन**) वेदज्ञ हर्षदायक विद्वान् के द्वारा (**ईडिता**) प्रशंसा किये जाते हो तब (**निरमन्यतम्**) अग्नि का मन्थन करते हो।

भावार्थः—जब वेदज्ञ विद्वान् प्रशंसापूर्वक कहता है तब ऋत्विग् और यजमान अग्नि का मन्थन करते हैं। ये दोनों यज्ञ में साथ रहने वाले, प्रज्ञावान् और न+असत्य अर्थात् सत्यमय होने चाहिएँ ।।४।।

विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।

नासत्यावब्रुवन्देवाः पुनरा वहतादिति ।।५।।

पदार्थः – (**समीच्योः**) साथ रहने वाले (**निष्पतन्त्योः**) कभी भी व्रत से न डिगने वाले ऋत्विग् और यजमान पर (**विश्वेदेवाः**) समस्त यज्ञदेव और विद्वज्जन (**अकृपन्त**) कृपा करते हैं। (**देवाः**) विद्वज्जन दोनों को (**नासत्यौ**) न + असत्य अर्थात् सदा सत्यव्रती नासत्य (**अब्रुवन्**) कहते हैं और कहते हैं कि (**पुनः**) फिर फिर (**इति**) ऐसा ही (**आवहतात्**) कर्म करते रहो।

भावार्थः— यज्ञ में सदा साथ रहने वाले और कभी व्रत से न डिगने वाले ऋत्विग् और यजमान पर विद्वज्जन कृपा करते हैं उन्हें नासत्य= सदा सत्य पर दृढ़ कह कर पुकारते हैं और कहते हैं कि आप दोनों सदा इस प्रकार के यज्ञ-सम्पादन कार्य को करते रहो ।।५।।

मधुमन्मे परायणं मधुमत्पुनरायनम् ।

ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ।।६।।

पदार्थः—हे आचार्योपदेशक ! (**ता**) वे (**युवम्**) आप दोनों (**देवा**) देव हो, (**देवतया**) देवत्व से (**नः**) हमें (**मधुमतः**) मधुमान् (**कृतम्**) कीजिए, जिससे (**मे**) मेरा (**परायणम्**) मोक्ष आदि उत्तम मार्ग को जाना (**मधुमत्**) मधुर हो और मेरा (**पुनरायनम्**) मोक्ष से लौटना भी (**मधुमत्**) मधुर हो।

भावार्थः—आचार्य और उपदेशक देव हैं। ये दोनों हमें देवत्व-भावना से मधुर करें कि जिससे हमारी मोक्षप्राप्ति और मोक्ष से पुनः संसारप्राप्ति दोनों ही मधुर हों ।।६।।

यह दशम मण्डल में चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

Scanned by CamScanner

सूक्त २५

ऋषिः —१-११ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—सोमः ॥ **छन्दः**—१, २, ६, १०, ११ आस्तारपङ्क्तिः । ३–५ आर्चीनिचृत्पङ्क्तिः । ७—९ आर्चीविराट्पङ्क्तिः ॥ **स्वरः**—पञ्चमः ॥

भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् ।

अधा ते सख्ये अन्धसो वि वो मदे रणन्गावो न यवसे विवक्षसे ॥१॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (**नः**) हमें (**भद्रम्**) कल्याणकारी (**मनः**) मन (**अपि**) भी (**वातय**) प्राप्त करा (**दक्षम्**) बल (**उत**) और (**क्रतुम्**) प्रज्ञा भी कल्याणकारी ही दे, (**यवसे**) घास वा चारे के लिए (**गावः न**) गौवों की भांति (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए (**अध**) अनन्तर (**ते**) आपके (**सख्ये**) सख्य में (**अन्धसः**) अन्न आदि को (**रणन्**) प्राप्त करते हैं । (**विवक्षसे**) आप महान् हैं ।

भावार्थः—हे भगवन् ! आप हमें कल्याणकारी मन, बल और बुद्धि प्रदान करें । जैसे गाय घास को प्राप्त करती है वैसे ही हम आप के सख्य में अन्न आदि भोगों को प्राप्त करें । आप महान् हैं ॥१॥

हृदिस्पृशस्त आसते विश्वेषु सोम धामसु ।

अधा कामा इमे मम वि वो मदे तिष्ठन्ते वसूयवो विवक्षसे ॥२॥

पदार्थः—(**सोम**) हे प्रेरक परमेश्वर ! (**अध**) तथा (**मम**) मेरे (**इमे**) ये (**कामाः**) कामनामय (**वसूयवः**) ऐश्वर्य चाहने वाले लोग (**विश्वेषु**) समस्त (**धामसु**) स्थानों में (**हृदिस्पृशः**) हृदय को स्पर्श करने वाले अर्थात् अतिप्रिय होकर (**ते**) तेरी (**आसते**) उपासना करते हैं (**वितिष्ठन्ते**) स्थिर रहते हैं, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**वि मदे**) कल्याण के लिए है ।

भावार्थः—उत्तम कामनाओं से युक्त प्रभु के प्यारे जन सभी स्थानों पर हैं । वे उस प्रभु के प्रिय बनकर उसकी उपासना करते हैं और उसमें स्थिति पाते हैं । भगवान् सबका कल्याण करने वाला और महान् है ॥२॥

उत व्रतानि सोम ते प्राहं मिनामि पाक्या ।

अधा पितेव सूनवे वि वो मदे मृळा नो अभि चिद्वधाद्विवक्षसे ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! (**उत**) और (**अहम्**) मैं (**पाक्या**) परिपक्व बुद्धि से (**ते**) आपके (**व्रतानि**) नियमों का (**प्रमिनामि**) पालन करूं, (**अध**) और तू (**बधात्**) नाश से बचाकर (**सूनवे**) पुत्र को (**पिता इव**) पिता के समान (**अभिचित्**) सब तरफ से (**नः**) हमें (**मृड**) सुखीकर (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) हे लोगो ! आपके (**वि मदे**) कल्याण के लिए हैं ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! हम परिपक्व बुद्धि से आपके नियमों का पालन करें । पुत्र को पिता के समान आप हमें नाश से सदा बचावें और सुखी करें । हे लोगो ! महान् प्रभु आपके कल्याण के लिए हैं ॥३॥

समु प्र यन्ति धीतयः सर्गासोऽवताँ इव ।
क्रतुं नः सोम जीवसे वि वो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥४॥

पदार्थः—हे (**सोम**) परमेश्वर ! (**सर्गासः**) घट से बंधी हुई जल निकालने की रस्सी (**इव**) जिस प्रकार (**अवतान्**) कूप में नीचे जाती है उसी तरह (**नः**) हमारी (**धीतयः**) स्तुतियाँ (**उ**) निश्चय ही (**सम् प्र यन्ति**) आप तक पहुँचती हैं, (**जीवसे**) जीवन के लिए (**चमसान् इव**) भरे हुए पात्रों के समान (**क्रतुम्**) प्रज्ञा वा कर्म को (**धारय**) धारण करा (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार घड़े में बंधी रस्सी कूप से जल निकालने के लिए कूप में जाती है वैसे ही हमारी स्तुतियाँ भगवान् को ही पहुंचती हैं । वह परमेश्वर जीवन के लिए पूरित पात्र के समान हमें कर्म वा प्रज्ञा प्रदान करता है । वह महान् है और सबके कल्याण के लिए है ॥४॥

तव त्ये सोम शक्तिभिर्निकामासो व्यृण्विरे ।
गृत्सस्य धीरास्तवसो वि वो मदे व्रजं गोमन्तमश्विनं विवक्षसे ॥५॥

पदार्थः—(**सोम**) परमेश्वर ! (**त्ये**) वे (**निकामासः**) तुझे चाहने वाले (**धीराः**) धीर (**स्तवसः**) बलशाली विद्वान् लोग (**गृत्सस्य**) स्तुत्य एवं सर्वज्ञ तुझ द्वारा प्रदत्त (**शक्तिभिः**) शक्तियों से (**गोमन्तम्**) इन्द्रियों वाले (**अश्विनम्**) प्राणों वाले (**व्रजम्**) इस शरीर रूपी गोष्ठ को (**वि ऋण्विरे**) प्राप्त करते हैं (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—भगवान् को चाहने वाले शक्तिशाली और योग्य को ही भगवान् की कृपा से इन्द्रिय और प्राणों का घर यह मानव-शरीर मिलता है। महान् प्रभु सबके कल्याण के लिए है ॥५॥

पशुं नः सोम रक्षसि पुरुत्रा विष्ठितं जगत् ।
समाकृणोषि जीवसे वि वो मदे विश्वा सम्पश्यन्भुवना विवक्षसे ॥६॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**नः**) हमारे लिए (**पशुम्**) पशु आदि की (**रक्षसि**) रक्षा करते हैं (**पुरुत्रा**) बहुत प्रकार से (**विष्ठितम्**) व्यवस्था में स्थित (**जगत्**) जगत् की भी रक्षा करते हैं, (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**सम्पश्यन्**) देखते हुए (**जीवसे**) जीवों के जीवन के लिए (**सम् आ कृणोषि**) भली प्रकार से व्यवस्थित करते हैं, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए है।

भावार्थः—भगवान् हमारे लिए सब प्रकार के पशुओं और व्यवस्थित जगत् की रक्षा करता है। जीवों के जीवन के लिए वह समस्त भुवनों को देखकर उनकी यथायोग्य व्यवस्था करता है। वह महान् है और सबके कल्याण के लिए है ॥६॥

त्वं नः सोम विश्वतो गोपा अदाभ्यो भव ।
सेध राजन्नप स्रिधो वि वो मदे मा नो दुःशंस ईशता विवक्षसे ॥७॥

पदार्थः—(**सोम**) हे परमेश्वर ! आप (**अदाभ्यः**) अविनाशी और अदम्य है (**नः**) हमारा (**विश्वतः**) सर्वतः (**गोपाः**) रक्षक (**भव**) हो, (**राजन्**) हे सबके सम्राट् ! (**स्रिधः**) हमारे हानि करने वाले काम क्रोध आदि को (**अपसेध**) हमसे दूर कर, (**दुःशसः**) अत्याचारी (**नः**) हमारे ऊपर (**मा**) मत (**ईशत**) शासन करे, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सब लोगों के (**विमदे**) कल्याण के लिए हैं।

भावार्थः—परमेश्वर अविनाशी है। वह सब तरफ से हमारा रक्षक है। वह हमारा नाश करने वाले काम क्रोध आदि को हमसे दूर करे। हमारे ऊपर अत्याचारी शासक शासन न करे। महान् प्रभु सबका कल्याण करता है ॥७॥

Scanned by CamScanner

त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि ।
क्षेत्रवित्तरो मनुषो वि वो मदे द्रुहो नः पाह्यंहसो विवक्षसे ॥८॥

पदार्थः – (**सोम**) हे परमेश्वर (**त्वम्**) तू (**सुक्रतुः**) उत्तम प्रज्ञान और कर्म वाला है और (**क्षेत्रवित्तरः**) शरीर रूपी तथा ब्रह्माण्डरूपी क्षेत्रों का महान् ज्ञाता है, (**नः**) हमारे लिए (**वयोधेयाय**) अन्न प्रदानार्थ (**जागृहि**) सदा जागरूक है (**नः**) हमें (**द्रुहः**) द्रोह करने वाले (**मनुषः**) मनुष्य से और (**अंहसः**) पाप से (**पाहि**) बचा । (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबका (**विमदे**) कल्याण करता है ।

भावार्थः —परमेश्वर उत्तम ज्ञान और क्रिया वाला है । वही शरीरों और ब्रह्माण्ड क्षेत्रों का महान् ज्ञाता है । वह हमें अन्न आदि देने के लिए सदा जागरूक है । वह द्रोही लोगों और पाप से हमें बचावे । वह महान् है और सबका कल्याण करता है ॥८॥

त्वं नो वृत्रहन्तमेन्द्रस्येन्दो शिवः सखा ।
यत्सीं हवन्ते समिथे वि वो मदे युध्यमानास्तोकसातौ विवक्षसे ॥९॥

पदार्थः—(**वृत्रहन्तम**) हे दुःखों के नाशक (**इन्दो**) परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारा (**शिवः**) कल्याणकारी (**सखा**) सखा और (**इन्द्रस्य**) ऐश्वर्यवान् का भी कल्याणकारी सखा है, (**तोकसातौ**) पुत्र आदि के लाभार्थ किये जाने वाले (**समिथे**) जीवन संग्राम में (**युध्यमानाः**) युद्ध करने वाले (**सीम्**) सर्वतः (**यत्**) चूंकि तुझे ही (**हवन्ते**) रक्षार्थ पुकारते हैं (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण करने वाला तू (**विवक्षसे**) महान् है ।

भावार्थः—दुःखों का नाशक परमेश्वर हमारा कल्याणकारी मित्र है। वही ऐश्वर्य वालों का भी मित्र है । संसार में पुत्र आदि की प्राप्ति में लगे हुए संसारयुद्ध के योद्धा उस प्रभु को ही रक्षार्थ पुकारते हैं। वह महान् प्रभु सबका कल्याण करने वाला है ॥९॥

अयं घ स तुरो मद इन्द्रस्य वर्धत प्रियः ।
अयं कक्षीवतो महो वि वो मदे मतिं विप्रस्य वर्धयद्विवक्षसे ॥१०॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**घ**) ही (**सः**) वह सोम=परमेश्वर (**तुरः**) अति व्यापक होने से त्वरितगति है (**इन्द्रस्य**) जीव का (**प्रियः**) मित्र है (**वर्धत**) हमारे ज्ञान को बढ़ावे, (**अयम्**) यह (**महः**) महान् (**कक्षीवतः**) कमर बांधकर काम में लगे (**विप्रस्य**) मेधावी की (**मतिम्**) बुद्धि को (**वर्धयत्**) बढ़ाता है, (**विवक्षसे**) महान् वह (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए है।

भावार्थः—यह परमेश्वर व्यापक होने से त्वरितगति है, जीव का मित्र है। वह हमारे ज्ञान को बढ़ावे। वह कटिबद्ध विद्वान् की बुद्धि को तीव्र करता है, वह महान् प्रभु सबका कल्याण करने वाला है ॥१०॥

अयं विप्राय दाशुषे वाजाँ इयर्ति गोमतः ।
अयं सप्तभ्य आ वरं वि वो मदे प्रान्धं श्रोणं च तारिषद्विवक्षसे ॥११॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह परमेश्वर (**दाशुषे**) दानशील (**विप्राय**) मेधावी को (**गोमतः**) गौ आदि पशुओं से युक्त (**वाजान्**) धन को (**इयर्ति**) देता है, (**अयम्**) यह (**सप्तभ्यः**) सात ज्ञान के करणों को (**वरम्**) उत्तम शक्ति (**आ**) देता है, यह (**अन्धम्**) अंधे को (**श्रोणम्**) पगु को भी (**प्र तारिषद्**) पार लगाता है, (**विवक्षसे**) महान् प्रभु (**वः**) सबके (**विमदे**) कल्याण के लिए है।

भावार्थः—यह परमेश्वर दानशील मेधावी पुरुष को गौ आदि पशुओं से युक्त धन देता है, मन, बुद्धि और पांच ज्ञान इन्द्रियां—इन सातों को शक्ति प्रदान करता है। अन्धे और पंगु को भी वही पार पहुंचाता है। वह महान् है और सबका कल्याण करने वाला है ॥११॥

यह दशम मण्डल में पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२६

ऋषिः—१—६ विमद ऐन्द्रः प्राजापत्यो वा वसुकृद्वा वासुक्रः ॥ **देवता**—पूषा ॥ **छन्दः**—१ उष्णिक् । ४ आर्षीनिचृदुष्णिक् । २ आर्चीस्वराडनुष्टुप् । ककुम्मत्यनुष्टुप् । ५—८ पादनिचृदनुष्टुप् । ६ आर्षीविराडनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—१, ४ ऋषभः । २, ३, ५—६ गान्धारः ॥

प्र ह्यच्छा मनीषाः स्पार्हा यन्ति नियुतः ।
प्र दस्रा नियुद्रथः पूषा अविष्टु माहिनः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**स्पार्हाः**) स्पृहणीय, (**नियुतः**) नियन्त्रित (**मनीषाः**) मनोभावनायें, (**हि**) निश्चय से (**अच्छा**) अच्छी प्रकार (**प्रयन्ति**) सबके पोषक पूषा=परमेश्वर को पहुँचती हैं, (**नियुद्रथः**) जगत् के अनेकों लोकों को रथ बना कर स्थित (**माहिनः**) महान् (**पूषा**) परमेश्वर (**दस्रा**) दर्शनीय पति-पत्नी के जोड़े की (**प्राविष्टु**) रक्षा करे ।

भावार्थः—स्पृहणीय एवं सब प्रकार से नियम में नियन्त्रित हमारे भाव उस भगवान् तक पहुंचते हैं। जगत् के लोकों का स्वामी परमेश्वर संसार में विद्यमान पति-पत्नी के जोड़ों की करे ॥१॥

यस्य॒ त्यन्म॑हि॒त्वं वा॑ता॒प्य॑म॒यं जनः॑ ।
विप्र॒ आ वं॑सद्धी॒तिभि॒श्चिके॑त सुष्टु॒ती॒नाम् ॥२॥

पदार्थः–(**विप्रः**) मेधावी (**अयम्**) यह (**जनः**) मनुष्य (**यस्य**) जिस पूषा सम्बन्धी (**त्यत्**) उस (**वाताप्यम्**) वायु और प्राण आदि में व्याप्त (**महित्वम्**) महत्व को (**धीतिभिः**) बुद्धि और कर्म से (**आ वंसत्**) प्राप्त करता है, वह परमेश्वर (**सुष्टुतीनाम्**) हमारी उत्तम स्तुतियों को (**चिकेत**) जानता है ।

भावार्थः—मेधावी मनुष्य समस्त जगत् और वायु आदि में व्यापक उस भगवान् के महत्व को अपने ज्ञान से जानता है । परमेश्वर हमारी स्तुतियों को जानता है ॥२॥

स वे॑द सुष्टु॒ती॒नामिन्दु॒र्न पू॒षा वृषा॑ ।
अ॒भि प्सुरः॑ प्रु॒षायति व्र॒जं॑ न॒ आ प्रु॑षायति ॥३॥

पदार्थः—(**इन्दुः न**) चन्द्रमा के समान (**वृषा**) सुखों का बरसाने वाला (**प्सुरः**) समस्त विश्व के रूपों का धारक (**सः**) वह (**पूषा**) परमेश्वर हमारी (**सुष्टुतीनाम्**) उत्तम स्तुतियों को (**वेद**) जानता और स्वीकार करता है (**नः**) हम पर (**अभि प्रुषायति**) अपनी कृपा का सिंचन करता है और हमारे (**व्रजम्**) गोशाला पर भी (**आप्रुषायति**) कृपा की वृष्टि करता है ।

भावार्थः—वह भगवान् चन्द्रमा के समान हम पर सुखों की वर्षा करने वाला है। वह हमारी उत्तम स्तुतियों को जानता और स्वीकार करता है वह जहां हम पर अपनी कृपा की वृष्टि करता है, वहां हमारी गोशाला आदि पर भी कृपा की वृष्टि करता है ॥३॥

Scanned by CamScanner

मंसीमहिं त्वा वयमस्माकं देव पूषन् ।
मतीनां च सार्धनं विप्राणां चाधवम् ॥४॥

पदार्थः—(**पूषन्**) हे जगत् के पालक (**देव**) देव परमेश्वर (**वयम्**) हम (**त्वा**) तुझे (**अस्माकम्**) अपनी (**मतीनाम्**)बुद्धियों के (**साधनम्**) सफल-कर्त्ता, (**च**) और (**विप्राणाम्**) इन्द्रियों के (**आधवम्**) पवित्र करने वाला (**मंसीमहि**) जानते हैं ।

भावार्थः—जगत् का पालक परमेश्वर देव हमारी बुद्धियों का सफल करने वाला और हमारे इन्द्रिय व्यापारों का पवित्र करने वाला है । उसे हम ऐसा जानें ॥४॥

प्रत्यर्धिर्यज्ञानामश्वहयो रथानाम् ।
ऋषिः स यो मनुर्हितो विप्रस्य यावयत्सखः ॥५॥

पदार्थ—(**यः**) जो (**यज्ञानाम्**) हमारे यज्ञों का (**प्रत्यर्धि**) पूरक है (**रथानाम्**) रमणीय सूर्य आदि पदार्थों का (**अश्वहयः**) चलाने वाला है (**सः**) वह जगत् का पालक परमेश्वर (**ऋषिः**) सबका द्रष्टा (**मनुः**) ज्ञानमय तथा (**विप्रस्य**) मेधावी का (**हितः**) हितकारी (**सखः**) सखा है और (**यावयत्**) सबके दुःखों को दूर करता है और उन्हें सुखों से संयुक्त करता है ।

भावार्थः—जगत् का पालक परमेश्वर हमारे यज्ञों का पूरक और रमणीय सूर्य आदि पदार्थों का चलाने वाला है । वह सर्वद्रष्टा, सर्वज्ञ, मेधावी पुरुष का हितकारी सखा है । वह दुःखों को दूर करताहै और सुखों से संयुक्त करता है ॥५॥

आधीषमाणायाः पतिः शुचायाश्च शुचस्य च ।
वासोवायोऽवीनामा वासांसि मर्मृजत् ॥६॥

पदार्थः—(**आधीषमाणायाः**) सब प्रकार से धृत, (**शुचायाः**) सत्व गुण वाली प्रकृति (**च**) और (**शुचस्य**) ज्ञान गुण वाले जीव का वह पालक परमेश्वर (**पतिः**) स्वामी है । (**अवीनाम्**) भेड़ों के ऊन से जैसे (**वासोवायः**) ऊनी वस्त्रों का बनाने वाला वस्त्रों को बनाकर (**वासांसि**) वस्त्रों को (**मर्मृजत्**) साफ स्वच्छ रखता है वैसे ही वह प्रभु प्रकृति परमाणुओं से अपने द्वारा बनाये गये शरीररूपी वस्त्रों को स्वच्छ साफ बनाता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—वह परमेश्वर जीव और प्रकृति का धारक तथा स्वामी है जिस प्रकार ऊनी वस्त्र बनाने वाला (अवी) भेड़ के ऊन से स्वच्छ वस्त्र बनाता है वैसे ही वह प्रभु भी (अवी) प्रकृति परमाणुओं से जीव के शरीर रूपी वस्त्रों को स्वच्छ बनाता है ॥६॥

इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ।
प्र श्मश्रु हर्यतो दूधोद्वि वृथा यो अदाभ्यः ॥७॥

पदार्थ—(**इनः**) स्वामी पूषा (**वाजानाम्**) धनों का (**पतिः**) पालक है, (**इनः**) प्रभु वह (**पुष्टीनाम्**) समस्त पुष्टियों का सखा है (**अदाभ्यः**) किसी से भी न दबाया जाने वाला (**यः**) जो पूषा (**हर्यतः**) घास आदि से हरियाली युक्त जगत् के (**श्मश्रु**) घास, औषध वृक्ष आदि को (**वृथा**) अनायास (**प्रवि दूधोत्**) प्रचण्ड वायु वेग आदि से कम्पायमान कर देता है ।

भावार्थः—परमेश्वर समस्त धनों और समस्त पुष्टियों का स्वामी और पालक है । वह बड़ा शक्तिशाली है और वायु के वेग आदि माध्यमों से जगत् के घास वृक्ष आदि सभी को हिला देता है ॥७॥

आ ते रथस्य पूषन्नजा धुरं ववृत्युः ।
विश्वस्यार्थिनः सखा सनोजा अनपच्युतः ॥८॥

पदार्थः—(**पूषन्**) हे जगत् के पालक परमेश्वर ! (**विश्वस्य**) सब (**अर्थिनः**) याचकों का तू (**सखा**) सखा है, (**सनोजाः**) सदा से विद्यमान अनादि और (**अनपच्युतः**) अपने अधिकारों से युक्त है (**ते**) तेरे (**रथस्य**) विश्वरूपी रथ के (**धुरम्**) धुरा को (**अजाः**) समस्त गतिशील भौतिक शक्तियां (**आ ववृत्युः**) आवर्तित करती हैं ।

भावार्थः—हे जगत् के पालनकर्त्ता परमेश्वर ! आप अनादि सर्व-शक्तिमान् हैं और प्राथियों के मित्र हैं आपके इस विश्वरूपी रथ को समस्त गतिशील भौतिक शक्तियां आवर्त्तित करती अर्थात् चलाती हैं ॥८॥

अस्माकमूर्जा रथं पूषा अविष्टु माहिनः ।
भुवद्वाजानां वृध इमं नः शृणवद्धवम् ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**मंहिनः**) महान् (**पूषा**) जगत् का पालक परमेश्वर (**ऊर्जा**) बल से (**अस्माकम्**) हमारे (**रथम्**) शरीर रूपी रथ की (**अविष्टु**) रक्षा करे, (**वाजानाम्**) अन्नों का (**वृधः**) वर्धक (**भुवद्**) होवे (**नः**) हमारी (**इमम्**) इस (**हवम्**) पुकार को (**शृणवत्**) सुने ।

भावार्थः—जगत् का पालक भगवान् सभी धनों का महान् स्वामी है। वह हमारे शरीररूपी रथ की बल से रक्षा करे। वह अन्नों का वर्धक हो और हमारी इस पुकार को सुने ॥६॥

यह दशम मण्डल का छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २७

ऋषिः—१—२४ वसुक्र ऐन्द्रः ॥ **देवता**—**इन्द्रः** ॥ **छन्द**—१, ५, ८, १०, १४, २२ त्रिष्टुप् । २, ६, १६, १८ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ११, १२, १५, १९–२१, २३ निचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७, १३, १७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २४ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः** -धैवतः ॥

असत्सु मे जरितः साभिवेगो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षम् ।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृतं वृजिनायन्तमाभुम् ॥१॥

पदार्थः—(**जरितः**) हे स्तोतः (**मे**) मेरा (**सु**) शोभन (**सः**) वह (**अभिवेगः**) कार्य (**असत्**) है (**यत्**) जो कि (**सुन्वते**) यज्ञ करने वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**शिक्षम्**) अभिलषित वस्तु प्रदान करता हूँ (**अहम्**) मैं इन्द्र=परमेश्वर (**अनाशीर्दाम्**) बुरा चाहने वाली (**सत्यध्वृतम्**) सत्य के विघातक, (**वृजिनायन्तम्**) पाप में लगी (**आभुम्**) व्यापक प्रवृत्ति का (**प्रहन्ता**) मारने वाला (**अस्मि**) हूँ ।

भावार्थः—हे स्तुति करने वाले मनुष्य ! यह मेरा कार्य है कि मैं यज्ञ करने वाले यजमान के अभिलषित को प्रदान करता हूं। मैं परमेश्वर बुरा चाहने वाली सत्य विघातक, पाप में लगी व्यापक प्रवृत्ति नष्ट करने वाला हूं ॥१॥

Scanned by CamScanner

यदीदहं युधये संनयान्यदेवयून्तन्वा३ शूशुजानान् ।
अमा ते तुम्रं वृषभं पचानि तीव्रं सुतं पञ्चदशं नि षिञ्चम् ॥२॥

पदार्थः—हे स्तोत: (**यदि**) यदि (**अहम इव**) मैं ही (**तन्वा**) शरीर से (**शूशुजानान्**) अति पुष्ट और आत्मा से कमजोर (**अदेवयून्**) यज्ञ आदि उत्तम कर्म न करने वालों को (**युधये**) उनसे युद्ध करने के लिए (**संनयानि**) एकत्र करूं तब तो (**ते**) तुम्हारे लिए (**तुम्रम्**) बली (**तीव्रम्**) तीक्ष्ण (**वृषभम्**) सूर्य को (**पचानि**) पकाऊं और (**अमा**) साथ ही (**पञ्चदशम्**) चन्द्रमा को (**सुतम्**) सोम से (**निषिञ्चम्**) सेचन करूं ।

भावार्थः· हे स्तावक ! यदि शरीर से बली और आत्मा से कमजोर इन उत्तम कर्म न करने वालों से युद्ध करने के लिए मैं ही इन्हें उद्यन करूं तो इसका यह तात्पर्य है कि मैं महान् सूर्यको और सन्तप्त करूं तथा चन्द्रमा को सोम से सिक्त करूं ॥२॥

नाहं तं वेद य इति ब्रवीत्यदेवयून्त्समरणे जघन्वान् ।
यदावाख्यत्समरणमृघावदादिद्ध मे वृषभा प्र ब्रुवन्ति ॥३॥

पदार्थः—(**अदेवयून्**) यज्ञ आदि न करने वालों को (**समरणे**) संग्राम में (**जघन्वान्**) मैंने मारा (**इति**) ऐसा (**यः**) जो (**ब्रवीति**) कहता है (**अहम्**) मैं (**न**) नहीं (**वेद**) जानता हूँ, (**यत्**) चूंकि (**ऋघावत्**) हिंसादि से युक्त (**समरणम्**) संग्राम को (**अवाख्यत्**) देखता हूँ (**आत् इत्**) तभी (**मे**) मेरे (**वृषभा**) बलयुक्त कर्मों का (**प्र ब्रुवन्ति**) वर्णन करते हैं ।

भावार्थः—यज्ञ आदि न करने वालों को मैं भगवान् संग्राम में मारता हूं, ऐसा यदि कोई कहता है तो मैं उसे नहीं जानता हूं । चूंकि जगत् में हिंसा आदि से युक्त ऐसे संग्राम को देखता हूं अतः लोग इस महान् कर्म को मेरा कर्म वर्णन करते हैं ॥३॥

यदज्ञातेषु वृजनेष्वासं विश्वे सतो मघवानो म आसन् ।
जिनामि वेत्क्षेम आ सन्तमाभुं प्र तं क्षिणां पर्वते पादगृह्य ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब मैं (**अज्ञातेषु**) लोगों को नहीं ज्ञात है ऐसे (**वृजनेषु**) संग्रामों में (**आसम्**) लगा होता हूँ तब (**विश्वे**) समस्त (**मघवानः**) ऐश्वर्यशाली

(ऋषयः) जगत् के कारण (सतः) सत्ताधारी (मे) मेरे (आसन्) हैं (वा इत्) और (क्षेमे) जगत् के पालन में (आ सन्तम्) लगे हुए (आभुम्) व्यापक प्रकृति को (जिनामि) काबू में रखता हूँ (तम्) उसको (पादगृह्य) कदम-कदम पर (पर्वते) श्रेणीबद्ध जगत् में (प्रक्षिणाम्) परिवर्त्तित करता हूँ ।

भावार्थः—जो लोगों को ज्ञात नहीं ऐसे विश्व-रचना सम्बन्धी संग्रामों में समस्त ऐश्वर्यशाली कारण मेरे साथ और मेरे नियन्त्रण में रहते हैं। मैं समस्त कार्यों में व्यापक प्रकृति को जगत् की रक्षा में कदम-कदम पर श्रेणीबद्ध कार्य जगत् के रूप में परिवर्त्तित करता हूं ॥४॥

न वा उ मां वृजने वारयन्ते न पर्वतासो यदहं मनस्ये ।
मम स्वनात्कृधुकर्णो भयात एवेदनु द्यून्किरणः समेजात् ॥५॥

पदार्थः—(न) निश्चय ही (वृजने) इस संसार की रचना आदि के कार्य में (माम्) मुझे (न उ) कोई नहीं (वारयन्ते) हटा सकते हैं (यद्) जो मैं (मनस्ये) चाहता हूँ उसे (पर्वतासः) पर्वत भी (नः) नहीं रोक सकता है,(मम) मेरे (स्वनात्) विद्युद् के गर्जन आदि शब्दों से (कृधु कर्णः) कान से कम सुनने वाला भी (भयाते) डरता है (एव इत्) इसी प्रकार (अनुद्यून्) प्रतिदिन (किरणः) रश्मियों से युक्त सूर्य भी (सम् एजात्) चला करता है ।

भावार्थः—मैं इस संसार की रचना के कार्य को जैसा उचित है करता हूं। इसमें पर्वत जैसी महान् शक्तियां भी न मुझे रोक सकती हैं और न कोई हस्तक्षेप कर सकती हैं। मेरी विद्युतसम्बन्धी गर्जना से कम सुनने वाला भी डर जाता है। सूर्य भी मेरी शक्ति से चलता है ॥५॥

दर्शन्न्वत्र शृतपाँ अनिन्द्रान्बाहुक्षदः शरवे पत्यमानान् ।
घृषुं वा ये निनिदुः सखायमध्यू न्वेषु पवयो ववृत्युः ॥६॥

पदार्थः—(अत्र) इस जगत् में (शृतपान्) भोगों को भोगने वाले (अनिन्द्रान्) अयुक्त कर्म में लगे हुए (बाहुक्षदः) बाहुओं से दूसरों को पीड़ित करने वाले (शरवे) हिंसा पर (पत्यमानान्) टूट पड़ने वाले लोगों को (नु) शीघ्र (दर्शन्) देखता हूं, (एषु) इनके (अधि) ऊपर तथा (घृषुम) महान् (वा) और (सखायम) हितकारी की जो (निनिदुः) निन्दा करते हैं (उ) उन सब पर (पवयः) दण्ड देकर पवित्र करने वाले कार्य (ववृत्युः) चालू रहते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस संसार में अयुक्त कर्म करने वाले, केवल भोग में लगे हुए और हिंसक वृत्ति वाले, दूसरों को पीड़ा देने वाले हितकारी की भी निन्दा करने वाले लोगों पर मेरा दण्डकार्य उनके सुधारने के लिए चालू रहता है ॥६॥

अभूर्वौक्षीर्व्युऽ आयुरानड् दर्षन्नु पूर्वो अपरो नु दर्षत् ।
द्वे पवस्ते परि तं न भूतो यो अस्य पारे रजसो विवेष ॥७॥

पदार्थः—हे इन्द्र=प्रभो ! तू (**अभूः उ**) अनादि है, अजन्मा है (**औक्षीः**) प्रत्येक सर्ग में जगत् के बीज को तू ही बोता है, (**आयुः**) जगत् की आयु को तू ही (**आनट्**) देता है, (**पूर्वः**) पहले विद्यमान और पूर्ण ही (**दर्षत् नु**) वही शीघ्र विदारण करने में समर्थ होता है, (**अपरः**) दूसरा परकालीन कोई (**नु**) नहीं (**दर्षत्**) विदारण कर सकता है, (**पवस्ते**) विस्तृत भी (**द्वे**) द्यु और पृथिवी लोक (**तम्**) उस तुझको (**न**) नहीं (**परिभूतः**) ढांप सकते (**यः**) जो (**अस्य**) इस (**रजसः**) संसार के (**पारे**) पार भी (**विवेष**) व्यापक हो रहा है ।

भावार्थः— भगवान् अजन्मा और अनादि है । वही जगत् का समय निर्धारित करता और समय पर जगत् के लिए बीज बोता है । जो पूर्ववर्ती और पूर्ण है वही कठिनाइयों के विदारण में समर्थ है और दूसरा कोई नहीं । ये द्यु और पृथिवी लोक भी परमेश्वर को ढ़क नहीं सकते हैं क्योंकि वह जगत् के बाहर भी व्यापक हो रहा है ॥७॥

गावो यवं प्रयुता अर्यो अक्षन्ता अपश्यं सहगोपाश्चरन्तीः ।
हवा इदर्यो अभितः समायन्कियदासु स्वपतिश्छन्दयाते ॥८॥

पदार्थः—(**सहगोपाः**) गोपालक के साथ (**चरन्तीः**) चरती हुई (**प्रयुताः**) एक साथ रहने वाली गायें जिस प्रकार (**यवम्**) यव, घास आदि को (**अक्षन्**) खाती हैं वैसे ही जीव संसार में एकत्र हुए अपने कर्मों के फलानुसार फल भोगते हैं, (**अर्यः**) स्वामी मैं (**ताः**) उन सबको (**अपश्यम्**) देखता हूँ, वे (**अर्यः**) स्वामी के (**अभितः**) चारों तरफ (**हवाः इव**) बुलाये हुए से (**सम् आयन्**) एकत्र हो जाते हैं (**आसु**) उनमें (**स्वपतिः**) स्वामी ने (**कियत्**) कितनी (**छन्दयाते**) स्वतन्त्रता दी है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः – जिस प्रकार गायें अपने पालक के साथ चरती हुई एक साथ यव, घास आदि को खाती हैं वैसे ही समस्त जीव अपने पालक भगवान् के नियन्त्रण में अपने कर्मफल का संसार में एकत्र हो भोग करते हैं। भगवान् उनको देखता है। वे जीव बुलाये हुए के समान प्रलय काल में अपने प्रभु के आस-पास एकत्र होते हैं। उन्हें सबके स्वामी भगवान् ने कर्म-स्वतन्त्रता दी है ॥८॥

सं यद्वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।
अत्रा युक्तोऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥९॥

पदार्थः—(**यत्**) क्योंकि (**जनानाम्**) जीवों में (**वयन्**) हम सब (**यवसादः**) भोग को भोगने वाले हैं, (**उर्वज्रे**) महान् आकाश अथवा हृदयाकाश के (**अन्तः**) अन्दर विद्यमान लोग (**यवादः**) संयोग-वियोग से गृहीत हैं (**अत्र**) इस शरीर में (**युक्तः**) समाहितचित्त होकर (**अवसातारम्**) उस प्रभु को (**इच्छात्**) चाहा करे (**अथो**) और वह (**ववन्वान्**) दाता प्रभु (**अयुक्तम्**) अयोगी को भी (**युनजत्**) योग में लगाता है ।

भावार्थः—चूंकि हम इस जगत् में जन्मधारी हैं और कर्मफल को भोग रहे हैं। आकाश अथवा हृदयाकाश में विद्यमान हम संयोग-वियोग से ग्रस्त हैं। इस शरीर में रहते समाहित चित्त होकर मनुष्य भगवान् को चाहे। दाता प्रभु अयोगी को भी योग में प्रवृत्त कर सकता है ॥९॥

अत्रेदु मे मंससे सत्यमुक्तं द्विपाच्च यच्चतुष्पात्संसृजानि ।
स्त्रीभिर्यो अत्र वृषणं पृतन्यादयुद्धो अस्य वि भजानि वेदः ॥१०॥

पदार्थः—हे जीव ! (**अत्र इत् उ**) यहां ही (**मे**) मेरे (**उक्तम्**) कहे हुए को (**सत्यम्**) सत्य (**मंससे**) समझ (**यत्**) जो (**द्विपात्**) दो पांवों वाला (**च च**) और भी जो (**चतुष्पत्**) चार पावों वाला जीवजगत् है उसको मैं (**संसृजानि**) उत्पन्न करता हूँ (**अत्र**) इस जगत् में (**यः**) जो (**स्त्रीभिः**) स्त्रियों के साथ (**वृषणम्**) भोग भावना से इन्द्रिय को (**पृतन्यात्**) इस युद्ध में लगा रखता है और निरन्तर भोग में ही पड़ा रहता है (**अयुद्धः**) उससे बिना युद्ध किये ही (**अस्य**) उसके (**वेदः**) प्राप्तव्य फल को (**विभजानि**) देता हूँ ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे जीव यह जो मेरा कथन है उसे सत्य मान । जगत् में दो पैर वाले और चार पैर वाले जीवजगत् को मैं बनाता हूं । जो इस जगत् में मानवशरीर में आकर कामिनियों के साथ भोग के युद्ध में ही लगा रहता है उसके किये का फल मैं विना युद्ध किये ही समय पर प्रदान करता हूं ॥१०॥

यस्यानक्षा दुहिता जात्वास कस्तां विद्वाँ अभि मन्याते अन्धाम् ।
कतरो मेनिं प्रति तं मुचाते य ईं वहाते य ईं वा वरेयात् ॥११॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस मेरे अधीन (**अनक्षा**) अन्धी=ज्ञानरहित (**दुहिता**) मेरे गुण, कर्म स्वभाव से भिन्न प्रकृति (**जातु**) प्रलय काल में (**आस**) रहती है, (**ताम्**) उसे (**कः**) मुझसे अतिरिक्त कौन (**विद्वान्**) पूर्णतः जानता है मेरे से अतिरिक्त कौन (**अन्धाम्**) उस अन्धी प्रकृति को (**अभि मन्याते**) सर्वतः स्वीकार कर धारण कर सकता है ? (**कतरः**) कौन है जो (**तम्**) प्रसिद्ध उस (**मेनिम्**) बज्र को (**प्रति मुंचाते**) छोड़ता है ?(**यः**) जो (**ईम्**) इसे (**वहाते**) धारण करता है (**वा**) और जो (**ईम्**) इसे (**वरेयात्**) स्वीकार करता है ।

भावार्थः परमेश्वर वस्तुतः वह प्रमुख शक्ति है जिसके नियन्त्रण में ज्ञानहीन प्रकृति है । कोई भी उस प्रभु के अतिरिक्त इसे पूर्णतया न जान सकता है और न इसका धारण ही कर सकता है । बिजली जो मेघ से आती है उसे भी वही प्रभु छोड़ता है जिसने उसको धारण कर रखा है ॥११॥

कियती योषा मर्यतो वधूयोः परिप्रीता पन्यसा वार्येण ।
भद्रा वधूर्भवति यत्सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित् ॥१२॥

पदार्थः—(**कियती**) कितनी (**योषा**) स्त्रियां हैं जो (**वधूयोः**) वधू की कामना करने वाले (**मर्यतः**) मनुष्य के (**पन्यसा**) प्रशंसायुक्त वचन और (**वार्येण**) धन से (**परिप्रीता**) सन्तुष्ट हो जाती हैं, वास्तविक रूप में (**भद्राः**) उत्तम (**वधूः**) वधू वही (**भवति**) होती है (**यत्**) जो (**सुपेशाः**) उत्तम रूप वाली है और (**सा**) वह (**जने चित्**) लोगों के बीच (**मित्रम्**) अपने सहयोगी को (**स्वयम्**) स्वयं ही (**वनुते**) चुनती है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—प्रकृति और पुरुष का प्रसंग होने से प्रसंगवश स्त्री पुरुष का वर्णन करते हुए कहा गया है कि कितनी स्त्रियां ऐसी होती हैं जो पुरुष के वचन और धन से सन्तुष्ट होती हैं। उत्तम वधू वही है जो सुरूपा है और लोगों के मध्य अपने जीवनसाथी को स्वयं चुनती है ॥१२॥

पत्तो जगार प्रत्यञ्चमत्ति शीर्ष्णा शिरः प्रति दधौ वरूथम् ।
आसीन ऊर्ध्वामुपसि क्षिणाति न्यङ्ङुत्तानामन्वेति भूमिम् ॥१३॥

पदार्थः—(**पत्तः**) व्यापक इन्द्र परमेश्वर (**जगम्**) जगत् को निगलता है प्रलय काल में (**प्रत्यञ्चम्**) कार्यरूप के उल्टे, कारणरूप में हो जावे ऐसा (**अत्ति**) ग्रहण करता है (**शिरः**) प्रकृति में शीर्ण (**वरूथम्**) परमाणु समूह को (**शीर्ष्णा**) उत्तम भाग आकाश में (**प्रति दधौ**) धारण करता है, वह प्रलय करते समय (**ऊर्ध्वाम्**) ऊपर के लोकों के रूप में विद्यमान प्रकृति को (**उपसि**) समीप में (**आसीनः**) स्थित हुआ (**क्षिणाति**) क्षीण करता है और (**उत्तानाम्**) उत्तान भूमि को (**न्यङ्**) नीचे से (**अनु एति**) उसका अनुगामी बनाता है अर्थात् क्षय करता है।

भावार्थः— व्यापक परमेश्वर प्रलयकाल में जगत् को निगल जाता है और कार्य को कारण रूप में ग्रहण करता है। प्रकृति के परमाणु पुंज को आकाश में धारण करता है। प्रलय करते समय ऊपर विद्यमान लोकों और भूमि को क्षीण करता है ॥१३॥

बृहन्नच्छायो अपलाशो अर्वा तस्थौ माता विषितो अत्ति गर्भः ।
अन्यस्या वत्सं रिहती मिमाय कया भुवा नि दधे धेनुरूधः ॥१४॥

पदार्थः—(**बृहत्**) महान् (**अच्छायः**) अन्धकाररहित, (**अपलाशः**) विनाशरहित (**अर्वा**) सब को गति देने वाला, (**माता**) जगत् का निर्माता (**विषितः**) व्यापक होकर (**तस्थौ**) स्थित है वह (**गर्भः**) ग्रहण करने वाला है और (**अत्ति**) जगत् को ग्रहण कर लेता है, (**अन्यस्याः**) अपने से भिन्न प्रकृति के (**वत्सम्**) वत्स इस जगत् को (**रिहती**) चाटन करती हुई (**धेनुः**) भगवान् रूपी शक्ति (**मिमाय**) सृष्टि काल में पुनः निर्मित करती है, (**कया**) सुखमय (**भुवा**) उत्पत्ति से (**ऊधः**) जगत् को (**नि दधे**) धारण करती है।

भावार्थः—परमेश्वर महान्, अविनाशी और सबको गति देने वाला

Scanned by CamScanner

है। वही सबका निर्माता है। प्रलयकाल में वह जगत् को समेट कर ग्रहण करता है। प्रकृति के कार्य इस जगत् को अपने में लेकर पुनः सर्गकाल में निर्मित करता है और सुखमयी उत्पत्ति से इसे पुनः धारण करता है। अर्थात् जगत् का प्रवाह सृष्टि और प्रलयरूप से चलता अनादि है ।।१४।।

सप्त वीरासो अधरादुदायन्नष्टोत्तरात्तात्समजग्मिरन्ते ।

नव पश्चात्तात्स्थिविमन्त आयन्दश प्राक्सानु वि तिरन्त्यश्नः ।।१५।।

पदार्थः—(**सप्त**) सात (**वीरासः**) प्रकृति विकृति रूपी कार्य उस इन्द्र के द्वारा नियन्त्रित प्रकृति के (**अधरात्**) अधर भाग से (**उदत्यन्**) उत्पन्न होते हैं, (**ते**) वे (**अष्ट**) आठ अर्थात् आठ वसु (**उत्तरात्तात्**) उत्तर भाग से (**समजग्मिरम्**) उत्पन्न होते हैं (**स्थिविमन्तः**) स्थानवाले (**नव**) नव इन्द्रिय द्वारा (**पश्चात्तात्**) पश्चात् (**आयन्**) उत्पन्न हुए, (**दश**) दश प्राण (**प्राक्**) आगे से उत्पन्न (**अश्नः**) वायु के (**सानु**) ऊपर आकाश में (**वि तिरन्ति**) विचरते हैं और वृद्धि प्रदान करते हैं।

भावार्थः — शक्तिशाली भगवान् के नियन्त्रण में रहती हुई प्रकृतिरूपी सामग्री से उसके चारों तरफ से सात प्रकृति विकृतियें, आठ वसु, नव शरीर द्वार और दश प्राण वा इन्द्रियां आदि उत्पन्न होते हैं और प्राण आकाश में स्थिति पाते हैं ।।१५।।

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।

गर्भं माता सुधितं वक्षणास्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ।।१६।।

पदार्थ- (**दशानाम्**) दश प्राणों वा इन्द्रियों के बीच में (**एकम्**) एक (**समानम्**) सबके साथ तदनुरूप होने वाले (**तम्**) उस (**कपिलम्**) ज्ञान वाले अथवा प्रेरक आत्मा को (**पार्याय**) क्रमबद्ध (**क्रतवे**) अनुभूति और क्रिया के लिए (**हिन्वन्ति**) प्रकृति और परमेश्वर की शक्तियां प्रेरित करती हैं, (**वक्षणासु**) प्रकृतिस्थ सूक्ष्म परमाणुओं में (**सुधितम्**) स्थापित (**अवेनन्तम्**) न चाहने वाले (**गर्भम्**) गर्भ को (**तुषयन्ती**) प्रीता (**माता**) प्रकृति (**बिभर्त्ति**) धारण करती है।

भावार्थः - दश प्राणों और इन्द्रियों के मध्य एक सब के प्रति समान होने वाले ज्ञान और गति दाता जीव को क्रमबद्ध अनुभूति और कर्म के

Scanned by CamScanner

लिए भगवान् और प्रकृति की शक्तियां प्रेरित करती हैं। मातारूपी प्रकृति परमाणुओं में स्थित न चाहने वाले गर्भ को तुष्ट हो धारण करती है।।१६।।

पीवानं मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन् ।
द्वा धनुं बृहतीमप्स्व१न्तः पवित्रवन्ता चरतः पुनन्ता ।।१७।।

पदार्थः (**वीराः**) प्राण (**पीवानम्**) स्थूल (**मेषम्**) जीवयुक्तदेह को (**अपचन्त**) परिपक्व करते हैं, (**दीवे**) रमणीय शरीर में (**न्युप्ताः**) डाले गये (**अक्षाः**) इन्द्रिय गोलक (**अन्वासन्**) अनुरूप हो जाते हैं, (**पुनन्ता**) पवित्र करने वाले (**पवित्रवन्ता**) ऊष्मा को धारण किये हुए (**द्वे**) प्राण और अपान (**धनुम्**) धनु के समान (**बृहतीम्**) बढाने वाली प्रकृति की (**अप्सु**) सूक्ष्म प्राकृतिक जल परमाणुओं के (**अन्तः**) अन्तराल में (**चरतः**) परिचर्या करते हैं।

भावार्थः—प्राण जीवात्मयुक्त उस स्थूल देह को परिपक्व करते हैं। इन्द्रिय गोलक उसमें अनुरूपता धारण करते हैं और प्राण तथा अपान रूपी दो शक्तियाँ ऊष्मा से युक्त हुई वृद्धिशाली प्रकृति के गर्भ की प्रकृति के सूक्ष्म जल परमाणुओं के मध्य परिचर्या करती हैं ।।१७।।

वि क्रोशनासो विष्वञ्च आयन्पचाति नेमो नहि पक्षदर्धः ।
अयं मे देवः सविता तदाह द्र्वन्न इद्वनवत्सर्पिरन्नः ।।१८।।

पदार्थः—(**विक्रोशनासः**) प्रभु को पुकारते हुए (**विष्वञ्चः**) विविध मार्गों वाले जीव (**आयन्**) इस संसार में आते हैं, (**नेमः**) एकाध तो (**पचाति**) तप आदि करते हैं दूसरा (**अर्धः**) आधा (**नहि**) नहीं (**पक्षत्**) तप करता है (**सविता**) सबका प्रेरक (**अयम्**) इस (**देवः**) देव ने (**तत्**) यह (**आह**) कहा है कि (**द्र्वन्नः**) काष्ठ को खाने वाला (**इत्**) और (**सर्पिरन्नः**) घी को खाने वाला अग्नि (**वनवत्**) हवि आदि का भोक्ता होता है।

भावार्थः - प्रभु को पुकारते हुए विविध मार्गों वाले जीव इस संसार में आते हैं। एकाध यज्ञ तप आदि करते हैं और दूसरे नहीं करते हैं। सबके प्रेरक परमेश्वर ने यह कहा है कि काष्ठ और घी को अन्नवत् खाने वाला अग्नि हवि का भोक्ता है। उसे हवि दी जानी चाहिए ।।१८।।

Scanned by CamScanner

अपश्यं ग्रामं वहमानमाराद॑चक्रया॑ स्वधया॑ वर्तमानम् ।
सिषक्त्यर्यः प्र युगा जनानां सद्यः शिश्ना प्रमिनानो नवीयान् ॥१९॥

पदार्थ (**अचक्रया**) स्वयं कार्य न करने वाली जड़ (**स्वधया**) प्रकृति के साथ वर्तमान और (**आरात्**) अनादि काल से (**ग्रामम्**) भूतसंघ को (**वहमानम्**) वहन करते हुए उस प्रभु को (**अपश्यम्**) मैं जानूं वह (**नवीयान्**) स्तुत्य, (**अर्यः**) स्वामी (**सद्यः**) सदा (**शिश्ना**) दुःखदायी कारणों का (**प्रमिनानः**) नाश करने वाला (**जनानाम्**) लोगों के (**युगा**) जोड़ों को (**प्रसिसक्ति**) उत्पन्न करता और मिलाता है ।

भावार्थः—भगवान् बिना क्रिया वाली प्रकृति के साथ विद्यमान है । वह अनादि काल से भूतग्राम का परिवहन कर रहा है । उसको मैं जानूँ । वह शीघ्र ही दुःखद कारणों का नाश करने वाला है और संसार में लोगों के जोड़ों को जोड़ता है ॥१९॥

एतौ मे गावौ प्रमरस्य युक्तौ मो षु प्र सेधीर्मुहुरिन्ममन्धि ।
आपश्चिदस्य वि नशन्त्यर्थं सूरश्च मर्क उपरो बभूवान् ॥२०॥

पदार्थः—(**प्रमरस्य**) मरणधर्मा (**मे**) मुझ मनुष्य के (**एतौ**) ये (**गावौ**) प्राण और अपान (**युक्तौ**) देह में जुड़े हैं उन्हें (**मो**) मत (**सु**) सुष्ठुरूप से (**प्रसेधीः**) दूर कर (**मुहुः इत्**) बार बार (**ममन्धि**) जोड़ (**अस्य**) इस जीव के (**आपः**) सूक्ष्म शरीर (**चित्**) ही (**अस्य**) इसके (**अर्थम्**) उद्देश्य तक (**वि नशन्ति**) पहुँचाते हैं, वह प्रभु (**सूरः च**) सूर्य के समान (**मर्कः**) जगत् का शोधक और (**उपरः**) मेघ के समान पदार्थों का दाता (**बभूवान्**) है ।

भावार्थः—भगवान् सूर्य के समान शोधक और मेघ के समान दाता है । वह मरणधर्मा इस मनुष्य के प्राण और अपान को शरीर में जुड़ा रखे, दूर न करे । जीव सूक्ष्मशरीर से ही उसके प्राप्तव्य स्थान तक पहुँचते हैं ॥२०॥

अयं यो वज्रः पुरुधा विवृत्तोऽवः सूर्यस्य बृहतः पुरीषात् ।
श्रव इदेना परो अन्यदस्ति तदव्यथी जरिमाणस्तरन्ति ॥२१॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**यः**) जो (**वज्रः**) वज्र=दुःखों का वारक वज्र

(पुरुधा) बहुत जीवों को धारण करने में समर्थ (विवृत्तः) विविध प्रकार से वर्त्त रहा है वह (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी (बृहतः) महान् प्रभु के (पुरीषात्) ऐश्वर्य से (श्रवः) प्राप्त होता है (एना) इससे (परः) उत्कृष्ट (अन्यत्) दूसरा भी (श्रवः) श्रवणीय (इत् अस्ति) है (तत्) उसको (अव्यथी) बाधा आदि से रहित (जरिमाणः) स्तावक (तरन्ति) प्राप्त करते हैं।

भावार्थ – यह जो दुःखों का निवारक वज्र चल रहा है वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के ऐश्वर्य से चल रहा है। इससे बढ़कर दूसरा ऐश्वर्य भी प्रभु का है जिसे स्तुति करने वाले प्राप्त करते हैं ॥२१॥

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः ।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत् ॥२२॥

पदार्थ—(वृक्षे वृक्षे) प्रत्येक धनुष पर (नियता) चढी हुई (गौ) डोर (मीमयत्) टंकार करती है (ततः) उस धनुष से (वयः) वाण (पुरुषादः) लोगों को खाने के लिए (प्रपतान्) गिरते हैं (अथ) और (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) लोक (इन्द्राय) इन्द्र के लिए (सुन्वत्) यज्ञ करते हुए (च) और (ऋषये) वेदज्ञ को (शिक्षत्) दक्षिणा आदि देते हुए भी (भयाते) डरता है।

भावार्थः – प्रत्येक धनुष पर प्रत्यंचा चढी हुई टंकार मारती है और जीवों को खाने के लिए वाण उस धनुष से गिर रहे हैं। यज्ञ करते हुए और वेदज्ञ को दान आदि देते हुए भी यह समस्त लोक डरता है। जगत् में प्रभु की न्यायव्यवस्था बड़ी शक्तिशाली है ॥२२॥

देवानां माने प्रथमा अतिष्ठन्कृन्तत्रादेषामुपरा उदायन् ।
त्रयस्तपन्ति पृथिवीमनूपा द्वा बृबूकं वहतः पुरीषम् ॥२३॥

पदार्थ – (देवानाम्) दिव्य पदार्थों के (माने) निर्माण काल में (प्रथमा) मुख्य रूप से कारणरूप देव पदार्थ (अतिष्ठन्) रहते हैं (एषाम्) इनके द्वारा (कृन्तत्रात्) छेदन भेदन से (उपरा) मेघ (उद् आयन्) उत्पन्न होते हैं। पश्चात् (त्रयः) तीन तत्व अग्नि, वायु, सूर्य (अनूपाः) अनुकूल होकर (पृथिवीम्) पृथिवी को (तपन्ति) तप्त करते हैं उनमें से (द्वा) दो वायु और सूर्य (पुरीषम्) सबके प्यारे (बृबूकम्) जल को (वहतः) सूर्यमण्डल की ओर धारण करते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः–दिव्य पदार्थों के निर्माण के समय कारणस्थ दिव्य पदार्थ मुख्यरूप में विद्यमान रहते हैं। उन्हीं के द्वारा होने वाले संयोग वियोगसे मेघ उत्पन्न होते हैं। पश्चात् अग्नि,वायु और सूर्य ये तीनों भूमि को संन्तप्त करते हैं। उनमें से वायु और सूर्य जल को खींचकर आकाश में धारण करते हैं ॥२३॥

सा ते॑ जी॒वातु॑रु॒त तस्य॑ वि॒द्धि मा स्मै॑ता॒दृगप॑ गूहः सम॒र्ये ।
आ॒विः स्वः॑ कृणु॒ते गूह॑ते बु॒सं स पा॒दुर॑स्य नि॒र्णिजो॒ न मु॑च्यते ॥२४॥

पदार्थ – (**ते**) उस सूर्य की (**सा**) वह शक्ति (**जीवातुः**) जीवनदात्री है (**उत**) और (**तस्य**) उसके (**एतादृक्**) ऐसे स्वरूप को (**विद्धि**) जानो, (**समर्ये**) इस संसार में (**मा**) मत (**अपगूहः**) छिपाओ, (**निर्णिजः**) सबके शोधक सूर्य का (**सः**) वह (**पायुः**) गमन (**स्वः**) सब त्रिलोकी को (**आविः**) प्रकाशमान (**कृणुते**) करता है, (**बुसम्**) पानी को (**गूहते**) ग्रहण करता है, गमन को (**न**) नहीं (**मुच्यते**) त्यागता है।

भावार्थः—सूर्य की यह शक्ति जीवनदात्री है। उसको जानना चाहिए। इस जगत् में उसे भूलना नहीं चाहिए। समस्त वस्तुओं को शुद्ध करने वाले उस सूर्य की गति समस्त त्रिलोकी को प्रकाशित करती है। जल को किरणों द्वारा अपने पास ले जाती है। वह इस गति को कभी छोड़ता नहीं है ॥२४॥

यह दशम मण्डल का सताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—२८

ऋषिः—१—१२ इन्द्रवसुक्रयोः संवाद ऐन्द्रः ॥ देवता – इन्द्रः ॥ छन्दः १, २, ७, ८, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, १० विराट्त्रिष्टुप् । ६,११ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

विश्वो॒ ह्य१॒॑न्यो अ॒रिरा॑ज॒गाम॒ ममेदह॒ श्वशु॑रो॒ ना ज॑गाम ।
ज॒क्षी॒याद्धा॒ना उ॒त सोमं॑ पपीया॒त्स्वा॑शितः॒ पुन॒रस्तं॑ जगायात् ॥१॥

पदार्थः—(हि) क्योंकि (विश्वः) सभी (अन्यः) दूसरे (अरिः) स्वामी (आ जगाम) इस सभा गृह में आ गए, (अह) आश्चर्य है कि (मम) मेरा (श्वसुरः) मुख्य नायक (न) नहीं (आजगाम) आया, यह ठीक नहीं, वह आवे (धानाः) भुने धानों को (जक्षीयात्) खावे (उत) और (सोमम् उत्तम पेय रस (पृणीयात्) पीवे (पुनः) फिर (सु आशितः) अच्छी प्रकार खाया पीया होकर (अस्तम्) गृह को जावे ।

भावार्थः—दूसरा स्वामी जो राजा से अन्य है सभा में आ जावे और राजा जो पूज्य है न आवे तो आश्चर्य की बात होती है। यह व्यवस्था ठीक नहीं । वह आवे खाद्य वस्तुओं को खावे पेय वस्तु पीवे और सन्तुष्ट हुआ पीछे घर वापस जावे ॥१॥

स रोरु॑वद्वृष॒भस्ति॒ग्मशृ॑ङ्गो॒ वर्ष्म॑न्तस्थौ॒ वरि॑म॒न्ना पृ॑थि॒व्याः ।
विश्वे॑ष्वेनं वृ॒जने॑षु पामि॒ यो मे॑ कु॒क्षी सु॒तसो॑मः पृ॒णाति॑ ॥२॥

पदार्थः—(सः) वह (तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्ण अस्त्र वाला (वृषभः) समस्त सुखों को प्रजा पर बरसाने वाला मैं राजा (पृथिव्याः) पृथिवी के (वरिमन्) बड़े (वर्ष्मन्) विस्तीर्ण प्रदेश पर (आ तस्थौ) स्थित होता हूँ । (यः) जो (सुतसोमः) सोम आदि पदार्थों को तैयार कर (मे) मेरी (कुक्षी) कुक्षी को (पृणाति) पूर्ण करता है (एतम्) इसकी (विश्वेषु) समस्त (वृजनेषु संग्रामों में (पामि) रक्षा करता हूं ।

भावार्थ तीक्ष्ण अस्त्र-शस्त्रों वाला, प्रजा पर सुख की वर्षा करने वाला राजा पृथिवी के विस्तृत क्षेत्र पर बैठा शासन करता है। जो सोम आदि पदार्थों से उसकी सेवा करता है उसे कठिन से कठिन संग्रामों और आपत्तियों में बचाया करता है ॥२॥

अद्रि॑णा ते म॒न्दिन॑ इन्द्र॒ तूया॑न्त्सु॒न्वन्ति॒ सोमा॒न्पिब॑सि॒ त्वमे॑षाम् ।
पच॑न्ति ते वृष॒भाँ अत्सि॒ तेषां॑ पृ॒क्षेण॒ यन्म॑घवन्हू॒यमा॑नः ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (ते) तेरे लिए (मन्दिनः) हर्षदायक (तूयान्) शीघ्र पचने वाले (सोमान्) सोम आदि ओषधियों को (अद्रिणा) पाषाण आदि के साधनों से (सुन्वन्ति) वैद्यजन तैयार करते हैं, (एषाम्) इन सोम आदिकों को (त्वम्) तू (पिबसि) पीता है, हे धन के स्वामिन् ! (पृक्षेण)

Scanned by CamScanner

स्नेह से (**हूयमानः**) बुलाये गए आप (**ते**) वे वैद्यजन (**वृषभान्**) वृषभ नाम की बलदायक ओषधियों को (**पचन्ति**) पकाते हैं (**तेषाम्**) उनकी इन ओषधियों को (**अत्सि**) खाते हो ।

भावार्थः—हे राजन् ! प्रेम से बुलाये गए आप वैद्य जनों द्वारा तैयार किये गये सोम आदि औषध और उनके द्वारा पकाये गये बलदायक 'वृषभ' नामक औषध को पीते और खाते हो ॥३॥

इदं सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीपं शापं नद्यो वहन्ति ।
लोपाशः सिंहं प्रत्यञ्चमत्साः क्रोष्टा वराहं निरतक्त कक्षात् ॥४॥

पदार्थः—(**जरितः**) हे प्रशंसक ! तू (**मे**) मेरे (**सु**) उत्तम (**इदम्**) इस प्रभाव को (**आ चिकिद्धि**) भली प्रकार जान जिस प्रकार (**नद्यः**) नदियें (**प्रतीपम्**) उल्टे (**शापम्**) जल को (**वहन्ति**) बहाती हैं,उसी प्रकार (**लोपाशः**) घास खाने वाला मृग मेरे द्वारा प्रेषित हो (**प्रत्यञ्चम्**) उसके प्रति आने वाले (**सिंहम्**) सिंह का (**अत्साः**) मुकाबला करता है, (**क्रोष्टा**) शृगाल (**वराहम्**) बलवाले सूकर को भी (**कक्षात्**) गहन प्रदेश से (**निरक्त**) भगा देता है ।

भावार्थः—हे प्रशंसक ! तू मेरे इस प्रभाव को भली प्रकार जान। जिस प्रकार नदियें प्रतिकूल पानी को बहाती हैं वैसे मेरे इस प्रभाव से मृग सिंह पर आक्रमण करता है और शृगाल वलवान् शूकर (सुअर) को भगा देता है ॥४॥

कथा त एतदहमा चिकेतं गृत्सस्य पाकस्तवसो मनीषाम् ।
त्वं नो विद्वाँ ऋतुथा वि वोचो यमर्धं ते मघवन्क्षेम्या धूः ॥५॥

पदार्थः— **मघवन्**) हे धन के स्वामी अथवा यज्ञ करने वाले राजन् ! (**गृत्सस्य**) प्रशंसनीय, (**तवसः**) शक्तिशाली (**ते**) तेरे (**मनीषाम्**) मनोरथ और (**एतत्**) इस प्रभाव को (**पाकः**) परिपक्व बुद्धि वाला भी (**अहम्**) मैं (**कथा**) किस प्रकार (**आ चिकेतम्**) जान सकूं, (**विद्वान्**) जानकार (**त्वम्**) तू (**ऋतुथा**) समय समय पर (**नः**) हमें (**विवोचः**) बता, तेरे (**यम्**) जिस (**अर्धम्**) अंश की प्रशंसा करता हूँ वह (**क्षेम्या**) क्षेमकारक (**धूः**) आश्रय है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तेरी आकाँक्षाओं और प्रभाव को परिपक्व-बुद्धि भी मैं नहीं जान सकता । जानकार तू ही समय-समय पर उसकी

Scanned by CamScanner

घोषणा करता है । तुम्हारे जिस अंश की मैं प्रशंसा करता हूं वह ही पर्याप्त क्षेमकारी आश्रय है ॥५॥

एवा हि मां तवसं वर्धयन्ति दिवश्चिन्मे बृहत उत्तरा धूः ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि साकमशत्रुं हि मा जनिता जजान ॥६॥

पदार्थः—(**एव हि**) इस प्रकार (**तवसम्**) बलशाली (**माम्**) मुझको लोग (**वर्धयन्ति**) उत्साह से बढ़ाते हैं (**बृहतः**) महान् (**मे**) मेरी (**दिवः चित्**) सूर्य से भी (**उत्तरा**) अधिक (**धूः**) धारण शक्ति है, मैं (**पुरु सहस्रा**) सहस्रों शत्रुओं को (**साकम्**) एक साथ (**नि शिशामि**) नष्ट कर सकता हूँ (**जनिता**) उत्पादक प्रभु (**मा**) मुझे (**अशत्रुम्**) विना शत्रु का (**जजान**) करे ।

भावार्थः—इस प्रकार मुझ शक्तिशाली के उत्साह को लोग बढ़ाते हैं । मुझ महान् की धारिका शक्ति सूर्य से भी बड़ी है । सहस्रों शत्रुओं का मैं एक साथ नाश करता हूँ । भगवान् मुझे शत्रुहीन करे ॥६॥

एवा हि मां तवसं जज्ञुरुग्रं कर्मन्कर्मन्वृषणमिन्द्र देवाः ।
वधीं वृत्रं वज्रेण मन्दसानोऽप व्रजं महिना दाशुषे वम् ॥७॥

पदार्थः - (**माम्**) मुझ (**इन्द्र**) शक्तिशाली राजा को (**एव हि**) इस प्रकार (**देवाः**) विद्वान् और प्रजा के लोग (**तवसम्**) महान् (**वृषणम्**) सुखों की वर्षा करने वाला (**कर्मन् कर्मन्**) प्रत्येक कर्म में (**उग्रम्**) असह्य शूर (**जज्ञुः**) जानते हैं । (**मन्दसानः**) प्रसन्न हुआ मैं (**वज्रेण**) अस्त्र-शस्त्र से (**वृत्रम्**) शत्रु और बुराई को (**वधीम्**) मारता हूँ (**महिना**) महत्व से (**दाशुषे**) दानशील के लिए (**व्रजम्**) मार्ग (**अप वम्**) खोलता हूँ ।

भावार्थः—विद्वान् और प्रजा के लोग मुझ राजा को महान् और प्रत्येक कर्म में शूर एवं उग्र जानते हैं । मैं बुराइयों और शत्रुओं का नाश करता हूं और दानशील के लिये मार्ग खोलता हूँ ॥७॥

देवास आयन्परशूँरबिभ्रन्वना वृश्चन्तो अभि विड्भिरायन् ।
नि सुद्र्वं१ दधतो वक्षणासु यत्रा कृपीटमनु तद्दहन्ति ॥८॥

पदार्थः—(**देवासः**) शक्तिशाली लोग (**आयन्**) आगे आवें, (**परशून्**) हथियारों को (**अबिभ्रन्**) धारण करें, (**वना**) जंगलों को (**वृश्चन्तः**) काटते

हुए (**विड्भिः**) प्रजा के साथ (**अभि आयन्**) शत्रु का मुकाबला करें, (**वक्षणासु**) नदियों के (**सुद्रवम्**) वेग को (**निदधतः**) रोकते हुए (**यत्र**) संग्राम में (**कृपीटम् अनु**) पानी के वेग को अनुगमन करते हुए (**तत्**) शत्रु की सैन्य को (**दहन्तु**) जला दें ।

भावार्थः—शक्तिशाली लोग आगे बढ़ें, हथियारों को धारण करें, जंगलों को काटते हुए और रास्तों में नदी पड़े तो उसके वेग को रोकते हुए पानी के वेग का अनुसरण करते हुए शत्रु सैन्य को दग्ध करें ॥८॥

शशः क्षुरं प्रत्यञ्चं जगाराद्रिं लोगेन व्यभेदमारात् ।
बृहन्तं चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभं शूशुवानः ॥९॥

पदार्थः—(**शशवः**) खरगोश जैसा जानर भी (**प्रत्यञ्चम्**) चढ़ाई करने वाले (**क्षुरम्**) क्षुरे वाले अथवा नख आदि वाले सिंह आदि पर (**जगार**) हमला करे, मैं तो (**लोगेन**) लोष्ठ जैसी साधारण वस्तु से भी (**आरात्**) दूर स्थित (**अद्रिम्**) पर्वत को (**व्यभेदम्**) फाड़ देता हूँ । (**रिहते**) छोटे शरीर वाले के लिए (**महान्तम्**) महान् से महान् हस्ती आदि को (**रन्धयानि**) वश में करता हूं, (**शूशुवानः**) शक्ति बढ़ाता हुआ (**वत्सः**) बछड़ा भी (**वृषभम्**) बैल के साथ (**वयत्**) युद्ध के लिए जाता है ।

भावार्थः—मेरे प्रभाव से खरगोश जैसा छोटा जानवर भी बड़े-बड़े नखधारी सिंह आदि से लड़ता है, मैं ढेले जैसी छोटी वस्तु से भी दूरस्थ पर्वत का भेदन करता हूँ, छोटे शरीर वालों के प्रति आक्रमण करने वाले बड़े से बड़े को मैं वश में करता हूं और मेरा तो बछड़ा भी बैल से युद्ध कर लेता है ॥९॥

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः ।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान्गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥१०॥

पदार्थः—(**तस्मै**) उस स्वामी के लिए (**सुपर्णः**) बाज के समान वेग वाला मनुष्य (**इत्था**) इस प्रकार से (**नखम्**) नख शस्त्र आदि को (**आ सिषाय**) ऐसे बांधता है जैसे (**अवरुद्धः**) रुका हुआ (**सिंहः**) सिंह (**परिपदम् न**) अपना पंजा सदा तैयार रखता है, (**निरुद्धः**) रुका हुआ (**महिषः**) भैंसा (**चित्**) भी (**तार्ष्यावान्**) प्यासा हुआ भी सींग मारने को तैयार रहता है, (**तस्मा**)

Scanned by CamScanner

उसके लिए (गोधाः) वाणों को फेंकने वाली धनुष की प्रत्यञ्चा (अयथम्) विना आयास के (एतत्) इस धनुष को (कर्षत्) खींचती है ।

भावार्थः—उस राजा के कार्य के लिए बाज के समान वेग वाला मनुष्य नखास्त्र आदि को धारण करता है। रुके हुए सिंह और रुके हुए प्यासे भैंसे के समान आक्रमण को तैयार रहता है। उस राजा के लिए धनुष की डोर विना आयास धनुष को खींचकर वाण फेंकती है ॥१०॥

तेभ्यो गोधा अयथं कर्षदेतद्ये ब्रह्मणः प्रतिपीयन्त्यन्नैः ।
सिम उक्ष्णोऽवसृष्टाँ अदन्ति स्वयं बलानि तन्वः शृणानाः ॥११॥

पदार्थः—(ये) जो सैनिक आदि लोग (ब्रह्मणः) महान् राजा के (अन्नैः) अन्न आदि से तृप्त हुए (प्रति पीयन्ति) शत्रुओं को नष्ट करते हैं (तेभ्यः) उनके लिए (गोधा) राजा के धनुष की डोर (एतत्) इन अन्न आदि पदार्थों को (अयथम्) अनायास ही (कर्षद्) खींचती है, और वे (सिम) समस्त (अवसृष्टान्) इस प्रकार प्राप्त (उक्षणः) घी आदि से सिक्त पदार्थों को (बलानि) शत्रुओं के सैन्य और (तन्वः) शरीरों को (स्वयम्) अपने आप (शृणानाः) शीर्ण करते हुए (अदन्ति) खाते हैं ।

भावार्थः—जो सैनिक आदि जन राजा के अन्न आदि पदार्थों से तृप्त हो शत्रुओं का विनाश करते हैं उनके लिए इन पदार्थों की प्राप्ति में राजा का धनुष सदा चढ़ा रहता है और ये शत्रु के सैन्यबल और शरीर को नष्ट करते हुए इस प्रकार प्राप्त और घृत आदि से सिक्त पदार्थ को खाते हैं ॥११॥

एते शमीभिः सुशमी अभूवन्ये हिन्विरे तन्वः सोम उक्थैः ।
नृवद्वदन्नुप नो माहि वाजान्दिवि श्रवो दधिषे नाम वीरः ॥१२॥

पदार्थः—(ये) जो राजपुरुष (सोमे) सोमयाग में (तन्वः) सोमयाग के कलेवर और अंगों को (उक्थैः) उक्थ मन्त्रों से (हिन्विरे) बढ़ाते हैं (एते) वे (शमीभिः) सोमयाग के कर्मों से (सुशमी) उत्तम कर्म वाले (अभूवन्) हो जाते हैं, वे राजा से (नृवत्) अन्य मनुष्य की भांति बोलते हुए कि (नः) हमें (वाजान्) धनों को (उप माहि) दीजिए, हे राजन् (वीरः)वीर आप (दिवि) आकाश पर्यन्त (श्रवः) कीर्ति और (नाम) नाम को (दधिषे) धारण करो ।

भावार्थः—जो राजपुरुष सोम याग में मन्त्रों से उसके कलेवर को बढ़ाते हैं वे सोमयाग सम्बन्धी उत्तम कर्मों के द्वारा सुकर्मा बन जाते हैं। वे राजा से दूसरे मनुष्य की तरह धन आदि मांगते हैं और कहते हैं कि राजन् ! हमें धन दें जिससे आपका नाम और यश दिग्दिगन्त में पहुंचे ॥१२॥

यह दशम मण्डल में अठाइसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त २९

ऋषिः— १— ८ वसुक्रः ॥ **देवता** —इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१,५, ७ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**— धैवत ॥

वने न वा यो न्यधायि चाकञ्छुचिर्वां स्तोमो भुरणावजीगः ।
यस्येदिन्द्रः पुरुदिनेषु होता नृणां नर्यो नृतमः क्षपावान् ॥१॥

पदार्थः—(**वने**) वृक्ष पर (**वायः**) पक्षिशिशु के (**न**) समान (**चाकन्**) चाहता हुआ (**शुचिः**) पवित्र (**स्तोमः**) स्तोम (**नि अधायि**) धारण किया जाता है, (**भुरणो**) हे भरण-पोषण करने वाले मन्त्री और सेनापति (**वाम्**) आपको (**अजीगः**) पहुँचे । (**यस्य**) जिस उस स्तोम का (**पुरु दिनेषु**) सभी दिनों में (**नृणाम्**) मनुष्यों का (**नर्यः**) नेता (**नृतमः**) श्रेष्ठ मनुष्य (**क्षपावान्**) शत्रुनाशक (**इन्द्रः**) राजा (**इत्**) ही (**होता**) ग्रहण करने वाला है ।

भावार्थः—जिस प्रकार वृक्ष पर स्थित पक्षिशिशु कामना करता हुआ इधर-उधर देखता है इसी प्रकार यह स्तोम स्तुतिसमूह यहां पर विद्यमान किया गया है और वह हे मन्त्री और सेनापति आपको प्राप्त हो । यह स्तोम वह है जिसको सभी दिनों में मनुष्यों का नेता शत्रुनाशक श्रेष्ठ मनुष्य राजा ही ग्रहण किया करता है। अर्थात् राजा के लिए की जाने वाली प्रशंसा को मन्त्री और सेनापति प्रतिनिधि रूप में ग्रहण कर सकते हैं ॥१॥

प्र ते अस्या उषसः प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम् ।
अनु त्रिशोकः शतमावहन्नॄन्कुत्सेन रथो यो असत्ससवान् ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**यः**) जो (**रथः**) रथ (**असत्**) है उसको (**ससवान्**) प्राप्त किये हुए (**त्रिशोकः**) सूर्य की तरह शत्रुओं को तपाने के लिए (**कुत्सेन**) कुलिश के साथ संनद्ध जो इन्द्र=राजा (**शतम्**) सैकड़ों (**नृत्**) नायकों को (**अनु आवहत्**) साथ लिए रहता है (**ते**) उस (**नृणाम्**) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मनुष्य की हम (**अस्याः**) इस (**उषसः**) उषा के और (**अपरस्याः**) दूसरी के (**नृतौ**) प्राप्त होने पर (**प्र स्याम**) प्रशंसा करने वाले हों।

भावार्थः—रथ पर सवार हो कुलिश आदि से सन्नद्ध सैकड़ों नायकों को साथ लेकर जो राजा सदा प्रजा की रक्षा करता है उस श्रेष्ठ मानव की हम सायं प्रातः प्रशंसा करें ॥२॥

कस्ते मद इन्द्र रन्त्यो भूद्दुरो गिरो अभ्युग्रो वि धाव।
कद्वाहो अर्वागुप मा मनीषा आ त्वा शक्यामुपमं राधो अन्नैः ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्र**) हे राजन् (**कः**) कौन सा (**मदः**) हर्षकारी पदार्थ (**ते**) तेरा (**रन्त्यः**) प्रियकर (**भूत्**) है, (**उग्रः**) ओजस्वी तू (**दुरः**) यज्ञद्वार पर और (**गिरः**) स्तुति में भी (**अभि वि धाव**) आवे, (**वाहः**) सुख-समृद्धि का प्राप्त कराने वाला तू (**कत्**) कब (**अर्वाक्**) हमारे सामने होगा, (**मा**) मेरा (**मनीषा**) मनोरथ (**कत् उप**) कब पूरा होगा, मैं (**उपमम्**) अपने समीप स्थित (**त्वा**) तुझे (**कद्**) कब (**अन्नैः**) अन्नद्वारा (**राधः**) आराधना (**आ शक्याम्**) कर सकूंगा।

भावार्थः—प्रजाजन कहते हैं कि हे राजन् कौन-सा खाद्य पदार्थ आप का प्रियकर है, ओजस्वी तू हमारे यज्ञद्वार पर और महारी स्तुतियों में आवे, सब समृद्धियों का देने वाला तू कब हमारे सामने उपस्थित होगा? मेरा यह मनोरथ कब पूरा होगा कि अपने पास स्थित हुए तुम्हारी अन्न आदि से सेवा कर सकूं ॥३॥

कदु द्युम्नमिन्द्र त्वावतो नॄन्कया धिया करसे कन्न आगन्।
मित्रो न सत्य उरुगाय भृत्या अन्ने समस्य यदसन्मनीषाः ॥४॥

पदार्थ—हे राजन् (**कत् उ**) कैसे (**द्युम्नम्**) ऐश्वर्य प्राप्त होगा? (**कया**) किस (**धिया**) बुद्धि और कर्म से (**नॄन्**) मनुष्यों को (**त्वावतः**) अपने जैसा (**करसे**) करता है, (**नः**) हमारे पास (**कत्**) कब (**आगन्**) आओगे, (**उरुगाय**)

Scanned by CamScanner

हे बहु कीर्त्ति वाले इन्द्र=राजन् (**समस्य**) सभी के (**भृत्यै**) भरण-पोषण के लिए (**अन्ने**) अन्न आदि प्रदान करने में (**यत्**) जब तेरी (**मनीषाः**) बुद्धियें चलती हैं वा प्रवृत्त होती हैं तब तू (**सत्यः**) सत्य (**मित्रः**) मित्र (**न**) जैसा दिखाई पड़ता है ।

भावार्थः—हे राजन् किस प्रकार ऐश्वर्य को प्राप्त करोगे ? आप मनुष्यों को किस बुद्धिबल और कर्म से अपने समान बनाओगे, हमारे पास कब आओगे ? जब आप प्रजा का भरण-पोषण करते हो तब वस्तुतः सच्चे मित्र मालूम पड़ते हो ॥४॥

प्रेरय सूरो अर्थं न पारं ये अस्य कामं जनिधाइव ग्मन् ।
गिरश्च ये ते तुविजात पूर्वीर्नर इन्द्र प्रतिशिक्षन्त्यन्नैः ॥५॥

पदार्थः- (**तुविजात**) हे बहु प्रकार के रूप को धारण करने वाले (**इन्द्र**) राजन् तू (**सूरः न**) सूर्य के समान (**अर्थम्**) संसार से विरक्ति प्राप्त करने वाले को (**पारम्**) इस संसार से (**पारम्**) पार (**प्रेरय**) कर, (**ये**) जो लोग (**जनिधा इव**) गृहस्थ पुरुषों के समान (**अस्य ते**) इस तुम्हारी (**कामम्**) कामना को (**ग्मन्**) पूरा करते हैं (**ये**) जो (**नरः**) मनुष्य (**पूर्वीः**) ज्ञानपूर्ण (**गिरः**) वेदवाणियों को (**प्रतिशिक्षन्ति**) अन्यों को सिखाते हैं (**च**) और (**अन्नैः**) हवि और अन्न आदि के साथ अग्नि में डालते हैं उन्हें भी (**पारम्**) पार (**प्रेरय**) लगा ।

भावार्थः—हे राजन् ! सूर्य के समान तू संसार से विरक्ति वाले मनुष्य को संसार से पार लगाने का साधन बन। जो लोग गृहस्थ की भांति तुम्हारी कामना की पूर्ति कराते हैं और जो मनुष्य वेदवाणी का दूसरों को उपदेश करते हैं और हवि तथा अन्न से यज्ञ में आहुति देते हैं उन्हें भी पार लगा ॥५॥

मात्रे नु ते सुमिते इन्द्र पूर्वी द्यौर्मज्मना पृथिवी काव्येन ।
वराय ते घृतवन्तः सुतासः स्वाद्मन्भवन्तु पीतये मधूनि ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**ते**) तेरे (**मज्मना**) शत्रुओं का मज्जन करने वाले (**काव्येन**) कर्म से (**मात्रे**) भूतों की निर्मात्री (**पूर्वी**) महत्व वाली

Scanned by CamScanner

(**द्यौः**) द्युलोक (**पृथिवी**) और पृथिवी (**नु**) शीघ्र ही (**सुमिते**) मापी हुई हो जाती है (**घृतासः**) घृत आदि से युक्त (**सुतासः**) बनाये गये पदार्थ (**वराय**) श्रेष्ठ (**ते**) तुझ को (**स्वाद्मन्**) खाने के योग्य हों और (**मधूनि**) मधुर रस पदार्थ (**पीतये**) पीने के लिए (**भवन्तु**) हों।

भावार्थः—हे राजन् ! तुम्हारे शत्रु को मज्जन करने वाले कर्म से द्युलोक और पृथिवी मापे गये हैं अर्थात् आपका पराक्रम द्यु और पृथिवी को भी व्याप्त किये है। उत्तम बनाये गए खाद्य पदार्थ आप के खाने के लिए हों और मधुर रस आदि पीने के लिए हों ॥६॥

आ मध्वो अस्मा असिचन्नमत्रमिन्द्राय पूर्णं स हि सत्यराधाः ।
स वावृधे वरिमन्ना पृथिव्या अभि क्रत्वा नर्यः पौंस्यैश्च ॥७॥

पदार्थ—(**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) राजा के लिए (**मध्वः**) माधुर्यपूर्ण रसों एवं मधुपर्क से (**पूर्णम्**) पूर्ण (**अमत्र**) पात्र को (**आ सिचत्**) आदर से दें, (**हि**) क्योंकि (**सः**) वह (**सत्यराधः**) सत्य का धनी है, (**नर्यः**) मनुष्यों का हितकारी है (**सः**) वह (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**वरियन्**) बड़े भारी प्रदेश पर (**क्रत्वा**) अपने कर्मकौशल (**च**) और (**पौंस्यैः**) पराक्रमों से (**आ अभि ववृधे**) सर्वतः बढ़ता है।

भावार्थः—इस राजा के लिए मधुपर्क से भरा पात्र आदरपूर्वक दिया जावे। क्योंकि वह सत्य का धनी और लोगों का हितकारी है। पृथिवी के विस्तृत प्रदेश पर वह अपने कार्यकलाप और पराक्रमों से बढ़ रहा है ॥७॥

व्यानळिन्द्रः पृतनाः स्वोजा आस्मै यतन्ते सख्याय पूर्वीः ।
आ स्मा रथं न पृतनासु तिष्ठ यं भद्रया सुमत्या चोदयासे ॥८॥

पदार्थ—(**सुओजाः**) उत्तम तेज वाला (**इन्द्रः**) राजा (**पृतनाः**) शत्रु सेना को (**व्यानट्**) छा जाता है (**पूर्वीः**) उत्कृष्ट सेनायें भी संधि द्वारा (**अस्मै**) इसके (**सख्याय**) मैत्री के लिए (**आ यतन्ते**) प्रयत्न करते हैं, हे राजन् ! तू (**यम्**) जिस (**रथम् न**) रथ के समान राज्य को अपनी (**भद्रया**) कल्याणकारिणी (**सुमत्या**) सुमति से (**चोदयासे स्म**) प्रेरणा देते हो, उस पर (**पृतनासु**) प्रजा जनों के बीच (**आतिष्ठ**) विराजमान हो।

Scanned by CamScanner

भावार्थ—राजा अपने सुन्दर ओज से शत्रु सेना पर व्याप्त हो जाता है। उत्तम से उत्तम सेनायें संधि द्वारा इसकी मैत्री का प्रयत्न करती हैं। संग्राम में जिस राजा को तू प्रेरणा देता है, हे राजन् उस पर तू विराजमान हो ॥८॥

यह दशम मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३०

ऋषिः—१—१५ कवष ऐलूषः ॥ **देवता**—आप अपान्नपाद्वा ॥ **छन्दः**—१, ३, ६, ११, १२, १५ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ६, ८, १४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७, १०, १३ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

प्र देवत्रा ब्रह्मणे गातुरेत्वपो अच्छा मनसो न प्रयुक्ति।
महीं मित्रस्य वरुणस्य धासिं पृथुज्रयसे रीरधा सुवृक्तिम् ॥१॥

पदार्थः—(**मनसः**) मनके (**प्रयुक्ति न**) उद्योग के समान (**ब्रह्मणे**) परमेश्वर के लिए (**गातुः**) बोली गई स्तुति (**अपः**) समस्त लोकों को (**देवत्रा**) यज्ञ आदि कर्मों द्वारा (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**प्र एतु**) प्राप्त हो, हे मनुष्य (**सुवृक्तिम्**) दोषरहित (**महीम्**) महान् (**धासिम्**) स्तुति को (**पृथुज्रवसे**) बड़े वेग वाले (**मित्रस्य**) सबके मित्र (**वरुणस्य**) वरणीय परमेश्वर के लिए (**रीरध**) सिद्ध कर।

भावार्थः·मन के उद्योग के समान परमेश्वर के लिए बोली गई स्तुति यज्ञ कर्म द्वारा भली प्रकार सब लोकों में फैले। हे मनुष्य तू महा वेग वाले सबके मित्र परमेश्वर के लिए दोषरहित स्तुति कर ॥१॥

अध्वर्यवो हविष्मन्तो हि भूताच्छाप इतोशतीरुशन्तः ।
अव याश्चष्टे अरुणः सुपर्णस्तमास्यध्वमूर्मिमद्या सुहस्ताः ॥२॥

पदार्थः—(**अध्वर्यवः**) हे अध्वर्यु लोग आप (**हविष्मन्तः**) हविवाले (**हि**) ही (**भूत**) होवें, (**उशन्तः**) यज्ञ के करने की इच्छा करते हुए आप लोग (**उशतीः**) चाहे गए (**अपः**) जलों को (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**इत**) प्राप्त करो (**याः**)

Scanned by CamScanner

जिन जलों को (अरुणः) प्रकाशमान (सुपतनः) उत्तम रश्मियों वाले सूर्य ने (अव) अन्तरिक्ष में (चष्टे) प्राप्त किया है उनकी (तम्) उस (ऊर्मिम्) उर्मि को (अद्य) आज (सुहस्ताः) उत्तम हाथों वाले आप (आस्यध्वम्) यज्ञ वेदि के चारों तरफ प्रक्षेप करो ।

भावार्थः—हे अध्वयु लोग आप यज्ञ के लिए हवि आदि से युक्त होवें । यज्ञ की कामना रखते हुए यज्ञार्थ चाहे गये जलों को भली प्रकार प्राप्त करें । चमकते सूर्य ने जिन जलों को आकाश में धारण किया उनकी इस उर्मि को आप लोग यज्ञवेदि के सब तरफ प्रक्षेप करें ॥२॥

अध्वर्यवोऽप इता समुद्रमपां नपातं हविषा यजध्वम् ।
स वो ददूर्मिमद्या सुपूतं तस्मै सोमं मधुमन्तं सुनोत ॥३॥

पदार्थः—(अध्वर्यवः) हे अध्वयु लोग (अपः) जलों की प्राप्ति के लिए (समुद्रम्) अन्तरिक्षस्थ समुद्र=आकाश को (इत) जानो (हविषा) हवि से (अपां नपातम्) जलों को न नष्ट होने देने वाले सूर्य के प्रति (यजध्वम्) यज्ञ करो, (सः) वह सूर्य (वः) आप सब को (अद्य) समय पर (सुपूतम्) पवित्र (ऊर्मिम्) जल की ऊर्मि (ददत्) देता है, (तस्मै) उसके यज्ञ के लिए (मधुमन्तम्) मधुर वा मधु से युक्त (सोमम्) सोमलता को (सुनोत) निष्पादित करो ।

भावार्थः—हे अध्वर्यु लोग जल के लिए अन्तरिक्षस्थ समुद्र का ज्ञान करो । सूर्य तक पहुंचने वाले यज्ञ को करो । वह पवित्र जलोर्मि देता है । उस के लिए यज्ञ करने के वास्ते मधु आदि से युक्त सोमलता के रस को निष्पादित करो ॥३॥

यो अनिध्मो दीदयदप्स्व१न्तर्यं विप्रास ईळते अध्वरेषु ।
अपां नपान्मधुमतीरपो दा याभिरिन्द्रो वावृधे वीर्याय ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (अनिध्मः) विना काष्ठ आदि ईंधन के (अप्सु) मेघों के (अन्तः) मध्य में (दीदयत्) दीप्त होता है (यम्) जिसकी (अध्वरेषु) यज्ञों में (विप्रासः) मेधावी लोग (ईडते) प्रशंसा करते हैं वह (अपाम् नपात्) सौर तेज (मधुमतीः) मधुर (अपः) जलों को (दाः) प्रदान करता है (याभिः) जिनसे (इन्द्रः) वायु (वीर्याय) बल से (वर्धते) बढ़ता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः· मेघों में जो विना काष्ठ आदि ईंधन के दीप्त होता है, यज्ञों में जिसकी मेधावी जन प्रशंसा करते हैं वह अपांनपात्=सौरतेज मधुर जल देता है। उनसे वायु आदि अथवा उगने वाले पदार्थ बल से बढ़ते हैं ॥४॥

याभिः सोमो मोदते हर्षते च कल्याणीभिर्युवतिभिर्न मर्यः ।
ता अध्वर्यो अपो अच्छा परेहि यदासिञ्चा ओषधीभिः पुनीतात् ॥५॥

पदार्थः—हे (**अध्वर्यो**) हे अध्वर्यो ! (**कल्याणीभिः**) कल्याणकारिणी (**युवतिभिः**) युवतियों के साथ (**मर्यः न**) मनुष्य की तरह (**याभिः**) जिन जलों से मिला (**सोमः**) सोम रस वा गिलोय का रस लोगों को (**मोदते**) प्रसन्न करता और (**हर्षते**) हर्ष देता है (**ताः**) उनको (**अच्छ**) अच्छी प्रकार प्राप्त करने के लिए (**परेहि**) यत्न कर, (**यत्**) जब प्राप्त हो जावें तब (**आसिञ्चाः**) सोम आदि को उनसे सिक्त करो (**ओषधीभिः**) ओषधियों के साथ (**पुनीतात्**) शुद्ध करो।

भावार्थः—यज्ञकर्त्ता अध्वर्यु आदि को गिलोय का रस अथवा सोम का रस कल्याणकारी जलों से मिश्रित करना चाहिए इससे वह सोमरस लोगों को प्रसन्नता देता है जैसा युवती पुरुष को प्रसन्नता देती है। इन उत्तम जलों को जहां सोमरस पिलाया जावे वहां और ओषधियों से उसे शुद्ध भी किया जावे ॥५॥

एवेद्यूने युवतयो नमन्त यदीमुशन्नुशतीरेत्यच्छ ।
सं जानते मनसा सं चिकित्रेऽध्वर्यवो धिषणापश्च देवीः ॥६॥

पदार्थः—(**एव इत्**) इस भांति जैसे (**यूने**) युवा पुरुष की प्राप्त्यर्थ (**युवतय**) युवतियें (**नमन्त**) नमती हैं (**यत्**) जैसे (**उशन्**) कामना वाला पुरुष (**उशतीः**) चाहने वाली युवती को (**इम्**) ही (**अच्छ**) भली-भांति (**एति**) प्राप्त करता है वैसे ही (**अध्वर्यवः**) अध्वर्यु लोग (**मनसा**) मन से (**देवीः**) दिव्य (**आपः**) जलों को (**संजानते**) जानते हैं और (**धिषणा**) बुद्धि द्वारा (**सं चिकित्रे**) विचार करते हैं।

भावार्थः—जिस प्रकार युवतियें युवा पुरुष के प्रति नमती हैं और युवा पुरुष युवती को चाहता है उसी प्रकार अध्वर्यु लोग मन से दिव्य गुणों वाली इन जलों को भली-भांति जानते हैं और इनके गुण और प्रभाव का बुद्धि से विचार करते हैं ॥६॥

Scanned by CamScanner

यो वो वृताभ्यो अकृणोदु लोकं यो वो मह्या अभिशस्तेरमुञ्चत् ।
तस्मा इन्द्राय मधुमन्तमूर्मिं देवमादनं प्र हिणोतनापः ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो इन्द्र=सूर्य का वायु (**वृताभ्यः**)- मेघपरिवेष्टित (**वः**) इन जलों के लिए (**लोकम् उ**) मेघ से निकलने का मार्ग **अकृणोत**) बनाता है, (**यः**) जो (**वः**) इन्हें (**मह्याः**) महान् (**अभिशस्तेः**) बाधा से (**अमुञ्चत्**) मुक्त करता हैं (**आपः**) जलें (**तस्मै**) उस (**इन्द्राय**) इन्द्र सूर्य वा वायु के लिए (**मधुमन्तम**) मधुर (**देवमादनम्**) सूर्य की किरणों आदि को तृप्त करने वाली (**ऊर्मिम्**) जलोर्मि को (**प्र हिणोतन**) देती हैं ।

भावार्थः—जो सूर्य वा वायु मेघ में घिरी हुई इन जलों के निकलने का मार्ग बनाता है और मेघ में रुके रहने पर प्राप्त होने वाले महान् से महान् विघ्नों से मुक्त करता है उसके लिए ये जलें मधुर और किरणों को तृप्त करने वाली जलोर्मि प्रदान करती हैं ॥७॥

आस्मै हिनोत मधुमन्तमूर्मिं गर्भो यो वः सिन्धवो मध्व उत्सः ।
घृतपृष्ठमीड्यमध्वरेष्वापो रेवतीः शृणुता हवं मे ॥८॥

पदार्थः—(**सिन्धवः**) बहने के स्वभाव वाली (**आपः**) जलें (**वः**) इनकी (**मधुमन्तम्**) मधुर (**ऊर्मिम्**) ऊर्मि को (**यः**) जो कि (**वः**) इनका (**गर्भः**) गर्भभूत और (**मध्वः**) मधुरता का (**उत्सः**) कूप है, (**अस्मै**) इस (**अध्वरेषु**) यज्ञों में (**घृतपृष्ठम्**) घृत को धारण करने वाले (**ईड्यम्**) प्रशंसनीय (**इन्द्र**) सूर्य वा वायु के लिए (**प्र हिनोत**) देती हैं, (**रेवतीः**) धन देने वाली (**आपः**) जलें (**मे**) मुझ यज्ञकर्ता के (**हवम्**) शब्द को (**शृणुत**) सुनने का माध्यम बनें अर्थात् सुनावें ।

भावार्थः – बहने के स्वभाव वाली जलें मधुर जलोर्मि को सूर्य किरणों और वायु को प्रदान करती हैं । ये वर्षा के माध्यम से धन देने वाली हैं और विविध लाभों को प्रदान करती हैं ॥८॥

तं सिन्धवो मत्सरमिन्द्रपानमूर्मिं प्र हेत य उभे इयर्ति ।
मदच्युतमौशानं नभोजां परि त्रितन्तुं विचरन्तमुत्सम् ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सिन्धवः) नदियां (यः) जो (उभे) शुद्धि और तृप्ति दोनों के (इर्यात्ति) देती हैं (तम) ऐसी उस (मत्सरम्) हर्षित करने वाली (इन्द्रपानम्) सूर्य की पानभूत, (मदच्युतम्) सुख को देने वाली (औशानम्) चाहने योग्य, (नभोजाम्) आकाश से उत्पन्न, (परि विचरन्तम्) चारों तरफ विचरने वाली (उत्सम् बहने वाली (त्रितन्तुम्) प्राण, उदान और तेज रूपी तीन कारणों वाली (ऊर्मिम्) जलोर्मि को (प्र हेत) बहाती हैं ।

भावार्थः—नदियें तृप्ति और शुद्धता देने वाली, आनन्ददायक, सूर्य की किरणों द्वारा पान की जाने वाली, वहनशील, आकाश से उत्पन्न विचरने वाली प्राण, उदान और तेज रूपी तीन तन्तुओं वाली जलोर्मि को लेकर बहती हैं ॥९॥

आवर्वृततीरध नु द्विधारा गोषुयुधो न नियवं चरन्तीः ।
ऋषे जनित्रीर्भुवनस्य पत्नीरपो वन्दस्व सवृधः सयोनीः ॥१०॥

पदार्थः—(ऋषे) हे अध्वर्यो ! (गोषु युधः) मेघों में गमन करने वाली जलों के (न) समान (अथ) और (द्विधारा) बहुत धाराओं वाली (आवर्वृततीः) आवर्तनशील (नियवम्) संयोग को (चरन्तीः) प्राप्त करने वाली (जनित्रीः) अन्न आदि को उत्पन्न करने वाली, (भुवनस्य) लोक की (पत्नीः) पालक (सुवृधः) लता ओषधि आदि को बढ़ाने वाली, (सयोनीः) समान स्थान वाली (अपः) जलों की (वन्दस्व) प्रशंसा करो ।

भावार्थः—यज्ञकर्त्ता विद्वान् को मेघ में रहने वाले बहुत धाराओं वाले, आवर्तधारी, लोक की पालक, ओषधि अन्न आदि के उत्पन्न करने वाले विविध गुण युक्त जलों का ज्ञान कर उनके गुणों को प्रकट करना चाहिए ॥१०॥

हिनोता नो अध्वरं देवयज्या हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् ।
ऋतस्य योगे वि ष्यध्वमूधः श्रुष्टीवरीर्भूतनास्मभ्यमापः ॥११॥

पदार्थः—हे ऋत्विग्जन ! (नः) हमें (देवयज्या) देवों के यजनार्थ (अध्वरम्) यज्ञ (हिनोत) प्राप्त कराओ, तथा (धनानाम्) धनों की (सनये) उपलब्धि के लिए (ब्रह्म) वेदज्ञान (हिनोत) प्राप्त कराओ, (ऋतस्य) सृष्टि के नियम के (योगे) सम्बन्ध में (ऊधः) पड़े पर्दे को (विष्यध्वम्) हटा दो,

Scanned by CamScanner

(अस्मभ्यम) हमारे लिए (आपः) जलें (श्रुष्टीवरीः) सुख देने वाली (भूतन) होवें ।

भावार्थः—हे ऋत्विग्जन ! देव यजन के लिए हमें उत्तम यज्ञ को कराओ, धनों की उपलब्धि के लिए हमें वेद का ज्ञान दो, और सृष्टि के नियम के विषय में पड़े पर्दे को उठाकर हमें ज्ञान दो । हमारे लिए जलें सुख देने वाली हों ॥११॥

आपो रेवतीः क्षयथा हि वस्वः क्रतुं च भद्रं बिभृथामृतं च ।
रायश्च स्थ स्वपत्यस्य पत्नीः सरस्वती तद्गृणते वयो धात् ॥१२॥

पदार्थः—(रेवतीः) विद्युत् की कड़क के साथ उत्पन्न होने वाली (आपः) जलें (हि) चूंकि (वस्वः) समस्त वसाने वाले स्थान की (क्षयथ) स्वामी हैं अतः (भद्रम्) उत्तम (क्रतुम्) प्रज्ञान (च) और (अमृतम्) अमृत को (च) भी (विभृथ) धारण करती हैं, (रायस्य) धन का (च) और (स्वपत्यस्य) उत्तम सन्तान की (पत्नीः) पालक (स्थ) होती हैं (सरस्वती) गर्जन लक्षण वाली जलदात्री वाणी (गृणते) स्तुति करने वाले के लिए (तत्) यह सब (वयः) अन्न आदि (धात्) देती है ।

भावार्थः—लोगों को यह जानना चाहिए कि बिजली की कड़क के साथ उत्पन्न जलें बड़ी गुणकारी हैं, समस्त वसने योग्य स्थान पर उनका प्रभाव पड़ता है । वे अमृत धारण करती हैं। सब प्रजा की पालक होती हैं । इन जलों को प्रदान करने वाली गर्जनमयी वाणी (विद्युत् की कड़क) यज्ञ-कर्ता के लिए अन्न आदि धन को देती है ॥१२॥

प्रति यदापो अदृश्रमायतीर्घृतं पयांसि बिभ्रतीर्मधूनि ।
अध्वर्युभिर्मनसा संविदाना इन्द्राय सोमं सुषुतं भरन्तीः ॥१३॥

पदार्थः—मैं (प्रति अदृश्रम) भली प्रकार देखता हूं कि—(यत्) जो (आपः) ये जलें हैं वे इस पृथिवी पर (आयतीः) आती हुई (घृतम्) प्रकाश को (पयांसि) रसों को (मधूनि) मधुरता को (विभ्रतीः) धारण किये हुए (इन्द्राय) सूर्य के लिए (सुषुतम्) भली प्रकार उत्पादित (सोमम्) स्नेह और रस को (भरन्ती) अपने में रखती हुई (अध्वर्युभिः) अध्वर्यु लोगों के द्वारा (मनसा) मन से (संविदाना) जानी हुई होती हैं ।

भावार्थः—मैं देखता हूं कि ये जलें मधुरता, चमक को धारण करती

Scanned by CamScanner

हुई और स्नेहन तथा रस को सूर्य के लिए लिये हुए अध्वर्यु आदि लोगों के द्वारा जानी जाती है ॥१३॥

एमा अग्मन्रेवतीर्जीवधन्या अध्वर्यवः सादयता सखायः ।

नि बर्हिषि धत्तन सोम्यासोऽपां नप्त्रा संविदानास एनाः ॥१४॥

पदार्थः—(**रेवतीः**) रेवती (**इमाः**) ये (**जीवधन्याः**) जीवों का पालन करने वाली (**आपः**) जलें (**अग्मन्**) पृथिवी पर वर्षा के द्वारा आती हैं (**सखायः**) मित्रभूत (**अध्वर्यवः**) हे अध्वर्यु जन ! आप लोग (**अपाम् नप्त्रा**) जल वरसाने वाले सूर्य वायु आदि पदार्थों के साथ (**संविदानासः**) ज्ञान से सम्बन्ध प्राप्त कर (**सोम्यासः**) जल विद्या को जानते हुए (**एनाः**) इन (**अपः**) जलों को (**सादयत**) प्राप्त करो तथा (**बर्हिषि**) महान् पृथिवी के क्षितिज में (**निधत्तन**) धारण करो ।

भावार्थः— वर्षा की जलें पृथिवी पर आती हैं। अध्वर्यु आदि यज्ञ-कर्त्ताओ ! वर्षा के देव वायु, सूर्यकिरणों आदि का ज्ञानपूर्विका यज्ञ आदि क्रिया से संबन्ध कर जल विद्या को जानते हुए इन जलों को प्राप्त करना चाहिए और पृथिवी के क्षितिज में इन्हें वाष्पमय मेघ के रूप में धारण करना चाहिए जिससे वर्षा कराई जा सके ॥१४॥

आग्मन्नाप उशतीर्बर्हिरेदं न्यध्वरे असदन्देवयन्तीः ।

अध्वर्यवः सुनुतेन्द्राय सोममभूदु वः सुशका देवयज्या ॥१५॥

पदार्थः—(**उशतीः**) गतिशील, (**देवयन्तीः**) सूर्य किरणों के प्रति जाने वाली (**आपः**) जलें (**इदम्**) इस (**बर्हिः**) वायुमण्डलस्थ आकाश (**आ**) पर्यन्त (**आ अग्मन्**) आती हैं (**अध्वरे**) वायुमण्डल में (**नि असदन्**) रहती हैं, (**अध्वर्यवः**) हे अध्वर्यु लोगो !(**इन्द्राय**) सूर्य वा वायु के लिए (**सोमम्**) तेजोयुक्त वाष्पमय पदार्थ को (**सुनुत**) उत्पन्न करो, अतः (**वः**) तुम्हारे (**देवयज्या**) देवयजन कर्म वृष्टि आदि कराने के सम्बन्ध में (**सुशका उ**) सुशक्य (**अभूत**) होवे ।

भावार्थः—जलें सूर्य की किरणों से ऊपर उठाई जाकर वायुमण्डल पर्यन्त जाती हैं और उसमें रहती हैं। यज्ञ कराने वाले अध्वर्यु आदि लोगों को वाष्पकारी तत्त्व को यज्ञ द्वारा उत्पन्न कर वर्षा के कराने में सफलता प्राप्त करनी चाहिए ॥१५॥

यह दशम मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ३१

ऋषिः—१—११ कवष ऐलूषः ॥ देवताः—विश्वेदेवा ॥ छन्दः –१, ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५, ७, ११ त्रिष्टुप् । ३, १० विराट्त्रिष्टुप् । ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः धैवतः ॥

आ नो॑ दे॒वाना॒मुप॑ वेतु॒ शंसो॒ विश्वे॑भिस्तु॒रैरव॑से॒ यज॑त्रः ।
तेभि॑र्व॒यं सु॑ष॒खायो॑ भवेम॒ तर॑न्तो॒ विश्वा॑ दुरि॒ता स्या॑म ॥१॥

पदार्थः—(देवानाम्) यज्ञ देवों और विद्वानों सम्बन्धी (यजत्रः) यष्टव्य पूजनीय (शंसः) उपदेश (अवसे) रक्षा के लिए (नः) हमें (विश्वेभिः) समस्त (तुरैः) उत्तम गति और क्रियाओं के साथ (आ उपवेतु) प्राप्त हो, (तेभिः) उनके साथ (वयम्) हम (सखायः) सखा (भवेम) होवें, (विश्वा) समस्त (दुरिता) बुराइयों को (तरन्तः) तरने वाले (स्याम) होवें ।

भावार्थः—हमें यज्ञ के देवों के सम्बन्ध में और विद्वानों के सम्बन्ध का उपदेश सदा प्राप्त रहे । इसके साथ समस्त प्रयोगात्मक ज्ञान और क्रियायें युक्त हों । इन विद्वानों और यज्ञ के देवों के उपदेश और यज्ञ में सखा बनकर हम समस्त दुःखों और बुराइयों से पार होवें ॥१॥

परि॑ चि॒न्मर्तो॒ द्रवि॑णं ममन्यादृ॒तस्य॑ प॒था नम॒सा वि॑वासेत् ।
उ॒त स्वेन॒ क्रतु॑ना॒ सं व॑देत॒ श्रेयां॑सं॒ दक्षं॒ मन॑सा जगृभ्यात् ॥२॥

पदार्थः—(मर्त्तः) मनुष्य (परिचित्) सर्वत्र से (द्रविणम्) धन को (ममन्यात्) चाहे, (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (नमसा) उपासना और नमस्कार द्वारा (आ विवासेत्) परिचर्या वा तपस्या करे, (उत) और (स्वेन) अपने (क्रतुना) प्रज्ञान से (संवदेत) समन्वय करे (श्रेयांसम्) श्रेय मार्ग पर ले जाने वाले (दक्षम्) बल को (मनसा) मन से (जगृभ्यात्) ग्रहण करे ।

भावार्थः—मनुष्य को चाहिए कि वह धन को सब ओर से चाहे । सत्य के मार्ग से उपासना के साथ तपश्चर्या करे । अपने ज्ञान के अनुरूप ही अपने कर्म का समन्वय रखे और श्रेय मार्ग पर ले जाने वाले बल को मन से धारण करे ॥२॥

अधा॑यि धी॒तिरस॑सृग्र॒मंशा॑स्ती॒र्थे न द॒स्ममुप॑ य॒न्त्यूमाः॑ ।
अ॒भ्या॑नश्म सुवि॒तस्य॑ शू॒षं नवे॑दसो अ॒मृता॑नामभूम ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(धीतिः) धारणा (अधायि) स्थित कर ली (न) जिस प्रकार (तीर्थे) किनारे पर बनी सीढ़ियों में (अंशाः) जल कण आते हैं वैसे ही (ऊमाः) समस्त रक्षायें (असतृप्रम्) आती है । तथा (दस्मम्) दुःखों के नाशक को (उपयन्ति) पहुचती हैं । (सुवितस्य) सुष्ठु रूप से प्राप्त होने योग्य सुख के (शुषम्) आनन्द को (अभि आनश्य) हम प्राप्त करें तथा (अमृतानाम्) मोक्ष सुखों के (नवेदसः) प्राप्त करने वाले (अभूम) हों ।

भावार्थः—धारणा को स्थिर करके भगवत्प्रदत्त रक्षाओं को प्राप्त करना चाहिए । ये रक्षायें दुःखों को जिसने भोग से नष्ट कर दिया है उसी को पहुँचती हैं । हम इस प्रकार सुष्ठु रूप से प्राप्त सुख के आनन्द को भोगें और मोक्षानन्द के प्राप्त करने वाले हों ॥३॥

नित्यश्चाकन्यात्स्वपतिर्दमूना यस्मा उ देवः सविता जजान ।
भगो वा गोभिरर्यमेमनज्यात्सो अस्मै चारुश्छदयदुत स्यात् ॥४॥

पदार्थः—(नित्यः) नित्य, (स्वपतिः) अपनी प्रजा का पालक एवं स्वामी, (दमूनाः) सब पदार्थों का दाता (देवः) देव (सविता) परमेश्वर (यस्मै) जिसके लिए जगत् के पदार्थों को (जजान) पैदा किया है (तस्मै) उसके लिए (उ) निश्चय (चाकन्यात्) सुख देना चाहता है । (सः) वह (भगः) सूर्य (वा) और (अर्यमा) वायु (गोभिः) किरणों जल आदि से (इम) इसको (अनज्यात्) लाभ देते हैं, (उत्) और (चारुः) दूसरे देवगण (अस्मै) इसके लिए (छदयत्) आच्छादक=रक्षक (स्यात्) होते हैं ।

भावार्थः—प्रजा के स्वामी पदार्थों के दाता भगवान् ने जिस के लिए वह संसार रचा है उसे सुख देना चाहता है । सूर्य, वायु और दूसरे दिव्य पदार्थ भी इसकी रक्षा करते हैं ।।४।।

इयं सा भूया उषसामिव क्षा यद्ध क्षुमन्तः शवसा समायन् ।
अस्य स्तुतिं जरितुर्भिक्षमाणा आ नः शग्मास उप यन्तु वाजाः ॥५॥

पदार्थः—(यत् ह) जब भी (क्षुमन्तः) उपदेष्टा विद्वान् (शवसा) उत्साह के साथ (समायन्) हमें प्राप्त हों तब (उषसाम्) उषाओं को (क्षाः) पृथिवी के (इव) समान (इयम्) यह (सा) वह स्तुति (भूयाः) प्राप्त होवे । (अस्य) इस (जरितुः) ज्ञानोपदेष्टा की (स्तुतिः) प्रस्तुति=उपदेश को (भिक्षमाणाः) मांगते

Scanned by CamScanner

हुये हम (शग्मासः) सुखी हों और (वाजाः) ज्ञान और अन्न आदि पदार्थ (नः) हमें (आ उप यन्तु) प्राप्त हों।

भावार्थ—जब ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् उत्साह से हमें प्राप्त हो, तब उषाओं को प्राप्त पृथिवी के समान उनके समक्ष यह हमारी स्तुति प्राप्त होवे। उनके ज्ञानोपदेश को मांगते हुए हम सुखी हों और ज्ञान अन्न आदि हमेंप्र प्त हो ॥५॥

अस्येदेषा सुमतिः पप्रथानाभवत्पूर्व्या भूमना गौः।
अस्य सनीळा असुरस्य योनौ समान आ भरणे बिभ्रमाणाः ॥६॥

पदार्थः—(अस्य) इस (इत्)ही (असुरस्य) जीवन दाता भगवान् की (एषा) यह (सुमतिः) उत्तम ज्ञान वाली (भूमना) महती (पूर्व्या) सनातन (गौः) वेद वाणी (पप्रथाना) ज्ञान का विस्तार करने वाली (अभवत्) हो । (सनीडाः) समान आश्रय में रहने वाले, (समाने भरणे) समान रक्षा में (बिभ्रमाणाः) रक्षण पाते हुए (समाने) समान (योनौ) स्थान में (आ यन्तु) आवें।

भावार्थः—इस महान् परमेश्वर का उत्तम ज्ञान देने वाली सनातन वेदवाणी ज्ञान का विस्तार करने वाली होवे। सभी मनुष्य समान आश्रय, समान रक्षण में रहते हुए समान स्थान में आवें ॥६॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः।
संतस्थाने अजरे इतऊती अहानि पूर्वीरुषसो जरन्त ॥७॥

पदार्थः—(किम् स्विद्) कौन-सा (वनम्) वन और (कः उ) कौन-सा (सः) वह (वृक्षः) वृक्ष (आस) है (यतः) जिससे (द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी आदि लोक (निः ततक्षुः) बनाये जाते हैं, (संतस्थाने) भली प्रकार स्थित ये दोनों (इत ऊती) इस परमेश्वर और जगत् की दिव्य शक्तियों से रक्षण पाये हुये (अजरे) जरा वर्जित हैं (अहानि) दिन और (पूर्वीः) उनकी पूर्वकालिक (उषसः) उषायें (जरन्त) इनको स्पष्ट बतला रही हैं।

भावार्थः—कौन सा वह वन है ! कौन सा वह वृक्ष है, जिससे द्यु और पृथिवी आदि लोक बनाये जाते हैं। ये दोनों अच्छी प्रकार स्थित, परमेश्वर और जगत् की दिव्य शक्तियों से रक्षित जरा से रहित हैं। दिन और उनसे पूर्व उषायें इनको स्पष्ट बतला रही हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान्यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥८॥

पदार्थः—(**यद्**) जब (**ईम**) इस (**सूर्यम**) सूर्य को (**हरितः**) किरणें (**नः**) नहीं (**वहन्ति**) धारण करती हैं अर्थात् सृष्टि के पूर्व की अवस्था में, तब (**स्वधावान्**) प्रकृति को धारण किए हुए परमेश्वर (**पवित्रम्**) जगत् के अग्नि वायु-आदि पदार्थों के समूह और (**त्वचम्**) जीवों के त्वचा से युक्त शरीर को (**कृणुत**) बनाता है । (**एतावत्**) इससे अधिक वा इस सामर्थ्य वाला (**एना**) इस परमेश्वर से (**परः**) परे (**अन्यत्**) दूसरा कोई (**न**) नहीं (**अस्ति**) है, (**उक्षा**) महान् शक्तिशाली (**सः**) वही परमेश्वर (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**बिभर्त्ति**) धारण करता है ।

भावार्थः—पहले ७वें मन्त्र में पूछा गया था कि कौन सा वन और कौन सा वृक्ष है जिससे द्युलोक और पृथिवी बनाये गए । इस ८वें मन्त्र में उत्तर दिया गया है कि महान्शक्ति परमेश्वर इस द्यु और पृथिवी लोक को सृष्टि की प्रागवस्था में जब सूर्य आदि वर्तमान नहीं होते, बनाता है । उसके अतिरिक्त उसके समान वा उससे अधिक और कोई नहीं है । वह 'स्वधा' प्रकृति को जो जगत् का उपादान कारण है धारण करता है । अतः ब्रह्मरूपी वन में प्रकृतिरूपी वृक्ष से भगवान् इन की रचना करता है ॥८॥

स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीं मिहं न वातो वि ह वाति भूम ।
मित्रो यत्र वरुणो अज्यमानोऽग्निर्वने न व्यसृष्ट शोकम् ॥९॥

पदार्थः—उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की व्यवस्था में (**स्तेगः**) रश्मियों का समूह आदित्य (**क्षाम्**) पृथिवी को (**न**) नहीं (**अत्येति**) अतिक्रान्त करता वा अधिक तपाता, (**वायुः**) वायु भी (**भूम**) भूमि पर (**मिहम्**) वृष्टि को (**ह**) निश्चय (**न**) नहीं (**विवाति**) [अतिक्रान्त मर्यादा होकर] बहाता है, (**यत्र**) जिसमें (**मित्रः**) अग्नि (**अज्यमानः**) व्यक्त हुआ और (**वरुणः**) चन्द्रमा उत्पन्न हुआ (**शोकम्**) अपने प्रकाश को वा दीप्ति को (**व्यसृष्ट**) विस्तार से फेंकते हैं (**न**) जिस प्रकार (**अग्निः**) अग्नि (**वने**) वृक्ष-समूह में अपनी दीप्ति फेंकता है ।

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की व्यवस्था में रहकर मर्यादा का अतिक्रमण न करते हुए ही सूर्य और वायु ताप देने और वृष्टि करने का कार्य करते हैं । अग्नि और चन्द्रमा भी अपनी दीप्ति को उसके नियं-

Scanned by CamScanner

त्रण में रहकर ही फेकते हैं जिस प्रकार अग्नि काष्ठसमूह में नियन्त्रित रहकर ही अपनी दीप्ति फेंकता है ॥६॥

स्तरीर्यत्सूत सद्यो अज्यमाना व्यथिरव्यथीः कृणुत स्वगोपा ।
पुत्रो यत्पूर्वः पित्रोर्जनिष्ट शम्यां गौर्जगार यद्ध पृच्छान् ॥१०॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**अज्यमाना**) वृषभ के रेत को धारण किये हुए गर्भिणी (**स्तरीः**) गाय (**सूतं**) बछड़े को पैदा करती है तब (**व्यथिः**) पीड़ा का अनुभव करते हुए भी (**स्वगोपा**) अपने से रक्षित रहती है और (**अव्यथीः**) व्यथारहित सन्तति (**कृणुत**) उत्पन्न करती है । (**यद्**) जब (**पुत्रः**) पुत्रभूत अग्नि (**पित्रोः**) द्यु और पृथिवी से (**पूर्वः**) पहले (**अजनिष्ट**) उत्पन्न होता है तब उसे (**गौः**) पृथिवी (**शम्याम्**) शमी वृक्ष में (**जगार**) धारण करती है (**यत्**) जिसके विषय में (**ह**) निश्चय ही (**पृच्छान्**) याज्ञिक लोग पूछते हैं ।

भावार्थः—जब गाय बछड़ा पैदा करती है तब स्वयं पीड़ा को सहन करके उसे पीड़ा रहित पैदा करती है । इसी प्रकार की संसार में सभी जीवों की व्यवस्था है । द्यु और पृथिवी लोक में जो अग्नि पहले पैदा होता है पृथिवी उसे शमी वृक्ष में धारण करती है । इस विषय में याज्ञिक प्रश्न आदि करके जानकारी प्राप्त किया करते हैं ॥१०॥

उत कण्वं नृषदः पुत्रमाहुरुत श्यावो धनमादत्त वाजी ।
प्र कृष्णाय रुशदपिन्वतोधर्ऋतमत्र नकिरस्मा अपीपेत् ॥११॥

पदार्थः—ज्ञानीजन (**उत**) और (**कण्वम्**) मेघ को (**नृषदः**) सूर्य अथवा अग्नि का पुत्र (**आहुः**) कहते हैं, (**उत**) और (**श्यावः**) गतिशील (**वाजी**) सूर्य (**धनम्**) धन को (**आदत्त**), यह मेघ (**कृष्णाय**) किसान के लिए (**रुशद**) रूप और श्री (**प्र अपिन्वत**) देता है, (**अत्र**) इस विषय में (**नकिः**) और कोई भी नहीं (**अस्मै**) इस मेघ के लिए (**ऋतम्**) जल और (**ऊधः**) ओस (**अपीपेत्**) देता है ।

भावार्थः—ज्ञानी लोग कण्व=मेघ को सूर्य अथवा अग्नि का पुत्र मानते हैं क्योंकि ये ही मेघ को बनाते हैं सूर्य वृष्टि आदि के द्वारा सब धनों का धारक=दाता है । मेघ किसान को रूप और श्री देता है । अग्नि वा सूर्य के अतिरिक्त कोई और मेघ को जल और ओस नहीं देता है ॥११॥

यह दशम मण्डल में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—३२

ऋषिः—१—९ कवष ऐलूषः ।। देवता—इन्द्रः ।। छन्दः—१, २ विराड्जगती । ३ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ५ आर्चीभुरिग्जगती । ६ त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् ।। स्वरः -१—५ निषादः ६—९ धैवतः ।।

प्र सु ग्मन्ता धियसानस्य सक्षणि वरेभिर्वराँ अभि षु प्रसीदतः ।
अस्माकमिन्द्र उभयं जुजोषति यत्सोम्यस्यान्धसो बुबोधति ॥१॥

पदार्थः—(**धियसमानस्य**) बुद्धियुक्त कर्म के धनी विद्वान् के (**सक्षणि**) संग (**ग्मन्ता**) जाते हुए स्त्री पुरुष वा यजमान पुरोहित से (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् विद्वान् (**प्रजुजोषति**) प्रेम करता है, (**प्रसीदतः**) प्रसन्न हुए विद्वान् के (**वरेभिः**) श्रेष्ठ गुणों और कर्मों से दोनों ही (**वरान्**) उत्तम सुखों को (**अभि सु**) प्राप्त करें (**इन्द्रः**) ऐश्वर्य वाला विद्वान् (**अस्माकम्**) हमारे (**उभयम्**) अन्न जल दोनों को (**जुजोषति**) सेवन करता है क्योंकि वह (**सोम्यस्य**) ऐश्वर्ययुक्त (**अन्धसः**) अन्न को (**विबोधति**) भली प्रकार जानता है ।

भावार्थः—महान् ऐश्वर्यवाला विद्वान् बुद्धियुक्त कर्म के धनी विद्वान् के साथ संगति करने वाले स्त्री पुरुषों से प्रीति रखता है, स्त्री पुरुषों को चाहिए कि उसके श्रेष्ठ गुणों को धारण कर उत्तम गुण वाले होवें । ऐश्वर्यशाली विद्वान् हमारे अन्न और जल को भली प्रकार जानकर ग्रहण करता है ।।१।।

वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वराँ उप ते सु वन्वन्तु वग्वनाँ अराधसः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) सूर्य (**दिव्यानि**) आकाश के (**रोचना**) प्रकाशमान और (**पार्थिवानि**) पृथिवी के (**रजसा**) लोकों को (**विवि यासि**) व्याप्त करता है, वह (**पुरुस्तुत**) बहुतों के द्वारा प्रशंसा किया जाता है । (**ये**) जो विद्वान् (**अध्वरान्**) यज्ञों के प्रति (**मुहुः**) बार-बार (**त्वा**) इसे (**उप वहन्ति**) धारण करते हैं (**ते**) वे (**अराधसः**) धन रहित भी होते हुए (**वग्वनान्**) प्रशंसनीय सुख को (**सु वन्वन्त**) बांटते हैं ।

भावार्थः—सूर्य आकाश के तेजोयुक्त और पृथिवी के लोकों को अपने प्रकाश से व्याप्त करता है । जो विद्वान् यज्ञ में बार-बार इस सूर्य के

Scanned by CamScanner

लिए आहुति देते हैं वे धन रहित होते हुए भी यज्ञ द्वारा प्रशंसनीय सुख लोगों को बांटते हैं ॥२॥

तदिन्मे छन्त्सद्वपुषो वपुष्टरं पुत्रो यज्जानं पित्रोरधीयति ।
जाया पतिं वहति वग्नुना सुमत्पुंस इद्भद्रो वहतुः परिष्कृतः ॥३॥

पदार्थः—(**यत्**) जिस प्रकार (**पुत्रः**) पुत्र (**पित्रोः**) माता-पिता से (**जानम्**) जन्म (**अधीयति**) ग्रहण करता है (**तत्**) वैसे हीं (**मे**) मेरा आत्मा (**वपुषः वपुष्टरम्**) उत्तम से उत्तम शरीर को (**छन्त्सत्**) प्राप्त करे (**जाया**) स्त्री (**पतिम्**) पति को (**सुमत्**) उत्तम (**वग्नुना**) वाणी से (**वहति**) प्राप्त करती है (**परिष्कृतः**) उत्तम (**वहतुः**) दहेज (**पुंसः इत्**) पुरुष को ही (**भद्रः**) सुखदायक होता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पुत्र माता-पिता से जन्म ग्रहण करता है वैसे ही जीव उत्तम से उत्तम शरीर में जन्म प्राप्त करे । पत्नी सुन्दर वाणी से अपने पति को ठीक रखती है और प्राप्त हुआ दहेज पुरुष को ही सुखदायी होता है ॥३॥

तदित्सधस्थमभि चारु दीधय गावो यच्छासन्वहतुं न धेनवः ।
माता यन्मन्तुर्यूथस्य पूर्व्याभि वाणस्य सप्तधातुरिज्जनः ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र=ऐश्वर्यशाली विद्वन्! (**तत्**) वह (**इत्**) ही (**सधस्थम्**) स्थान (**चारु**) उत्तम प्रकार से आप (**अभि दीधय**) अपने आगमन और ज्ञान प्रदान से दीप्त कीजिए (**यत्**) जहां पर (**न**) संप्रति (**धेनवः**) फलों को देने वाली (**गावः**) वेदवाणियां (**वहतुम्**) हवि आदि के वाहक यज्ञ को (**शासन्**) चाहती हैं तथा (**यत्**) जहां पर (**मन्तुः**) मुझ मननशील यजमान और (**यूथस्य**) ऋत्विक्समूह की (**माता**) मातृभूत स्तुतियां (**पूर्व्या**) ज्ञानादि से पूर्ण हैं और (**सप्तधातुः**) सात धातुओं से बने शरीर वाला यह (**जनः**) जन (**इत्**) ही (**वाणस्य**) वाणी का (**अभि**) अभिभावक है ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप उस मेरे यज्ञस्थान को अपने ज्ञान आदि से दीप्त करो जिसमें समस्त कामनाओं को पूरा करने वाली वेदवाणियां यज्ञ को सम्पन्न करने का साधन बन रही हैं । मुझ मननशील यजमान और ऋत्विक्समूह की स्तुतियां ज्ञान से परिपूर्ण हैं । यह सात धातुओं के पुतले वाला जन ही जहां वाणी का अभिभावक है ॥४॥

Scanned by CamScanner

प्र वोऽच्छा रिरिचे देवयुष्पदमेको रुद्रेभिर्याति तुर्वणिः ।
जरा वा येष्वमृतेषु दावने परि व ऊमेभ्यः सिञ्चता मधु ॥५॥

पदार्थः—हे यजमान लोगो ! (**देवयुः**) देवों की कामना करने वाला होता (**वः**) आप लोगों के (**अच्छ**) उत्तम (**पदम्**) स्थान को (**प्र रिरिचे**) प्राप्त करता है, (**एकः**) एक (**इन्द्रः**) यज्ञ का मुख्य देव इन्द्र=वायु जो (**तुर्वणिः**) शीघ्र गतिवाला है (**रुद्रैः**) मरुतों के साथ (**याति**) इस यज्ञ में पहुँचता है (**येषु**) इन (**अमृतेषु**) अमर देवों में (**जरा**) मन्त्रोच्चार (**वा**) भी (**दावने**) धनादि देने में समर्थ होता है अतः (**ऊमेभ्यः**) रक्षा करने वाले इन देवों के निमित्त (**वः**) आप लोग (**मधु**) मधुर घृत सामग्री आदि को (**प्रसिञ्चत**) अग्नि में सीचो ।

भावार्थः—हे यजमान लोगो ! यज्ञ को करने वाला होता आपके यज्ञो में स्थान पाता है । इन्द्र=वायु समस्त मरुतों के साथ यज्ञ में पहुंचता और यज्ञीय हवि आदि को ग्रहण करता है । इन यज्ञ के देवों के निमित्त अग्नि में डाला पदार्थ और मन्त्रोचार आदि धनों के दाता हैं । अतः इन रक्षक देवों के निमित्त सभी आप लोग यज्ञ किया करो ॥५॥

निधीयमानमपगूळ्हमप्सु प्र मे देवानां व्रतपा उवाच ।
इन्द्रो विद्वाँ अनु हि त्वा चचक्ष तेनाहमग्ने अनुशिष्ट आगाम् ॥६॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) विद्वानों के (**व्रतपाः**) व्रत और नियम के पालक (**इन्द्रः**) यजमान ने (**मे**) मुझे (**निधीयमानम्**) पदार्थों में घृत तथा (**अप्सु**) अन्तरिक्ष एवं जलों में (**अपगूळ्हम्**) छिपे वा व्याप्त अग्नि के विषय में (**प्र उवाच**) बताया है, (**विद्वान्**) विद्वान् (**हि**) निश्चय से (**त्वा**) इस अग्नि को (**अनुचचक्ष**) देखता है, उस विद्वान् के द्वारा (**अनुशिष्टः**) शिक्षा पाकर (**अहम्**) मैं (**अग्ने**) अग्नि को (**आगाम्**) जानता हूँ ।

भावार्थः—देवों के नियम को पालने वाला यजमान यह बताता है कि अग्नि सभी पदार्थों और अन्तरिक्ष एवं जलों में छिपा है । विद्वान् ही उसे देख सकता है और विद्वान् के द्वारा शिक्षा पाया हुआ ही उसे जान पाता है ॥६॥

Scanned by CamScanner

अक्षेत्रवित्क्षेत्रविदं ह्यप्राट् स प्रैति क्षेत्रविदानुशिष्टः ।
एतद्वै भद्रमनुशासनस्योत स्रुतिं विन्दत्यञ्जसीनाम् ॥७॥

पदार्थः—(**अक्षेत्रविद्**) शरीर आदि क्षेत्रों एवं मार्ग का न जानने वाला (**क्षेत्रविदम्**) शरीर आदि क्षेत्र एवं मार्ग को जानने वाले से (**हि**) निश्चय (**अप्राट्**) पूछता है, (**क्षेत्रविदा**) क्षेत्रविद से (**अनुशिष्टः**) शिक्षित होकर (**सः**) वह (**प्र एति**) इस ज्ञान वा मार्ग को प्राप्त करता है, (**अनुशासनस्य**) अनुशासन का (**एतत्**) यह (**वैः**) ही (**भद्रम्**) कल्याणदायक फल है, (**उत**) कि अनु-शिष्ट (**अञ्जसीनाम्**) ज्ञान के प्रकाश करने वाली (**स्तुतिम्**) मार्ग को **विन्दति**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—अज्ञ आदमी ज्ञानी से पूछता है। उसके द्वारा अनुशिष्ट हुआ वह अज्ञ उत्तम मार्ग को प्राप्त होता है। अनुशासन का ही यह उत्तम परिणाम है कि अनुशिष्ट हुआ व्यक्ति ज्ञान के प्रकाशक मार्ग को प्राप्त करता है ॥७॥

अद्येदु प्राणीदममन्निमाहापीवृतो अधयन्मातुरूधः ।
एमेनमाप जरिमा युवानमहेळन्वसुः सुमना बभूव ॥८॥

पदार्थः—(**अद्य इत् उ**) आज ही (**प्राणीत्**) प्राण लेने लगता है तथा (**इमा**) इन (**अहा**) नाना संकल्पों को (**अममन्**) सोचने लगता है (**अभिवृतः**) देह में आवृत रहकर (**मातुः**) माता के (**ऊधः**) स्तन को (**अधयत्**) पान करता है (**एनम् ईम्**) इस (**युवानम्**) युवा को (**जरिमा**) वाणी की शक्ति (**आप**) आती है (**अहेडन्**) विना क्रोध किये **वसुः**) गुरु के पास वास करता हुआ (**सुमनाः**) उत्तम मन वाला (**बभूव**)हो जाता है ।

भावार्थः—जीव गर्भ में प्राण धारण करता है तथा नाना संकल्पों को सोचने लगता है। पैदा होकर देह में रहकर माता के स्तन का पान करता हैं। वाणी की शक्ति से युक्त होकर गुरु के पास निवास कर योग्य मन और बुद्धि वाला हो जाता है ॥८॥

एतानि भद्रा कलश क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि ।
दान इद्वो मघवानः सो अस्त्वयं च सोमो हृदि यं बिभर्मि ॥९॥

पदार्थः—(**कलश**) कलाओं से युक्त (**कुरु श्रवण**) हे ऋत्विजों की सुनने वाले इन्द्र=विद्वन् अथवा राजन् ! (**मघानि**) धनों को (**ददतः**) देने वाले तेरे लिए (**एतानि**) इन (**भद्रा**) कल्याणकारक यज्ञ आदि कर्मों को (**क्रियाम**) हम करते हैं, (**मघवानः**) हे यज्ञ करने वाले लोगो ! (**सः**) वह राजा (**वः**) आप लोगों का (**दानः इत्**) दाता (**अस्तु**) है, (**च**) और (**अयम्**) यह (**सोमः**) वह परमेश्वर (**यम्**) जिसको (**हृदि**) हृदय में (**बिभर्मि**) धारण करता हूँ, वह भी दाता है ।

भावार्थः—यजमान आदि कहते हैं कि हे राजन् ! आप ऋत्विजों द्वारा की गई स्तुति को सुनने वाले हैं । हम धनों के देने वाले आपके लिए यज्ञ आदि उत्तम कर्मों को करते हैं । हे धन वाले लोगो ! यह राजा आप को धन आदि का दाता है । तथा वह परमेश्वर भी हमें धन आदि देता है जिसे हम अपने हृदय में धारण करते हैं ॥९॥

यह दशम मण्डल का बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३३

ऋषिः—१—९ कवष ऐलूषः । **देवताः**—१ विश्वेदेवाः । २, ३ इन्द्रः । ४, ५ कुरुश्रवणस्य त्रासदस्यवस्य दानास्तुतिः । ६—९ उपमश्रवा मित्रातिथिपुत्राः ॥ **छन्दः**—१ त्रिष्टुप् । २ निचृद्बृहती । ३ भुरिग्बृहती । ४—७, ९ गायत्री । ८ पादनिचृद्गायत्री ॥ **स्वरः**—१ धैवतः २, ३ मध्यमः, ४—९ षड्जः ॥

प्र मा युयुज्रे प्रयुजो जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण ।
विश्वे देवासो अध मामरक्षन्दुःशासुरागादिति घोष आसीत् ॥१॥

पदार्थः—(**प्रयुजः**) उत्तम मार्ग पर प्रवृत्त करने वाले विद्वज्जन (**मा**) मुझे (**प्र युयुज्रे**) उत्तम मार्ग पर ले जावें (**जनानाम्**) जनों के (**पूषणम्**) पोषक परमेश्वर को (**अन्तरेण**) योग आदि मार्गान्तरों से (**वहामि**) धारण करूं, (**विश्वेदेवासः**) समस्त दिव्य शक्तियां (**माम्**) मेरी (**अरक्षन्**) रक्षा करें, (**अध**) और (**दुःशासुः**) जिस पर कोई शासन नहीं कर सकता ऐसा प्रभु (**आगात्**) हमें प्राप्त हो (**इति**) ऐसा (**घोषः**) उपदेश (**आसीत्**) है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः--उत्तम मार्ग पर प्रवृत्त करने वाले विद्वज्जन मुझे उत्तम मार्ग पर ले जावें। जनों के पालक भगवान् को मैं योग आदि के मार्ग से प्राप्त करूं। समस्त दिव्य शक्तियां मेरी रक्षा करें, परमेश्वर मुझे प्राप्त हो, ऐसा उपदेश है ॥१॥

सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ॥२॥

पदार्थ--(**मा**) मुझ मनुष्य को (**सपत्नीः इव**) सपत्नी के समान (**पर्शवः**) पार्श्वास्थियां (**अभितः**) चारों तरफ से (**तपन्ति**) सन्तप्त करती हैं (**अमतिः**) दारिद्रय जनित दुःख (**मा**) मुझे (**निबाधते**) दुःख देता है (**नग्नता**) वस्त्रहीनता भी बाधा पहुंचाती (**जसुः**) उपक्षय भी दुःख देता है (**वेः**) पक्षी की (**न**) भांति (**मतिः**) मति (**वेवीयते**) कम्पायमान रहती है।

भावार्थः—मुझ जीव को दरिद्रता के कारण पार्श्व की अस्थियां सपत्नी की भांति सताती हैं, दरिद्रता से उत्पन्न दुःख, नग्नता और उपक्षय मुझे दुःखी करते हैं। पक्षी की भांति मेरी बुद्धि सदा अस्थिर रहती है ॥२॥

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्यः स्तोतारं ते शतक्रतो ।

सकृत्सु नो मघवन्निन्द्र मृळयाधा पितेव नो भव ॥३॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**मूषः**) मूषक (**शिश्ना**) रस से भीगे सूतों को खा जाता है उसी प्रकार (**आध्यः**) चिन्तायें एवं व्यथायें (**मा**) मुझको (**वि अदन्ति**) खाये डालती हैं (**शतक्रतो**) हे सर्वज्ञ (**इन्द्र**) परमेश्वर (**मघवन्**) धनों के स्वामी आप (**नः**) हमें (**सकृत्**) सर्वथा (**सु मृडय**) सुखी कर (**अध**) और (**नः**) हमारे (**पिता इव**) पिता के समान हो।

भावार्थः—संसार में व्यथायें उसी प्रकार मनुष्य को खाये डालती हैं जैसे चूहा रस से भीगे सूत्र को खाता है। परमेश्वर सब का पिता है अतः वही सुखी कर इन व्यथाओं से दूर कर सकता है ॥३॥

कुरुश्रवणमावृणि राजानं त्रासदस्यवम् । मंहिष्ठं वाघतामृषिः ॥४॥

पदार्थः—(**ऋषिः**) अतीन्द्रिय पदार्थद्रष्टा मैं (**त्रासदस्यवम्**) शत्रुसंहारक राजा के पुत्र (**कुरुश्रवणम्**) ऋत्विजों के भक्त (**वाघताम्**) ऋत्विजों को (**मंहिष्ठम्**) दान

देने वाले (राजानम्) राजा को अपनी आवश्यकताओं के लिए (आवृणि) प्राप्त करता हूँ ।

भावार्थः—अतीन्द्रिय पदार्थों का द्रष्टा मैं अत्यन्त शत्रुसंहारक, ऋत्विजों और विद्वानों की बात सुनने वाले, उन्हें दान देने वाले राजा के पास अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए जाता हूँ ॥४॥

यस्य॑ मा ह॒रितो॒ रथे॑ ति॒स्रो वह॑न्ति साधु॒या । स्तवै॑ स॒हस्र॑दक्षिणे ॥५॥

पदार्थः (यस्य) जिसके (रथे) रथ में (तिस्रः) तीन हरितः) घोड़े (मा) मुझको (साधुया) भली प्रकार (वहन्ति) ले जाते हैं (सहस्रदक्षिणे) अधिक दान देने वाले उस राजा की समृद्धि के लिए मैं (स्तवै) स्तुति करता हूं ।

भावार्थः जिसके दिये रथ में तीन घोड़े मुझे भली प्रकार ले जाते हैं ऐसे दानशील राजा की समृद्धि के लिए मैं स्तुति करता हूँ ॥५॥

यस्य॒ प्रस्वा॑दसो॒ गिर॑ उपमश्र॑वसः पि॒तुः । क्षेत्रं॒ न र॒ण्वमू॒चुषे॑ ॥६॥

पदार्थः—(यस्य) जिस (उपम श्रवसः) अति यशस्वी के (पितुः) पिता की (गिरः) वाणियां (प्रस्वादसः) इतनी प्रिय हैं (न) जिस प्रकार (ऊचुषे) दान चाहने वाले पुरुष के लिए (रण्वम्) रमणीय (क्षेत्रम्) क्षेत्र प्रिय है ।

भावार्थः—जिस अति धनी एवं यशस्वी राजा के पिता की वाणियाँ इतनी प्रिय हैं जितना कि दान चाहने वाले को रमणीय क्षेत्र प्रिय होता है, वह प्रशंसनीय है ॥६॥

अधि॑ पु॒त्रोप॑मश्रवो॒ नपा॑न्मित्रातिथेरिहि । पि॒तुष्टे॑ अस्मि वन्दि॒ता ॥७॥

पदार्थः—(उपमश्रवः) हे अति धनिन् राजन् आप (मित्रातिथेः) अतिथियों के मित्र राजा के (नपात्) वंश को न नष्ट होने देने वाले (पुत्रः) पुत्र हो, (अधि इह) यह समझो, मैं (ते) आप के (पितुः) पिता का (वन्दिता) प्रशंसक (अस्मि) हूँ ।

भावार्थः—हे अतिधनिन् ! अतिथियों के मित्र राजा की वंश परम्परा को चलाने वाले पुत्र ! मैं आप के पिता का प्रशंसक हूँ, ऐसा आप समझो ॥७॥

Scanned by CamScanner

यदीशीयामृतानामुत वा मर्त्यानाम् । जीवेदिन्मघवा मम ॥८॥

पदार्थः (यत्) जो (अमृतानाम्) इन्द्रिय आदि देवों (उत वा) और (मर्त्यानाम्) मरणधर्मा शरीर आदि पर (ईशीय) अपना वश हो (इत्) तो (मम) मेरा (मघवा) धन दाता राजा भी (जीवेत्) जीता रह सके ।

भावार्थः यहां यह संभावना और हेतु वर्णन किया गया है कि यदि इन्द्रिय आदि मोक्ष पर्यन्त बने रहने वाले अमृत पदार्थों और मरणधर्मा शरीर पर अपना वश चले तो दानी राजा भी जीता रह सके, मरे नहीं ॥८॥

न देवानामति व्रतं शतात्मा चन जीवति ।

तथा युजा वि वावृते ॥९॥

पदार्थः—(देवानाम्) देवों के (व्रतम्) नियम का (अति) अतिक्रमण करके (शतात्मा चन) सौ वर्ष तक भी कोई (न) नहीं (जीवति) जीता है (तथा) और (युजा) शरीर, मित्र आदि के साथ वह [मरकर] (वि वावृते) नियुक्त होता है ।

भावार्थः—देवों के अर्थात् इन्द्रिय आदि शरीरस्थ और प्राकृतिक बाह्य देवों के नियम का उल्लंघन करने वाला सौ वर्ष नहीं जी सकता है। मरकर उसे पुनः शरीर और बन्धु-बान्धवों से युक्त होना पड़ता है ॥९॥

यह दशम मण्डल में तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३४

ऋषिः—१—१४ कवष ऐलूष अक्षो वा मौजवान् ॥ देवता—१, ७, ९, १२, १३, अक्षकृषिप्रशंसा । २—६, ८, १०, ११, १४, अक्षकितवनिन्दा ॥ छन्दः— १, २, ८, १२, १३ त्रिष्टुप् । ३, ६, ११, १४ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, ९, १० विराट्-त्रिष्टुप् । ७ जगती ॥ स्वरः—१ ६, ८—१४ धैवतः । ७ निषादः ॥

प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः ।

सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

पदार्थः—(**इरिणे**) सूखे कूप में (**ववृतानाः**) उत्पन्न अथवा निर्धन अवस्था को प्राप्त कराने वाले **बृहतः**) बड़े भारी (**प्रवातेजाः**) बीच प्रदेश में उत्पन्न हुए, (**प्रावेपाः**) कम्पनशील अक्ष=पासे (**मा**) मुझको (**मादयन्ति**) हर्षित करते हैं, (**विभीदकः**) बहेड़े के वृक्ष का यह गोटा (**मौजवतः**) भूज से युक्त पर्वत पर उत्पन्न हुए (**सोमस्य**) सोम रस के (**भक्षः इव**) पेय वा खाद्य के समान (**जागृविः**) जीता जागता (**मह्यम्**) मुझे (**अच्छान्**) हर्षित करता है ।

भावार्थः- इस सूक्त के मन्त्रों में जुआ खेलने की निन्दा और कृषि की प्रशंसा की गई है। प्रसंगतः द्यूत का प्रेमी कहता है-निर्धनता की अवस्था में ले जाने वाले नीच प्रदेश में उन्पन्न कम्पनशील अक्ष=द्यूत के पासे मुझे प्रसन्नता देतेहैं और विभीदक=वहेड़े की लकड़ी से बना यह गोटा उसी प्रकार हर्षित करता है जिस प्रकार मूज के घिरे नर्वत में उत्पन्न सोम=गिलोय आदि का रस हर्षित करता है ॥१॥

न मा॑ मिमेथ न जि॑हीळ ए॒षा शि॒वा सखि॑भ्य उ॒त मह्य॑मासीत् ।
अ॒क्षस्या॒हमे॑कप॒रस्य॑ हे॒तोरनु॑व्रता॒मप॑ जा॒याम॑रोधम् ॥२॥

पदार्थः—(**एषा**) यह मेरी पत्नी (**माम्**) मुझ कितव=द्यूतखोर को (**न**) नहीं (**मिमेथ**) क्रोध करती और (**न**) नहीं (**जिहीडे**) लज्जा करती है (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिए (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**आसीत्**) है, (**उत**) और (**मह्यम्**) मेरे लिए भी कल्याणकारिणी (**आसीत्**) है. इस प्रकार की (**अनुव्रताम्**) अनुकूल (**जायाम्**) पत्नी को (**एकपरस्य**) एक ही की प्रधानता वाले (**अक्षस्य**) द्यूत के पासे के (**हेतोः**) कारण से (**अप अरोधम्**) रखता नहीं अथवा द्यूत पासे पर हार जाता हूँ ।

भावार्थः -वह कहता है कि मेरी पत्नी न मुझ पर कभी क्रोध करती और न मुझ से लज्जा करती है, मेरे लिए और मेरे मित्रों के लिए हित-कारिणी है। ऐसी अनुव्रता और पतिव्रता पत्नी को भी मैं द्यूत के पासे के कारण छोड़ बैठता हूँ अथवा हार देता हूँ ॥२॥

द्वेष्टि॑ श्व॒श्रूरप॑ जा॒या रु॑णद्धि॒ न ना॑थि॒तो वि॑न्दते मर्डि॒तार॑म् ।
अश्व॑स्येव॒ जर॑तो॒ वस्न्य॑स्य॒ नाहं वि॑न्दामि कित॒वस्य॒ भोग॑म् ॥३॥

पदार्थः हारे जुआरी की (**श्वश्रूः**) सास भी (**द्वेष्टि**) द्वेष करती है, (**जाया**) पत्नी भी (**अप रुणद्धि**) विरक्त हो जाती है, (**नाथितः**) मांगता हुआ

Scanned by CamScanner

भी (मर्डितारम्) कोई धन देने वाला (न) नहीं (विन्दते) पाता है, (जरितः) बूढ़े (वस्न्यस्य) मूल्यार्ह (अश्वस्य) घोड़े के (इव) समान (कितवस्य) जुआरी के (भोगम्) सुख और रक्षा को (अहम्) मैं विचारक (न) नहीं (विन्दामि) पाता हूं।

भावार्थः—जुआरी आदमी को सास द्वेष करती है, पत्नी भी विरक्त हो जाती है, मांगता हुआ भी वह कहीं पैसा देने वाला नहीं पाता। मूल्यवान् बूढ़े घोड़े के समान उसके सुख और रक्षा को मैं विचारक कहीं भी नहीं देखता हूँ ॥३॥

अन्ये जायां परि मृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः ।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ॥४॥

पदार्थः—(यस्य) जिस जुआरी के (वेदने) धन पर (वाजी) बलवान् (अक्षः) जुए का पासा (अगृधद्) आकांक्षा रखता है उस (अस्य) इस जुआरी की (जायाम्) पत्नी को (अन्ये) दूसरे जुआरी (परिमृशन्ति) हथियाते हैं, (पिता) जुआरी के पिता, (माता) माता और (भ्रातरः) भाई लोग भी (एनम्) इसे लक्ष्य करके (आहुः) कहते हैं कि (न) नहीं (जानीमः) जानते हैं कि यह कौन है, (बद्धम्) बांधकर (एतम्) इसको (नयत) ले जाओ।

भावार्थः—जिसके धन पर जुए के पासे ने अपनी आकांक्षा जमा ली है उस जुआरी की पत्नी को भी दूसरे जुआरी हथियाते हैं वा तंग करते हैं। उसके पिता, माता और भाई लोग कहते हैं कि वे उसको नहीं जानते हैं कि वह कौन है? उसे बांध कर ले जाओ ॥४॥

यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽव हीये सखिभ्यः ।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रतँ एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ॥५॥

पदार्थः—जुआरी कहता है कि मैं व्यसनी पुरुष ((यद्) जब (आदीध्ये) ध्यान करता हूं तब (एभिः) इनके द्वारा (न) नहीं (दविषाणि) दुःखी होता हूँ (परायद्भ्यः) दूसरे आने वाले (सखिभ्यः) मित्र तुल्य उनके लिए (अव हीये) ध्यान देता हूँ, वे (बभ्रवः) लाल पीले रंगों वाले (न्युप्ताः) फेंके जाकर (वाचम्) आवाज (अक्रत) करते हैं और मैं भी (एषाम्) इनके (निष्कृतम्) स्थान पर (जारिणी इव) जारिणी के समान (एमि एव) चला जाता हूँ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—व्यसनी जुआरी कहता है कि जब इन पासों को मैं देखता हूँ तो दुःखी नहीं होता, दूर से आने वाले पासों को मित्र के समान समझकर ध्यानपूर्वक देखता हूँ। लाल पीले चमकीले रंग के ये पासे फेंके गए हुए आवाज करते हैं और मैं भी जारिणी स्त्री के समान इनके स्थान पर पहुँच जाता हूं ॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामीति तन्वा३ शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

पदार्थः—(तन्वा) शरीर से (शूशुजानः) चमकता हुआ (पृच्छमानः) पूछता हुआ (कितवः) द्यूत व्यसनी (सभाम्) द्यूत सभा में (एति) आता है (जेष्यामि) 'मैं जीतूंगा' (इति) ऐसा समझकर (प्रतिदीव्ने) प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिए (कृतानि) चालवाजी की (आ दधतः) अपनाने वाले (अस्य) इस जुआरी के (अक्षासः) पासे (कामम्) धनाभिलाषा को (वि तिरन्ति) बढ़ाते हैं।

भावार्थः—व्यसनी जुआरी शरीर से चमकता हुआ और पूछता हुआ कि किसके पास पैसा है द्यूत सभा में आता है। 'मैं जीतूंगा' ऐसा सोचता हुआ प्रतिपक्षी को पराजित करने के लिए चालवाजी करता है और इसके पासे उसकी धनेच्छा को बढ़ाते हैं ॥६॥

अक्षास इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा ॥७॥

पदार्थः—(अक्षाः इत्) अक्ष ही (अंकुशिनः) अंकुश वाले हैं, (नितोदिनः) प्रतिपक्षी को व्यथित करने वाले (निकृत्वानः) पराजय में काटने वाले (तपनाः) तपाने वाले (तापयिष्णवः) संताप पैदा करने वाले होते हैं। (जयतः) जीतने वाले (कितवस्य) जुआरी के लिए (कुमारदेष्णा) धन देने से कुमारों के दाता तथा प्रतिपक्षी जुआरी द्वारा (मध्वा) मधु से (संपृक्ताः) सम्पृक्त और (बर्हणा) सर्वस्वहरण से इसके (पुनर्हणः) पुनर्हन्ता भी होते हैं।

भावार्थः—ये पासे ही जुआरी की दृष्टि में अंकुश वाले, व्यथा देने वाले, निकर्त्ता और हार में ताप देने वाले है। जीतने वाले जुआरी के लिए जहां ये धन आदि के दाता हैं वहां जब प्रतिपक्षी जुआरी से वह हराया जाता है तो उसके हन्ता भी हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देवइव सविता सत्यधर्मा ।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति ॥८॥

पदार्थः—(एषाम्) इन अक्षों का (त्रिपंचाशः) तिरपन गोटों का (व्रातः) समूह (सत्यधर्मा) सत्यनियम पर चलने वाला (सविता) सूर्य (देवः) देव के (इव) समान (क्रीडति) खेल में चालू रहता है, (उग्रस्य चित्) उग्र के भी (मन्यवे) क्रोध को भी ये (न) नहीं (नमन्ते) झुकते हैं (राजा चित्) राजा भी यदि जुआ खेलता है तो (एभ्यो) इनके लिए (नमः इत्) नमन ही (कृणोति) करता है ।

भावार्थः--जैसे सत्यधर्मा सूर्य देव सर्वत्र विहरते हैं उसी प्रकार तरेपन अक्षों का यह समूह चौपड़ विहरता है। किसी उग्र के भी क्रोध के सामने ये नम्रीभूत नहीं होते हैं। राजा भी अगर जुआरी है तो इनके सामने झुक जाता है ॥८॥

नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते ।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निर्दहन्ति ॥९॥

पदार्थः—ये अक्ष (नीचा) नीचे (वर्तन्त) होते हैं तथापि (उपरि) ऊपर (स्फुरन्ति) स्फुरित होते हैं, (अहस्तासः) विना हाथ वाले होते हुए भी (हस्तवन्तम्) हाथ वालों को (सहन्ते) दबा लेते हैं (दिव्याः) दिव्य (अंगाराः) अंगारे के समान ये अक्ष (इरिणे) इन्धनरहित चौपड़ पर (न्युप्ताः) फेंके गए (शीताः) शीतल (सन्तः) होते हुए भी (हृदयम्) जुआरियों के हृदय को (दहन्ति) पराजय से जलाते हैं ।

भावार्थः-- ये अक्ष नीचे रहते हैं फिर भी ऊपर स्फुरित होते हैं। विना हाथ के होते हुए भी ये हाथ वाले जुआरियों को दबा लेते हैं। चौपड़ पर फेंके गए शीतल होते हुए भी ये दिव्य अङ्गारों के समान जुआरियों के हृदय को हार से होने वाले संताप से जलाते हैं ॥९॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित् ।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

पदार्थः—(कितवस्य) जुआरी की (हीना) त्यक्त पत्नी (तप्यते) वियोग से दुःखी होती है (क्वस्वित्) कहीं भी (चरतः) विचरते हुए इस व्यसनी की

(**माता**) माता भी दुःखी होती है। वह स्वयं (**ऋणावा**) ऋणग्रस्त होकर (**धनम्**) धन (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**बिभ्यत्**) डरता हुआ, (**नक्तम्**) रात्रि में (**अन्येषाम्**) दूसरों के (**अस्तम्**) घर को चोरी करने (**एति**) जाता है।

भावार्थः-- जुआरी की छोड़ी हुई पत्नी संतप्त होती है। कहीं भी विचरने वाले इस व्यसनी की माता भी संताप करती है। वह ऋणी होकर धन की इच्छा करता हुआ रात्रि में दूसरों के घर चोरी करने जाता है ॥१०॥

स्त्रियं॑ दृ॒ष्ट्वाय॑ कित॒वं त॑तापा॒न्येषां॑ जा॒यां सु॒कृतं॑ च॒ योनि॑म् ।
पू॒र्वा॒ह्णे अश्वा॑न्युयु॒जे हि ब॒भ्रून्त्सो अ॒ग्नेरन्ते॑ वृष॒लः प॑पाद ॥११॥

पदार्थः—(**कितवम्**) जुआरी (**स्त्रियम्**) पत्नी को देखकर तथा (**अन्येषाम्**) दूसरों की (**जायाम्**) पत्नी, (**सुकृतम्**) उत्तम कर्म (**च**) और (**योनिम्**) गृह को (**दृष्ट्वाय**) देखकर (**तताप**) दुःखी होता है, (**हि**) निश्चय ही वह (**पूर्वाह्णे**) दिन के पूर्व भाग में (**बभ्रून्**) शुभ्रवर्ण (**अश्वान्**) अश्वों के समान अक्षों को (**युयुजे**) जोड़ता है और (**सः**) वह (**वृषलः**) पातकी मूढ (**अग्नेः**) अग्नि के (**अन्ते**) पास में रात्रि को (**पपाद**) जा गिरता है।

भावार्थः—जुआरी अपनी स्त्री और दूसरों की स्त्री, उनके उत्तम कर्म और गृह को देखकर मन में संतप्त होता है। दिन के पूर्व भाग में पासे जोड़ता है और रात्रि में सर्दी से बचने से लिए अग्नि के पास पड़ जाता है ॥११॥

यो वः॑ सेना॒नीर्म॑ह॒तो ग॒णस्य॒ राजा॒ व्रात॑स्य प्रथ॒मो ब॒भूव॑ ।
तस्मै॑ कृणोमि॒ न धना॑ रुणध्मि॒ दशा॒हं प्राची॒स्तदृ॒तं व॑दामि ॥१२॥

पदार्थः—जुआरी कहता है—मैं (**तस्मै**) उसे (**दश**) दश अंगुलियां (**कृणोमि**) करता हूँ अर्थात् अंजलि बांधकर नमस्कार करता हूँ (**यः**) जो (**वः**) तुम अक्षों के (**महतः**) बड़े (**गणस्य**) समूह (**व्रातस्य**) संघ का (**प्रथमः**) मुख्य (**राजा**) स्वामी (**सेनानीः**) नेता (**बभूव**) है, मैं (**दशः**) दश अंगुलियों को (**प्राचीः**) सामने (**कृणोमि**) करता हूं मैं (**धना**) धन को अक्षों के लिए (**न**) नहीं (**रुणध्मि**) लगाऊंगा (**तत्**) वह यह मैं (**ऋतम्**) सत्य ही (**वदामि**) कहता हूं।

भावार्थः—जुआरी कहता है कि वह इन अक्षों के महान् समूह के

Scanned by CamScanner

नेता को नमस्कार करता है। वह अंजलि जोड़ता है कि इनके लिये धन का संपादन नहीं करेगा और वह उसका कथन सत्य है ॥१२॥

अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः ।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः ॥१३॥

पदार्थः —विद्वान् इस पर उपदेश देते हुए कहता है—हे (**कितव**) जुआरी ! (**अक्षैः**) अक्षों के साथ (**मा**) मत (**दीव्यः**) खेल अर्थात् द्यूत मत खेल (**कृषिम्**) खेती (**इत्**) ही (**कृषस्व**) कर, इस प्रकार खेती से उत्पन्न (**वित्ते**) धन में (**रमस्व**) प्रसन्न हो, वा खेलो (**तत्र**) उसी में (**गावः**) गायें हैं (**तत्र**) उसी में (**जाया**) स्त्री भी प्राप्त होती है इसे (**बहु**) बहुत (**मन्यमानः**) स्वीकार करते हुए तुम खेती करो और द्यूत छोड़ो (**मे**) मेरे लिए (**अयम्**) यह (**अर्यः**) स्वामी (**सविता**) सबके प्रेरक विद्वान् ने (**चष्टे**) कहा है।

भावार्थः—विद्वान् इस पर उपदेश देते हुये कहता है—हे जुआरी जुआ खेलना छोड़, खेती कर। मेरी बात पर विश्वास करता हुआ खेनी से उत्पन्न धन में खेल। उसी में गायें मिलती हैं और उसी में जाया भी प्राप्त होती हैं। मेरे लिये यही सबके प्रेरक स्वामी विद्वान् ने कहा है ॥१३॥

मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु ।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु ॥१४॥

पदार्थः — द्यूत के दोष को समझकर जुआरी कहता है —हे मनुष्यो ! (**मित्रम्**) मित्र (**कृणुध्वम्**) बनाओ, हमें अपना और अपने को हमारा, (**नः**) हमें (**मृडत**) सुखी को (**खलु**) निश्चय ही (**नः**) हमें (**धृष्णु**) दुःखजनक (**घोरेण**) संताप देने वाले क्रोध से (**मा**) मत (**अभिचरत**) व्यवहार करो। (**मन्युः**) क्रोधी, (**अरातिः**) अभिमानी (**वः**) आप में (**निविशताम्**) क्रोध आदि का परित्याग करके, मिल जावें (**अन्यः**) शत्रु प्रजापालक राजाओं के (**प्रसितौ**) वश में (**नु**) निश्चय (**अस्तु**) रहे।

भावार्थः —द्यूत के दोष को समझ कर जुआरी अब जुआरी न रहकर कहता है–हे मनुष्यो! हमें बनाओ अपना मित्र और बनो हमारे आप मित्र। हमें सुखी करो। अभिमानी और क्रोधी अपने अभिमान और क्रोध को त्याग कर आप में मिल जावें। शत्रु प्रजापालक राजा के वश में रहे ॥१४॥

यह दशम मण्डल में चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—३५

ऋषिः—१—१४ लुशो धानाकः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ६, ६, ११ विराड्जगती । २ भुरिग्जगती । ३, ७, १०, १२ पादनिचृज्जगती । ४, ८ आर्चीस्वराड्जगती । ५ आर्चीभुरिग्जगती । १३ निचृत्त्रिष्टुप् । १४ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—१२ निषादः । १३, १४ धैवतः ॥

अबुध्रमु त्य इन्द्रवन्तो अग्नयो ज्योतिर्भरन्त उषसो व्युष्टिषु ।
मही द्यावापृथिवी चेततामपोऽद्या देवानामव आ वृणीमहे ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्रवन्तः**) वायु को साथ लिए (**त्ये**) वे (**अग्नयः**) अग्नियें (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**भरन्तः**) धारण किये हुए (**उषसः**) उषा के (**व्युष्टिषु**) उदय के समयों में (**अबुध्रम् उ**) जागृत हो जाती हैं। (**मही**) महती (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अपः**) अपने कार्य को (**चेतताम्**) करने लगते हैं (**अद्य**) आज हम (**देवानाम्**) सूर्य वायु आदि दिव्य शक्तियों के (**अवः**) रक्षण को (**आ वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं।

भावार्थः - वायु को साथ लिये हुए ये अग्नियें उषा के उदयकाल में जागृत हो जाती हैं। महान् द्यु और पृथिवी लोक अपना कार्य करते हैं। आज हम दिव्य पदार्थों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥१॥

दिवस्पृथिव्योरव आ वृणीमहे मातॄन्त्सिन्धून्पर्वताञ्छर्यणावतः ।
अनागास्त्वं सूर्यमुषासमीमहे भद्रं सोमः सुवानो अद्या कृणोतु नः ॥२॥

पदार्थ—(**दिवः पृथिव्योः**) द्यु और पृथिवी के (**अवः**) रक्षण कार्य को (**आवृणीमहे**) हम स्वीकार करते हैं, (**मातॄन्**) माता के तुल्य निर्माण कार्य करने वाली (**सिन्धून्**) नदियों, (**शर्यणावतः**) सरोवरों से युक्त (**पर्वतान्**) पर्वतों को और उनके लाभ को स्वीकार करते हैं, (**अनागस्त्वम्**) निर्दोषता को प्राप्त करें और (**उषसम्**) उषा तथा (**सूर्यम्**) सूर्य को (**ईमहे**) जानें।

भावार्थः द्यु लोक और पृथिवी की रक्षणशक्ति को हम मानते हैं नदियों और कासारों से युक्त पर्वतों के लाभ को स्वीकार करते हैं। हम निर्दोषता प्राप्त करें, और उषा तथा सूर्य के कार्य और प्रभाव को समझें ॥२॥

Scanned by CamScanner

द्यावा नो अद्य पृथिवी अनागसो मही त्रायेतां सुविताय मातरा ।
उषा उच्छन्त्यप बाधतामघं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥३॥

पदार्थः—भगवान् की कृपा से (**मही**) महान् (**मातरा**) सबकी माता के समान (**द्यावा पृथिवी**) आकाश और भूमि (**अद्य**) आज कल सदा (**अनागसः**) अपराधरहित (**नः**) हम लोगों को (**सुविताय**) सुख के लिये (**त्रायेताम्**) रक्षा करें, (**उच्छन्ती**) उदय को प्राप्त होती हुई (**उषाः**) उषाएँ (**अघम्**) रोग आदि दोष को (**अप बाधताम्**) दूर भगावें, (**समिधानम्**) भली प्रकार दीप्त (**अग्निम्**) अग्नि को (**स्वस्ति**) सुख के लिये (**ईमहे**) जानें और प्राप्त करें ।

भावार्थः—परमेश्वर की कृपा से आकाश और भूमि हम निरपराधों की रक्षा करें । उषा उदित होती हुई हमारे रोग आदि दोषों को हटावें और प्रदीप्त अग्नि को हम कल्याणकारी बनावें और उसको जानें ॥३॥

इयं न उस्रा प्रथमा सुदेव्यं रेवत्सनिभ्यो रेवती व्युच्छतु ।
आरे मन्युं दुर्विदत्रस्य धीमहि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥४॥

पदार्थः (**रेवती**) धन वाली (**इयम्**) यह (**प्रथमा**) मुख्य (**उस्रा**) दीप्त उषा (**सनिभ्यः**) स्तुति करने वाले (**नः**) हम लोगों को (**सुदेव्यम्**) उत्तम एवं दिव्य (**रेवत्**) धन वा ऐश्वर्य को देती हुई (**व्युच्छतु**) उदित होवे । (**दुर्विदत्रस्य**) दुर्धन पुरुष के (**मन्युम्**) क्रोध को (**आरे**) दूर (**धीमहि**) फेंकते हैं । (**समिधानम्**) सुदीप्त (**अग्निम्**) सूर्य रूप अग्नि को स्वस्ति कल्याण के लिए हम (**ईमहे**) जानें और प्राप्त करें ।

भावार्थः—हम भगवान् की स्तुति और भक्ति करने वालों को यह उषा धन देती हुई उदित होवे और दुर्धन पुरुष के क्रोध को हम अपने से दूर फेंकें । दीप्त सूर्य को हम जानें और उससे लाभ उठावें ॥४॥

प्र याः सिस्रते सूर्यस्य रश्मिभिर्ज्योतिर्भरन्तीरुषसो व्युष्टिषु ।
भद्रा नो अद्य श्रवसे व्युच्छत स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥५॥

पदार्थः—(**याः**) जो (**उषसः**) उषायें (**सूर्यस्य**) सूर्य की (**रश्मिभिः**) किरणों से (**प्रसिस्रते**) संयुक्त होती हैं और (**व्युष्टिषु**) उदय के समयों में (**ज्योतिः**) तेज को (**भरन्तीः**) धारण करती हुई (**अद्य**) अब भी जब भी सदा ही

Scanned by CamScanner

(भद्राः) कल्याणकारिणी हुई (नः) हमारे लिए (श्रवसे) अन्न आदि के लिये (व्युच्छत) उदित होवें। प्रदीप्त विद्युत् रूप अग्नि को हम जानें और अपने कल्याण के लिए प्राप्त करें।

भावार्थः—जो उषायें सूर्य की किरणों के साथ संगत होती हैं और तेज को धारण करती है वे हमें अन्नादि की प्राप्ति के लिए उदित होवें और हम विद्युद्रूप अग्नि को जानें और अपने कल्याण के लिए प्राप्त करें ॥५॥

अनमीवा उषस आ चरन्तु न उदग्नयो जिहतां ज्योतिषा बृहत् ।
आयुक्षातामश्विना तूतुजिं रथं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥६॥

पदार्थः—(**अनमीवाः**) रोगों से रहित (**उषसः**) उषायें (**नः**) हमें (**आचरन्तु**) प्राप्त हों, और (**बृहता**) बृहत् (**ज्योतिषा**) तेज से युक्त (**अग्नयः**) अग्नियें (**उत् जिहताम्**) प्राप्त हों, (**अश्विना**) प्राण और अपान (**तूतुजिम्**) शीघ्रगामी (**रथम्**) रमणीय शरीर रथ को (**अयुक्षाताम्**) युक्त हो चलावें, (**समिधानम्**) प्रदीप्त (**अग्निम्**) जाठराग्नि को हम कल्याणार्थ समझें।

भावार्थः—उषायें रोगों से रहित रहें, अग्नियें ज्योति से युक्त रहें और प्राण तथा अपान शरीर में युक्त हो उसे चलाते रहें। जाठराग्नि के कार्य को हम जानें ॥६॥

श्रेष्ठं नो अद्य सवितर्वरेण्यं भागमा सुव स हि रत्नधा असि ।
रायो जनित्रीं धिषणामुप ब्रुवे स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ॥७॥

पदार्थः—(**सवितः**) सूर्य (**नः**) हमारे लिए (**अद्य**) रोज (**वरेण्यम्**) वरणीय (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**भागम्**) सेवनीय धन आदि को (**आसुव**) प्रेरित करता है, (**सः**) वह (**हि**) ही (**रत्नधाः**) समस्त प्रकाशों का देने वाला (**असि**) है मैं (**रायः**) धन को उत्पन्न करने वाली (**धिषणाम्**) बुद्धि और वेदवाणी की (**उप ब्रुवे**) प्रशंसा करता हूं (**समिधानम्**) सभी भूतों में प्रदीप्त भूतपति (**अग्निम्**) अग्नि को (**स्वस्ति**) कल्याण के लिए (**ईमहे**) जानें।

भावार्थः—सूर्य प्रतिदिन हमें श्रेष्ठ धन आदि पदार्थ प्रदान करता है। वह समस्त प्रकाशों का दाता है। धन को देने वाली बुद्धि और वेद-वाणी की मैं प्रशंसा करता हूं। हम समस्त प्राणियों में प्रदीप्त भूतपति अग्नि को जानें ॥७॥

Scanned by CamScanner

पिपर्तु मा तदृतस्य प्रवाचनं देवानां यन्मनुष्या३ अमन्महि ।
विश्वा इदुस्राः स्पळुदेति सूर्यः स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ।।८।।

पदार्थः –(**तत्**) उस (**ऋतस्य**) सृष्टिनियम के एवम् (**देवानाम्**) देवों सम्बन्धी (**प्रवाचनम्**) ज्ञानोपदेश को (**यत्**) जिसे (**मनुष्याः**) हम मनुष्य लोग (**अमन्महि**) ज्ञान प्राप्त करते हैं, (**मा**) मुझे (**पिपर्तु**) रक्षित और पालित रखें, (**सूर्यः**) सूर्य (**विश्वाः इत्**) सारी ही (**उस्राः**) उषाओं को (**स्पट्**) स्पर्श करता हुआ (**उदेति**) उदित होता है। हम सूर्य की किरणों में दीप्त अग्नि के ताप और आकर्षण को जानें।

भावार्थः - सृष्टि के नियम और देवों सम्बन्धी ज्ञानोपदेश जिनको मनुष्य मात्र चाहते हैं हमारी रक्षा करें। सूर्य सारी ही उषाओं को स्पर्श करता हुआ उदित होता है। हम सूर्य की किरणों में विद्यमान ताप और आकर्षण की शक्ति को जानें ।।८।।

अद्वेषो अद्य बर्हिषः स्तरीमणि ग्राव्णां योगे मन्मनः साध ईमहे ।
आदित्यानां शर्मणि स्था भुरण्यसि स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ।।९।।

पदार्थः - (**अद्य**) रोज ही (**बर्हिषः**) अन्तरिक्ष के (**स्तरीमणि**) विस्तृत स्तर वा विस्तार में, (**ग्राव्णाम्**) विद्वानों के (**योगे**) सहवास में (**मन्मनः**) मनोरथ की (**साधे**) सिद्धि के समय में हम (**अद्वेषः**) कल्याणकारी (**आदित्यान्**) द्वादश मासों को (**ईमहे**) जानें और हे मनुष्य ! (**आदित्यानाम्**) इन बारह आदित्यों के सम्बन्ध से होने वाले (**शर्मणि**) सुख में (**स्थाः**) स्थित हो और (**भुरण्यसि**) लाभ प्राप्त कर।

भावार्थः – प्रतिदिन आकाश में, विद्वानों के सम्पर्क में और मनोरथ की सिद्धि में कल्याणकारी बारह आदित्यों के योग दान को हम जानें। हे मनुष्य ! तू उनके द्वारा प्रदत्त सुख में स्थित हो और उनका लाभ उठा। महीनों ऋतुओं के परिवर्त्तन में कारणभूत अग्नि को भी जानें ।।९।।

आ नो बर्हिः सधमादे बृहद्दिवि देवाँ ईळे सादया सप्त होतॄन् ।
इन्द्रं मित्रं वरुणं सातये भगं स्वस्त्य१ग्निं समिधानमीमहे ।।१०।।

पदार्थः —(**नः**) अपने (**बर्हिः**) यज्ञ में जो (**सधमादे**) सब देवों का सहस्थान है, (**बृहद्दिवि**) महान् आकाश में स्थित (**देवान्**) देवों, (**सप्त होतॄन्**)

सप्त यज्ञ के ऋत्विजों को अग्नि (आ सादय) प्राप्त कराता है, (इन्द्रम्) इन्द्र = वायु, (मित्रम्) सूर्य, (वरुणम्) जल और (भगम्) पूषा की (सातये) सुखादि की प्राप्ति के लिये (ईडे) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हमारे यज्ञों में अग्नि अपने माध्यम से आकाश में स्थित देवों को जो दैवी पदार्थ है और सात होताओं को हमें प्राप्त कराता है। इन्द्र, मित्र, वरुण और भग आदि की मैं धन की प्राप्ति के लिए प्रशंसा करता हूं अर्थात् उनके गुणों और कार्यों का वर्णन करता हूं ॥१०॥

त आ॑दि॒त्या आ ग॑ता स॒र्वता॑तये वृ॒धे नो॑ य॒ज्ञम॑वता सजोषसः ।
बृह॒स्पतिं॑ पू॒षण॑म॒श्विना॒ भगं॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे ॥११॥

पदार्थः—(ते) वे (आदित्याः) बारह आदित्य (सजोषसः) संगत हुए (सर्वतातये) यज्ञ के लिये (आ गत) प्राप्त होते हैं (नः) हमारी (वृधे) वृद्धि के लिये (यज्ञम्) यज्ञ की (अवत) रक्षा करते हैं, (बृहस्पतिम्) वाणी का पति मेघ, (पूषणम्) पोषक वायु, (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (भगम्) भग=प्रकाश और (समिधानम्) प्रदीप्त (अग्निम्) अग्नि को (स्वस्ति) कल्याण के लिये (ईमहे) जानें ।

भावार्थ—:द्वादश आदित्य आदि दैवी शक्तियां हमारे यज्ञों में आती हैं हमारी वृद्धि के लिए यज्ञ की रक्षक बनती हैं। बृहस्पति, पूषा, अश्विनी भग और अग्नि=विद्युत् आदि सभी के कार्य और रहस्य को हमें जानना चाहिए ॥११॥

तन्नो॑ देवा यच्छत सुप्रवाच॒नं छ॒र्दिरा॑दित्याः सु॒भरं॑ नृ॒पाय्य॑म् ।
पश्वे॑ तो॒काय॒ तन॑याय जी॒वसे॑ स्व॒स्त्य१॒॑ग्निं स॑मिधा॒नमी॑महे ॥१२॥

पदार्थः—(आदित्य देवाः) हे आदित्य संज्ञक विद्वज्जन ! आप लोग (तत्) वह (सुप्रवाचनम्) प्रशस्त, (सुभरम्) सुसमृद्ध (नृपाय्यम्) मनुष्यों के रक्षक (छर्दिः) गृह (नः) हमें (पश्वे) पशु, (तोकाय) पुत्र (तनयाय) पौत्र और (जीवसे) जीवन के लिये (यच्छत) दें, (समिधानम्) यज्ञ में प्रदीप्त (अग्निम्) अग्नि को (स्वस्ति) कल्याणार्थ हम (ईमहे) धारण करते हैं वा प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—हे आदित्य संज्ञक विद्वज्जन ! आप लोग हमें पशु, पुत्र, पौत्र और जीवन की प्राप्ति के लिए समृद्ध, प्रशस्त और मनुष्यों का रक्षक

गृह प्रदान करें। हम यज्ञ में अग्नि को अपने कल्याणार्थ प्रदीप्त करते हैं और उसका लाभ जानते हैं॥१२॥

विश्वे अद्य मरुतो विश्व ऊती विश्वे भवन्त्वग्नयः समिद्धाः ।

विश्वे नो देवा अवसा गमन्तु विश्वमस्तु द्रविणं वाजो अस्मे ॥१३॥

पदार्थः—परमेश्वर की कृपा से (**अद्य**) सदा (**विश्वे**) सारे (**मरुतः**) मरुद्गण, (**विश्वे**) सारे रुद्र आदि, (**समिद्धाः**) प्रदीप्त (**अग्नयः**) अग्नियें (**ऊती**) हमारी रक्षा के लिये (**भवन्तु**) होवें, (**विश्वे देवाः**) समस्त यज्ञ देव (**अवसा**) रक्षण से (**नः**) हमें (**आगमन्तु**) प्राप्त हों, (**अस्मे**) हमें (**विश्वम्**) सब (**द्रविणम्**) धन और (**वाजः**) अन्न (**अस्तु**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—परमेश्वर की कृपा से सदा सारे मरुद्गण, रुद्र प्रदीप्त अग्नियें हमारी रक्षक रहें। समस्त यज्ञ देव अपनी रक्षा हम पर रखें। हमें सब प्रकार का धन और अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हो॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं त्रायध्वे यं पिपृथात्यंहः ।

यो वो गोपीथे न भयस्य वेद ते स्याम देववीतये तुरासः ॥१४॥

पदार्थः—(**देवासः**) हे विद्वज्जन !, (**वाजसातौ**) संग्राम, भोग और ज्ञान आदि की प्राप्ति के अवसर पर (**यम्**) जिसकी (**अवथ**) रक्षा करते हो और (**यम्**) जिसको कष्ट आदि से (**त्रायध्वे**) बचाते हो (**यम्**) जिसको (**अंहः**) पाप से (**अति पिपृथ**) बचाते हो (**यः**) जो (**वः**) आप के (**गोपीथे**) रक्षण में (**भयस्य**) भय नहीं प्राप्त करता है (**ते**) वे हम (**तुरासः**) शीघ्रकारी जन (**देववीतये**) देवत्व की प्राप्ति के लिये (**स्याम**) समर्थ हों।

भावार्थः—हे विद्वज्जन ! सभी व्यवहारों में आप जिसकी रक्षा करते हो वह आप के रक्षण में रहकर भय का नाम भी नहीं जानता। आप बुराई से बचाते हो। हम आप के सहयोग से देवत्व प्राप्त करने में समर्थ हों॥१४॥

यह दशम मण्डल का पंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—३६

ऋषिः—१—१४ लुशो धानाकः ॥ **देवता**—विश्वेदेवाः ॥ **छन्दः** —१, २, ४, ६—८, ११ निचृद्जगती । ३ विराड्जगती । ५, ९, १० जगती । १२ पादनिचृज्जगती । १३ त्रिष्टुप् । १४ स्वराट्त्रिष्टुप् । **स्वरः** —१—१२ निषादः । १३, १४ धैवतः ॥

उषासानक्ता बृहती सुपेशसा द्यावाक्षामा वरुणो मित्रो अर्यमा ।
इन्द्रं हुवे मरुतः पर्वताँ अप आदित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥

पदार्थः—(**बृहती**) महती (**सुपेशसा**) सुरूप (**उषासानक्ता**) उषा और रात्रि, (**द्यावक्षामा**) द्यु और पृथिवी, (**वरुणः**) वरुण=जल (**मित्रः**) सूर्य, (**अर्यमा**) वायु इत्यादि, (**इन्द्रम्**) विद्युत्, (**मरुतः**) मरुद्गण (**पर्वतान्**) मेघ, (**अपः**) किरणें, (**आदित्यान्**) आदित्य गण, (**द्यावा पृथिवी**) प्राण और उदान (**अपः**) अन्तरिक्ष (**स्वः**) प्रकाशमान नक्षत्र लोक आदि की मैं (**हुवे**) प्रशंसा करता हूँ ।

भावार्थः—रात्रि और उषा, द्यु और पृथिवी सूर्य, वायु, जल, मेघ किरणें, आदित्य, मरुद्गण, प्राण और उदान, अन्तरिक्ष, प्रकाश लोक आदि को जानना चाहिए और उनके गुणों का यथावत् वर्णन कर लाभ उठाना चाहिए ॥१॥

द्यौश्च नः पृथिवी च प्रचेतस ऋतावरी रक्षतामंहसो रिषः ।
मा दुर्विदत्रा निर्ऋतिर्न ईशत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥२॥

पदार्थः—(**प्रचेतसा**) ज्ञान की विषयभूत (**ऋतावरी**) जलों से पूर्ण, (**द्यौः च पृथिवी च**) सूर्य और भूमि आदि (**नः**) हमें (**रिषः**) रोग आदि हिंसक (**अंहसः**) बुराइयों से (**रक्षताम्**) बचावें, (**दुर्विदत्रा**) कुत्सित (**निर्ऋतिः**) विपत्ति (**नः**) हमारे ऊपर (**मा**) मत (**ईशत**) शासन करे (**तत्**) इस लिए हम (**अद्य**) सदा (**देवानाम्**) इन दिव्य पदार्थों द्वारा होमे वाले (**अवः**) रक्षण को स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः—जानने योग्य, जलों से पूर्ण सूर्य भूमि आदि हमें हिंसक रोग आदि बुराइयों से बचावें । कुत्सित विपत्ति के हम अधीन न हों । इस लिए इन दिव्य पदार्थों के रक्षण को हम स्वीकार करें और करते हैं ॥२॥

Scanned by CamScanner

विश्वस्मान्नो अदितिः पात्वंहसो माता मित्रस्य वरुणस्य रेवतः ।
स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥३॥

पदार्थः – (**रेवतः**) धन के देने वाले (**मित्रस्य**) सूर्य और (**वरुणस्य**) जल अथवा प्राण और अपान की (**माता**) माता (**अदितिः**) प्रकाश शक्ति अथवा प्रकृति (**नः**) हमें (**विश्वस्मात्**) समस्त (**अंहसः**) रोग आदि बुरी वस्तुओं से (**पातु**) बचावें, (**अवृकम्**) बाधारहित, (**स्वर्वत्**) सर्व (**ज्योतिः**) तेज को हम (**नशीमहि**) प्राप्त करें (**तत्**) इस लिए (**अद्य**) सदा हम (**देवानाम्**) दिव्य पदार्थों के (**अवः**) रक्षण को (**वृणीमहे**) स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः – धन के दाता सूर्य और जल अथवा प्राण अपान की माता प्रकाशशक्ति वा प्रकृति रोग आदि बुरी वस्तुओं से हमें बचावें । हम बाधा-रहित तेज को प्राप्त करें । इस लिए हम दिव्य शक्तियों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥३॥

ग्रावा वदन्नप रक्षांसि सेधतु दुष्वप्न्यं निर्ऋतिं विश्वमत्रिणम् ।
आदित्यं शर्म मरुतामशीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः - (**ग्रावा**) वज्र – विद्युत् (**वदन्**) गर्जती हुई (**रक्षांसि**) दुःखदायी रोगजनक कीटों का (**अपसेधतु**) निवारण करे, (**दुःस्वप्न्यम्**) सोने में बाधक, (**निर्ऋतिम्**) कष्ट दायक, (**विश्वम्**) सभी (**अत्रिणम्**) कृमियों को नष्ट करें, हम (**आदित्यम्**) सूर्य सम्बन्धी (**मरुताम्**) वायु सम्बन्धी (**शर्म**) सुख को (**अशीमहि**) प्राप्त करें वा भोगें । इसलिए देवों सम्बन्धी रक्षण को हम स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः—विद्युत् गरजते हुए समस्त रोगदायक कीटों, सोना हराम करने वाले, कष्टदायक, कृमियों को नष्ट करती है । हम सूर्य और वायु से प्राप्त होने वाले सुख को भोगें । इस लिए देवों सम्बन्धी रक्षण को हम स्वीकार करते हैं ॥४॥

एन्द्रो बर्हिः सीदतु पिन्वतामिळा बृहस्पतिः सामभिर्ऋक्वो अर्चतु ।
सुप्रकेतं जीवसे मन्म धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥५॥

पदार्थः –(**इन्द्रः**) वायु (**बर्हिः**) अन्तरिक्ष में (**आ सीदतु**) स्थिति रखे, (**इडा**) विद्युत् रूपी वाणी (**पिन्वताम्**) वृष्टि से पूर्ण करें, (**सामभिः**) सामों से

Scanned by CamScanner

(ऋक्वः) प्रशस्त (बृहस्पतिः) विद्वान् (अर्चतु) भगवान् की अर्चना करें (जीवसे) जीवन के लिए । सुप्रकेतम्) सुप्रज्ञान (मन्म मति को (धीमहि) धारण करें ।

भावार्थः वायु अन्तरिक्ष में अपनी स्थिति रखे । बिजली वृष्टि से पूर्ण करें । प्रशस्त वेदविद्वान् साम से भगवान् का गान करें । हम जीवन के लिये ज्ञानयुक्त मति को धारण करें । इस लिये हम देवों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥५॥

दिविस्पृशं यज्ञमस्माकमश्विना जीराध्वरं कृणुतं सुम्नमिष्टये ।
प्राचीनरश्मिमाहुतं घृतेन तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥६॥

पदार्थः (अश्विना) अग्नि और वायु (अस्माकम्) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (दिविस्पृशम्) द्युलोक पर्यन्त पहुंचने वाला (जीराध्वरम्) सूक्ष्म गति और हिंसा रहित (कृणुतम्) करते हैं और (इष्टये) अभीष्ट के लिए (सुम्नम्) सुखकर करते हैं, (घृतेन) घृतसे युक्त (आहुतम्) हवन किये पदार्थ को (प्राचीनरश्मिम्) सूर्य की ओर जाने वाला (कृणुतम्) करते हैं ।

भावार्थः- अग्नि और वायु हमारे यज्ञ को द्युलोक पर्यन्त फैलने वाला सूक्ष्मगति और हिंसा रहित करते हैं । हमारे अभीष्ट के लिये सुखकारी करते हैं और घृत से युक्त हवन कृत पदार्थ को सूर्य तक पहुंचाने वाला करते हैं । इसलिये हम देवों के रक्षण को स्वीकार करते हैं॥६॥

उप ह्वये सुहवं मारुतं गणं पावकमृष्वं सख्याय शंभुवम् ।
रायस्पोषं सौश्रवसाय धीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥७॥

पदार्थः (सुहवम्) शब्द को अच्छी तरह दूर तक पहुँचाने वाले, अथवा उत्तम शब्द-तरगों वाले, (पावकम्) गतिशील (ऋष्वम्) दर्शन के साधनभूत, (शंभुवम्) सुख देने वाले (रायः) धन के (पोषम्) पोषक (सख्याय) उनके साथ जानकार होने वा उनकी मैत्री करने के लिए (मारुतम्) उनचास मरुतों के संघ की (उपह्वये) प्रशस्ति करता हूँ । तथा (सौश्रवसाय) उत्तम यश के लिए हम (धीमहि) बुद्धि में धारण करते हैं । इसलिए हम देवों के रक्षण को स्वीकार करते हैं ।

भावार्थः—उत्तम यश और अन्न आदि की प्राप्ति के लिये हमें कल्याणकारी शब्द-संतान के विस्तारक मरुद्गण का ज्ञान प्राप्त करना

Scanned by CamScanner

चाहिए और बुद्धि में धारण कर उससे लाभ उठाना चाहिये । इसलिये हम देवों सम्बन्धी रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥७॥

अपां पेरुं जीवधन्यं भरामहे देवाव्यं सुहवमध्वरश्रियम् ।
सुरश्मिं सोममिन्द्रियं यमीमहि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥८॥

पदार्थ—(**अपाम्**) जलों के (**पेरुम्**) पालक, (**जीवधन्यम्**) जीवों के कल्याण वाले, (**देवाव्यम्**) समस्त देव और मनुष्यों के तृप्तिकारक, (**सुहवम्**) प्रशंसनीय (**अध्वरश्रियम्**) आकाश की शोभा, (**सुरश्मिम्**) उत्तम रश्मियों वाले (**सोमम्**) चन्द्रमा को (**भरामहे**) हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं (**इन्द्रियम्**) मन आदि इन्द्रियों की शक्ति को (**यमीमहि**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—जलों के पालक जीवों के लिए सुखकर समस्त देवों और मनुष्यों के लिए तृप्तिकारक आकाश की शोभा चन्द्र को हम अपनी बुद्धि में धारण करते हैं । उससे मन आदि इन्द्रियों में बल प्राप्त करते हैं । इस लिए हम देवों के संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥८॥

सनेम तत्सुसनिता सनित्वभिर्वयं जीवा जीवपुत्रा अनागसः ।
ब्रह्मद्विषो विष्वगेनो भरेरत तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—(**अनागसः**) निरपराध, (**जीवपुत्राः**) जीवित पुत्रों वाले, (**जीवाः**) स्वयं जीवित रहते हुए (**वयम्**) हम (**सनित्वभिः**) दानशील पुरुषों सहित (**सुसनिता**) शोभन स्तुति से (**तत्**) उस प्रभु की (**सनेम**) भक्ति करें (**ब्रह्मद्विषः**) ज्ञान और भगवान् के द्वेषी (**एनः**) पाप को (**विष्वक्**) सब प्रकार से (**भरेरत**) भोगें ।

भावार्थः—निरपराध, जीवनधारी, जीवित पुत्रों वाले हम दानशील अथवा भगवान् की भक्ति करने वालों के साथ श्रद्धापूर्वक भगवान् की भक्ति करें । ज्ञान का द्वेषी अपने पापों के फल भोगें । इसलिए हम देवों सम्बन्धी संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥९॥

ये स्था मनोर्यज्ञियास्ते शृणोतन यद्वो देवा ईमहे तद्ददातन ।
जैत्रं क्रतुं रयिमद्वीरवद्यशस्तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१०॥

पदार्थ—हे विद्वान् पुरुषो ! (**ये**) जो (**मनोः**) परमेश्वर की (**यज्ञियाः**)

पूजा में तत्पर (स्थ) हो (ते) वे आप लोग (शृणोतन:) सुनें (देवाः) हे विद्वज्जन ! (वः) आप लोगों से (यत्) जो (ईमहे) हम चाहते हैं (तत्) उसे (वधातन) दें (जेत्रम्) परिस्थितियों पर विजय कराने वाले (क्रतुम्) बुद्धिबल और कर्म दें, (रयिमत्) धनवाला, (वीरवत्) पुत्र आदि से युक्त (यशः) यश दें।

भावार्थः— हे विद्वज्जन ! जो आप लोगों के मध्य भगवान् के उपासक हैं वे सुनें। आप लोगों से जिस ज्ञान आदि को हम चाहते हैं वह हमें दें। हर परिस्थिति पर विजय पाने वाले बुद्धिबल और कार्यकुशलता को हमें दें। धन और पुत्र आदि से युक्त यश को हमें दें। इस लिए हम देवों सम्बन्धी रक्षण को स्वीकार करते हैं ॥१०॥

महदद्य महतामा वृणीमहेऽवो देवानां बृहतामनर्वणाम् ।
यथा वसु वीरजातं नशामहै तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥११॥

पदार्थः—(अद्य) प्रतिदिन हम (महताम्) बड़े (अनर्वणाम्) रक्षःपूर्ण हिंसा रहित, (बृहताम्) महान् (देवानाम्) देवों और विद्वानों के (अवः) संरक्षण को (आ वृणीमहे) स्वीकार करते हैं (यथा) जिससे (वीरजातम्) वीरों से प्राप्य (वसु) धन को (नशामहै) प्राप्त करें।

भावार्थः हम सदा कल्याणकारी यज्ञ के देवों और विद्वानों के रक्षण को स्वीकार करते हैं जिससे हम वीरों से प्राप्य धन को प्राप्त करें। इस कारण हम देवों के संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥११॥

महो अग्नेः समिधानस्य शर्मण्यनागा मित्रे वरुणे स्वस्तये ।
श्रेष्ठे स्याम सवितुः सवीमनि तद्देवानामवो अद्या वृणीमहे ॥१२॥

पदार्थः - (समिधानस्य) प्रदीप्त (महः) महान् (अग्नेः) अग्नि के माध्यम से होने वाले (शर्मणि) सुख में (वयम्) हम (स्याम) हों तथा हम (अनागाः) पाप वाले न हों, (मित्रे) वायु के (वरुणे) जल के, (सवितुः) सूर्य के (श्रेष्ठे) श्रेष्ठ (सवीमनि) रचनात्मक कार्य में (स्वस्तये) कल्याण के लिये (स्याम) हों।

भावार्थः—हम सदा अपराधों से रहित हों। महान् प्रदीप्त अग्नि के द्वारा जो सुख प्राप्त हो सकता है उसे प्राप्त करें। वायु, जल और सूर्य के द्वारा होने वाले रचनात्मक कार्यों में हम सदा कल्याण प्राप्त करें। इसलिए हम देवों सम्बन्धी संरक्षण को स्वीकार करते हैं ॥१२॥

Scanned by CamScanner

ये सवितुः सत्यसवस्य विश्वे मित्रस्य व्रते वरुणस्य देवाः ।
ते सौभगं वीरवद्गोमदप्नो दधातन द्रविणं चित्रमस्मे ॥१३॥

पदार्थः––(**ये**) जो (**विश्वे देवाः**) विश्व देव गण (**सत्यसवस्य**) सत्यनियम के उत्पादक (**सवितुः**) सर्वोत्पादक, (**मित्रस्य**) सबके मित्र, (**वरुणस्य**) वरणीय परमेश्वर के (**व्रते**) नियम पर अपना कार्य करते हैं (**ते**) वे (**यूयम्**) ये (**सौभगम्**) सौभाग्य, (**वीरवद्**) पुत्रादि से युक्त, (**गोमम्**) गौ आदि से युक्त, (**चित्रम्**) महत्त्वपूर्ण, (**द्रविणम्**) धन (**अप्नः**) कर्म (**अस्मे**) मुझे (**दधातन**) दें ।

भावार्थः विश्व के उत्पत्तिकर्त्ता, सबके मित्र, वरणीय और सत्य-नियम के उत्पादक परमेश्वर के नियम पर जो विश्वेदेव चलते हैं वे मुझे पुत्र, गौ आदि से युक्त उत्तम धन और कर्म को दें ॥१३॥

सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात् ।
सविता नः सुवतु सर्वतातिं सविता नो रासतां दीर्घमायुः ॥१४॥

पदार्थः—(**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**पुरस्तात्**) हमारे आगे है, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक वही प्रभु (**पश्चातात्**) हमारे पीछे दिशा में है, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**उत्तरात्तात्**) हमारे उत्तर में है, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**अधरात्तात्**) नीचे की दिशा में है (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक प्रभु (**नः**) हमें (**सर्वतातिम्**) अभिलषित (**सुवतु**) दें, (**सविता**) सर्व जगत् का उत्पादक वह प्रभु (**नः**) हमें (**दीर्घम्**) लम्बी (**आयुः**) आयु (**रासताम्**) प्रदान करें ।

भावार्थः—सर्व जगत् का उत्पत्तिकर्त्ता परमेश्वर हमारे सामने, पीछे, उत्तर, दक्षिण, नीचे की दिशाओं में विद्यमान होकर सर्वत्र व्यापक हो रहा है । वह हमारे अभिलषित को हमें दे और हमें लम्बी आयु दे ॥१४॥

यह दशम मण्डल का छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ३७

ऋषिः—१—१२ अभितपाः सौर्यः ॥ **देवता**— सूर्यः ॥ **छन्दः**—१—५ निचृज्जगती। ६—६ विराड्जगती। ११, १२ जगती। १० निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः** – १—६, ११, १२ निषादः। १० धैवतः ॥

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतं सपर्यत।
दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्याय शंसत ॥१॥

पदार्थः—हे ऋत्विग्जन ! आप लोग (**मित्रस्य**) वायु (**वरुणस्य**) जल के (**चक्षसे**) प्रकाशक (**महः**) महान् (**देवाय**) दीप्ति युक्त (**दूरेदृशे**) दूर दिखाई पड़ने वाले, (**देवजाताय**) किरणों के दाता, (**केतवे**) सबके प्रज्ञापक (**दिवस्पुत्राय**) प्रकाश के पुत्र (**सूर्याय**) सूर्य के लिये (**नमः**) अन्न आदि की हवि (**सपर्यत**) दो और (**शंसत**) उसके गुणों को कहो।

भावार्थः—हे ऋत्विजो ! वायु, जल आदि के प्रकाशक महान्, सब पदार्थों के प्रज्ञापक प्रकाश के पुत्र सूर्य को जानो और अन्न आदि की हवि अग्नि में उसके लिए यज्ञ के समय डालो ॥१॥

सा मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।
विश्वमन्यन्नि विशते यदेजति विश्वाहापो विश्वाहोदेति सूर्यः ॥२॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिसके आधार पर (**द्यावा**) द्यु और भूमि (**च**) और (**अहानि**) दिन और रात्रियें (**च**) भी (**आततनन्**) फैले हैं, (**यद्**) जो (**एजति**) चल रहा है वह और (**अन्यत्**) दूसरा (**विश्वम्**) विश्व जो नहीं चल रहा है जिसमें (**निविशते**) प्रविष्ट होता है, (**विश्वाहा**) सदा (**आपः**) जलें बहती है (**विश्वाहा**) सदा (**सूर्यः**) सूर्य (**उदेति**) उदित होता है (**सा**) वह (**सत्योक्तिः**) सत्य वचन (**मा**) मुझे (**परिपातु**) चारों तरफ से रक्षित रखे।

भावार्थः—वह भगवान् और उसकी सत्योक्ति वेदज्ञान हमारी रक्षा करे जिसके आधार पर द्युलोक, पृथिवी, दिन और रात्रि का विस्तार हुआ, जड़ जगत् और जंगम जगत् प्रलयकाल में जिसमें आश्रय पाता है। जिसके आधार पर जलें बहती हैं और जिसके आधार प्रतिदिन सूर्य उदित होता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

न ते अदेवः प्रदिवो नि वासते यदेतशेभिः पतरै रथर्यसि ।
प्राचीनमन्यदनु वर्तते रज उदन्येन ज्योतिषा यासि सूर्य ॥३॥

पदार्थः—(यद्) जब सूर्य (एतशेभिः) अश्वों के समान शीघ्र गामी (पतरैः) किरणों से (रथर्यति) युक्त होता है तथा (ते) उसका कोई भी पदार्थ (प्रदिवः) दिशाओं में (अदेवः) अप्रकाशित (न) नहीं (निवासते) रह जाता है तब (प्राचीनम्) प्राचीन पूर्वस्थ (रजः) लोक (अनुवर्तते) अनुव्रत अर्थात् प्रकाशमान होता है (उत्) और (अन्येन) दूसरे (ज्योतिषा) तेज से (सूर्यः) सूर्य (अन्यद्) दूसरे भाग को (यासि) जाता है।

भावार्थः—जब सूर्य अश्व के समान वेग वाली किरणों से युक्त होता है तथा कोई भी भाग अप्रकाशित नहीं रह जाता तब वह पूर्व दिशा के भाग को प्रकाशित करता है। सायंकाल अपनी दूसरी ज्योति से दूसरे भाग को प्रकाशित करता है॥३॥

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विश्वमुदियर्षि भानुना ।
तेनास्मद्विश्वामनिरामनाहुतिमपामीवामप दुःष्वप्न्यं सुव ॥४॥

पदार्थः—(सूर्य) सूर्य (येन) जिस (ज्योतिषा) ज्योति से (तमः) अन्धकार को (बाधसे) दूर करता है (च) और (भानुना) प्रकाश से (विश्वम्) सब (जगत्) जगत् को (उदियर्षि) प्राप्त होता है (तेन) उसी ज्योति से (अस्मत्) हम से (अनिराम्) जल के अभाव, (अनाहुतिम्) खाद्य अन्न आदि के अभाव को (अमीवाम्) रोग को और (दुष्वप्न्यम्) निद्रा के रोग को (अप सुव) दूर भगाता है।

भावार्थः—सूर्य अपने जिस तेज से अन्धकार को दूर करता है और प्रकाश से सब जगत् को प्राप्त होता है उसी तेज से वह जल, अन्न, नीरोगता आदि को प्रदान करता है॥४॥

विश्वस्य हि प्रेषितो रक्षसि व्रतमहेळयन्नुच्चरसि स्वधा अनु ।
यदद्य त्वा सूर्योपब्रवामहै तं नो देवा अनु मंसीरत क्रतुम् ॥५॥

पदार्थः—हे प्रभो ! तू (प्रेषितः) भक्तों द्वारा जाना वा चाहा गया हुआ, (अहेडयन्) अनादर न करता हुआ (विश्वस्य) समस्त विश्व के

Scanned by CamScanner

(व्रतम्) नियम को (रक्षसि) रक्षा करता है (स्वधाः) विश्व ,की धारणशक्तियों को (अनु उच्चरसि) व्याप्त करता है, (सूर्य) हे लोकों के प्रेरक देव ! (यत्) जब (अद्य) आज (त्वा) आप की (उपब्रवामहै) स्तुति हम करते हैं तो (तम्) इस (नः) हमारे (क्रतुम्) कर्म को (देवाः) विद्वान् लोग (अनुमंसीरन्) स्वीकार करते हैं।

भावार्थः—हे सब जगत् के चालक प्रभो ! भक्तों द्वारा जाना व चाहा गया तू विना किसी अनादर भाव के विश्व के नियम की रक्षा करता है। जगत् की धारक शक्तियों को व्याप्त करता है। आज हम आपकी जो स्तुति करते हैं इस उस हमारे उत्तम कर्म को विद्वान् लोग भी स्वीकार करते हैं ॥५॥

तं नो द्यावापृथिवी तन्न आप इन्द्रः शृण्वन्तु मरुतो हवं वचः ।
मा शूने भूम सूर्यस्य सन्दृशि भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि ॥६॥

पदार्थ—(द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी (आपः) जलें, (इन्द्रः) वायु और (मरुतः) मरुद्गण (नः) हमारी (तम्) उस (हवम्) परमेश्वर के प्रति होने वाली स्तुति (नः) हमारे (तत्) उस (वचः) वचन को (शृण्वन्तु) सबको सुनाने का माध्यम बनें, हम (सूर्यस्य) सूर्य के (संदृशी) देखने में (शूने) शून्य वा दुःख में (मा भूम) न होवें, (भद्रम्) सुखदायी जीवन को (जीवन्तः) जीते हुए (जरणाम्) परिपक्व वृद्धावस्था को (अशीमहि) भोगें।

भावार्थः—द्युलोक, पृथिवी, वायु, मरुद्गण हमारी स्तुति और वाणी को सबसे सुनने का माध्यम बन उन्हें सुनावें। हम सदा सूर्य को देखें और उत्तम जीवन व्यतीत करते हुए परिपक्व वृद्धावस्था का भोग करें ॥६॥

विश्वाहा त्वा सुमनसः सुचक्षसः प्रजावन्तो अनमीवा अनागसः ।
उद्यन्तं त्वा मित्रमहो दिवेदिवे ज्योग्जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥७॥

पदार्थ—(सुमनसः) उत्तम मन वाले, (सुचक्षसः) उत्तम-उत्तम दृष्टियों से युक्त, (प्रजावन्त) सन्तान आदि से युक्त, (अनमीवाः) नीरोग, (अनागसः) निरपराध और (ज्योग्जीवाः) लम्बे काल तक जीने वाले हम (विश्वाहा) सर्वदा (दिवे दिवे) प्रति दिन (त्वा त्वा) इस इस (उद्यन्तम्) उदय होते हुए, (मित्रमहः) मित्रों के पूज्य (सूर्यम्) सूर्य को (प्रतिपश्येम) देखें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—उत्तम मन वाले, अच्छी दृष्टि वाले, सन्तानों वाले, नीरोग, निरपराध, और लम्बी आयु वाले हम सर्वदा उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य को देखें ॥७॥

महि ज्योतिर्बिभ्रतं त्वा विचक्षण भास्वन्तं चक्षुषेचक्षुषे मयः।
आरोहन्तं बृहतः पाजसस्परि वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य ॥८॥

पदार्थः—(**जीवाः**) चिरजीवी हम (**महि**) महत् (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**बिभ्रतम्**) धारण करने वाले, (**विचक्षण**) सबको देखने वाले (**भास्वन्तम्**) प्रकाशमान (**चक्षुषे चक्षुषे**) प्रत्येक नेत्र में (**मयः**) सुखकर ज्योति देने वाले (**बृहतः**) महान् (**पाजसः**) बलशाली काल के (**परि**) ऊपर (**आरोहन्तम्**) चढ़ते हुए (**सूर्य**) सूर्य को (**वयम्**) हम (**प्रतिपश्येम**) देखें।

भावार्थः—लम्बी आयु वाले हम महान् दीप्ति वाले, सबको दिखाने वाले, प्रत्येक नेत्र में ज्योति देने वाले, शक्तिशाली काल पर आरोहण करने वाले सूर्य को देखें ॥८॥

यस्य ते विश्वा भुवनानि केतुना प्र चेरते नि च विशन्ते अक्तुभिः।
अनागास्तेन हरिकेश सूर्याह्नाह्ना नो वस्यसावस्यसोदिहि ॥९॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस (**ते**) उस सूर्य के (**केतुना**) व्यक्त करने वाले प्रकाश वा प्रज्ञान से (**विश्वा**) समस्त (**भुवनानि**) लोक (**प्र च ईरते**) चलते हैं (**च**) और (**अक्तुभिः**) धारण आकर्षण शक्ति से (**निविशन्ते**) अपनी सीमा में स्थित होते हैं ऐसा वह (**हरिकेश**) हरित वर्ण प्रकाश से युक्त (**सूर्यः**) सूर्य (**अनागस्तेन**) निर्दोषता (**वस्यसावस्यसा**) श्रेयस्कर (**अह्न अह्ना**) दिन और अनुदिन से (**नः**) हमें (**उदिहि**) उदित दिखाई पड़े।

भावार्थः—सूर्य के व्यक्त शक्ति से समस्त भुवन चलते हैं और धारण आकर्षण से अपनी मर्यादा में ठहरते हैं। वह सूर्य श्रेयस्कर निर्दोष दिनों के साथ हमें दिखाई पड़े ॥९॥

शं नो भव चक्षसा शं नो अह्ना शं भानुना शं हिमा शं घृणेन।
यथा शमध्वञ्छमसद्दुरोणे तत्सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् ॥१०॥

पदार्थः—सूर्य (**चक्षसा**) तेज से, (**नः**) हमें (**शम्**) कल्याणकारी (**भव**) होवे, (**अह्ना**) दिन से (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकर होवे। (**भानुना**) तेज से (**नः**) हमें (**शम्**) कल्याणकारी होवे, (**हिमा**) ऋतु से (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकर हो, (**घृणेन**) उष्णता से (**नः**) हमें (**शम्**) सुखकर होवे, (**यथा**) जिससे (**नः**) हमें (**अध्वन्**) मार्ग में (**शम्**) सुख (**असत्**) हो, (**दुरोणे**) घर में सुख होवे (**तत्**) वह (**चित्रम्**) उत्तम (**द्रविणम्**) धन (**धेहि**) देवे।

भावार्थ—सूर्य तेज द्वारा, दिन के द्वारा, किरण वा प्रकाश के द्वारा, ऋतु के द्वारा और उष्णता द्वारा हमें कल्याणकारी होवे तथा हमें वह धन देवे जिससे मार्ग और घर में सर्वत्र सुख मिले ॥१०॥

अस्माकं देवा उभयाय जन्मने शर्म यच्छत द्विपदे चतुष्पदे।
अदत्पिबदूर्जयमानमाशितं तदस्मे शं योररपो दधातन ॥११॥

पदार्थ—(**देवाः**) दिव्य पदार्थ (**अस्माकम्**) हमारे (**उभयाय**) दोनों प्रकार के (**जन्मने**) जन्म वाले (**द्विपदे**) दो पैरों वाले (**चतुष्पदे**) चार पैरों वाले जीवों के लिए (**शर्म**) सुख (**यच्छत**) दे, तथा (**अदत्**) ग्रहण किया जाता हुआ, (**पिबत्**) पिया जाता हुआ (**आशितम्**) खाया गया हुआ (**ऊर्जयमानम्**) बल देने वाला हो, (**अस्मे**) हमें (**अरपः**) निर्दोष (**शंयोः**) सुख (**दधातन**) दें।

भावार्थः - जगत् के दिव्य पदार्थ हमारे दोनों प्रकार के जन्म वाले जीवों अर्थात् दो पैर वाले और चार पैर वाले दोनों को सुख दें। खाया जाता हुआ, पिया जाता हुआ और खाया जा चुका हुआ बल देने वाला हो। हमें ये निर्दोष सुख प्रदान करें ॥११॥

यद्वो देवाश्चकृम जिह्वया गुरु मनसो वा प्रयुती देवहेळनम्।
अरावा यो नो अभि दुच्छुनायते तस्मिन्तदेनो वसवो नि धेतन ॥१२॥

पदार्थः—(**वसवः**) वसु संज्ञक (**देवाः**) हे विद्वान् पुरुषो ! (**वः**) आप लोगों के प्रति हम (**जिह्वया**) वाणी के द्वारा (**यत्**) जो (**गुरु**) भारी (**देवहेडनम्**) देवों की अवहेलना (**चकृम**) करते हैं अथवा करने की इच्छा रखते हैं, (**वा**) अथवा (**मनसः**) मन से (**प्रयुतीः**) अपराध करते हैं वा करने की इच्छा रखते हैं उनसे हमें हटाओ, (**यः**) जो (**नः**) हमारे बीच (**अरावा**) अदानशील (**नः**) हम पर (**अभि**) सब ओर से (**दुच्छुनायते**) कष्ट देना चाहता है (**तस्मिन्**) उसमें (**तत्**) उस (**एनः**) पाप को (**निधेतन**) आरोपित करें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे वसु विद्वानो ! हम वाणी से आपके प्रति जो अवहेलना करते हैं वा करने की इच्छा रखते हैं अथवा मन से जो करते हैं वा करेंगे उनसे हमें हटाओ । जो हमारे मध्य अदानशील है हम पर सब ओर से कष्ट देना चाहता है वा बुरा कर्म करता है उसके उस पाप को उसमें ही आरोपित करें ॥१२॥

यह दशम मण्डल में सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—३८

ऋषिः—१—५ इन्द्रो मुष्कवान् ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ५ निचृज्जगती । २ । पादनिचृज्जगती । ३, ४ विराड्जगती ।। **स्वरः**—निषादः ॥

अ॒स्मिन्न॑ इन्द्र पृत्सु॒तौ यश॑स्वति॒ शिमी॑वति॒ क्रन्द॑सि॒ प्राव॑ सा॒तये॑ ।
यत्र॒ गोषा॑ता धृषि॒तेषु॑ खा॒दिषु॒ विष्व॒क्पत॑न्ति दि॒द्यवो॑ नृ॒षाह्ये॑ ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) यह सूर्य (**अस्मिन्**) इस (**पृत्सुतौ**) अन्न की उत्पत्ति करने वाले, (**यशस्वति**) यश वाले (**शिमीवति**) जल से युक्त अन्तरिक्ष में (**क्रन्दसि**) गर्जता है (**खादिषु**) खा जाने वाली (**धृषितेषु**) ऊष्ण रश्मियों के तापवान् होने पर तथा (**गोषाता**) भूमि पर जल के गिरने के समय में (**सातये**) अन्न आदि की प्राप्ति के लिए (**नः**) हमारी (**प्राव**) रक्षा करता है (**यत्र**) जिसमें (**नृसाह्ये**) मनुष्य को नष्ट कर देने वाले इस इन्द्र-वृत्र युद्ध में (**दिद्यवः**) चमकती हुई बिजलियां (**विष्वक्**) सर्वतः (**पतन्ति**) गिरती हैं ।

भावार्थः—सूर्य अन्तरिक्ष में बादलों के साथ युद्ध में बादल की गरज में गरजता है । वह गर्जना हमें अन्न आदि प्रदान करने के लिए है और इस प्रकार वह हमारी रक्षा करता है । जब पृथिवी पर जल की बूंदें पड़ती हैं तो सूर्य की असह्य किरणें ताप से युक्त हो जाती हैं और इस प्रकार इस युद्ध में बिजलियां गिरती हैं ॥१॥

स नः॑ क्षु॒मन्तं॒ सद॑ने॒ व्यू॑र्णुहि॒ गोअ॑र्णसं र॒यिमि॑न्द्र श्र॒वाय्य॑म् ।
स्याम॑ ते॒ जय॑तः शक्र मे॒दिनो॒ यथा॑ व॒यमु॒श्मसि॒ तद्व॑सो कृधि ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(वसो) वसु (शक्र) शक्तिशाली, (सः) वह (इन्द्रः) सूर्य (नः) हमारे (सदने) गृह में (क्षुमन्तम्) अन्न आदि से युक्त, (गो अर्णसम्) गौ आदि पशुओं को बढ़ाने वाले (श्रवाय्यम्) सबके श्रवण योग्य (रयिम्) धन को (व्युर्णुहि) देवे हम, (जयतः) विजयशील (ते) इस सूर्य के प्रकाश आदि से (मेदिनः) बलवान् होवें (वयम्) हम (यत्) जो (उश्मसि) चाहें (तत्) वह (कृधि) देवे ।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से सबका बसाने वाला शक्तिशाली सूर्य हमारे गृह में अन्न से युक्त और गौ आदि पशुओं का बढ़ाने वाला प्रशस्त धन देवे, हम बलवान् होवें और जो चाहें वह प्राप्त हो ॥२॥

यो नो दास आर्यो वा पुरुष्टुतादेव इन्द्र युधये चिकेतति ।

अस्माभिष्टे सुषहाः सन्तु शत्रवस्त्वया वयं तान्वनुयाम सङ्गमे ॥३॥

पदार्थः—(पुरुष्टुत) बहुतों से स्तूयमान (इन्द्र) हे विद्वन् अथवा राजन्! (यः) जो (दासः) अदानशील उत्तम कर्मरहित मनुष्य, (वा) अथवा (आर्यः) श्रेष्ठ मनुष्य भी (अदेवः) राक्षसी स्वभाव वाला मनुष्य (नः) हमें (युधये) युद्ध के लिए (चिकेतति) प्रवृत्त करे वा आह्वान करे तो (ते) वे (शत्रवः) शत्रु लोग (अस्माभिः) हमारे द्वारा (सुसहाः) भली प्रकार अभिभूत (सन्तु) होवें (त्वया) तुम्हारे द्वारा (वयम्) हम (संगमे) संग्राम में (तान्) उनको (वनुयाम) मारें ।

भावार्थः—हे विद्वन् वा राजन् ! यदि उत्तम कर्मरहित दस्यु कर्मा मनुष्य ! अथवा श्रेष्ठ बलशाली मनुष्य और राक्षसी वृत्ति वाला हमें युद्ध के लिए ललकारे तो ये सभी शत्रु हमारे द्वारा परास्त होवें । आपके सहाय से रण में हम उन्हें मार भगायें ॥३॥

यो दभ्रेभिर्हव्यो यश्च भूरिभिर्यो अभीके वरिवोविन्नृषाह्ये ।

तं विखादे सस्निमद्य श्रुतं नरमर्वाञ्चमिन्द्रमवसे करामहे ॥४॥

पदार्थः—(नृसह्ये) नरों के द्वारा लड़े जाने वाले, (विखादे) विशेष विनाश वाले (अभीके) संग्राम में (यः) जो (वरिवोवित्) प्रशंसा पाने योग्य (यः) जो (दभ्रेभिः) थोड़े बलवालों से (हव्यः) बुलाया जाने योग्य है, (यः) जो (भूरिभिः) बहुत बल वालों से (हव्यः) बुलाया जाने योग्य है, (तम) उस (सस्निम) शुचि, (श्रुतम) प्रसिद्ध (नरम) नेता (इन्द्रम) सूर्य सम तेजस्वी

Scanned by CamScanner

राजा को (**अवसे**) रक्षार्थ हम (**अर्वाञ्चम्**) अपने सम्मुख (**करामहे**) करते हैं ।

भावार्थः—मनुष्यों द्वारा लड़े जाने वाले, विनाशकारी संग्राम में जो प्रशंसा पाता और बड़े-छोटे सभी योद्धा जिसको पुकारते हैं उस सूर्यसम तेजस्वी राजा को अपनी रक्षा के लिए अपने समक्ष करते हैं ॥४॥

स्ववृजं हि त्वामहमिन्द्र शुश्रवानानुदं वृषभ रध्रचोदनम् ।
प्र मुञ्चस्व परि कुत्सादिहा गहि किमु त्वावान्मुष्कयोर्बद्ध आसते ॥५॥

पदार्थः—(**वृषभ**) कामनाओं की वर्षा करने वाले (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्य शाली मनुष्य ! (**त्वाम्**) तुझे (**अहम्**) मैं (**स्ववृजम्**) स्वयं सब कष्टों का छेदक, (**अननुदम्**) दूसरों की अपेक्षा न करने वाला (**रध्रचोदनम्**) वशगामियों को उत्तम मार्ग पर चलाने वाला (**शुश्रव**) सुनते हैं (**हि**) इसलिए (**कुत्सात्**) वज्र-सम विपत्तियों से (**परि**) सब तरफ से (**प्रमुञ्चस्व**) बचाओ, (**इह**) हमारे पास यहां (**आ गहि**) आओ (**किमु**) क्या (**त्वावान्**) आप जैसा अन्य कोई (**मुष्कयोः**) अण्डकोषों में (**बद्धः**) बधा हुआ (**आसते**) रह सकता है अर्थात् भोगों में फंसा रह सकता है—कभी नहीं ।

भावार्थः—हे कामनाओं के दाता, बलशाली मनुष्य ! तू स्वयं विपत्तियों को नष्ट करने वाला, दूसरों की अपेक्षा न करने वाला, सब वशगामियों को उत्तम रास्ता दिखाने वाला है । वज्र के समान कष्टों से बचा, हमारे पास आ । क्या तुम जैसा व्यक्ति कभी इन्द्रियों के भोगों में बँधा रह सकता है ? नहीं ॥५॥

यह दशम मण्डल में अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ३९

ऋषिः– १—१४ **घोषा काक्षीवती** ॥ **देवते—अश्विनौ** ॥ **छन्दः**—१, ६, ७, ११, १३ **निचृज्जगती** । २, ८ ९, १२ **जगती** । ३ **विराड्जगती** । ७, ५ **पादनिचृज्जगती** । १० **आर्चीस्वराड्जगती** । १४ **निचृत्त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः**—१—१३ **निषादः** । १४ **धैवतः** ॥

Scanned by CamScanner

यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।

शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**परिज्मा**) सब तरफ जाने वाला, (**सुवृत्**) अच्छी प्रकार विद्यमान (**वाम्**) आप दोनों का (**यः**) जो (**रथः**) रथ (**हविष्मता**) यज्ञ करने वाले के द्वारा (**दोषाम्** रात्रि में **उषसः**) उषाओं में अर्थात् रात्रि और दिन में (**हव्यः**) प्रशंसा का पात्र होता है, (**शश्वत्तमासः**) चिरन्तन (**वयम्**) हम लोग (**वाम्**) आप के (**सुहवम्**) उत्तम शब्द वाले (**तम् उ**) उसको (**पितुः**) पिता के (**इदम्**) इस (**नाम**) नाम (**न**) की तरह (**हवामहे**) पुकारते हैं ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! चारों तरफ जाने वाले आप के जिस रथ की यजमान रात्रिदिन यज्ञ में प्रशंसा करता है उसकी 'पिता का यह नाम है' इस प्रकार हम चिरन्तन लोग भी प्रशंसा करते हैं ॥१॥

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि ।

यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप दोनों हमें (**सूनृताः**) उत्तम वाणी (**प्रेरयतम्**) दो, (**धियः**) बुद्धि से (**पिन्वतम्**) पूर्ण करो, (**उत्**) और (**पुरन्धीः**) प्रज्ञा (**ईरयतम्**) दो (**तत्**) इन तीनों को (**उश्मसि**) हम चाहते हैं, हमें (**यशसम्**) यशस्वी, (**भागम्**) धन का भागी (**कृणुतम्**) कीजिए, (**मघवत्सु**) धनिको अथवा यज्ञशीलों के मध्य (**नः**) हमें (**चारुम्**) उत्तम (**सोमम्**) सोम की (**न**) भांति (**कृतम्**) कीजिए ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप लोग हमें उत्तम वाक्शक्ति, बुद्धि और प्रज्ञा से युक्त करें जिसकी हमें चाह है । हमें यशस्वी और उत्तम धन का भागी करें और धन वालों अथवा यज्ञ वालों के मध्य हमें सोम की भांति करें ॥२॥

अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।

अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा रुतस्य चित् ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप दोनों (**अमाजुरः चित्**) रोग से जीर्ण हुए का (**भगः**) ऐश्वर्य वा प्रकाश (**भवथः**) होते हो, (**अनाशोः चित्**) न खाने वाले अर्थात् अनशन करने वाले के (**अवितारौ**) रक्षक होते हो, (**अपमस्य चित्**) छोटे से छोटे व्यक्ति के भी रक्षक होते हैं, (**अन्धस्य चित्**) अन्धे के और (**कृशस्य चित्**) दुर्बल हुए के रक्षक होते हो, (**नासत्या**) हे सत्ताधारी ! (**युवाम्**) आप दोनों को (**इत्**) ही (**रुतस्य चित्**) रोगी (**भिषजा**) औषधोपचार करने वाला (**आहुः**) विद्वज्जन कहते हैं।

भावार्थः—हे वैद्य वैज्ञानिक ! आप दोनों नासत्य=सत्यभूत एवं सत्ता वाले हो। आप रोग से जीर्ण हुए की आशाकिरण अनशनकारी के रक्षक, छोटे से छोटे के रक्षक, अन्धे के रक्षक और कृश के भी रक्षक हैं क्योंकि इन सबका औषधोपचार आप करते हो। आप को रोग से पीड़ित का भिषक् कहा जाता है ॥३॥

युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः ।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या ॥४॥

पदार्थः—हे अश्विना:=वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप दोनों ने (**च्यवानम्**) स्वास्थ्यमें क्षीण होते हुए पुरुष को (**सनयम्**) पुराने (**रथम्**) रथ की (**यथा**) भांति (**पुनः**) फिर (**युवानम्**) युवा (**चरथाय**) व्यवहार करने के लिए (**तक्षथुः**) कर देते हो। (**तौग्र्यम्**) जल को शुद्ध करके बनाये गए जल को (**अद्भ्यः**) साधरण जलों के (**परि**) ऊपर (**निः ऊहथुः**) स्थान देते हो (**विश्वा इत्**) समस्त (**ता**) वे आप के कर्म (**सवनेषु**) आप के रचनात्मक कार्य में (**प्रवाच्या**) कहे जाते हैं।

भावार्थ—हे भिषग् और वैज्ञानिक जैसे बढ़ई पुराने रथ को नूतन कर देता है और वह व्यवहारयोग्य हो जाता है वैसे ही आप क्षीण होते पुरुष को पुनः युवा शक्ति प्रदान करते हो कि वह अपना व्यवहार कर सके। आप शुद्ध किये जल को साधारण जल से अधिक उच्च स्थान देते हो। आप के ये समस्त कार्य रचनात्मक कार्यों में जाने जाते हैं ॥४॥

पुराणा वां वीर्या३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा मयोभुवा ।
ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः–हे अश्विना=भिषग् और वैज्ञानिक (**वाम्**) आप दोनों के (**पुराणा**) पुराने (**वीर्या**) पराक्रम का मैं (**जने**) लोगों में (**प्र ब्रव**) वर्णन करता हूँ, (**अथो हं**) और (**नासत्या**) हे नासत्य आप दोनों (**मयोभुवा**) सुख देने वाले (**भिषजा**) भिषग् (**आसथुः**) हो (**ता**) उन (**वाम्**) आप दोनों को (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिए (**नव्यौ**) स्तुत्य (**करामहे**) बनाते हैं, (**अयम्**) यह (**अरिः**) गमनशील मनुष्य (**यथा**) जिससे (**श्रत्**) सत्य (**दधत्**) धारण करे ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक आप के पुराने पराक्रम को मैं लोगों पर प्रकट करता हूं, और आप सुखदाता भिषग् हो। अपनी रक्षा के लिए हम आप को स्तुत्य समझते हैं और बनाते हैं, जिससे यह गतिशील व्यक्ति श्रद्धा धारण करे ॥५॥

इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् ।
अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**इयम्**) यह मैं रोगिणी (**वाम्**) आप को (**अह्वे**) पुकारती हूँ आप (**मे**) मेरी (**शृणुतम्**) सुनें (**पुत्राय**) पुत्र के लिए (**पितरा**) माता-पिता (**इव**) के समान (**शिक्षतम्**) हमें स्वास्थ्य की शिक्षा दें। (**अनापिः**) अबन्धु (**अज्ञाः**) अकृतज्ञ, (**असजात्या**) विषम और (**अमतिः**) अज्ञात (**अभिशस्तिः**) रोगापदा मुझे आ जाती है (**तस्याः**) उस (**अभिशस्ते**) रोगापदा को (**पुरा**) पहले ही (**अवस्पृतम्**) दूर भगावें।

भावार्थः—रोगिणी स्त्री कहती है कि हे वैद्य और वैज्ञानिक मैं आप को पुकारती हूं। आप मेरी सुनें और जिस प्रकार माता-पिता पुत्र के लिए सब कुछ देते हैं वैसे आप मुझे स्वास्थ्य की शिक्षा और स्वास्थ्य दें। समय-समय पर आ जाने वाली अज्ञात दुःखकारिणी रोगापदा से मुझे उसके आने के पूर्व बचावें ॥६॥

युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् ।
युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरन्धये ॥७॥

पदार्थः—हे अश्विनौ=वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप दोनों (**पुरुमित्रस्य**) सब के मित्र राजा की (**योषणाम्**) संयोग-वियोगकारिणी शक्ति (**शुन्ध्युवम्**) बुद्धि और कर्म करने की शक्ति को (**विमदाय**) विशेष आनन्द के लिए (**रथेन**) रमणीय औषधि आदि साधन से (**न्यूहथुः**) प्राप्त कराते हो (**युवम्**)

आप (वध्रिमत्याः) बन्ध्या स्त्री की (हवम्) पुकार को (अगच्छतम्) सुनते हो, (युवम्) आप (पुरन्धये) शरीर को धारण करने वाली शक्ति को (सुषुवितम्) ऐश्वर्ययुक्त (चक्रथुः) करते हो ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप सब के मित्र राजा की बुद्धिशक्ति को विशेष आनन्द की प्राप्ति के योग्य करते हो औषध आदि के द्वारा । आप स्त्री की भी पुकार सुनते हो और औषधोपचार करते हो । आप शरीर की धारिका शक्ति को ऐश्वर्यमयी बनाते हो ॥७॥

युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः ॥८॥

पदार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (युवम्) आप (जरणाम्) जरावस्था को (उपेयुषः) प्राप्त हुए (कलेः) गणित करने वाले (विप्रस्व) मेधावी मनुष्य को (पुनः) फिर (युवत्) युवावस्था की (वयः) वय से (अकृणुतम्) युक्त कर देते हो, (युवम्) आप (वन्दनम्) स्तुति करने वाले मनुष्य को (ऋश्यदात्) व्याधि के खड्डे से (उत् उपथुः) दूर निकालते हो, (युवम्) आप (विश्पलाम्) प्रजा की रक्षा करने वाली राज्ञी वा स्त्री को (सद्यः) तत्काल (एतवे) चलने और कार्य करने के लिए (कृथः) कर देते हो ।

भावार्थः—हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप जरावस्था को प्राप्त गणितज्ञ अथवा कलाविज्ञ मेधावी मनुष्य को युवावस्था से युक्त करते हो । स्तुति करने वाले भक्त मनुष्य को व्याधि के खड्डे से उबारते हो । राज्ञी वा प्रजा की रक्षा में लगी स्त्री को चलने और कार्य करने की शक्ति देकर योग्य बना देते हो ॥८॥

युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये ॥९॥

पदार्थः—(वृषणा) सुखों की वर्षा करने वाले (अश्विना) हे वैद्य और वैज्ञानिक (युवम्) आप दोनों (गुहा) मस्तिष्क की गुफा में (हितम्) छिपे हुए (ममृवान्सम्) प्राणों का त्याग कराने वाले (रेभम्) ज्वर आदि से होने वाली बकबक को (उत् ऐरयतम्) निकालते हो, (युवम्) आप (सप्तवध्रये) सप्त धातुओं के शरीर में बंधी हुई (अत्रये) वाक् के लिए (तप्तम्) तप्त (उत) भी

(**ऋबीषम्**) जलीय पदार्थ को (**ओमन्वन्तम्**) रक्षात्मक=सुखदायी (**चक्रथुः**) बनाते हो ।

भावार्थः –हे सुखों की वर्षा करने वाले वैद्य और वैज्ञानिक ! आप दोनों मस्तिष्क में चढ़े हुए, प्राणघातक ज्वर आदि से उत्पन्न अधिक बोलने की प्रवृत्ति दूर करते हो और आप सात धातुओं के बने शरीर में बंधी वाक् के लिए गर्म जलीय पदार्थ को सुखदायी बनाते हो । अर्थात् मस्तिष्क ज्वर और वाणी का इलाज करते हो ॥९॥

युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम् ।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥१०॥

पदार्थः (**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**युवम्**) आप (**पेदवे**) ज्ञानी और कर्मठ राजा को (**नवभिः नवती**) निन्यानवे (**वाजैः**) शक्ति से युक्त (**वाजिनम्**) बलशाली (**चर्कृत्यम्**) कार्य करने में समर्थ (**द्रवयत्सखम्**) शरीर को गति प्रदान करने वाली शक्तियों के मित्र, (**हव्यम्**) शरीर की शक्तियों का संग्राहक, (**मयोभुवम्**) सुखकारी (**श्वेतम्**) श्वेत (**अश्वम्**) वीर्य शक्ति को [**वीर्यं वा अश्वः** शतपथ २।१।४।२३] (**नृभ्यः**) मनुष्यों को (**भगन् न**) ऐश्वर्य की भांति (**ददथुः**) प्रदान करते हो ।

भावार्थः –हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप वाजीकरण आदि औषधोपचार प्रक्रिया से ज्ञानी कर्मठ राजा के शरीर ९९ शक्तियों से युक्त, बलदाता, कर्म करने का सामर्थ्य देने वाले, शरीर के गतिशील शक्तियोंके मित्र-भूत, समस्त शारीरिक बलों के धारक सुख देने वाले श्वेत वीर्य पदार्थ को उत्पन्न करते हो । अर्थात् राजा को अश्व के समान बलशाली बनाते हो ॥१०॥

न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

पदार्थः -(**राजानौ**) ज्ञान से दीप्त (**अदिते**) स्वतन्त्र (**सुहवौ**) शुभनामों से युक्त, (**रुद्रवर्त्तनी**) अग्नियों और प्राणों के मार्ग को अपना कर चलने वाले (**अश्विना**) हे वैद्य और वैज्ञानिक (**युवम्**) आप (**यम्**) जिसको (**पत्न्या**) शरीर की पालक शक्ति और श्री के साथ (**पुरोरथम्**) उत्तम शरीर रथवाला

Scanned by CamScanner

(कृणुथः) करते हो (तम्) उसको (कुतश्चन) कहीं से भी (न) न तो (अंहः) पाप व्याधि, (न) न तो (दुरितम्) बुरे रोग और (नकिः) न तो इनसे होने वाला (भयम्) भय ही (अश्नोति) व्याप्त होता है।

भावार्थः - हे वैद्य और वैज्ञानिक ! आप लोग ज्ञान से दीप्त हो। आप शरीरस्थ अग्नियों और प्राणों की गति को देखकर शरीर का इलाज करते हो। आप जिसे उत्तम शरीरवाला शरीर की उत्तम पालक शक्ति से युक्त घोषित करते हो, वह किसी प्रकार की व्याधि और उसके भय से रहित रहता है ॥११॥

आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने विवस्वतः ॥१२॥

पदार्थः—(अश्विना) द्यु और पृथिवी (मनसः) मन से (जवीयसा) वेग वाले (तेन) उस (रथं) प्रकाश चक्र से (यातम्) चलते हैं (यम्) जो (रथम्) प्रकाश चक्र (वाम्) उनके लिए (ऋभवः) किरणों ने (चक्रुः) बनाया है, (यस्य) जिस रथ के (योगे) सम्बन्ध होने पर (दिवः) सूर्य की (दुहिता) पुत्री (उषाः) उषा (जायते) उत्पन्न होती है तथा (विवस्वतः) भास्कर से (उभे) दोनों (अहनी) रात्रि और दिन (सुदिने) उत्तम रूप में उत्पन्न होते हैं।

भावार्थः—द्यु और पृथिवी किरणों द्वारा बनाये गए प्रकाश चक्र से, जो मन से भी वेग वाला है, चलते हैं। उसी के सम्बन्ध होने पर उषा और दिन-रात्रि सूर्य से उत्पन्न होते हैं ॥१२॥

ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसितामभुञ्चतम् ॥१३॥

पदार्थः—(ता) वे (अश्विना) द्यु और पृथिवी (जयुषा) बाधारहित (रथेन) प्रकाश चक्र से (पर्वतम्) पर्वत पर (वर्तिम्) मार्ग को (वि यातम्) प्राप्त करते हैं (शयवे) अन्तरिक्ष में सोने वाले मेघ के लिए (धेनुम्) कड़कमयी वाणी को (अपिन्वतम्) पूरी करते हैं (युवम्) ये दोनों (शचीभिः) वायु की शक्तियों से (वृकस्य चित्) वृक के सदृश मेघ के (आस्यात्) मुख से (अन्तः) अन्दर (ग्रसिताम्) ग्रस्त (वर्तिकाम्) वर्तने वाली जल धारा को (अमुञ्चतम्) छुड़ाते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः— ये द्यु और पृथिवी अपने प्रकाश चक्र से पर्वत पर भी मार्ग प्राप्त करते हैं। अन्तरिक्ष में सोने वाले मेघ के लिए गर्जना उत्पन्न करते हैं और वायु=मरुतों की शक्तियों से मेघ के अन्तराल में ग्रस्त जल धारा को उसके मुख से छुड़ाते हैं ॥१३॥

एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः ॥१४॥

पदार्थः—(**अश्विनौ**) हे वैद्य और वैज्ञानिक ! (**न**) जैसे (**भृगवः**) रथ बनाने वाले (**रथम्**) रथ को बनाते हैं, उसी प्रकार (**एतम्**) इस (**स्तोमम्**) प्रशंसावचन को हम (**वाम्**) आप दोनों के लिए (**अतक्षाम**) उच्चारित करते हैं, (**न**) जैसे (**मर्ये**) युवा मनुष्य में (**योषणाम्**) स्त्री को सौंपा जाता है वैसे ही हम अपने प्रशंसावचन को आप को (**नि अमृक्षाम**) सौंपते हैं, (**न**) जिस प्रकार (**नित्यम्**) नित्य (**तनयम्**) कुल को बढ़ाने वाले (**सूनुम्**) पुत्र को (**दधानाः**) धारण करने वाले माता-पिता उसको साफ स्वच्छ रखकर पालन करते हैं वैसे हम आप की प्रशंसा और पालना करें।

भावार्थः—वैद्य और वैज्ञानिक की हम उसी प्रकार प्रशंसा और पालना करें जिस प्रकार कारीगर रथ को बनाता है, उत्तम स्त्रियें उत्तम युवा पुरुषों को दी जाती हैं और माता पिता पुत्र को पालते हैं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में उन्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४०

ऋषिः—१—१४ घोषा काक्षीवती ॥ **देवते**—अश्विनौ ॥ **छन्दः**—१, ५, १२, १४ विराड्जगती । २, ३, ७, १०, १३ जगती । ४, ६, ११ निचृज्जगती । ६, ८ पादनिचृज्जगती ॥ **स्वरः**—निषादः ॥

रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति ।
प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१॥

पदार्थः—(**नरा**) हे कर्म के नेता अध्यापक और उपदेशक (**वाम्**) आपके (**द्युमन्तम्**) दीप्तिमान (**प्रातर्यावाणम्**) प्रातःकाल के (**प्रति**) यज्ञ के प्रति

Scanned by CamScanner

(**यान्तम्**) जाने वाले (**विश्वम्**) महान् (**विशे विशे**) प्रजा के प्रत्येक व्यक्ति के प्रति (**वस्तो वस्तोः**) प्रतिदिन (**वहमान्**) चलने वाले (**रथम्**) रमणीय शरीर को (**कुह**) कहां पर (**कः ह**) कौन (**धिया**) वस्त्र धन दान आदि कर्म से (**सुविताय**) सुख की प्राप्ति के लिए (**प्रति भूषति**) अलंकृत करता है।

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप सबके नेता हो। दीप्तिमान शरीर जो प्रातः काल यज्ञ आदि में भाग लेता है और प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन जाकर शिक्षा और उपदेश देता है उसे वस्त्र अन्न आदि प्रदान करके कहां कौन अलंकृत करता है । अर्थात् प्रजाजन और राजकीय पुरुषों के अतिरिक्त और कौन ऐसा करेगा ॥१॥

कुहं स्विद्दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोंषतुः ।
को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे स्त्री और पुरुष ! आप दोनों (**दोषा**) रात्रि में (**कुहस्वित्**) कहां रहते हो, (**वस्तोः**) दिन में (**कुह**) कहां रहते हो ? (**अभिपित्वम्**) आगमन (**कुह**) कहां (**करतः**) करते हो ? (**कुह**) कहां पर (**ऊषतुः**) वास करते हो? (**शयुत्रा**) शयन में (**देवरम्**) द्वितीय अर्थात् नियुक्त पति के साथ (**विधवा इव**) विधवा के समान (**सधस्थे**) एक रहने के स्थान में (**मर्यम्**) पति के साथ (**योषा न**) स्त्री के समान (**वाम्**) आप दोनों का(**कः**) कौन (**आकृणुते**) सत्कार करता है ।

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न द्वारा स्त्री पुरुष के रहने, परस्पर व्यवहार, निवास करने और गृहस्थ धर्म पालन करने और विधवा को नियोग की व्यवस्था का वर्णन किया गया है ॥२॥

प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् ।
कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३॥

पदार्थः—(**नरौ**) अच्छे मार्ग पर ले जाने वाले हे अध्यापक और उपदेशक (**कापया**) स्तुति पाठ के द्वारा (**जरणा**) ऐश्वर्य से वृद्ध दो राजा की (**इव**) भांति (**प्रातः**) प्रातः काल में (**जरेथे**) स्तूयमान होते हो, (**वस्तोः वस्तोः**) प्रतिदिन (**यजता**) पूजनीय आप (**गृहम्**) अभिभावक एवं यजमान के घर को (**गच्छथः**) जाते हो, आप दोनों (**कस्य**) यजमान आदि के किस दोष के (**ध्वस्रा**)

Scanned by CamScanner

ध्वंसक (भवथः) होते हो (वा) और (राजपुत्रा इव) राजकुमार और राजकुमारी के समान (कस्य) किस के (सवना) यज्ञ में (प्रव गच्छथः) सम्मिलित होते हो ।

भावार्थ—हे अच्छे मार्ग पर ले जाने वाले अध्यापक और उपदेशक जैसे ऐश्वर्य वृद्ध राजा और राज्ञी की स्तुतिपाठक जन प्रातः स्तुति करते हैं वैसे आप प्रातः स्मरणीय होते हो। प्रतिदिन पूजनीय आप लोग यजमान और अभिभावक के घर जाते हो। आप यजमान आदि के किस दोष को दूर करते हो और राजकुमार और राजकुमारी के समान किस के यज्ञ में सम्मिलित होते हो ॥३॥

युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे ।
युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४॥

पदार्थ—(मृगण्यवः) शिकारी लोग (इव) जिस प्रकार (वारणा मृगा) सिंह-सिंहिनी आदि शिकारों को खाने आदि से बुलाते हैं वैसे ही हम (युवाम्) इन दोनों वायु और सूर्य की (वस्तोः) दिन में (दोषा) रात्रि में (हविषा) हवन की सामग्री से (नि ह्वयामहे) यज्ञ में तारीफ करते हैं (नरा) सबको प्राप्त (युवाम्) ये दोनों (ऋतुथा) ऋतुओं के अनुसार (होत्राम्) आहुति को (जुह्वते) ग्रहण करते हैं तथा (शुभस्पती) वृष्टि के उदक के स्वामी होने से (जनाय) लोगों के लिए (इषम्) अन्न को (वहथः) प्राप्त कराते हैं।

भावार्थः—शिकारी लोग जिस प्रकार सिंह आदि शिकारों को खाने की वस्तु के द्वारा बुलाते हैं वैसे यज्ञ की हवि से हम यज्ञ में प्रतिदिन और प्रति रात्रि सूर्य और वायु की प्रशंसा करते हैं। ये सभी के पास हैं और प्रत्येक ऋतु में हवि को ग्रहण करते हैं तथा वृष्टि के स्वामी होने से लोक के लिए अन्न को प्राप्त कराते हैं ॥४॥

युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा ।
भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥

पदार्थः—(नरा) नेता भूत (अश्विना) हे राजा और पुरोहित ! (परि) चारों तरफ (यती) घूमती हुई मैं (राज्ञः) राजा अथवा दीप्तिमान् मनुष्य की (दुहिता) पुत्री (घोषा) विवाहिता स्त्री (वाम् युवाम्) आप दोनों से (ह) ही (ऊचे) कहती हूँ और (पृच्छे) पूछती हूँ कि (मे) मेरे (अह्ने) दिन के

Scanned by CamScanner

व्यतीत करने के लिए (भूतम्) आप व्यवस्था करो (उत) और (अक्तवे) रात्रि व्यतीत करने की (भवतम्) व्यवस्था करे, (अश्वावते) घोड़े वाले (अर्वते) शक्तिशाली (रथिने) रथ वाले पुरुष के लिए (शक्तम्) मुझे देने में समर्थ हों।

भावार्थः—राजा अथवा साधारण मनुष्य की पुत्री जो विवाहिता स्त्री पति के मर जाने अथवा नपुंसक हो जाने की अवस्था में राजा और पुरोहित से व्यवस्था चाहती है कि उसके रात्रि के निर्वाह और सन्तान उत्पत्ति आदि के लिए योग्य शक्तिशाली पुरुष से नियोग की व्यवस्था करें ।।५।।

युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः ।
युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

पदार्थः— (कवी) हे दूरदर्शी (अश्विना) राजा और विद्वान् आप (कुत्सः न) वज्र के समान हो और (रथम्) रथ पर (परिस्थः बैठते हो (जरितुः) उपासना करने वाली (विशः) प्रजा को (परिनशायथः) प्राप्त होते हो(युवोः) आप लोगों के निमित्त जो (मधु) मधु दिया जाता है (मक्षा) मधुमक्खियें (आसा) मुख से (परि भरत) धारण करती हैं (न) जैसे (योषणा) नारी (निष्कृतम्) संस्कृत मधु को ग्रहण करती है ।

भावार्थः—हे दूरदर्शी राजा और विद्वान् ! आप वज्र के समान दृढ़ हो और भगवान् की उपासना करने वाली प्रजा के पास आप आते-जाते हो । आपके निमित्त दिये जाने वाले मधु को मधुमक्षिका अपने मुख में वैसे धारण करती है जैसे स्त्री संस्कृत किये मधु को लेती है ।।६।।

युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥७॥

पदार्थः—हे (अश्विना) राजा और विद्वन् ! (युवम् ह) आप दोनों (भुज्युम्) लोगों के रक्षक को (उपारथुः) पार लगाते हो, (युवम्) आप (वशम्) अपने वश में आये हुए अथवा वशी पुरुष को पार लगाते हो,(युवम्) आप (शिञ्जारम्) स्तुति करने वाले को (उशनाम्) कमनीय स्तुति सुनने के लिये पार लगाते हो (युवोः) आपकी (सख्यम्) मैत्री को (ररावा) हवि का दाता यजमान (परि आसते) चाहता है, (युवोः) आपके (अवसा) रक्षण से

Scanned by CamScanner

(**अहम्**) मैं आपका अभिभावक (**सुम्नम्**) सुख की (**आचके**) कामना करता हूँ ।

भावार्थः—राजा और विद्वान् ! रक्षक, वशी, स्नातक, यजमान आदि सभी का पार लगाते हैं । उनके सख्य में सबको सुख प्राप्त करना चाहिए ॥७॥

युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम् ॥८॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे राजा और विद्वान् ! (**युवम्**) आप दोनों (**कृशम् ह** दुर्बल की (**उरुष्यथः**) रक्षा करते हो, (**युवम्**) आप (**शयुम्**) सोये हुए की रक्षा करते हो, (**युवम्**) आप (**विधन्तम्**) सेवा करने वाले की तथा (**विधवाम्**) विधवा की रक्षा करते हो, (**युवम्**) आप (**सनिभ्यः**) यज्ञ करने वालों के लिए (**स्तनयन्तम्**) शब्दों से युक्त, (**सप्तास्यम्**) सात द्वार वाले (**व्रजम्**) गोशाले को (**अप ऊर्णुथः**) खोलते हो ।

भावार्थः—हे राजा और विद्वान् ! आप दुर्बल, सोये हुए, सेवा करने वाले तथा विधवा आदि की रक्षा करते हो । आप यज्ञ करने वालों के लिए सात द्वार से युक्त गायों के शब्द से युक्त गोशाला के द्वार को खोल देते हो ॥८॥

जनिष्ट योषा पतयत्कनीनको वि चारुहन्वीरुधो दंसना अनु ।
आस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा अह्ने भवति तत्पतित्वनम् ॥९॥

पदार्थः—(**योषा**) स्त्री (**जनिष्ट**) सन्तान उत्पन्न करती है, (**कनीनकः**) कमनीय कुमार (**पतयत्**) उत्पन्न होता है, (**अस्मै**) इसके लिए (**दंसनाः**) वृष्टि के (**अनु**) अनुकूल (**वीरुधः**) औषधि और लता आदि(**वि अरुहन्**)उत्पन्न होती हैं, (**च**) और (**अस्मै**) इसके लिए (**सिन्धवः**) नदियां (**निवना इव**) नीचे हुई के समान (**आ रीयन्ते**) जल बहाती हैं, (**अह्ने**) दिन के लिए=समय आने पर (**अस्मै**) इसको (**पतित्वनम्**) यौवन (**भवति**) होता है ।

भावार्थः—प्राण और अपान के द्वारा स्त्री रक्षित हुई सन्तान को जन्म देती है । सुन्दर बच्चा उत्पन्न होता है । उसके लिए औषधि और लता आदि बढ़ते हैं, नदियें जल बहाती हैं, समय आने पर वह युवावस्था को प्राप्त करता है ॥९॥

Scanned by CamScanner

जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं दीधियुर्नरः ।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥

पदार्थः—(**ये नरः**) जो पति पत्नियों के (**जीवम्**) जीवन को लक्ष्य में रखकर (**रुदन्ति**) रोते हैं कि ये मरें नहीं और तकलीफ भी न पावें, उन जायावों को (**अध्वरे**) यज्ञ में (**विमयन्ते**) लगाते हैं, (**दीर्घाम्**) बड़े दूर तक फैले हुए (**प्रसितिम्**) बन्धन को (**अनुदीधियुः**) सोचते हैं (**इदम्**) इस(**वामम्**) वननीय=उत्तम अपत्य को (**पितृभ्यः**) माता-पिता के लिए (**सम् एरिरे**) प्रेरित करते हैं (**जनयः**) जायायें (**परिष्वजे**) आलिंगनार्थ (**पतिभ्यः**) अपने पतियों को (**मयः**) सुख देती है ।

भावार्थः—जो पति जायावों के जीवन को उद्देश्य में रखकर कि यह दुःखी वा मृत न होवें, उन पत्नियों को यज्ञ में बैठाते हैं, दूर तक फैले हुए सन्तति के नियम को सोचते हैं। उत्पन्न सुन्दर सन्तान को माता-पिता को देते हैं और जायायें अपने पति को परिष्वजन से सुखी करती हैं ॥१०॥

न तस्य विद्म तदु षु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्याः क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृहं गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे आप्त माता-पिता ! (**यत्**) जो (**युवा**) युवा पुरुष (**युवत्या**) युवती स्त्री के साथ (**योनिषु**) गृहों में (**क्षेति**) निवास करता है, हम अबोध युवा युवती जन (**तस्य**) उसके सम्बन्ध में (**न**) नहीं (**विद्म**) जानते हैं (**तत्**) वह (**उ**) निश्चय से (**सुप्रवोचत**) बताइये (**प्रिय उस्रियस्य**) युवती वधू को प्रेम करने वाले (**वृषभस्य**) वीर्यवर्धक (**रेतिनः**) वीर्यवान् पति के (**गृहम्**) घर को (**गमेम**) जावें (**तत्**) वैसा (**उश्मसि**) चाहती हैं ।

भावार्थः—गृहस्थाश्रम में युवापति और युवती पत्नी के क्या व्यवहार होते हैं इन सब बातों को योग्य माता-पिता वर-वधुओं को जता देवें ॥११॥

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनीवसू न्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत ।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥१२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**वाजिनीवसू**) अन्न और धन वाले, (**शुभस्पती**) विविध पेयों के स्वामी (**अश्विना**) हे स्त्री पुरुषो ! (**वाम्**) आप दोनों को (**सुमतिः**) सुबुद्धि (**आ अगन्**) प्राप्त हो (**हृत्सु**) हृदयों में (**कामाः**) कामनाओं को (**नि अयंसत**) नियन्त्रित रखो (**मिथुना**) दोनों साथ-साथ (**गोपा**) रक्षक (**अभूतम्**) होओ, (**प्रियाः**) प्रिया होकर (**वयम्**) हम (**अर्यमणः**) पति के (**दुर्यान्**) गृहों को (**अशीमहि**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—अन्न और धनों के स्वामी, पेयों के स्वामी स्त्री पुरुषो ! आपको सुबुद्धि प्राप्त हो । हृदयों में कामनायें नियन्त्रित रहें । परस्पर एक-दूसरे के रक्षक रहो । आपके उपदेश से हम स्त्रियें पति के गृह को प्राप्त करें ॥१२॥

ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे ।
कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

पदार्थः—हे आप्त मात-पिता ! (**मन्दसाना**) सुख के देने वाले (**ता**) आप दोनों (**मनुषः**) उत्तम पति के (**दुरोणे**) गृह में (**वचस्यवे**) आपकी प्रशंसा वाले मुझ कन्या के लिए (**सहवीरम्**) सन्तान से युक्त (**रयिम्**) धन (**आ धतम्**) दें । (**शुभस्पती**) शुभ पदार्थों के स्वामी आप (**तीर्थम्**) जल के लिए (**सुप्रपानम्**) उत्तम प्रपा भी (**कृतम्**) बनावें । आप (**पथेस्थाम्**) मार्ग में खड़े (**स्थाणुम्**) वृक्ष के समान (**दुर्मतिम्**) दुर्बुद्धि को (**अपहतम्**) नष्ट करें ।

भावार्थः—हे आप्त माता-पिता ! आप दोनों सुख के देने वाले हो । मेरे लिए उत्तम पति के गृह में सन्ततियुक्त धन दें । पीने के लिए प्रपा बनावें और दुर्मति को रास्ते में आ पड़ने वाले वृक्ष के समान काट दें ॥१३॥

क्व स्विदद्य कतमास्वश्विना विक्षु दस्रा मादयेते शुभस्पती ।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४॥

पदार्थः—(**अश्विना**) हे अध्यापक और उपदेशक ! (**दस्रा**) दर्शनीय और (**शुभस्पती**) शोभन पदार्थों के स्वामी आप दोनों (**अद्य**) आज (**क्व स्वित्**) कहां स्थित हैं ? (**कतमासु**) किन (**विक्षु**) प्रजाजनों में (**मादयेते**) हर्ष प्राप्त करते हैं, (**कः**) कौन (**ईम्**) इन आप दोनों को (**नि येमे**) अपने पास रोकता

Scanned by CamScanner

है, (**कस्य**) किस (**यजमानस्य**) यजमान (**वा**) अथवा (**विप्रस्य**) मेधावी के (**गृहम्**) घर पर जाते हो।

भावार्थः - लोग सदा अध्यापक और उपदेशक से इस प्रकार पूछते रहें कि वे कहां, किन लोगों में और किस के घर पर जाते हैं और आतिथ्य आदि ग्रहण करते हैं जिससे उनको किसी प्रकार की असुविधा न हो और वे सबको उपदेश शिक्षा आदि देते रहें ॥१४॥

यह दशम मण्डल में चालीसवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४१

ऋषिः—१ ३ सुहस्त्यो घौषेयः ॥ देवते—अश्विनौ ॥ छन्दः—१ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३ विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्य१ं रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम् ।
परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वय व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१॥

पदार्थः—हे वैज्ञानिक और शिल्पिन् ! आपके (**समानमु**) साधारण (**त्यम्**) उस (**पुरुहूतम्**) बहुतों से आहूत (**उक्थ्यम्**) प्रशस्य (**त्रिचक्रम्**) तीन चक्रों वाले (**सवना**) यज्ञों में (**गनिग्मतम्**) जाने वाले (**परिज्मानम्**) पृथिवी के चारों तरफ जाने वाले (**विदथ्यम्**) यज्ञ के हितकारी (**रथम्**) रथ की (**उषसः**) उषा के (**व्युष्टौ**) उदित होने पर (**सुवृक्तिभिः**) उत्तम प्रशंसा वचनों के साथ (**वयम्**) हम (**हवामहे**) प्रशंसा करते हैं।

भावार्थः -- हे वैज्ञानिक और शिल्पिन् ! हम आपके द्वारा निर्मित और प्रयोग में आने वाले तीन चक्रों वाले रथ की प्रशंसा करते हैं जिससे सर्वत्र जाया जा सकता है ॥१॥

प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं रथम् ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं होतृमन्तमश्विना ॥२॥

पदार्थः —(**नासत्या**) हे सत्यभूत (**अश्विना**) वैज्ञानिक और शिल्पिन् ! आप (**नरा**) लोगों के पथदर्शक हो। आप (**प्रातर्युजम्**) प्रातःकाल जोड़े जाने

वाले, (प्रातः यावानम्) प्रातःकाल में चलने वाले (मधु वाहनम्) उत्तम वाहन-भूत (रथम्) रथ पर (अधितिष्ठतः) सवार होते हो । (येन) जिस रथ से (यज्वरीः) यजनशील (विशः) प्रजा में (गच्छथ) जाते हो (येन) जिससे (कीरेः चित्) स्तोता के (होतृमन्तम्) होता आदि से युक्त (यज्ञम्) यज्ञ में (गच्छथः) जाते हो ।

भावार्थः—इस मन्त्र में उस उत्तम रथ का वर्णन किया गया है जिस के द्वारा प्रातःकाल वैज्ञानिक और शिल्पी यज्ञ आदि में दूर पर भी हो तो चले जाते हैं ॥२॥

अध्वर्यु॑ वा मधु॑पाणिं सु॒हस्त्य॑म॒ग्निधं॑ वा धृ॒तद॑क्षं॒ दमू॑नसम् ।
विप्र॑स्य वा॒ यत्सव॑नानि॒ गच्छ॒थोऽत॒ आ या॑तं मधु॒पेय॑मश्विना ॥३॥

पदार्थः – हे (अश्विना) वैज्ञानिक-शिल्पिन् ! आप (मधुपाणिम्) सोम हाथ में लिए (अध्वर्युम्) अध्वर्यु (वा) और (सुहस्त्यम्) हस्तक्रिया में निपुण (धृतदक्षम्) बलवाले (दमूनसम्) दानमना (अग्नीध्रम्) अग्नीध्र के पास (आयातम्) आते जाते हो, (यत्) यद्यपि (विप्रस्य) और भी मेधावी के (सवनानि) यज्ञों में (गच्छथः) जाते हो (अतः) इसलिए (मधुपेयम्) सोम-पान में भी (आ यातम्) आते हो ।

भावार्थः— वैज्ञानिक और शिल्पी यज्ञ में अध्वर्यु, अग्नीध्र आदि से मिलकर सब विज्ञानों का विस्तार करें और मधुर सोम आदि ओषधियों का पान करें ॥३॥

यह दशम मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४२

ऋषिः १—११ कृष्णः ॥ **देवता** - इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ३, ७–६, ११ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ ६, १० विराट्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

अस्ते॑व॒ सु प्र॑त॒रं लाय॒मस्य॒न्भूष॑न्निव॒ प्र भ॑रा॒ स्तोम॑मस्मै ।
वा॒चा विप्रा॑स्तरत॒ वाच॑म॒र्यो नि रा॑मय जरितः॒ सोम॒ इन्द्र॑म् ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**जरितः**) हे भक्त ! (**प्रतरम्**) बड़े (**लायम्**) संश्लिष्ट होने वाले अर्थात् हृदयवेधी (**शरम्**) वाण को (**सु**) सुष्ठु रूप से (**अस्यन्**) फेंकते हुये (**अस्ता इव**) धनुर्धारी के समान (**भूषन् इव**) अलंकर्त्ता के समान (**अस्मै**) इस इन्द्र=परमेश्वर के लिए (**स्तोमम्**) स्तुति (**प्रभर**) करो, (**विप्राः**) हे मेधावी पुरुषो ! आप (**वाचा**) वेदवाणी द्वारा की जाने वाली स्तुति मे (**अर्यः**) शत्रु की (**वाचम्**) वाणी को (**नि तरत**) सर्वथा पार कर जाओ (**सोमे**) आत्मा में (**इन्द्रम्**) भगवान् के साथ (**निरमय**) खेलो ।

भावार्थः—हे भक्त ! तू बड़े लम्बे, हृदयवेधी वाण को फेंकने वाले धनुर्धर के समान तथा उत्तम अलंकर्त्ता के समान भगवान् की वेदमन्त्र से स्तुति कर। हे मेधावी जन ! आप वेद वाणी द्वारा शत्रु की वाणी को लांघ जाओ। हे भक्त तू अपनी आत्मा में परमात्मा के साथ खेल ॥१॥

दोहे॑न॒ गामुप॑ शिक्षा॒ सखा॑यं॒ प्र बो॑धय जरितर्जा॒रमिन्द्र॑म् ।
कोशं॒ न पू॒र्णं वसु॑ना॒ न्यृ॑ष्ट॒मा च्या॑वय मघ॒देया॑य॒ शूर॑म् ॥२॥

पदार्थः—(**जरितः**) हे भक्त ! तू (**दोहेन**) दोहन रूप कर्म अर्थात् मन से आलोडन-विलोडन करके (**गाम्**) वेदवाणी को (**उपशिक्ष**) स्वयं प्राप्त कर और दूसरों को भी दे। (**सखायम्**) भगवान् के सखाभूत (**जारम्**) स्तुति करने वाले अथवा इन्द्रियों और शरीर को जीर्ण करने वाले (**इन्द्रम्**) अपने आत्मा को (**प्रबोधय**) जगाओ, (**पूर्णम्**) भरे हुए (**कोशम्**) जलपात्र के (**न**) समान (**वसुना**) ज्ञान धन से (**निकृष्टम्**) पूर्ण (**शूरम्**) वलशाली आत्मा को (**मघदेयाय**) आत्मिक सम्पत्ति देने के लिए (**आ च्यावय**) अभिमुख करो ।

भावार्थः—हे भक्त ! मन से विशेष आलोडन-विलोडन के द्वारा वेदवाणी को स्वयं समझ और दूसरों को समझा। भगवान् के सखाभूत इन्द्रियों के जीर्ण करने वाले अपनी आत्मा को जगा। जल से परिपूर्ण पात्र के समान आत्मिक सम्पत्ति से पूर्ण आत्मा को ज्ञानधन के प्रदान हेतु अभिमुख कर ॥२॥

किम॒ङ्ग त्वा॑ मघवन्भो॒जमा॑हुः शिशी॒हि मा॑ शिश॒यं त्वा॑ शृणोमि ।
अप्न॑स्वती॒ मम॒ धीर॑स्तु शक्र वसु॒विदं॒ भग॒मिन्द्रा भ॑रा नः ॥३॥

पदार्थः—(**अंग**) हे (**मघवन्**) इन्द्र=धनों के स्वामी परमेश्वर ! (**त्वाम्**) आप को (**भोजम्**) पाल (**किम्**) क्यों (**आहुः**) विद्वज्जन कहते हैं, (**मा**) मुझे

(**शिशीहि**) उत्तम कर्म में उत्साह दे, (**त्वा**) आप को मैं (**जिनयम्**) उत्साह देने वाला (**शृणोमि**) सुनता हूँ, (**मम**) मेरी (**धीः**) बुद्धि (**अप्नस्वती**) कर्म करने में कुशल (**अस्तु**) हो, (**शक्र**) हे शक्तिशाली (**इन्द्र**) भगवान् (**नः**) हमें (**वसुविदम्**) धन से युक्त (**भगम्**) ऐश्वर्य (**आ भर**) प्राप्त करा ।

भावार्थः–हे धनों के स्वामी, शक्तिशाली परमेश्वर, आप को विद्वान् लोग पालक कहते हैं। आप उत्तम कर्म में मुझे उत्साह दें। आप को मैं देने वाला सुनता हूं। मेरी बुद्धि को कर्म में कुशल बनाओ और समस्त धनों से युक्त ऐश्वर्य हमें दो ॥३॥

त्वां जना ममसत्येष्विन्द्र सन्तस्थाना वि ह्वयन्ते समीके ।
अत्रा युजं कृणुते यो हविष्मान्नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः ॥४॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**जनाः**) लोग (**त्वाम्**) तुझ को (**मम-सत्येषु**) जीवन के विविध संग्रामों में सहायतार्थ (**वि ह्वयन्ते**) पुकारते हैं, (**समीके**) युद्ध में (**संन्तस्थानः**) लगे हुए भी पुकारते हैं। (**अत्र**) इस विषय में (**शूरः**) शक्तिशाली (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**तम्**) उसको (**युजम्**) सखा (**कृणुते**) बनाता है (**यः**) जो (**हविष्मान्**) श्रद्धालु होता है तथा (**असुन्वता**) अयाज्ञिक व्यक्ति के साथ (**सख्यम्**) मैत्री (**न**) नहीं (**वष्टि**) चाहता है।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तुझे जीवन के सभी संग्रामों में लोग याद करते हैं। युद्ध में भी लगे हुए तुम्हें याद करते हैं। तू उसी का मित्र बनता है जो श्रद्धालु है और अयाज्ञिक व्यक्तियों की मैत्री नहीं चाहता है ॥४॥

धनं न स्पन्द्रं बहुलं यो अस्मै तीव्रान्त्सोमाँ आसुनोति प्रयस्वान् ।
तस्मै शत्रून्त्सुतुकान्प्रातरह्नो नि स्वष्ट्रान्युवति हन्ति वृत्रम् ॥५॥

पदार्थः –(**यः**) जो (**प्रयस्वान्**) प्रयास करने वाला उद्योगी पुरुष (**बहु-लम्**) बहुत से (**धनम्**) धन के (**न**) समान (**स्पन्द्रम्**) पशु आदि पदार्थों को और (**तीव्रान्**) तीव्र (**सोमान्**) पदार्थों को (**अस्मै**) इस राजा के लिए (**आसु नोति**) देता है (**तस्मै**) उसके लिए वह राजा (**सुतुकान्**) हिंसाकारक वा विनाशक हथियारों वाले (**सु अष्ट्रान्**) उत्तम घोड़ों आदि से युक्त (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**अह्नः**) दिन के (**प्रातः**) पूर्व भाग में ही (**युवति**) दूर करता है (**वृत्रम्**) दुःखों को (**निहन्ति**) नष्ट करता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो उद्योगी पुरुष राजा को धन और सैन्य आदि की तथा तीव्र पदार्थों की सहायता करता है उसके लिए राजा घातक हथियारों और अश्व आदि से युक्त शत्रुओं को दूर भगाता है और दुःख का विनाश करता है ॥५॥

यस्मिन्वयं दधिमा शंसमिन्द्रे यः शिश्राय मघवा काममस्मे ।
आराच्चित्सन्भयतामस्य शत्रुर्न्यस्मै द्युम्ना जन्या नमन्ताम् ॥६॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस (**इन्द्रे**) राजा में (**वयम्**) हम (**शंसम्**) प्रशंसा (**दधिम**) धारण करते हैं (**यः**) जो (**मघवा**) धनों का स्वामी है और (**अस्मे**) हमें (**कामम्**) अभिलाषायें (**शिश्राय**) प्राप्त कराता है (**अस्य**) इस राजा के (**शत्रुः**) शत्रु (**आरात्**) दूर (**चित्**) एव (**सन्**) होते हुए (**भयताम्**) डर जावें तथा (**अस्मै**) इसके लिए (**जन्या**) शत्रुओं के यहां उत्पन्न (**द्युम्ना**) अन्न धन आदि (**नमन्ताम्**) आ झुकें अर्थात् आ जावें ।

भावार्थः—जिस राजा की हम प्रशंसा करते हैं, जो धनों का स्वामी है और हमारी अभिलाषाओं को प्राप्त कराता है उसके शत्रु दूर से ही भाग जावें और उनके यहां उत्पन्न अन्न धन आदि वहां की प्रजा के लिए इसे प्राप्त हो जावें ॥६॥

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।
अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥७॥

पदार्थः (**पुरुष्टुत**) हे सबसे स्तुति किये जाने वाले (**इन्द्र**) परमेश्वर ! आप का जो (**उग्रः**) उग्र (**शम्बः**) वज्र मेघ में है उससे (**शत्रुम्**) हमारे शत्रु-भूत कृमि कीट आदि को आप (**आरात्**) हमारे समीप से (**दूरम्**) दूर (**अप बाधस्व**) भगा देते हो । (**अस्मे**) हमें (**यवमत्**) यवयुक्त (**गोमत्**) गोयुक्त धन (**धेहि**) दो और (**जरित्रे**) हम स्तावक लोगों को (**वाजरत्नाम्**) धन ज्ञान और रत्न पूर्ण (**धियम्**) कर्म (**कृधि**) दें ।

भावार्थः—हे सबसे स्तुति किये जाने वाले परमेश्वर ! आप का मेघ में विद्यमान जो उग्र वज्र है उससे हमारे शत्रुभूत रोगजनक कृमि कीट आदि को आप हमारे समीप से दूर भगा देते हो । हमें अन्न और गोयुक्त धन दीजिए और हमारे कर्म को धन, ज्ञान और रत्नपूर्ण बनाइये ॥७॥

Scanned by CamScanner

प्र यमन्तर्वृषसवासो अग्मन्तीव्राः सोमा बहुलान्तास इन्द्रम् ।
नाहं दामानं मघवा नि यंसन्नि सुन्वते वहति भूरि वामम् ॥८॥

पदार्थः – (**यम्**) जिस इन्द्र=राजा को (**बहुल अन्तासः**) बहुत ऐश्वर्य वाले (**तीव्राः**) तीव्र (**वृष सवासः**) बलवान् पुरुषों के संचालक (**सोमाः**) उत्तम शासक (**प्र अग्मन्**) प्राप्त होते हैं, (**मघवा**) ऐश्वर्यशाली वह (**दामानम् अह**) दानशील अथवा दान्त को (**न**) नहीं (**नियंसत्**) बांधता है, (**सुन्वते**) राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले के लिए (**भूरि**) बहुत (**वामम्**) वननीय धन (**निवहति**) देता है ।

भावार्थः—जिस राजा के पास बहुत से ऐश्वर्य वाले तीव्र, बलवान् पुरुषों के संचालक शासक जाते हैं और रहते हैं वह नियन्त्रण में रहने वालों को कभी बांधता नहीं, बल्कि राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले के लिए वह प्रशस्त धन देता है ॥८॥

उत प्रहामतिदीव्या जयाति कृतं यच्छ्वघ्नी विचिनोति काले ।
यो देवकामो न धना रुणद्धि समित्तं राया सृजति स्वधावान् ॥९॥

पदार्थः—(**उत**) और राजा (**प्रहाम**) हन्ता को (**अतिदीव्य**) अत्यधिक काल तक चलने देकर (**जयाति**) उस पर जय प्राप्त करता है । (**यत्**) जिस प्रकार (**श्वघ्नी**) जुआरी (**कृतम्**) अपने पासे को अल्प जुआरियों के प्रति (**काले**) समय पर (**विचिनोति**) प्रतिवादी जुआरी को चुनकर प्रयोग करता है उसी प्रकार राजा भी शत्रु को चुनकर समय पर उस पर घात करता है । (**यः**) जो मनुष्य (**देवकामः**) यज्ञ के देवों के प्रति यज्ञ आदि करने की कामना रखता है (**तम्**) उसके लिए (**धना**) धनों को (**न**) नहीं (**रुणद्धि**) रोकता है । (**स्वधावान्**) स्वशक्ति से भरपूर वह (**तम्**) उसे (**राया इत्**) धन से (**सम् सृजति**) संयुक्त कर देता है ।

भावार्थः —राजा शत्रु को पहले चढ़ा-बढ़ा कर फिर उस पर विजय प्राप्त करता है । जिस प्रकार जुआरी प्रतिद्वन्द्वी जुआरी के प्रति समय पर पासा फेंकता है और किस पर फेंकना है यह चुन लेता है उसी प्रकार राजा शत्रुओं में से शत्रु को चुनकर समय पर वार करता है । यज्ञ करने वाले के लिए वह धन को रोकता नहीं । वह धनवान् राजा ऐसे यज्ञ भावना वाले को धन से युक्त कर देता है ॥९॥

Scanned by CamScanner

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थः—(**पुरुहूत**) हे सबसे प्रशंसा पाने वाले ! (**वयम्**) हम (**दुरेवाम्**) दुःसाध्य (**अमतिम्**) व्याधि को (**गोभिः**) गोदुग्ध आदि औषधियों से (**तरेम**) पार करें और (**यवेन**) यव एवं उससे बने मिश्रण के द्वारा (**विश्वाम्**) समस्त (**क्षुधम्**) भूख को पार करें, (**राजभिः**) राजाओं के साथ (**प्रथमाः**) मुख्य (**धनानि**) धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) बल से (**जयेम**) जीतें ।

भावार्थः—हम दुःसाध्य रोग को गाय के दुग्ध आदि से दूर करें और यव के बने पदार्थ से सब भूखों को दूर करें तथा राजाओं के साथ होकर अपने बल से मुख्य धनों को जीतें ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का पालक विद्वान् (**नः**) हमें (**पश्चात्**) पीछे से, (**उत**) और (**उत्तरस्मात्**) ऊपर से और (**अधरात्**) नीचे से (**अघायोः**) पापाचारी से (**परिपातु**) बचावे (**इन्द्रः**) राजा (**पुरस्तात्**) आगे से और (**मध्यतः**) मध्य से (**नः**) हमारी रक्षा करे (**सखा**) मित्र (**सखिभ्यः**) मित्रों के लिए (**वरिवः**) धन (**कृणोतु**) देवे ।

भावार्थः—विद्वान् जो वेदवाणी का पालक है, हमें ऊपर की दिशा से, पीछे से और नीचे की दिशा से पापाचारी से रक्षित रखें । राजा सामने से और मध्य से हमारी रक्षा करे । मित्र मित्रों के लिए धन देवे ॥११॥

यह दशम मण्डल में बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४३

ऋषिः—१—११ कृष्णः ॥ **देवताः**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ६ निचृज्जगती । २ आर्ची स्वराड् जगती । ३, ६ जगती । ४, ५, ७, ८ विराड् जगती । १७ विराड् त्रिष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१-६ निषादः । १, ११ धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

अच्छा म इन्द्रं मतयः स्वर्विदः सध्रीचीर्विश्वा उशतीरनूषत ।
परि ष्वजन्ते जनयो यथा पतिं मर्यं न शुन्ध्युं मघवानमूतये ॥१॥

पदार्थः –(**मे**) मुझ ज्ञानी की (**स्वर्विदः**) प्रकाशयुक्त (**सध्रीचीः**) सुसंगत (**विश्वा**) व्याप्त (**उशती**) चाहती हुई (**मतयः**) स्तुतियां (**इन्द्रम्**) भगवान् की (**अच्छ**) भली प्रकार (**अनूषत**) स्तुति करती हैं । (**जनयः**) जायाएँ (**यथा न**) जिस प्रकार (**मर्यम्**) मनुष्य (**पतिम्**) पति को आलिङ्गित करती है उसी प्रकार ये स्तुतियां (**शुन्ध्युम्**) शुद्ध (**मघवानम्**) धनों के स्वामी परमेश्वर को प्राप्त होती है ।

भावार्थः मुझ ज्ञानी की ज्ञानयुक्त, सुसंगत, व्याप्त स्तुतियां भगवान् की अच्छी प्रकार स्तवन करती हैं । जिस प्रकार जायायें अपने मनुष्य पति को आलिङ्गित करती हैं उसी प्रकार ये स्तुतियें शुद्धस्वरूप समस्त धनों के स्वामी भगवान् को प्राप्त होती हैं ॥१॥

न घा त्वद्रिगप वेति मे मनस्त्वे इत्कामं पुरुहूत शिश्रय ।
राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिष्यस्मिन्त्सु सोमेऽवपानमस्तु ते ॥२॥

पदार्थः – (**पुरुहूत**) सबसे स्तुति किये जाने वाले प्रभो ! (**न घ**) न ही (**त्वद्रिक्**) तुझमें लगा हुआ (**मे**) मेरा (**मनः**) मन (**अप वेति**) दूर हटता है (**त्वे**) तुझमें ही (**कामम्**) अपनी कामना को (**शिश्रय**) स्थापित करता हूं, (**राजा इव**) राजा के समान आप (**र्बाहिषि**) हमारे हृदयाकाश में (**अधि नि सदः**) विराज रहे हैं (**दस्म**) हे योगियों से दर्शनीय भगवन् ! (**ते**) आप का (**अस्मिन्**) इस (**सोमे**) आत्मा में (**सु अव पानम्**) शोभन रक्षण (**अस्तु**) हो ।

भावार्थः—हे सबसे स्तुति किये जाने योग्य प्रभो ! आप योगियों स साक्षात्कार के योग्य हो । तुझमें लगा मेरा मन कभी भी हटता नहीं । तुझमें ही मेरी समस्त कामनायें निहित हैं । राजा के समान आप मेरे हृदयाकाश में विराज रहे हैं । इस आत्मा में आप का उत्तम रक्षण प्राप्त हो ॥२॥

विषूवृदिन्द्रो अमतेरुत क्षुधः स इन्द्रायो मघवा वस्व ईशते ।
तस्येदिमे प्रवणे सप्त सिन्धवो वयो वर्धन्ति वृषभस्य शुष्मिणः ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**विषुवृत्**) विष्वग् वर्तमान (**इन्द्रः**) सूर्य (**श्रमतेः**) दुष्काल (**उत**) और (**क्षुधः**) भूख को दूर करता है। (**स इत्**) वह ही (**मघवा**) धनों वाला है और (**रायः**) धन का और (**वस्वः**) भोग्य पदार्थों का (**ईशते**) शासक है, (**वृषभस्य**) वर्षा के कारणभूत (**शुष्मिणः**) शक्तिशाली (**तस्य इत्**) उसी ही सूर्य के कारण (**प्रवणे**) निम्न प्रदेश में, बहने वाली (**इमे**) ये (**सप्त**) सात (**सिन्धवः**) नदियां (**वयः**) अन्न आदि को (**वर्धन्ति**) बढ़ाती हैं।

भावर्थ—विष्वग्वर्त्तमान सूर्य दुष्काल और भुखमरी आदि को दूर करता है। वह ही धन और भोग्य पदाथ का स्वामी है। उसके ही द्वारा वर्षा होने पर सात जल धारायें निम्न प्रदेश में बही हुई अन्न आदि को बढ़ाती हैं ॥३॥

वयो न वृक्षं सुपलाशमासदन्त्सोमास इन्द्रं मन्दिनश्चमूषदः ।
प्रैषामनीकं शवसा दविद्युतद्विदत्स्व१र्मनवे ज्योतिरार्यम् ॥४॥

पदार्थः – (**न**) जिस प्रकार (**वयः**) पक्षी लोग (**सुपलाशम्**) अच्छे पत्तों वाले (**वृक्षम्**) वृक्ष पर (**आ असदन्**) स्थित होते हैं उसी प्रकार (**मन्दिनः**) हर्षदायक (**चमूषदः**) द्यु और पृथिवी में स्थित (**सोमासः**) जलीय तत्व (**इन्द्रम्**) सूर्य में स्थिति पाते हैं, (**एषाम्**) इन जलीय तत्त्वों का (**अनीकम्**) समूह **शवसा**) वेग से युक्त हुआ (**प्र दविद्युतत्**) चमकता है यह सूर्य (**स्वः**) प्रकाशमान (**आर्यम्**) श्रेष्ठ (**ज्योतिः**) ज्योति को (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**विदत्**) देता है।

भावार्थः—जिस प्रकार पक्षीगण उत्तम पत्तों वाले वृक्ष पर आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हर्षदायक, द्यु और पृथिवी लोक में स्थित समस्त जलीय तत्त्व सूर्य में स्थिति पाते हैं। इन जलीय तत्त्वों का समूह वेग से युक्त हुआ चमकता है। यह सूर्य प्रकाशमान श्रेष्ठ ज्योति को मनुष्य को प्रदान करता है। सूर्य की एक प्रकार की किरणें 'आपः' नाम की हैं। उन्हीं का यह वर्णन हैं ॥४॥

कृतं न श्वघ्नी वि चिनोति देवने संवर्गं यन्मघवा सूर्यं जयत् ।
न तत्ते अन्यो अनु वीर्यं शकन्न पुराणो मघवन्नोत नूतनः ॥५॥

पदार्थः—(**श्वघ्नी**) जुआरी (**देवने**) द्यूत खेलने में (**कृतम् न**) जिस प्रकार कृत=पासे को (**चिनोति**) चुनता है उसी प्रकार (**इन्द्रः**) विद्युत् सूर्य को

चुनती है। (यत्) यदा (मघवा) मखों=यज्ञों का स्वामी इन्द्र=विद्युत् (संवर्गम्) वृष्टि को रोकने वाले (सूर्यम्) सूर्य किरण को (जयत्) प्राप्त करता है तब वृष्टि का होना सम्भव होता है। तब (मघवन्) इस इन्द्र=विद्युत् के (वीर्यम्) शक्ति को (न पुराणः) न पुरातन (न उत नूतनः) न ही नया (अन्यः) उससे भिन्न कोई भी (ते) उसके (तत्) उस (वीर्यम्) बल को (अनु) अनुकरण करने में (न शकत्) नहीं समर्थ होता है।

भावार्थः द्यूत खेलने वाला द्यूत खेलने के समय में जिस प्रकार पासे को चुनता है वैसे ही आकाशस्थ विद्युत् सूर्य को चुनती है। जब वह सूर्य की वृष्टि रोकने वाली रश्मि को प्राप्त करती है तब वृष्टि होती है। इसकी शक्ति का इससे भिन्न नया पुराना कोई भी अनुकरण नहीं कर सकता है। सूर्य की वृष्टिवनि नाम की किरण से वर्षा होती है। परन्तु जो वर्षा को रोकने वाली शुष्कता है उस पर इन्द्र जय प्राप्त करके इससे वर्षा कराता है ॥५॥

विशंविशं मघवा पर्यशायत जनानां धेना अवचाकशद्वृषा ।
यस्याह शक्रः सवनेषु रण्यति स तीव्रैः सोमैः सहते पृतन्यतः ॥६॥

पदार्थः— (वृषा) कामनाओं की वर्षा करने वाला, (शक्रः) शक्तिशाली (मघवा) धनों का स्वामी परमेश्वर (विशम् विशम्) प्रत्येक प्रजा के व्यक्ति में (पर्यशायत) विराजमान होता है, (जनानाम्) स्तोता लोगों की (धेना) स्तुति को (अव चाकशत्) देखता है, (यस्य अह) जिस ही के (सवनेषु) यज्ञ आदि कार्यों में वह (रण्यति) प्रसन्न हो कृपा करता है (सः) वह (तीव्रैः) तीव्र (सोमैः) प्रज्ञान और कर्मों से (पृतन्यतः) काम क्रोध आदि शत्रुओं को (सहते) दबा लेता है।

भावार्थः— भगवान् प्रत्येक प्रजा जन में व्यापक हो विराजमान है। वह सबकी स्तुतियों को जानता है। परन्तु जिसके यज्ञ आदि कार्यों में उसकी कृपा हो जाती है वह पुरुष अपने काम क्रोध आदि शत्रुओं को तीव्र प्रज्ञान और कर्म से दबा लेता है ॥६॥

आपो न सिन्धुमभि यत्समक्षरन्त्सोमास इन्द्रं कुल्या इव ह्रदम् ।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यवं न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थ—(**यत्**) जिस प्रकार (**सोमासः**) जलीय पदार्थ (**इन्द्रम्**) सूर्य को (**अभि**) लक्ष्य करके (**समक्षरन्**) बहते हैं, (**आपः**) वेगवती जलधारायें (**न**) जिस प्रकार (**सिन्धुम्**) सिन्धु=समुद्र को जाती हैं (**कुल्याः**) नाले (**इव**) जिस प्रकार (**ह्रदम्**) तालाब को प्राप्त होते हैं, (**न**) जिस प्रकार (**दिव्येन**) आकाश से होने वाले (**दानुना**) दानरूप (**वृष्टिः**) वृष्टि से किसान (**यवम्**) यव आदि बढ़ाते हैं उसी प्रकार (**विप्राः**) मेधावी लोग (**सदने**) यज्ञ वा उपासना के स्थान में (**अस्य**) इस परमेश्वर के (**महः**) महत्त्व को (**वर्धन्ति**) स्तुतियों से बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार जलीय तत्त्वों का बहना सूर्य को अभिलक्षित करके होता है, वेगवती जल धारायें समुद्र में जाती हैं, नाले बड़े तालाब में गिरते हैं । आकाश से हुई वृष्टि से किसान लोग यव आदि को बढ़ाते हैं वैसे ही उपासना गृह में मेधावी लोग भगवान् के महत्त्व को बखानते हैं ॥७॥

वृषा न क्रुद्धः पतयद्रजःस्वा यो अर्यपत्नीरकृणोदिमा अपः ।
स सुन्वते मघवा जीरदानवेऽविन्दज्ज्योतिर्मनवे हविष्मते ॥८॥

पदार्थः—(**रजः सु**) लोकों में (**न**) जिस प्रकार (**वृषा**) बैल (**क्रुद्धः**) क्रुद्ध हुआ दूसरे बैल पर (**आ पतयत्**) टूट पड़ता है वैसे इन्द्र=वायु अथवा सूर्य मेघ पर टूट पड़ता है । (**यः**) जो इन्द्र (**अर्यपत्नीः**) कृषि का कार्य करने वाले वैश्यजनों की पालक (**इमाः**) इन (**अपः**) वृष्टि जलों को (**अकृणोद्**) अभिमुख करता है (**सः**) वह (**मघवा**) धनों का देने वाला वायु वा सूर्य (**सुन्वते**) यज्ञशील (**जीरदानवे**) शीघ्र दानी (**हविष्मते**) हवि प्रदान करने वाले (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**ज्योतिः**) तेज को (**अविदत**) देता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार बैल क्रुद्ध हुआ लोक में बैल पर टूटता है वैसे वायु वा सूर्य मेघ पर टूटते हैं । यह मेघ को मारकर खेती करने वाले वैश्य की पालक वृष्टि जलों को प्रदान करता है । यज्ञ में आहुति देने वाले दानी स्वभाव वाले मनुष्य को प्रकाश प्रदान करता है ॥८॥

उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह भूया ऋतस्य सुदुघा पुराणवत् ।
वि रोचतामरुषो भानुना शुचिः स्वर्ण शुक्रं शुशुचीत सत्पतिः ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**परशुः**) वज्र (**ज्योतिषा**) तेज के (**सह**) साथ (**उत् जायताम्**) अपना व्यापार करे, (**ऋतस्य**) जल की (**सुदुघा**) उत्तम प्रकार से दोहन करने वाली माध्यमिका वाक् [कड़क] (**पुराणवत्**) पूर्व की भांति नई (**भूयाः**) होवे । (**अरुषः**) प्रकाशमान सूर्य (**भानुना**) दीप्ति से (**शुचिः**) जलता हुआ (**विरोचताम्**) प्रकाशित होवे । (**सत्पतिः**) सत्ताधारी पदार्थों का पालक वायु (**स्वः न**) आदित्य के समान (**शुक्रम्**) जलता हुआ (**शुशुचीत**) दीप्त होवे ।

भावार्थः - वर्षा के लिए बिजलीरूपी वज्र तेज के साथ अपने कार्य में लग जावे, जल का दोहन करने वाली माध्यमिका वाक् (कड़क) पूर्व की भांति नई होकर काम करने लगे । सूर्य तेज के साथ जलता हुआ चमके और वायु आदित्य के समान जलता हुआ सा बहने लगे । जिससे वृष्टि होवे ॥६॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थः—(**पुरुहूत**) हे सबसे प्रशंसा किये जाने वाले राजन् ! (**दुरेवाम्**) दुःसाध्य (**अमतिम्**) अज्ञान को हम (**गोभिः**) वेदवाणी से (**तरेम**) पार करें, (**विश्वाम्**) व्यापक (**क्षुधम्**) भूख को (**यवेन**) अमिश्रित=शुद्ध अन्न से पार करें, (**वयम्**) हम सब (**राजभिः**) चमकते औजारों आदि के साथ (**प्रथमा**) मुख्य (**धना**) धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) प्रयत्न से (**जयेम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे सबसे प्रशंसा किये जाने वाले राजन् ! हम दुःसाध्य अज्ञान को वेदवाणी से पार करें । व्याप्त भूख को अमिश्रित अर्थात् शुद्ध अन्न से दूर करें । चमकते शस्त्रों आदि से युक्त हो मुख्य धनों को अपने प्रयत्न से प्राप्त करें ॥१०॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) समस्त आकाश आदि महान् पदार्थों का स्वामी परमेश्वर (**नः**) हमारी (**पश्चात्**) पीछे, (**उत**) और (**उत्तरस्मात्**) उत्तर से

(अधराद्) नीचे की दिशा से, (पुरस्ताद्) सामने से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (अघायोः) पापी पुरुष से (परिपातु) रक्षा करे । (नः) हमारा (सखा) मित्र (इन्द्रः) राजा (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (वरिवः) धन (कृणोतु) अभिमुख करे ।

भावार्थः— महान् लोकों का स्वामी परमेश्वर हमारी सामने, पीछे, ऊपर, नीचे और मध्य से पापी पुरुष से रक्षा करे। हमारा मित्र राजा मित्रभूत हम सबको धन प्रदान करे ॥११॥

यह दशम मण्डल में तीतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ४४

ऋषिः—१—११ कृष्णः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः** १ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, १० विराट्त्रिष्टुप् । ३, ११ त्रिष्टुप् । ४ विराड्जगती । ५—७, ९ पादनिचृज्जगती । ८ निचृज्जगती ॥ **स्वरः**—१—३, १०, ११ धैवतः । ४—९ निषादः ॥

आ यात्विन्द्रः स्वपतिर्मदाय यो धर्मणा तूतुजानस्तुविष्मान् ।
प्रत्वक्षाणो अति विश्वा सहांस्यपारेण महता वृष्ण्येन ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) सूर्य (तूतुजानः) त्वरायुक्त (तुविष्मान्) तेजस्वी है और (विश्वा) समस्त (सहांसि) तेजों को (अपारेण) अत्यधिक, (महता) महान् (वृष्ण्येन) बल से (प्रत्वक्षाणः) छोटा करता हुआ (अति) अतिक्रान्त करता है । (स्वपतिः) धनों का स्वामी वह (मदाय) हर्ष के लिए (धर्मणा) अपने प्रकाश आदि धर्म से (आयातु) हमें प्राप्त होता है ।

भावार्थः— जो इन्द्र=सूर्य त्वरायुक्त तेजस्वी है और समस्त तेजों को अपने अत्यधिक महान् तेज से छोटा करके अतिक्रान्त करता है वह धनों का स्वामी हमारे सुख के लिए अपने समस्त प्रकाश आदि धर्मों के साथ हमें प्राप्त होता है ॥१॥

सुष्ठामा रथः सुयमा हरी ते मिम्यक्ष वज्रो नृपते गभस्तौ ।
शीभं राजन्त्सुपथा याह्यर्वाङ् वर्धाम ते पपुषो वृष्ण्यानि ॥२॥

पदार्थः—(**नृपतेः**) नरों के पालक (**ते**) इस सूर्य का (**रथः**) प्रकाश चक्र (**सुस्थामा**) अच्छी तरह दृढ़ है और (**हरी**) इसकी दोनों प्रकार की विद्युदात्मक शक्ति भी (**सुयमा**) उत्तम प्रकार से नियन्त्रित है, (**गभस्तौ**) किरणों में (**वज्रः**) बलशाली विद्युत् भी (**मिम्यक्ष**) संहत होती है, (**राजन्**) दीप्तिमान यह सूर्य (**शीभम्**) शीघ्र (**सुपथा**) शोमन मार्ग से (**अर्वाङ्**) हमारे समक्ष (**आयाहि**) आता है, हम (**पपुषः**) जलों को पीने वाले (**ते**) उसके (**वृष्ण्यानि**) बल को (**वर्धाम**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—सूर्य का प्रकाशचक्र सुदृढ़ और विद्युदात्मक दो शक्तिये सुनियन्त्रित हैं उसकी किरणों में बज्र निहित है । वह अपने उत्तम मार्ग से हमारे अभिमुख होता है और हम यज्ञ आदि में डाले गये पदार्थों से उसके बल को बढ़ाते हैं ॥२॥

एन्द्र॒वाहो॑ नृ॒पतिं॒ वज्र॑बाहुमु॒ग्रास॑स्तवि॒षास॑ एनम् ।
प्र॒त्वक्ष॑सं वृष॒भं स॒त्यशु॑ष्म॒मेम॑स्म॒त्रा स॑ध॒मादो॑ वहन्तु ॥३॥

पदार्थः—(**नृपतिम्**) नरों के पालक (**वज्रबाहुम्**) वज्र को किरणों में धारण करने वाले, (**उग्रम्**) प्रचण्ड (**प्रत्वक्षसम्**) दूसरे तेजों को छोटा करने वाले, (**सत्यशुष्मम्**) सत्य बल वाले (**वृषभम्**) वृष्टि के कारणभूत (**एनम्**) इस सूर्य को (**उग्रासः**) प्रखर (**तविषासः**) शक्तिशाली, (**सधमादः**) साथ रहने वाली, (**इन्द्रवाहः**) सूर्य किरणें (**अस्मत्रा**) हमारे सम्मुख (**आ ईम् वहन्तु**) लाती हैं ।

भावार्थः किरणों में वज्र धारण करने वाले प्रचण्ड शक्तिशाली सूर्य को उसकी प्रचण्ड रश्मिये सम्मुख लाती हैं ॥३॥

ए॒वा पतिं॑ द्रोण॒साचं॒ सचे॑तसमू॒र्जः स्क॒म्भं ध॒रुण॒ आ वृ॑षायसे ।
ओजः॑ कृष्व॒ सं गृ॑भाय॒ त्वे अप्य॑सो॒ यथा॑ केनि॒पाना॑मि॒नो वृ॒धे ॥४॥

पदार्थः—(**एव**) इस प्रकार से सूर्य (**पतिम्**) पालक (**द्रोणसाचम्**) प्राणों के रक्षक, (**सचेतसम्**) लोगों के चिन्तन के विषय (**ऊर्जः**) बल और शक्ति के (**स्कम्भम्**) आधार (**सोमम्**) उत्पादन शक्ति को (**धरुणे**) आकाश में (**आवृषायसे**) धारण करता है (**मह्यम्**) मुझे (**ओजः**) ओज (**कृष्व**) देता है, (**त्वे**) उसमें हमें भी (**संगृभाय**) ग्रहण करता है, (**केनिपानाम्**) मेधावी

Scanned by CamScanner

जनों के (**वृधे**) वृद्धि के लिए (**अपि**) भी (**यथा**) यथावत् (**इनः**) समर्थ (**असः**) होता है ।

भावार्थः—इस प्रकार सूर्य पालक, प्राणों की रक्षक, बल की धारक उत्पादन शक्ति को अन्तरिक्ष में धारण करता है। वह ओज देता है अपने में हमें गृहीत रखता है और मेधावी जनों की वृद्धि में यथावत् समर्थ होता है ॥४॥

गमन्नस्मे वसून्या हि शंसिषं स्वाशिषं भरमा याहि सोमिनः ।
त्वमीशिषे सास्मिन्ना सत्सि बर्हिष्यनाधृष्या तव पात्राणि धर्मणा ॥५॥

पदार्थः—हे ऐश्वर्यशाली विद्वन् ! (**वसूनि**) आप को देने योग्य धन (**अस्मे**) मेरे पास (**आगमन्**) आ गये हैं, (**हि**) अत आप की मैं (**शंसिषं**) प्रशंसा करता हूं, (**सोमिनः**) ज्ञानी अथवा सोम का संपादत करने वाले मुझ व्यक्ति की (**स्वाशिषम्**) उत्तम आशिष् वाले (**भरम्**) यज्ञ में (**आ याहि**) आइये (**त्वम्**) आप (**ईशिषे**) समर्थ है, (**सः**) वह (**त्वम्**) आप (**अस्मिन्**) इस (**बर्हिषि**) आसन पर (**आ सत्सि**) बैठिये, (**तव**) आप के (**पात्राणि**) सुपात्र व्यक्ति (**धर्मणा**) धर्म कर्म से (**अनाधृष्य**) किसी से दबाये जाने योग्य नहीं हैं, अर्थात् वे धर्म-कर्म में बढ़-चढ़कर हैं ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यशाली विद्वन् ! आप को देने योग्य धन हमारे पास हैं, आप की हम प्रशंसा करते हैं। मुझ ज्ञानी व्यक्ति के यज्ञ में आइये, आसन पर बैठिये। आप के सुपात्र व्यक्ति धर्म-कर्म में बढ़-चढ़कर हैं और किसी से कम नहीं हैं ॥५॥

पृथक् प्रायन्प्रथमा देवहूतयोऽकृण्वत श्रवस्यानि दुष्टरा ।
न ये शेकुर्यज्ञियां नावमारुहमीर्मैव ते न्यविशन्त केपयः ॥६॥

पदार्थः—(**प्रथमाः**) मुख्य (**देवहूतयः**) ईश्वर स्तुति करने वाले (**पृथक्**) पृथक् मार्ग से (**प्र अग्मन्**) जाते हैं, (**श्रवस्यानि**) श्रवण करने योग्य (**दुस्तरा**) अपूर्व (**यशांसि**) कीर्तियों का (**अकृण्वत**) संपादन कर लेते हैं, और (**ये**) जो (**यज्ञियाम्**) प्रभु की उपासनामयी (**नावम्**) नौका पर (**आरुहम्**) चढ़ने में (**न**) नहीं (**शेकुः**) समर्थ हो सकें वे (**केपयः**) कुत्सित कर्मों में लिप्त रहकर (**ईर्मा इव**) ऋणग्रस्त के समान (**नि अविशन्त**) नीचे पड़े रहते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मुख्य व्यक्ति जो ईश्वर की उपासना में लगे हैं वे मरने पर पृथक् मार्गगामी होते हैं। तथा अपने लिए प्रशस्त यश का संपादन करते हैं जो लोग भगवान् की उपासनामयी नाव पर चढ़ने में समर्थ नहीं हो पाते हैं वे ऋणग्रस्त की तरह कुत्सित कर्मों में पड़े रहकर नीचे गिर जाते हैं ॥६॥

एवैवापागपरे सन्तु दूढ्योऽश्वा येषां दुर्युज आयुयुज्रे ।
इत्था ये प्रागुपरे सन्ति दावने पुरूणि यत्र वयुनानि भोजना ॥७॥

पदार्थः – (**एव एव**) इस प्रकार (**अपरे**) दूसरे जो (**दूढ्यः**) दुष्टबुद्धि जन हैं, (**येषाम्**) जिनके (**दुर्युजः**) कुमार्ग में चलने वाले (**अश्वाः**) इन्द्रियगण (**आ युयुज्रे**) इधर-उधर विषयों में जुड़े रहते हैं वे (**अपाग्**) नीचे जाने वाले (**एव**) ही (**सन्तु**) हो जाते हैं, (**यत्र**) जिसमें (**पुरूणि**) बहुत (**वयुनानि**) ज्ञान और (**भोजना**) ऐश्वर्य है उस परम ब्रह्म में (**ये**) जो (**प्राक्**) पहले जीवन में ही (**उपरे**) यज्ञ एवं उपासना करने वाले हैं और (**दावने**) दान देने के लिए (**सन्ति**) हैं (**इत्था**) इस प्रकार स्थान पाते हैं ।

भावार्थः—जो दुष्टबुद्धि हैं और जिनकी इन्द्रियां सदा विषयों में फंसी रहती हैं–वे नीचे गिर जाते हैं। जो यज्ञ और उपासना करने वाले हैं, दान देने वाले हैं वे सब ज्ञानों और ऐश्वर्यों के आश्रय प्रभु में अपना स्थान पाते हैं ॥७॥

गिरीँरज्राञ्रेजमानाँ अधारयद् द्यौः क्रन्ददन्तरिक्षाणि कोपयत् ।
समीचीने धिषणे वि ष्कभायति वृष्णः पीत्वा मद उक्थानि शंसति ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) वायु (**अज्रान्**) गमनशील (**रेजमानान्**) कांपने वाले (**गिरीन्**) मेघों को (**अधारयत्**) धारण करता है, (**द्यौः**) द्युलोक को (**क्रन्दत्**) गर्जने वाला करता है, (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्ष को (**कोपयत्**) कुपित करता है, (**समीचीने**) परस्पर संगत (**धिषणे**) द्यु और पृथिवी को (**विस्कभायति**) दृढ रखता है, (**वृष्णः**) जलीय पदार्थ को (**पीत्वा**) ग्रहण कर (**मदे**) स्थिरता में (**उक्थानि**) शब्दों को (**शंसति**) उच्चारित कराता है।

भावार्थः—वायु गमनशील, कम्पायमान मेघों को धारण करता है, उसके प्रभाव से द्युलोक गर्जने वाला होता है, अन्तरिक्ष को कुपित करता

Scanned by CamScanner

है, परस्पर संगत द्यु और पृथिवी को दृढ़ता से धारण किये रहता है और पृथिवी के जलीय तत्व को पीकर स्थिर आकाश में शब्दों को उच्चारित कराता है ॥८॥

इमं बिभर्मि सुकृतं ते अङ्कुशं येनारुजासि मघवञ्छफारुजः ।
अस्मिन्त्सु ते सवने अस्त्वोक्यं सुत इष्टौ मघवन्बोध्याभगः ॥९॥

पदार्थः—(**हे मघवन्**) परमेश्वर (**येन**) जिससे आप (**शफारुजः**) खुर वाले जन्तुओं को पीड़ा देने वालों को तू (**आरुजासि**) पीड़ित करता है अर्थात् न्याय से दुःख देता है, (**इमम्**) इस (**ते**) आप के (**अंकुशम्**) अंकुश (**सुकृतम्**) उत्तम कर्म को न्याय आदि को मैं (**बिभर्मि**) धारण करता हूँ, (**ते**) आप का (**अस्मिन्**) इस (**सवने**) जगत् में (सु **ओक्यम्**) उत्तम निवास है, (**मघवन्**) हे धनों के स्वामिन् ! (**आभगः**) सर्वैश्वर्ययुक्त आप (**सुते**) किये जाने वाली (**इष्टौ**) इष्टि में (**बोधि**) हमारी कामनाओं को जानते हैं ।

भावार्थः—हे सब धनों के स्वामी ! परमेश्वर ! आप जिस न्याय अंकुश से पीड़ा देने वालों को पीड़ा देते हो उस उत्तमोत्तम कर्म न्याय के अंकुश को मैं जीवन में धारण करता हूँ । आप का जगत् में निवास है और आप हमारे द्वारा की जाने वाली इष्टि में हमारी कामनाओं को जानते हैं ॥९॥

गोभिष्टरेमामतिं दुरेवां यवेन क्षुधं पुरुहूत विश्वाम् ।
वयं राजभिः प्रथमा धनान्यस्माकेन वृजनेना जयेम ॥१०॥

पदार्थः—(**हे पुरुहूत**) सबकी प्रशंसा के पात्र ! राजन् ! (**वयम्**) हम (**दुरेवाम्**) दुःसाध्य (**अमतिम्**) दुर्मति को (**गोभिः**) यज्ञ विद्या को जानने वाले ऋत्विग् विद्वानों के द्वारा (**तरेम** पार करें, (**विश्वाम्**) व्याप्त (**क्षुधम्**) भूख को (**यवेन**) यव सदृश अन्न से पार करें, हम (**राजभिः**) प्रकाशमान गुणों से (**प्रथमा**) मुख्य (**धना**) धनों को (**अस्माकेन**) अपने (**वृजनेन**) पराक्रम से (**जयेम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे राजन् ! हम अपने राज्य में होने वाली दुर्मति वा अनैक्यमति को विद्वानों के द्वारा दूर करें । व्याप्त क्षुधा को अन्न से हटावें । अपने प्रकाशमान गुणों से स्वकीय पराक्रम द्वारा मुख्य धनों को प्राप्त करें ॥१०॥

Scanned by CamScanner

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः ।
इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरिवः कृणोतु ॥११॥

पदार्थः—(बृहस्पतिः) प्राण (नः) हमें (पुरस्ताद्) सामने से (उत) और (मध्यतः) मध्य से (पश्चात्) पीछे से (उत) और (उत्तरस्माद्) उत्तर से (अधराद्) नीचे से (अघायोः) पापजनित रोग से (परिपातु) रक्षा करे (नः) हमारा (सखा) मित्र (इन्द्रः) इन्द्रियों का स्वामी आत्मा (सखिभ्यः) समस्त शारीरिक मित्र शक्तियों को (वरिवः) श्रेष्ठ बल (कृणोतु) दें ।

भावार्थः—प्राण हमें सामने, मध्य, पीछे, उत्तर और नीचे से पापजन्य रोग से रक्षित रखे । हमारा सखा हमारी आत्मा समस्त शारीरिक सहयोगी शक्तियों को बलशाली बनावें ॥११॥

यह दशम मण्डल का चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—४५

ऋषिः—१—१२ वत्सप्रिः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः १—५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृज्जगती । ९-१२ विराट् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

दिवस्परि प्रथमं जज्ञे अग्निरस्मद् द्वितीयं परि जातवेदाः ।
तृतीयमप्सु नृमणा अजस्रमिन्धान एनं जरते स्वाधीः ॥१॥

पदार्थः—(अग्निः) अग्नि (प्रथमम्) पहले (दिवः) द्युलोक के (परि) ऊपर (जज्ञे) उत्पन्न होता हैं [आदित्यरूप में], (जातवेदाः) सब पदार्थों में विद्यमान अग्नि (द्वितीयम्) दूसरा (अस्मत् परि) हमारे समीप पार्थिव अग्नि के रूप में, (नृमणाः) सब को चलाने वाला अग्नि (तृतीयम्) तृतीय विद्युत्रूप में (अप्सु) अन्तरिक्ष में पैदा होता है, (स्वाधीः) उत्तम ज्ञान वाले (एनम्) इस प्रकार की अग्नि को (अजस्रम्) निरन्तर (इन्धानः) प्रदीप्त करते हुए (जरते) इसकी प्रशंसा करते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस अग्नि के तीन प्रकार हैं जिसको प्रदीप्त करते हुए बुद्धिमान् जन इसकी प्रशंसा करते हैं; पहला अग्नि आदित्यरूप में द्युलोक में है, और दूसरा पार्थिव अग्नि पृथिवी लोक में है और तीसरा विद्युदात्मक अन्तरिक्ष में है ।।१।।

विद्मा ते अग्ने त्रेधा त्रयाणि विद्मा ते धाम विभृता पुरुत्रा ।
विद्मा ते नाम परमं गुहा यद्विद्मा तमुत्सं यत आजगन्थ ।।२।।

पदार्थः—(**विद्म**) जानते हैं हम (**ते**) इस (**अग्नेः**) अग्नि के (**त्रेधा**) तीन स्थानों में (**त्रयाणि**) तीन प्रकारों को, (**विद्मः**) जानते हैं हम (**ते**) इसके (**पुरुत्रा**) बहुत (**विभृता**) फैले हुए (**धाम**) स्थानों को, (**विद्मः**) जानते हैं हम (**ते**) इसके (**गुहा**) गूढ (**यत्**) जो (**परमम्**) उत्कृष्ट (**नाम**) तेज है, (**विद्मः**) जानते हैं हम (**तम्**) उस (**उत्सम्**) उद्गम कारण को (**यतः**) जिससे यह (**आजगन्थ**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—इस अग्नि के पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में स्थिर अग्नि-वायु और आदित्य रूप को विद्वज्जन जानते हैं, इसके व्यापन के विविध स्थान हैं, यह विश्व में विद्युद्रूप में छिपा है जो इसका उत्कृष्ट रूप है के । इस उद्गम के कारण को भी ज्ञानी जन जानते हैं ।।२।।

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्वन्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ।।३।।

पदार्थः—(**त्वा अग्ने**) इस अग्नि को (**समुद्रे**) समुद्र में (**अप्सु**) जलों के (**अन्तः**) अन्दर विद्यमान वाडवाग्नि के रूप में (**नृमणा**) वरुण=जलीय विद्युत् (**ईधे**) प्रज्वलित रखती है, (**नृचक्षाः**) मनुष्यों से देखने योग्य अथवा मनुष्यों को देखने की शक्ति देने वाला सूर्य (**दिवः**) द्युलोक के (**ऊधन्**) स्थान में (**ईधे**) प्रकाशित रखता है और (**तृतीये**) तृतीय (**रजसि**) लोक=अन्तरिक्ष में (**अपाम्**) जलों के (**उपस्थे**) स्थान में (**तस्थिवांसम्**) विद्युद्रूप में स्थित (**त्वा**) इसको (**महिषाः**) मरुद्गण (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः समुद्र में वाडवाग्नि को जलीय विद्युत् प्रज्वलित रखता है, द्युलोक में इसे सूर्य प्रज्वलित रखता है और जलों वा मेघों के मध्य में विद्यमान इसको मरुद्गण वा अन्तरिक्षस्थ दिव्य शक्तियां दीप्त रखती हैं ।।३।।

Scanned by CamScanner

अक्रन्ददग्निः स्तनयन्निव द्यौः क्षामा रेरिहद्वीरुधः समञ्जन् ।
सद्यो जज्ञानो वि हीमिद्धो अख्यदा रोदसी भानुना भात्यन्तः ॥४॥

पदार्थः—(अग्निः) अग्नि (स्तनयन्) गर्जते हुए (द्यौः) विद्युन्मय पर्जन्य के (इव) समान (क्षामा) पृथिवी को (रेरिहत) खाता हुआ (वीरुधः) वनस्पति ओषधि आदि को (समञ्जन्) संतप्त करता हुआ (अक्रन्दद्) महान् शब्द करता है, (सद्यः) तत्क्षण (जज्ञानः) पैदा हुआ, (इद्धः) प्रदीप्त यह अग्नि (हि) निश्चय से (ईम्) जल को (वि अख्यत्) देखता है अथवा प्रकाशित करता है और (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक के (अन्तः) मध्य में (भानुना) तेज से (आभाति) प्रकाशित होता है ।

भावार्थः—गर्जते हुए विद्युद्रूप पर्जन्य की भाँति यह अग्नि पृथिवी को खाता हुआ, ओषधि वनस्पति आदि को सन्तप्त करता हुआ शब्द करता है । उत्पन्न होते ही प्रदीप्त हुआ यह जल को प्रकाशित करता है । यह द्युलोक और पृथिवी के मध्य तेज से प्रकाशित होता है ॥४॥

श्रीणामुदारो धरुणो रयीणां मनीषाणां प्रार्पणः सोमगोपाः ।
वसुः सूनुः सहसो अप्सु राजा वि भात्यग्र उषसामिधानः ॥५॥

पदार्थः—(श्रीणाम्) शोभा का (उदारः) उद्गम करने वाला,(रयीणाम्) धनों का (धरुणः) धारक, (मनीषाणाम्) कामनाओं का (प्रार्पणः) प्राप्त कराने वाला, (सोमगोपाः) ओषधि आदि का रक्षक, (वसुः) वासक (सहसः) बल का (सूनुः) पुत्र अर्थात् अत्यन्त बलवान् (अप्सु) जलों में स्थित, (राजा) दीप्तिमान् यह अग्नि (उषसाम्) उषाओं के (अग्रे) पूर्व (इधानः) प्रदीप्त हुआ (विभाति) प्रकाशमान होता है ।

भावार्थः - कान्ति आदि का दाता, धनों का धारक, यज्ञ का साधन बनकर सबकी इच्छाओं का प्राप्त करानेवाला, ओषधियों का रक्षक, वासक, बलवान् जल में स्थित यह अग्नि उषाओं के पहले प्रकाशमान होता है ॥५॥

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ।
वीळुं चिदद्रिमभिनत्परायञ्जना यदग्निमयजन्त पञ्च ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**विश्वस्य**) समस्त पदार्थों का (**केतुः**) प्रज्ञापक (**भुवनस्य**) जल का (**गर्भः**) गर्भभूत अग्नि (**जायमानः**) प्रकट होते हुए ही (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**आ अपृणात्**) पूर्ण करता है, (**परायन्**) परागत होकर (**वीलुम्**) दृढ़ (**चिद्**) भी (**अद्रिम्**) मेघ को (**अभिनत्**) भेदन करता है (**यत्**) जिस कारण (**पञ्च**) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और इन वर्णों में न आने वाला पांच प्रकार का (**जनाः**) मनुष्य समुदाय अर्थात् समस्त मानव (**अग्निम्**) इस अग्नि को (**अयजन्त**) यज्ञ में प्रदीप्त करते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि समस्त पदार्थों का प्रज्ञापक है, जल का गर्भभूत है, पैदा होते ही द्यु और पृथिवी लोक को आपूरित करता है। दृढ़ भी मेघ को यह छिन्न-भिन्न करता है और इस अग्नि को यज्ञ में पांचों प्रकार का मनुष्य समुदाय प्रदीप्त करता है। चार वर्ण और पांचवां इन वर्णों में न आने वाला मनुष्य। ये पंचजन कहे जाते हैं ॥६॥

उशिक्पावको अरतिः सुमेधा मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
इयर्ति धूममरुषं भरिभ्रदुच्छुक्रेण शोचिषा द्यामिनक्षन् ॥७॥

पदार्थः—(**उशिक्**) हवि आदि को चाहने वाला, (**पावकः**) शोधक, (**अरतिः**) गमनशील, (**सुमेधा**) उत्तम ज्ञान का विषय, (**अमृतः**) अमरणधर्मा (**अग्निः**) अग्नि (**मर्तेषु**) मरणधर्माओं में (**नि धायि**) निहित है, यह (**धूमम्**) धूम को (**इयर्ति**) प्रेरित करता है (**अरुषम्**) रूप को (**भरिभ्रत्**) धारण करता है (**शुक्रेण**) प्रदीप्त (**शोचिषा**) प्रकाश से (**द्याम्**) द्युलोक को (**इनक्षत्**) व्याप्त होकर विद्यमान है।

भावार्थः—हवि का चाहने वाला, शोधक, गमनशील उत्तम ज्ञान का विषय अमरणधर्मा अग्नि मरणधर्माओं में निहित हैं। यह आरोचमान रूप को धारण करते हुए प्रदीप्त तेज से द्युलोक को व्याप्त करते हुए विद्यमान है। यह धूम को प्रेरित करता है ॥७॥

दृशानो रुक्म उर्विया व्यद्यौद्दुर्मर्षमायुः श्रिये रुचानः ।
अग्निरमृतो अभवद्वयोभिर्यदेनं द्यौर्जनयत्सुरेताः ॥८॥

पदार्थः—(**दृशानः**) प्रत्यक्ष से देखा जाता हुआ, (**रुक्मः**) रोचमान अग्नि (**उर्विया**) अत्यन्त (**व्यद्यौत्**) द्योतमान होता है, (**आयुः**) गमनशील यह

Scanned by CamScanner

अग्नि (श्रियै ; विभूति के लिए (दुर्मर्षम्) अति प्रचण्डरूप से (रुचानः) रोचमान होता है। यह (अग्निः) अग्नि (वयोभिः) आकाशस्थ उष्ण लहरों से (अमृतः) अमर (अभवत्) होता है (यत्) जिस कारण से (सुरेताः) उत्तम अग्नि कणों से युक्त (द्यौः) प्राण अथवा सूर्य (एतम्) इसको (जनयत्) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—प्रत्यक्ष से देखा जाता हुआ रोचमान अग्नि अत्यन्त द्योतमान होता है। वह गतिशील हुआ विभूति के लिए प्रचण्डरूप से चमकता है। यह अग्नि आकाशीय उष्ण लहरों से मरणरहित होता है। उत्तम तेजकणों से युक्त प्राण वा सूर्य इस अग्नि को उत्पन्न करते हैं ॥८॥

यस्ते॑ अ॒द्य कृ॒णव॑द्भद्रशोचेऽपू॒पं दे॑व घृ॒तव॑न्तमग्ने ।
प्र तं न॑य प्रत॒रं वस्यो॒ अच्छा॒भि सु॒म्नं दे॒वभ॑क्तं यविष्ठ ॥९॥

पदार्थः—(भद्रशोचे) कल्याण दीप्ति, (देव) द्योतमान (यविष्ठ) बलिष्ठ (ते) इस (अग्ने) अग्नि के लिए (यः) जो (अद्य) आज (घृतवन्तम्) घृतयुक्त (अपूपम्) पुरोडाश (कृणवत्) करता है उस (प्रतरम्) प्रकृष्टतर यजमान को (वस्यः) ऐश्वर्य (अच्छ) भली प्रकार (प्रनय) प्राप्त कराता है, (देवभक्तम्) देवभक्त उस यजमान को (सुम्नम्) सुख (अभि) चारों तरफ से (प्रनय) प्राप्त कराता है।

भावार्थः—उत्तम प्रकाश वाला शक्तिशाली अग्नि के लिए जो घृतयुक्त पुरोडाश पकाता है उसे यह अग्नि ऐश्वर्य देता है और सुख प्राप्त कराता है। यजमान देवों के निमित्त यज्ञ में हवि देने से देवभक्त=देवों के लिए भाग देने वाला है ॥९॥

आ तं भ॑ज सौश्रव॒सेष्व॑ग्न उ॒क्थउ॑क्थ॒ आ भ॑ज श॒स्यमा॑ने ।
प्रि॒यः सूर्ये॑ प्रि॒यो अ॒ग्ना भ॑वा॒त्युज्जा॒तेन॑ भि॒नद॒दुज्जनि॑त्वैः ॥१०॥

पदार्थः—(अग्ने) यह अग्नि (सौश्रवसेषु) उत्तम अन्न आदि पदार्थों की हवि से युक्त कर्मों में (तम्) उस यजमान को (आ भज) अभीष्ट दान से पूर्ण करता है (उक्थे-उक्थे) मन्त्रों के (शस्यमाने) पढ़े जाने पर उसको अभीष्ट फल से पूर्ण कर। वह यजमान (सूर्ये) सूर्य का (प्रियः) प्रिय (भवाति) होता है (अग्नौ) अग्नि का प्रिय होता है। (उत) और वह (जातेन) उत्पन्न हुए

Scanned by CamScanner

पुत्र के द्वारा (उत) और (जनित्वैः) उत्पन्न होने वाले पौत्र आदि के द्वारा (भिनवत्) आनन्द प्राप्त करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि उत्तम हवि द्वारा किये जाने वाले कर्मों में और मन्त्रों के उच्चार होने पर यजमान को अभीष्ट दान से परिपूर्ण करता है। वह सूर्य और अग्नि का यज्ञ से प्रिय होकर पुत्र और पौत्र आदि से आनन्दित होता है ॥१०॥

त्वामग्ने यजमाना अनु द्यून्विश्वा वसु दधिरे वार्याणि ।
त्वया सह द्रविणमिच्छमाना व्रजं गोमन्तमुशिजो वि वव्रुः ॥११॥

पदार्थः—(त्वाम् अग्ने) इस अग्नि को यज्ञ में लक्ष्य करके (यजमानाः) यजमान लोग (अनु द्यून्) प्रतिदिन (विश्वा) बहुत (वार्याणि) वरणीय (वसु) धनों को (दधिरे) धारण करते हैं। (उशिजः) मेधावी जनों ने (त्वया) इसके (सह) साथ (द्रविणम्) धन को (इच्छमानाः) चाहते हुए (गोमन्तम्)गौओं से युक्त (व्रजम्) गोष्ठान को (वि वव्रुः) खोला ।

भावार्थः—इस अग्नि को यज्ञ में लक्ष्य करके इसके लिए आहुति देने के लिए यजमान लोग प्रतिदिन बहुत प्रकार के वरणीय धनों को सुरक्षित रखते हैं। इस अग्नि के साथ धन की इच्छा करते हुए मेधावी लोग गौओं से भरे गोशाले को प्राप्त करते हैं ॥११॥

अस्ताव्यग्निर्नरां सुशेवो वैश्वानर ऋषिभिः सोमगोपाः ।
अद्वेषे द्यावापृथिवी हुवेम देवा धत्त रयिमस्मे सुवीरम् ॥१२॥

पदार्थः —(नराम्) मनुष्यों के लिए (सुशेवः) सुखदाता, (वैश्वानरः) समस्त नरों में विद्यमान (सोमगोपाः) जगत् की रक्षा करने वाला यह (अग्निः) अग्नि (ऋषिभिः) ऋषियों द्वारा (अस्ताःवि) प्रशंसा किया जाता है, हम (अद्वेषे) द्वेषरहित (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी को (हुवेम) ज्ञान में ग्रहण करें, (देवाः) जगत् की दिव्य शक्तियां अथवा विद्वज्जन (अस्मे) हम में (सुवीरम्)उत्तम पुत्र आदि से युक्त (रयिम्) धन को (धत्त) धारण करें ।

भावार्थः--मनुष्यों को सुख देने वाला, वैश्वानर जगत् का यह अग्नि ऋषियों की प्रशंसा का पात्र है। हम द्यु और पृथिवी लोक को द्वेषरहित जानकर अपने ज्ञान में उन्हें धारण करें। जगत् की दैवी शक्तियां अथवा विद्वज्जन हमें पुत्र, पौत्र आदि से युक्त धन दें ॥१२॥

यह दशम मण्डल में पंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—४६

ऋषिः —१ १० वत्सप्रिः ॥ देवता अग्निः ॥ छन्दः —१, २, पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ४, ८, १० त्रिष्टुप् । ६ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ७ बिराट् त्रिष्टुप् । ९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः —धैवतः ॥

प्र होता जातो महान्नभोविन्नृषद्मा सीददपामुपस्थे ।
दधिर्यो धायि स ते वयांसि यन्ता वसूनि विधते तनूपाः ॥१॥

पदार्थः— (नृषद्वा) मनुष्यों में विद्यमान (यः) जो अग्नि (नभोविद्) आकाश में स्थित है तथा (अपाम्) जलों वा मेघों के (उपस्थे) स्थान में विद्युद्रूपेण (सीदत्) स्थान लिये है (महान्) महान् है वह (होता) हवि का ग्रहण करने वाला (प्रजातः) माना गया है, (तनूपाः) शरीर के सभी अंग-प्रत्यंगों का पालक, (दधिः) धारक (स.) वह अग्नि (धायि) यज्ञ वेदी में स्थापित किया जाता है । (विदधते) अग्नि को वेदि में धारण कर यज्ञ करने वाले (ते) तुझ यजमान के लिए (वयांसि) अन्नों को और (वसूनि) धनों को (यन्ता) नियमित करने वाला होवे ।

भावार्थः —अग्नि मनुष्यों में विद्यमान, आकाश में स्थित, मेघ में विद्युद्रूप में रहता हुआ हवि का ग्राहक होता है और सब पदार्थों का धारक है तथा यज्ञ वेदी में स्थापित किया जाता है । यज्ञ करने वाले यजमान के लिए वह शरीर के प्रत्येक अंग का रक्षक अग्नि अन्न और धन का दाता है ॥१॥

इमं विधन्तो अपां सधस्थे पशुं न नष्टं पदैरनु ग्मन् ।
गुहा चतन्तमुशिजो नमोभिरिच्छन्तो धीरा भृगवोऽविन्दन् ॥२॥

पदार्थः—(इमम्) इस [अग्नि] को (अपाम्) जलों के (सधस्थे) स्थान अन्तरिक्ष में (विधन्तः) सम्पर्क करते हुए विद्वज्जन (पदैः) पैर के निशानों से (नष्टम्) गायब हुए पशुम्) पशु की (न) भांति (अनुग्मन्) ढुंढ़ने का यत्न करते हैं, (उशिजः) ज्ञान वाले (धीराः) धीर (भृगवः) तपस्वी लोग (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए (गुहा) आकाश में (चतन्तम्) व्याप्त हुए इस अग्नि को (नमोभिः) ज्ञान साधनों से (अविन्दन्) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—जिस प्रकार नष्ट हुए पशु को लोग उसके चरण-चिन्हों

Scanned by CamScanner

का अनुगमन करके प्राप्त करते हैं वैसे ही विद्वज्जन अन्तरिक्ष में जानने का प्रयत्न करते हैं। ज्ञानी तपस्वी विद्वान् जानने की इच्छा और प्रयत्न करते हुए ज्ञान-साधनों से आकाश में व्याप्त इस अग्नि को जान लेते हैं ॥२॥

इमं त्रितो भूर्यविन्ददिच्छन्वैभूवसो मूर्धन्यघ्न्यायाः ।
स शेवृधो जात आ हर्म्येषु नाभिर्युवा भवति रोचनस्य ॥३॥

पदार्थः—(**वैभूवसः**) बहुत ऐश्वर्य वाला (**त्रितः**) मेधा से तीर्णतम ज्ञान, कर्म और उपासना में संलग्न मनुष्य ने (**भूरि**) अधिक (**इच्छन्**) इच्छा करते हुए (**इमम्**) इस अग्नि को (**अघ्न्यायाः**) पृथिवी के (**मूर्धन्**) ऊपर (**अविन्दत्**) प्राप्त किया, (**सः**) वह (**युवा**) सदा युवा अग्नि (**शेवृधः**) सुख का बढ़ाने वाला होकर (**हर्म्येषु**) यजमानों के घरों में (**जातः**) प्रादुर्भत होकर (**रोचनस्य**) उत्तम स्वर्ग आदि सुख की (**नाभिः**) नाभि है।

भावार्थः—अत्यन्त ऐश्वर्यशाली तीर्णतम मेधा वाला ज्ञान, कर्म उपासना में संलग्न व्यक्ति इस अग्नि को पृथिवी पर प्राप्त करता है। वह अग्नि यजमानों के घरों में सुख का बढ़ाने वाला होकर रहता है और वह उत्तम स्वर्ग सुख की नाभि है ॥३॥

मन्द्रं होतारमुशिजो नमोभिः प्राञ्चं यज्ञं नेतारमध्वराणाम् ।
विशामकृण्वन्नरतिं पावकं हव्यवाहं दधतो मानुषेषु ॥४॥

पदार्थः—(**उशिजः**) मेधावी ऋत्विग् लोग (**मन्द्रम्**) हर्ष देने वाले, (**होतारम्**) हवि को ग्रहण करने वाले (**प्राञ्चम्**) सब यज्ञों में पूर्ववर्त्ती, (**यज्ञम्**) यजनीय (**अध्वराणाम्**) यज्ञों के (**नेतारम्**) नेता वा प्रापक, (**अरतिम्**) गतिशील (**पावकम्**) अग्नि को (**दधतः**) धारण करते हुए (**विशाम्**) प्रजाओं के लाभार्थ (**मानुषेषु**) मनुष्यों में (**नमोभिः**) अन्न आदि से (**हव्यवाहम्**) हवि वहन करने वाला (**अकृण्वन्**) करते हैं।

भावार्थः—मेधावी ऋत्विज् लोग सब यज्ञों का पूर्ववर्ती माध्यम, यजनीय,यज्ञों के प्रापक गतिशील इस अग्नि को प्रजा के कल्याणार्थ मनुष्यों में अन्न हवि आदि से हव्य=वाहहवि का वहन करने वाला करते हैं ॥४॥

प्र भूर्जयन्तं महां विपोधां मूरा अमूरं पुरां दर्माणम् ।
नयन्तो गर्भं वनां धियं धुर्हिरिश्मश्रुं नार्वाणं धनर्चम् ॥५॥

पदार्थः—(**भूर्जयन्तम्**) भू आदि लोकों को प्राप्त होने वाले अथवा उनमें व्याप्त हुए, (**महाम्**) महान् (**वियोधाम्**) मेधावियों के द्वारा बुद्धि में धारण किये जाने वाले (**अमूरम्**) अमरणधर्मा (**पुराम्**) पुरों के **दर्माणम्**) फाड़ देने वाले (**वनाम्**) वननीय (**गर्भम्**) जल के कारणभूत (**हिरिश्मश्रु**) हरित बालों वाले (**अर्वाणम्**) घोड़े के (**न**) समान (**धनर्चम्**) धन दाता इस अग्नि को (**नयन्तः**) हवि आदि प्राप्त करते हुए (**भूरा**) मनुष्य जन (**धियम्**) कर्म को (**प्रधुः**) पूर्ण करते हैं।

भावार्थः—पृथिवी आदि लोकों में व्याप्त हुआ, महान्, मेधावियों द्वारा ज्ञान में धारण किया जाने वाला, पुरों को दीर्ण करने वाला और जल का कारणभूत, धनों का दाता यह अग्नि लोगों द्वारा हवि आदि के दान से प्राप्त किया जाता है और लोग इससे यज्ञ कर्म का सम्पादन करते हैं ॥५॥

नि पस्त्यासु त्रितः स्तभूयन्परिवीतो योनौ सीददन्तः ।
अतः सङ्गृभ्या विशां दमूना विधर्मणायन्त्रैरीयते नॄन् ॥६॥

पदार्थः—(**त्रितः**) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक इन तीनों में विद्यमान अग्नि (**पस्त्यासु** लोकों और शरीरों में (**स्तभूयन्**) दृढ़ता देता हुआ, (**परिवीतः**) ज्वाला से घिरा हुआ (**योनौ**) वेदि के (**अन्तः**) मध्य में (**निषीदत्**) स्थित होता है, (**अतः**) यहां से (**विशाम्**) प्रजाओं के सम्बन्ध की हवि को (**संगृभ्य**) ग्रहण करके (**दमूनाः**) अन्य यज्ञ देवों सूर्य वायु आदि को देने वाला होकर (**विधर्मणा**) विविध धारक गुणों और कर्मों के द्वारा (**अयन्त्रैः**) विना किन्हीं रुकावटों के (**नॄन्**) यज्ञ के नेता देवों को (**ईयते**) प्राप्त होता है।

भावार्थः- तीनों लोकों में स्थित अग्नि त्रित है और लोकों और शरीरों में दृढ़ता देता हुआ तेज से व्याप्त होकर वेदि के मध्य भागमें स्थित होता है। यहां से यजमान आदि द्वारा प्रदत्त हवि को ग्रहण कर उसे अन्य सूर्य वायु आदि यज्ञ देवों को देने के लिए विविध गुणों और कर्मों द्वारा विना रोक-टोक के देवों के पास जाता है ॥६॥

अस्याजरासो दमामरित्रा अर्चद्धूमासो अग्नयः पावकाः ।
श्वितीचयः श्वात्रासो भुरण्यवो वनर्षदो वायवो न सोमाः ॥७॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस यजमान के सम्बन्धी (**अजरासः**) जीर्ण न होने वाली (**दमाम्**) दमन करने योग्यों के (**अरित्राः**) तारक (**अर्चद्धूमासः**) धूमों से युक्त, (**पावकाः**) शोधक, (**श्वितीचयः**) श्वेत (**श्वात्रासः**) क्षिप्रगामी, (**भुरण्यवः**) पालक (**वनर्षदः**) वन वा जल में रहने वाली (**वायवः**) गतिशील (**सोमाः**) जलीय तत्त्वों के (**न**) समान (**अग्नयः**) अग्नियें यजमान की हवि को सर्वत्र फैलाती हैं।

भावार्थः—यजमान द्वारा यज्ञ में प्रज्वलित अग्नि में धूम्र से युक्त, क्षिप्रगामी, पालक और कृमि एवं रोगों की नाश करने वाली होकर वेग-शील जलीय तत्त्वों के समान हवि को सर्वत्र फैलाती है ॥७॥

प्र जि॒ह्वया॑ भरते॒ वेपो॑ अ॒ग्निः प्र व॒युना॑नि॒ चेत॑सा पृथि॒व्याः ।
तमा॒यवः॑ शु॒चय॑न्तं पाव॒कं म॒न्द्रं होता॑रं दधिरे॒ यजि॑ष्ठम् ॥८॥

पदार्थः—जो (**अग्निः**) अग्नि (**जिह्वया**) ज्वाला से (**वेपः**) कर्म को (**प्रभरते**) पूरा करता है, जो (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**चेतसा**) ज्ञान के द्वारा (**वयुनानि**) ज्ञानों को (**प्रभरते**) प्रदान करता है, (**शुचयन्तम्**) शुचिमान (**पावकम्**) शोधक (**मन्द्रम्**) हर्षदाता, (**होतारम्**) हवि आदि के ग्रहण करने वाले (**यजिष्ठम्**) अत्यन्न यजनीय (**तम्**) उस अग्नि को (**आयवः**) मनुष्य लोग (**दधिरे**) यज्ञार्थ धारण करते हैं।

भावार्थः—जो अग्नि ज्वाला से यजमान के कर्म को पूर्ण करता है, जो पृथिवी के ज्ञान के साथ समस्त विज्ञानों को प्रदान करता है अर्थात् उनका साधन बनता है उस यजनीय शोधक और लाभकारी अग्नि को मनुष्य ज्ञान में, यज्ञकर्म आदि में धारण करते हैं ॥८॥

द्यावा॒ यम॒ग्निं पृ॑थि॒वी जनि॑ष्टा॒माप॒स्त्वष्टा॒ भृग॑वो॒ यं सहो॑भिः ।
ईळे॒न्यं॑ प्र॒थमं॑ मा॒तरि॒श्वा॑ दे॒वास्त॑तक्षु॒र्मन॑वे॒ यज॑त्रम् ॥९॥

पदार्थः—(**यम्**) जिस (**अग्निम्**) अग्नि को (**द्यावा पृथिव्यौ**) द्युलोक और पृथिवी (**जनिष्टाम्**) उत्पन्न करते हैं, (**आपः**) जलें जिसे पैदा करती हैं, (**सहोभिः**) तेजों के साथ (**भृगवः**) उष्णता की लहरें (**यम्**) जिसको पैदा करती हैं, जिसको (**त्वष्टा**) सूर्य की दाहक किरण पैदा करती है, उस (**इडेन्यम्**) प्रशंसनीय (**यजत्रम्**) यजनीय अग्नि को (**प्रथमम्**) पहले (**मातरिश्वा**) वायु

उत्पन्न करता है और (देवाः) मरुत् आदि देव अथवा विद्वान् (मनवे) मनुष्य के लाभार्थ (ततक्षुः) उत्पन्न करते हैं।

भावार्थः—जिस अग्नि को द्यु और पृथिवी उत्पन्न करते हैं, जिसे जलें, जिसे उष्णता की लहरें, जिसे दाहक सूर्यकिरण पैदा करते हैं उसे सर्व प्रथम वायु उत्पन्न करता है और मरुद् आदि दिव्य पदार्थ एवं विद्वान् लोग उसे मनुष्य के लाभार्थ उत्पन्न करते हैं ॥९॥

यं त्वा देवा दधिरे हव्यवाहं पुरुस्पृहो मानुषासो यजत्रम् ।
स यामन्नग्ने स्तुवते वयो धाः प्र देवयन्यशसः सं हि पूर्वीः ॥१०॥

पदार्थः—(यम्) जिस (त्वा) इस (हव्यवाहम्) हवि को वहन करने वाले (यजत्रम्) यजनीय अग्नि को (देवाः) विद्वज्जन और (पुरुस्पृहः) बहुत-सी कामनाओं वाले (मानुषासः) मनुष्य लोग (दधिरे) धारण करते हैं, (सः) वह (अग्ने अग्नि (यामन्) यज्ञ में (स्तुवते) मन्त्रस्तुति करने वाले के लिए (वयः) अन्न को (प्रधाः) देता है तथा (देवयन्) देवकाम यजमान (हि) निश्चय (पूर्वीः) पूर्ण (यशसः) यशों को (सम्) संप्राप्त करता है।

भावार्थः—जिस हव्यवाहक अग्नि को विद्वज्जन और सुख आदि की कामनाओं वाले मनुष्य लोग यज्ञ में धारण करते हैं वह यह अग्नि यजमान को अन्न देता है और देवकाम यजमान पूर्णयशों को प्राप्त करता है ॥१०॥

यह दशम मण्डल में छयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—४७

सूचना—इस ४७वें सूक्त से लेकर ५०वें सूक्त तक का देवता इन्द्र वैकुण्ठ है। यहां ज्ञातव्य यह है कि "विकुण्ठा" नाम प्रकृति का है जो कभी कुण्ठित नहीं होती है। 'विकुण्ठा' में व्याप्त परमेश्वर ही वैकुण्ठ है। अतः वैकुण्ठ इन्द्र=प्रकृति में व्यापक परमेश्वर इन सूक्तों का देवता है।

ऋषिः १—८ सप्तगुः ॥ **देवता**—इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ **छन्दः**—१, ४, ७ त्रिष्टुप् । २ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ५, ६, ८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

जगृम्भा ते दक्षिणमिन्द्र हस्तं वसूयवो वसुपते वसूनाम् ।
विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥१॥

पदार्थः—(**वसूनाम् वसुपते**) समस्त वसुओं के स्वामी (**इन्द्र**) हे सर्व-शक्तिमन् परमेश्वर ! (**वसूयवः**) धन आदि की इच्छा करने वाले हम (**ते**) आपके (**दक्षिणम्**) दक्ष (**हस्तम्**) दुःख आदि के हन्ता सहारे वा बल को (**जगृम्भ**) ग्रहण करते हैं, (**शूर**) हे शक्तिशालिन् ! (**गोनाम्**) बहुत गौओं के (**गोपतिम्**) स्वामी (**त्वा**) आपको हम (**विद्म**) जानते हैं । (**हि**) अतः आप (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए अथवा हमें तू (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन (**दाः**) दे ।

भावार्थः—हे समस्त वसुओं के वसुपति सर्वशक्तिमन् परमेश्वर ! धन आदि की इच्छा करने वाले हम आप के कुशल बल वा पराक्रम को ग्रहण करते हैं । आप गौओं के स्वामी हो—यह भी हम जानते हैं । अतः हमें आप अद्भुत और सर्वसुखवर्षक धन दें ॥१॥

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम् ।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥२॥

पदार्थः—हे भगवन् ! (**स्वायुधम्**) उत्तम वज्र आदि आयुधों के स्वामी, (**स्ववसम्**) उत्तम रक्षा वाले (**सुनीथम्**) उत्तम नीति वाले, (**चतुः समुद्रम्**) आकाश सहित चारों समुद्रों में व्याप्त, (**रयीणाम्**) धनों के (**धरुणम्**) धारक (**चर्कृत्यम्**) जगत् की रचना जैसे कर्मों के पुनः-पुनः कर्त्ता, (**शस्यम्**) स्तुत्य और (**भरिवारम्**) अतिवरणीय आप को हम जानते हैं । अतः आप हमें अद्भुत सुखवर्षक धन दें ।

भावार्थः उत्तम वज्र आदि आयुधों के स्वामी, उत्तम रक्षक आकाश-पर्यन्त चतुःसमुद्र आदि में व्याप्त धनों के स्वामी और जगत्रचना प्रत्येक कल्प में करने वाले अत्यन्त वरणीय आप को हम जानते हैं । अतः आप हमें अद्भुत और सर्वसुखवर्षक धन दें ॥२॥

सुब्रह्माणं देववन्तं बृहन्तमुरुं गभीरं पृथुबुध्नमिन्द्र ।
श्रुतऋषिमुग्रमभिमातिषाहमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥३॥

पदार्थः (**इन्द्र**) हे इन्द्र=परमेश्वर ! आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**सुब्रह्मा-**

णयु) उत्तम ज्ञान से युक्त, (देववन्तम्) देव और विद्वानों के सेवक (बृहन्तम्) महान्, (गभीरम्) गम्भीर (पृथुबुध्नम्) विशाल मस्तिष्करूपी मूल वाला, (श्रुत-ऋषिम्) श्रुतऋषि वाला (उग्रम्) उग्र (अभिमातिसाहम्) शत्रुओं को मार भगाने वाला (चित्रम्) अद्भुत (वृषणम्) सर्वसुखवर्षक (रयिम्) पुत्र धन (दाः) दें।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप हमें उत्तम वेदज्ञान से युक्त, विद्वानों और यज्ञ सम्बन्धी देवों की परिचर्या करने वाला महान्, गभीर, विशाल मस्तिष्क वाला श्रुतऋषि और शत्रु का हराने वाला, अद्भुत सर्व सुख-वर्षक पुत्र धन दें ॥३॥

सनद्वाजं विप्रवीरं तरुत्रं धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
दस्युहनं पूर्भिदमिन्द्र सत्यमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥४॥

पदार्थः—(सनद्वाजम्) लब्धान्न, (वि प्रवीरम्) मेधावी, (तरुत्रम्) तारक, (धनस्पृतम्) धनों का पूरक (शूशुवांसम्) वृद्धिवाला, (सुदक्षम्) उत्तम बल वाला (दस्युहनम्) दस्युओं का हन्ता, (पूर्भिदम्) शत्रूओं की पुरी को प्रनष्ट करने वाला (सत्यम्) सत्यकर्मा (चित्रम्) अद्भुत (वृषणम्) सर्वसुख वर्षक (रयिम्) पुत्र धन (अस्मभ्यम्) हमें (इन्द्र) हे भगवन् ! आप (दाः) दें।

भावार्थः—हे भगवन् ! आप हमें लब्धान्न, मेधावी, तारक धनों का पूरक, वृद्धि वाला, उत्तम बलोंवाला, शत्रुहन्ता, शत्रुओं के पुरों का विनाशक, सत्यकर्मा, अद्भुत और सर्वसुखवर्षक पुत्र धन दें ॥४॥

अश्वावन्तं रथिनं वीरवन्तं सहस्रिणं शतिनं वाजमिन्द्र ।
भद्रव्रातं विप्रवीरं स्वर्षामस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) भगवन् ! आप (अस्मभ्यम) हमें (अश्वावन्तम्) अश्वों वाला, (रथिनम्) रथों वाला, (वीरवन्तम्) पौत्र आदि वाला, (सहस्रिणम्) सहस्र वाला (शतिनम्) शत वाला, (वाजम्) बलवान्, (भद्र व्रातम्) भद्रजनों के समूह से युक्त, (विप्रवीरम्) मेधावी (स्वर्षाम्) सबका बांटने वाला (चित्रम्) अद्भुत (वृषणम्) सर्वसुखवर्धक (रयिम्) पुत्र धन (दाः) दें।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप हमें अश्वोंवाला, रथोंवाला, पौत्र आदि से युक्त होने वाला सहस्रों धनों से युक्त मेधावी, भद्रजनों के समूह

Scanned by CamScanner

वाला और सबको बांट कर खानेवाला अद्भुत सर्वसुखवर्षक पुत्र धन दें ॥५॥

प्र स॒प्तगु॑मृ॒तधी॑तिं सु॒मे॒धां बृह॒स्पतिं॑ म॒तिरच्छा॑ जिगाति ।
य आ॑ङ्गिर॒सो नम॑सोप॒सद्यो॒ऽस्मभ्यं॑ चि॒त्रं वृष॑णं र॒यिं दाः ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**आंगिरसः**) सृष्टि के अंग प्रत्यंग में रमे हुए (**नमसा**) विनयपूर्वक (**उपसद्यः**) प्राप्त होने योग्य है उस (**सप्तगुम्**) सात प्राणों के अथवा सप्त लोकों के आत्मा (**ऋतधीतिम्**) सृष्टि नियम के धारक (**सुमेधाम्**) उत्तम ज्ञान वाले (**बृहस्पतिं**) वेदवाणी के स्वामी परमेश्वर को (**मतिः**) स्तुति (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**जिगाति**) गाती है । हे प्रभो ! आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) अद्भुत, (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन दें ।

भावार्थः—जो परमेश्वर सृष्टि के अंग-प्रत्यंग में रमा हुआ विनयपूर्वक प्राप्त होने योग्य है उस सातलोकों के आत्मा सृष्टि नियम के धारक, उत्तम ज्ञानी और वेद वाणी के स्वामी को स्तुति अच्छी प्रकार गाती है । हे प्रभो ! आप हमें अद्भुत, सर्वसुखवर्षक धन दें ॥६॥

वनी॑वानो॒ मम॑ दू॒तास॒ इन्द्रं॒ स्तोमा॑श्चरन्ति सु॒म॒तीरि॑या॒नाः ।
हृ॒दि॒स्पृशो॒ मन॑सा व॒च्यमा॑ना अ॒स्मभ्यं॑ चि॒त्रं वृष॑णं र॒यिं दाः ॥७॥

पदार्थः—(**वनीवानः**) श्रद्धा भक्ति से युक्त (**मम**) मुझ स्तोता के (**दूतासः**) दूत सदृश (**सुमती**) उत्तम बुद्धियों को (**इयानाः**) लिये हुए (**स्तोमा**) स्तुतियां (**इन्द्रम्**) परमेश्वर के प्रति (**चरन्ति**) जाती हैं तथा ये (**हृदिस्पृशः**) हमारे हृदय को छूने वाले और (**मनसा**) मन से (**वच्यमानाः**) उक्त होते हैं । हे प्रभो ! (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन (**दाः**) दे ।

भावार्थः भक्ति से युक्त मेरे दूत सदृश, बुद्धियुक्त मेरी स्तुतियां परमेश्वर के पास पहुंचती हैं । वे हमारे हृदयस्पर्शी और मन से उच्चारित वचन हैं । प्रभो ! आप हमें अद्भुत सर्वसुखवर्षक धन दें ॥७॥

यत्त्वा॒ यामि॑ द॒द्धि तन्न॑ इन्द्र बृ॒हन्तं॒ क्षय॒मस॑मं॒ जना॑नाम् ।
अ॒भि तद् द्यावा॑पृथि॒वी गृ॑णीताम॒स्मभ्यं॑ चि॒त्रं वृष॑णं र॒यिं दाः ॥८॥

पदार्थः - हे (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**त्वा**) तुझसे (**यत्**) जो (**यामि**) मांगू (**तत्**) वह (**नः**) हमें (**दद्धि**) दे, और (**बृहन्तम्**) महान् (**क्षयम्**) ऐश्वर्य जो (**जनानाम्**) और लोगों से (**असमम्**) अधिक है,दे, तथा (**द्यावापृथिवी**) राजा और प्रजा (**अभिगृणीताम्**) प्रशंसा करें, हे प्रभो ! आप (**अस्मभ्यम्**) हमें (**चित्रम्**) अद्भुत (**वृषणम्**) सर्वसुखवर्षक (**रयिम्**) धन दें।

भावार्थः—हे भगवन् ! तुझसे मैं जो मांगू वह तू मुझे दे। लोगों से अत्यधिक ऐश्वर्य मुझे दे। तथा इसकी राजा और प्रजा प्रशंसा करें। हे प्रभो ! आप हमें अद्भुत, सर्वसुखवर्षक धन दें ॥८॥

यह दशम मण्डल का संतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

सूक्त ४८

ऋषिः—१—११ इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ देवता --इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ छन्दः १, ३ पादनिचृज्जगती। २, ८ जगती। ४ निचृज्जगती। ५ विराड्जगती। ६, ६ आर्चीस्वराड्जगती। ७ विराट्त्रिष्टुप्। १०, ११ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ ६, ८, ६, निषादः। ७, १०, ११ धैवतः ॥

अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः।
मां हवन्ते पितरं न जन्तवोऽहं दाशुषे वि भजामि भोजनम् ॥१॥

पदार्थः— भगवान् कहते हैं—(**अहम्**) मैं (**वसुनः**) सबको बसाने वाले जगत् का (**पूर्व्यः**) अनादि कालिक अर्थात् जिससे पूर्व कोई नहीं ऐसा स्वमी (**भुवम्**) हूं (**अहम्**) मैं (**शश्वतः**) समस्त (**धनानि**) धनों को (**संजयामि**) भली प्रकार संगत रखता हूं, (**जन्तवः**) प्राणीमात्र (**माम्**) मुझे (**पितरम् न**) पिता के समान (**हवन्ते**) पुकारते हैं, (**अहम्**) मैं (**दाशुषे**) दाता को (**भोजनम्**) भोजन (**विभजामि**) देता हूं।

भावार्थः— भगवान् कहते हैं कि मैं जगत् का सबसे पूर्व अर्थात् जिस से पूर्व कोई नहीं ऐसा अनादिकालिक स्वामी हूँ। मैं शाश्वत धनों को प्राप्त हूँ, मुझे प्राणी पिता के समान पुकारते हैं और दानशील व्यक्ति को भोजन मैं देता हूं ॥१॥

Scanned by CamScanner

अहमिन्द्रो रोधो वक्षो अथर्वणस्त्रिताय गा अजनयमहेरधि ।
अहं दस्युभ्यः परि नृम्णमा ददे गोत्रा शिक्षन् दधीचे मातरिश्वने ॥२॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**इन्द्रः**) इन्द्र=परमेश्वर (**अथर्वणः**) वायु वा प्राण के (**वक्षः**) वक्षस्थलभूत अन्तरिक्ष का (**रोधः**) ठहराने वाला हूं, मैं (**अहेः**) मेघ के (**अधि**) ऊपर (**त्रिताय**) तीन स्थानों पर विद्यमान अग्नि के लिए (**गाः**) जलों को (**अजनयम्**) उत्पन्न करता हूँ (**अहम्**) मैं (**दस्युभ्यः**) मेघों से (**नृम्णम्**) धन का (**परि**) सब तरफ से (**आददे**) ग्रहण कर सबको देता हूँ, (**मातरिश्वने**) माता के गर्भ में रहने वाले (**दधीचे**) जीव को (**गोत्रा**) इन्द्रियों के रक्षण और बोलने की शक्ति (**शिक्षन्**) बताते हुए (**ददे**) देता हूं ।

भावार्थः—मैं परमेश्वर वायु के वक्षःस्थल सदृश अन्तरिक्ष लोक को रोककर धारण कर रहा हूँ, मैं मेघ के ऊपर अग्नि के लिए जलों को उत्पन्न करता हूँ, मैं मेघों से वृष्टि द्वारा धन लेकर सबको देता हूँ और गर्भस्थ जीव को इन्द्रियों की रक्षणशक्ति और बोलने की शक्ति मैं देता हूं ॥२॥

मह्यं त्वष्टा वज्रमतक्षदायसं मयि देवासोऽवृजन्नपि क्रतुम् ।
ममानीकं सूर्यस्येव दुष्टरं मामार्यन्ति कृतेन कर्त्वेन च ॥३॥

पदार्थः— (**त्वष्टा**) सूर्य (**मह्यम्**) मेरे ही (**आयसम्**) अयोमय (**वज्रम्**) वज्र को (**अतक्षत्**) प्रकट करता है, (**मयि**) मेरे में ही (**देवासः**) विद्वज्जन (**क्रतुम् अपि**) कर्म को (**अवृजन्**) अर्पण करते हैं, (**मम**) मेरा (**अनीकम्**) तेज (**सूर्यस्य**) सूर्य के समान (**दुष्टरम्**) असह्य है, समस्त लोक (**कृतेन**) किये सत्कर्म से (**च**) और (**कर्त्वेन**) किये जाने वाले से (**माम्**) मुझे (**आर्यन्ति**)प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—सूर्य मेरे ही वज्र को प्रकट करता है, विद्वान् लोग अपने कर्मों का समर्पण मुझ में करते हैं, मेरा तेज सूर्य के समान दुःसह्य है तथा समस्त लोक किये सत्कर्म से अथवा किये जाने वाले से मुझे ही प्राप्त होते हैं ॥३॥

अहमेतं गव्ययमश्व्यं पशुं पुरीषिणं सायकेना हिरण्ययम् ।
पुरू सहस्रा नि शिशामि दाशुषे यन्मा सोमास उक्थिनो अमन्दिषुः ॥४॥

पदार्थः (**यत्**) जब (**उक्थिनः**) वेदज्ञ (**सोमासः**) योगी जन (**मा**) मुझे (**अमन्दिषुः**) प्रसन्न करते हैं तब मैं (**दाशुषे**) कर्मों का मुझ में समर्पण करने वाले के लिए (**पुरु सहस्रा**) अनेक सहस्रों ऐश्वर्य को (**शिशामि**) देता हूँ, (**अहम्**) मैं (**एतम्**) इस (**गव्यम्**) इन्द्रियों के स्वामी, (**अश्व्यम्**) शरीर के स्वामी (**पुरीषिणम्**) नाना ऐश्वर्यों के स्वामी (**हिरण्यम्**) प्रकाशमय (**पशुम्**) द्रष्टा आत्मा को (**सायकेन**) वाणसम तीक्ष्ण ज्ञान से युक्त करता हूँ ।

भावार्थः—जब वेदज्ञ योगीजन मुझे प्रसन्न करते हैं तब मैं कर्मों का मुझ में समर्पण करने वाले के लिए सहस्रों ऐश्वर्यों को प्रदान करता हूं। मैं इन्द्रियों के स्वामी, शरीर के स्वामी, ऐश्वर्यों वाले ज्ञान प्रकाश वाले द्रष्टा जीव को वाण सम तीक्ष्ण अज्ञाननाशक ज्ञान से युक्त करता हूं ।।४।।

अहमिन्द्रो न परा जिग्य इद्धनं न मृत्यवेऽव तस्थे कदा चन ।
सोममिन्मा सुन्वन्तो याचता वसु न मे पूरवः सख्ये रिषाथन ॥५॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**इन्द्रः**) सर्वशक्तिमान् हूं, (**न**) नहीं (**पराजिग्ये**) किसी से पराजित होता हूँ (**धनम्**) मेरा धन प्रकृति (**इत्**) भी नहीं समाप्त होता, (**कदा चन**) कभी भी (**मृत्यवे**) मृत्यु के लिए (**न**) नहीं (**तस्थे**) उपस्थित होता हूँ (**सोमम्**) सोम को (**सुन्वन्तः**) तैयार करने वाले यजमानो ! (**मा इत्**) मुझे ही (**वसु**) धन (**याचत**) मांगो, हे (**पूरवः**) मनुष्यो (**मे**) मेरे (**सख्ये**) मैत्री में (**न**) नहीं (**रिषाथन**) कभी नाश को प्राप्त हो ।

भावार्थः—मैं सर्वशक्तिमान् हूँ, कभी भी किसी से पराजित नहीं होता हूं। मेरा धन प्रकृति भी कभी समाप्त नहीं होता। मैं कभी भी मृत्यु का शिकार नहीं होता। सोम तैयार करते हुए हे यजमानो ! मुझ से ही धन की याचना करो। हे मनुष्यो ! मेरी मैत्री में रहते हुए तुम्हें कोई हानि नहीं होगी ।।५।।

अहमेताञ्छाश्वसतो द्वाद्वेन्द्रं ये वज्रं युधयेऽकृण्वत ।
आह्वयमानाँ अव हन्मनाहनं दृळ्हा वदन्ननमस्युर्नमस्विनः ॥६॥

पदार्थ—(**अहम्**) मैं (**शाश्वसतः**) सांस लेने वाले (**एतान्**) इन (**द्वा द्वा**) दो दो के जोड़े हुए काम क्रोधादि द्वन्द्व रूप शत्रुओं को (**अवाहनम्**) मारता हूँ, (**ये**) जो (**वज्रम्**) बलवान् (**माम्**) मुझ (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**युधये**)

युद्ध के लिए (**अकृण्वत**) करते हैं, (**आह्वयमानान्**) लड़ने का आह्वान करने वाले (**नमस्विनः**) शस्त्र वाले (**दृढा**) दृढ़ वचनों को (**वदन्**) बोलता हुआ (**अनमस्युः**) न नमता हुआ (**हन्मना**) मारने के विचार वाला होकर (**अव अहनम्**) नष्ट करता हूँ ।

भावार्थः—मैं शक्तिशाली इन्द्र=परमेश्वर इन श्वास लेने वाले द्वन्द्वों को जो काम क्रोध आदि हैं विनष्ट करता हूं जोकि वज्र रूप मुझे युद्ध करने को आह्वान करते हैं। इस प्रकार ललकारने वाले शक्तिशाली शत्रुओं का मैं नाश करता हूं।

यहाँ सारा वर्णन साहित्यिक भाषा में है ॥६॥

अभी३दमेकमेको अस्मि निष्षाळभी द्वा किमु त्रयः करन्ति ।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्राः ॥७॥

पदार्थ—मैं (**इदम्**) इस समय (**निः षाड्**) शत्रुओं का नाश करने वाला (**एकः**) अकेला ही (**अभि**) चारों तरफ से खाने वाला (**अस्मि**) हूं (**एकम्**) अकेले मुझ को (**अभि**) लक्ष्य करके (**द्वा**) दो (**त्रयः**) तीन (**उ**) भी (**किम्**) क्या (**करन्ति**) कर सकेंगे, (**खले**) खलिहान में (**पर्षान् न**) धान की पूली समान (**भूरि**) बहुत शत्रुओं को (**प्रति हन्मि**) मारूंगा, (**अनिन्द्राः**) इन्द्र-विरोधी (**शत्रवः**) शत्रुजन (**मा**) मेरी (**किम्**) क्या (**निन्दन्ति**) निन्दा करेंगे ।

भावार्थः—जो कुछ भी बल और पराक्रम का कार्य है वह सब इन्द्र में माना जाता है अतः यहाँ पर मन्त्रों में भगवान् के द्वारा वह कहा जा रहा है। वस्तुतः भगवान् किसी शत्रु से लड़ाई नहीं करता है। शत्रुओं का नाश करने वाला मैं अकेला हूं। मुझ अकेले का दो तीन वा अधिक क्या कर सकते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते हैं। खलिहान में जिस प्रकार किसान धान की पूली को सटक कर पयाल अलग और धान अलग कर देता है वैसे ही मैं इन सब को मार डालूँगा ॥७॥

अहं गुङ्गुभ्यो अतिथिग्वमिष्करमिषं न वृत्रतुरं विक्षु धारयम् ।
यत्पर्णयघ्न उत वा करञ्जहे प्राहं महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**गुङ्गुभ्यः**) ज्ञानी जनों के लिए अर्थात् इनके रक्षणार्थ (**अतिथिग्वम्**) अतिथिपूजक (**इष्करम्**) अन्न के उत्पादक (**इषम् न**)

Scanned by CamScanner

अन्न के समान (**वृत्रतुरम्**) आपदाओं के नाश करने वाले व्यक्ति को (**विक्षु**) प्रजा जनों में (**धारयम्**) धारण करता हूं (**यत्**) क्योंकि पालक शक्ति वाले मेघ (**उत वा**) अथवा (**करञ्जहे**) किरणों के प्रभाव से पानी त्यागने वाले मेघ के (**महे**) महान् (**वृत्रहत्ये**) वृत्र युद्ध में (**अशुश्रवि**) प्रसिद्ध रूप से सुना जाता हूँ।

भावार्थः– मैं ज्ञानियों की रक्षा के लिए अतिथिपूजक, अन्न के उत्पादक और अन्न की भांति आपदाओं के नाश करने वाले व्यक्ति को प्रजा जनों में उत्पन्न करता हूं। क्योंकि वृत्रयुद्ध में पालक जल को सुखा देने वाले और के किरणों के विना जल को न छोड़ने वाले मेघोंके महान् वृत्रयुद्ध में प्रसिद्ध हूं ॥८॥

प्र मे नमी साप्य इषे भुजे भूद्गवामेषे सख्या कृणुत द्विता ।
दिद्युं यदस्य समिथेषु मंहयमादिदेनं शंस्यमुक्थ्यं करम् ॥९॥

पदार्थः - (**मम**) मेरा (**नमी**) स्तोता तथा (**साप्यः**) सबके द्वारा आश्रयणीय व्यक्ति (**इषे**) ज्ञान के लिए और (**भुजे**) उत्तम भोग के लिए (**प्र भत्**) समर्थ होता है, तथा (**गवामेषे**) गौओं अथवा वेदवाणी की प्राप्ति में और (**सख्या**) सख्य के लिए लोग मेरे स्तोता को (**द्विता**) दो प्रकार का (**कृणुत**) करते हैं। (**यत्**) क्योंकि (**अस्य**) इस स्तोता के लिए (**समिथेषु**) संसारी जीवन युद्धों में (**दिद्युम्**) ज्ञान प्रकाश को (**मंहयम्**) प्रदान करता हूँ, (**आत् इत्**) अनन्तर (**एनम्**) इसको (**शस्यम्**) स्तुत्य और (**उक्थ्यम्**) प्रशंसनीय (**करम्**) करता हूँ।

भावार्थः– मेरा स्तोता सबके द्वारा आश्रयणीय होकर ज्ञानप्राप्ति और उत्तम भोगों की प्राप्ति में समर्थ होता है, लोग वेदवाणी की प्राप्ति में और मेरे सख्य के लिए उसे दो प्रकार का बना देते हैं। उसके जीवन-संग्रामों में मैं ज्ञान-प्रकाश देता हूँ और उसे प्रशस्त एवम् उत्तम बना देता हूं ॥९॥

प्र नेमस्मिन्ददृशे सोमो अन्तर्गोपा नेममाविरस्था कृणोति ।
स तिग्मशृङ्गं वृषभं युयुत्सन् द्रुहस्तस्थौ बहुले बद्धो अन्तः ॥१०॥

पदार्थः—(**नेमस्मिन्**) एक में (**अन्तः**) अन्दर (**सोमः**) आत्मा का प्रकाश (**ददृशे**) दिखायी पड़ता है, (**नेमम्**) एक को परमेश्वर (**अस्था**) अज्ञान-नाशक शक्ति से (**आविः कृणोति**) प्रकट करता है, (**सः**) वह जिसके अन्दर

Scanned by CamScanner

आत्मा का प्रकाश नहीं दीखता है (तिग्मशृंगम्) तीक्ष्ण शृङ्ग वाले (वृषमम्) भोगों के वर्षक संसार को (युयुत्सन्) प्राप्त होता हुआ (द्रुहः) द्रोही की तरह (बद्धः) बंधा हुआ (बहुले) महान् जगत् के भोगों के (अन्तः) अन्दर (तस्थौ) पड़ा रहता है ।

भावार्थः—एक में आत्मज्ञान का प्रकाश प्रकट दिखाई पड़ता है। एक में परमेश्वर अपनी अज्ञान नाशक शक्ति से प्रकट करता है ! परन्तु एक वह जिसमें यह प्रकाश नहीं दीखता है तीक्ष्ण शृङ्गों अर्थात् दुःखों से युक्त भोगों के वर्षक संसार को प्राप्त हुआ द्रोही के समान बद्ध होकर संसार के भोग में ही पड़ा रहता है ॥१०॥

आदित्यानां वसूनां रुद्रियाणां देवो देवानां न मिनामि धाम ।
ते मा भद्राय शवसे ततक्षुरपराजितमस्तृतमषाळ्हम् ॥११॥

पदार्थ—(देवः) देवों का देव (इन्द्रः) परमेश्वर (आदित्यानाम्) बारह आदित्यों, (वसूनाम्) ८ वसुओं और (रुद्रियाणाम्) रुद्र सम्बन्धी मरुतों और दूसरे (देवानाम्) देवों के (धाम) नाम, स्थान और जन्म को (न) नहीं (मिनाति) नष्ट करता है । (ते) वे सभी देव भगवान् की कृपा से (अपराजितम्) अपराजित, (अस्तृतम्) अहिंसित (अषाढम्) अतिरस्कृत (मा) मुझे (भद्राय) कल्याण कारक (शवसे) अन्न धन के लिए (ततक्षुः) अनुग्रह करें ।

भावार्थः—देवों का देव परमेश्वर, आदित्य, वसु, मरुत् और दूसरे देवों के तेज आदि को नहीं नष्ट करता है। उसकी कृपा से ये अपराजित, अहिंसित और अतिरस्कृत मुझ को अन्न धन आदि देने का अनुग्रह करें ॥११॥

यह दशम मण्डल का अडतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—४६

ऋषिः—१—११ इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ देवता—इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ छन्दः—१ आर्चीभुरिग्जगती । ३, ६ विराड्जगती । ४ जगती । ५, ६, ८ निचृज्जगती । ७ आर्चीस्वराट्जगती । १० पादनिचृज्जगती । २ विराट्त्रिष्टुप् । ११ आर्चीस्वराट्-त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३—१० निषादः । २, ११ धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

अहं दां गृणते पूर्व्यं वस्वहं ब्रह्म कृणवं मह्यं वर्धनम् ।
अहं भुवं यजमानस्य चोदितायज्वनः साक्षि विश्वस्मिन्भरे ॥१॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (गृणते) स्तुति कर्त्ता के लिए (पूर्व्यम्) मुख्य (वसु) मोक्ष रूप धन (दाम्) देता हूं, (अहम्) मैं (मह्यम्) मुझे (वर्धनम्) बढ़ाने वाले (ब्रह्म) वेद-ज्ञान को (कृणवम्) उत्पन्न करता हूँ। (अहम्) मैं (यजमानस्य) यजमान का (चोदिता) प्रेरक (भुवम्) होता हूँ, (विश्वस्मिन्) सभी (भरे) जीवन संग्राम में (अयज्वनः) अयज्ञशील को न्याय से (साक्षि) दबाता हूँ ।

भावार्थः—परमेश्वर कहता है—मैं स्तोता को मोक्ष-धन प्रदान करता हूं। मैं मेरे वर्धक वेदज्ञान को उत्पन्न करता हूं। मैं यजमान में यज्ञभावना का प्रेरक हूँ और अयज्ञशीलों को सभी जीवन-संग्रामों में न्याय से दबाता हूं ॥१॥

मां धुरिन्द्रं नाम देवता दिवश्च ग्मश्चापां च जन्तवः ।
अहं हरी वृषणा विव्रता रघू अहं वज्रं शवसे धृष्ण्वा ददे ॥२॥

पदार्थः (माम्) मुझ (इन्द्रम्) परमेश्वर को ही (जन्तवः) प्राणी लोग (दिवः) द्युलोक का (ग्मः) पृथिवी का (च) और (अपाम्) जलों का (च) भी (देवता नाम) देव नाम से (धुः) पुकारते हैं (अहम्) मैं (वृषणा) बलवान् (विव्रता) विविध कर्म वाले (रघू) वेगशील (हरी) वायु और किरणों को (आ ददे) वश में रखता हूं और (शवसे) बलकृति के लिए (अहम्) मैं (धृष्णु) धर्षणकारी (वज्रम्) वज्र को धारण करता हूँ।

भावार्थः—मुझ परमेश्वर को प्राणी लोग द्यु, पृथिवी और जलों के परम देवता के नाम से पुकारते हैं। मैं बलशाली, विविध कर्मों वाले वायु और किरण को वश में रखता हूं और बलकृति को प्रकट करने के लिए मैं धर्षक वज्रशक्ति को धारण करता हूं ॥२॥

अहमत्कं कवये शिश्नथं हथैरहं कुत्समावमाभिरूतिभिः ।
अहं शुष्णस्य श्नथिता वधर्यमं न यो रर आर्यं नाम दस्यवे ॥३॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (कवये) क्रान्तदर्शी विद्वान् के लिए (अत्कम्) ज्ञानाच्छादक अन्धकार को (हथैं) घातक शक्तियों से (शिश्नथम्) नष्ट करता हूँ,

Scanned by CamScanner

(अहम्) मैं (आभिः ऊतिभिः) इन रक्षाओं से (कुत्सम्) मन्त्र के प्रयोग करने वाले को (आवम्) रक्षित करता हूँ, (अहम्) मैं (शुष्णस्य) शुष्क मेघ का (इनयिता) हिंसक हूं और तदर्थ (वधः) घातक वज्र को (यमम्) धारण करता हूं, मैं वह हूँ (यः) जो (दस्यवे) डाकू चोर अथवा वृष्टि न करने वाले मेघ को (आर्यम्) श्रेष्ठ (नाम) नाम (न) नहीं (ररे) देता हूँ।

भावार्थः— मैं ज्ञानी के लिए ज्ञानावरोधक शक्ति को विनाशक साधनों से नष्ट करता हूं, वेदमन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले को रक्षणों द्वारा रक्षित करता हूं। मैं वृष्टि न करने वाले शुष्क मेघ का नाश करने वाला उस कार्य के लिए वज्र धारण करता हूं। मैं वह हूं जो दस्यु अथवा वृष्टि को रोकने वाले मेघ को आर्य=श्रेष्ठ नाम नहीं देता ॥३॥

अहं पितेव वेतसूँरभिष्टये तुग्रं कुत्साय स्मदिभं च रन्धयम् ।
अहं भुवं यजमानस्य राजनि प्र यद्भरे तुजये न प्रियाधृषे ॥४॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (पिता इव) पिता की तरह (अभिष्टये) कल्याण के लिए (वेतसून्) उद्धत, (तुग्रम्) जल और (स्मदिभम्) उद्दण्ड मेघ को (कुत्साय) स्तोता के लिए (रन्धयम्, विदारित करता हूँ (अहम्) मैं (यजमानस्य) यजमान के (राजनि) प्रकाशन में (भुवम्) होता हूँ (यत्) इस लिए (तुजये न) पुत्र के समान उस यजमान के लिए (आधृषे) बुराइयों के घर्षणार्थं (प्रिया) प्रिय वस्तुएँ (प्रभरे) देता हूं।

भावार्थः—मैं पिता की तरह कल्याणार्थ उद्धत जल और मेघ को स्तोता के लिए विदारित करता हूं। मैं यजमान को प्रकाश देताहूं और जैसे पिता पुत्र के लिए करता है उसी प्रकार यजमान के लिए मैं बुराइयों का नाश करता हूं और प्रिय वस्तुएँ प्रदान करता हूं ॥६॥

अहं रन्धयं मृगयं श्रुतर्वणे यन्माजिहीत वयुना चनानुषक् ।
अहं वेशं नम्रमायवेऽकरमहं सव्याय षड्गृभिमरन्धयम् ॥५॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (श्रुतर्वणे) वेदोपदेश पर चलने वाले व्यक्ति के लिए (मृगयम्) विषय विलास को (रन्धयम्) वश में रखने की प्रेरणा देता हूँ, (यत्, जिससे (वयुना चन) ज्ञान से और कर्म से वह (आनुषक्) निरन्तर (मा) मेरी ओर (आजिहीत्) आवे, (अहम्) मैं (आयवे) गतिशील मनुष्य के लिये (वेशम्)

अन्त:प्रविष्ट आत्मा (नम्रम्) नम्र (अकरम्) करता हूँ, (अहम्) मैं (सव्याय) दु:खों को क्षीण करने के लिए (पड्गृभिम्) मार्ग-बाधक को (रन्धयम्) वश में करता हूँ ।

भावार्थः—मैं वेदोपदेश के अनुसार चलने वाले के लिए विषय-विलास की भावना को उसके वश में करने की प्रेरणा करता हूं, जिससे वह मेरे पास निरन्तर आ सके। प्रगतिशील मनुष्य की अन्त: स्थित आत्मा को उसके वश में कराता हूं और दु:खों के दूर करने के लिए मार्ग-बाधाओं को वश में कराता हूं ॥५॥

अहं सो यो नववास्त्वं बृहद्रथं सं वृत्रेव दासं वृत्रहारुजम् ।
यद्वर्धयन्तं प्रथयन्तमानुषग्दूरे पारे रजसो रोचनाकरम् ॥६॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (सः) वह हूँ (यः) जो मैं (वृत्रहा) मेघ का मारने वाला हूँ तथा (वृत्रा इव) वृत्र की भांति (नववास्त्वम्) नवीन स्थान में रहने वाले (बृहद्रथम्) बृहत्काय (दासम्) पानी को न छोड़ने वाले मेघ को (समारुजम्) भली प्रकार भग्न करता हूँ (यत्) इस कारण से (वर्धयन्तम्) बढ़ते हुए और (प्रथमानम्) विस्तार को प्राप्त होते हुए मेघ को भी (आनुषक्) निरन्तर (रोचना) प्रकाशमान (रजसः) लोक अर्थात् अन्तरिक्ष लोक के (दूरे पारे) पृथिवी पर (अकरम्) कर देता हूं ।

भावार्थः—मैं वह हूं जो मेघ को मारता है। वृत्त की भांति नवीन स्थान वाले बृहत्काय दास=पानी न छोड़ने वाले मेघ को भग्न करता हूँ। इस कारण से बढ़ते हुए प्रथनशील मेघों को अन्तरिक्ष से दूर पृथिवी पर ला देता हूँ ॥६॥

अहं सूर्यस्य परि याम्याशुभिः प्रैतशेभिर्वहमान ओजसा ।
यन्मा सावो मनुष आह निर्णिज ऋधक्कृषे दासं कृत्व्यं हथैः ॥७॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (सूर्यस्य) सूर्य की (आशुभिः) शीघ्रगामी (एतशेभिः) अश्व सदृश किरणों से (वहमानः) धारण किया हुआ (ओजसा) बल से (परिप्रयामि) चारों तरफ पहुंचता हूँ (यत्) जब (मनुषः) मनुष्य का (सावः) हित (मा) मुझे (आह) कहता है तब मैं (निर्णिजे) उसे प्रकट रूप देने के लिए (कृत्व्यम्) करणीय कर्त्तव्य (दासम्) मेघ को (हथैः) हनन साधनों से (ऋधक्) पृथक् (कृषे) करता हूँ ।

Scanned by CamScanner

भावार्थ:—मैं सूर्य की शीघ्रगामी किरणों से चारों तरफ पहुँच जाता हूँ। जब मनुष्य का हित मुझे कहता है तब मैं कर्त्तव्य की पूर्त्ति में मेघ का वध करता हूँ ॥७॥

अहं स॒प्तहा नहु॑षो नहु॑ष्टरः॒ प्राश्रा॑वयं॒ शव॑सा तु॒र्वशं॒ यदु॑म् ।
अहं न्य१॒॑न्यं स॒ह॑सा॒ सह॑स्करं॒ नव॒ व्राध॑तो नव॒तिं च॑ वक्षयम् ॥८॥

पदार्थ—(अहम्) मैं (सप्तहा) सात प्रकार के अथवा सर्पणशील मेघों का मारने वाला हूँ, (नहुषः) बांधने वाला और (नहुष्टरः) अधिक बांधने वाला हूँ, (शवसा) बल से (तुर्वशम्) अपने को शीघ्र वश में करने वाले (यदुम्) यत्नशील को (प्राश्रावयम्) कीर्त्तिमान करता हूँ, (अहम्) मैं (अन्यम्) दूसरे स्तोता को (सहसा) बल से (सहः) बली (करम्) करता हूं, (नव नवतिम् च) ९९ (व्राधतः) बढ़ते हुए मेघों को (वक्षयम्) विनष्ट करता हूँ।

भावार्थ:—मैं सर्पणशील मेघों का मारने वाला और बन्धक से भी बन्धकनर हूँ। मैं बल से शीघ्र वश में करने वाले और यत्नशील मनुष्यों को कीर्त्तिमान करता हूं। मैं दूसरे स्तोता को बल से बली बनाता हूँ बढ़ते हुए ९९ मेघों को विनष्ट करता हूं ॥८॥

अहं स॒प्त स्र॒वतो॑ धारयं॒ वृषा॑ द्रवि॒त्न्वः॑ पृथि॒व्यां सी॒रा अधि॑ ।
अ॒हमर्णां॑सि॒ वि ति॑रामि सु॒क्रतु॑र्यु॒धा वि॑दं॒ मन॑वे गा॒तुमि॒ष्टये॑ ॥९॥

पदार्थ—(वृषा) बलवान् (अहम्) मैं (सप्त) सात (स्रवतः) बहते प्राणगण को (धारयम्) जीव को धारण कराता हूँ, (द्रवित्नवः) वहनशील (सीराः) शरीर की नाड़ियों को भी जीव को धारण कराता हूँ, (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञावान् मैं (अर्णांसि) जलों वा रक्त को (वि तिरामि) इन्हें देता हूँ, (मनवे) मनुष्य के लिए (इष्टये) उसके गमन के लिए (गातुम्) मार्ग को (अविदम्) प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थ:—मैं शक्तिशाली हूं और सप्त प्राणों तथा शरीर में बहने वाली नाड़ियों को जीव को धारण कराता हूं। उत्तम ज्ञान वाला मैं जल वा रक्त को उनमें पूर्ण करता हूं। मनुष्य के लिए मैं उत्तम मार्ग को प्राप्त कराता हूँ ॥९॥

Scanned by CamScanner

अहं तदासु धारयं यदासु न देवश्चन त्वष्टाधारयद्रुशत् ।
स्पार्हं गवामूधःसु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्यं सोममाशिरम् ॥१०॥

पदार्थः— (**अहम्**) मैं (**आसु**) इन नाड़ियों में (**तत्**) वह रस धारण कराता हूँ (**यत्**) जिसको (**रुशद्**) प्रकाशमान (**देवश्चन**) ज्ञानवाला (**त्वष्टा**) शिल्पी भी (**न**) नहीं (**अधारयत्**) धारण करा सकता है, (**गवाम्**) गौओं के (**ऊधःसु**) स्तनों में दूध और (**वक्षणासु**)नदियोंमें (**श्वात्र्यम्**)शीघ्रगामी(**मधु**) जल जिस प्रकार बहता है वैसे ही (**स्पार्हम्**) स्पृहणीय (**मधोः**) सारों का (**मधु**) सार (**आशिरम्**) शरीर के आश्रयभूत (**सोमम्**) वीर्य को भी देह में धारण कराता हूँ ।

भावार्थः—मैं इन नाड़ियों में उस रस (रक्त) को धारण कराता हूं जिसको कि ज्ञानी उत्तम शिल्पी भी धारण नहीं करा सकता है। गौओं के स्तन में जिस प्रकार दूध और नदियों में जिस प्रकार वेगवाला जल बहता है उसी प्रकार सारों के सारभूत शरीर के आधार वीर्य को भी मैं शरीर में धारण कराता हूँ ॥१०॥

एवा देवाँ इन्द्रो विव्ये नॄन् प्र च्यौत्नेन मघवा सत्यराधाः ।
विश्वेत्ता ते हरिवः शचीवोऽभि तुरासः स्वयशो गृणन्ति ॥११॥

पदार्थ—(**मघवा**) मखों का देव, (**सत्यराधाः**) सत्य का धनी (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**च्यौत्नेन**) बल से (**नॄन्**) मनुष्यों और (**देवान्**) दिव्य पदार्थों को (**प्रविव्ये**) चलाता है, (**हरिवः**) हे प्रकाश वाले, (**शचीवः**) कर्मवाले परमेश्वर! (**तुरासः**) शीघ्रगामी ऋत्विग् लोग (**ते**) तेरे (**ता इत्**) उस ही (**विश्वा**) समस्त (**स्वयशः**) निजी यश का (**अभि गृणन्ति**) गान करते हैं ।

भावार्थः— यज्ञों का देव सत्यधन परमेश्वर अपने बल से मनुष्यों और दिव्य पदार्थों को चलाता है । वह प्रकाश वाला है, उत्तम कर्म वाला है और उसके निजी यश का ऋत्विग्जन गान करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल में उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—५०

ऋषिः १ – ७ इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ देवता – इन्द्रो वैकुण्ठः ॥ छन्दः – १ निचृज्जगती । २ आर्चीस्वराड्जगती । ६,७ पादनिचृज्जगती । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः – १, २, ६, ७ निषादः । ३ ५ धैवतः ॥

प्र वो महे मन्दमानायान्धसोऽर्चा विश्वानराय विश्वाभुवे ।
इन्द्रस्य यस्य सुमखं सहो महि श्रवो नृम्णं च रोदसी सपर्यतः ॥१॥

पदार्थः—हे स्तोतः ! (वः) तू (महे) महान् (अन्धसः) अन्न के द्वारा (मन्दमानाय) तृप्ति कराने वाले, (विश्वानराय) सबके नेता (विश्वाभुवे) सबके उत्पादक भगवान् की (अर्च) स्तुति कर, (यस्य) जिस (इन्द्रस्य) इन्द्र के (सुमखम्) उत्तम महनीय (सहः) बल (महि) महान् (श्रवः) अन्न (च) और (नृम्णम) सुख को (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक तथा सभी विद्वान्-विदुषी (सपर्यतः) पूजा करते हैं ।

भावार्थः—हे स्तोतः ! तू महान् अन्न से सबको तृप्त कराने वाले सबके संचालक परमेश्वर की अर्चना कर । इस प्रभु के उत्ताम महनीय बल, अन्न और सुख की पृथिवी लोक, द्युलोक, विद्वान् विदुषी सभी पूजा करते हैं ॥१॥

सो चिन्नु सख्या नर्य इनः स्तुतश्चर्कृत्य इन्द्रो मावते नरे ।
विश्वासु धूर्षु वाजकृत्येषु सत्पते वृत्रे वाप्स्व१भि शूर मन्दसे ॥२॥

पदार्थः—(सो चित् नु) वह ही (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (नर्यः) समस्त मनुष्यों का हितैषी, (इनः) स्वामी और (सख्याय) सख्यभाव से मावते) मुझ जैसे (नरे) मनुष्यों के लिए (स्तुतः) स्तुत होकर (चर्कृत्यः) सेवा करने योग्य हैं । (सत्पते) हे समस्त पदार्थों और सत्पुरुषों के पालक (शूर) बलशाली तू (वाजकृत्येषु) ज्ञान और बल से किये जाने वाले कार्यों में (विश्वासु) समस्त (धूर्षु) धारण करने योग्य पदों में, (अप्सु) जलों में (वा) और (वृत्रे) मेघ में (अभि प्रमादसे) आनन्दित हो रहे हो ।

भावार्थः—वह ही परमैश्वर्यशाली भगवान् सबका हितैषी, स्वामी और मुझ जैसे व्यक्ति के लिए सख्यभाव से स्तुत्य होकर सेवा करने योग्य है । वह समस्त सत्पदार्थों का पालक और बलशाली ज्ञान और कर्म से

Scanned by CamScanner

किये जाने वाले कार्यों, समस्त धारण करने योग्य पदार्थों, जलों और मेघ में आनन्द ले रहा है। अर्थात् व्यापक हो रहा है ।।२।।

के ते नर इन्द्र ये त इषे ये ते सुम्नं सधन्य१ मियक्षान् ।
के ते वाजायासुर्याय हिन्विरे के अप्सु स्वासूर्वरासु पौंस्ये ।।३।।

पदार्थ—(इन्द्रः) हे परमेश्वर (ते के नरः) वे कौन से मनुष्य हैं (ये) जो (ते) तेरे (इषे) ज्ञान के लिए यत्नवान् हैं, (ये) जो (ते) तेरे (सधन्यम्) धनयुक्त (सुम्नम्) सुख को (इयक्षान्) प्राप्त करते हैं। (के) कौन हैं जो (ते) तेरे (असुर्याय) असुर सम्बन्धी (वाजाय) बल के लिए (हिन्विरे) प्रयत्न करते हैं, (के) कौन हैं जो (अप्सु) कर्मों में, (स्वासु) अपनी (उर्वरासु) उर्वरा भूमियों में (पौंस्ये) पुंस्त्व में यत्नशील रहते हैं।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! वे कौन से मनुष्य हैं जो तेरे ज्ञान की प्राप्ति में यत्नवान् हैं, जो तेरे सुख को प्राप्त करते हैं, कौन हैं जो तेरे असुरसम्बन्धी पराक्रम को प्राप्त करते हैं और कौन हैं जो अपने कर्मों में, अपनी उर्वरा भूमियों में और पुरुषार्थ में प्रयत्नशील हैं ।।३।।

भुवस्त्वमिन्द्र ब्रह्मणा महान्भुवो विश्वेषु सवनेषु यज्ञियः ।
भुवो नॄँश्च्यौत्नो विश्वस्मिन्भरे ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे ।।४।।

पदार्थः- हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर (त्वम्) तू (ब्रह्मणा) ज्ञान से और महत्ता से (महान्) महान् (भुवः) है, (विश्वेषु) समस्त (सवनेषु) यज्ञ उपासना आदि कार्यों में (यज्ञियः) उपास्य (भुवः) है, (विश्वस्मिन्) समस्त (भरे) पालन कर्म में (नॄन्) मनुष्यों को (च्यौत्नः) चलाने वाला है, तू (ज्येष्ठः) सबसे ज्येष्ठ है (च) और (विश्वचर्षणे) हे समस्त जगत् के द्रष्टा ! तू (मन्त्रः च) मनन करने योग्य है।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू जगत् का द्रष्टा है। अपने ज्ञान और महत्ता से तू महान् है। तू समस्त उपासना आदि कार्यों में उपास्य है। समस्त पालन कर्मों में मनुष्यों का संचालक है। तू सबसे ज्येष्ठ और मनन करने योग्य हैं ।।४।।

अवा नु कं ज्यायान् यज्ञवनसो महीं त ओमात्रां कृष्टयो विदुः ।
असो नु कमजरो वर्धाश्च विश्वेदेता सवना तूतुमा कृषे ।।५।।

पदार्थः—हे भगवन् ! (**नु कम्**) निश्चय ही (**ज्यायान्**) श्रेष्ठ तू (**यज्ञवनसः**) सर्वोपास्य तुझ प्रभु की उपासना करने वालों की (**अव**) रक्षा कर । (**कृष्टयः**) समस्त मनुष्य (**ते**) तेरी (**महीम्**) महती (**ओमात्राम्**) रक्षणशक्ति को(**विदुः**) जानते हैं (**नु कम्**) निश्चय ही तू (**अजरः**) अजर (**असः**) है (**च**) और (**विश्वा**) सबको (**इत्**) ही (**वर्धाः**) बढ़ा (**एता**) इन (**सवना**) ऐश्वर्यों को (**तूतुमा**) शीघ्र ही (**कृषे**) उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! सर्वश्रेष्ठ तू निश्चय ही उपासकों की रक्षा करता है । मनुष्य लोग आपकी रक्षण शक्ति को जानते हैं । निश्चय ही तू अजर है । सबको बढ़ाता है और ऐश्वर्यों को शीघ्र उत्पन्न करता है ॥५॥

एता विश्वा सवना तूतुमा कृषे स्वयं सूनो सहसो यानि दधिषे ।
वराय ते पात्रं धर्मणे तना यज्ञो मन्त्रो ब्रह्मोद्यतं वचः ॥६॥

पदार्थ—हे (**सहसः**) अतिशायी शक्ति के (**सुनो**) प्रेरक इन्द्र=परमेश्वर (**एता**) इन (**विश्वा**) समस्त (**सवना**) उत्पन्न पदार्थों को (**तूतुमा**) शीघ्र ही (**कृषे**) बनाते हो, (**यानि**) जिनको (**स्वयम्**) स्वयम् (**दधिषे**) धारण करते हो, (**वराय**) निवारक (**ते**) आप का (**पात्रम्**) रक्षण हमें मिले, (**तना**) धन (**धर्मणे**) धारण कार्यों के लिए हो, (**यज्ञः**) यज्ञ (**मन्त्रः**) मनन करने योग्य है, तेरी (**वचः**) वाणी ही (**ब्रह्मोद्यतम्**) महान् वेदविज्ञान है ।

भावार्थः—हे सर्वातिशायी बल के प्रेरक परमेश्वर ! इन समस्त पदार्थों को आप शीघ्र ही उत्पन्न करते हो जिन को आप स्वयं धारण करते हो । आप का संरक्षण हमें मिले, आप का दिया धन धारणकार्य के लिए हो । आपकी वाणी वैदिक विज्ञान है और मनन करने योग्य है ॥६॥

ये ते विप्र ब्रह्मकृतः सुते सचा वसूनां च वसुनश्च दावने ।
प्र ते सुम्नस्य मनसा पथा भुवन्मदे सुतस्य सोम्यस्यान्धसः ॥७॥

पदार्थः—हे (**विप्र**) मेधाविन् (**सुते**) इस सृष्टि में (**ब्रह्मकृतः**) वेद का उपदेश करने वाले (**सचा**) एक साथ (**वसूनाम्**) धनों के (**च**) और (**वसुनः**) ज्ञानधन के (**दावने**) दान के लिए लगे हुए (**ते**) आप की परिचर्या के लिए

Scanned by CamScanner

ही हैं । वे (ते) तुझ से दिये गए (सुम्नस्य) सुखदायी (सुतस्य) तैयार किये गए (सोमस्य) बलदायक (अन्धसः) अन्न के द्वारा (मदे) तृप्ति के लिए(मनसा) प्रसन्नता से (ते) तेरे (पथा) मार्ग से ही (प्र भुवम्) प्रभुत्व प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—हे मेधाविन् परमेश्वर ! इस जगत् में वेद का उपदेश करने वाले एक साथ होकर धनों और ज्ञानधन के दान में लगे हुए आप की ही परिचर्या करते हैं । तेरे द्वारा दत्त सुखदायी तैयार किये गए बल-दायक अन्न के द्वारा तृप्ति के लिए प्रसन्नता से तेरे मार्ग से ही प्रभुत्व प्राप्त करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५१

ऋषिः— १, ३, ५, ७, ९ देवाः । २, ४, ६, ८ अग्निः सौचीकः ॥ **देवता**— १, ३, ५, ७, ९ अग्निः सौचीकः । २, ४, ६, ८ देवाः ॥ **छन्दः**—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ७ त्रिष्टुप् । ८, ९ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**— धैवतः ॥

सूचना इस ५१वें सूक्त का देवता सौचीक अग्नि है । अग्नि के जहां विविध कार्य हैं वहाँ यज्ञ में दी गई हवि का वहन करना और यज्ञ सम्बन्धी देवों तक पहुंचाना यह भी कार्य है । यह कार्य बड़ा विशाल और भारी है । अग्नि इस कार्य से घबरा गया । अग्नि के तीन भाई थे, जो इसी कार्य में मर चुके थे । वे तीन भाई भूपति, भुवनपति और भूतपति थे । पृथिवी में जो अग्नि है वह भूपति है । लोकों में जो अग्नि है वह भुवनपति है और प्राणियों के शरीर में जो अग्नि है वह भूतपति है । इस से सौचीक अग्नि भी डरा कि वह भी मर जायेगा अतः वह हविवहन के कार्य को छोड़कर जल में छिप गया । देवों ने उसको ढूँढ़कर पुनः इस कार्य में लगाया ।

इस सूक्त में अग्नि और देवों की उक्ति से इस वैज्ञानिक रहस्य को खोला गया है । जड़ पदार्थों में वार्तालाप आलंकारिक है—

देवों की उक्ति—

महत्तदुल्बं स्थविरं तदासीद्येनाविष्टितः प्रविवेशिथापः ।
विश्वा अपश्यद्बहुधा ते अग्ने जातवेदस्तन्वो देव एकः ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि (तत्) वह (उल्बम्) प्रावरण अर्थात् 'ऊष' (महत्) महान् और (स्थविरम्) स्थूल (आसीत्) था (तत्) वह (येन) जिससे (संवेष्टितः) लिपटा हुआ तू (आपः) जलों में (प्रविवेशिथ) प्रविष्ट हुआ, (ते) तुम्हारे (विश्वाः) सारे (तन्वः) अङ्ग-प्रत्यङ्ग को (बहुधा) बहुत प्रकार से, हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्ने ! (एकः) एक (देवः) देव ने (अपश्यत्) देखा । द्यु और पृथिवी का जो रस पृथिवी में आता है उसे ऊष कहा जाता है ।

भावार्थः—हे उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्ने ! वह स्थूल ऊषरूपी प्रावरण महान् था जिसमें लिपट कर तू जल में प्रविष्ट हो गया । तुम्हारे समस्त अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सबके नियन्ता एक देव भगवान् ने सब प्रकार से देखा ॥१॥

अग्नि की उक्ति—मित्रावरुण=प्राण और उदान देवों के प्रति—

को मा ददर्श कतमः स देवो यो मे तन्वो बहुधा पर्यपश्यत् ।
क्वाह मित्रावरुणा क्षियन्त्यग्नेर्विश्वाः समिधो देवयानीः ॥२॥

पदार्थः—(कः) किसने (मा) मुझ को (ददर्श) देखा, (सः) वह (कतमः) कौन सा (देवः) देव है (यः) जिसने (मे) मेरे (तन्वः) अङ्ग-प्रत्यङ्गों को (बहुधा) बहुत प्रकार से (पर्यपश्यत्) देखा, (मित्रावरुणा) हे प्राण और उदान ! (अग्ने मम) मुझ अग्नि की (देवयानीः) देवों को प्राप्त कराने वाली अथवा देवयान मार्गवाली (विश्वा) सारी (समिधः) समिधायें (क्व) कहां (अह क्षियन्ति) रहती हैं । अर्यमा=सूर्य के मार्ग का नाम ही देवयान है । उससे सम्बद्ध अग्नि की दीप्ति को देवयानी कहा जाता है ।

भावार्थः—हे मित्रावरुण=प्राण और उदान ! किसने मुझे देखा । वह कौन देव है जिसने मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गों को बहुत प्रकार से देखा है । यदि देखा है तो कहे कि सारी देवयान मार्ग सम्बन्धी मेरी दीप्तियां कहाँ रहती हैं ॥२॥

देवों की उक्ति—

ऐच्छाम त्वा बहुधा जातवेदः प्रविष्टमग्ने अप्स्वोषधीषु ।
तं त्वा यमो अचिकेच्चित्रभानो दशान्तरुष्यादतिरोचमानम् ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः (**जातवेदः**) हे उत्पन्न समस्त पदार्थों में विद्यमान (**अग्ने**) अग्ने ! (**अप्सु**) जलों में (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**बहुधा**) विविध प्रकार से (**प्रविष्टम्**) प्रविष्ट (**त्वा**) तुझे (**यमः**) सबके नियन्ता परमेश्वर अथवा वायु ने (**अचिकेत्**) जाना, (**चित्रभानो**) हे चायनीय रश्मियों वाले अग्नि ! तुझे (**देशान्तरुष्पात्**) दश गूढ स्थान से (**अतिरोचमानम्**) प्रकाशमान जाना। दश स्थान ये हैं—पृथिवी, अन्तरिक्ष, द्युलोक, अग्नि, वायु, और आदित्य--ये तीन देव, जल, ओषधि, वनस्पति और प्राणियों के शरीर।

भावार्थ—हे चायनीय रश्मि वाले सबमें विद्यमान अग्ने ! जलों में ओषधियों में विविध प्रकार से प्रविष्ट तुझे सबके नियन्ता परमेश्वर अथवा वायु ने देखा। तू दशस्थान में रहने वाला और प्रकाशमान है—ऐसा जाना ॥३॥

अग्नि की उक्त—

होत्रादहं वरुण बिभ्यदायं नेदेव मा युनजन्नत्र देवाः ।
तस्य मे तन्वो बहुधा निविष्टा एतमर्थं न चिकेताहमग्निः ॥४॥

पदार्थः—हे वरुण=उदान देव ! (**होत्राद्**) हव्य वहन से (**बिभ्यत्**) डरा हुआ (**अहम्**) मैं (**आयम्**) आया हूं, अतः (**देवाः**) देव लोग (**अत्र**) इस हवि वहन कार्य में (**मा**) मुझको (**नेत्**) नहीं ही (**युनजन्**) युक्त करें, (**तस्य**) इस प्रकार डरे हुए (**मे**) मुझ अग्नि के (**तन्वः**) अङ्ग-प्रत्यङ्ग (**बहुधा**) विविध प्रकार से जल में (**निविष्टाः**) छिप गए हैं (**अहम्**) मैं (**अग्निः**) अग्नि (**एतम्**) इस (**अर्थम्**) हविहवन-कार्य को (**न**) नहीं (**चिकेत**) स्वीकार करता हूँ।

भावार्थः- हे वरुण ! हविवहन रूप कर्म से डरकर मैं इस जल में प्रविष्ट हो गया कि देव लोग मुझे इस कार्य में न जोड़ देवें। इस प्रकार डरकर आये हुए मुझ अग्नि के अङ्ग-प्रत्यङ्ग जल में विविध प्रकार से छिप गए हैं। इस हवि-वहन कार्य को मैं स्वीकार नहीं करता हूं ॥४॥

देवों की उक्ति —

एहि मनुर्देवयुर्यज्ञकामोऽरङ्कृत्या तमसि क्षेष्यग्ने ।
सुगान्पथः कृणुहि देवयानान्वह हव्यानि सुमनस्यमानः ॥५॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) अग्ने ! (**आ इहि**) आओ, (**यज्ञकामः**) यज्ञ की कामना करने वाला (**मनुः**) मनुष्य (**अरंकृत्य**) अलंकृत करके (**देवयुः**) देवों

Scanned by CamScanner

के लिए यज्ञ करना चाहता है। तू (तमसि) अन्धकार में (क्षेषि) निवास कर रहा है। हे अग्ने! (सुमनस्यमानः) सौमनस्य का व्यवहार करते हुए तू (देवयानान्) देवयान (पथः) मार्ग को (सुगान्) उत्तम रीति से गन्तव्य (कृणुहि) कर, और (हव्यानि) हव्यों को (वह) देवों तक पहुँचा।

भावार्थः– हे अग्ने! आओ। यज्ञकाम मनुष्य तुझे अलंकृत करके देवों के लिए यज्ञ करना चाहता है। तू अन्धकार में है। सौमनस्य को धारण करके तू हवि को देवों तक पहुंचा और देवयान मार्ग को सुगम बना ॥५॥

अग्नि की उक्ति––

अ॒ग्नेः पूर्वे॒ भ्रात॑रो॒ अर्थ॑मे॒तं र॒थीवाध्वा॑न॒मन्वाव॑रीवुः ।

तस्मा॑द्भि॒या व॑रुण दू॒रमा॑यं गौ॒रो न क्षे॒प्नोर॑विजे॒ ज्याया॑: ॥६॥

पदार्थः—हे वरुण देव! (अग्नेः) मुझ अग्नि के (पूर्वे) पूर्व उत्पन्न हुए (भ्रातरः) भाई भूपति, भुवनपति और भूतपति ने (इव) जिस प्रकार (रथी) रथी (अध्वानम्) मार्ग को चुनता है उसी प्रकार (एतम्) इस (अर्थम्) हविवहन कार्य को (अनु आ अवरीवुः) अनुक्रम से किया, और समाप्त हो गए, (तस्मात्) उस मरणरूपी (भिया) भय से उसी प्रकार (दूरम्) दूर (आयम्) आ गया हूँ (न) जिस प्रकार (क्षेप्नोः) बाण फेंकने वाले धनुष् की (ज्यायाः) ज्या के समीप से (गौरः) गौर मृग डरता है। वैसे ही मैं (अविजे) कांपता हूं।

भावार्थः हे वरुण! इन तीन पूर्वज भाई भूपति, भुवनपति, भूतपति ने इस हविवहन कार्य को मार्ग को चुनने वाले रथी के समान चुना था और मृत हो गए। इस मरण भय से मैं यहां दूर प्रदेश में आ गया हूँ। जिस प्रकार गौर मृग धनुष् की ज्या से डरता है वैसे डर कर मैं भी काँपता हूं ॥६॥

देवों की उक्ति––

कु॒र्मस्त॒ आयु॑र॒जरं॒ यद॑ग्ने॒ यथा॑ यु॒क्तो जा॒तवे॑दो॒ न रिष्या॑: ।

अथा॑ वहासि सु॒मन॒स्यमा॑नो भा॒गं दे॒वेभ्यो॑ ह॒विष॑: सुजात ॥७॥

पदार्थः—(जातवेदः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान (अग्ने) हे अग्ने (यत्) जो (आयुः) आयु (अजरम्) जरारहित है (ते) तेरे

Scanned by CamScanner

लिए (कृणुमः) हम करते हैं (यथा) जिससे (युक्तः) उस आयु से युक्त हुआ (न) नहीं (रिष्याः) मरो, (सुजात) हे सुजात अग्ने ! (अथ) अनन्तर (सुमनस्यमानः) सौमनस्य युक्त तू (देवेभ्यः) देवों के लिए (हविषः) हवि के (भागम्) भाग को (वहासि) वहन कर ।

भावार्थः—प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, हे सुजात अग्ने ! जो अजर आयु है वह तुझे देते हैं कि जिससे तुम न मरो और देवों के लिए सदा हवि का भाग वहन करते रहो ॥७॥

अग्नि की उक्ति --

प्रयाजान्मे अनुयाजाँश्च केवलानूर्जस्वन्तं हविषो दत्त भागम् ।
घृतं चापां पुरुषं चौषधीनामग्नेश्च दीर्घमायुरस्तु देवाः ॥८॥

पदार्थः-- (देवाः) हे देव लोग (मे) मेरे लिए (केवलान् , केवल (प्रयाजान्) प्रयाज भाग को (च) और (अनुयाजान्) अनुयाज भाग को तथा (हविषः हवि के (ऊर्जस्वन्तम्) ऊर्जवान् स्विष्टकृत् (भागम्) भाग को (दत्त) प्रदान करो । (च) और (अपाम्) जलों का सारभूत (घृतम्) घृत (च) और (ओषधीनाम्) ओषधियों का (पुरुषम्) तत्त्व भाग प्रदान करो (च) और (अग्नेः) अग्नि की (दीर्घम्) लम्बी (आयुः) आयु (अस्तु) हो ।

भावार्थः - हे देव लोग ! मेरे लिए प्रयाज. अनुयाज, स्विष्टकृत्, घृत और ओषधियों का सार भाग ही प्रदान करो । मुझ अग्नि की लम्बी आयु हो ॥८॥

देवों की उत्तरोक्ति—

तव प्रयाजा अनुयाजाश्च केवल ऊर्जस्वन्तो हविषः सन्तु भागाः ।
तवाग्ने यज्ञो३ यमस्तु सर्वस्तुभ्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः ॥९॥

पदार्थः—(अग्ने) हे अग्ने ! (तव) तुम्हारे लिये (केवले) केवल (प्रयाजाः) प्रयाज (च) और (अनुयाजाः) अनुयाज तथा (हविषः) हवि का (उर्जस्वन्तः) अन्नमय (भागाः) यज्ञ भाग ही (सन्तु) हों, (अयम्) यह (सर्वः) सारा (यज्ञः) यज्ञ (तव) तुम्हारा (अस्तु) हो तथा (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशायें (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (नमन्ताम्) नम्रीभूत होवे ।

Scanned by CamScanner

भावार्थ—हे अग्ने ! तुम्हारे लिए केवल प्रयाज, अनुयाज और स्विष्टकृत् भाग ही हों। यह सारा यज्ञ तुम्हारे लिए हो और चारों दिशायें तुम्हारे लिए नम्रीभूत हों ॥९॥

यह दशम मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—५२

ऋषिः १—६ अग्निः सौचीकः॥ देवता—विश्वेदेवाः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २ ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अग्नि की उक्ति—

विश्वे॑ देवाः शास्तन॑ मा यथे॒ह होता॑ वृ॒तो म॒न॒वै यन्नि॒षद्य॑ ।
प्र मे॑ ब्रूत भाग॒धेयं॒ यथा॑ वो॒ येन॑ प॒था ह॒व्यमा वो॒ वहा॑नि ॥१॥

पदार्थः—(**विश्वे**) हे समस्त (**देवाः**) देव लोग ! आप (**मा**) मुझ अग्नि को (**शास्तन**) अनुज्ञा दें (**यथा**) जिससे (**इह**) इस यज्ञ में (**होता**) होता (**वृतः**) चुना गया मैं (**मनवै**) व्यवहार करूं, (**यत्**) जिस प्रकार(**निषद्य**) स्थित होकर कार्य करूं वह भी बताओ, (**यथा**) जिस प्रकार (**वः**) आप लोगों ने (**मे**) मेरा (**भागधेयम्**) भागधेय निश्चय किया है (**प्रब्रूत**) बताओ (**येन**) जिस (**पथा**) मार्ग से (**वः**) आपके लिए (**हव्यम्**) हव्य पदार्थ को(**आ वहानि**) वहन करूं।

भावार्थः—हे विश्वे देव लोग ! मुझे बतावें कि किस प्रकार मैं यज्ञ में होता रूप में कार्य करूं। तथा मेरा जो भाग आप लोगों ने निश्चय किया है वह बतावें। और किस प्रकार आप लोगों के लिए हव्य का वहन करूं यह भी बताओ ॥१॥

अ॒हं होता॒ न्य॑सीदं॒ यजी॑या॒न् विश्वे॑ दे॒वा म॒रुतो॑ मा जुनन्ति ।
अह॑रहरश्वि॒नाध्व॑र्यवं वां ब्र॒ह्मा स॒मिद्भ॑वति॒ साहु॑तिर्वाम् ॥२॥

पदार्थः—(**यजीयान्**) यष्टव्यतम होकर (**अहम्**) मैं अग्नि (**होता**) होता के रूप में (**न्यसीदम्**) स्थित होता हूँ, (**विश्वे**) समस्त (**मरुतः**) मरुत् (**देवाः**)

Scanned by CamScanner

देव (**मा**) मुझे हवि वहन के लिए (**जुनन्ति**) प्रेरित करते हैं, हे (**अश्विना**) प्राण और अपान (**वाम्**) आप (**आध्वर्यवन्**) अध्वर्यु-सम्बन्धी कार्य की (**अहरहः**) प्रतिदिन अनुज्ञा दें, (**समित्**) सम्यक् प्रदीप्त चन्द्रमा (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा होवे, जो आध्वर्यव (**आहुतिः**) आहुति (**भवति**) होती है (**सा**) वह (**वाम्**) आप दोनों के लिए हो ।

भावार्थः—अत्यन्त यष्टव्य मैं अग्नि होता के रूप में यज्ञ में स्थिति पाऊं, समस्त मरुत् देव मुझे हविवहन में प्रेरित करें, अश्विनी लोगों की आध्वर्यव आहुति हो और चन्द्रमा का ब्रह्मापन हो ॥२॥

अयं यो होता किरु स यमस्य कमप्यूहे यत्समञ्जन्ति देवाः ।
अहरहर्जायते मासिमास्यथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥३॥

पदार्थः– (**अयम्**) यह (**यः**) जो (**होता**) यज्ञ में हवि का ग्रहण करता है (**सः**) वह (**किः उ**) कौन है और कैसा है (**सः**) वह (**यमस्य**) वायु के सम्बन्ध की (**कम्**) किसी (**अपि**) भी हवि को (**ऊहे**) वहन करता है (**यत्**) जिसे (**देवाः**) देव लोग (**समञ्जन्ति**) प्राप्त करते हैं, अग्नि (**अहरहः**) प्रति-दिन अग्निहोत्र के लिए प्रकट किया जाता है, अथवा सूर्यरूप में प्रतिदिन प्रकट होता है और (**मासि मासि**) मास-मास में चन्द्रमा रूप में प्रकट होता है, (**अथ**) इसलिए (**देवाः**) देव इस (**हव्यवाहम्**) हवि को वहन करने वाले अग्नि को (**दधिरे**) धारण करते हैं ।

भावार्थः— यह यज्ञ में जो होता है वह कौन और कैसा है ? वह वायु सम्बन्धी आहुति को वहन करता है जिसे देव ग्रहण करते हैं । सूर्य प्रतिदिन प्रकट होता है और सूर्य की किरण चन्द्रमा में महीने-महीने में प्रकट होती हैं । इसलिए देवों ने हव्यवाहक अग्नि को होता स्वीकारा है ॥३॥

मां देवा दधिरे हव्यवाहमपम्लुक्तं बहु कृच्छ्रा चरन्तम् ।
अग्निर्विद्वान्यज्ञं नः कल्पयाति पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ॥४॥

पदार्थः—(**अपम्लुक्तम्**) अपक्रमण करके आगत (**बहु**) बहुत से (**कृच्छ्रा**) कठिन स्थानों में (**चरन्तम्**) विचरण करने वाले (**माम्**) मुझ अग्नि को (**हव्य वाहम्**) हवि का वहन करने वाले (**दधिरे**) धारण करते हैं । इस दृष्टि से कि (**विद्वान्**) सर्वत्र विद्यमान (**अग्निः**) अग्नि (**नः**) हमारे (**पंचयामम्**) पांच

Scanned by CamScanner

याम वाले (**त्रिवृतम्**) तीन सवनों वाले (**सप्त तन्तुम्**) सात प्रकार के छन्दों वाले (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**कल्पयाति**) कल्पित=पूर्ण वा समर्थ करता है ।

भावार्थः—अपक्रमण करके भी बहुत प्रकार से कठिन स्थानों में बिराजमान मुझ अग्नि को देव लोग हव्यवाहक रूप में धारण करते हैं इस दृष्टि से कि मैं अग्नि सर्वत्र विद्यमान और पांच याम,तीन सवन और सात छन्दों वाले यज्ञ को देवों के लिए समर्थ बनाता हूं ॥४॥

आ वो यक्ष्यमृतत्वं सुवीरं यथा वो देवा वरिवः कराणि ।
आ बाह्वोर्वज्रमिन्द्रस्य धेयामथेमा विश्वाः पृतना जयाति ॥५॥

पदार्थः- हे (**देवाः**) देव लोग ! (**युस्मान्**) आप लोगों के लिए (**यक्षि**) यज्ञ की संगति बैठाता हूं, मैं अग्नि (**सुवीरम्**) बलवान् (**अमृतत्वम्**) अमरता को प्राप्त करूं, (**यथा**) जिससे (**वः**) आपकी (**वरिवः**) परिचर्या (**कराणि**) करूं । (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=सूर्य के (**बाह्वोः**) बाहुभूत किरणों वा विद्युद्-द्वय में (**वज्रम्**) वज्र को (**धेयाम्**) धारण कराता हूँ, (**अथ**) इससे वह (**इमाः**) इन (**विश्वाः**) समस्त (**पृतनाः**) मेघ-सम्बन्धी युद्धों वा शत्रुओं को (**जयाति**) जीतता है ।

भावार्थः—हे देवो ! मैं अग्नि आप लोगों के लिए यज्ञ की संगति बैठाता हूं, मुझे दृढ़ अमरत्व प्राप्त हो । जिससे सूर्य के विद्युदात्मक हाथों में वज्र को धारण कराता हूं और वह समस्त मेघसम्बन्धी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है ॥५॥

त्रीणि शता त्री सहस्राण्यग्निं त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन् ।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतारं न्यसादयन्त ॥६॥

पदार्थः—(**त्रीणि शता**) तीन सौ (**च**) और (**त्री सहस्राणि**) तीन हजार (**त्रिंशत्**) तीस (**च**) और (**नव**) ९ अर्थात् तीन हजार तीन सौ ३९ (**देवाः**) निविद मन्त्र रूपी देव (**अग्निम्**) अग्नि की (**असपर्यन्**) सपर्या करते है, (**बर्हिः**) वेदि (**अस्तृणन्**) फैलाते हैं, (**अस्मै**) इस अग्नि के लिए (**घृतैः**) घृत और हवि से (**औक्षन्**) सींचते हैं (**आत् इत्**) और (**होतारम्**) होता को (**न्यसादयन्त**) स्थापित करते हैं ।

भावार्थः—मुझ अग्नि की तीन हजार तीन सौ उन्तालीस निविद मन्त्र वेदी बिछाकर, घी आदि से सिक्त करके और होता के रूप में स्थापित करके परिचर्या करते हैं ।।९।।

यह दशम मण्डल में बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—५३

ऋषयः—१—३, ६—११ देवाः । ४, ५ अग्निः सौचीकः ।। देवता—१—३, ६—११ अग्निः सौचीकः । ४, ५ देवाः ।। छन्दः—१, ३, ८ त्रिष्टुप् । २, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ६, ७, ९ निचृज्जगती । १० विराड्जगती । ११ पादनिचृज्जगती ।। स्वरः—१—५, ८ धैवतः । ६, ७, ९—११ निषादः ।।

यमैच्छाम मनसा सो॒३ऽयमागा॑द्य॒ज्ञस्य॑ वि॒द्वान्परु॑षश्चिकि॒त्वान् ।

स नो॑ यक्षद्दे॒वता॑ता यजी॑यान्नि हि षत्स॒दन्त॑रः पूर्वो॑ अ॒स्मत् ।।१।।

पदार्थः—हम देवलोग (यम्) जिस अग्नि को (मनसा) मन से (ऐच्छाम) चाहते हैं (यज्ञस्य) यज्ञ का (विद्वान्) प्राप्त करने वाला (सः) वह (अयम्) यह (आगात्) आ गया । (परुषः) प्रत्यंगों को यज्ञ के (चिकित्वान्) प्राप्त हुआ (सः) वह (यजीयान्) यष्टव्यतम (नः) हमें (देवताता) यज्ञ में (यक्षत्) संगति बैठावे (हि) निश्चय ही (निषत्सत्) वेदि में स्थित हो वह हम देवों का (अन्तरः) मध्यवर्त्ती है और (अस्मत्) हम देवों से (पूर्वः) पूर्ववर्त्ती है ।

भावार्थः—हम देव लोग जिसको मन से चाहते हैं वह यज्ञ को प्राप्त और उसके अंग प्रत्यंगों में लब्ध होने वाला अग्नि आ गया है । वह यजनीयतम हमारे यज्ञ में संगति बैठावे और हमारे मध्य रहने वाला और हमसे पूर्ववर्त्ती वह यज्ञ वेदि में विराजे ।।१।।

अरा॑धि॒ होता॑ नि॒षदा॒ यजी॑यानभि प्रयां॑सि॒ सुधि॑तानि॒ हि ख्यत् ।

यजा॑महै य॒ज्ञिया॒न्हन्त॑ दे॒वाँ ईळा॑महा॒ ईड्याँ॒ आज्ये॑न ।।२।।

पदार्थः—(यजयान्) यष्टव्य (होता) होम का निष्पन्न करने वाला यह अग्नि (निषदा) वेदि में स्थित होने के द्वारा (अराधि) सिद्ध हो गया है, वह

Scanned by CamScanner

(**सुधितानि**) भली प्रकार निहित चरु पुरोडाश आदि अन्नों को (**हि अभिख्यत**) समक्ष पाता है, (**यज्ञियान्**) यष्टव्य आहुतिभाक् (**देवान्**) देवों के लिए (**हन्त**) शीघ्र (**आज्येन**) आज्य से (**यजामहै**) यज्ञ करूं (**ईड्यान्**) स्तुत्यों के लिए (**इडामहै**) स्तुति करूं ।

भावार्थः—यजनीय अग्नि वेदि में स्थिति पाने से सिद्ध हो गया है। वह चरु पुरोडाश आदि को समक्ष पाता है। उसके वेदी में होने से यह भावना होती है कि यजनीय देवों के लिए घृत आदि से यज्ञ किया जावे और स्तुति से स्तुत किया जावे ॥२॥

साध्वीमकर्देववीतिं नो अद्य यज्ञस्य जिह्वामविदाम गुह्याम् ।
स आयुरागात्सुरभिर्वसानो भद्रामकर्देवहूतिं नो अद्य ॥३॥

पदार्थः—यह अग्नि (**अद्य**) अब (**नः**) हमारे (**देववीतिम्**) यज्ञ को (**साध्वीम्**) उत्तम (**अकः**) करे, हम देव लोग (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**गुह्याम्** गूढ़तर (**जिह्वाम्**) जिह्वा=ज्वाला को (**अविदाम**) प्राप्त करें, (**सः**) वह अग्नि (**सुरभिः**) सुगन्ध और (**आयुः**) देवों द्वारा दत्त गति को (**वसानः**) आच्छादित करता हुआ (**आगात्**) प्राप्त होता है तथा (**अद्य**) सम्प्रति (**नः**) हमारे (**देवहूतिम्**) यज्ञ को (**भद्राम्**) कल्याणकारक (**अकः**) करता है ।

भावार्थः—अग्नि हम देवों के निमित्त होने वाले यज्ञ को उत्तम करता है और हम उसकी गूढ़तर ज्वाला को प्राप्त करते हैं। वह सुगन्धि और हमारे द्वारा प्रदत्त गति को धारण किये हुए सम्प्रति हमारे लिये हुए यज्ञ को कल्याणकारी बनाता है ॥३॥

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुराँ अभि देवा असाम ।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पञ्च जना मम होत्रं जुषध्वम् ॥४॥

पदार्थः—(**वाचः**) वाणी के (**प्रथमम्**) मुख्य भाग (**तत्**) उस वचन को (**अद्य**) संप्रति (**मंसीय**) उच्चारण करते हैं (**येन**) जिससे (**देवाः**) हम विद्वज्जन (**असुरान्**) असुरों को (**अभि असाम**) दबा देवें । हे (**ऊर्जादः**) अन्नाद (**उत**) और (**यज्ञियासः**) यज्ञ करने वालो (**पंचजनाः**) चार वर्ण और पांचवां अवर्ण मनुष्यो (**मम**) मुझ भगवान् के बताये (**होत्रम्**) होत्र को (**जुषध्वम्**) प्रीति से किया करो ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः— पूर्व भाग में बताया गया है कि हम विद्वज्जन वाणी के मुख्य वचन वेद वचन का उच्चारण करें जिससे कि हम असुर प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करें। दूसरे भाग में बताया गया है कि भगवान् यह उपदेश करते हैं कि चार वर्ण और पांचवा अवर्ण भी अन्न का ग्रहण करने वाले और यज्ञ के कर्त्ता होकर मेरे द्वारा उपदिष्ट यज्ञ को किया करें ॥४॥

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥५॥

पदार्थः—(**गोजाताः**) शरीर में उत्पन्न हुए (**उत**) और (**ये**) जो (**यज्ञियासः**) यज्ञ की इच्छा करने वाले हैं ऐसे (**पंचजनाः**) चारवर्ण और पांचवां अवर्ण मनुष्य (**मम**) मेरे द्वारा उपदिष्ट (**होत्रम्**) यज्ञ को (**जुषन्ताम्**) श्रद्धापूर्वक करें (**पृथिवी**) हमारी वाणी (**नः**) हमें (**पार्थिवात्**) वाचिक (**अंहसः**) पाप से (**पातु**) बचावें और (**अन्तरिक्षम्**) मन (**दिव्यात्**) मानसिक पाप से (**अस्मान्**) हमें (**पातु**) बचावें।

भावार्थः परमेश्वर पूर्वभाग में आदेश देते हैं कि शरीरधारी और जो यज्ञ की भावना से युक्त हैं ऐसे पंचजन मेरे उपदिष्ट यज्ञ को किया करें। दूसरे भाग में यज्ञ करने वाले यह आशा करते हैं कि भगवान् की कृपा से हमारी वाणी वाचिक पाप से और हमारा मन मानसिक पाप से हमें बचावे ॥५॥

तन्तुं तन्वन्रजसो भानुमन्विहि ज्योतिष्मतः पथो रक्ष धिया कृतान् ।
अनुल्बणं वयत जोगुवामपो मनुर्भव जनया दैव्यं जनम् ॥६॥

पदार्थः— हे मनुष्य ! (**तन्तुम्**) ज्ञान के तन्तु को (**तन्वन्**) तनते हुए (**रजसः**) लोक के (**भानुम्**) प्रकाशक सूर्य का (**अनु इहि**) नियम पालन में अनुकरण करो, (**धिया**) ज्ञान और कर्म से (**कृतान्**) किये हुए (**ज्योतिष्मतः**) प्रकाशवान् (**पथः**) मार्गों की (**रक्ष**) रक्षा करो, (**जोगुवाम्**) उपासकों के (**अपः**) कर्म को (**अनुल्वणम्**) निरन्तर (**वयत**) करो, (**मनुः**) मनुष्य (**भव**) बन (**जनम्**) लोगों को (**दैव्यम्**) दिव्य प्रभु का उपासक (**जनया**) बना।

भावार्थः—हे मनुष्य ! ज्ञान के तन्तु को तनते हुए तू लोक के प्रकाशक

Scanned by CamScanner

सूर्य का नियम पालन में अनुकरण कर। बुद्धि और कर्म से किये गए प्रकाशयुक्त मार्गों की रक्षा कर। उपासकों के कर्म को निरन्तर कर, मनुष्य बन और लोगों को दिव्य भगवान् का उपासक बना ॥६॥

अक्षानहो नह्यतनोत सोम्या इष्कृणुध्वं रशना ओत पिंशत ।

अष्टावन्धुरं वहताभितो रथं येन देवासो अनयन्नभि प्रियम् ॥७॥

पदार्थः—(**सोम्याः**) योग्य मनुष्यो ! (**अक्षनहः**) प्रत्यक्ष ज्ञान के साधन इन्द्रियों से बद्ध शक्तियों को (**नह्यतन**) बांधो, (**रशनाः**) मनरूपी लगाम को (**इष्कृणुध्वम**) संस्कारयुक्त करके दृढ करो, (**उत**) और (**आ पिंशत**) सुरूप बनाओ (**अष्टवन्धुरम्**) आठ धातुओं से बँधे शरीररूपी रथ को (**अभितः**) अच्छी प्रकार (**वहत**) वहन करो (**येन**) जिस रथ के द्वारा (**देवासः**) विद्वान् लोग (**अभि प्रियम्**) अपने प्रिय उद्देश्य मोक्ष को (**अनयन्**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! अक्ष=इन्द्रियों की शक्ति को ठीक बन्धन में रखो, मन लगाम को संस्कृत और उत्तम बनाओ। आठ धातुओं से बंधे शरीर को अच्छी प्रकार काम में लगाओ। यह ही वह शरीर रथ है जिससे विद्वान् लोग अपने जीवन के प्रिय उद्देश्य को प्राप्त करते आये हैं ॥७॥

अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्र तरता सखायः ।

अत्रा जहाम ये असन्नशेवाः ये शिवान्वयमुत्तरेमाभि वाजान् ॥८॥

पदार्थः—(**अश्मन्वती**) पत्थरों से युक्त संसार नदी (**रीयते**) बह रही है (**सखायः**) हे मित्रो ! (**संरभध्वम्**) प्रयत्न करो, (**उत्तिष्ठत**) उठो, (**प्रतरत**) तैर जाओ। (**ये**) जो (**अशेवाः**) दुःखदायी कारण हैं उन्हें (**अत्र**) यहीं पर (**वयम**) हम (**जहाम**) त्याग दें (**शिवान्**) कल्याणकारी (**वाजान्**) ज्ञान और ऐश्वर्यों को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**उत् तरेम**) ऊपर उठें।

भावार्थः—यह संसार नदी जो पत्थर आदि से भरी है बह रही है। हे मित्रो ! प्रयत्नशील होओ, उठो और इसको तैर जाओ। आप और हम जो दुःखदायी कारण हैं उन्हें यहीं पर छोड़ दें और कल्याणकारी ज्ञान और ऐश्वर्यों को लक्ष्य में रखकर ऊपर उठें ॥८॥

त्वष्टा माया वेदपसामपस्तमो बिभ्रत्पात्रा देवपानानि शन्तमा ।

शिशीते नूनं परशुं स्वायसं येन वृश्चादेतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**त्वष्टा**) जगत् का रचने वाला शिल्पी भगवान् (**माया**) प्रज्ञाओं और कर्मों को (**वेद**) जानता है, (**अपसाम्**) उत्तम कर्मों वालों में भी (**अपस्तमः**) सर्वोत्तम कर्म वाला वह (**शन्तमा**) शान्तिदायक (**पात्रा**) संरक्षणों और (**देवपानानि**) अग्नि, सूर्य आदि को (**बिभ्रत्**) धारण करता है । (**नूनम्**) निश्चय ही वह (**स्वायसम्**) अनायास प्राप्त होने वाले (**परशुम्**) ज्ञानकुठार को (**शिशीते**) तीक्ष्ण करता है (**येन**) जिससे (**एतशः**) शुक्ल कर्मा (**ब्रह्मणस्पतिः**) वेदवाणी का पालक विद्वान् (**वृश्चात्**) बन्धनों को काटता है ।

भावार्थः—जगत् को रचने वाला शिल्पियों का शिल्पी भगवान् प्रज्ञानों और कर्मों को जानता है । उत्तम कर्म वालों में अति उत्तम कर्म वाला वह शान्तिदायक संरक्षणों और सूर्य, अग्नि आदि को धारण करता है । वह सुलभ ज्ञानकुठार को तीक्ष्ण करता है जिससे शुक्लकर्मा, वेदवाणी का पालक विद्वान् समस्त बन्धनों को काट डालता है ॥९॥

सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ ।

विद्वांसः पदा गुह्यानि कर्तन येन देवासो अमृतत्वमानशुः ॥१०॥

पदार्थः—हे (**कवयः**) क्रान्तदर्शी पुरुषो ! आप लोग (**सतः**) श्रेष्ठाचारी हो (**याभिः**) जिन (**वाशीभिः**) उपदेशमयी वाणियों से (**अमृताय**) अमर पद के लिए (**तक्षथ**) मार्ग बनाते हो उन को (**नूनम्**) निश्चय ही (**संशिशीत**) और भी ज्ञान से तीक्ष्ण करो । (**विद्वांसः**) विद्वान् हुए आप लोग (**गुह्यानि**) गूढ (**पदा**) पदों को (**कर्त्तन**) जानो (**येन**) जिनके द्वारा (**देवासः**) ज्ञानीजन (**अमृतत्वम्**) मोक्ष को (**आनशुः**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः हे सदाचारी क्रान्तदर्शी पुरुषो ! आप लोग जिन उपदेशमयी वाणियों से अमरपद का मार्ग बनाते हो उनको और भी ज्ञान से तीक्ष्ण करो । आप लोग पूर्ण विद्वान् होकर उन गूढ पदों=ज्ञानों को जानो जिनके द्वारा ज्ञानीजन मोक्ष को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

गर्भे योषामदधुर्वत्समासन्यपीच्येन मनसोत जिह्वया ।

स विश्वाहा सुमना योग्या अभि सिषासनिर्वनते कार इज्जितिम् ॥११॥

पदार्थः—(**योषाम्**) स्त्री के (**गर्भे**) गर्भ में (**वत्सम्**) वत्स के समान विद्वज्जन (**अपीच्येन**) निर्दोष मन से (**उत**) और जिह्वा से (**वत्सम्**) प्रिय

वचन को (अवधुः) धारण करते हैं। (सः) वह (कारः) कार्य करने वाला समर्थ (इत्) ही (जितिम्) सफलता (अभि वनते) प्राप्त करता है जो (विश्वाहा) समस्त विपत्तियों का हन्ता, (सुमनाः) उत्तम मन वाला, (योग्याः) योग्य और (सिसासनिः) निरन्तर भक्ति करने वाला है।

भावार्थः—जैसे स्त्री के गर्भ में बच्चा रहता है वैसे ही विद्वज्जन शुद्ध मन और वाणी से प्रिय वचन का धारण करते हैं। वह कर्मकुशल समर्थ व्यक्ति ही सफलता प्राप्त करता है जो समस्त विघ्नों का हन्ता, मनस्वी, योग्य और श्रद्धा-भक्ति वाला है ॥११॥

यह दशम मण्डल में तरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५४

ऋषयः—१—६ बृहदुक्थो वामदेव्यः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ६ त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

तां सु ते कीर्तिं मघवन्महित्वा यत्त्वा भीते रोदसी अह्वयेताम् ।
प्रावो देवाँ आतिरो दासमोजः प्रजायै त्वस्यै यदशिक्ष इन्द्र ॥१॥

पदार्थः—(मघवन्) हे धनों के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर ! (ते) तेरी (ताम्) उस (महित्वा) महान् सामर्थ्य से प्राप्त (कीर्त्तिम्) कीर्त्ति का (सु) उत्तम प्रकार से कीर्तन करता हूँ, (यत्) जिससे कि (भीते) डरे हुओं के समान (रोदसी) आकाश और पृथिवी भी (त्वा) तुझे रक्षार्थ (अह्वयेताम्) पुकारते हैं, (देवान्) दिव्य भावनाओं को (प्रावः) रक्षा करते हैं, (दासम्) बुरे भाव को (आतिरः) भगाते हैं (त्वस्यै) एक (प्रजायै) प्रजा के लिए (यत्) जो (ओजः) बल है उसको (अशिक्षः) देते हैं।

भावार्थः—हे समस्त धनों के स्वामी परमेश्वर ! आप की उस महिमा-महती कीर्ति का मैं कीर्त्तन करता हूं जिससे कि डरे हुए दो व्यक्तियों की तरह आकाश और पृथिवी भी तुझे रक्षार्थ पुकारते हैं। आप दिव्य भावनाओं की रक्षा करते हैं और बुरी भावना को भगाते हैं। प्रजा के लिए बल प्रदान करते हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु ।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से ॥२॥

पदार्थः – हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**यत्**) जो तू (**बलानि**) अपने बलों को (**वावृधानः**) जगत् में बढ़ाता हुआ अर्थात् व्यापक होकर (**अचरः**) विचरता है, (**जनेषु**) लोगों को (**प्रब्रुवाणः**) उत्तम वेदवाणी का उपदेश देता हुआ (**अचरः**) उनमें विचरता है, (**ते**) तेरे (**यानि**) जितने भी (**युद्धानि**) युद्ध (**आहुः**) कहे जाते हैं (**सा**) वह (**माया इत्**) माया अर्थात् बुद्धि का चातुर्य मात्र है, तू (**न**) न (**अद्य**) आज (**शत्रुम्**) किसी शत्रु को (**विवित्से**) प्राप्त है और (**न+नु**) न (**पुरा**) पहिले ही प्राप्त था ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू अपने बलों को बढ़ाता हुआ विश्व में व्यापक हो रहा है । तू वेदवाणी का उपदेश करता है और जनों में विराजमान है । तुम्हारे जो युद्ध कहे जाते हैं वे केवल बुद्धि की चातुरी मात्र हैं । न तेरा कोई शत्रु कभी था और न अब है ॥२॥

क उ नु ते महिमनः समस्यास्मत्पूर्व ऋषयोऽन्तमापुः ।
यन्मातरं च पितरं च साकमजनयथास्तन्वः स्वायाः ॥३॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! (**के उ नु**) कौन (**ते**) तुम्हारी (**महिमनः**) महिमा का (**समस्य**) पूरी का (**अन्तम्**) पार (**अस्मत्**) हम से (**पूर्वे**) पूर्ववर्त्ती (**ऋषयः**) ऋषि लोग (**आपुः**) प्राप्त किये हैं ? (**यत्**) जिस कारण से कि तुम (**स्वायाः**) अपने (**तन्वः**) प्रकृतिरूपी शरीर से (**मातरम्**) पृथिवी (**च**) और (**पितरम्**) द्युलोक को (**च**) भी अथवा माता और पिता को भी (**साकम्**) एक साथ (**अजनयथाः**) उत्पन्न करते हो ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! कौन है हम से पूर्व भी ऋषि आदि जो तेरी संपूर्ण महिमा का पार पा सके हैं वा पा सकते हैं । अर्थात् कोई नहीं । तू माता और पिता को अमैथुनी सृष्टि में साथ उत्पन्न करता है और तू द्यु और पृथिवी लोक को भी साथ उत्पन्न करता है ॥३॥

चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे (**मघवन्**) इन्द्र=परमेश्वर (**महित्वस्य**) महान् (**ते**) आपके (**चत्वारि**) चार (**नाम**) नाम (**असुर्याणि**) असुर सम्बन्धी अथवा प्राण सम्बन्धी हैं और (**अदाभ्यानि**) किसी से भी हिंसनीय नहीं हैं (**अंग**) हे प्रभो ! (**त्वम्**) तू (**विश्वानि**) समस्त (**तानि**) उन कर्मों और योजनाओं को (**वित्से**) जानता है, (**येभिः**) जिनके द्वारा (**कर्माणि**) जगत् की रचना आदि कर्मों को (**चकर्थ**) करता है।

भावार्थ हे परमेश्वर ! तुझ महान् के चार नाम=पद वा अवस्था ऐसे हैं जो असुरसम्बन्धी अथवा प्राण सम्बन्धी हैं और अदभ्य हैं। तू उन समस्त कर्मों और योजनाओं को जानता है जिनके द्वारा सृष्टि की रचना आदि कार्यों को करता है। परमेश्वर की जागृत,स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय की स्थानी हिरण्य गर्भ, विराट् आदि ऐसी अवस्थाएं हैं जो प्राणधारी जीव में भी पायी जाती हैं परन्तु सृष्टि, उत्पत्ति और प्रलय ये अवस्थाएं ऐसी हैं जो ब्रह्म ही करता है और जीव का उससे कोई सम्बन्ध नहीं है ॥४॥

त्वं विश्वा दधिषे केवलानि यान्याविर्या च गुहा वसूनि ।

काममिन्मे मघवन्मा वि तारीस्त्वमाज्ञाता त्वमिन्द्रासि दाता ॥५॥

पदार्थः-हे (**मघवन्**) सब धनों और शक्तियों के स्वामिन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**विश्वा**) समस्त (**केवलानि**) असाधारण (**वसूनि**) जगत् के पदार्थ धन को (**यानि**) जो '(**आविः**) प्रकट हैं (**च**) और(**या**) जो (**गुहा**) गूढ वा अप्रकट हैं। (**दधिषे**) धारण करता है (**मे**) मेरे (**कामम्**) कांक्षित को (**मा**) मत (**वितारीः इत्**) नष्ट करो (**त्वम्**) तू (**आज्ञाता**) प्राप्त कराने वाला (**त्वम्**) तू ही (**दाता**) देने वाला (**असि**) है।

भावार्थः—हे सब धनों और शक्तियों के स्वामी परमेश्वर आप उन समस्त जगत् के पदार्थों को धारण करते हैं जो प्रकट हैं और जो अप्रकट हैं। हे प्रभो मेरी आकांक्षा को मत नष्ट करें। आप ही प्राप्त कराने वाले हैं और आप ही दाता हैं ॥५॥

यो अदधाज्ज्योतिषि ज्योतिरन्तर्यो असृजन्मधुना सं मधूनि ।

अध प्रियं शूषमिन्द्राय मन्म ब्रह्मकृतो बृहदुक्थादवाचि ॥६॥

पदार्थः-- (**यः**) जो परमेश्वर (**ज्योतिषि**) सूर्य आदि ज्योतियों के (**अन्तः**) अन्दर (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**अदधात्**) धारण करता है, (**यः**) जिसने (**मधुना**)

मधुर रस अथवा जल से (**मधूनि**) ओषधियों के मधुर रस को अथवा जलों को (**सम् असृजत्**) बनाया है उस (**इन्द्राय**) परमेश्वर के (**प्रियम्**) प्रिय (**मन्म**) मननीय (**शूषम्**) बल को (**ब्रह्मकृतः**) वेद के उपदेष्टा (**बृहदुक्थात्**) अत्यन्त वेदज्ञ के समीप से (**अवाचि**) लेकर वर्णन करते हैं।

भावार्थः—परमेश्वर ने ही सूर्य आदि ज्योतियों के मध्य ज्योति धारण किया है। वह जल से जल और मधुर रस से ओषधि में मधुर रस का निर्माण करता है। इस शक्तिशाली भगवान् के मननीय प्रिय बल को वेदज्ञ लोग अत्यन्त वेदविद् के पास से प्राप्त कर वर्णन करते हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल का चव्वनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—५५

ऋषिः—१—८ **बृहदुक्थो वामदेव्यः** ॥ **देवता—इन्द्रः** । **छन्दः**—१, ८ **निचृत्त्रिष्टुप्** । २, ५ **पादनिचृत्त्रिष्टुप्** । ३, ४, ६ **त्रिष्टुप्** । ७ **विराट्त्रिष्टुप्** ॥ **स्वरः - धैवतः** ॥

दूरे तन्नाम गुह्यं पराचैर्यत्त्वा भीते अह्वयेतां वयोधै ।
उदस्तभ्नाः पृथिवीं द्यामभीके भ्रातुः पुत्रान्मघवन्तित्विषाणः ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**ते**) आप का (**तत्**) वह (**नाम**) तेज (**पराचैः**) पराङ्मुख लोगों से (**दूरे**) बहुत अधिक (**गुह्यम्**) नहीं जाना जाता है अर्थात् गूढ वा रहस्यमय है, (**यत्**) जिससे (**भीते**) डरे हुए के समान द्यु और पृथिवी लोक (**वयोधैः**) बल धारण करने के लिए (**त्वा**) तुझे (**अह्वयेताम्**) पुकारते हैं। तू (**भ्रातुः**) सूर्य अथवा पर्जन्य के (**पुत्रान्**) किरणों अथवा जलों को (**तित्विषाणः**) दीप्त करता हुआ (**पृथिवीम्**) पृथिवी और (**द्याम्**) द्युलोक को (**अभीके**) उनके समीप होकर (**उत् अस्तभ्नाः**) थामे रहता है।

भावार्थः- हे परमेश्वर तुम्हारा वह नाम=तेज पराङ्मुख लोगों के लिए बहुत ही गूढ है जिससे डरे हुए के समान द्यु और पृथिवी लोक शक्ति-धारणार्थ तुझे पुकारते हैं। तू सूर्य की किरणों और मेघ के जलों को दीप्त करता हुआ द्यु और पृथिवी लोक को उनके समीप अर्थात् उनमें व्याप्त होकर थामे हुए है ॥१॥

Scanned by CamScanner

महत्तन्नाम गुह्यं पुरुस्पृग्येन भूतं जनयो येन भव्यम् ।
प्रत्नं जातं ज्योतिर्यदस्य प्रियं प्रियाः समविशन्त पञ्च ॥२॥

पदार्थः— हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**तव**) आप का (**तत्**) वह (**पुरुस्पृक्**) बहुतों से स्पृहणीय (**गुह्यम्**) गूढ (**नाम**) तेज (**महत्**) महान् है (**येन**) जिससे (**भूतम्**) उत्पन्न भूत=भूतजात को (**जनयः**) उत्पन्न करते हो, (**येन**) जिससे (**भव्यम्**) होने वाले को (**जनयः**) उत्पन्न करते हो, (**यत्**) जो कि (**अस्य**) इस जगत् का (**प्रत्नम्**) पुरातन (**ज्योतिः**) प्रकाश (**जातम्**) प्रसिद्ध है तथा (**प्रियम्**) प्रिय है उसको (**प्रियाः**) प्यारे (**पंच**) पांच भूत (**समविशन्त**) आश्रय करते हैं ।

भावार्थः— हे परमेश्वर ! अत्यन्त स्पृहणीय और गूढ आप का तेज महान् है जिससे आप उत्पन्न भूतजात और भविष्य में उत्पन्न होने वालों को उत्पन्न करते हो । इस जगत् की प्रवाह से पुरातन, प्रसिद्ध प्रिय ज्योति सूर्य एवम् शरीरादि को पांचभूत आश्रय करते हैं ॥२॥

आ रोदसी अपृणादोत मध्यं पञ्च देवाँ ऋतुशः सप्तसप्त ।
चतुस्त्रिंशता पुरुधा वि चष्टे सरूपेण ज्योतिषा विव्रतेन ॥३॥

पदार्थः— यह इन्द्र=परमेश्वर (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी को (**आ अपृणात्**) अपनी व्याप्ति से पूर्ण कर रहा है, (**उत**) तथा (**मध्यम्**) अन्तरिक्ष को (**आ**) पूर्ण कर रहा है (**पञ्च**) पांच (**देवान्**) पृथिवी, अप्, तेज, वायु और आकाश को पूर्ण कर रहा है, (**सप्तसप्त**) ४९ मरुतों को पूर्ण कर रहा हैं, अथवा सात प्रकृति विकृतियां, सात किरणों, सात लोकों तथा मन और बुद्धि सहित सात इन्द्रियों को पूर्ण कर रहा है । (**ऋतुशः**) प्रत्येक काल में (**चतुस्त्रिशता**) ३४ तत्त्वों के द्वारा [आठ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, प्रजापति, इन्द्र और वाक्] (**सरूपेण**) समान रूप (**ज्योतिषा**) ज्योति और (**विव्रतेन**) विविध क्रियाओं से (**पुरुधा**) नाना प्रकार के (**विचष्टे**) जगत् को दिखाता है ।

भावार्थः— परमेश्वर द्यु और पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष, पांच भूतों, ४९ मरुतों, सात संख्या वाले गणों को अपनी व्याप्ति से पूर्ण कर रहा है । वह ३४ पदार्थों के द्वारा संमिश्रण शक्ति, वियोजन शक्ति और विविध क्रियाओं से इस नाना प्रकार के जगत् को हमें दिखा रहा है ॥३॥

Scanned by CamScanner

यदु॒ष औच्छः॑ प्रथ॒मा वि॒भाना॒मज॑नयो॒ येन॑ पु॒ष्टस्य॑ पु॒ष्टम् ।
यत्ते॑ जामि॒त्वमव॑रं॒ पर॑स्या म॒हन्म॑ह॒त्या अ॑सुर॒त्वमेक॑म् ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**यत्**) जो कि (**विभानाम्**) प्रकाशमान सूर्य आदि के (**प्रथमा**) पूर्व (**उषः**) उषाओं को (**औच्छः**) प्रकाशमान करते हो, (**येन**) जो कि (**पुष्टस्य**) पुष्ट जगत् के (**पुष्टम्**) पुष्ट पदार्थ को (**अजनयः**) उत्पन्न करते हो, (**यत्**) जो कि (**ते**) तुम्हारा (**जामित्वम्**) बन्धुभाव (**परस्याः**) परे स्थित द्युलोक और (**महत्याः**) महती पृथिवी के बीच (**अवरम्**) हमारी ओर है यह आप का (**एकम्**) एक (**महत्**) महान् (**असुरत्वम्**) देवपन है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप जो प्रकाशमान सूर्य आदि के पूर्व उषाओं को प्रकाशित करते हो, पुष्ट जगत् के पुष्ट पदार्थों को उत्पन्न करते हो, आकाश और पृथिवी के मध्य विद्यमान हम सब पर बन्धुभाव दर्शाते हो - यह सब आप का महान् देवत्व है ॥४॥

वि॒धुं द॑द्रा॒णं सम॑ने बहू॒नां युवा॑नं॒ सन्तं॑ पलि॒तो ज॑गार ।
दे॒वस्य॑ पश्य॒ काव्यं॑ महि॒त्वाद्या म॒मार॒ स ह्यः सम॑ान ॥५॥

पदार्थः—(**विधुम्**) विविधकर्मा, (**समने**) जीवन संग्राम में (**बहूनाम्**) बहुतों के (**दद्राणम्**) भगाने वाले इन्द्र=जीव को (**युवानम् सन्तम्**) युवा होते हुए पश्चात् (**पलितः**) जरावस्था (**जगार**) घेरती है, (**देवस्य**) इन्द्रदेव=परमेश्वर के (**महित्वा**) महत्वपूर्ण (**काव्यम्**) सामर्थ्य को (**पश्य**) हे लोगो ! देखो, (**यः**) जो (**ह्यः**) कल (**समान**) जीवित था (**सः**) वह (**अद्य**) आज (**ममार**) मर गया और जो (**ह्यः**) कल (**ममार**) मरा वह (**अद्य**) आज (**समान**) पुनः जीवन धारण कर रहा है ।

भावार्थः—विविधकर्मा, जीवन-संग्राम में बहुतों को परास्त करने वाले युवा जीव को भी समय पर जरावस्था घेरती है । परमेश्वर के इस महान् सामर्थ्य को देखो कि जो कल जीवित था आज मर गया और जो कल मर गया था आज जन्म धारण कर पुनः जीवन वाला हो रहा है ॥५॥

शाक्म॑ना शा॒को अ॑रु॒णः सु॑प॒र्ण आ यो म॒हः शूरः॑ स॒नादनी॑ळः ।
यच्चि॒केत॑ स॒त्यमित्तन्न मोघं॒ वसु॑ स्पा॒र्हमु॒त जेतो॒त दाता॑ ॥६॥

पदार्थः— वह इन्द्र=परमेश्वर (**शक्मना**) शक्ति से (**शाकः**) शक्तिशाली है, (**अरुणः**) तेजोमय है, (**सुपर्णः**) उत्तम गति वाला है, (**यः**) जो वह (**महः**) महान् (**शूरः**) शूर (**सनात्**) सनातन (**अनीडः**) किसी विशेष स्थान पर रहने वाला नहीं है, वह (**यत्**) जो (**चिकेत**) जानता है (**तत्**) वह (**सत्यम्**) सत्य (**इत्**) ही है, (**तत्**) वह (**मोघम्**) व्यर्थ (**न**) नहीं है, वह (**स्पार्हम्**) स्पृहणीय (**वसु**) धन का (**जेता**) प्राप्त करने वाला (**उत**) और (**दाता**) दाता (**उत**) भी है ।

भावार्थः— वह परमेश्वर शक्ति से शक्तिशाली, प्रकाशमान, उत्तम गति वाला, महान्, सर्वव्यापक है। वह जो जानता है वह सत्य ही होता है, कभी भी व्यर्थ नहीं होता। वह स्पृहणीय धन का धारक और दाता है ॥६॥

ऐभिर्ददे वृष्ण्या पौंस्यानि येभिरौक्षद्वृत्रहत्याय वज्री ।
ये कर्मणः क्रियमाणस्य मह्न ऋतेकर्ममुदजायन्त देवाः ॥७॥

पदार्थः— इन्द्र=परमेश्वर (**ऐभिः**) इन मरुद्गणों के द्वारा (**वृष्ण्या**) वृष्टि सम्बन्धी (**पौंस्यानि**) बलों को (**आ ददे**) धारण करता है (**येभिः**) इनके द्वारा (**वृत्रहत्याय**) मेघ से युद्ध करने के लिए वह (**वज्री**) बिजली धारण किया हुआ होकर (**औक्षत्**) वर्षा कराता है, (**ये**) जो मरुद्गण (**देवाः**) देव (**मह्ना**) महान् इन्द्र के द्वारा (**क्रियमाणस्य**) किये जाने वाले (**कर्मणः**) वृष्टि प्रदान-कर्म में (**ऋतेकर्मम्**) जलोत्पादन कर्म के प्रति (**उदजायन्त**) उन्मुख होते हैं वे ये उसकी शक्ति से ही ऐसा करते हैं ।

भावार्थः—परमेश्वर मरुतों के द्वारा वृष्टिसम्बन्धी कार्य को पूर्ण करता है। वह उनके द्वारा वज्री होकर वर्षा कराता है। ये उस वर्षा के कार्य में जो जलोत्पादन आदि क्रिया को करते हैं उसकी शक्ति के अन्दर ही करते हैं। विना उसके ये कुछ नहीं कर सकते हैं ॥७॥

युजा कर्माणि जनयन्विश्वौजा अशस्तिहा विश्वमनास्तुराषाट् ।
पीत्वी सोमस्य दिव आ वृधानः शूरो निर्युधाधमद्दस्यून् ॥८॥

पदार्थः—वह इन्द्र=परमेश्वर (**युजा**) अपनी उद्योग-शक्ति से (**कर्माणि**) जगत् के कर्मों को (**जनयन्**) उत्पन्न करताहुआ (**विश्वौजाः**) व्याप्तबल है, (**अशस्तिहा**)

बुराइयों का नाश करने वाला है, (विश्वमनाः) समस्त ज्ञानों वाला है, (तुराषाड्) सब शक्तियों पर नियन्त्रण रखने वाला, (सोमस्य) जगत् का (पीत्वी) रक्षक हो (दिवः) प्रकाश को (आवृधानः) बढ़ाता हुआ (शूरः) शक्तिशाली वह (युधा) अपनी व्यापक शक्ति से (दस्यून्) मेघ आदि को (निः अधमत्) पराजित करता है।

भावार्थः—अपनी उद्यम शक्ति से विश्व के पदार्थों में गतियों को उत्पन्न करता हुआ परमेश्वर महाशक्ति, बुराइयों का बाधक, समस्त ज्ञानों वाला, और सभी शक्तियों पर दबदबा रखने वाला है। वह विश्व की रक्षा करता है, प्रकाश को बढ़ाता है और अपनी व्यापक शक्ति से शक्तिशाली वह मेघ आदि को पराजित करता है ।।८।।

यह दशम मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—५६

ऋषिः—१—७ **बृहदुक्थो वामदेव्यः** ।। देवताः— विश्वेदेवाः ।। छन्दः १, ३ **निचृत्त्रिष्टुप्** । २ विराट्त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृज्जगती । ५ **विराड्जगती** । ६ आर्चीभुरिग्जगती ।। स्वरः—१—३, ७ धैवतः ।। ४-६ **निषादः** ।।

इ॒दं त॒ एकं॑ प॒र ऊं॑ त॒ एकं॑ तृ॒तीये॑न॒ ज्योति॑षा॒ सं वि॑शस्व ।
सं॒वेश॑ने त॒न्व॑श्चारु॑रेधि प्रि॒यो दे॒वानां॑ पर॒मे ज॒नित्रे॑ ।।१।।

पदार्थः हे मनुष्य, (ते) तेरे लिए (इदम्) यह जगत् (एकम्) एक है, (ते) तेरे लिए (परः) द्वितीय ज्योति (एकम्) एक आत्मा है, (तृतीयेन) तीसरी (ज्योतिषा) ज्योति परमात्मा के साथ (संविशस्व) मग्न हो रह, (देवानाम्) समस्त दिव्य शक्तियों के (परमे) परम (जनित्रे) उत्पादक और (तन्वः) शरीरों-लोकों के (संवेशने) आश्रयभूत प्रभु में (चारुः) उत्तम तू (एधि) विचर।

भावार्थः—हे मनुष्य ! तेरे लिए यह जगत् एक ज्योति है, जीवात्मा दूसरी ज्योति है और परमेश्वर तीसरी ज्योति है। परमेश्वर में मगन हो

Scanned by CamScanner

कर रह। वह ही सब शरीर और लोकों का आश्रय तथा समस्त दिव्य-शक्तियों का परम उत्पादक है। उसका प्रिय और उत्तम भक्त बनकर तू उसमें विचर ॥१॥

तनूष्टे वाजिन्तन्वं१ नयन्ती वाममस्मभ्यं धातु शर्म तुभ्यम् ।
अह्रुतो महो धरुणाय देवान्दिवीव ज्योतिः स्वमा मिमीयाः ॥२॥

पदार्थः—(**वाजिन्**) हे ज्ञान वाले मनुष्य, (**ते**) तेरी (**तनूः**) काया (**तन्वम्**) दूसरे शरीर को (**नयन्ती**) प्राप्त कराती हुई (**अस्मभ्यम्**) हमें (**वामम्**) उत्तम ज्ञान दे और (**तुभ्यम्**) तुम्हें (**शर्म**) सुख (**धातु**) दे (**अह्रुतः**) सरल आचरण वाला होकर (**महः**) महान् (**देवान्**) देवों के (**धरुणाय**) धारक परमेश्वर की प्राप्ति के लिए (**इव**) संप्रति (**दिवि**) हृदयरूपी आकाश में (**स्वम्**) अपनी (**ज्योतिः**) ज्योति को (**आ मिमीयाः**) प्राप्त कर।

भावार्थः—हे ज्ञानी मनुष्य! तेरी काया दूसरी काया को प्राप्त कराती हुई हमें ज्ञान दे और तुम्हें सुख दे। तू अपने सरल आचरण से महान् देवों के आधार परमेश्वर की प्राप्ति के लिए अपने हृदयाकाश में अपनी ज्योति अर्थात् आत्मा को प्राप्त कर ॥२॥

वाज्यसि वाजिनेना सुवेनीः सुवितः स्तोमं सुवितो दिवं गाः ।
सुवितो धर्मं प्रथमानु सत्या सुवितो देवान्त्सुवितोऽनु पत्म ॥३॥

पदार्थः—हे आत्मन्! तू (**वाजिनेन**) शक्ति वा ज्ञान से (**वाजी**) शक्तिशाली वा ज्ञानी (**असि**) है, तू (**सुवेनीः**) उत्तम पदार्थों और ज्ञानों की कामना वाला होकर (**सुवितः**) उत्तम मार्ग पर चल के (**स्तोमम्**) उत्तम स्तुति को (**गाः**) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम मार्गगामी तू (**दिवम्**) प्रकाश को (**गाः**) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम मार्गगामी तू (**धर्मम्**) धर्म को (**गाः**) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम मार्गगामी तू (**प्रथमा**) मुख्य (**सत्या**) सत्यों को (**गाः**) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम पथ का पथिक तू (**देवाद्**) दिव्य गुणों को (**गाः**) प्राप्त कर, (**सुवितः**) उत्तम पथ का पथिक तू (**पत्म**) उत्तम ज्योति प्रभुपद को (**अनुगाः**) प्राप्त कर।

भावार्थः—हे आत्मा तू बल से बली और ज्ञान से ज्ञानी है, उत्तम पदार्थों और ज्ञानों की कामना वाला होकर उत्तम मार्ग पर चलता हुआ तू उत्तम स्तुति, प्रकाश, धर्म भावना, मुख्य सत्यों, दिव्यगुणों और परम ज्योति प्रभु पद को प्राप्त कर ॥३॥

Scanned by CamScanner

महिम्न एषां पितरश्चनेशिरे देवा देवेष्वदधुरपि क्रतुम् ।
समविव्यचुरुत यान्यत्विषुरेषां तनूषु नि विविशुः पुनः ॥४॥

पदार्थ — हे मनुष्यो ! (**पितरः चन**) ऋतुयें चन्द्रकिरणें आदि जिन्हें पितर कहा जाता है (**एषाम्**) इन देवों के (**महिम्नः**) महत्व का (**ईशिरे**) स्वामित्व करते हैं और (**देवाः**) अग्नि वायु आदि देव (**अपि**) भी (**देवेषु**) देवों में (**क्रतुम्**) कर्म को (**अदधुः**) धारण करते हैं, (**उत**) और (**यानि**) जो तेज (**अत्विषुः**) दीप्त होते हैं वे ही (**सम विविचुः**) संगत भी होते हैं(**एषाम्**) इन देवों के (**तनूषु**) शरीरों वा संघातों में (**पुनः**) फिर (**आ विविशुः**)निविष्ट होते हैं ।

भावार्थः—हे मनुष्यो! ऋतुएं आदि जो पितृगण कहे जाते हैं वे इन देवगण में गिने जाने वाले पदार्थों के महत्व को धारण करते हैं और देवगण भी इनमें अपने कर्मों को धारण करते हैं । जो तेज दीप्त होते हैं वे ही संगत भी होते हैं । इन देवों के संघातों में ही ये पुनः निविष्ट होते हैं । अर्थात् पितर और देव एक-दूसरे के नाम को ग्रहण करते हैं ॥४॥

सहोभिर्विश्वं परि चक्रमू रजः पूर्वा धामान्यमिता मिमानाः ।
तनूषु विश्वा भुवना नि येमिरे प्रासारयन्त पुरुध प्रजा अनु ॥५॥

पदार्थः—वे पितृगण अर्थात् ऋतुएं चन्द्रकिरण आदि (**सहोभिः**) अपनी शक्तियों से (**विश्वम्**) समस्त (**रजः**) लोक का, (**पूर्वाः**) पूर्व के (**धामानि**) स्थानों को (**अमिता**) जो दूसरों से अमित हैं (**मिमाना**) मित करते हुए (**परि चक्रमुः**) परिक्रमण करते हैं (**पुरुध**) बहुत प्रकार की (**प्रजाः**) उदक ज्योति आदि को (**अनु प्र सारयन्तः**) अनुप्रसारित करते हैं तथा (**तनूषु**) शरीरों, संघातों में (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भूत जात को (**नियेमिरे**) नियम में रखते हैं ।

भावार्थः—पितृगण में कहे जाने वाले पदार्थ अमित स्थानों को भी मित करते हुए अपने बल से लोकों का परिक्रमण करते हैं । जल प्रकाश आदि को अनुप्रसारित करने और शरीर आदि संघातों में सब भूतजात को नियमित करते हैं ॥५॥

द्विधा सूनवोऽसुरं स्वर्विदमास्थापयन्त तृतीयेन कर्मणा ।
स्वां प्रजां पितरः पित्र्यं सह आवरेष्वदधुस्तन्तुमाततम् ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सूनवः**) आदित्य के पुत्रभूत देव=किरण आदि (**असुरम्**) बलवान् (**स्वर्विदम्**) प्रकाश को प्राप्त आदित्य को (**तृतीयेन**) प्रजा की उत्पत्तिरूप कर्म से (**द्विधा**) दो प्रकार का (**आ अस्थापयन्तः**) स्थापित करते हैं, अर्थात् उदित और अस्तमित रूप का, (**पितरः**) पितृगण वाले पदार्थों ने (**स्वाम्**) अपनी (**प्रजाम्**) प्रजाभूत जल, ज्योति आदि को उत्पन्न करके (**पित्र्यम्**) पिता सूर्य-सम्बन्धी (**सहः**) बल को (**अवरेषु**) दूसरों में (**आदधुः**) धारण किया करते हैं तथा (**तन्तुम्**) प्रजा को (**आततम्**) वितत करते हैं ।

भावार्थः—आदित्य=सूर्य की दो प्रकार की दिव्य-शक्तियां हैं । एक देवोत्पादक और दूसरी पित्र्युत्पादक । ये दोनों उसके पुत्र हैं । देवगण जिनमें किरणें आदि हैं वे सूर्य को उदित और अस्तमित रूप में प्रजा को बढ़ाने हेतु दो प्रकार का स्थाप्ति करते हैं । पितृगण ऋतु और चन्द्र की किरण आदि अपनी प्रजा जल आदि को उत्पन्न कर उनमें सूर्य-सम्बन्धी पैतृक तेज को धारण करते हैं और प्रजा को वितत=विस्तारित करते हैं ॥६॥

नावा न क्षोदः प्रदिशः पृथिव्याः स्वस्तिभिरति दुर्गाणि विश्वा ।
स्वां प्रजां बृहदुक्थो महित्वावरेष्वदधादा परेषु ॥७॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**नावा**) नौका से (**क्षोदः**) जल को तरा जाता है (**पृथिव्याः**) पृथिवी की (**प्रदिशः**) दिशाओं को तरा जाता है, (**स्वस्तिभिः**) क्षेत्र से (**विश्वा**) समस्त (**दुर्गाणि**) दुःख से गन्तव्य स्थानों को जाया जा सकता है उसी प्रकार (**बृहदुक्थ**) प्रशंसनीय सूर्य ने (**स्वाम्**) अपनी (**प्रजाम्**) प्रजा को (**महित्वा**) स्व महिमा से (**अवरेषु**) अवरों में (**आ अदधात्**) धारण किया और (**परेषु**) परों में (**आ अदधात्**) धारण किया ।

भावार्थः—जिस प्रकार नौका से जल और पृथिवी की दिशाओं को तरा जाता है तथा क्षेत्र से अति दुर्गम स्थानों को जाया जा सकता है उसी प्रकार सूर्य ने अपनी प्रजा को अपनी महिमा से अवर=जल आदि वर्ग और पर=प्रकाश आदि वर्ग में स्थापित किया ॥७॥

यह दशम मण्डल में छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ५७

ऋषयः—१—६ बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गोपायनाः ।। देवताः—विश्वेदेवाः ।। छन्दः—१ गायत्री । २—६ निचृद्गायत्री ।। स्वरः—षड्जः ।।

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः ।

मान्तः स्थुर्नो अरातयः ।।१।।

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**सोमिनः**) ज्ञानयुक्त (**वयम्**) हम (**पथः**) सन्मार्ग से (**मा**) न (**प्रगाम**) दूर जावें (**यज्ञात्**) उपासना और यज्ञ कर्म से भी (**मा**) न दूर जावें, (**अरातयः**) अदानशील और बुरे कर्म वाले (**नः**) हमारे (**अन्तः**) बीच में (**मा**) न (**तस्थुः**) रहे ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! ज्ञानयुक्त हम लोग सन्मार्ग और उपासना एवं यज्ञ से कभी दूर न जावें। हमारे बीच में कोई अदानशील और बुराई वाला न रहे ।।१।।

यो यज्ञस्य प्रसाधनस्तन्तुर्देवेष्वाततः ।

तमाहुतं नशीमहि ।।२।।

पदार्थः—(**यज्ञस्य**) संसाररूपी यज्ञ का (**प्रसाधनः**) साधक (**यः**) जो (**तन्तु**) सूत्र=नियम सूत्र (**देवेषु**) संसार के दिव्यपदार्थों में (**आततः**) फैला है (**तम्**) उस (**आहुतम्**) प्रशस्त को (**नशीमहि**) हम प्राप्त करें ।

भावार्थः—संसाररूपी यज्ञ का साधक जो ऋत नाम का नियम सूत्र संसार के समस्त दिव्य पदार्थों में फैला है उस प्रशस्त सूत्र को हम जानें ।।२।।

मनो न्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन ।

पितॄणां च मन्मभिः ।।३।।

पदार्थः—(**नाराशंसेन**) नरों के द्वारा प्रशस्य (**सोमेन**) जगत् के ज्ञान से (**च**) तथा (**पितॄणाम्**) माता-पिता आदि के (**मन्मभिः**) मननीय विचारों से (**मनः**) मन को (**आ हुवामहे**) युक्त करें ।

भावार्थः—हम मनुष्यों द्वारा प्रशस्य जगत्सम्बन्धी ज्ञान और माता-पिता आदि के मननीय विचारों से मन को युक्त करें ।।३।।

Scanned by CamScanner

आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।

ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥४॥

पदार्थः - हे मनुष्य ! (**दक्षाय**) दक्ष एवं निपुणतापूर्ण (**क्रत्वे**) कर्म करने के लिए (**जीवसे**) जीवन के लिए (**च**) और (**ज्योक्**) लम्बे समय तक (**सूर्यम्**) सूर्य को (**दृशे**) देखने के लिए (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**पुनः**) फिर (**आ एतु**) आता है ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! मरणानन्तर में निपुणतापूर्ण कर्म के करने के लिए, जीवन के लिए और लम्बे समय तक सूर्य को देखने के लिए तेरा मन फिर से शरीरों में आवे ॥४॥

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः ।

जीवं व्रातं सचेमहि ॥५॥

पदार्थः—(**पितरः**) हे हमारे पालक माता-पिता आदि लोग ! (**दैव्यः**) दैवी (**जनः**) व्यक्ति परमेश्वर (**नः**) हमें (**पुनः**) फिर (**मनः**) मन (**ददातु**) देवे जिससे हम (**जीवम्**) जीवन वाले (**व्रातम्**) समूह अर्थात् इन्द्रिय आदि को (**सचेमहि**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे माता-पिता आदि पालक जन ! दिव्य शक्ति परमेश्वर हमें पुनः मन प्रदान करे जिससे हम जीवित इन्द्रिय समूह आदि को प्राप्त करें ॥५॥

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।

प्रजावन्तः सचेमहि ॥६॥

पदार्थः—हे (**सोम**) सबके उत्पादक परमेश्वर ! (**वयम्**) हम (**तव**) तुम्हारे (**व्रते**) नियम में रहते हुए (**तनूषु**) अपने शरीरों में अथवा आपकी नीतियों में (**मनः**) मन को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**प्रजावन्तः**) पुत्र पौत्र आदि से युक्त हुए (**सचेमहि**) जीवन में चलते रहे ।

भावार्थः—हे सर्वोत्पादक परमेश्वर हम आपके नियम में रहें । आप की नीतियों में अपने मन को लगावें और सन्तान आदि से युक्त होकर जीवन का यापन करें ॥६॥

यह दशम मण्डल में सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ !!

Scanned by CamScanner

सूक्त ५८

ऋषयः—१—१२ बन्ध्वादयो गौपायनाः ॥ देवता—मन आवर्तनम् । छन्दः—निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

यत्ते॑ य॒मं वै॑वस्व॒तं मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।
तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) पहुँचता है तथा (**वैवस्वतम्**) विविध लोकों और ऐश्वर्यों के स्वामी (**यमम्**) जगन्नियन्ता तक भी पहुँचता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्त्तयामसि**) पुनः व्याधि से लौटाता हूं ।

भावार्थः वैद्य रुग्ण मनुष्य से कहता है कि हे मनुष्य तेरा मन जो दूर तक जाता है, जो जगन्नियन्ता प्रभु की प्राप्ति का साधन है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता अर्थात् स्वस्थ करता हूं ॥१॥

यत्ते॒ दिवं॒ यत्पृ॑थि॒वीं मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।
तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥२॥

पदार्थः— हे मनुष्य ! (**यत्**) जो यह (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**दिवम्**) द्युलोक (**पृथिवीम्**) पृथिवी पर (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**ते**) तेरे (**तत्**) उस मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्त्तयामसि**) पुनः व्याधि के चक्र से लौटाता हूं ।

भावार्थः— हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो मन पृथिवी और द्युलोक में दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से पुनः वापस लौटाता हूं ॥२॥

यत्ते॒ भूमिं॒ चतु॑र्भृष्टिं॒ मनो॑ ज॒गाम॑ दूर॒कम् ।
तत्त॒ आ व॑र्तयामसी॒ह क्षया॑य जी॒वसे॑ ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**चतुर्भृष्टिम्**) चारों दिशाओं में भ्रंश वाली (**भूमिम्**) पृथिवी पर (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**)

जाता है (ते) तेरे (तत्) उस मन को (इह) इस शरीर में (क्षयाय) रहने और (जीवसे) जीने के लिए (आ वर्तयामसि) व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा यह मन जो चारों दिशाओं में फैली हुई और भ्रंश को प्राप्त भूमि पर दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए मैं व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥३॥

यत्ते चतस्रः प्रदिशो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशाओं में (दूरकम्) दूर तक (जगाम) जाता है (तत्) उस (ते) तेरे मन को (इह) इस शरीर में (क्षयाय) रहने और (जीवसे) जीने के लिये व्याधि चक्र से (आ वर्तयामसि) वापस लौटाता हूं।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो मन चारों दिशाओं में दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥४॥

यत्ते समुद्रमर्णवं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन (अर्णवम्) जलों की राशि (समुद्रम्) समुद्र में (दूरकम्) दूर-दूर तक (जगाम) जाता है (तत्) उस (ते) तेरे मन को (इह) इस शरीर में (क्षयाय) रहने और (जीवसे) जीने के लिए व्याधिचक्र से (आ वर्तयामसि) वापस लौटाता हूँ।

भावार्थः हे रुग्ण मनुष्य ! जो तेरा मन समुद्र में दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि चक्र से वापस लौटाता हूं ॥५॥

यत्ते मरीचीः प्रवतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन (प्रवतः) गतिशील (मरीचीः) दीप्तियों को लक्ष्य कर (दूरकम्) दूर-दूर (जगाम) जाता है (तत्) उस (ते) तेरे मन को (इह) इस शरीर में (क्षयाय) रहने और (जीवसे) जीने के लिए (आ वर्तयामसि) व्याधिचक्र से वापस लौटाता हूँ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! जो यह तेरा मन गतिशील किरणों को लक्ष्य करके दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ॥६॥

यत्ते अपो यदोषधीर्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यत्) जो (ते) तेरा (मनः) मन (अपः) जलों और (ओषधीः) ओषधियों को लक्ष्य में रखकर (दूरकम्) दूर तक (जगाम) जाता है (तत्) उस (ते) तेरे मन को (इह) इस शरीर में (क्षयाय) रहने के लिए और (जीवसे) जीने के लिए (आ वर्तयामसि) व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं।

भावार्थः—हे रुग्ण पुरुष ! तेरा जो यह मन जलों और ओषधियों को लक्ष्य में रखकर दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ॥७॥

यत्ते सूर्यं यदुषसं मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यत्) जो (ते) तेरा यह (मनः) मन (सूर्यम्) सूर्य और (उषसम्) उषा को लक्ष्य में रखकर (दूरकम्) दूर जाता है (तत्) उस (ते) तेरे मन को (इह) इस शरीर में (क्षयाय) रहने और (जीवसे) जीने के लिए (आ वर्तयामसि) व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूँ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन सूर्य और उषा को लक्ष्य में रखकर दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ॥८॥

यत्ते पर्वतान्बृहतो मनो जगाम दूरकम्
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**बृहतः**) बड़े (**पर्वतान्**) पहाड़ों पर (**दूरकम्**) दूर तक जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि चक्र से वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन बड़े-बड़े पर्वतों पर जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ।।९।।

यत्ते विश्वमिदं जगन्मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।१०।।

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) समस्त (**जगत्**) जगत् में (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि चक्र से वापस लौटाता हूं ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन इस विश्व में दूर-दूर तक जाता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूं ।।१०।।

यत्ते पराः परावतो मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।११।।

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**परा परावतः**) दूर-दूर देशों को लक्ष्य करके (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते** तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्तयामसि**) व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूँ ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! तेरा जो यह मन बहुत दूर तक प्रदेशों की ओर दूर तक भटकता रहता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए व्याधि के चक्र से वापस लौटाता हूं ।।११।।

यत्ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम् ।
तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे ।।१२।।

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे मनुष्य ! (**यत्**) जो (**ते**) तेरा (**मनः**) मन (**भूतम्**) भूत (**च**) और (**भव्यम्**) भविष्य के विषयों में (**दूरकम्**) दूर तक (**जगाम**) जाता है (**तत्**) उस (**ते**) तेरे मन को (**इह**) इस शरीर में (**क्षयाय**) रहने और (**जीवसे**) जीने के लिए (**आ वर्त्तयामसि**) व्याधि के पंजे से वापस लौटाता हूँ ।

भावार्थः—हे रुग्ण मनुष्य ! यह जो तेरा मन भूत और भविष्य के विषयों में दूर-दूर तक भटकता है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिए वापस लौटाता हूं ॥१२॥

नोट—मन की अस्थिरता के रोगी का मन जगह-जगह भटकता है । वैद्य उसे आश्वासन देता है कि वह उसे इस शरीरमें स्वस्थ स्थिति में ला देगा । इस सूक्त में इस विषय को ही बतलाया गया है ।

यह दशम मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ५६

ऋषयः—१—१० बन्ध्वादयो गौपायनाः ॥ **देवता**:—१—३ निर्ऋतिः । ४ निर्ऋतिः सोमश्च । ५, ६ असुनीतिः । ७ लिंगोक्ताः । ८, ६, १० द्यावापृथिव्यौ । १० द्यावापृथिव्याविन्द्रश्च ॥ **छन्दः**:—१ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४—६ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक्पङ्क्तिः । ६ जगती । १० विराड्जगती ॥ **स्वरः**:—१—७ धैवतः । ८ पञ्चमः । ६, १० निषादः ॥

प्र ता॒र्यायु॒ः प्र॑त॒रं नवी॑यः स्थाता॑रेव॒ क्रतु॑मता॒ रथ॑स्य ।
अध॒ च्यव॑ान॒ उत्त॑वी॒त्यर्थं॑ परात॒रं सु निर्ऋ॑तिर्जिहीताम् ॥१॥

पदार्थः—(**क्रतुमता**) प्रज्ञा वाले अथवा कर्मशील (**रथस्य**) रथ के (**स्थातारा**) सवार के (**इव**) समान मनुष्य की (**आयुः**) आयु (**प्रतरम्**) नवतर और (**नवीयः**) नवीन ढंग से (**प्रतारि**) बढ़े, (**अध**) और (**च्यवानः**) क्षीण स्वास्थ्य (**अर्थम्**) आयुष्य को (**उत्तवीति**) बढ़ाता है (**निर्ऋतिः**) मृत्यु की आपत्ति (**परातरम्**) दूर (**सु** , भली प्रकार (**जिहीताम्**) हो जावे ।

Scanned by CamScanner

भावार्थ:— कर्मशील रथ के सवार के समान मनुष्य की आयु नवतर और नवीन रूप से बढ़े । स्वास्थ्य से क्षीण मनुष्य भी आयु को बढ़ाता है । मृत्यु का कष्ट दूर भाग जावे ।।१।।

सामन्नु राये निधिमन्न्वन्नं करामहे सु पुरुध श्रवांसि ।
ता नो विश्वानि जरिता ममत्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ।।२।।

पदार्थ:—(**राये**) धन-प्राप्ति के लिए हम (**सामन् नु**) सम भूमिभाग में (**निधिमत्**) धन देने वाले (**अन्नम्**) अन्न को (**करामहे**) उत्पन्न करें, (**नः**) हमारे लिये (**जरिता**) उपदेश करने वाला (**नः**) हमारे (**ता**) उन (**विश्वानि**) समस्त (**श्रवांसि**) अन्नों को (**पुरुध**) बहुत प्रकार से (**सुममत्तु**) आस्वाद ले (**निर्ऋतिः**) मृत्यु का कष्ट (**परातरम्**) दूर (**सुजिहीताम्**) रहे ।

भावार्थ:—धन-प्राप्ति के लिए हम धन देने वाले अन्न को सम भूमि-क्षत्र में उत्पन्न करें । हमारा उपदेष्टा उन समस्त अन्नों का विविध प्रकार से आस्वाद ले । मृत्यु की आपत्ति हमसे सदा दूर रहे ।।२।।

अभी ष्व१र्यः पौंस्यैर्भवेम द्यौर्न भूमिं गिरयो नाज्रान् ।
ता नो विश्वानि जरिता चिकेत परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ।।३।।

पदार्थ:—(**न**) जिस प्रकार (**द्यौः**) सूर्य (**भूमिम्**) भूमि को अपनी किरणों से अभिभूत करता है और (**न**) जिस प्रकार (**गिरयः**) मेघ , **अज्रान्**) वायुओं को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हम (**पौंस्यैः**) अपने पराक्रम से (**सु**) सुष्ठुरूप से (**अर्यः**) शत्रुओं को (**अभि भवेम**) अभिभूत करे (**जरिता**) उपदेष्टा विद्वान् (**ता**) उन (**नः**) हमारे (**विश्वानि**) समस्त कार्यों को जानता हैं जो हम करते हैं । (**निर्ऋतिः**) मृत्यु की आपत्ति (**परातरम्**) दूर (**सुजिहीताम्**) रहे ।

भावार्थ:—जिस प्रकार सूर्य अपने प्रकाश से भूमि को अभिभूत करता है, जिस प्रकार मेघ वायुओं को प्राप्त करता है उसी प्रकार हम अपने शत्रुओं को अपने पराक्रम से अभिभूत करें । हमारा उपदेष्टा विद्वान् हमारे समस्त कार्यों को जानता है जो हम करते हैं । मृत्यु की आपत्ति हम से सदा दूर रहे ।।३।।

Scanned by CamScanner

मो षु णः सोम मृत्यवे परा दाः पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।
द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु परातरं सु निर्ऋतिर्जिहीताम् ॥४॥

पदार्थः –(**सोम**) हे परमेश्वर ! (**नः**) हमें (**सुः**) सुष्ठुरूप से (**मृत्यवे**) मृत्यु को (**मो**) न (**परा दाः**) दें, (**उत् चरन्तम्**) उदित होते (**सूर्यम्**) सूर्य को (**नु**) निश्चय हम (**पश्येम**) देखें, (**द्युभिः**) दिनोदिन (**नः**) हमारी (**जरिमा**) जरा अवस्था (**सुहितः**) सुखावह (**अस्तु**) हो, (**निर्ऋतिः**) मृत्यु की आपत्ति (**परातरम्**) दूर (**सुजिहीताम्**) रहे ।

भावार्थः हे परमेश्वर ! हमें मृत्यु के वश न करें । हम सदा उदय होते सूर्य को देखें । हमारी वृद्धावस्था दिनोंदिन सुखावह हो और मृत्यु की आपत्ति हम से दूर रहे ॥४॥

असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सु प्र तिरा न आयुः ।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व ॥५॥

पदार्थः—(**असुनीते**) हे प्राण सम्बन्धी नीति वाले ! प्राणविद्याविद् ! (**अस्मासु**) हम रोगियों में (**मनः**) मन को (**पुनः**) फिर (**धारय**) स्थिर और स्वस्थ कर, (**जीवातवे** जीवन के लिये (**नः**) हमें (**आयुः**) आयु (**सुप्रतिर**) दें, (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**समदृशि**) दर्शन में (**नः**) हमें (**रारन्धि**) स्थापित कर, (**त्वम्**) तू (**घृतेन**) घृत, जल प्रकाश अथवा ओषधियों के घृत से (**नः**) हमारे (**तन्वम्**) शरीर को (**वर्धयस्व**) बढ़ा ।

भावार्थः—हे प्राणविद्याविद् ! हम रोगियों के मन को फिर से स्वस्थ और स्थिर कीजिए । हमें जीवन के लिए आयु दीजिए । हम सदा सूर्य को देखें—ऐसी अवस्था में हमें लाइये । हमारे शरीर को घृत आदि से बढ़ाइये ॥५॥

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम् ।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृळया नः स्वस्ति ॥६॥

पदार्थः - (**असुनीते**) हे प्राणविद्याविद् ! (**अस्मासु**) हमारे (**इह**) शरीर में (**पुनः**) फिर (**चक्षुः**) दृष्टि (**पुनः**) फिर (**प्राणम्**) प्राण को धारण करा, (**नः**) हमें (**भोगम्**) भोगों को भोगने की शक्ति (**धेहि**) दो, (**ज्योक्**)

Scanned by CamScanner

लम्बे समय तक (उच्चरन्तम्) उदय को प्राप्त हो। हुए (सूर्यम्) सूर्य को(पश्येम) देखें, (अनुमते) हे अनुमति देने वाले ! (नः) हमें (स्वस्ति) सुख से (मृडय) सुखी कर ।

भावार्थः—हे प्राणविद्याविद् ! हमारे इस शरीर में आप पुनः दृष्टि और प्राणशक्ति को धारण कराइये । हमें भोगों के भोगने की शक्ति दें । हम चिरकाल तक उदय को प्राप्त होते हुए सूर्य को देखें । हे उत्तम मति वाले हमें सुख से सुखी कर ॥६॥

पुन॑र्नो॒ असुं॑ पृथि॒वी द॑दातु॒ पुन॒र्द्यौर्दे॒वी पुन॑र॒न्तरि॑क्षम् ।
पुन॑र्नः॒ सोम॑स्त॒न्वं॑ ददातु॒ पुनः॑ पू॒षा प॒थ्यां॒३॒ या स्व॒स्तिः ॥७॥

पदार्थः—मरने के पश्चात् जन्मान्तर में (देवी) देवी (पृथिवी) भूमि (नः) हमें (पुनः) फिर (असुम्) प्राणशक्ति (ददातु) देती है,(द्यौः) द्युलोक (पुनः) फिर प्राणशक्ति देता है और (पुनः) फिर प्राणशक्ति देता है अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष भी (सोमः) परमेश्वर (नः) हमें (तन्वम्) शरीर (पुनः) फिर (ददातु) देता है, (पूषा) सबका पोषक वायु हमें पुष्टि दे, (या) जो (स्वस्ति) वाग् हमें (पथ्याम्) वाणी प्रदान करती है ।

भावार्थः मरणान्तर में पुनः जन्म धारण करते समय भूमि, द्युलोक और अन्तरिक्ष प्राणशक्ति देते हैं, वायु पोषण देता है और वाक्शक्ति वाक् देती है और भगवान् इन सबसे युक्त शरीर को देता है ॥७॥

शं रोद॑सी सु॒बन्ध॑वे य॒ह्वी ऋ॒तस्य॑ मा॒तरा॑ ।
भर॑ता॒मप॒ यद्रपो॒ द्यौः पृ॑थिवि क्ष॒मा रपो॒ मो षु ते॒ किं च॒नाम॑मत् ॥८॥

पदार्थः—(सुबन्धवे) सबके उत्तम बन्धु अथवा सभी पदार्थों और शरीर के साथ बन्धुभाव से वर्तने वाले के लिए (यह्वी) महान् (ऋतस्य) सत्य के (मातरा) पालक (रोदसी) पिता और माता (शम्) कल्याणकारक होते हैं, (यद्) जो (रपः) खराबी है उसे (अप भरताम्) दूर करती हैं(द्यौः पृथिवि) ये पिता-माता (रपः) बुराई को (क्षमा) क्षमा करते हैं, हे पितः ! हे मातः ! (ते) आपका (किम् चन) कुछ भी (मो) नहीं (सु आममत्) हमें कष्टदायी होता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः पिता-माता जो सत्य के पालक हैं वे सबके बन्धु मनुष्य के लिए सदा सुखदाता होते हैं। जो बुराई होती है उसे दूर करते हैं, अपराध को क्षमा भी करते हैं। हे पितः मातः ! आपका कुछ भी हमें कष्टदायी नहीं होता है ।।८।।

अव द्वके अव त्रिका दिवश्चरन्ति भेषजा ।
क्षमा चरिष्ण्वेककं भरतामप यद्रपो द्यौः
पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ।।९।।

पदार्थः—(**दिवः**) आकाश से (**द्विका**) दो के रूप में (**त्रिका**) तीन के रूप में (**भेषजा**) ओषधियां (**अव चरन्ति**) भूमि पर आती हैं, (**क्षमा**) भूमि में (**एककम्**) एक-एक करके (**चरिष्णु**) विचरती हैं, (**द्यौः**) द्युलोक (**पृथिवि**) पृथिवी लोक (**यद्**) जो (**रपः**) शरीर की न्यूनता है उसे (**अप भरताम्**) दूर करते हैं और (**रपः**) रोग को (**क्षमा**) दूर करने में समर्थ हैं, (**ते**) उनका (**किम् चन**) कुछ भी (**मो**) नहीं (**सु आममत्**) कष्टदायी होता है।

भावार्थः—आकाश से दो तीन के रूप में ओषधियां पृथिवी पर एक-एक करके विचरती हैं। दो के रूप में अश्विना=प्राण और अपान आते हैं तथा तीन के रूप में जलीय तत्व (इडा) विद्युद्रूपी शक्ति (सरस्वती) और प्रकाशमयी शक्ति (भारती) आते हैं। पृथिवी पर इनका पृथक् उपयोग है। द्यु और पृथिवी शरीर की कमी को दूर करते हैं और रोग को हटाते हैं। इनकी कोई भी वस्तु हमें हानिकारक नहीं हैं ।।९।।

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ।।१०।।

पदार्थः (**इन्द्र**) यह विद्युत् शक्ति (**गाम्**) किरण प्रकाश को और (**अनड्वाहम्**) सूर्य को (**सम् ईरय**) प्रेरित करती है (**यः**) जो सूर्य (**उशीनराण्या**) उशीनराणी ओषधि के (**अनः**) रथ को (**आ वहत्**) वहन करता है। (**द्यौः पृथिवि**) द्यु और पृथिवी (**यत्**) जो (**रपः**) शरीर की कमी है उसे (**अप भरताम्**) हटाती हैं, वे (**रपः**) रोग को (**क्षमा**) दूर करने में समर्थ हैं, (**ते**) इनका (**किम् चन**) कुछ भी **मो**) नहीं (**सु आममत्**) कष्टदायी होता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—यह विश्वव्याप्त विद्युत् शक्ति किरणों के प्रकाश और सूर्य को प्रेरित करती है। यह सूर्य समस्त ओषधियों जिनमें उशीनराणी भी है उनकी शक्ति के पुंज को धारण करता है। समस्त ओषधियों में उसी का तेज कार्य कर रहा है। द्यु और पृथिवी लोक शरीर की कमी को दूर करते हैं और रोग को हटाते हैं। इनका कुछ भी हमें कष्टदायी नहीं होता है ॥१०॥

यह दशम मण्डल में उनसठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६०

ऋषिः—१—५, ७—१२ बन्ध्वादयो गौपायनाः । ६ अगस्त्यस्य स्वसैषां माता ॥ देवता—१—४, ६ असमाती राजा । ५ इन्द्रः । ७–११ सुबन्धोर्जीविताह्वानम् । १२ हस्तः ॥ छन्दः—१—३ गायत्री । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ पादनिचृदनुष्टुप् । ७, १०, १२ निचृदनुष्टुप् । ११ आर्च्यनुष्टुप् । ८, ९ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—५ षड्जः । ६, ७,१०–१२गान्धारः । ८, ९ पञ्चमः ॥

आ जनं॑ त्वे॒षसं॑न्दृशं॒ माही॑नाना॒मुप॑स्तुतम् ।
अग॑न्म॒ बिभ्र॑तो॒ नमः॑ ॥१॥

पदार्थः—इन्द्रियां कहती हैं—कि हे इन्द्र ! जीवात्मन् (**नमः**) भोगों को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए हम (**त्वेष संदृशम्**) दीप्तदर्शन अर्थात् ज्ञान वाले (**माहीनानाम्**) महान् प्राणों अथवा शक्तियों के (**उपस्तुतम्**) सराहनीय (**जनम्**) जन अर्थात् तुझ जीवात्मा को (**आ अगन्म**) हम प्राप्त हो रहे हैं।

भावार्थः—इन्द्रियां कहती हैं कि हे जीवात्मन् ! भोगों को धारण करती हुई हम समस्त शारीरिक शक्तियों के आश्रयभूत तुझ जीवात्मा को सब व्यवहारों में प्राप्त करती हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

असमातिं नितोशनं त्वेषं निययिनं रथम् ।
भजेरथस्य सत्पतिम् ॥२॥

पदार्थः—(**नितोशनम्**) हमारी बुराइयों के मारने वाले, (**त्वेषम्**) ज्ञान-प्रकाश से युक्त, (**रथम्**) रथ के समान मनोरथों को (**निययिनम्**) पूरा करने वाले (**भजेरथस्य**) रथ के समान शरीर रथ के (**सत्पतिम्**) सत्पति (**असमातिम्**) इन्द्रियों से समन्वय न रखने वाले आत्मा को हम प्राप्त हो रहे हैं ॥२॥

भावार्थः—हमारी बुराइयों के मारने वाले ज्ञानगुणयुक्त रथ के समान मनोरथों को पूरा करने वाले शरीर रथ के पति इन्द्रियों से समन्वय न रखने वाले आत्मा को हम प्राप्त हो रहे हैं ॥२॥

यो जनान्महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान् ।
उतापवीरवान्युधा ॥३॥

पदार्थः—(**पवीरवान्**) विद्युन्मय आयुध वाला (**यः**) जो इन्द्र=परमेश्वर (**महिषान् इव**) महिषों के समान महान् (**जनान्**) लोगों को बिना शस्त्रधारण और युद्ध किये (**अति तस्थौ**) पराभूत कर अतिक्रान्त कर सकता है वह (**युधा**) अपने ज्ञान और बल से इस आत्मा को (**पवीरवान्**) शक्तिशाली बनावे (**उत**) और हमें प्राप्त करावें ।

भावार्थः—जो विद्युन्मय आयुध धारण करने वाले परमेश्वर महान् से महान् शक्तिशाली लोगों का पराभूत कर अतिक्रान्त कर सकता है वह अपने ज्ञान और शक्ति से इस आत्मा को शक्तिशाली बनावे और हमें प्राप्त करावे ॥३॥

यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान्मराय्येधते ।
दिवीव पञ्च कृष्टयः ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र ! हमें उस आत्मा को प्राप्त करा (**यस्य**) जिसके कर्म कृत्यों में (**मरायी**) समस्त विघ्नों का निवारक (**रेवान्**) सब धनों का स्वामी (**इक्ष्वाकुः**) सर्वद्रष्टा परमेश्वर (**एधते**) विराजमान रहता है और जिसमें (**पंचकृष्टयः**) पंच प्राण आदि प्रजा (**दिवि इव**) स्वर्ग में विराजमान प्रजा के समान सुखी रहते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः— हे इन्द्र ! हमें उस आत्मा को प्राप्त करा जिसके कर्म उपासना आदि कार्यों में समस्त विघ्नों के हन्ता, सब धनों के स्वामी सर्व-द्रष्टा परमेश्वर का स्थान है और जिसमें अत्यन्त सुखी लोगों के समय पांचों प्राण आदि प्रजा सुख से रहती हैं ॥४॥

इन्द्रं क्षत्रासमातिषु रथप्रोष्ठेषु धारय ।
दिवीव सूर्यं दृशे ॥५॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**रथप्रोष्ठेषु**) शरीररथों के ही प्रेमी (**असमातिषु**) इन्द्रिय और बुद्धि से समन्वय न रखने वाले जीवात्माओं में (**क्षत्रा**) तेज और शक्ति को उसी प्रकार धारण करा (**इव**) जैसे (**दिवि**) द्युलोक में (**दृशे**) देखने के लिए (**सूर्यम्**) सूर्य को धारण किया है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर! शरीर में ही लिप्त और इन्द्रिय एवं बुद्धि के साथ समन्वय न रखने वाले जीवात्माओं! तेज और शक्ति को उसी प्रकार धारण करो जिस प्रकार देखने के लिए आकाश में सूर्य को धारण कर रहे हो ॥५॥

अगस्त्यस्य नद्भ्यः सप्ती युनक्षि रोहिता ।
पणीन्न्यक्रमीरभि विश्वान्राजन्नराधसः ॥६॥

पदार्थः— हे परमेश्वर ! यथा (**अगस्त्यस्य**) पापरहित जीव के (**नद्भ्यः**) आनन्ददाता इन्द्रिय आदि शक्तियों के संचालन के लिए जीवात्मा के मानस में (**रोहिता**) तेजोमयी (**सप्ती**) सर्पणशील ज्योतिष्मती और बहिष्मती मानस वृत्तियों को आप (**युनक्षि**) जोड़ते हैं उसी प्रकार (**राजन्**) हे सब प्रकाशों के प्रकाश ! (**पणीन्**) संसार में आसक्ति पैदा करने वाली (**विश्वान्**) समस्त (**अराधसः**) आराधना रहित भावनाओं को (**अभि अक्रमीः**) दूर कर दे ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! जिस प्रकार आप पापरहित जीव की इन्द्रिय आदि शक्तियों के संचालनार्थ जीवात्मा के मानस में तेजोमयी सर्पणशील ज्योतिष्मती और बहिष्मती वृत्तियों को जोड़ते हैं उसी प्रकार संसार में आसक्ति पैदा करने वाली और आराधना रहित भावनाओं को दूर कीजिए ॥६॥

Scanned by CamScanner

अयं मातायं पितायं जीवातुरागमत् ।
इदं तव प्रसर्पणं सुबन्धवेहि निरिहि ॥७॥

पदार्थः—चक्षु, श्रोत्र और जिह्वा के वृत्तिभूत प्राण घ्राण के व्यापार वाले प्राण से कहते हैं कि हे घ्राण के परिचालक प्राण (**सुबन्धो**) सुबन्धु ! (**अयम्**) यह जीवात्मा हमारा (**माता**) माता, (**अयम्**) यही हमारा (**पिता**) पिता, (**अयम्**) यह ही (**जीवातुः**) हमें जीवन देने वाला (**आगमत्** प्राप्त है । (**इदम्**) यह ही (**तव**) तुम्हारा गमन साधन है (**आ इहि निः इहि**)तुम इसको प्राप्त हो और मिलो ।

भावार्थः—चक्षु आदि के प्राण घ्राण प्राण को सुबन्धु=उत्तम बन्धु कहकर कहते हैं कि यह जीवात्मा ही हमारा माता, पिता और जीवन है । यही तुम्हारा गमन-साधन है । तू इसे प्राप्त हो और इससे मिल ॥७॥

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरुणाय कम् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥८॥

पदार्थः—हे प्राण ! (**यथा**) जिस प्रकार (**युगम्**) जुए को (**धरुणाय**) धारणार्थं (**वरत्रया**) रस्सी से (**नह्यन्ति**) लोग बांध देते हैं (**एव**) वैसे ही (**जीवातवे**) तुम्हारे जीवन के लिए (**मनः**) मन को जीवात्मा के साथ **(दाधार)** धारण किया गया है । यह (**ते**) तुम्हारे (**मृत्यवे**) विनाश के लिए (**न**) नहीं (**अथो**) अपितु (**अरिष्टतातये**) स्थिर रहने के लिए है ।

भावार्थः—जिस प्रकार धारणार्थ जुए को रस्सी से बांध दिया जाता है ऐसे ही प्राण आदि के जीवन के लिए मन को आत्मा से बान्ध दिया गया है । यह इन प्राण आदिकों के विनाशार्थ नहीं बल्कि स्थिरता के लिए है ॥८॥

यथेयं पृथिवी मही दाधारेमान्वनस्पतीन् ।
एवा दाधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥९॥

पदार्थः—(**यथा**) जिस प्रकार (**इयम्**) यह (**मही**) बड़ी (**पृथिवी**) भूमि (**इमान्**) इन (**वनस्पतीन्**) वृक्षों को (**दाधार**) धारण करती है (**एवा**) इस प्रकार (**ते**) तुझ घ्राण प्राण के (**जीवातवे**) जीवन के लिए (**मनः**) मन

को आत्मा से (दाधार) धारण किया गया यह तुझ प्राण के बिना (मृत्यवे) विनाशार्थ (न) नहीं है अपितु (अरिष्टतातये) स्थिरता के लिए हे ।

भावार्थः—जिस प्रकार यह महती भूमि इन वासनाओं को धारण करती है उसी प्रकार इस प्राण प्राण के जीवन के लिए मन को आत्मा के साथ धारण किया है । यह इसके विनाशार्थ नहीं अपितु स्थिरता के लिए है ॥६॥

यमादहं वैवस्वतात्सुबन्धोर्मन आभरम् ।
जीवातवे न मृत्यवेऽथो अरिष्टतातये ॥१०॥

पदार्थः – (अहम) मैं प्राण-प्राण (वैवस्वतात्) विविध ऐश्वर्यों के स्वामी (यमात्) सबके नियन्ता (सुबन्धोः) उत्तम बन्धु भगवान् से (मनः) मन (आभरम्) प्राप्त करता हूँ, (जीवातवे) जीने के लिए, (न) नहीं (मृत्यवे) विनाश के लिए (अथो) अपितु (अरिष्टतातये) स्थिरता के लिए ।

भावार्थः—मैं प्राण-प्राण अथवा जीवात्मा समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी जगन्नियन्ता सबके बन्धु परमेश्वर से मन को प्राप्त करता हूँ, जीवन के लिए स्थिरता के लिए, विनाश के लिए नहीं ।॥१०॥

न्य१ग्वातोऽव वाति न्यक्तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग्भवतु ते रपः ॥११॥

पदार्थः—हे जीव ! (वातः) वायु (न्यक्) नीचे बहता है, (सूर्यः) सूर्य (न्यक्) नीचे को (तपति) ताप फेंकता है, (अघ्न्या) गाय (नीचीनम्) नीचे की तरफ दूध की धार को (दुहे) देती है, (ते) तुम्हारा (रपः) रोग (न्यक्) नीचे (भवतु) दब जावे ।

भावार्थः—हे जीव ! वायु नीचे बहता है, सूर्य नीचे किरणें फेंकता है, गाय नीचे की तरफ दूध की धार देती है अतः तेरा रोग भी नीचे दब जावे ॥११॥

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः ।
अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥१२॥

पदार्थः—वैद्य कहता है कि—(**अयम्**) यह (**मे**) मेरा (**हस्तः**) हाथ (**भगवान्**) ऐश्वर्यवाला है (**अयम्**) यह (**मे**) मेरा हाथ (**भगवत्तरः**) और भी अधिक ऐश्वर्यशाली है, (**अयम्**) यह (**मे**) मेरा हाथ (**विश्वभेषजः**) सबका इलाज है, (**अयम्**) यह मेरा हाथ (**शिवाभिमर्शनः**) सुखमय स्पर्श वाला है ।

भावार्थः—वैद्य कहता है कि यह मेरा हाथ ऐश्वर्य वाला है, यह और भी अधिक ऐश्वर्य वाला है, यह समस्त रोगों की दवा है और सुखमय स्पर्श वाला है ॥१२॥

यह दशम मण्डल का साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६१

ऋषिः—१—२७ नाभानेदिष्ठो मानवः ॥ देवता——विश्वेदेवाः ॥
छन्दः—१, ८—१०, १५, १६, १८, १९, २१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ७, ११, १२, २० विराट्त्रिष्टुप् । ३, २६ आर्चीस्वराट्-त्रिष्टुप् । ४, १४, १७, २२, २३; २५ पादनिचृ-त्त्रिष्टुप् । ५, ६, १३ त्रिष्टुप् । २४, २७ आर्ची-भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इदमित्था रौद्रं गूर्तवचा ब्रह्म क्रत्वा शच्यामन्तराजौ ।
क्राणा यदस्य पितरा मंहनेष्ठाः पर्षत्पक्थे अहन्ना सप्त होतॄन् ॥१॥

पदार्थः—(**गूर्त्त-वचाः**) श्रमपूर्वक वेदवाणी का अभ्यासी पुरुष (**इदम्**) इस (**इत्था**) सत्य (**रौद्रम्**) कठिन (**ब्रह्म**) वेदज्ञान को (**शच्याम्**) कर्म और वाणी में (**क्रत्वा**) बुद्धि द्वारा (**आजौ**) संघ के (**अन्तः**) मध्य में उपदेश करता है, (**तव यत्**) जो (**अस्य**) इसके (**पितरा**) माता और पिता (**क्राणा**) जिसमें कार्यरत हैं और (**अस्य**) इसके (**मंहनेस्थाः**) महनीय स्थान पर रहने वाले जो कार्य करते हैं उस कार्य में (**पक्थे अहनि**) पाक करने के दिन (**सप्त**) सात (**होतॄन्**) ऋत्विजों वा विद्वानों को (**पर्षत्**) पूर्ण करता है अर्थात् यज्ञ का ब्रह्मा बनता है ।

भावर्थ—वेदवाणी का परिश्रम के साथ अभ्यास करने वाला मनुष्य इस कठिन वेदज्ञान का कर्म और वाणी में बुद्धि द्वारा प्रयुक्त करके संघ

Scanned by CamScanner

आदि में उपदेश करता है। उसके माता-पिता और पूजनीय जो कार्य करते हैं उस यज्ञ कार्य में वह पाक करने के दिन सप्त होताओं में ब्रह्मा बनकर स्थित होता है ॥१॥

स इद्दानाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् ।
तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊति सिञ्चत् ॥२॥

पदार्थः—(सः) वह वेदज्ञ पुरुष (इत्) ही (**दानाय**) ऋत्विज् आदि को धन देने के लिए (**वन्वन्**) धन बांटता हुआ और (**दभ्याय**) दुष्टों का दमन करने के लिए (**सूदैः**) काटने वाले शस्त्रों द्वारा उनका (**च्यवानः**) नाश करता हुआ पृथिवी को (**वेदिम्**) यज्ञ की वेदी (**अमिमीत**) बना देता है, (**तूर्वयाणः**) त्वरितगति (**गूर्तवचस्तमः**) अत्यन्त उद्यत वचन वाला वह (**क्षोदः न**) मेघ से वर्षा में छोड़े जाने वाले जल के समान (**इतः ऊती**) इधर आने के ढंग से (**रेतः**) सामर्थ्य को (**सिञ्चत्**) सिक्त करता है।

भावार्थः—वह वेदज्ञ पुरुष ऋत्विज् को देने के लिए धन को बांटता हुआ और शत्रुओं के नाश के लिए दुष्टों का हिंसक शस्त्रों से दमन करता हुआ सारी पृथिवी को यज्ञ वेदी बना देता है। तथा इसे परमार्थ के लिए समझकर त्वरित गमन और अत्यन्त प्रत्युत्पन्नमति होकर अपने सामर्थ्य को सर्वत्र इस प्रकार विखेरता है कि वह यहीं पर आवे और मेघ के जल के समान सर्वत्र फैले ॥२॥

मनो न येषु हवनेषु तिग्मं विपः शच्या वनुथो द्रवन्ता ।
आ यः शर्याभिस्तुविनृम्णो अस्याश्रीणीतादिशं गभस्तौ ॥३॥

पदार्थः—ये अश्विनी=सूर्य और चन्द्रमा (**तिग्मम्**) तीक्ष्ण (**मनः**) मन के (**न**) समान उन (**हवनेषु**) होमों में (**विपः**) यजमान के (**शच्या**) कर्म से (**द्रवन्ता**) जाते हुए (**वनुथः**) सेवन करते हैं (**येषु**) जिनमें (**यः**) जो अध्वर्यु है वह (**आ**) सम्यक् (**तुविनृम्णः**) प्रभूत सामग्री से युक्त होकर (**अस्य**) इसकी अपनी (**शर्याभिः**) अंगुलियों से (**गभस्तौ**) हाथ में पकड़ कर (**आदिशम्**) स्पष्ट निर्देश करके (**अश्रीणीत**) आहुति देता है।

भावार्थः– ये सूर्य चन्द्र देवता के रूप में मन के समान तीक्ष्ण गति से उन यज्ञों में यजमान के कर्म से जाकर अपना भाग ग्रहण करते हैं जिन

Scanned by CamScanner

यज्ञों में अध्वर्यु कर्म करने वाला अपने हाथ में सामग्री को लेकर अंगुलियों के द्वारा यज्ञ के देवता के निर्देश के साथ आहुति प्रदान करता है ॥३॥

कृष्णा यद्गोष्वरुणीषु सीदद्दिवो नपाताश्विना हुवे वाम् ।
वीतं मे यज्ञमा गतं मे अन्नं ववन्वांसा नेषमस्मृतध्रू ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**कृष्णा**) रात्रि (**अरुणीषु**) अरुण वर्ण की (**गोषु**) किरणों और उषाओं में (**सीदत्**) होती है तब (**दिवः**) द्युलोक के (**नपाता**) न पालक (**वाम्**) इन अश्विनी=सूर्य और चन्द्रमा को लक्ष्य करके (**हुवे**) उनकी प्रशंसा करता हूँ, (**अस्मृतध्रू**) विना किसी उलटा प्रभाव को डालते हुए ये दोनों (**मे**) मुझ यजमान के (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**आगतम्**) प्राप्त होते हैं (**मे**) मेरे (**अन्नम्**) आहुति में दिये गये अन्न को (**वीतम्**) ग्रहण करते हैं (**न**) संप्रति (**इषम्**) अन्न के और ज्ञान के (**ववन्वान्सा**) देने वाले होते हैं।

भावार्थः—जब उषा का समय होता है तब द्युलोक के पालक सूर्य और चन्द्रमा को लक्ष्य में रखकर मैं यजमान आहुति प्रदान से उनकी प्रशंसा करता हूँ। वे विना किसी प्रकार की हानि किए हमारे यज्ञों को प्राप्त होते हैं, आहुति भाग को ग्रहण करते हैं और वर्षा आदि से अन्न देने वाले और ज्ञान के विषय बनकर ज्ञान के साधन बनते हैं ॥४॥

प्रथिष्ट यस्य वीरकर्ममिष्णदनुष्ठितं नु नर्यो अपौहत् ।
पुनस्तदा वृहति यत्कनाया दुहितुरा अनुभृतमनर्वा ॥५॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस रुद्र नामी प्रजापति अग्नि का (**इष्णत्**) ईक्षणयुक्त (**वीरकर्मम्**) उत्पादन कर्म (**प्रथिष्ठ**) प्रथित होता है उस (**अनुस्थितम्**) स्थापित एवम् स्थित हुए उत्पादन कर्म को (**अनर्वा**) दृढ (**नर्यः**) मनुष्य और देवों का हितकारक पार्थिव अग्नि (**नु**) निश्चय से (**अप औहत्**) छिपा लेता है (**तत्**) वह (**पुनः**) फिर (**आवृहति**) चौतरफा फैलता है यह वही तत्व है (**यत्**) जो (**कनायाः**) चमकीले (**दुहितुः**) द्युलोक से (**अनुभृतम्**) ग्रहण किया गया (**आः**) होता है।

भावार्थः—प्रजापति रुद्र=अग्नि की उत्पादन शक्ति विस्तार को प्राप्त होती है। उसके द्वारा स्थापित उत्पादन शक्ति रूप तेज को दृढ़ और नर

Scanned by CamScanner

तथा देवों का हितकारी पार्थिव अग्नि अपने अन्दर ढककर रख लेता और वह तेज सर्वत्र फैलता है। वस्तुतः यह तेज है जो द्युलोक से ग्रहण किया जाता है ॥५॥

मध्या यत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ।
मनानग्रेतो जहतुर्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥६॥

पदार्थः (**कामम्**) यथेच्छ रूप से (**पितरि**) सूर्य (**युवत्याम्**) द्युलोक वा उषा के (**कृण्वाने**) करने पर (**यत्**) जो (**कर्त्वम्**) कर्म (**मध्या**) अन्तरिक्ष में (**अभीके**) उनके समीप (**अभवत्**) हुआ वा होता है उसमें (**मनानक्**) स्वल्प (**रेतः**) अरुण किरण नामी तेज को (**वियन्ता**) परस्पर अभिगमन करने वाले दोनों ने (**जहतुः**) छोड़ा वा छोड़ते हैं। यह वही तेज है जिसे प्रजापति सूर्य द्वारा (**सुकृतस्य**) उत्तमकर्म के (**सानौ**) ऊँचे (**योनौ**) स्थान द्युलोक में (**निषिक्तम्**) निषिक्त रहता है।

भावार्थः आदित्य और उषा वा द्युलोक के परस्पर अभिगमन से जो कर्म होता है उसमें आदित्य अरुण किरण नामक तेज को उषा वा द्युलोक में छोड़ता है और दिन की उत्पत्ति होती है। सूर्य का यह तेज द्युलोक में भरा पड़ा है ॥६॥

पिता यत्स्वां दुहितरमधिष्कन्क्ष्मया रेतः सञ्जग्मानो नि षिञ्चत् ।
स्वाध्योऽजनयन्ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥७॥

पदार्थः—(**पिता**) प्रजापति आदित्य (**यत्**) जब (**स्वाम्**) अपनी (**दुहितरम्**) उषा अथवा द्युलोक को (**अधिष्कन्**) प्राप्त करता है तब (**क्ष्मया**) पृथिवी के साथ संगत हुआ (**रेतः**) अपने अरुण किरण नामक तेज को (**निंसिचत्**) आकाश में सिक्त करता है तब (**स्वाध्यः**) अच्छी प्रकार प्रकट (**देवाः**) दिव्य शक्तियें—सूर्य किरणें (**ब्रह्म**) अग्नि को (**अजनयन्**) उत्पन्न करते हैं और उसे (**व्रतपाम्**) व्रतों के पालक (**वास्तोः पतिम्**) वास्तोष्पति रुद्र नामक अग्नि को (**निः अतक्षन्**) निर्मित करते हैं।

भावार्थः—आदित्य जब द्युलोक अथवा उषा को अभिव्याप्त करता है तब पृथिवी के साथ संगत होकर आकाश में तेज को सिक्त करता है उससे दिन का प्रकाश और अग्नि आदि उत्पन्न होते हैं। इस अग्नि को वास्तोष्पति रुद्र=अग्नि कहा जाता है ॥७॥

Scanned by CamScanner

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः ।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे ॥८॥

पदार्थः (**स ईम्**) वह यह (**वृषा न**) वर्षा कराने वाले (**इन्द्र**) विद्युत् बल के समान (**आजौ**) संग्राम में अथवा यज्ञ में (**फेनम्**) घृत आदि फेन को (**अस्यत्**) प्राप्त करता और यज्ञ देवों की ओर फेंकता है (**स्मत्**) हम यजमान आदि लोगों से (**आ अप परा ऐत्**) दूर तक पहुँचाता है, (**दभ्रचेताः**) अल्पमनस्क कोई मनुष्य (**दक्षिणा**) दक्षिणा के लिये (**परावृक्**) रोकने वाला (**पदा**) कदमों को (**न**) नहीं (**सरति**) उठाता है तो (**ताः**) उन (**मे**) मेरी वाणियों को (**नु**) निश्चय ही (**पृशन्यः**) सब पदार्थों को स्पर्श करने वाला अग्नि (**न**) नहीं (**जगृभे**) ग्रहण करता है ।

भावार्थः यह वास्तोष्पति अग्नि विद्युद्बल के समान यज्ञ में घृत आदि को प्राप्त कर यज्ञ देवों की ओर फेंकता है। इस सब कुछ को वह हम से दूर पहुंचाता है। अल्पमनस्क कोई यदि ऋत्विग् और विद्वानों की दक्षिणा के लिए रोकने वाला बनता है और इस दिशा में पग नहीं उठाता है तो यह अग्नि यजमान की बोली स्वाहा आदि वाणियों को नहीं ग्रहण करता। अर्थात् दक्षिणा के अभाव में वह यज्ञ यज्ञ नहीं रह जाता ॥८॥

मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निं न नग्न उप सीददूधः ।
सनितेध्मं सनितोत वाजं स धर्ता जज्ञे सहसा यवीयुत् ॥९॥

पदार्थः (**प्रजायाः**) प्राणियों का (**उपब्दिः**) उत्पीडक अर्थात् जलाने आदि के द्वारा उसे पीड़ा देने वाला (**वह्निः**) अग्नि यज्ञ आदि कार्यों के साधनार्थ (**मक्षू**) आसानी से (**न**) नहीं (**उप सीदत्**) काबू में आता है, वह दिन में भी आसानी से कार्य में नहीं लाया जा सकता है, (**ऊधः**) रात्रि में भी (**नग्नः**) विना किसी आच्छादन के खुले हाथ आदि कोई (**अग्निम्**) अग्नि को (**न**) नहीं (**उप सीदत्**) ग्रहण कर सकता है ऐसा दुःसाध्य (**सः**) वह अग्नि (**इध्मम्**) समिधा को (**सनिता**) प्राप्त करने वाला, (**उत**) और (**वाजम्**) अन्न को (**सनिता**) प्राप्त करने वाला और (**धर्ता**) धारक (**जज्ञे**) होता है, (**सहसा**) बल से (**यवीयुत्**) संयोग और वियोग का करने वाला होता है ।

भावार्थः—जो अग्नि दिन में और रात्रि में भी आसानी से कार्य में

नहीं लगाया जा सकता है और जलने आदि का भय जिससे प्राणीमात्र को बना रहता है, जिसे विना किसी आच्छादन के खुले हाथ कोई नहीं छू सकता, वही विधिवत् प्रयोग में लाया जाकर यज्ञ में समिधा,अन्न आदि का प्राप्त करने वाला पदार्थों का धारक और संयोग विभाग का साधन बन जाता है ॥९॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवग्वा ऋतं वदन्त ऋतयुक्तिमग्मन् ।
द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ॥१०॥

पदार्थः—(नवग्वा) नवनीत गति वाले अग्नि की लहरें (ऋतम्) सृष्टि-नियम को तथा (ऋतयुक्तिम्) नियम वा जल के योग को (वदन्तः) बताती हुई (मक्षू) शीघ्र ही (कनायाः) कमनीय पृथिवी के (सख्यम्) सख्यभाव को (अग्मन्) प्राप्त करती हैं । (ये) जो ये (द्विबर्हसः) द्यु और पृथिवी लोक में विद्यमान अग्नि की लहरें (गोपम्) पालक वायु को (उप आ अगुः) प्राप्त कर लेती हैं तो (अदक्षिणासः) यज्ञाग्नि न हुई होकर (अच्युताः) इधर-उधर च्युत न होती हुई वृष्टि जल आदि को (दुदुक्षन्) दुहती हैं ।

भावार्थः—नवीन गति वाली अग्नि की लपटें सृष्टि नियम और उसके योग को बताती हुई शीघ्र ही पृथिवी पर आ जाती हैं । वे द्यु और पृथिवी लोक में रहकर वायु को प्राप्त होती है और जल का दोहन करती हैं ॥१०॥

मक्षू कनायाः सख्यं नवीयो राधो न रेत ऋतमित्तुरण्यन् ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥११॥

पदार्थः (मक्षू) शीघ्र ही (कनायाः) पृथिवी के (सख्यम्) सख्य को प्राप्त कर (नवीयः) नवीन (राधः) धन के समान (रेतः) जल के वाष्पभूत बीज को सींचते हुए (ऋतम्) जल को (इत्) ही (तुरण्यन्) प्रेरित करते हैं ये अग्नि प्रकार वा अग्नि की लहरें । तथा इस प्रकार ये (सबर्दुघायाः) अमृत का दोहन करने वाली (उस्रियायाः) गौ के (पयः) दूध के समान (शुचि) पवित्र (रेक्ण) जल धन को (ते) तेरे लिए हे यजमान ! (आयजन्त) देते हैं ।

भावार्थः—ये अग्नि की लहरें नवीन धन के समान जल की वाष्पभूत बीज को सींचते हुए आकाश से वृष्टि को बरसाते हैं । तथा इस प्रकार ये

Scanned by CamScanner

तेरे लिए हे यजमान ! पवित्र जल रूप धनको अमृत देने वाली गाय के दूध के समान देते हैं ॥११॥

पश्वा यत्पश्चा वियुता बुधन्तेति ब्रवीति वक्तरी रराणः ।
वसोर्वसुत्वा कारवोऽनेहा विश्वं विवेष्टि द्रविणमुप क्षु ॥१२॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**पश्वा**) पशु से (**वियुक्ता**) रहित अपने गोष्ठानों को (**पश्चा**) पश्चात् (**बुधन्त**) जानते हैं तब (**कारवः**) स्तोता (**इति**) ऐसा (**ब्रवीति**) कहता है कि (**वक्तरि**) स्तोता पर (**रराणः**) प्रसन्न (**वसोः**) वासक से (**वसुत्वा**) अति वासक (**अनेहाः**) पवित्र इन्द्र (**विश्वम्**) सम्पूर्ण(**द्रविणम्**) धन को (**क्षु**) शीघ्र ही (**उप विवेष्टि**) प्राप्त कर लेता है ।

भावार्थः—जब यज्ञ-कर्त्ता अपने गोष्ठानों को पशु से हीन पाते हैं तब स्तोता ऐसा कहता है कि हे यज्ञकर्त्ताओ ! स्तोता पर प्रसन्न हुआ सबको वास देने वाला परमेश्वर उनके लिए समस्त धनों को धारण करता है। वह उन्हें देगा ॥१२॥

तदिन्न्वस्य परिषद्वानो अग्मन्पुरू सदन्तो नार्षदं बिभित्सन् ।
वि शुष्णस्य संग्रथितमनर्वा विदत्पुरुप्रजातस्य गुहा यत् ॥१३॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**पुरुजातस्य**) इन्द्रियों में नानारूप में प्रकट हुए (**शुष्णस्य**) बलवान् प्राण के (**गुहा**) बुद्धि में (**संग्रथितम्**) एकत्र हुए बल को आत्मा (**विविदत्**) जानता है, जो (**अस्य**) इस प्राण के (**परिषद्वानः**) सेवक दूसरे प्राणगण (**पुरु**) नाना इन्द्रिय स्थानों में (**सदन्तः**) बैठे हुए (**नार्षदम्**) आत्मा के रहने के स्थान देह को (**विभित्सन्**) भेदते हैं अर्थात् इन्द्रियों के छिद्रों को बना लेते हैं वे (**अस्य**) इसके (**तत्**) उस (**इत् नु**) इस बल को (**अग्मन्**) प्राप्त करते हैं और वह आत्मा (**अनर्वा**) इन्द्रिय आदि अश्वों से पृथक् है ।

भावार्थः—इन्द्रियों में नाना रूप में प्रकट हुए बलवान् प्राण के बुद्धि में एकत्र बल को आत्मा जानता है । इस प्राण के रक्षक प्राण-गण नाना इन्द्रिय स्थानों में स्थित हो, आत्मा के रहने के स्थान शरीर को भेद कर इन्द्रियों का छिद्र बना लेते हैं और वे आत्मा के परम बल को प्राप्त करते हैं ॥१३॥

Scanned by CamScanner

भर्गो ह नामोत यस्य देवाः स्व१र्ण ये त्रिषधस्थे निषेदुः ।
अग्निर्ह नामोत जातवेदाः श्रुधी नो होतर्ऋतस्य होताध्रुक् ॥१४॥

पदार्थ—(**उत**) और (**भर्गः**) भर्ग (**ह**) निश्चय ही (**नाम**) तेज है वह जिसके सम्बन्धी (**त्रिषधस्थे**) तीन स्थानों पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक में (**ये**) जो (**देवाः**) दिव्य शक्तियां हैं वे (**स्वः न**) स्वर्ग के समान (**निषेदुः**) स्थित हैं, (**उत ह**) और वह तेज (**अग्निः**) अग्नि नाम वाला है वही (**जातवेदाः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में व्याप्त होने से जातवेदस् नाम वाला है, (**होतः**) हे होता ऋत्विक् (**ऋतस्य**) यज्ञ का (**होता**) होता तू (**अध्रुक्**) द्रोहरहित (**नः**) हमारी (**श्रुधि**) सुन ।

भावार्थः— यह अग्नि भर्ग नाम वाला है जिसके निवास स्थान पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में रहने वाले प्राकृतिक पदार्थ रूप देव स्वर्ग के समान स्थान में रहते हैं। यही अग्नि नाम वाला है और यही जातवेदस् नाम वाला है। हे यज्ञ के होता ! ऋत्विक् तुम बिना किसी द्रोह के हमारे कथन को सुनो ॥१४॥

उत त्या मे रौद्रावर्चिमन्ता नासत्याविन्द्र गूर्तये यजध्यै ।
मनुष्वद्वृक्तबर्हिषे रराणा मन्दू हितप्रयसा विक्षु यज्यू ॥१५॥

पदार्थः—(**उत**) अपि च (**त्या**) वे दोनों (**रौद्रौ**) अग्नि के पुत्र (**अर्चिमन्ता**) दीप्ति वाले (**नासत्या**) सत्यभूत अश्विनी=प्राण और अपान (**मे**) मुझे यज्ञाग्नि के (**गूर्तये**) बढ़ाने के लिए (**यजध्यै**) यज्ञ सम्पादन के लिए (**भवेताम्**) होवें, तथा (**मनुष्वत्**) भगवान् के चल रहे संसार यज्ञ की भांति (**वृक्तबर्हिषे**) यज्ञ में स्थित (**रराणा**) आनन्द देते हुए, (**मन्दू**) हर्षदाता होकर, (**हित प्रयसा**) धन की प्रेरणा वाले तथा (**विक्षु**) प्रजाओं में (**यज्यू**) यष्टव्य हों ।

भावार्थः—अग्नि की उक्ति है—ये रुद्ररूपी अग्नि के पुत्र दोनों अश्विनी=प्राण और अपान जो दीप्ति वाले हैं मुझ अग्नि के वृद्धि और यज्ञ के सम्पादन में देवत्वेन सहयोगी होवें। जिस प्रकार वे भगवान् के चलाये संसार यज्ञ में कार्य करते हैं वैसे ही यज्ञ में स्थित, आनन्ददाता, हर्षदाता होकर धन की प्रेरणा वाले और प्रजा में यष्टव्य होवें ॥१५॥

Scanned by CamScanner

अयं स्तुतो राजा वन्दि वेधा अपश्च विप्रस्तरति स्वसेतुः ।
स कक्षीवन्तं रेजयत्सो अग्निं नेमिं न चक्रमर्वतो रघुद्रु ॥१६॥

पदार्थः—(अयम्) यह (वेधाः) सब कार्यों का करने वाला (राजा) दीप्तिमान् (स्तुतः) प्रशस्त, (स्वसेतुः) स्वयं सेतुरूप, (विप्रः) विशेषरूप से पूरक सोम=प्राण (वन्दि) विद्वानों द्वारा वर्णित किया जाता है, (सः) वह (अपः) अन्तरिक्ष को भी (तरति) तरता है, वह (कक्षीवन्तम्) कक्षाओं में विद्यमान मेघ को (रेजयत्) कम्पित करता है तथा (न) जिस प्रकार (नेमिम्) नमे हुए (रघुद्रु) लघु गमन वाले (चक्रम्) चक्र को (अर्वतः) घोड़े ले जाते हैं उसी प्रकार (अग्निम्) अग्नि को (रेजयत्) कम्पित करता है ।

भावार्थः—सब कार्यों का साधक, आकाश और पृथिवी के बीच में स्वयं सेतु के समान विद्यमान दीप्ति से युक्त, विशेष पूरक वायु अन्तरिक्ष में बहता है और लोगों से वर्णित किया जाता है। वह मेघ को हिलाता है और अग्नि को भी उसी प्रकार कम्पित करता है जिस प्रकार घोड़े लघुगति रथचक्र को ले चलते हैं ॥१६॥

स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।
सं यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥१७॥

पदार्थ—(सः) वह (द्विबन्धुः) दोनों लोकों का बन्धुभूत (यष्टा) यष्टव्य (वैतरणः) सब देवों के पास हव्य पदार्थों का पहुंचाने वाला अग्नि (सबर्धुम्) अमृत को देने वाली (अस्वम्) जो अपनी नहीं हुई है उस (धेनुम्) वेद की मन्त्रमयी वाणी को (दुहध्यै) दुहने के लिए कर देता है अथवा माध्यमिका वाक् को जल दोहन के लिए कर देता है, (यत्) जब वह (ज्येष्ठैः) श्रेष्ठ (उक्थैः) वर्णनीय (वरूथैः) गुणों वाले पदार्थों के माध्यम से (मित्रावरुणा) प्राण और उदान को तथा (अर्यमणम्) सूर्य को (सम् वृञ्जे) संपृक्त करता है।

भावार्थः–दोनों लोकों में रहने वाला सब देवों को यज्ञ भाग पहुंचाने वाला अग्नि वेदवाणी जो अमृतमय ज्ञान को देती है उसे यजमान आदि के लिए यज्ञ उनके द्वारा प्रयोग किये जाने से ज्ञानदोहन वाली कराता है। अथवा माध्यमिका वाणी को जल दोहन योग्य करता है। वह श्रेष्ठ उत्तम गुणों वाले हव्य पदार्थों के और भौतिक शक्तियों के माध्यम से प्राणोदान और सूर्य से सम्पर्क कर वृष्टि कराता है ॥१७॥

Scanned by CamScanner

तद्बन्धुः सूरिर्दिवि ते धियंधा नाभानेदिष्ठो रपति प्र वेनन् ।
सा नो नाभिः परमास्य वा घाहं तत्पश्चा कतिथश्चिदास ॥१८॥

पदार्थः—(**तद्बन्धुः**) सूर्य का बन्धुभूत (**दिवि**) आकाश में (**सूरिः**) सरणशील (**ते**) इस सूर्य के (**धियंधाः**) कर्म को तीव्र करने वाला (**नाभ नेदिष्ठः**) वायु (**वेनन्**) गति करता हुआ (**प्ररपति**) शब्द करता है (**सा**) वह द्युलोक (**नो**) नाभानेदिष्ठ=वायु की (**परयम**) उत्कृष्ट (**नाभिः**)नाभि है और सूर्य का अधिष्ठान है । (**वा**) अथवा (**घ**) निश्चय (**अहम्**) वायु (**तत्पश्चा**) सूर्य के पीछे (**कतिथः चित्**) कतिपय कार्यो का पूरक (**आस**) होता है ।

भावार्थः—सूर्य का बन्धु द्युलोक में सरणशील, सूर्य के कार्य को तीव्र करने वाला नाभानेदिष्ठ=वायु गति करता हुआ शब्द करता है । वह द्यु लोक नाभानेदिष्ठ की नाभि है और सूर्य का अधिष्ठान है । यह नाभानेदिष्ठ सूर्य के पश्चात् कतिपय कार्यों का पूरक है ॥१८॥

इयं मे नाभिरिह मे सधस्थमिमे मे देवा अयमस्मि सर्वः ।
द्विजा अह प्रथमजा ऋतस्येदं धेनुरदुहज्जायमाना ॥१९॥

पदार्थः—(**इयम्**) यह द्यु अथवा माध्यमिका वाक् (**मे**) नाभानेदिष्ठ=वायु की (**नाभिः**) नाभि है, (**इह**) इस नभोमण्डल में (**मे**) नाभानेदिष्ठ=वायु का (**सधस्थम्**) स्थान है,(**देवाः**) ये सूर्य की किरणें (**मे**) इसकी अपनी बनी हुई हैं, (**द्विजाः**) आंगिरस गण अथवा मरुद्गण (**ऋतस्य**) सृष्टि नियम के (**अह**) इसलिए (**प्रथमजाः**) प्रथमजा हैं, (**धेनुः**) माध्यमिका वाक् (**जायमाना**)उत्पन्न होती हुई (**इदम्**) इस अन्तरिक्ष का (**अदुहत्**) दोहन करती है ।

भावार्थः—यह द्यु अथवा माध्यमिका वाक् नाभानेदिष्ट=वायु की नाभि है । इस नभोमण्डल में इसका स्थान है । ये सूर्यकिरणें उसकी अपनी बनी हुई है । अंगिरस गण=अग्नि की लहरें अथवा मरुद्गण सृष्टि के प्रथमजा हैं । माध्यमिका वाक् उत्पन्न होती हुई इस अन्तरिक्ष का दोहन करती है ॥१९॥

अधासु मन्द्रो अरतिर्विभावाव स्यति द्विवर्तनिर्वनेषाट् ।
ऊर्ध्वा यच्छ्रेणिर्न शिशुर्दन्मक्षू स्थिरं शेवृधं सूत माता ॥२०॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अध**) अब (**आसु**) इन चारों दिशाओं में (**मन्द्रः**) मोदमान, (**अरति**) गतिशील (**विभावा**) दीप्तिमान् (**द्विवर्तनिः**) दोनों लोकों आकाश और पृथिवी में रहने वाला (**वनेषाद्**) जलों का अभिभव करने वाला अग्नि भी (**अवस्यति**) अवसान को प्राप्त करता है, (**यत्**) जो अग्नि (**ऊर्ध्वाः**) उन्मुख (**शिशुः**) शंसनीय (**श्रेणिः न**) सेना के समान (**मक्षू**) शीघ्र (**वन्**) शत्रु आदि का नाश कर देता है उस इस (**स्थिरम्**) स्थिर (**शेवृधम्**) सुख के वर्धक अग्नि को (**माता**) आकाश मण्डल (**सूत**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—चारों दिशाओं में गतिशील, दीप्तिमान और मुदित आकाश और पृथिवी में रहने वाला, जलों और काष्ठ आदि को अभिभूत करने वाला यह अग्नि अवसान को भी प्राप्त होता है। जो यह अग्नि उन्मुख शंसनीय सेना के समान शत्रुओं का हन्ता है उसे आकाश-मण्डल उत्पन्न करता है ॥२०॥

अधा गाव उपमातिं कनाया अनु श्वान्तस्य कस्य चित्परेयुः ।
श्रुधि त्वं सुद्रविणो नस्त्वं याळाश्वघ्नस्य वावृधे सूनृताभिः ॥२१॥

पदार्थः—(**अध**) अब (**कस्य चित्**) किसी (**श्वान्तस्य**) श्रान्त महान् आत्मा की ही (**गावः**) वाणियां (**कनायाः**) स्तुति के (**उपमातिम्**) योग्य परमेश्वर के (**अनु**) प्रति (**पर ईयुः**) जाती हैं, (**सुद्रविणः**) हे उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (**त्वम्**) तू (**नः**) हमारी (**श्रुधि**) सुन, (**त्वम्**) तू (**याट्**) हमें दे, तू (**आश्वघ्नस्य**) इन्द्रियरूपी अश्वों के जीतने वाले की ही (**सूनृताभिः**) उत्तम स्तुतियों से (**वावृधे**) बढ़ाता है।

भावार्थः—किसी श्रम-श्रान्त आत्मा की ही वाणियां स्तुतियोग्य प्रभु को प्राप्त होती हैं। हे ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू हमारी सुन, हमें ज्ञान आदि दे। और तू इन्द्रियों को जीतने वाले की ही स्तुतियों से प्रसन्न होता है ॥२१॥

अध त्वमिन्द्र विद्ध्य१स्मान्महो राये नृपते वज्रबाहुः ।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीननेहसस्ते हरिवो अभिष्टौ ॥२२॥

पदार्थः—(**अध**) हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो! (**त्वम्**) तू (**अस्मान्**) हमें (**विद्धि**) जानता है, (**हे नृपते**) समस्त मनुष्यों के स्वामी परमेश्वर! तू (**वज्रबाहुः**) वज्रबाहु है, (**महः**) महान् (**राये**) ऐश्वर्य के लिए (**अस्मान्**

मघोनः) हम यज्ञ करने वालों की (रक्ष) रक्षा कर (नः) हम (सूरीन्) स्तावकों की (पाहि) रक्षा कर, (हरिवः) हे दुःखों के हरने वाले प्रभो ! (ते) तुम्हारी (अभिष्टौ) उपासना में हम (अनेहसः) अपराध से रहित हो।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् ! तू हमें जानता है । हे सबके स्वामिन् ! तू शक्तिशाली है । महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए हम यज्ञ करने हारों की रक्षा कर। हम स्तावकों की रक्षा कर। हे दुःखों के हरने वाले ! हम तुम्हारी उपासना और तुम्हारे शासन में अपराध से रहित हों ॥२२॥

अध यद्राजाना गविष्टौ सरत्सरण्युः कारवे जरण्युः ।
विप्रः प्रेष्ठ स ह्येषां बभूव परा च वक्षदुत पर्षदेनान् ॥२३॥

पदार्थः—(अध) अब (राजाना) हे ज्ञान और कर्म से प्रकाशमान जनो ! (यत्) जिस लिए (गविष्टौ) किरणों के अन्वेषण में (सरण्युः) सरणशील सूर्य (सरत्) जाता है उसी प्रकार (कारवे) स्तुति करने वाले के लिए (जरण्युः) स्तावक वा वेदज्ञ जाता है, (सः) वह उसी कारण से (विप्रः) मेधावी (प्रेष्ठः) प्रियतम (एषाम्) इन स्तावकों का (बभूव) हो जाता है उनके कर्त्तव्यों को (परा वक्षत्) बताता है (च) और (एनान्) इनको (पर्षत् उत) पार भी लगाता है।

भावार्थः—हे ज्ञान और कर्म से प्रकाशमान लोगो ! जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणें, जो मेघ में खोई हुई हैं, उन्हें प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार वेदज्ञ विद्वान् स्तुति और यज्ञ आदि करने वालों को प्राप्त कर लेता है और मेधावी प्रियतम बनकर उनके कर्त्तव्यों को बताता है और उनको पार भी लगाता है ॥२३॥

अधा न्वस्य जेन्यस्य पुष्टौ वृथा रेभन्त ईमहे तदू नु ।
सरण्युरस्य सूनुरश्वो विप्रश्चासि श्रवसश्च सातौ ॥२४॥

पदार्थ—(अध) अब (नु) शीघ्र ही (अस्य) इस (जेन्यस्य) जयशील अथवा गतिशील वरुण=जल तत्व के (पुष्टौ) पुष्टि में हम (रेभन्तः) प्रशंसापरक अथवा उसके गुणों को बताने वाले मन्त्रों को बोलते हुए (वृथा) विना प्रयत्न के आसानी से (तत्) उस सब (ऊ) को (नु) शीघ्र (ईमहे) भगवान् से मांगते हैं (अस्य) इस वरुण=जल तत्त्व का (सूनुः) उत्पन्न पुत्र अथवा उत्पादक

Scanned by CamScanner

(सरण्युः) गतिशील (अश्वः) विद्युत् (विप्रः) कार्यों का पूरक (अस्ति) होता है (च) और (श्रवसः) अन्न के (सातौ) लाभ के लिए प्रवृत्त (च) भी होता है ।

भावार्थः--इस गतिशील जल तत्त्व की पुष्टि के लिए हम याज्ञिक उसके गुणों को बताने वाले वेदमन्त्रों को बोलते हुए आसानी से उन सब वस्तुओं को भगवान् से मांगते हैं जो उसकी पोषक हैं। इस जल की उत्पन्न अथवा उत्पादक (सरण्यु) गतिशील विद्युत् कार्यों की पूरक बनती है और वर्षा द्वारा अन्न के देने में प्रवृत्त होती है ॥२४॥

युवोर्यदि सख्यायास्मे शर्धाय स्तोमं जुजुषे नमस्वान् ।
विश्वत्र यस्मिन्ना गिरः समीचीः पूर्वीव गातुर्दाशत्सूनृतायै ॥२५॥

पदार्थ –हे सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी उपदेशक और अध्यापक ! (यस्मिन्) जिस प्रभु में (समीचीः) उत्तम (गिरः) स्तुतियां प्राप्त होती हैं वह (यदि) यदि (युवोः) आप दोनों के (सख्याय) मित्र भाव को बढ़ाने और (अस्मे) हमारी (शर्धाय) बल वृद्धि के लिए (नमस्वान्) नमस्कार युक्त होकर (स्तोमम्) स्तुतिसमूह को (जुजुषे) स्वीकार करता है तो वह (विश्वत्र) सर्वत्र (पूर्वी) पूर्व से प्रसिद्ध (गातुः) उद्देश्य पूर्त्ति में जाने वाली सरणि के (इव) समान (सूनृतायै) सनातन उत्तम वाणी के प्राप्त करने के लिए (दाशत्) ज्ञान एवं साधन देता है ।

भावार्थः—हे सूर्य और चन्द्र के समान तेजस्वी अध्यापक और उपदेशक ! जिस प्रभु में हमारी उत्तम स्तुतियाँ स्थान पाती हैं वह यदि आप के सख्य और हमारे बल वृद्धि के लिए हमारे नमस्कारों से युक्त हुआ हमारे स्तुतिसमूह को स्वीकार करता है तो वह सर्वत्र उद्देश्य की पूर्त्ति में जाने वाले पूर्व से प्रसिद्ध मार्ग की भाँति हमें सनातन वेदवाणी के लिए ज्ञान और साधन प्रदान करता है ॥२५॥

स गृणानो अद्भिर्देववानिति सुबन्धुर्नमसा सूक्तैः ।
वर्धदुक्थैर्वचोभिरा हि नूनं व्यध्वैति पयस उस्रियायाः ॥२६॥

पदार्थ (अद्भिः) जलों से (देववान्) देववाला हुआ (सुबन्धुः) उत्तम बन्धन युक्त (सः) वह वरुण अर्थात् जलीय तत्त्व है (इति) ऐसा (नमसा) हवि आदि अन्नों और (सूक्तैः) उत्तम सूक्तों से (गृणानः) वर्णित किया गया

वह (**वर्धत**) वृद्धि को प्राप्त होता है, वह (**उक्थैः**) अग्नि और प्राणों तथा (**वचोभिः**) माध्यमिक गर्जनों से (**नूनम्**) निश्चय (**हि**) ही (**आ वर्धत**) वृद्धि को प्राप्त होता है (**उस्रियायाः**) प्रकाशमान अन्तरिक्ष का (**पयसः**) जल (**अध्वा**) मार्गों से (**वि एति**) क्षरित होता है ।

भावार्थः—जलों से देवत्व शक्ति प्राप्त और उत्तम बन्धन वाला यह जलीय तत्त्व (वरुण) अन्न आदि हवियों और उत्तम सूक्तों द्वारा यज्ञ में वर्णित और स्तुत होता है और इससे यह वृद्धि को प्राप्त करता है। वह अग्नि और प्राणों एवम् गर्जना से निश्चय ही अधिक वृद्धि को पाता है और प्रकाशमान अन्तरिक्ष से जल विविध मार्गों से क्षरित होता है ॥२६॥

त ऊ षु णो महो यजत्रा भूत देवास ऊतये सजोषाः ।
ये वाजाँ अनयता वियन्तो ये स्था निचेतारो अमूराः ॥२७॥

पदार्थ—हे (**यजत्राः**) यज्ञशील (**देवासः**) विद्वज्जन ! (**ते**) वे आप लोग (**नः**) हमारे (**महः**) महती (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**सजोषाः**) प्रीतियुक्त (**सु भूत उ**) हूजिये, (**ये**) जो (**वियन्तः**) प्राप्त करते हुए हमें (**वाजान्**) ज्ञान और धन को (**अनयत**) प्राप्त कराते हो और (**ये**) जो (**अमूराः**) उत्तम मति वाले (**निचेतारः**) निश्चय करने में निपुण (**स्थ**) होते हैं ।

भावार्थः—हे यज्ञशील विद्वज्जन ! आप में जो उत्तम बुद्धि वाले और निश्चय करने में कुशल हैं और हमें ज्ञानों और धन को प्राप्त करने में यत्नशील रहते हैं वे सब हमारी महती रक्षा के लिए प्रीतियुक्त होवें ॥२७॥

यह दशम मण्डल का इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ६२

ऋषिः—१—११ नाभानेदिष्ठो मानवः ॥ देवता—१—६ विश्वेदेवा अंगिरसो वा । ७ विश्वेदेवाः । ८–११ सावर्णेर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, २ विराड्जगती । ३ पादनिचृज्जगती । ४ निचृज्जगती । ५ अनुष्टुप् । ८, ९ निचृदनुष्टुप् । ६ बृहती । ७ विराट्पङ्क्तिः । १० गायत्री । ११ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—४ निषादः । ५, ८, ९ गान्धारः । ६ मध्यमः । ७ पञ्चमः । १० षड्जः । ११ धैवतः ॥

ये य॒ज्ञेन॒ दक्षि॑णया॒ सम॑क्ता॒ इन्द्र॑स्य स॒ख्यम॑मृत॒त्वमा॑न॒श ।
तेभ्यो॑ भ॒द्रम॑ङ्गिरसो वो अस्तु॒ प्रति॑ गृभ्णीत मान॒वं सु॑मेधसः ॥१॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**यज्ञेन**) यज्ञ से (**दक्षिणया**) विद्वानों की देय दक्षिणा अथवा दक्षता से (**समक्ताः**) संगत हुए (**इन्द्रस्य**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के (**सख्यम्**) मित्र भाव और (**अमृतत्वम्**) अमृतत्त्व को (**आनश**) प्राप्त कर लेते हैं, (**अंगिरसः**) हे ज्ञानवान् तेजस्वी तपस्वी पुरुषो (**तेभ्यः**) उनके लिये (**वः**) आप लोगों का (**भद्रम्**) सुखकारी कल्याण (**अस्तु**) हो, हे (**सुमेधसः**) उत्तम बुद्धि वाले जनो ! आप लोग (**मानवम्**) मानव को (**प्रति गृभ्णीत**) स्वीकार करो ।

भावार्थः—जो यज्ञ, दक्षता से संगत हुए परमैश्वर्यशाली प्रभु के मित्रत्व और अमृतत्व को प्राप्त कर लेते हैं उन आप के लिए हे तपस्वी ज्ञानीजनो ! कल्याण प्राप्त हो । हे उत्तम बुद्धिवालो ! आप लोग उत्तम मानव को स्वीकार करो । अपने मध्य स्वीकार करो ॥१॥

य उ॒दाज॑न्पि॒तरो॑ गो॒मयं॒ वस्वृ॒तेनाभि॑न्दन्परिवत्स॒रे व॒लम् ।
दी॒र्घा॒यु॒त्वम॑ङ्गिरसो वो अस्तु॒ प्रति॑ गृभ्णीत मान॒वं सु॑मेधसः ॥२॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**पितरः**) पितृरूप ज्ञानी तपस्वी जन (**गोमयम्**) गाय आदि से युक्त (**वसु**) धन को (**उदाजन्**) प्राप्त करते हैं, (**परिवत्सरे**) हर समय (**ऋतेन**) ज्ञान से (**बलम्**) अज्ञानान्धकार को (**अभिन्दन्**) भेदन करते हैं,

Scanned by CamScanner

(**अंगिरसः**) हे तपस्वी विद्वज्जन ! (**वः**) आप लोगों को (**दीर्घायुत्वम्**) दीर्घायुष्य (**अस्तु**) मिले, (**सुमेधसः**) हे उत्तम बुद्धि वालो ! (**मानवम्**) उत्तम मानव को अपने मध्य (**प्रतिगृभ्णीत**) स्वीकार करो ।

भावार्थः—जो पितृरूप हैं और जो गाय आदि पशुओं से युक्त धन को प्राप्त करते हैं तथा जो सदा ज्ञान से अज्ञानान्धकार को भेदन करते हैं उन आप लोगों को हे तपस्वी विद्वज्जन ! दीर्घायुष्य प्राप्त हो । हे उत्तम बुद्धिवालो ! आप लोग उत्तम मानव को अपने मध्य स्वीकार करो ॥२॥

य ऋतेन सूर्यमारोहयन् दिव्यप्रथयन्पृथिवीं मातरं वि ।
सुप्रजास्त्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥३॥

पदार्थः—(**ये**) जिन (**अंगिरसः**) आग्नेय शक्तियों ने (**ऋतेन**) सृष्टि नियमानुसार (**दिवि**) आकाश में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आ अरोहयन्**) स्थापित किया है, (**मातरम्**) सब भूतों की माता (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**वि अप्रथयन्**) विस्तृत किया है (**वः**) उनकी (**सुप्रजास्त्वम्**) उत्तम उत्पादकता (**अस्तु**) बनी रहे, (**सुमेधसः**) उत्तम पवित्रता वाले ये (**मानवम्**) यज्ञ सम्बन्धी हवि आदि को (**प्रति गृभ्णीत**) ग्रहण करते हैं ।

भावार्थः—ये अङ्गिरस=अग्नि की शक्तियां अथवा आग्नेय आगार द्युलोक में सूर्य को सृष्टि नियमानुसार स्थापित करते हैं और ये सब भूतों की माता पृथिवी को फैलाते हैं । इनकी यह उत्पादन शक्ति सदा बनी रहे । ये यज्ञीय हवि को भी ग्रहण करते हैं ॥३॥

अयं नाभा वदति वल्गु वो गृहे देवपुत्रा ऋषयस्तच्छृणोतन ।
सुब्रह्मण्यमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥४॥

पदार्थः—(**देवपुत्राः**) भगवान् के पुत्र (**ऋषयः**) हे वेदज्ञान के द्रष्टा लोगो ! (**अयम्**) यह (**नाभा=नाभानेदिष्ठः**) ध्यानी-विद्वान् (**वः**) आप के (**गृहे**) यज्ञभूत गृह में (**वल्गु**) कल्याणकारी वाणी को (**वदति**) कहता है, (**तत्**) उसे (**शृणोतन**) आप लोग सुनें, (**अंगिरसः**) हे तपस्वी तेजस्वी लोगो ! (**वः**) आप को (**सुब्रह्मण्यम्**) उत्तम वेदज्ञान (**अस्तु**) प्राप्त हो, (**सुमेधसः**) हे उत्तम बुद्धि वालो ! (**मानवम्**) मानव को अपने अन्दर (**प्रति गृभ्णीत**) स्वीकार करो ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे भगवान् के पुत्र, वेदमन्त्रद्रष्टा लोगो ! आप की यज्ञशाला में मैं यह ध्यानी कल्याणकारक वाणी को कहता हूं आप सुनें। हे तेजस्वी तपस्वी जनो ! आप को उत्तम वेदज्ञान प्राप्त हो, हे उत्तम बुद्धि वालो ! अपने अन्दर उत्तम मनुष्य को स्वीकार करो।।४।।

विरूपास इदृषयस्त इद्गम्भीरवेपसः।
ते अङ्गिरसः सूनवस्ते अग्नेः परि जज्ञिरे।।५।।

पदार्थः—(**विरूपासः**) विविध रूपों वाले, (**ऋषयः इव**) दृष्टि के हेतुभूत अर्थात् दर्शन के कारण, (**गम्भीरवेपसः**) सृष्टि में गम्भीर कर्मों को करने वाले (**ते**) वे (**सूनवः**) शक्तियों के उत्पादक (**अंगिरसः**) अग्नि की लहरें हैं (**ते**) वे (**अग्नेः**) अग्नि से (**परि जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं।

भावार्थः—नाना रूपों वाली सबके दर्शन की कारणभूत, सृष्टि में गम्भीर कर्मों को करने वाली, शक्ति की उत्पादक ये अग्नि की लहरें ही अङ्गिरा हैं और ये अग्नि से उत्पन्न होती है।।५।।

ये अग्नेः परि जज्ञिरे विरूपासो दिवस्परि।
नवग्वो नु दशग्वो अङ्गिरस्तमः सचा देवेषु मंहते।।६।।

पदार्थः—(**विरूपासः**) नाना रूपों वाले (**ये**) जो (**दिवस्परि**) द्युलोक में (**अग्नेः**) अग्नि से (**परिजज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं उनमें से (**नवग्वः**) नवनीत गतिवाला और (**दशग्वः**) दश दिशाओं में गतिवाला (**अंगिरस्तमः**) अंगिरस्तम है और (**सचा**) साथी बनकर (**देवेषु**) देवों को शक्ति (**मंहतेः**) देता है।

भावार्थः—नानारूप वाली अग्नि की लहरें जो द्युलोक में अग्नि से उत्पन्न होती हैं उनमें नवग्व और दशग्व नाम वाली अंगिरस्तम अर्थात् अंगारतम हैं और ये समस्त किरणों आदि में साथ रहकर उन्हें शक्ति प्रदान करती हैं।।६।।

इन्द्रेण युजा निः सृजन्त वाघतो व्रजं गोमन्तमश्विनम्।
सहस्रं मे ददतो अष्टकर्ण्यः श्रवो देवेष्वक्रत।।७।।

पदार्थः—(**वाघतः**) हवि को ग्रहण करने वाले विश्वे देव समस्त दिव्य शक्तियें (**इन्द्रेण**) वायु के (**युजा**) साहाय्य से (**गोमन्तम्**) किरणों से युक्त,

(अश्विनम्) प्राणों से युक्त (व्रजम्) समूह को (निः सृजन्त) उत्पन्न करते हैं (ददतः) देने वाले मुझ यजमान के (अष्टकर्ण्यः) आठो दिशाओं में जाने वाले (सहस्रम्) बहुत से (श्रवः) धन को (देवेषु) देवों में (अकृत) करते हैं ।

भावार्थः--ये हवि को ग्रहण करने वाले विश्वेदेव लोग वायु के साहाय्य से प्राणों और किरणों के समूह को उत्पन्न करते हैं और मुझ यजमान के दिये गये हव्य आदि धनको, जो प्रचुर मात्रा में होता है और अष्ट दिशाओं में फैलने वाला होता है, देवों को पहुँचा देते हैं ॥७॥

प्र नूनं जायतामयं मनुस्तोक्मेव रोहतु ।

यः सहस्रं शताश्वं सद्यो दानाय मंहते ॥८॥

पदार्थः--(यः) जो (सहस्रम्) सहस्रों (शताश्वम्) सैंकड़ों पशुओं से युक्त धन (दानाय) दान के लिए (सद्यः) शीघ्र (मंहते) देता है (अयम्) यह (मनुः) मनुष्य (नूनम्) निश्चय ही (तोक्मम्) जल से भीगे बीज के समान (प्रजायताम्) उत्पन्न हो और (प्र रोहतु) बढ़े, फले-फूले ।

भावार्थः—जो सहस्रों और सैकड़ों पशु आदि से युक्त धनों को दानार्थ देता है वह मनुष्य जल से सिक्त बीज के समान उगे, बढ़े और फले फूले ॥८॥

न तमश्नोति कश्चन दिवइव सान्वारभम् ।

सावर्ण्यस्य दक्षिणा वि सिन्धुरिव पप्रथे ॥९॥

पदार्थः--(दिवः) द्युलोक के (सानुम्) उच्चस्थान सूर्य के (इव)समान (कः चन) कोई भी (आरभम्) कर्म करके (न) नहीं (अश्नोति) प्राप्त कर सकता (सावर्ण्यस्य) वर्णाश्रमी मनुष्य की (दक्षिणा) दानशक्ति (सिन्धुः) सिन्धु के (इव) समान (वि पप्रथे) फैलती है ।

भावार्थः - जिस प्रकार सूर्य को कोई लांघ नहीं सकता है उसी प्रकार कोई भी प्रारम्भिक कर्ममात्र करके उस दानी को नहीं लांघ सकता है। वर्णाश्रमी मनुष्य की दानशक्ति समुद्र के समान फैलती है ॥९॥

उत दासा परिविषे स्मद्दिष्टी गोपरीणसा । यदुस्तुर्वश्च मामहे ॥१०॥

पदार्थः--(उत) और (स्मद्दिष्टी) उत्तम कार्यों में आदिष्ट (गो परीणसा) गाय आदि पशुओं वाले (यदुः) यत्नवान् मनुष्य (च) और (तुर्वः) त्वरित

Scanned by CamScanner

काम करने वाला मनुष्य (**दासा**) दास के समान सेवा करने (**परिविषे**) इसको भोजन परोसने में (**मामहे**) महत्व समझते हैं।

भावार्थः - उत्तम कार्यों में नियुक्त, गाय आदि पशुओं से परिवृत यत्नवान् और त्वरित शत्रुओं का नाश करने वाले मनुष्य इसकी सेवा करने और इसे भोजन परसने में महत्व समझते हैं ॥१०॥

सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा ।
सावर्णेर्देवाः प्र तिरन्त्वायुर्यस्मिन्नश्रान्ता असनाम वाजम् ॥११॥

पदार्थः - सहस्रदाः) सहस्रों का देने वाला, (**ग्रामणीः**) ग्राम का नेता (**सूर्येण**) सूर्य के तुल्य तेजस्वी हुआ (**मा रिषत्**) कभी पीड़ित न हो और न किसी को पीड़ित करे, (**सावर्णेः**) वर्णधर्मी राजा वा मनुष्य की (**दक्षिणा**) दानशक्ति (**यतमाना**) यत्न और उद्योग को बढ़ाती हुई (**एतु**) प्राप्त हो, (**देवाः**) ज्ञानी जन (**आयुः**) आयु को (**प्रतिरन्तु**), दें, (**यस्मिन्**) जिसमें हम (**अश्रान्ताः**) न थकते हुए (**वाजम्**) अन्न और धन को (**असनाम**) प्राप्त करें।

भावार्थः - सहस्रों का दाता ग्राम का नेता सूर्य के तुल्य तेजस्वी होकर न स्वयम् पीड़ित हो और न किसी को पीड़ित करे। वर्णधर्मी राजा वा मनुष्य की दानशक्ति उद्योग को बढाती हुई हमें प्राप्त हो। विद्वान् लोग उसे आयु देने और उसके अन्तर्गत विना थके हुए हम अन्न आदि को प्राप्त करें ॥११॥

यह दशम मण्डल में बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६३

ऋषिः—१—१७ गयः प्लातः ॥ देवताः—१—१४, १७ विश्वेदेवाः । १५, १६ पथ्यास्वस्तिः ॥ छन्दः—१, ६, ८, ११—१३ विराड्जगती । २, ३, १०, १४ पादनिचृज्जगती । ४, ५, ७ निचृज्जगती । ९ आर्चीस्वराड्जगती । १५ जगती त्रिष्टुब् वा । १६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–१४ निषादः । १५ निषादो धैवतो वा । १६, १७ धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

परावतो ये दिधिषन्त आप्यं मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वतः ।
ययातेर्ये नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधि ब्रुवन्तु नः ॥१॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**मनुप्रीतासः**) मनुष्यमात्र से प्रेम रखने वाले (**परावतः**) दूर देश से आये हुए विद्वान् (**आप्यम्**) बन्धुत्वभाव को (**दिधिषन्ते**)धारण करते हैं और (**ये**) जो (**विवस्वतः**) यजमान मनुष्य के (**जनिमा**) जन्मों की (**दिधिषन्ते**) प्रशंसा करते हैं, और जो (**देवाः**) विद्वान् लोग (**नहुष्यस्य**) नियमों में बन्धे हुए (**ययातेः**) ज्ञानी मनुष्य के (**बर्हिषि**) यज्ञ में (**आसते**) विराजते हैं (**ते**) वे (**नः**) हम सब लोगों को (**अधिब्रुवन्तु**) उपदेश करें ।

भावार्थः—जो मनुष्यमात्र से प्रेमभाव रखने वाले,दूर स्थान से आये हुए विद्वान् यजमान के साथ बन्धुत्व को धारण करते हैं और जो उसके जन्म की प्रशंसा करते हैं तथा नियमों में बन्धे ज्ञानी पुरुष के यज्ञ में आते हैं वे हम सबको उपदेश दें ॥१॥

विश्वा हि वो नमस्यानि वन्द्या नामानि देवा उत यज्ञियानि वः ।
ये स्थ जाता अदितेरद्भ्यस्परि ये पृथिव्यास्ते म इह श्रुता हवम् ॥२॥

पदार्थः—(**देवाः**) इन यज्ञ के इन्द्र आदि जो देव हैं (**वः**) उनके(**विश्वा**) समस्त (**हि**) ही (**नामानि**) तेज और प्रभाव (**नमस्यानि**) स्तुत्य और (**वन्द्या**) वन्दनीय हैं (**उत**) और (**वः**) उनके ये तेज (**यज्ञियानि**) यज्ञार्ह हैं, (**ये**) जो ये देव (**अदितेः**) प्रकृति से (**जाताः**) उत्पन्न (**स्थ**) हैं, अथवा जो (**अद्भ्यः परि**) अन्तरिक्ष से, (**ये**) जो (**पृथिव्याः**) पृथिवी से उत्पन्न हुए (**ते**) वे (**इह**) इस यज्ञ में (**मे**) मेरे (**हवम्**) आह्वान को (**श्रुत**) सब तक पहुँचावें ।

भावार्थ यज्ञ के देव इन्द्र आदि जितने भी हैं उनका तेज और प्रभाव प्रशंसनीय और वन्दनीय है । उनके तेज यज्ञार्ह हैं । इनमें जो प्रकृति से सीधे उत्पन्न हुए हैं, अथवा जो अन्तरिक्ष और पृथिवी से उत्पन्न हैं वे इस यज्ञ में मेरे आह्वान को सब तक पहुंचाने के साधन बनें ॥२॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनुमदा स्वस्तये ॥३॥

पदार्थः—(**येभ्यो**) जिन विद्वानों के लिए (**माता**) पृथिवी (**मधुमत**)

माधुर्ययुक्त (**पीयूषम्**) अमृतमय (**पयः**) दुग्ध आदि पदार्थों को देती है, (**अदितिः**) अखण्डनीय (**अद्रि बर्हाः**) मेघों से बढ़ा हुआ (**द्यौः**) अन्तरिक्ष लोक जल देता है, (**उक्थशुष्मान्**) अत्यन्त बलवाले, **वृषभरान्** वर्षा कराने वाले (**स्वप्नसस्तान्**) उत्तम कर्मों वाले (**आदित्यान्**) आदित्यों को (**स्वस्तये** कल्याण के लिए (**अनुमद**) प्राप्त करावें ।

भावार्थः – जिन विद्वानों के लिए पृथिवी माधुर्ययुक्त अमृतमय दुग्ध आदि प्राप्त कराती है और अखण्डनीय मेघों से युक्त अन्तरिक्ष जल देता है वे हमें अत्यन्त बल वाले, वर्षा करानें वाले और उत्तम कर्मों वाले १२ आदित्यों को कल्याणार्थ प्राप्त करावें अर्थात् उनका ज्ञान देवें ।।३।।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये ॥४॥

पदार्थः – जो (**नृचक्षसः**) मनुष्यों के द्रष्टा, (**अनिमिषन्तः**) आलस्य-रहित (**अर्हणा** पूज्य (**बृहद्देवासः**) महान् विद्वान् लोग हैं जो (**अमृतत्वम्**) अमर पद मोक्ष को जीवन में ही (**आनशुः**) प्राप्त कर चुके हैं,जो (**ज्योतीरथाः**) प्रकाशमय रथों से युक्त है (**अहिमाया**) जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता है, ऐसे (**अनागसः**) पापरहित (**दिवः**) अन्तरिक्ष के (**वर्ष्माणम्**) ऊंचे स्थान को (**वसते**) ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं वे विद्वान् हमारे (**स्वस्तये**) कल्याण के लिये हों ।

भावार्थः—जो मनुष्यों के द्रष्टा हैं, आलस्यरहित, पूज्य, महान् विद्वान् लोग हैं, जो अमर पद मोक्ष को जीवन में ही प्राप्त कर चुके हैं, सुन्दर प्रकाशमय रथों से युक्त हैं, जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता ऐसे पापरहित और अन्तरिक्ष के ऊंचे स्थान को ज्ञानादि से व्याप्त करने वाले विद्वान् हमारे कल्याण के लिये हों ।।४।।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।
ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये ।।५।।

पदार्थः (**ये**) जो (**सम्राजः**) अपने ज्ञानगुणों से प्रकाशमान (**सुवृधः**) अपने ज्ञान कर्म से सबको बढ़ाने वाले (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**आययुः**) प्राप्त होते हैं, जो (**अपरिह्वृता**) अकुटिलाचारी (**दिवि**) ज्ञानप्रकाश में (**क्षयम्**) निवास क

(दधिरे) धारण करते हैं (महः) महान् (तान्) उन (आदित्यान्) आदित्य संज्ञक विद्वानों की (अदितिम्) विदुषी स्त्री की (नमसा) हव्यान्न के साथ (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों से (स्वस्तये) कल्याणार्थ (आ विवास) परिचर्या कर।

भावार्थः यजमान को चाहिये कि गुणों से प्रकाशमान, सबकी वृद्धि चाहने वाले जो विद्वान् यज्ञ में आते हैं उनकी और कुटिल कर्मों से रहित ज्ञान-प्रकाश में रहने वाले महान् विद्वानों और विदुषी स्त्री की हव्यान्न और उत्तम स्तुतियों से अपने कल्याणार्थ सेवा करें ॥५॥

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥६॥

पदार्थः—(विश्वे देवासः) हे समस्त विद्वानो ! (वः) आप में (कः) कौन (स्तोमम्) स्तुति समूह की (राधति) सिद्धि करता है (यम्) जिसे आप लोग (जुजोषथ) सेवन करते हैं, हे (तुविजाताः) बहुसंख्या में विद्यमान (मनुषः) मनुष्यो तुम (यति स्थन) जितने भी हो (वः) उनमें (कः) कौन (अध्वरम्) यज्ञ को (अरम्) अलंकृत (करद्) करता है, (यः) जो (स्वस्तये) कल्याणार्थ (नः) हमारे (अंहः) पाप को (अति पर्षत्) दूर करता है।

भावार्थः—हे समस्त विद्वानो ! आप में कौन है जो उस स्तुति समूह की सिद्धि करता है जिसको आप लोग प्रयोग में लाते हो। हे बहुसंख्या वाले मनुष्य आप जितने भी हो, उनमें कौन है जो यज्ञ को अलंकृत करता है और कल्याणार्थं हमारे दोष को दूर करता है ॥६॥

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥७॥

पदार्थः—(समिद्धाग्निः) अग्नि को प्रज्वलित करने वाला (मनुः) मननशील मनुष्य (मनसा) मन से (सप्त होतृभिः) सप्त होताओं द्वारा दो आंख, दो कान, दो नाक और मुख (येभ्यः) जिनके पास से (प्रथमाम्) प्रथम (होत्राम्) यज्ञ विद्या को (आयेजे) ग्रहण करता है (ते) वे (आदित्याः) आदित्य संज्ञक विद्वान् (नः) हमें (शर्म) सुख (यच्छत) दें और (अभयम्) निर्भयता दें, (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए (सुपथा) उत्तम मार्गों को (सुगा) सरलता से चलने योग्य (कर्त) करें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—अग्नि को यज्ञार्थ प्रज्वलित करने वाले मननशील मनुष्य ने जिन विद्वानों के पास से मन और सप्त होताओं से युक्त हो यज्ञविद्या का प्रथम ग्रहण किया है वे आदित्यसंज्ञक विद्वान् हमें निर्भयता और सुख दें। हमारे कल्याणार्थ मार्ग को सुगम करें ॥७॥

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥८॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**प्रचेतसः**) उत्कृष्ट ज्ञान और हृदय वाले (**मन्तवः**) मननशील (**विश्वस्य**) समस्त (**स्थातुः**) स्थावर (**च**) और (**जगतः**) जंगम (**भुवनस्य**) लोक के (**ईशिरे**) शासक होते हैं (**ते**) वे (**देवासः**) विद्वान् (**नः**) हमें (**कृताद्**) जिसे हम कर रहे हैं अथवा जिनको करने की इच्छा करते हैं वा करेंगे उनसे तथा (**अकृताद्**) न किये गए (**एनसः**) पाप से (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**अद्य**) आज (**परि पिपृत**) सब ओर से रक्षा करें।

भावार्थः—जो प्रकृष्ट ज्ञान और हृदय वाले मननशील विद्वान् समस्त स्थावर जंगम विश्व का शासन करते हैं वे हमें हम जिन पापों को वर्तमान में कर रहे हैं अथवा जिनके करने की इच्छा करते हैं और जिसको नहीं किया है, उस पाप से आज ही हमारे कल्याण के लिए हमें बचावें ॥८॥

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥९॥

पदार्थः—हम (**भरेषु**) संग्रामों में (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**सुयवम**) उत्तम नाम वाले (**अंहोमुचम**) बुराइयों को छुड़ाने वाले (**सुकृतम**) उत्तम कर्मा (**दैव्यम**) दैवी शक्तियों से युक्त (**जनम्**) जन (**इन्द्रम**) राजा को और (**सातये**) ज्ञान आदि लाभ के लिए (**अग्निम्**) अग्नि, (**मित्रम्**) प्राण, (**वरुणम्**) अपान (**भगम्**) भग, (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी तथा (**मरुतः**) ४९ मरुतों की (**हवामहे**) आहुति प्रदान कर ग्रहण करते हैं।

भावार्थः—हम संग्रामों में अपने कल्याणार्थ बुराइयों को छुड़ाने वाले, सुकृत कर्मकारी, दिव्यशक्तियों से पूर्ण जन राजा को पुकारते हैं और ज्ञान आदि के लाभ के लिए अग्नि, प्राण, अपान, भग, द्यु, पृथिवी तथा ४९ मरुतों को आहुति प्रदान कर ग्रहण करते हैं ॥९॥

Scanned by CamScanner

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ॥१०॥

पदार्थः—(सुत्रामाणम्) अच्छे प्रकार रक्षा के साधनों से युक्त, (पृथिवीं) लम्बी चौड़ी, (अनेहसम्) उपद्रवरहित, (सुशर्माणम्) उत्तम सुख देने वाली, (सुप्रणीतिम्) अच्छी प्रकार निर्मित, (द्याम्) प्रकाशयुक्त (स्वरित्राम्) अच्छे यन्त्रों वाली, (अनागसम्) दोषरहित, (अदितिम्) दृढ (अस्रवन्तीम्) न टपकने वाली (दैवीम्) विद्युत्सम्बन्धी (नावम्) नौका=विमान पर (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिए (आरुहेम) हम चढ़ें ।

भावार्थः हम अपने कल्याण के लिए अच्छे रक्षा के साधनों से युक्त, लम्बे, चौड़े, उपद्रवरहित, सुखद, उत्तम प्रकार से निर्मित, प्रकाशयुक्त, अच्छे यन्त्रों से युक्त, दोषरहित, उपद्रवरहित, दृढ़, न टपकने वाले विद्युत्सम्बन्धी विमान पर चढ़ें ॥१०॥

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ॥११॥

पदार्थः—(विश्वे) हे समस्त (यजत्राः) पूजनीय (देवाः) विद्वानो ! (ऊतये) रक्षा के लिए (अधिवोचत) उपदेश कीजिए, (नः) हमें (अभिह्रुतः) पीड़ा देने वाली (दुरेवायाः) दुर्गति से (त्रायध्वम्) त्राण देवें (अवसे) रक्षार्थ और (स्वस्तये) कल्याणार्थ (सत्यया) सत्य (देवहूत्या) वाणी द्वारा (शृण्वतः) सुनने वाले (वः) आप लोगों को (हुवेम) पुकारते हैं ।

भावार्थः – हे पूजनीय विद्वज्जन हमारी रक्षा और कल्याण के लिए आप लोग उपदेश कीजिए । हमें पीड़ा देने वाली दुर्गति से बचाइये । हमारी रक्षा और कल्याण के लिए हम सत्यवाणी द्वारा आपको पुकारते हैं॥११॥

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥१२॥

पदार्थः – (देवाः) हे विद्वज्जन ! (नः) हमारे (अमीवाम्) रोग और रोग की भांति उत्पीडक को (अप युयोतन) दूर करो, (विश्वाम्) समस्त

(**अनाहुतिम्**) अदानशीलता को (**अप**) दूर करो, (**अघायतः**) अत्याचार करने वाले, (**अरातिम्**) न देने वाले (**दुर्विदत्राम्**) दुःख देने वाले (**द्वेषः**) द्वेषों को (**अस्मत्**) हमसे (**आरे**) दूर (**अप**) करो, (**नः**) हमें (**स्वस्तये**) कल्याण के लिए (**शर्म**) सुख (**यच्छता**) प्रदान करो ।

भावार्थः हे विद्वज्जन ! हमारे रोग और रोग की भांति पीड़ा देने वाले को हमसे दूर करो, समस्त अदानशीलता को दूर करो। अत्याचार करने वाले, न देने वाले, दुःख देने वाले द्वेषों को हमसे दूर भगाओ। हमें कल्याणार्थ सुख दो ॥१२॥

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।
यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये ॥१३॥

पदार्थः—(**आदित्यासः**) हे आदित्यसंज्ञक विद्वानो ! (जो ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य व्रत रखकर विद्वान् हुए हों वे आदित्य कहाते हैं) (**यम्**) जिसे (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ आप लोग (**सुनीतिभिः**) उत्तम नीतियों से (**विश्वानि**) समस्त (**दुरिता**) दुरितों से (**परि अति नयथ**) पार पहुँचा देते हैं (**सः**) वह (**मर्त्तः**) मनुष्य (**अरिष्टः**) अनिष्टों से दूर हुआ (**विश्वः**) विविध लोकों और पदार्थों को प्राप्त कर (**प्र एधते**) बढ़ता है (**धर्मणः परि**) धर्म से बढ़ता है और (**प्रजाभिः**) प्रजाओं से बढ़ता है ।

भावार्थः—हे आदित्य विद्वानो ! जिसे उसके कल्याण के लिए आप लोग उत्तम नीतियों से समस्त दुरितों के पार पहुंचा देते हैं वह मनुष्य अनिष्टों से रहित हुआ विविध पदार्थों को और लोकों को प्राप्त कर धर्म से प्रजा से समृद्ध होता है ॥१३॥

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥१४॥

पदार्थः—(**देवासः**) हे विद्वानो ! आप (**वाजसातौ**) धन लाभार्थ (**यम्**) जिस (**रथम्**) रमणीय गमन साधन की (**अवथ**) रक्षा करते हो, हे (**मरुतः**) वीर पुरुषो अथवा ऋत्विग् लोगो! (**हिते**) रक्षित (**धने**) धन के लिए (**शूरसाता**) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो, (**प्रातर्यावाणम्**) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले (**इन्द्रसानसिम्**) बड़े यन्त्रालय के विद्वानों से सेवनीय (**अरिष्यन्तम्**) अहिंस्य उस रथ पर (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ हम (**आरुहेम**) चढ़ें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः– हे विद्वान् जनो, हे ऋत्विग्गण ! आप लोग धन-लाभार्थ जिस रमणीय गमन साधन की रक्षा करते हैं और रखे हुए धन की रक्षार्थ युद्ध में जिस रथ की रक्षा करते हैं उस प्रातःकाल गमन करने वाले बड़े यन्त्रालय के विद्वानों से सेवनीय अहिंस्य रथ पर हम कल्याणार्थं चढ़ें ॥१४॥

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो ! (**नः**) हमारे लिए (**पथ्यासु**) राजमार्गों में (**स्वस्ति**) कल्याण हो, (**धन्वसु**) जलरहित प्रदेश में भी (**स्वस्ति**) जलोत्पत्ति आदि से कल्याण हो (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**स्वस्ति**) कल्याण हो, (**वृजने**) संग्राम में भी (**स्वस्ति**) कल्याण हो, (**नः**) हमारे (**पुत्रकृथेषु**) पुत्रों को उत्पन्न करने वाले (**योनिषु**) योनि आदि स्थानों में (**स्वस्ति**) कल्याण और निरामयता हो (हे **मरुतः**) विद्वानो ! (**राये**) धन के लाभ के लिए (**स्वस्ति**) कल्याण (**दधातन**) धारण कीजिए ।

भावार्थः—हे विद्वज्जनो ! हमारे लिए राजमार्गों में कल्याण हो, जलरहित प्रदेशों में जलोत्पत्ति आदि से कल्याण हो, अन्तरिक्ष और संग्राम में कल्याण हो । पुत्र की उत्पत्ति के स्थान योनि आदि में कल्याण और निरामयता हो तथा धन की प्राप्ति के लिए भी कल्याण हो ॥१५॥

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ॥१६॥

पदार्थः– (**या**) जो पृथिवी और समुद्र (**प्रपथे**) अच्छे मार्ग के लिए (**स्वस्ति इत**) स्वस्तिकारी होती है जो (**श्रेष्ठा**) श्रेष्ठ (**रेवणवती**) धन वाली है और (**वामम्**) यज्ञ को (**एति**) प्राप्त होती है (**सा**) वह (**ऋद्धिः**) समृद्धि (**नः**) हमारे (**अमा**) गृह की (**निपातु**) रक्षा करे, (**सा उ**) वही (**अरणे**) वन आदि में हमारी रक्षा करे और (**देवगोपा**) देवों से रक्षा की गई वह (**स्वावेषा**) हमारे लिए अच्छे स्थान वाली (**भवतु**) हो ।

भावार्थः– जो पृथिवी और समुद्र के लिये मार्गों के कल्याणकारिणी है, जो श्रेष्ठ और धनादि से युक्त है, जो यज्ञ को भी प्राप्त होती है वह समृद्धि

Scanned by CamScanner

हमारी घर में रक्षा करे और वन में भी रक्षा करे। विद्वज्जनों द्वारा रक्षित की गई वह हमारे लिये स्थान वाली हो ॥१६॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्व आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥

पदार्थः – हे (विश्वे) समस्त (आदित्याः) आदित्यसंज्ञक विद्वानो ! हे (अदिते) विदुषी स्त्रि ! (एव) इस प्रकार (प्लतेः) धन से पूर्ण मनुष्य का (मनीषी) विद्वान् (सूनुः) पुत्र (वः) आप लोगों को खान-पान आदि से (अवीवृधत्) बढ़ाता है, (नरः) मनुष्य लोग (ईशानासः) धन आदि के स्वामी होते हैं (दिव्यः) दिव्य (जनः) परमेश्वर (अमर्त्येन) जीवनमुक्ति को प्राप्त (गयेन) मनुष्य से (स्तावि) स्तुत होता है ।

भावार्थः हे समस्त आदित्यसंज्ञक विद्वानो ! हे विदुषी स्त्रि ! इस प्रकार धन से पूर्ण मनुष्य का मनीषी पुत्र आप लोगों को खान-पान आदि से बढ़ाता है। मनुष्य उत्तम प्रयत्नों से धन आदि के स्वामी होते हैं। भगवान् जीवनमुक्त व्यक्ति के द्वारा स्तुत होता है ॥१७॥

यह दशम मण्डल का तिरसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—६४

ऋषिः—१—१७ गयः प्लातः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ६, १०, १३, १५ निचृज्जगती । २, ३, ७, ८, ११ विराड्जगती । ६, १४ जगती । १२ त्रिष्टुप् । १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—११, १३—१५ निषादः । १२, १६, १७ धैवतः ॥

कथा देवानां कतमस्य यामनि सुमन्तु नाम शृण्वतां मनामहे ।
को मृळाति कतमो नो मयस्करत्कतम ऊती अभ्या ववर्तति ॥१॥

पदार्थः—(यामनि) इस संसार मार्ग में (शृण्वताम) सुनने वाले (देवानाम) विद्वानों में (कतमस्य) किस की (कथा) किस प्रकार (सुमन्तु) सु मननीय

(नाम) नाम वा तेज को (मनामहे) मनन करें,(कः) कौन(नः) हमें(मृळाति) सुखी करता है,(कतमः) कौन (मयः) सुख सम्पादन (करत्) करता है, (कतमः) कौन (ऊती) रक्षा के लिए (अभि आ ववर्तति) आता है ।

भावार्थः –इस संसार मार्ग में सुनने वाले विद्वानों में हम किसके और किस प्रकार मननीय नाम को मनन करें, हमें कौन सुखी करता है, कौन सुख-सम्पादन करता है और कौन हमारी रक्षा के लिए आता है— इसका हम विचार करें ॥१॥

क्रतूयन्ति क्रतवो हृत्सु धीतयो वेनन्ति वेनाः पतयन्त्या दिशः ।
न मर्डिता विद्यते अन्य एभ्यो देवेषु मे अधि कामा अयंसत ॥२॥

पदार्थः – (हृत्सु) हृदयों में (धीतयः) निहित (क्रतवः) संकल्प, (क्रतूयन्ति) उत्तम कर्म और ज्ञान का सम्पादन करना चाहते हैं, (वेनाः मेधावी जन (वेनन्ति) नाना प्रकार की कामनाएं करते हैं, और (दिशः) दिशाओं में (आ पतयन्ति) जाते हैं, (एभ्यः) इन उक्त कर्म करने वालों के लिए (अन्यः) दूसरा कोई (मर्डिता) दयालु भी (न) नहीं (विद्यते) है, (मे) मेरी (कामाः) कामनाएं (देवेषु अधि) देवों=यज्ञ के देवों में (अयंसत) नियन्त्रित हो जाती हैं ।

भावार्थः—हृदयों में निहित संकल्प उत्तम कर्म और ज्ञान का सम्पादन करना चाहते हैं । मेधावीजन नाना प्रकार की कामनाएं करते हैं और दिशाओं में जाते हैं । इनके लिये दूसरा कोई दयालु भी नहीं है । अतः मेरी कामनाएं भगवान् और यज्ञभागी देवों में नियन्त्रित हो जाती हैं ॥२॥

नरा वा शंसं पूषणमगोह्यमग्निं देवेद्धमभ्यर्चसे गिरा ।
सूर्यामासा चन्द्रमसा यमं दिवि त्रितं वातमुषसमक्तुमश्विना ॥३॥

पदार्थः—हे पुरुष ! (गिरा) वाणी से (नराशंसम्) नरों से प्रशंस्य (अगोह्यम्) न दिये हुए (पूषणम्) पूषा=पोषक शक्ति, और (देवेद्धम्) विद्वानों से प्रदीप्त (अग्निम्) अग्नि का (अभि अर्चसे) वर्णन कर, (सूर्यमासा चन्द्रमासा) सूर्य और चन्द्र, (दिवि) द्युलोकस्थ (यमम्) वायु (त्रितम्) तीन स्थानों अर्थात् द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी में विद्यमान इन्द्र=विद्युत् (वातम्)प्राण तथा

Scanned by CamScanner

(**उषसम्**) प्रातःकाल और (**अक्तुम्**) रात्रिकाल और (**अश्विना**) द्यु और पृथिवी अथवा प्राण और उदान के गुणों का वर्णन कर ज्ञान प्राप्त कर ।

भावार्थः—हे मनुष्य ! नरों द्वारा प्रशंसनीय पूषा=पोषक शक्ति, विद्वानों द्वारा प्रज्वलित यज्ञाग्नि, सूर्य-चन्द्रमा, आकाशस्थ वायु, तीनों लोकों में व्याप्त विद्युत् [इन्द्र] प्राण, प्रातःकाल, रात्रिकाल, द्यु और पृथिवी तथा प्राण और उदान आदि के गुणों का वर्णन कर उनका ज्ञान प्राप्त करो ॥३॥

कथा कविस्तुवीरवान्कया गिरा बृहस्पतिर्वावृधते सुवृक्तिभिः ।
अज एकपात्सुहवेभिर्ऋक्वभिरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ॥४॥

पदार्थः—(**कविः**) क्रान्तदर्शन अग्नि (**कथा**) किस प्रकार (**तुवीरवान्**) अन्य दिव्य शक्तियों [देवों] के साथ गतिशील होता है, (**कया**) किस (**गिरा**) वाणी से प्रशंसित होता है, (**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का ज्ञाता (**सुवृक्तिभिः**) उत्तम वाणियों से (**वावृधते**) बढ़ता है, प्रसन्न होता है, (**अजः एकपात्**) अनुत्पन्न एकमात्र अथवा एक व्याप्ति वाला परमेश्वर (**सुहवेभिः**) उत्तम शब्दों से युक्त (**ऋक्वभिः**) मन्त्रमयी वाणियों से (**वावृधते**) प्रसन्नता प्राप्त करता है, (**अहिर्बुध्न्यः**) अग्नि (**हवीमनि**) ज्ञान प्राप्ति के उद्योग में (**शृणोतु**) हमें सुनाने का साधन बनें ।

भावार्थः—क्रान्तदर्शन अग्नि किस प्रकार देवों के साथ मिलकर काम करता है, किस प्रकार उसका वाणी से वर्णन किया जा सकता है, इत्यादि का विचार करना चाहिए। वेदज्ञ विद्वान् वेदवाणी से प्रसन्न होता है। अनादि एक व्याप्ति वाला परमेश्वर उत्तम वचनों से युक्त वेद मन्त्रों वाली वाणी से स्तुत होता है और मेघस्थ आकाशीय अग्नि हमें ज्ञान प्राप्ति के उद्योग में सब को सुनाने का साधन बनें ॥४॥

दक्षस्य वादिते जन्मनि व्रते राजाना मित्रावरुणा विवाससि ।
अतूर्तपन्थाः पुरुरथो अर्यमा सप्तहोता विषुरूपेषु जन्मसु ॥५॥

पदार्थः—(**अदिते**) यह प्रातस्तनी उषा अपने (**वा**) और (**दक्षस्य**) सूर्य के (**जन्मनि**) उदयरूप (**व्रते**) कर्म में (**राजाना**) दीप्तिमान (**मित्रावरुणा**) दिन और रात्रि को (**आ विवाससि**) प्रकट करती है (**अतूर्तपन्थाः**) अविच्छिन्न

Scanned by CamScanner

मार्ग, (**पुरुरथः**) अत्यन्त रमणीय, (**सप्तहोता**) सप्त किरणों वाला (**अर्यमा**) सूर्य (**विषुरूपेषु**) नाना रूपों वाले (**जन्मसु**) उदय और अस्त कर्मों में प्रवृत्त रहता है ।

नोट—प्रातःकालिक उषा से सूर्य उदित होता है और सायंकालिक सूर्य से उषा वेला पैदा होती है जो सायंकालिक उषा है ।

भावार्थः—उषा और सूर्य के उदयरूपी कर्म में दिन और रात्रि को उषायें प्रकट करती हैं । प्रातः कालिक उषा सूर्य को उदय देकर दिन को और सायंकालिक उषा रात्रि को प्रकट करती है । प्रातः काल में उषा सूर्य को उत्पन्न करती है और सायंकाल में सूर्य उषा को उत्पन्न करता है । इस प्रकार सात किरणों वाला रमणीय सूर्य अविच्छिन्न मार्ग से उदय और अस्त कर्म को पूरा करता है ॥५॥

ते नो अर्वन्तो हवनश्रुतो हवं विश्वे शृण्वन्तु वाजिनो मितद्रवः ।
सहस्रसा मेधसाताविव त्मना महो ये धनं समिथेषु जभ्रिरे ॥६॥

पदार्थः— (**ये**) जो (**समिथेषु**) संग्रामों में (**महः**) महान् (**धनम्**) धन को (**जभ्रिरे**) प्राप्त करते हैं जो (**त्मना**) अपने आप (**मेधसातौ इव**) यज्ञ के समान उत्तम कार्यों में (**सहस्रा**) सहस्रों का दान करते हैं (**ते**) वे (**अर्वन्तः**) ज्ञानी, (**हवनश्रुतः**) आह्वानों को सुनने वाले (**मितद्रवः**) नियमितगति और अधिक ज्ञान वाले, (**वाजिनः**) बल वाले (**नः**) हमारी (**हवम्**) पुकार को (**शृण्वन्तु**) सुनें ।

भावार्थ—जो संग्रामों में बड़े धनों को प्राप्त करते हैं, अपने आप यज्ञ के समान उत्तम कर्मों में सहस्रों देते हैं वे नियमित गति, सबकी पुकार को सुनने वाले बलशाली लोग हमारी पुकार को सुनें ॥६॥

प्र वो वायुं रथयुजं पुरंधिं स्तोमैः कृणुध्वं सख्याय पूषणम् ।
ते हि देवस्य सवितुः सवीमनि क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः ॥७॥

पदार्थः— हे मनुष्यो ! आप लोग (**रथयुजम्**) रथ में लगने वाले (**वायुम्**) वेगदाता तत्त्व को (**पुरन्धिम्**) पुर के धारक को, (**पूषणम्**) पोषक को (**स्तोमैः**) उत्तम प्रशंसा-वचनों से (**वः**) अपने (**सख्याय**) मित्रत्व के लिए (**कृणुध्वम्**) करो, (**हि**) क्योंकि (**ते**) वे (**देवस्य**) देव (**सवितुः**) सर्वोत्पादक परमेश्वर

Scanned by CamScanner

के (सर्वोमनि) शासन में (सचितः) एक साथ हुए, (सचेतसः) सचेत के समान हुए (क्रतुम्) अपने कार्यों में (सचन्ते) जुड़ते हैं।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग रथ में लगने वाले वेगदाता पदार्थ को, पुरों के धारक तत्त्व को, पोषक तत्त्व को उत्तम वर्णनों के साथ अपने संपर्क में करो। वे सभी पदार्थ भगवान् के नियम में साथ होकर सचेत के समान हुए अपने कार्यों में लगे रहते हैं ॥७॥

त्रिः सप्त सस्रा नद्यो महीरपो वनस्पतीन्पर्वतौं अग्निमूतये ।
कृशानुमस्तॄन्तिष्यं सधस्थ आ रुद्रं रुद्रेषु रुद्रियं हवामहे ॥८॥

पदार्थः—हम ज्ञानार्थ (त्रिः सप्त) २१ प्रकार की (सस्राः) सरण करने वाली (नद्यः) नदियें (महीः) महान् (अपः) जलों, (वनस्पतीन्) वनस्पतियों (पर्वतान्) पर्वतों वा मेघों, (अग्निम्) अग्नि को जो (कृशानुम्) सबका दाहक है, (अस्तॄन्) तीर फेंकने वाले लोगों (तिष्यम्) तिष्य नक्षत्र, (रुद्रेषु) रुद्रों अर्थात् अग्नियों में (रुद्रियम्) रुद्र रूप से वर्णनीय (रुद्रम्) तीव्रतम अग्नि का (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए (हवामहे) ज्ञानार्थ गुणवर्णन करते हैं।

भावार्थः—नदनशील जलों के भेद से युक्त २१ प्रकार की नदियों, जलों, वनस्पतियों पर्वतों और मेघों अग्नि, तीर फेंकने वालों, तिष्य नक्षत्र, रुद्रों में परिगणित तीव्रतम अग्नि को हम अपनी रक्षा के लिए ज्ञान में ग्रहण करते हैं ॥८॥

सरस्वती सरयुः सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः ।
देवीरापो मातरः सूदयित्न्वो घृतवत्पयो मधुमन्नो अर्चत ॥९॥

पदार्थः— (महः) महती से (महीः) महती, (ऊर्मिभिः) ऊर्मियों से युक्त (वक्षणी) शब्दवती (सरस्वती) उत्तम जलों वाली नदी (सरयुः) बहाव वाली (सिन्धुः) अत्यधिक स्यन्दनशीला नदी (अवसा) रक्षा के लिए (आ यन्तु) चारों तरफ जाती हैं, (देवीः) उत्तम गुणों वाली (मातरः) माताभूत (सूदयित्न्वः) स्फूर्त्तिदायक (आपः) जलें (नः) हमें (घृतवत्) तेजोयुक्त (मधुमत्) माधुर्य युक्त (पयः) रसात्मक तत्त्व (अर्चत) देती हैं।

भावार्थः—बड़ी से बड़ी और ऊर्मियों से युक्त शब्दों को करती हुई उत्तम जलों वाली, बहाव वाली और अत्यधिक स्यन्दनशील नदियां हमारे

Scanned by CamScanner

रक्षार्थ चारों ओर जाती हैं। उत्तम गुणों से युक्त माता के समान सुख-कारिणी स्फूर्तिदायक जलें हमें माधुर्ययुक्त और तेजोयुक्त रसात्मक तत्त्व देती हैं ॥९॥

उत माता बृहद्दिवा शृणोतु नस्त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः पिता वचः ।
ऋभुक्षा वाजो रथस्पतिर्भगो रण्वः शंसः शशमानस्य पातु नः ॥१०॥

पदार्थः—(**उत**) और (**बृहद्दिवा**) महा प्रकाशवाली (**माता**) देवमाता अदिति=अन्तरिक्ष वा पृथिवी (**देवेभिः**) देवों सहित (**जनिभिः**) देवी=अर्थात् देवशक्तियों सहित (**पिता**) सबका पालक (**त्वष्टा**) सूर्य वा द्युलोक (**नः**) हमरे (**वचः**) वचन को (**शृणोतु**) सब को सुनवायें, (**ऋभुक्षाः**) किरणें (**वाजः**) अन्नशक्ति, (**रथस्पतिः**) जगत् रथ का स्वामी (**भगः**) यज्ञ (**रण्वः**) रमणीय (**शंसः**) प्रशस्त मरुद्गण (**शशमानस्य**) इन सबकी तारीफ करने वाले यजमान के (**नः**) हम लोगों की (**पातु**) रक्षा करते हैं।

भावार्थः—महा प्रकाशवती अदिति, अन्य देवों और देवों की शक्तियों से युक्त द्युलोक हमारे वचन को सबको सुनवाने का साधन बने। किरणें, अन्न शक्ति, जगद्रथ का पालक यज्ञ, रमणीय प्रशस्त मरुद्गण मुझ यजमान के सभी लोगों की रक्षा करते हैं ॥१०॥

रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः ।
गीर्भिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥११॥

पदार्थ (**संदृष्टौ**) संदर्शन में (**रण्वः**) रमणीय मरुद्गण (**पितुमान्**) अन्नवान् (**क्षयः इव**) निवास के समान है याज्ञिकों के और जलों के, (**रुद्राणाम्**) रुद्रों=अग्नियों से उत्पन्न (**मरुताम्**) मारुत प्राणों को (**उपस्तुति**) उपस्थिति हमारे लिए (**भद्रा**) कल्याणदायी होती है इसलिए (**जनेषु**) जलों के मध्य हम (**गोभिः**) गौ आदि पशुओं से (**यशसः**) यशस्वी (**स्याम**) होवें (**देवासः**) इन यज्ञ देवों को (**सदा**) सर्वदा (**इलया**) अन्न की हवि से (**आ**) सब प्रकार से (**सचेमहि**) प्राप्त हों।

भावार्थः – संदर्शन में रमणीय मरुद्गण याज्ञिकों के लिए अन्नयुक्त निवास के समान हैं। अग्नियों से उत्पन्न मारुत प्राणों की उपस्थिति हमारे लिए कल्याणमयी होती है इसलिए जनों के मध्य में हम गौ आदि पशुओं से यशस्वी होवें और सदा अन्न की हवि से इन देवों को प्राप्त हों ॥११॥

Scanned by CamScanner

यां मे धियं मरुत इन्द्र देवा अददात वरुण मित्र यूयम् ।
तां पीपयत पयसेव धेनुं कुविद्गिरो अधि रथे वहाथ ॥१२॥

पदार्थः—(**हे मरुतः**) विद्वान् पुरुषो ! (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् गुरो ! (**हे देवाः**) हे ज्ञान दाताओ ! (**वरुण**) हे श्रेष्ठजन ! (**मित्र**) हे स्नेहीजन ! (**यूयम्**) आप लोग (**याम्**) जिस (**धियम्**) बुद्धि और कर्म को (**मे**) मुझे (**अददात**) देते हो (**ताम्**) उसको (**पयसा**) दूध से (**धेनुम् इव**) धेनु के समान (**पीपयत**) नाना फलों से युक्त करो (**कुविद्**) बहुत बार (**गिरः**) विद्वानों को (**रथे अधि**) रथ पर (**वहाथ**) चढ़ाकर लाया करो ।

भावार्थः—हे विद्वज्जन, हे गुरो, हे ज्ञान दाताओ हे श्रेष्ठजन ! हे स्नेहीजन ! आप लोग जिस बुद्धि कर्म को मुझे देते हो उसे फलयुक्त=सफल करो । बहुत वार विद्वानों को रथ पर लाकर प्राप्त कराओ ॥१२॥

कुविदङ्ग प्रति यथा चिदस्य नः सजात्यस्य मरुतो बुबोधथ ।
नाभा यत्र प्रथमं संनसामहे तत्र जामित्वमदितिर्दधातु नः ॥१३॥

पदार्थः—(**अंग मरुतः**) हे वीरजनो ! (**यथा चित्**) जैसे भी हो आप लोग (**कुवित्**) बहुत वार (**नः**) हमारे (**सजात्यस्य**) समान सगे सम्बन्धी वर्ग को भी (**प्रति बोधय**) ज्ञान प्रदान करो (**यत्र**) जिस (**नाभा**) नाभि में (**प्रथमम्**) पहले (**संनसामहे**) प्राप्त होते हैं (**अदितिः**) द्युलोक (**भूमिः**) भूमि (**तत्र**) उसमें (**जामित्वम्**) परस्पर बन्धुत्व (**नः**) हमारा (**दधातु**) पुष्ट करे ।

भावार्थः—हे वीर जनो ! जैसे भी हो आप लोग सदा हमारे सगे सम्बन्धी वर्ग को भी ज्ञान प्रदान करो । जिस नाभि में हम पहले प्राप्त होते हैं उसमें पृथिवी हमारे परस्पर बन्धुत्व को पुष्ट करती है ॥१३॥

ते हि द्यावापृथिवी मातरा मही देवी देवाञ्जन्मना यज्ञिये इतः ।
उभे बिभृत उभयं भरीमभिः पुरू रेतांसि पितृभिश्च सिञ्चतः ॥१४॥

पदार्थः—(**मातरा**) निर्मात्री, (**मही**) महती (**देवी**) दिव्य (**यज्ञिये**) यज्ञार्ह (**ते**) वे (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**देवान्**) इन्द्र=वायु आदि देवों को (**जन्मना**) जन्म से (**इतः हि**) यहीं पर (**प्राप्नुतः**) प्राप्त हैं । (**उभे**) दोनों

Scanned by CamScanner

(भरीमभिः) नाना प्रकार के भरण पोषणों से (उभयम्) देव और मनुष्य दोनों का (बिभ्रतः) भरण पोषण करते हैं, (पितृभिः) पालक शक्तियों से युक्त हुए (पुरु) बहुत (रेतांसि) जलों को (च) भी (सिञ्चतः) सिक्त करते हैं।

भावार्थः - सब के निर्माण करने वाली महान् तथा दिव्य द्यु और पृथिवी जन्मकाल से ही वायु आदि देवों को यहीं अपने पास ही प्राप्त है। ये दोनों देवी पदार्थों और मनुष्यों दोनों को ही भरण शक्तियों से पुष्ट करते हैं। पालक शक्तियों से युक्त हुए प्रभूत जलों की वर्षा भी करते हैं ॥ १४ ॥

वि षा होत्रा विश्वमश्नोति वार्यं बृहस्पतिररमतिः पनीयसी ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदवीवशन्त मतिभिर्मनीषिणः ॥१५॥

पदार्थः—(सा) वह (होत्रा) सब पदार्थों के नामों और व्यवहारों को बताने वाली वाक् (विश्वम्) समस्त (वार्यम्) वरणीय पदार्थों को (अश्नोति) व्यापन कर रही है, वही (पनीयसी) उत्तम रीति से ज्ञान को देने वाली है (यत्र) जिसमें कुशल पुरुष (अरमतिः) बहुत बुद्धि वाला (बृहस्पतिः) वाणी का पालक कहा जाता है, (यत्र) जिसमें (ग्रावा) उपदेष्टा (मधुषुत्) ज्ञान को उत्पन्न करने वाला (उच्यते) कहा जाता है। (यत्र) जिसके बल पर (मतिभिः) अपनी बुद्धियों द्वारा (मनीषिण) बुद्धिमान् लोग (बृहद) उस महान् प्रभु वा ज्ञान, वा पद की (अवीवशन्त) कामना करते हैं।

भावार्थः— वह सब पदार्थों के नामों और व्यवहारों को बताने वाली परम वाणी समस्त चाहे पदार्थों को व्यापन कर रही है। वह उत्तम रीति से ज्ञान देने वाली है। जिसमें कुशल पुरुष बहुत बुद्धि वाला वाणी का पालक कहा जाता है और जिसमें उपदेष्टा ज्ञान को उत्पन्न करने वाला कहा जाता है। तथा जिसके बल पर अपनी प्रज्ञा से बुद्धिमान् लोग बृहत्=ब्रह्म पद, ज्ञान, की कामना करते हैं ॥ १५ ॥

एवा कविस्तुवीरवाँ ऋतज्ञा द्रविणस्युर्द्रविणसश्चकानः ।
उक्थेभिरत्र मतिभिश्च विप्रोऽपीपयद्गयो दिव्यानि जन्म ॥१६॥

पदार्थः—(एवा) इस भांति (अत्र) इस यज्ञ में (कविः) क्रान्तदर्शी (स्तुवीरवान्) स्तुतिकर्त्ता, (ऋतज्ञा) यज्ञ का ज्ञाता (द्रविणस्युः) धन की

Scanned by CamScanner

कामना वाला, (द्रविणः) पशु आदि धन को (चकानः) चाहता हुआ, (विप्रः) मेधावी पुरुष (उक्थैः) कर्मों से (मतिभिः) बुद्धि से (गयः) अपत्य (दिव्यानि) दिव्य वस्तुओं और जल आदि को (अपीपयद्) बढ़ाता है ।

भावार्थः— इस भांति इस यज्ञ में क्रान्तदर्शी कर्मण्य, यज्ञ का ज्ञाता, धन की कामना करने वाला, पशु आदि धन को चाहता हुआ मेधावी पुरुष स्तुतियों, बुद्धि और कर्मों द्वारा अपत्य, धन एवं दिव्य वस्तुओं और जन्म आदि को बढ़ा सकता है ॥ १६ ॥

एवा प्लतेः सूनुरवीवृधद्वो विश्वं आदित्या अदिते मनीषी ।
ईशानासो नरो अमर्त्येनास्तावि जनो दिव्यो गयेन ॥१७॥

पदार्थः—(हे विश्वे आदित्याः) हे समस्त तेजस्वीजनो (एव) इस प्रकार (प्लतेः) सुखों धनों वाले के (सूनुः) पुत्र (मनीषी) बुद्धिमान् पुरुष (वः) आप लोगों को धन आदि से (अवीवृधत्) बढ़ाता है, (हे अदिते) हे विदुषी स्त्रि (अमर्त्येन) जीवनमुक्त (गयेन) उपदेष्टा के द्वारा (ईशानासः) शासन करने वाले (नरः) मनुष्य और (दिव्यः जनः) दिव्य प्रभु (अस्तावि) स्तुत होता है ।

भावार्थः—हे समस्त तेजस्वी पुरुषो ! इस प्रकार सुख और धन वाले के पुत्र मनीषी पुरुष आप लोगों को धन आदि से बढ़ाता है। हे विदुषी स्त्रि ! जीवनमुक्त उपदेष्टा के द्वारा शासनकर्त्ता मनुष्य और दिव्य प्रभु स्तुत होते हैं ॥ १७ ॥

यह दशम मण्डल में चौसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६५

ऋषिः—१—१५ वसुकर्णो वासुक्रः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—
१, ४, ६, १०, १२, १३ निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती ।
३, ७, ६ विराड्जगती । ५, ८, ११ जगती । १४ त्रिष्टुप् ।
१५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—१३ निषादः ।
१४, १५ धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ।
आदित्या विष्णुर्मरुतः स्वर्बृहत्सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पतिः ॥१॥

पदार्थः—(**अग्निः**) अग्नि, (**इन्द्रः**) विद्युत्, (**वरुणः**) जल तत्त्व, (**मित्रः**) अन्न, (**अर्यमा**) सूर्य (**वायुः**) वायु (**पूषा**) पृथिवी, (**सरस्वती**) माध्यमिका वाक्, (**आदित्याः**) १२ आदित्य, (**विष्णुः**) व्यापक आकाश, (**मरुतः**) मरुद्गण (**स्वः**) प्रकाश, (**बृहत् सोमः**) महान् ओषधिगण, (**रुद्रः**) प्राण, (**अदितिः**) अखण्ड प्रकृति, (**ब्रह्मणः पतिः**) ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु (**सजोषसः**) संगत हुए इस महान् आकाश में सर्वत्र विराजमान है।

भावार्थः—अग्नि, विद्युत्, जल तत्व, अन्न, सूर्य, वायु, पृथिवी, माध्यमिका वाक्, १२आदित्य, व्यापक, आकाश, मरुद्गण, प्रकाश, महान् ओषधि गण, प्राण, अखण्ड प्रकृति और ब्रह्माण्ड का पालक प्रभु संगत हुए आकाश में विराजमान है ॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा३ समोकसा ।
अन्तरिक्षं मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥

पदार्थः—(**वृत्रहत्येषु**) मेघ के वधों में (**इन्द्राग्नी**) पवन और अग्नि (**समोकसा**) एक स्थान पर रहते हुए (**सत्पती**) सत्तावान् पदार्थों के पालक होकर (**तन्वा**) अपनी विस्तृत शक्ति से (**मिथः**) परस्पर को (**हिन्वानाः**) बढ़ाते हुए, (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष को (**आ पप्रुः**) पूरित करते हैं, (**सोमः**) प्राण (**घृतश्रीः**) जल के आश्रय पर रहकर (**ओजसा**) बल से (**महिमानम्**) अपने सामर्थ्य को (**ईरयन्**) प्रकट करता हुआ अन्तरिक्ष को पूरित करता है।

भावार्थः—मेघ के वधों में पवन और अग्नि, एक ही स्थान वाले, सत्ता वाले पदार्थों के पालक हुए अपनी विस्तृत शक्ति से परस्पर को बढ़ाते हुए अन्तरिक्ष को व्यापन करते हैं और प्राण जल के आश्रय पर रहकर बल से अपनी महिमा को प्रकट करता हुआ अन्तरिक्ष को पूरित करता है ॥२॥

तेषां हि मह्ना महतामनर्वणां स्तोमाँ इयर्म्यृतज्ञा ऋतावृधाम् ।
ये अप्सवमर्णवं चित्रराधसस्ते नो रासन्तां महये सुमित्र्याः ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**ऋतज्ञाः**) यज्ञ और सृष्टि नियम का ज्ञाता मैं विद्वान् (**महता**) महत्ता से (**महताम्**) महान् (**अनर्वणाम्**) अन्य सवारी वा चालक की अपेक्षा से रहित (**ऋतावृधाम्**) जल, ज्ञान, यज्ञ आदि को बढ़ाने वाले (**तेषाम्**) इन तत्वों के (**स्तोमान्**) स्तुत्य गुणों को (**इर्मास**) कहता हूं (**ये**) जो (**चित्रराधसः**) धनों के साधक होकर (**अप्सवम्**) जलोत्पादक (**अर्णवम्**) अन्तरिक्षस्थ समुद्र को कायम रखते हैं (**ते**) वे (**सुमित्रयाः**) उत्तम मित्र हैं, (**ते**) वे (**नः**) हमें (**महये**) महान् सामर्थ्य के लिए (**रासन्ताम्**) ऐश्वर्य प्रदान करें।

भावार्थः—यज्ञ और सृष्टि नियम का ज्ञाता मैं अपनी महत्ता से महान्, दूसरे चालक की अपेक्षा न रखने वाले जल, ज्ञान, यज्ञ आदि के वर्धक इन तत्वों के गुणों का बखान करता हूं। जो तत्त्व धनों के साधक होकर जलोत्पादक अन्तरिक्षस्थ समुद्र को कायम रखते हैं वे हमारे उत्तम मित्र हैं। वे हमें सामर्थ्ययुक्त करें॥ ३ ॥

स्वर्णरमन्तरिक्षाणि रोचना द्यावाभूमी पृथिवीं स्कम्भुरोजसा ।
पृक्षाइव महयन्तः सुरातयो देवाः स्तवन्ते मनुषाय सूरयः ॥४॥

पदार्थः—(**स्वर्णरम्**) सबको कर्मों में प्रवृत्त करने वाले आदित्य, (**अन्तरिक्षाणि**) अन्तरिक्षस्थ (**रोचना**) प्रकाशमान तेजों को, (**द्यावाभूमी**) द्यु और भूमि को, (**पृथिवीम्**) विस्तृत अन्तरिक्ष को (**पृक्षा इव**) दरिद्रों को धन देने वाले के समान, (**महयन्तः**) स्तोत्रियों को धन आदि देते हुए, (**सुरातयः**) उत्तम दान वाले (**मनुषाय**) मनुष्य के लिये (**सूरयः**) धनों के प्रेरक (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**ओजसा**) बल से (**स्कम्भुः**) धारण करते हैं और (**स्तवन्ते**) स्तुत होते हैं।

भावार्थः—धन आदि पदार्थों के प्रेरक दिव्य पदार्थ जिन्हें देव कहा जाता है आदित्य, अन्तरिक्षस्थ प्रकाश, द्यु और भूमि लोक तथा विस्तृत अन्तरिक्ष को धारण करते हैं और यज्ञ में प्रशंसा पाते हैं ॥ ४ ॥

मित्राय शिक्ष वरुणाय दाशुषे या सम्राजा मनसा न प्रयुच्छतः ।
ययोर्धाम धर्मणा रोचते बृहद्ययोरुभे रोदसी नाधसी वृतौ ॥५॥

पदार्थः—हे यजमान (**दाशुषे**) दाता (**मित्राय**) उदान और (**वरुणाय**) प्राण के लिए (**शिक्ष**) यज्ञ में आहुति दे, (**या**) जो दोनों ये मित्र और वरुण

(सम्राजा) सम्यक् दीप्त है तथा (मनसा) अन्तरिक्ष लोक से युक्त हुए (न) नहीं (प्रयुच्छतः) प्रमाद करने वाले हैं, (ययोः) जिनका (बृहत्) महान् (धाम) तेज वा सामर्थ्य (धर्मणा) उनके गुण धर्मों से (रोचते) प्रकाशमान होता है (ययोः) जिन दोनों के (नाधसी) ऐश्वर्य से युक्त (उभे) दोनों (रोदसी) द्यु और पृथिवी (वृतौ) वर्तमान होते हैं।

भावार्थः—हे यजमान ! दाता उदान और प्राण के लिए यज्ञ में आहुति प्रदान कर। ये दोनों दीप्तिमान् और अन्तरिक्ष के साथ युक्त कभी भी अपने कार्य में प्रमाद करने वाले नहीं है। इनका महान् सामर्थ्य इनके गुण धर्मों से प्रकाशमान होता है इन दोनों के ऐश्वर्य से युक्त द्युलोक और पृथिवी दोनों विद्यमान हैं॥ ५॥

या गौर्वर्तनिं पर्येति निष्कृतं पयो दुहाना व्रतनीरवातरः ।
सा प्रब्रुवाणा वरुणाय दाशुषे देवेभ्यो दाशद्धविषा विवस्वते ॥६॥

पदार्थः—(या) जो (गौः) भूमि (निष्कृतम्) ठीक प्रकार से बने (वर्तनिम्) मार्ग को (परि एति) तय करती है, (पयः) जल का (दुहाना) दोहन करती हुई (अवातरः) निरन्तर (व्रतनीः) अन्न प्राप्त कराती हुई (सा) वह (वरुणाय) श्रेष्ठ (दाशुषे) प्रकाश के दाता (विवस्वते) सूर्य के सामर्थ्य को (प्रब्रुवाणा) प्रकट करती हुई (हविषा) अन्न जल आदि से (देवेभ्यः) जीवों के लिये (दाशत्) जीवन प्रदान करती है।

भावार्थः—जल का दोहन करती हुई, अन्न प्राप्त कराती हुई, यह भूमि ठीक प्रकार से बने मार्ग को तय करती है। यह सूर्य के सामर्थ्य को प्रकट करती हुई जीवों के लिए अन्न आदि से जीवन प्रदान करती है।६॥

दिवक्षसो अग्निजिह्वा ऋतावृध ऋतस्य योनिं विमृशन्त आसते ।
द्यां स्कभित्व्य१प आ चक्रुरोजसा यज्ञं जनित्वी तन्व३ि नि मामृजुः ॥७

पदार्थः—(दिवक्षसः) द्युलोक को व्यापन करने वाले, (अग्निजिह्वाः) अग्नि की ज्वालाओं वाले, अथवा अग्निरूपी जिह्वा वाले (ऋतावृधः) यज्ञ को बढ़ाने वाले (देवाः) देव (ऋतस्य) यज्ञ वा जल के (योनिम्) कारण एवं स्थान को (विमृशन्तः) ढूंढने वाले के समान (आसते) प्राप्त करते हैं,(द्याम्) द्युलोक को (स्कभित्वी) धारण करके (ओजसा) बल से (अपः) जलों को

Scanned by CamScanner

(**आ चक्रुः**) उत्पन्न करते हैं (**यज्ञम्**) अन्न आदि हव्य पदार्थों को (**जनित्वी**) उत्पन्न कर (**तन्वि**) अपने संघात में (**निममृजुः**) पुनः अग्नि द्वारा प्राप्त अलंकृत करते हैं।

भावार्थः—द्युलोक को व्यापन करने वाले, अग्नि को अपना मुख वा माध्यम बनाने वाले, यज्ञ के वर्धक विद्युद् सूर्य आदि दिव्य पदार्थ यज्ञ वा जल के कारण वा स्थान को किसी चीज को ढूंढने वाले व्यक्तियों के समान प्राप्त करते हैं। वे द्युलोक को धारण कर जल को उत्पन्न करते हैं और अन्न आदि हवि योग्य पदार्थों को उत्पन्न करके पुनः अग्नि में दी गई आहुति के रूप में उन्हें अपने संघात में प्राप्त करते हैं ॥ ७ ॥

परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा ।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत्पयो महिषाय पिन्वतः ॥८॥

पदार्थः—(**परिक्षिता**) चारों तरफ निवास वाले, (**पितरा**) सबके पिता और माता भूत, (**पूर्वजावरी**) सर्व प्रथम उत्पन्न, (**समोकसा**) समान निवास स्थान वाले ये (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**ऋतस्य**) नित्य सृष्टि नियम के (**योनौ**) कारण परमेश्वर में (**क्षयतः**) निवास करते हैं (**सव्रते**) अपने कर्मों से युक्त ये दोनों (**महिषाय**) महान् (**वरुणाय**) वरुण के लिए (**घृतवत्**) प्रकाशयुक्त (**पयः**) जल को (**पिन्वतः**) क्षरण करते हैं।

भावार्थः—चारों तरफ फैले हुए, सब प्राणियों के पिता और माता भूत, सबसे पूर्व उत्पन्न समान निवास वाले द्यु और पृथिवी लोक सृष्टि-नियम के परमकारण परमेश्वर के आश्रय में ठहरे हैं। ये अपने कार्यों को करते हुए जलीय तत्त्व को स्थिर रखने के लिए जल से पूरित करते रहते हैं ॥८॥

पर्जन्यवाता वृषभा पुरीषिणेन्द्रवायू वरुणो मित्रो अर्यमा ।
देवाँ आदित्याँ अदितिं हवामहे ये पार्थिवासो दिव्यासो अप्सु ये ॥९॥

पदार्थः—(**पर्जन्य वाता**) पर्जन्य और वायु जो (**वृषभा**) वर्षा कराने वाले और (**पुरीषिणौ**) जल से युक्त हैं (**इन्द्रवायू**) विद्युत् और वात, (**वरुण**) प्राण, (**मित्र**) अपान, (**अर्यमा**) सूर्य आदि अपनी महिमा से विद्यमान हैं, (**ये**) जो (**देवाः**) देव लोग पृथिवी से उत्पन्न पार्थिव हैं और (**ये**) जो (**अप्सु**) जलों

Scanned by CamScanner

अथवा अन्तरिक्ष में हैं और जो (**दिव्यासः**) द्युलोक में हैं इन (**आदित्यान्**) १२ आदित्य (**देवान्**) देवों और (**अदितिम्**) उनकी माता प्रकृति का (**हवामहे**) हम वर्णन करते हैं ।

भावार्थः—पर्जन्य और वायु, वर्षा कराने वाले और जल से युक्त हैं, विद्युत् और वात=मरुत्, प्राण, अपान, सूर्य आदि सभी अपनी महिमा से विद्यमान हैं । जो देव पार्थिव हैं, जो अन्तरिक्षस्थ हैं और जो दिव्य=द्युलोकस्थ हैं उन १२ आदित्य आदि देवों और उनकी माता अदिति=प्रकृति का हम वर्णन करते हैं ॥६॥

त्वष्टारं वायुमृभवो य ओहते दैव्या होतारा उषसं स्वस्तये ।
बृहस्पतिं वृत्रखादं सुमेधसमिन्द्रियं सोमं धनसा उ ईमहे ॥१०॥

पदार्थः—(**ऋभवः**) हे ज्ञान से प्रकाशमान पुरुषो ! (**त्वष्टारम्**) सूर्य को (**वायुम्**) वायु को (**दैव्या होतारा**) दैव्याहोतारौ=प्राण और अपान (**उषसम्**) उषा को (**यः**) जो सोम=यज्ञीय पदार्थ (**स्वस्तये**) आप लोगों के कल्याण के लिए इन सब देवों को (**ओहते**) प्राप्त तथा (**बृहस्पतिम्**) नभोमण्डल, (**सुमेधसम्**) उत्तम ज्ञान के विषय (**वृत्रखादम्**) मेघनाशक इन्द्र=विद्युत् को, (**इन्द्रियम्**) इन्द्रजुष्ट (**सोमम्**) सोम आदि ओषधि को (**धनसाः**) धन की इच्छा वाले हम (**ईमहे**) प्राप्त करें ।

भावार्थ—हे ज्ञान से प्रकाशमान पुरुषो ! सूर्य, वायु, प्राण और अपान, और उषस् को हव्य पदार्थ आप के कल्याण के लिए प्राप्त होता है और जो नभोमण्डल, इन्द्र=विद्युत् और विद्युत् द्वारा सेवित सोम आदि ओषधि को प्राप्त होता है, उस सोम को हम धन की इच्छा करने वाले प्राप्त करें ॥१०॥

ब्रह्म गामश्वं जनयन्त ओषधीर्वनस्पतीन्पृथिवीं पर्वताँ अपः ।
सूर्यं दिवि रोहयन्तः सुदानव आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि ॥११॥

पदार्थः—(**ब्रह्म**) अन्न, (**गाम्**) गौ (**अश्वम्**) अश्व, (**ओषधीः**) ओषधियां, (**वनस्पतीन्**) वनस्पतियों, (**पृथिवीषु**) पृथिवी, (**पर्वतान्**) पहाड़ों और (**अपः**) जलों को (**जनयन्तः**) उत्पन्न करते हुए (**दिवि**) द्युलोक में (**सूर्यम्**) सूर्य को (**रोहयन्तः**) चढ़ाकर स्थापित करते हुए (**सुदानवः**) उत्तम प्रकार से अन्न जल आदि का देने वाले (**देवाः**) विश्व की कारणभूत देवशक्तियां (**अधिक्षमि**)

Scanned by CamScanner

पृथिवी पर (**आर्या**) श्रेष्ठ (**व्रता**) कर्मों को (**विसृजन्तः**) उत्पन्न करते हुए अपना कार्य करते हैं।

भावार्थः—जगत् में काम कर रही विश्व की कारणभूत दिव्य शक्तियां अन्न, गौ, अश्व, औषधि, वनस्पति, पृथिवी, पहाड़ों और जलों आदि को उत्पन्न करती हुई, द्युलोक में सूर्य को स्थापित करती हुई पृथिवी पर श्रेष्ठ कर्मों को उत्पन्न करती हुई अपना कार्य निरन्तर करती हैं ।।११।।

भुज्युमंहसः पिपृथो निरश्विना श्यावं पुत्रं वध्रिमत्या अजिन्वतम् ।
कमद्युवं विमदायोहथुर्युवं विष्णाप्वं१ विश्वकायाव सृजथः ।।१२।।

पदार्थः—(**अश्विना**) हे आचार्य और पुरोहित ! (**युवम्**) आप (**भुज्युम्**) भोग सामग्री को अथवा यज्ञ को (**अंहसः**) नष्ट करने वाली बुराई से (**पिपृथः**) बचाते हो, आप (**वध्रिमत्याः**) जितेन्द्रिया स्त्री के (**पुत्रम्**) पुत्र को (**निः**) पूर्णता से (**श्यावम्**) ज्ञान युक्त (**अजिन्वतम्**) बनाते हो, (**विमदाय**) विशेष हर्ष वाले युवा ब्रह्मचारी वर के लिए (**कमद्युवम्**) परमात्मा की स्तुति करने वाली स्त्री (**ऊहथुः**) प्राप्त कराते हो, तथा (**विश्वकाय**) विशेष ज्ञान वाले विद्यार्थी के लिए (**विष्णाप्वम्**) व्यापक ज्ञान अथवा यज्ञ को व्याप्त करने वाले कर्म को (**अव सृजथः**) देते हो।

भावार्थः—हे आचार्य और पुरोहित ! आप भोग सामग्री और यज्ञ आदि को विनष्ट होने से बचाते हो। जितेन्द्रिया विदुषी के पुत्र को ज्ञानवान् बनाते हो। आप हर्ष वाले युवा ब्रह्मचारी वर के लिए परमात्मा की स्तुति करने वाली स्त्री प्राप्त कराते हो। तथा विशेष ज्ञान वाले विद्यार्थी के लिए व्यापक ज्ञान अथवा यज्ञ को व्याप्त करने वाले कर्म को देते हो। आचार्य ब्रह्मचर्य पूरा कर गृहस्थाश्रम में जाने वाले ब्रह्मचारी के लिए गुण कर्म से कन्या का चुनाव कर उसे प्रदान करते हैं ।।१२।।

पवीरवी तन्यतुरेकपादजो दिवो धर्ता सिन्धुरापः समुद्रियः ।
विश्वे देवासः शृणवन्वचांसि मे सरस्वती सह धीभिः पुरन्ध्या ।।१३।।

पदार्थः—(**पवीरवी**) विद्युन्मयी (**तन्यतुः**) माध्यमिका वाक्, (**दिवः**) द्युलोक का (**धर्ता**) धारक (**अजः एकपात्**) सूर्य (**सिन्धुः**) स्यन्दनवती नदी, (**समुद्रियः**) अन्तरिक्षस्थ (**आपः**) जलें (**धीभिः**) कर्म से (**सह**) युक्त (**पुरन्ध्या**) बहुत ज्ञानों की धारिका (**सरस्वती**) वैदिकी वाणी आदि (**विश्वे देवासः**) विश्व

Scanned by CamScanner

देव लोग (मे) मुझ यजमान वा ज्ञान के अन्वेषक के (वचांसि) वचनों को (शृण्वन्) सबके सुनने का साधन बनें ।

भावार्थः— विद्युन्मयी माध्यमिका वाक्, द्युलोक का धारक सूर्य, सिन्धु, अन्तरिक्षस्थ जल कर्मों से युक्त बहुत ज्ञानों की धारिका वैदिकी वाणी आदि समस्त दिव्य शक्तियें मुझ अन्वेषक के वचनों को सब तक पहुँचाने और ज्ञान के साधन बनें ॥१३॥

विश्वे॑ दे॒वाः स॒ह धी॒भिः पुर॑न्ध्या॒ मनो॒र्यज॑त्रा अ॒मृता॑ ऋत॒ज्ञाः ।
रा॒ति॒षाचो॑ अ॒भि॒षाचः॑ स्व॒र्विदः॒ स्व१॒र्गिरो॒ ब्रह्म॑ सू॒क्तं जु॑षेरत ॥१४॥

पदार्थः—(**विश्वे देवाः**) समस्त विद्वान् (**धीभिः**) नाना बुद्धियों और कर्मों के (**सह**) साथ (**पुरन्ध्या**) लोकों के ज्ञान वाली बुद्धि के (सह) साथ (**अमृताः**) दीर्घायु (**ऋतज्ञाः**) सत्य विद्या को जानने वाले (**राति साचः**) दान को ग्रहण करने वाले, (**अभि षाचः**) संघ बनाकर रहने वाले, (**स्वर्विदः**) सब प्रकार के सुखों को प्राप्त कराने वाले (**स्वर्विदः**) उत्तम व.णियों में (**सु उक्तम्**) भली प्रकार उपदिष्ट (**ब्रह्म**) ज्ञान को (**जुषेरत**) सेवन करें ।

भावार्थः— समस्त विद्वान् लोग नाना प्रकार के ज्ञानों और कर्मों के साथ लोकों का ज्ञान देने वाली बुद्धि के साथ दीर्घायु हुए, सत्यविद्या के ज्ञाता, दान को ग्रहण करने वाले, कुल बनाकर रहने वाले सब प्रकार के सुखों को प्राप्त होकर उत्तम वाणियों में भली प्रकार उपदिष्ट ज्ञान का सेवन करें ॥१४॥

दे॒वान्व॒सिष्ठो॑ अ॒मृता॑न्ववन्दे॒ ये विश्वा॒ भुव॑ना॒भि प्र॑त॒स्थुः ।
ते नो॑ रासन्तामुरुगा॒यम॒द्य यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥१५॥

पदार्थ— (**वसिष्ठः**) जितेन्द्रिय आचार्य (**अमृतान्**) दीर्घ आयु वाले (**देवान्**) विद्यासेवियों को (**ववन्दे**) अभिनन्दित करें (**ये**) जो (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**अभि प्रतस्थुः**) जाते हैं । (**ते**) वे (**अद्य**) सदा (**नः**) हमें (**उरुगायम्**) महान् वेदवाणी का (**रासन्ताम्**) उपदेश करें । हे विद्वानो ! (**यूयम्**) आप (**स्वस्तिभिः**) कल्याणकारी साधनों से (नः) हमारी (**सदा**) सर्वदा (**पात**) रक्षा करें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जितेन्द्रिय आचार्य दीर्घायु वाले उन विद्यासेवियों को अभिनन्दित करे जो समस्त भुवनों में अपने ज्ञान और प्रयत्न से जाते हैं। हे विद्वानो ! आप कल्याणकारी साधनों से हमारी सदा रक्षा करो और हमें वेदज्ञान का उपदेश करो ॥१५॥

यह दशम मण्डल में पंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६६

ऋषिः—१—१५ **वसुकर्णो वासुक्रः** ॥ **देवताः**—विश्वेदेवाः ॥ **छन्दः**-१, ३, ५—७ जगती। २, १०, १२, १३ निचृज्जगती। ४, ८, ११ विराड्जगती। ९ पादनिचृज्जगती। १४ आर्चीस्वराड्जगती। १५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१ - १४ निषादः । १५ धैवतः ॥

देवान्हुवे बृहच्छ्रवसः स्वस्तये ज्योतिष्कृतो अध्वरस्य प्रचेतसः ।
ये वावृधुः प्रतरं विश्ववेदस इन्द्रज्येष्ठासो अमृता ऋतावृधः ॥१॥

पदार्थः—(**बृहच्छ्रवसः**) प्रभूत अन्नों वाले (**ज्योतिष्कृतः**) प्रकाश को करने वाले (**अध्वरस्य**) यज्ञ के (**प्रचेतसः**) सचेतक (**देवान्**) देवों को (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**हुवे**) मैं यजमान पुकारता हूँ, (**विश्ववेदसः**) सर्व धनों वाले, (**इन्द्रज्येष्ठासः**) इन्द्र जिसका प्रधान है (**अमृताः**) अमरण धर्मा (**ऋतावृधः**) यज्ञ से बढ़ने वाले (**ये**) जो (**देवाः**) यज्ञ देव (**प्रतरम्**) निरन्तर (**वावृधुः**) बढते हैं।

भावार्थः - प्रभूत अन्नों वाले, ज्योतिष्कृत, यज्ञ के सचेतक देवों को मैं कल्याणार्थ स्मरण करता हूं जो कि सर्व धनों वाले, इन्द्र के नेतृत्व से युक्त, अमरण धर्मा, यज्ञ से बढ़ने वाले हैं और निरन्तर यज्ञ से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

इन्द्रप्रसूता वरुणप्रशिष्टा ये सूर्यस्य ज्योतिषो भागमानशुः ।
मरुद्गणे वृजने मन्म धीमहि माघोने यज्ञं जनयन्त सूरयः ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**इन्द्रप्रसूताः**) विद्युत् से प्रेरित, (**वरुणप्रशिष्टाः**) वायु से नियुक्त वा युक्त (**ये**) जो मरुत् (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**ज्योतिषः**) प्रकाश के (**भागम्**) भाग को (**आनशुः**) प्राप्त करते हैं (**वृजने**) बलवान् (**मरुद्गणे**) मरुद्गण में (**मन्म**) मनन को हम (**धीमहि**) धारण करते हैं (**सूरयः**) विद्वान् लोग (**मघोने**) मखों के स्वामी इन्द्र=विद्युत् के ज्ञान के लिए (**यज्ञम्**) संगतिकरण क्रिया को (**जनयन्त**) उत्पन्न करते हैं ।

भावार्थः—विद्युत् से प्रेरित, वायु से बढ़ाये गए ये मरुत् सूर्य के प्रकाश के भाग को प्राप्त करते हैं । बलवान् मरुद्गण में हम मनन-क्रिया को धारण करते हैं और विद्वान् लोग विद्युत् के ज्ञान को प्राप्त करने के लिए संगतिकरण क्रिया को कार्य में लाते हैं ॥२॥

इन्द्रो॒ वसु॑भि॒: परि॑ पातु नो॒ गय॑मादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑ति॒: शर्म॑ यच्छतु ।
रु॒द्रो रु॒द्रेभि॑र्दे॒वो मृ॑ळयाति न॒स्त्वष्टा॑ नो॒ ग्नाभि॑: सुवि॒ताय॑ जिन्वतु ॥३॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) वायु (**वसुभिः**) आठ वसुओं के साथ (**नः**) हमारे (**गयम्**) अपत्य की (**परिपातु**) रक्षा करे, (**अदितिः**) द्युलोक (**आदित्यैः**) द्वादश आदित्यों के साथ (**नः**) हमें (**शर्म**) सुख (**यच्छतु**) देवें, (**रुद्रः**) अग्नि (**रुद्रेभिः**) एकादश रुद्रों के साथ (**नः**) हमें (**मृडयाति**) सुखी करें (**त्वष्टा**) सूर्य (**ग्नभिः**) देवों में निहित शक्तियां [जिन्हें देवपत्नी की संज्ञा दी जाती है] के द्वारा (**नः**) हमें (**सुविताय**) अभ्युदय के लिए (**जिन्वतु**) प्रसन्न करें ।

भावार्थः—वायु आठ वसुओं के साथ हमारे अपत्य की रक्षा करे, द्युलोक बारह आदित्यों के साथ हमें सुख दें, अग्नि एकादश रुद्रों के साथ हमें सुखी करें और सूर्य दिव्य शक्तियों के साथ हमारे अभ्युदय के लिए प्रसन्न करें ॥३॥

अदि॑ति॒र्द्यावा॑पृथि॒वी ऋ॒तं म॒हदिन्द्रा॒विष्णू॑ म॒रुत॒: स्व॑र्बृ॒हत् ।
दे॒वाँ आ॑दि॒त्याँ अव॑से हवामहे॒ वसू॑न् रु॒द्रान्त्स॑वि॒तारं॑ सु॒दंस॑सम् ॥४॥

पदार्थ—(**अदितिः**) अन्तरिक्ष, (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**महत्**) महान् (**ऋतम्**) अग्नि, (**इन्द्राविष्णु**) वायु और सूर्य, (**मरुतः**) मरुत् (**बृहत्**) महान् (**स्वः**) प्रकाशमान लोकसमुदाय अपनी महिमा से विराजमान हैं, इन देवों और (**आदित्यान्**) आदित्यों, (**वसून्**) वसुओं, (**रुद्रान्**) रुद्रों (**सुद-**

Scanned by CamScanner

शसम्) उत्तम कर्मा (सवितारम्) सविता (देवान्) देवों को (अवसे) रक्षा के लिए (हवामहे) प्राप्त करें।

भावार्थः - अन्तरिक्ष, द्यु और पृथिवी, अग्नि, वायु और सूर्य, मरुत्, प्रकाशमान लोक समुदाय अपनी महिमा से विराजमान हैं। इनको और आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, और सविता देवों को हम ज्ञान में प्राप्त करें ॥४॥

सरस्वान्धीभिर्वरुणो धृतव्रतः पूषा विष्णुर्महिमा वायुरश्विना।
ब्रह्मकृतो अमृता विश्ववेदसः शर्म नो यंसन् त्रिवरूथमंहसः ॥५॥

पदार्थः—(धीभिः) अपने कर्मों वा व्यापारों से युक्त (सरस्वान्) अन्तरिक्ष लोक (धृतव्रतः) अन्नों के धारक (वरुणः) जल, (पूषा) पृथिवी (महिमा) महत्व से युक्त (विष्णुः) सूर्य, (वायुः) वायु (अश्विना) प्राण और अपान (ब्रह्मकृतः) वेदार्थद्रष्टा, (अमृताः) अमृत (विश्ववेदसः) समस्त धनों के धारक होते हुए (नः) हमें (अंहसः) पाप के (शर्म) शीर्ण करने वाले (त्रिवरूथम्) शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुख को (अंसन्) दें।

भावार्थः अपने कर्मों सहित अन्तरिक्ष लोक अन्नों का धारक वरुण= जल पृथिवी, सूर्य, वायु प्राण और अपान, वेदार्थ द्रष्टा, अमृत =अमर पद को प्राप्त जीवन्मुक्त लोग समस्त धनों के धारक होते हुए हमें पाप के छेदक त्रिविध सुख को देवें ॥५॥

वृषा यज्ञो वृषणः सन्तु यज्ञिया वृषणो देवा वृषणो हविष्कृतः।
वृषणा द्यावापृथिवी ऋतावरी वृषा पर्जन्यो वृषणो वृषस्तुभः ॥६॥

पदार्थः—(यज्ञः) यज्ञ (वृषा) कामों का वर्षक हो, (यज्ञियाः) यज्ञार्ह (देवाः) देव लोग (वृषणः) कामनाओं के वर्षक (सन्तु) हों, (देवाः) विद्वान् लोग भी (वृषणः) कामनाओं को पूर्ण करने वाले हों, (हविष्कृतः) हवि प्रदान करने वाले (वृषणः) सुख की वर्षा करने वाले हों (ऋतावरी) जलों वाली (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी (वृषणा) कामों की वर्षा करने वाली हों (पर्जन्यः) मेघ (वृषा) वर्षा वाला हो (वृषस्तुभः) स्तुतिकर्ता भी (वृषणः) सुख की वर्षा करने वाले हों।

भावार्थः—यज्ञ, यज्ञार्ह देव, विद्वान् लोग, हवि देने वाले, द्यु और पृथिवी लोक, मेघ, स्तुतिकर्ता आदि सभी सुख की वर्षा करने वाले हों ॥६॥

Scanned by CamScanner

अ॒ग्नीषोमा॒ वृष॑णा॒ वाज॑सातये पुरुप्रश॒स्ता वृष॑णा॒ उप॑ ब्रुवे ।
यावी॑जि॒रे वृष॑णो देव॒यज्य॑या॒ ता नः॒ शर्म॑ त्रि॒वरू॑थं॒ वि यं॑सतः ॥७॥

पदार्थः—(वृषणा) वर्षणशील (पुरुप्रशस्ता) बहुतों से प्रशस्त (अग्निसोमा) जगत् के दो तत्व उष्ण और शीत की (वाजसातये) ज्ञान लाभ के लिए (उपब्रुवे) वर्णन करता हूं, (वृषणौ) शक्तिशाली (यौ) जो अग्नि और सोम (वृषणः) शक्ति आदि की वर्षा करने वाले दूसरे (देवयज्यया) यज्ञ से (इजिरे) यज्ञ करते हैं, (ता) वे दोनों (नः) हमें (त्रिवरूथम्) आधिभौतिक, आधदैविक और आध्यात्मिक (शर्म) सुख को (वियंसतः) देते हैं।

भावार्थः— वर्षण शील, सबके द्वारा प्रशस्त किये जाने वाले जगत् के दो तत्त्वों अग्नि और सोम (उष्णता और ठण्ड) का ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए मैं वर्णन करता हूं। वे और ऋत्विग्जन संसार यज्ञ को करते हैं। ये दोनों हमें तीनों प्रकार का सुख देते हैं ॥७॥

धृ॒तव्र॑ताः क्ष॒त्रिया॑ यज्ञनि॒ष्कृतो॑ बृहद्दि॒वा अ॑ध्व॒राणा॑मभि॒श्रियः॑ ।
अ॒ग्निहो॑तार ऋ॒तसा॑पो अ॒द्रुहो॒ऽपो अ॑सृजन्ननु॑ वृत्र॒तूर्ये॑ ॥८॥

पदार्थः—(धृतव्रताः) धारण किया है कर्मों को जिन्होंने, (क्षत्रियाः) बलशाली, (यज्ञनिष्कृतः) यज्ञ को पूरा करने वाले, (बृहद्दिवाः) महान् तेजों वाले, (अध्वराणाम्) प्राण और रसों के (अभिश्रियः) आश्रयभूत, (अग्निहोतारः) अग्नि जिनका होता है, (ऋतसापः) सत्यभाक् (अद्रुहः) किसी को हानि न पहुँचाने वाले (देवाः) दिव्य पदार्थ (वृत्रतूर्ये) मेघ के साथ होने वाले युद्ध में (अपः) जलों को (अनु असृजन्) वृष्टि रूप में उत्पन्न करते हैं।

भावार्थः—अपने कर्मों के करने वाले शक्तिशाली, यज्ञ के निष्पादक महा तेजस्क, प्राण और रसों के आधारभूत, अग्नि जिनका होता है, सत्यभाक्, किसी को हानि न पहुँचाने वाले ये इन्द्र आदि दिव्य पदार्थ मेघ के युद्ध में जलों को वृष्टि रूप में वर्षाते हैं ॥८॥

द्यावा॑पृथि॒वी ज॒नय॑न्न॒भि व्र॒ताप॒ ओष॑धीर्व॒निना॑नि य॒ज्ञिया॑ ।
अ॒न्तरि॑क्षं॒ स्व१॒॑रा प॑प्रुरू॒तये॒ वशं॑ दे॒वास॑स्त॒न्वी॒३॒॑नि मा॑मृजुः ॥९॥

पदार्थः—(देवासः) इन्द्र आदि दिव्य पदार्थ (द्यावा पृथिवी) द्यु और

पृथिवी लोक को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**व्रता**) अपने कर्म से, (**आपः**) जलों (**ओषधीः**) ओषधियों (**यज्ञिया**) यज्ञ सम्बन्धी (**वनिनानि**) वन में होने वाली पलाश आदि समिधाओं के वृक्षों को (**जनयन्**) उत्पन्न करते हुए (**स्वः**) प्रकाशमान (**अन्तरिक्षम्**) आकाश को (**आ पप्रुः**) अपने तेज से पूरित करते हैं (**अतये**) सबके रक्षार्थ (**तन्वि**) अपने संघात में (**वशम्**) यज्ञिय हव्य आदि को (**नि मामृजुः**) अलंकृत करते हैं ।

भावार्थः— इन्द्र आदि दिव्य पदार्थ द्यु और पृथिवी लोक को लक्ष्य में रखकर अपने कर्म से जल, ओषधि, यज्ञिय पलाश आदि वृक्ष को उत्पन्न करते हुए प्रकाशमान आकाश को अपने तेज से पूरित करते हैं। सबके रक्षार्थ वे यज्ञ में दिये गये हव्य पदार्थ को अपने में ग्रहण करते हैं ॥९॥

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।
आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥१०

पदार्थः— (**दिवः**) द्यु लोक के (**धर्तारः**) धारयिता (**ऋभवः**) किरणें (**सुहस्ता**) उत्तम गति वाले देवगण (**महिषस्य**) महान् (**तन्यतोः**) गर्जन के करने वाले (**वातापर्जन्या**) वात और पर्जन्य, (**आपः**) जलें (**ओषधीः**) ओषधियें (**नः**) हमारी (**गिरः**) वेदमयी वाणियों को (**प्रतिरन्तु**) सर्वत्र फैलावें, (**रातिः**) दाता (**भगः**) ऐश्वर्य युक्त (**अर्यमा**) यज्ञ और (**वाजिनः**) अग्नि, वायु और सूर्य (**मे**) मेरे (**हवम्**) प्रशंसा को (**यन्तु**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—द्युलोक की धारयिता प्रकाश किरणें, उत्तम गतियों वाले इन्द्र आदि देव, गर्जनावाले वायु और मेघ जल, ओषधियें हमारी वेदमयी वाणी को सर्वत्र फैलावें। ऐश्वर्य और देने की शक्ति वाले यज्ञ, अग्नि, वायु और सूर्य मेरे प्रशंसा-वचन को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

समुद्रः सिन्धू रजो अन्तरिक्षमज एकपात्तनयित्नुरर्णवः ।
अहिर्बुध्न्यः शृणवद्वचांसि मे विश्वे देवास उत सूरयो मम ॥११॥

पदार्थः (**समुद्रः**) समुद्र, (**सिन्धुः**) स्यन्दनवती नदी, (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्षस्थ (**रजः**) लोक (**अज एक पात्**) सूर्य, (**अर्णवः**) जलयुक्त (तनयुत्नुः) माध्यमिका वाक् (**अहिर्बुध्न्यः**) अन्तरिक्षस्थ मेघ, ये (**विश्वे देवासः**) विश्वदेव (**मे**) मेरे (**वचांसि**) वचनों को (**शृणवत्**) सुनाने के साधन बनें (**उत**) और (**सूरयः**) विद्वान् लोग (**मम**) मेरे वचनों को सुनें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः समुद्र, सिन्धु, अन्तरिक्ष लोक, सूर्य, जल युक्त माध्यमिका वाक्, अन्तरिक्षस्थ मेघ और विश्वेदेव मेरे वचनों को सुनाने के माध्यम बनें और विद्वज्जन भी मेरे वचन को सुनें ॥११॥

स्याम॑ वो॒ मन॑वो दे॒ववी॑तये॒ प्राञ्चं॑ नो य॒ज्ञं प्रण॑यत साधु॒या ।
आदि॑त्या॒ रुद्रा॒ वस॑वः॒ सुदा॑नव इ॒मा ब्रह्म॑ श॒स्यमा॑नानि जिन्वत ॥१२॥

पदार्थः-- हे देव=विद्वानो ! (**मनवः**) हम मनुष्य (**वः**) आपके (**देववीतये**) यज्ञ के (**स्याम**) होवें, (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**साधुया**) कल्याणयुक्त (**प्राञ्चम्**) सम्पन्न (**प्रणयत**) करें । (**आदित्याः**) हे आदित्य संज्ञक विद्वानो (**रुद्राः**) हे रुद्र संज्ञक विद्वानो (**वसवः**) हे वसु संज्ञक विद्वानो ! (**सुदानवः**) हे उत्तम विद्यादाता लोग (**इमा**) इन (**शस्यमानानि**) उच्चारण किये जा रहे (**ब्रह्म**) वेद मन्त्रों को (**जिन्वत**) प्रेम से सुनें ।

भावार्थः-- हे विद्वानो ! आप के उपदेशानुसार यज्ञ के हम मनुष्य कर्त्ता हों । हमारे यज्ञ को आप लोग अपनी योग्यता से संपन्न और कल्याण कारक बनावें, हे आदित्य, हे रुद्र, हे वसु, हे सुदानु हमारे इन मन्त्रों को आप सुनें ॥१२॥

दैव्या॒ होता॑रा प्रथ॒मा पु॒रोहि॑त ऋ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑मि साधु॒या ।
क्षेत्र॑स्य॒ पतिं॒ प्रति॑वेशमीमहे॒ विश्वा॑न्दे॒वाँ अ॒मृताँ॒ अप्र॑युच्छतः ॥१३॥

पदार्थः--(**प्रथमा**) मुख्य (**पुरोहिता**) पुरोहित (**दैव्या होतारा**) दैव्य होता अग्नि और आदित्य को हवि आदि से तृप्त करता हूँ, (**ऋतस्य**) यज्ञ के (**पन्थाम्**) मार्ग का (**साधुया**) निर्विघ्न (**अन्वेमि**) अनुगमन करता हूं । (**प्रतिवेशम्**) अत्यन्त समीप रहने वाले, (**क्षेत्रस्य**) शरीर के (**पतिम्**) स्वामी आत्मा को प्राप्त करता हूं, तथा (**अप्रयुच्छतः**) प्रमाद न करने वाले सदा कार्य में तत्पर (**अमृतान्**) अमृत रूप (**विश्वान्**) समस्त (**देवान्**) विद्वानों से (**ईमहे**) ज्ञान की याचना करता हूँ ।

भावार्थ--मुख्य और पुरोगामी अग्नि और आदित्य को हवि आदि से युक्त करता हूँ । यज्ञ के मार्ग का विना विघ्न के अनुगमन करता हूँ । अपने से अत्यन्त समीपवती आत्मा को प्राप्त करता हूँ और सदा कार्य में तत्पर अमृत रूप विद्वानों से ज्ञान ग्रहण के लिए याचना करता हूं ॥१३॥

Scanned by CamScanner

वसिष्ठासः पितृवद्वाचमक्रत देवाँ ईळाना ऋषिवत् स्वस्तये ।

प्रीताइव ज्ञातयः काममेत्यास्मे देवासोऽव धूनुता वसु ॥१४॥

पदार्थः—(**देवान्**) देवों की (**ईडानाः**) स्तुति करते हुए (**वसिष्ठासः**) ऋत्विग् लोग (**पितृवत्**) कर्मकाण्डी लोगों की भांति (**ऋषिवत्**) मन्त्रद्रष्टा लोगों की भांति (**स्वस्तये**) कल्याणार्थ (**वाचम्**) मंत्रमयी वाणी का (**अक्रत**) उच्चारण करते हैं, (**देवासः**) देव लोग (**प्रीताः**) प्रसन्न हुए (**ज्ञातयः**) वा बन्धुओं की (**इव**) भांति (**अस्मे**) हमें (**कामम्**) यथेच्छ (**वसु**) धन को (**आ अव धूनुता**) प्रदान करते हैं ।

भावार्थः—देवों की स्तुति करते हुए ऋत्विग् लोग कर्म में निपुण लोगों की भांति, मंत्रद्रष्टा की भांति, कल्याणार्थ मन्त्रमयी वाणी का प्रयोग करते हैं । ये देवजन प्रसन्न हुए बन्धु के समान हम को यथेच्छ धन प्रदान करते हैं ॥१४॥

देवान्वसिष्ठो अमृतान्ववन्दे ये विश्वा भुवनाभि प्रतस्थुः ।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥

पदार्थः—(**ये**) जिन देवों ने (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**अभिप्रतस्थुः**) धारण किया है उन (**अमृतान्**) अमरण धर्मा (**देवान्**) दिव्य शक्तियों की यज्ञ में (**वसिष्ठः**) ज्ञानी पुरोहित (**ववन्दे**) वन्दना करता है (**ते**) वे (**नः**) हमें (**उरुगायम्**) प्रशस्त धन को (**अद्य**) अभी (**रासन्ताम्**) देवें, हे विद्वानो ! (**यूयम्**) आप लोग (**नः**) हमारी (**सदा**) सदा (**स्वस्तिभिः**) कल्याणदायी साधनों द्वारा (**पात**) रक्षा करो ।

भावार्थः—जिन दिव्यशक्तियों ने समस्त लोकों को धारण कर रखा है उन अमरणधर्मा दिव्य शक्तियों की यज्ञ में ज्ञानी पुरोहित वन्दना करता है । वे हमें प्रशस्त धन देवें । हे विद्वानो ! आप लोग हमारी सदा कल्याणकारक साधनों से रक्षा करें ।

यह दशम मण्डल में छयासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—६७

ऋषिः १—१२ अयास्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१ विराट्-त्रिष्टुप् । २—७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ८–१०, १२ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इमां धियं सप्तशीर्ष्णीं पिता न ऋतप्रजातां बृहतीमविन्दत् ।
तुरीयं स्विज्जनयद्विश्वजन्योऽयास्य उक्थमिन्द्राय शंसन् ॥१॥

पदार्थः—विश्वहित का संपादक अचल संकल्प यजमान कहता है –(**नः**) हमारे (**पिता**) पिताने (**बृहतीम्**) महती (**सप्तशीर्ष्णीम्**) सप्त छन्दों वाली (**ऋतप्रजाताम्**) यज्ञ और ज्ञान के लिए उत्पन्न अथवा परमेश्वर से उत्पन्न (**इमाम्**) इस (**धियम्**) बुद्धि और क्रिया को (**अविन्दत**) प्राप्त किया है, मैं (**अयास्यः**) अचलमति (**विश्वजन्यः**) विश्व का हितैषी (**इन्द्राय**) भगवान् के लिए उसके (**उक्थम्**) स्तोत्र को (**शंसन्**) गाता हुआ इसको (**तुरीयम्-स्वित्**) चतुर्थ पीढी को भी (**जनयत्**) प्रेरणा देता हूँ ।

भावार्थः—विश्वहित का साधक अचलमति यजमान कहता है कि हमारे पिता, प्रपिता ने सात छन्दों से युक्त, यज्ञ से उत्पन्न जिस महती बुद्धि और क्रिया की साधना की है, मैं अचलमति विश्वहित का साधक यजमान भगवान् के स्तोत्र को गाता हुआ चतुर्थ पीढ़ी को भी इसका उपदेश देता हूँ ॥१॥

ऋतं शंसन्त ऋजु दीध्याना दिवस्पुत्रासो असुरस्य वीराः ।
विप्रं पदमङ्गिरसो दधाना यज्ञस्य धाम प्रथमं मनन्त ॥२॥

पदार्थः—(**ऋतम्**) ज्ञान एवं कर्म और सत्य की (**शंसन्तः**) प्रशंसा करते हुए अथवा उपदेश करते हुए (**ऋजु**) सरल सत्य मार्ग का (**दीध्यानाः**) ध्यान रखते हुए (**दिवः**) ज्ञान के (**पुत्रासः**) पुत्र अर्थात् अत्यन्त ज्ञानी (**असुरस्य**) यज्ञाग्नि के (**वीराः**) वीर (**अङ्गिरसः**) तपस्वी अग्निविद्या विद्याविद् याज्ञिक (**विप्रम्**) मेधावी के (**पदम्**) पद को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**यज्ञस्य**) यज्ञ के (**धाम**) कर्म को (**प्रथमम्**) प्रथम (**मनन्त**) मानते हैं ।

भावार्थः— ज्ञान, कर्म, एवं सत्य की उपदेशना करते हुए, सरल सत्य मार्ग का ध्यान रखते हुए, ज्ञान के पुत्र=अत्यन्त ज्ञानी, यज्ञाग्नि के वीर

Scanned by CamScanner

रक्षक तपस्वी अग्निविद्याविद् याज्ञिक मेधावी के पद को धारण करते हुए यज्ञ के कर्म को प्रथम स्थान देते हैं ॥२॥

हंसैरिव सखिभिर्वावदद्भिरश्मन्मयानि नहना व्यस्यन् ।
बृहस्पतिरभिकनिक्रदद्गा उत प्रास्तौदुच्च विद्वाँ अगायत् ॥३॥

पदार्थः—(**हंसैः इव**) हंसों के समान (**सखिभिः**) मित्रभूत (**वावदद्भिः**) स्तुति करते हुए स्तोताओं के साथ (**अश्ममन्यानि**) पाषाणमय (**वहना**) बंधनों के समान अनेक बंधनों को (**वि अस्यन्**) शिथिल करता हुआ (**बृहस्पतिः**) वेदज्ञ महाविद्वान् (**गाः**) वेद वाणियों का (**अभि कनिक्रदत्**) उच्चारण करता है, (**उत**) और (**विद्वान्**) यज्ञ और वेद के मर्म को जानने वाला वह (**प्रस्तौत्**) सामगान का प्रस्ताव करता है (**उत् च**) और (**अगायत्**) गाता है ।

भावार्थः— हंसों के समान मधुरवाणी से स्तुति करते हुए स्तोताओं के साथ होकर पाषाणवत् कठिन बंधनों के समान बंधनों को शिथिल कर वेदज्ञ महाविद्वान् वेदवाणी का पाठ करता है और यज्ञ एवं वेद के मर्म का जानने वाला वह सामगान का प्रस्ताव करता है और गाता है ॥३॥

अवो द्वाभ्यां पर एकया गा गुहा तिष्ठन्तीरनृतस्य सेतौ ।
बृहस्पतिस्तमसि ज्योतिरिच्छन्नुदुस्रा आकर्वि हि तिस्र आवः ॥४॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) वाणी का पालक विद्वान् (**गुहा**) अन्तःकरण रूपी गुफा में (**तिष्ठन्तीः**) स्थित (**गाः**) परा, पश्यन्ती, मध्यमा वाणी को जो (**द्वाभ्याम्**) मुख और कण्ठ से (**अवः**) नीचे तथा (**एकया**) नाभि से (**परः**) परे हैं और (**अनृतस्य**) असत्यरूपी अन्धकार के (**सेतौ**) सेतु में हैं, इनको प्रकट करता है (**तमसि**) अन्तःकरण के अन्धकार में (**ज्योतिः**) प्रकाश को (**इच्छन्**) चाहता हुआ (**उस्राः**) प्रकाश की रेखाओं को (**उत् आ अकः**) करता है तथा (**हि**) निश्चय से ही (**तिस्रः**) तीनों को (**वि आवः**) खोलता है ।

भावार्थः वेदवाणी का ज्ञाता विद्वान् अन्तःकरण में छिपी और व्यवहार में न आने वाली परा, पश्यन्ती और मध्यमा वाणी को जो कि मुख और कण्ठ से नीचे नाभि के परे असत्यरूपी अन्धकार के सेतु भूत स्थान में हैं उनको प्रकट करता है । अन्धकार में ज्ञान के प्रकाश की इच्छा करता हुआ वह ज्ञान प्रकाश की किरणों को उत्पन्न कर तीनों को खोलता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

विभिद्या पुरं शयथेमपाचीं निस्त्रीणि साकमुदधेरकृन्तत् ।
बृहस्पतिरुषसं सूर्यं गामर्कं विवेद स्तनयन्निव द्यौः ॥५॥

पदार्थः – वह (**बृहस्पतिः**) अग्नि (**शयथा**) स्थिति के स्थान अन्तरिक्ष में (**अपाचीम्**) पराङ्मुखी (**पुरम्**) पूरक (**इम्**) जल को (**विभिद्य**) भेदन करके (**उदधेः**) मेध के (**साकम्**) साथ ही (**त्रीणि**) तीन (**उषसम्**) उषा, (**सूर्यम्**) सूर्य, (**गाम्**) किरणों को (**निः अकृन्तत्**) निर्गत करता है, यह (**स्तनयन्**) गर्जते हुए (**द्यौः**) अन्तरिक्ष के (**इव**) समान (**अर्कम्**) प्रशंसनीय सूर्य को (**विवेद**) लब्ध करता है ।

भावार्थः—अग्नि अन्तरिक्ष में पराङ्मुख पूरक जलों के ओस रूपी छादन को भेदन करके उषस् सूर्य और किरणों को साथ ही निर्गत करता है । वह गर्जते अन्तरिक्ष के समान प्रशंसनीय सूर्य को लब्ध करता है ॥५॥

इन्द्रो वलं रक्षितारं दुघानां करेणेव वि चकर्ता रवेण ।
स्वेदाञ्जिभिराशिरमिच्छमानोऽरोदयत्पणिमा गा अमुष्णात् ॥६॥

पदार्थः –(**इन्द्रः**) वायु अथवा सूर्य (**दुघानाम्**) जल को दोहन करने वाली (**गवाम्**) किरणों के (**रक्षितारम्**) छिपा रखने वाले (**वलम्**) मेघ के अन्धकार को (**करेण इव**) कर के समान (**रवेण**) शब्द से, (**वि चकर्त**) काटता है, (**स्वेदाञ्जिभिः**) जल के प्रतिश्यायों को क्षरण करने वाले मरुतों के साथ (**आशिरम्**) सहयोग वा संयोग को (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**पणिम्**) मेघ को (**अरोदयत्**) नष्ट करता है (**गाः**) छिपी किरणों को (**आ अमुष्णात्**) हर लेता है ।

भावार्थः—वायु अथवा सूर्य जल को दोहन करने वाली किरणों को छिपाकर रखने वाले मेघान्धकार को करके समान शब्द से काटता है और मरुतों के साथ संयोग को चाहता हुआ मेघ को नष्ट करता और छिपी किरणों को हर लेता है ॥६॥

स ईं सत्येभिः सखिभिः शुचद्भिर्गोधायसं वि धनसैरदर्दः ।
ब्रह्मणस्पतिर्वृषभिर्वराहैर्घर्मस्वेदेभिर्द्रविणं व्यानट् ॥७॥

पदार्थः—(**सः**) वह बृहस्पति=वायु वा सूर्य (**सत्येभिः**) यथार्थ बल वाले (**सखिभिः**) सखाभूत (**शुचद्भिः**) दीप्यमान (**धनसैः**) धन के दाता मरुतों के

साथ (गोधायसम्) किरणों को छिपाने वाले (इम) इस (वलम्) मेघान्धकार को (वि अददः) विदारित करता है, (ब्रह्मणः पतिः) वह बृहस्पति=वायु वा सूर्य (वृषभिः) वर्षा करने वाले (धर्मस्वेदिभिः) बूंदों को क्षरण करने वाले (वराहैः) जलाहारी मेघों के द्वारा (द्रविणम्) धन आदि को (व्यानट्) प्राप्त करता है।

भावार्थः– वह वायु वा सूर्य मरुतों के साथ किरणों को छिपाने वाले इस मेघान्धकार को विदारित करता है। वह अन्नादि का स्वामी वर्षा करने वाले बूंदों की वर्षा करने वाले मेघों के द्वारा अन्न धन आदि को प्राप्त करता है ॥७॥

ते सत्येन मनसा गोपतिं गा इयानास इषणयन्त धीभिः ।
बृहस्पतिर्मिथो अवद्यपेभिरुदुस्रिया असृजत स्वयुग्भिः ॥८॥

पदार्थः-- (गाः) किरणों को (इयानासः) प्राप्त करते हुए (सत्येन) यथार्थ (मनसा) बल से युक्त (ते) वे मरुद्गण (धीभिः) अपने कर्मों से सूर्य को (गोपतिम्) किरणों का स्वामी करने की (इषणयन्तः) इच्छा करते हैं। (बृहस्पतिः) सूर्य (मिथोऽवद्यपेभिः) परस्पर अवद्य=विघ्नकारी मेघों से रक्षा करने वाले स्वयुग्भिः) स्वयं युक्त मरुतों से (उस्रियाः) प्रकाशमान किरणों को (उदसृजत्) बाहर निकालता है।

भावार्थः—किरणों को प्राप्त करते हुए यथार्थ बल से युक्त मरुद्गण अपने कर्मों द्वारा सूर्य को किरणों का स्वामी बनाना चाहते हैं। सूर्य मेघों से किरणों को बचाने वाले मरुतों के द्वारा प्रकाशमान किरणों को बाहर निकालता है ॥८॥

तं वर्धयन्तो मतिभिः शिवाभिः सिंहमिव नानदतं सधस्थे ।
बृहस्पतिं वृषणं शूरसातौ भरेभरे अनु मदेम जिष्णुम् ॥९॥

पदार्थः (सधस्थे) सहस्थान अन्तरिक्ष में (सिंहम्) सिंह के (इव) समान (नानदतम्) शब्दायमान (वृषणम्) वर्षा करने वाले (जिष्णुम्) जयनशील (तम्) उस (बृहस्पतिम्) वायु को (वर्धयन्तः) हव्य आदि से बढाते हुए हम शूरों से किये जाने वाले (भरे भरे) यज्ञों में (शिवाभिः) कल्याणकारी (मतिभिः) कर्मों से (अनुमदेम) तृप्त करें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः -अन्तरिक्ष में सिंह के समान गर्जने वाले वर्षा के हेतुभूत जयनशील वायु को हवि आदि से बढ़ाते हुए हम शूरों द्वारा किये जाने वाले यज्ञों में कल्याणकारी कर्मों से तृप्त करें ॥९॥

यदा वाजमसनद्विश्वरूपमा द्यामरुक्षदुत्तराणि सद्म ।
बृहस्पतिं वृषणं वर्धयन्तो नाना सन्तो बिभ्रतो ज्योतिरासा ॥१०॥

पदार्थः - वह बृहस्पति=सूर्य (**यदा**) जब (**वाजम्**) वर्षा आदि के द्वारा लोगों को (**विश्वरूपम्**) नानारूप (**वाजम्**) अन्न आदि धन को (**असनत्**) देता है (**द्याम्**) अन्तरिक्ष में (**आ अरुक्षत्**) ऊपर चढ़ता है (**उत्तराणि**) उत्तर-वर्ती (**सद्म**) स्थानों पर चढ़ता है तब (**वृषणम्**) बलशाली (**बृहस्पतिम्**) सूर्य को (**आसा**) मुख से (**ज्योतिः**) ज्योति को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**नाना**) विविध होते हुए देव लोग=किरणें (**वर्धयन्तः**) बढाती हुई होती हैं ।

भावार्थः—जब सूर्य वर्षा आदि के द्वारा नाना प्रकार के अन्न आदि को प्रजा को देता है और अन्तरिक्ष में ऊपर की ओर आरोहण करता और उत्तरायण की तरफ चढ़ता है तब सूर्य-किरणें मुख में तेज को धारण किये हुए इसे बढ़ाती हैं ॥१०॥

सत्यामाशिषं कृणुता वयोधै कीरिं चिद्ध्यवथ स्वेभिरेवैः ।
पश्चा मृधो अप भवन्तु विश्वास्तद्रोदसी शृणुतं विश्वमिन्वे ॥११॥

पदार्थः—हे देवो=विद्वानो ! आप (**वयोधै**) अन्न की प्राप्ति के लिए (**आशिषम्**) अपने आशीर्वादों को (**सत्याम्**) सत्य (**कृणुत**) करो (**स्वेभिः**) अपने (**एवैः**) ज्ञान और गमन आदि से (**हि**) निश्चय (**कीरिम्**) स्तोता की (**चित्**) भी (**अवथ**) रक्षा करो, (**पश्चा**) पश्चात् (**विश्वाः**) सारे (**मृधः**) दुःख और बुराइयें (**अप भवन्तु**) दूर होवें, (**तत्**) हमारे उन वचनों को (**विश्व-मिन्वे**) सबको प्रीति करने वाले (**रोदसी**) हे अध्यापक उपदेशक ! आप (**शृणुतम्**) सुनें ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप अन्न आदि की प्राप्ति के लिए अपने आशीर्वचनों को सत्य सिद्ध करें । अपने ज्ञान और गमन आदि से स्तोता की रक्षा करें । पश्चात् समस्त दुःख और बुराइयां दूर होवें । हे सबके प्रीति करने वाले अध्यापक उपदेशक ! आप हमारे वचनों को सुनें ॥११॥

Scanned by CamScanner

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॒ वि मू॒र्धान॑मभिनदर्बु॒दस्य॑ ।
अह॒न्नहि॒मरि॑णात्स॒प्त सिन्धू॑न्दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥१२॥

पदार्थः—(इन्द्रः) सूर्य (मह्ना) अपने सामर्थ्य से (महतः) महान् (अर्णवस्य) जल वाले (अर्बुदस्य) मेघ के (मूर्धानम्) शिर को (वि अभिनत्) विच्छिन्न करता है, (अहिम्) मेघ को (अहन्) मारता है (सप्तसिन्धून्) सर्पण-शील और स्यन्दमान जलों को (अरिणात्) बहाता है ये (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक (नः) हमारी (देवैः) दिव्य गुणों द्वारा (प्रावतम्) रक्षा करते हैं।

भावार्थः—सूर्य अपनी सामर्थ्य से महान्, जलयुक्त मेघ के शिर को काटता है, मेघ को मारता है, सर्पणशील और बहने वाले जलों को प्रवाहित करता है। द्यु और पृथिवी लोक अपने गुणों और क्रियाओं से हमारी रक्षा करते हैं ॥१२॥

यह दशम मण्डल में सड़सठवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ६८

ऋषिः—१—१२ अयास्यः ॥ देवता—बृहस्पतिः ॥ छन्दः—१, १२ विराट्त्रिष्टुप् । २, ८—११ त्रिष्टुप् । ३—७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

उ॒द॒प्रुतो॒ न वयो॒ रक्ष॑माणा॒ वाव॑दतो अ॒भ्रिय॑स्येव॒ घोषाः॑ ।
गि॒रि॒भ्रजो॒ नोर्मयो॒ मद॑न्तो॒ बृह॒स्पति॑म॒भ्य१॒॑र्का अ॑नावन् ॥१॥

पदार्थः—(उदप्रुतः) जल पर तैरने वाले (वयः) पक्षियों से सस्य की (रक्षमाणाः) रक्षा करने वाले किसानों के (न) समान (वावदतः) पुनः पुनः शब्द करती हुई (अभ्रियस्य) मेघस्थ विद्युत् के (घोषाः) शब्दों के (इव) समान (गिरिभ्रजः) मेघों से झरने वाली (ऊर्मयः) उर्मियों के (न) समान (अर्काः) स्तोता लोग (मदन्तः) प्रसन्न होते हुए (बृहस्पतिम्) ब्रह्माण्ड और वेदवाणी के स्वामी प्रभु की (अभि अनावन्) स्तुति करते हैं।

भावार्थः—जल पर तैरने वाले पक्षियों में सस्य की रक्षा करने वाले किसान के समान, वार-वार गर्जने वाली मेघस्थ विद्युत् के घोष के समान, मेघों से च्युत जल की उर्मियों के समान स्तोता जन वेदवाणी और महान् ब्रह्माण्डों के स्वामी परमेश्वर की हर्षित हो स्तुति करते हैं ॥१॥

सं गोभिराङ्गिरसो नक्षमाणो भगइवेदर्यमणं निनाय।
जने मित्रो न दम्पती अनक्ति बृहस्पते वाजयाशूँरिवाजौ ॥२॥

पदार्थः—(**आंगिरसः**) अंगारों का पुत्र=अंगारमय वृहस्पति=सूर्य (**नक्षमाणः**) प्रकाश से व्याप्त करता हुआ (**भग इव इत्**) भग=प्रातःकालिक दिन भाग के समान (**अर्यमणम्**) रात्रि के पूर्व होने वाले सन्नाटे को (**गोभिः**) किरणों से (**संनिनाय**) संयुक्त करता है। (**मित्रः**) मित्र के (**न**) समान (**जने**) जन-समुदाय में पति-पत्नी को (**अनक्ति**) संगत करता है, (**बृहस्पते**) यह सूर्य (**आजौ**) संग्राम में (**आशून्**) शीघ्रगामी अश्वों के समान अपनी किरणों को (**वाजय**) गतिमान करता है।

भावार्थः—अङ्गारमय यह सूर्य अपने प्रकाश से दिशाओं को व्यापन करता हुआ दिन के प्रथम भाग के समान ही रात्रि के सन्नाटे को किरणों से संयुक्त करता है। वह मित्र के समान जन समुदाय में पति-पत्नी को भी संयुक्त करता है। रात्रि होने पर इन्हें भी संयुक्त=सहयुक्त करता है। यह सूर्य संग्राम में शीघ्रगामी घोड़ों के समान अपनी किरणों को गतिमान् करता है ॥२॥

साध्वर्या अतिथिनीरिषिराः स्पार्हाः सुवर्णा अनवद्यरूपाः।
बृहस्पतिः पर्वतेभ्यो वितूर्या निर्गा ऊपे यवमिव स्थिविभ्यः ॥३॥

पदार्थः—(**साध्वर्याः**) उत्तम जलों को लाने वाली, (**अतिथिनीः**) निरन्तर गमन वाली, (**इषिराः**) इषिर (**स्पार्हाः**) स्पृहणीय, (**सुवर्णाः**) अच्छे वर्णों वाली, (**अनवद्यरूपा**) शुद्ध रूपों वाली इन (**गाः**) किरणों को (**पर्वतेभ्यः**) मेघान्धकारों से (**वितूर्य**) निकालकर (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**स्थिविभ्यः**) कुसीदी लोगों से (**यवम् इव**) यव आदि के समान (**ऊपे**) अन्य वायु आदि देवों के समीप (**निः**) निर्गत कर देता है।

भावार्थः—उत्तम जलों को लाने वाली, निरन्तर गमनशील, इषिर, स्पृहणीय, अच्छे रंगों वाली, शुद्ध रूपों वाली किरणों को मेघान्धकार से

Scanned by CamScanner

सूर्य वायु निकालकर देवों के समीप उसी प्रकार ला देता है जिस प्रकार सूदखोरों अथवा उधार पर देने वालों से यव आदि अनाज को लाकर किसान बोते हैं ॥३॥

आप्रुषायन्मधुन ऋतस्य योनिमवक्षिपन्नर्क उल्कामिव द्योः ।
बृहस्पतिरुद्धरन्नश्मनो गा भूम्या उद्नेव वि त्वचं बिभेद ॥४॥

पदार्थः– (**मधुना**) जल से पृथिवी को (**आप्रुषायन्**) सिक्त करता हुआ (**ऋतस्य** , जल के (**योनिम्**) स्थान मेघ को (**अवक्षिपन्**) बिखेरता हुआ (**अर्कः**) प्रशस्त (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**द्योः**) द्युलोक से (**उल्कामिव**) उल्का के समान (**अश्मनः**) व्याप्त मेघ से (**गाः**) किरणों को (**उद्धरन्**) निकालता हुआ (**उद्ना**) वृष्टि जल के (**इव**) समान (**भूम्याः**) भूमि के (**त्वचम्**) ऊपर की छाल को (**बिभेद**) छिन्न-भिन्न करता है ।

भावार्थः—जल से पृथिवी को सिक्त करता हुआ, मेघ को बिखेरता हुआ, प्रशस्त सूर्य द्युलोक से उल्का के समान, घिरे मेघ से किरणों को निकालता हुआ वृष्टि जल के समान भूमि के ऊपर पड़ी पपड़ी को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥४॥

अप ज्योतिषा तमो अन्तरिक्षादुद्नः शीपालमिव वात आजत् ।
बृहस्पतिरनुमृश्या वलस्याभ्रमिव वात आ चक्र आ गाः ॥५॥

पदार्थः—(**उद्नः**) पानी से (**शीपालम्**) शैवाल का (**वातः इव**) वायु की भांति (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**ज्योतिषा**) ज्योति से (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (**तमः**) अन्धकार को (**अप आजत्**) दूर करता है, (**अभ्रम्**) मेघ को (**वातः इव**) वायु की भांति (**अनुमृश्य**) सम्पर्क करके (**वलस्य**) मेघान्धकार से (**गाः**) किरणों को (**आ आ चक्रे**) चारों तरफ प्रकट कर देता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार वायु पानी से शैवाल=काई को हटा देता है उसी प्रकार सूर्य अपनी ज्योति से अन्तरिक्ष से अन्धकार को दूर फेंकता है । वह मेघ से किरणों को उसी प्रकार सब तरफ बिखेर कर फैला देता है जैसे वायु मेघ को फैला देता है ॥५॥

यदा वलस्य पीयतो जसुं भेद्बृहस्पतिरग्नितपोभिरर्कैः ।
दद्भिर्न जिह्वा परिविष्टमाददाविर्निधीँरकृणोदुस्रियाणाम् ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः--(**बृहस्पतिः**) सूर्य (**अग्नितपोभिः**) अग्नि के ताप वाले (**अर्कैः**) किरण तेजों से (**यदा**) जब (**पीयतः**) जल को पीये हुए (**वलस्य**) मेघ के (**जसुम्**) बल को वा अदन शक्ति को (**भेदः**) उसी प्रकार भेदन करता है (**न**) जिस प्रकार (**जिह्वा**) जीभ (**दद्भिः**) दांतों से (**परिविष्टम्**) खाये हुए भक्ष्य को (**आदत्**) खाती है, तब (**उस्रियाणाम्**) किरणों के समान (**निधीन्**) समूह को (**आविः**) आविष्कृत=प्रकट कर देता है।

भावार्थः—जिस प्रकार जिह्वा निगले पदार्थ को दांतों से खा जाती है उसी प्रकार जब सूर्य जल को पीये हुए मेघ के बल को अपने अग्नि के तापयुक्त तेजों से भेदन कर देता है तब किरणों के समूह को वह आविष्कृत=प्रकट कर देता है ॥६॥

बृहस्पतिरमत हि त्यदासां नाम स्वरीणां सदने गुहा यत्।
आण्डेव भित्वा शकुनस्य गर्भमुदुस्रियाः पर्वतस्य त्मनाजत् ॥७॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) सूर्य (**गुहा**) गूढ (**सदने**) स्थान अन्तरिक्ष में (**स्वरीणाम्**) मेघों के गर्जन रूपी शब्दों को करती हुई (**आसाम्**) इन किरणों (**त्यत्**) उस (**नाम**) तेज और नाम को (**अमत**) स्वभाव से संपृक्त कर लेता है (**यत्**) जिस कारण से उस समय (**पर्वतस्य**) मेघ के अन्दर स्थित **उस्रियाः**) प्रकाशमान किरणें (**त्मना**) अपने आप ही (**भित्वा**) मेघ का भेदन कर (**उत् आजत्**) उद्गत होती हैं (**इव** ; जिस प्रकार (**शकुनस्य**) पक्षी के (**आण्डानि**) अण्डों को (**भित्वा**) भेदन कर (**गर्भम्**) बच्चा बाहर आता है।

भावार्थः—सूर्य मेघ की गूढ गुफा अन्तरिक्ष में मेघों द्वारा गर्जन कराती हुई इन किरणों के प्रभाव को स्वभाव से संपृक्त कर लेता है। वे मेघान्तर्वर्त्ती किरणें स्वयं ही मेघ को भेदन कर उसी प्रकार बाहर आ जाती हैं जिस प्रकार पक्षी के अण्डे को फोड़कर बच्चा बाहर आ जाता है ॥७॥

अश्नापिनद्धं मधु पर्यपश्यन्मत्स्यं न दीन उदनि क्षियन्तम्।
निष्टज्जभार चमसं न वृक्षाद् बृहस्पतिर्विरवेणा विकृत्य ॥८॥

पदार्थः—(**बृहस्पतिः**) वायु (**दीने**) शुष्क (**उदनि**) जल में (**क्षियन्तम्**) बसती हुई (**मत्स्यम्**) मछली के (**इव**) समान (**अश्ना**) मेघ से (**पिनद्धम्**) ढके (**मधु**) जल को (**परि अपश्यत्**) सर्वत्र पाता है (**तत्**) उसे (**विरवेण**)

शब्दों से (विकृत्य) काट कर (वृक्षात्) वृक्ष से (चमसम् न) सोम पात्र के समान (निः जभार) निकाल देता है ।

भावार्थः—सूखे जल में स्थित मछली की भांति मेघ में छिपे जल को सूर्य प्राप्त कर लेता है और जिस प्रकार वृक्ष से काटकर सोमपात्र बनाया जाता है उसी प्रकार मेघ को काटकर जल को हरता है ॥८॥

सोषामविन्दत्स स्व१: सो अग्निं सो अर्केण वि बबाधे तमांसि ।

बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार ॥९॥

पदार्थः—(सः) वह (बृहस्पतिः) वायु (उषाम्) उषा को (अविन्दत्) प्राप्त करता है, (सः) वह (स्वः) आदित्य को, (सः) वह (अग्निम्) अग्नि को (अविन्दत्) प्राप्त करता है, (सः हि) वह ही (अर्केण) तेज से (तमांसि) अन्धकारों को (विबाधे) हटाता है, वह (गोवपुषः) किरणों से घिरे शरीर वाले (वलस्य) मेघान्धकार की (मज्जानम्) मज्जा के समान जलतत्त्व को (पर्वणः न) एक-एक पोरु के समान (निः जभार) निकालता है ।

भावार्थः—वह वायु उषा को प्राप्त करता है, आदित्य को प्राप्त करता है, और अग्नि को प्राप्त करता है । तथा किरणों से घिरे मेघ की मज्जा को पोरु-पोरु के समान निकालना है ॥९॥

हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद्वलो गाः ।

अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात्सूर्यामासा मिथ उच्चरातः ॥१०॥

पदार्थः—(इव) यथा (हिमा) पाला वा तुषार से (पर्णा) कमल के पत्ते (मुषिता) चुरा लिए जाते हैं वैसे ही मेघान्धकार से (वनानि) किरणें आदि छिपाये जाते हैं । (बृहस्पतिना) सूर्य के आगमन से (वलः) मेघ (गाः) किरणों को (अकृपयत्) वापस करता है इस प्रकार वह (अनानुकृत्यम्) न अनुकरण करने योग्य (अपुनः) फिर न किया जाने वाला कर्म (चकार) करता है (सूर्यमासा) सूर्य और चन्द्रमा (मिथः) परस्पर दिन और रात्रि में (उत् चरातः) चलें (यात्) ऐसा किया ।

भावार्थः—जिस प्रकार हेमन्त का तुषार कमल के पत्तों को झाड़ देता है उसी प्रकार मेघान्धकार ने किरणों को चुरा लिया था । सूर्य के आगमन से मेघ इन किरणों को वापस कर देता है । यह ऐसा कार्य है

Scanned by CamScanner

जिसका न पुनरावर्तन और न अनुकरण हो । सूर्य और चन्द्रमा दिन और रात्रि से उदित होते हैं, ऐसा करता है ॥१०॥

अभि श्यावं न कृशनेभिरश्वं नक्षत्रेभिः पितरो द्यामपिंशन् ।
रात्र्यां तमो अदधुर्ज्योतिरहन्बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विददूगाः ॥११॥

पदार्थः—(**पितरः**) पालक देव गण (**कृशनेभिः**) सुवर्ण रंगों से (**श्यावम् न**) श्याववर्ण के घोड़े की भांति (**द्याम्**) द्युलोक को (**नक्षत्रेभिः**) नक्षत्रों से (**अपिंशन्**) दीप्त करते हैं, (**रात्र्याम्**) रात्रि में (**तमः**) अन्धकार को (**अदधुः**) रखा (**अहन्**) दिन में (**ज्योतिः**) प्रकाश को रखा । (**बृहस्पतिः**) सूर्य (**अद्रिम्**) मेघ को (**भिनद्**) विभेदन करता है और (**गाः**) किरणों को (**विदत्**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—पालक देवगण कृष्णवर्ण को जिस प्रकार सुवर्ण रंग के अलंकारों से सजाया जाता है उसी प्रकार द्युलोक को नक्षत्रों से दीप्तिमान् करते हैं । रात्रि में अन्धकार और दिन में प्रकाश रखते हैं । सूर्य मेघ का भेदन कर किरणों को प्राप्त करता है ॥११॥

इदमकर्म नमो अभ्रियाय यः पूर्वीरन्वानोनवीति ।
बृहस्पतिः स हि गोभिः सो अश्वैः स वीरेभिः स नृभिर्नो वयो धात् ॥

पदार्थः—(**अभ्रियाय**) मेघस्थ विद्युत् के लिए (**इदम्**) यह (**नमः**) आदर (**अकर्म**) हम प्रकट करते हैं (**यः**) जो बृहस्पति=वेद का विद्वान् (**पूर्वीः**) सनातन ऋचाओं को (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**आनोनवीति**) बोलता है (**सः**) वह (**बृहस्पतिः**) वेदवाणी का पालक ही (**गोभिः**) गायों से (**सः**) वह अश्वों, (**सः**) वह (**वीरेभिः**) वीरों (**सः**) वह (**नृभिः**) मनुष्यों से युक्त (**वयः**) अन्न को (**नः**) हमें (**धातु**) देवें ।

भावार्थः—मेघस्थ विद्युत् के लिए यह हमारा स्वीकृति वा प्रशंसा-वचन है । जो सनातन ऋचाओं को बोलता है और जानता है वह वेदवाणी का पालक विद्वान् हमें गौ, घोड़े, वीर और मनुष्यों से युक्त अन्न प्रदान करे ॥१२॥

यह दशम मण्डल में अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—६९

ऋषिः—१—१२ सुमित्रो वाध्र्यश्वः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २ विराड्जगती । ३, ७ त्रिष्टुप् । ४, ५, १२ निचृत्-त्रिष्टुप् । ६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ८, १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९, ११ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ निषादः । ३—१२ धैवतः ॥

भद्रा अग्नेर्वध्र्यश्वस्य संदृशो वामी प्रणीतिः सुरणा उपेतयः ।
यदीं सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

पदार्थः—(**वध्र्यश्वस्य**) बंधी किरणों वाले (**अग्नेः**) अग्नि के (**सदृशः**) दर्शनशक्तियां (**भद्राः**) कल्याणकारिणी होवें, (**प्रणीतिः**) उसकी नीति (**वामी**) कल्याणमयी हो, (**उपेतयः**) उसकी गतिविधि और व्यापार (**सुरणाः**) उत्तमता से रमणीय हों, (**यत्**) जब (**ईम्**) इस अग्नि को (**सुमित्राः**) उत्तम मित्रभूत (**विशः**) मनुष्य प्रजा (**अग्रे**) पहले (**इन्धते**) प्रदीप्त करते हैं तब यह **घृतेन**) घृत आदि से (**आहुतः**) हुत अग्नि (**दविद्युतत्**) अत्यन्त प्रदीप्त होता है, **(जरते)** स्तुत भी किया जाता है ।

भावार्थः—बंधे हुए प्रकाश किरणों से युक्त अग्नि की दर्शनशक्ति कल्याणकारिणी हो, उसके कार्य कल्याणमय हों । इसका समस्त व्यापार रमणीय हो । जब इस अग्नि को मित्रभूत मनुष्य प्रजा पहले प्रदीप्त करती है तब यह घृत सामग्री आदि से अन्तपर्यन्त प्रज्वलित होता है और स्तुत भी होता है ॥१॥

घृतमग्नेर्वध्र्यश्वस्य वर्धनं घृतमन्नं घृतम्वस्य मेदनम् ।
घृतेनाहुत उर्विया वि पप्रथे सूर्यइव रोचते सर्पिरासुतिः ॥२॥

पदार्थः—बंधे तेज वाले अग्नि का (**घृतम्**) घृत (**बर्धनम्**) बढ़ाने वाला है, (**घृतम्**) घृत उसका (**अन्नम्**) अन्न है, (**घृतम् उ**) घृत ही (**अस्य**) इसका (**मेदनम्**) पोषक है (**घृतेन** , घृत से (**आहुतः**) हुत (**अग्निः**) अग्नि (**उर्विया**) अधिक (**विपप्रथे**) विस्तार को प्राप्त होता है, (**सर्पिरासुति**) घी की आहुति दिया जाने वाला यह अग्नि (**सूर्य इव**) सूर्य के समान (**रोचते**) दीप्त होता है ।

भावार्थः -दृढ़ तेजस्क अग्नि का घृत बढ़ाने वाला है, घृत ही उसका

Scanned by CamScanner

अन्न, घृत ही उसका पोषक है। घृत से हुत वह अग्नि अत्यन्त विस्तार को प्राप्त होता है। घी की आहुति खाने वाला वह अग्नि सूर्य के समान दीप्त होता है ।।२।।

यत्ते मनुर्यदनीकं सुमित्रः समीधे अग्ने तदिदं नवीयः ।
स रेवच्छोच स गिरो जुषस्व स वाजं दर्षि स इह श्रवो धाः ।।३।।

पदार्थः— (**अग्ने ते**) इस अग्नि के (**यत्**) जिस (**अनीकम्**) रश्मि समूह को (**सुमित्रः**) उत्तम मित्र (**मनुः**) मेधावी मनुष्य (**समीधे**) भली प्रकार प्रज्वलित करता है (**तत्**) वह (**इदम्**) यह (**नवीयः**) नवीय है, (**स**) वह अग्नि (**रेवत्**) धनयुक्त की तरह (**शोच**) प्रज्वलित होता है, (**सः**) वह (**गिरः**) स्तुतियों को (**जुषस्व**) सेवन करता है, (**वाजम्**) शत्रु बल को (**दर्षि**) विदारित करता है (**सः**) वह (**इह**) हम में (**श्रवः**) अन्न को (**धाः**) देता है।

भावार्थः—इस अग्नि के रश्मि समूह को उत्तम मित्र मेधावी मनुष्य भली प्रकार जैसे प्रज्वलित करता है वह इसका नवीन रूप है, यह अग्नि धन युक्त हो जैसे इस प्रकार से प्रज्वलित होता है, वह स्तुतियों से भी युक्त होता है वह शत्रु बल को नष्ट करता है, और वह हम सबको अन्न आदि देता है ।।३।।

यं त्वा पूर्वमीळितो वध्र्यश्वः समीधे अग्ने स इदं जुषस्व ।
स नः स्तिपा उत भवा तनूपा दात्रं रक्षस्व यदिदं ते अस्मे ।।४।।

पदार्थः—(**यम्**) जिस (**त्वा**) इस अग्नि को (**पूर्वम्**) पहले (**ईडितः**) प्रशंसा किया हुआ (**वध्र्यश्वः**) संयतेन्द्रिय मनुष्य (**समीधे**) प्रज्वलित करता है (**सः**) वह अग्नि (**इदम्**) इस हवि को (**जुषस्व**) सेवन करता है (**सः**) वह (**नः**) हमारा (**स्तिपाः**) गृह का पालक (**भव**) होता है (**उत**) और (**तनूपाः**) अङ्गों की रक्षा करने वाला (**दात्रम्**) धन की (**रक्षस्व**) रक्षा करता है (**यद्**) जो (**इदम्**) यह (**ते**) इस अग्नि का है वह (**अस्मे**) हममें है।

भावार्थः—जिस इस अग्नि को प्रशंसित संयतेन्द्रिय मनुष्य प्रज्वलित करता है वह अग्नि उसकी इस प्रदत्त हवि का ग्रहण करता है। वह हमारे गृह का रक्षक है और हमारे अंगों का रक्षक है। वह धन की रक्षा करता है। वस्तुतः जो उसका है वह हमें ही प्राप्त होता है ।।४।।

Scanned by CamScanner

भद्रा द्युम्नी वाध्र्यश्वोत गोपा मा त्वा तारीदभिमातिर्जनानाम् ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनः सुमित्रः प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम ॥५॥

पदार्थः—(वाध्र्यश्वः) बंधे तेजा वाला यह अग्नि (द्युम्नी) अन्नवान् (उत) और (गोपाः) रक्षक (भद्रा) होता है (त्वा) इसे कोई भी (मा) नहीं (तारीत्) हानि पहुँचा सकता है क्योंकि यह (जनानाम्) लोगों का (अभिमाति) अभिभव करने वाला है, यह (शूर इव) बलवान् के समान (धृष्णुः) शत्रुओं का घर्षण कर्त्ता, (च्यवनः) च्यावयिता और (सुमित्रः) उत्तम मित्र है (वध्र्यश्वस्य) वद्धतेजस्क इस अग्नि के (नाम) विविध नाम और गुणों का मैं विद्वान् (प्र नु वोचम्) वर्णन करता हूँ ।

भावार्थः—तेजस्वी अग्नि अन्नोत्पादक और रक्षक है। उसको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता है क्योंकि वह लोगों को दबा देने वाला है। वह शत्रुओं का घर्षण करने वाला, च्युत करने वाला और अपना सबका मित्र है। मैं विद्वान् उसके विविध नामों और गुणों का वर्णन करता हूं ॥५॥

समज्र्या पर्वत्याइवसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ ।
शूरइव धृष्णुश्च्यवनो जनानां त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः ॥६॥

पदार्थः—यह अग्नि (समज्र्या) लोगों के हितकारी (पर्वत्या) पहाड़ों पर उत्पन्न (वसूनि) धनों को तथा (दासा) दान देने योग्य (आर्या) श्रेष्ठ (वृत्राणि) धनों को (जिगेथ) प्राप्त कराता है, (अग्नेत्वम्) यह अग्नि (शूर-इव) शूर के समान शत्रु का घर्षक, (जनानाम्) लोगों का च्यावयिता, (पृतनायून्) आक्रमण करने वालों का (अभिष्यः) अभिभव करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि मनुष्यों का हितकारी पर्वतीय धन और दान देने योग्य श्रेष्ठ धनों को प्राप्त कराता है। यह बलवान् के समान शत्रु का धर्षक दुष्ट लोगों का च्यावयिता और आक्रमण करने वालों का अभिभव करता है ॥६॥

दीर्घतन्तुर्बृहदुक्षायमग्निः सहस्रस्तरीः शतनीथ ऋभ्वा ।
द्युमान् द्युमत्सु नृभिर्मृज्यमानः सुमित्रेषु दीदयो देवयत्सु ॥७॥

पदार्थः—(अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (दीर्घतन्तुः) बड़े तन्तुओं वाला, (बृहदुक्षाः) प्रभूतरश्मि, (सहस्रस्तरीः) सहस्रों, स्तरों पर कार्य करने वाला

Scanned by CamScanner

(शतनीथ) अनेक नीतियों वाला (ऋभ्वा) महान् और (द्युमत्सु) प्रकाशमानों में (द्युमान्) अति प्रकाशवान् है । यह (नृभिः) कर्म करने वाले यजमान ऋत्विग् आदि से (मृज्यमानः) अलंकृत किया हुआ (देवयत्सु) देवयज्ञ करने वाले (सुमित्रेषु) हम सुमित्रों में (दीदयः) प्रकाशमान होता है ।

भावार्थः—यह अग्नि दीर्घ तन्तुओं अर्थात् बड़े विस्तारों से युक्त, प्रभूत रश्मियों वाला, कई स्तरों पर कार्य करने वाला, अनेक नीतियों वाला, महान् और दीप्तिमान पदार्थों में अधिक दीप्तिमान् है । यजमान ऋत्विग् आदि से अलंकृत किया गया यह देवयज्ञ करने वाले हम सब लोगो में प्रकाशमान होता है ॥७॥

त्वं धेनुः सुदुघा जातवेदोऽसश्चतेव समना सबर्धुक् ।
त्वं नृभिर्दक्षिणावद्भिरग्ने सुमित्रेभिरिध्यसे देवयद्भिः ॥८॥

पदार्थः- यह अग्नि (जातवेदः) जातवेदस् नाम वाला है, (त्वे) इसमें (सुदुघा) जल को उत्तम रूप में दोहन करने वाली (असश्चता इव) साथ में एकत्र न रहने वाले आदित्य से (समना) संगत (सबर्धुक्) अमृत को दोहन करने वाली (धेनुः) माध्यमिका वाग् है । (अग्नेत्वम्) यह अग्नि (दक्षिणावद्भिः) दक्षिणा देने के धन से युक्त (देवयद्भिः) यज्ञ करने वाले अथवा देवों की कामना करने वाले (सुमित्रेभिः) उत्तम मित्र भूत (नृभिः) मनुष्यों से (इध्यसे) यज्ञ में प्रज्वलित किया जाता है ।

भावार्थः—यह अग्नि जातवेदस् है । इस अग्नि में ही जल को दोहन करने वाली एक स्थान में न रहने से पृथग्भूत हुई भी आदित्य से संगत अमृत दोहन करने वाली माध्यमिका वाग् को भी पाया जाता है । यह अग्नि दक्षिणा देने के लिए धनों से युक्त देवों की कामना करने वाले हम मनुष्यों से यज्ञार्थ प्रदीप्त किया जाता है ॥८॥

देवाश्चित्ते अमृता जातवेदो महिमानं वाध्र्यश्व प्र वोचन् ।
यत्सम्पृच्छं मानुषीर्विश आयन्त्वं नृभिरजयस्त्वावृधेभिः ॥९॥

पदार्थः—(वाध्र्यश्वः) अत्यन्त तीव्र गति युक्त (जातवेदः) सभी उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (ते) इस अग्नि की (महिमानम्) महिमा का (अमृताः) लम्बी आयु वाले (देवाः चिद्) विद्वान् भी (प्रवोचन्) बखान करते हैं, (यत्) जब (मानुषीः) मानुषी (विशः) प्रजा (सम्पृच्छम्) प्रश्न को (आयन्)

प्राप्त होती है तो उस समय (त्वम्) यह अग्नि (त्वावृधेभिः) इसको बढ़ाने वाले (नृभि :) देवों के साथ (अजयः) जीतता है, यह उत्तर होता है ।

भावार्थः—अत्यन्त तीव्रगति, प्रत्येक उत्पन्न वस्तु में विद्यमान उस अग्नि की महिमा का ज्ञानवृद्ध विद्वान् भी गान करते हैं । जब मानुषी प्रजा के सामने यह प्रश्न उठता है कि दिव्य शक्तियों के साथ होने वाले आसुर युद्ध में इन असुरों=मेघों को कौन मारता है तब यही उत्तर होता है कि इस अग्नि को बढ़ाने वाले देवों के साथ यह अग्नि ही मेघों पर जय प्राप्त करता है ॥९॥

पितेव॑ पुत्रम॑बिभरु॒पस्थे॒ त्वाम॑ग्ने वध्र्य॒श्वः स॑प॒र्यन् ।
जु॒षा॒णो अ॑स्य स॒मिधं॑ यविष्ठो॒त पूर्वाँ॑ अवनो॒र्व्राध॑तश्चित् ॥१०॥

पदार्थः—(इव) यथा (पिता) पिता (पुत्रम्) पुत्र को सामने रखता है इसी प्रकार (वध्र्यश्वः) जितेन्द्रिय पुरुष (उपस्थे) पृथिवी के उपस्थान यज्ञ वेदी में (त्वाम् अग्ने) इस अग्नि को (सपर्यन्) स्थापित करता हुआ (अबिभः) हवि से पुष्ट करता है । (उत) और (अस्य) इसकी (समिधम्) समिधा को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (यविष्ठः) बलवान् अग्नि (पूर्वान् चित्) पुराने भी (व्राधतः) शत्रुओं को (अवनोः) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार पिता अपने पुत्र को सामने बैठाता है उसी प्रकार जितेन्द्रिय यजमान पुरुष पृथिवी के उपस्थान इस वेदी में इस अग्नि को स्थापित कर हवि आदि से उसका पोषण करता है । इसकी समिधाओं को सेवन करता हुआ यह अग्नि पुराने रोग आदि के कीटाणुरूप शत्रुओं को नष्ट करता है ॥१०॥

शश्व॑द॒ग्निर्व॑ध्र्य॒श्वस्य॒ शत्रू॒न्नृभि॑र्जिगाय सु॒तसो॑मवद्भिः ।
सम॑नं चिददहश्चित्रभानो॒ऽव॒ व्राध॑न्तमभिनद्वृ॒धश्चि॑त् ॥११॥

पदार्थः—(अग्निः) यह अग्नि (वध्र्यश्वस्य) बहुत अश्वों वाले राजा वा मनुष्य के (सुतसोमवद्भि :) सोम रस को चुआने वाले, (नृभिः) मनुष्यों के द्वारा (शश्वत्) सदा (शत्रून्) शत्रुओं को (जिगाय) जीतता है, (चित्रभानो) चायनीय प्रकाश वाला यह अग्नि (समनम्) संग्राम को (चित्) भी (अदहः) अपने तेजों से जला देता है । अग्नि के प्रभाव से (वृधः चित्) स्वयं बढ़ा हुआ यह राजा

Scanned by CamScanner

वा मनुष्य भी (वाधतम्) बढ़ते हुए हिंसकों को (अव अभिनत्) छिन्न-भिन्न करता है।

भावार्थः—यह अग्नि बहुत अश्वों वाले राजा अथवा मनुष्य के सोमोत्पादक मनुष्यों के द्वारा सदा शत्रुओं को जीतता है। उत्तम तेजों वाला यह अग्नि संग्राम को भी अपने तेजों से दग्ध कर देता है। अग्नि के प्रभाव से वृद्धि को प्राप्त यह राजा अथवा मनुष्य भी बढ़ने वाले हिंसकों को छिन्न-भिन्न करता है ॥११॥

अयमग्निर्वध्र्यश्वस्य वृत्रहा सनकात्प्रेद्धो नमसोपवाक्यः ।

स नो अजामीँरुत वा विजामीनभि तिष्ठ शर्धतो वाध्र्यश्व ॥१२॥

पदार्थः—(वृत्रहा) रोगों आदि का हन्ता (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि (सनकात्) सदा से (नमसा) अन्न आदि हवियों से (वध्र्यश्वस्य) जितेन्द्रिय याज्ञिक द्वारा (प्रेद्धः) प्रदीप्त होता है और (उप वाक्यः) प्रशंसनीय होता है। (वाध्र्यश्वः सः) बंधे तेजों वाला वह अग्नि (नः) हमारे (शर्धतः) हिंसक (अजामीन्) सजातीय (उत वा) और (विजामीन्) विजातीय को (अभि-तिष्ठ) अभिभूत करता है।

भावार्थः—रोगों का नाशक यह अग्नि सदा से अन्न आदि हवियों से जितेन्द्रिय याज्ञिक के द्वारा प्रदीप्त होता है और प्रशंसनीय होता है। यह अतितेजस्क अग्नि हमें सताने वाले सजातीय विजातीय सभी हिंसकों को दबा देता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में उनहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—७०

ऋषिः—१—११ सुमित्रो वाध्र्यश्वः ॥ देवता—आप्रम् ॥ छन्दः—१, २, ४, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७, ९, ११ त्रिष्टुप् । ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इमां मे अग्ने समिधं जुषस्वेळस्पदे प्रति हर्या घृताचीम् ।

वर्ष्मन्पृथिव्याः सुदिनत्वे अह्नामूर्ध्वो भव सुक्रतो देवयज्या ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(अग्ने) यह अग्नि (इडस्पदे) उत्तरवेदि में (मे) मुझ जितेन्द्रिय याज्ञिक की (समिधम्) समिधा का (जुषस्व) सेवन करता है, तथा (घृताचीम्) घृत से परिपूर्ण स्रुवा को (प्रतिहर्य) प्राप्त करता है, (सुक्रतो) उत्तम कर्मों का साधन यह अग्नि (पृथिव्याः) पृथिवी के (वर्ष्मन्) उन्नत प्रदेश में (अह्नाम्) दिनों के (सुदिनत्वे) सुदिनत्व में (देवयज्या) देवयाग द्वारा (ऊर्ध्वः) ज्वालाओं से उन्नत (भव) होता है ।

भावार्थः- यह अग्नि उत्तरवेदि की नाभि में मुझ जितेन्द्रिय याज्ञिक की समिधाओं को ग्रहण करता है, घृत से पूर्ण स्रुवा को प्राप्त करता है। उत्तम कर्मों का साधनभूत यह अग्नि पृथिवी के उन्नत प्रदेश पर्वत आदि पर हमारे उत्तम दिनों में अथवा हमारे लिए उत्तम दिन लाने के लिए देव-यज्ञ द्वारा ज्वालाओं से उन्नत होता है ॥१॥

आ देवानामग्रयावेह यातु नराशंसो विश्वरूपेभिरश्वैः ।
ऋतस्य पथा नमसा मियेधो देवेभ्यो देवतमः सुषूदत् ॥२॥

पदार्थ—(देवानाम्) यज्ञसम्बन्धी देवों में (अग्रयावा) अग्रगन्ता (नराशंसः) नरों से शंसनीय यह अग्नि (विश्वरूपेभिः) नानारूप (अश्वैः) तेजों के साथ (इह) इस हमारे यज्ञ में (आ यातु) प्राप्त होता है, (मियेधः) यज्ञ का साधक (देवतमः) देवतम यह अग्नि (ऋतस्य) यज्ञ के (पथा) मार्ग से (नमसा) हवि आदि से युक्त हवि को (देवेभ्यः) देवों के लिए (सुषूदत्) ले जाता है।

भावार्थः—देवों में अग्रगन्ता नरों से शंसनीय यह अग्नि नानारूप तेजों के साथ इस हमारे यज्ञ में प्राप्त होता है। यज्ञ का साधक देवतम यह अग्नि यज्ञ के माध्यम से अन्न आदि से युक्त हवि को देवों के लिए ले जाता है ॥२॥

शश्वत्तममीळते दूत्याय हविष्मन्तो मनुष्यासो अग्निम् ।
वर्हिष्ठैरश्वैः सुवृता रथेना देवान्वक्षि नि षदेह होता ॥३॥

पदार्थः—(हविष्मन्तः) हवि देने वाले (मनुष्यासः) मनुष्य (दूत्याय) हविवहन रूपी दूत्य कर्म के लिए (शश्वत्तमम्) नित्य (अग्निम्) अग्नि की (ईडते) स्तुति वा प्रशंसा करते हैं (वहिष्ठैः) अधिक भार-वहन वाले (अश्वैः) किरणों तथा (सुवृता) अच्छी गति वाले (रथेन) प्रकाश रूप रथ के साथ (इह)

Scanned by CamScanner

हमारे यज्ञ में (**देवान्**) इन्द्र आदि देवों को (**आ वक्षि**) प्राप्त कराता है (**होता**) होता होकर (**निषीद**) स्थित होता है ।

भावार्थः—यज्ञ में हवि देने वाले मनुष्य हवि को वहन करने के लिए अग्नि की निरन्तर प्रशंसा करते हैं । वह अग्नि अच्छी गति वाली किरणों और प्रकाशों एवं गति चक्रों के साथ यज्ञ के इन्द्र आदि देवों को यज्ञ में प्राप्त कराता है और होता होकर स्थित होता है ॥३॥

वि प्र॑थतां दे॒वजु॑ष्टं तिर॒श्चा दी॒र्घं द्रा॒घ्मा सु॒र॒भि भू॑त्व॒स्मे ।
अहे॑ळता॒ मन॑सा देव बर्हि॒रिन्द्र॑ज्येष्ठाँ उश॒तो य॑क्षि दे॒वान् ॥४॥

पदार्थः—(**देवजुष्टम्**) देवों द्वारा सेवन किया जाने वाला हव्य पदार्थ (**तिरश्चा**) चारों तरफ (**दीर्घम्**) अधिक (**वि प्रथताम्**) फैले, (**अस्मे**) हमारे लिए (**द्राघ्मा**) विस्तार से (**सुरभिः**) सुगन्ध (**भूतु**) होवे, (**देव बर्हिः**) यह दिव्य हव्य पदार्थ (**उशतः**) हवि को चाहने वाले (**इन्द्रज्येष्ठाम्**) इन्द्र जिनका प्रधान है ऐसे (**देवान्**) देवों के प्रति यजमानों द्वारा (**अहेलता**) विना क्रोध वाले अर्थात् शान्त (**मनसा**) मन से (**यक्षि**) प्रदान किया गया है ।

भावार्थः—देवों द्वारा ग्रहण किया जाने वाला यह हव्य पदार्थ चारों तरफ बहुत विस्तार से फैले । हमारे लिए सुगन्धि भी अधिक होवे । हवि चाहने वाले, इन्द्र हैं प्रधान जिनमें ऐसे देवों के लिए यह पदार्थ यजमानों द्वारा शान्त मन से अग्नि में प्रदान किया गया है ॥४॥

दि॒वो वा॒ सानु॑ स्पृ॒शता॒ वरी॑यः पृथि॒व्या वा॒ मात्र॑या॒ वि श्र॑यध्वम् ।
उ॒श॒तीर्द्वा॑रो महि॒ना म॒हद्भि॑र्दे॒वं रथं॑ रथ॒युर्धा॑रयध्वम् ॥५॥

पदार्थः (**द्वारः**) ये यज्ञ की द्वारभूत देवियां=दिव्य शक्तियां (**दिवः**) द्युलोक (**वा**) अथवा (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**सानु**) उच्चतर (**वरीयः**) उरुतर स्थान को (**स्पृशत**) छूए (**मात्रया**) मात्रानुसार (**विश्रयध्वम्**) विस्तृत होवें, (**उशतीः**) इन हव्य पदार्थों को चाहती हुई (**महिना**) महिमा से (**महद्भिः**) महान् देवों के साथ (**रथयुः**) रमणीय प्रकाशों से युक्त हुई (**देवम्**) प्रकाशमान (**रथम्**) अग्निरूपी रथ को (**धारयध्वम्**) धारण करती है ।

भावार्थः—देवों की भांति ही ये देवों की देवी भूत अग्रणी आदि शक्तियां द्युलोक और पृथिवी के उरुतर उच्च स्थान को प्राप्त होवें और

Scanned by CamScanner

यज्ञ की मात्रानुसार विस्तृत होवें। हव्य पदार्थों को चाहती हुई ये महिमा से महान् देवों के साथ रमणीय प्रकाशों से युक्त होकर अग्नि रूपी रथ को धारण करती है अर्थात् अग्नि के द्वारा यज्ञ में आकर हवि को ग्रहण करती हैं ॥५॥

देवी दिवो दुहितरा सुशिल्पे उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
आ वां देवास उशती उशन्त उरौ सीदन्तु सुभगे उपस्थे ॥६॥

पदार्थः—(देवी) द्योतमान (सुशिल्पे) उत्तम रूप वाले (दिवः) द्युलोक की दुहिताभूत (उषासानक्ता) दिन और रात्रि (योनौ) यज्ञस्थान को (नि षदताम्) प्राप्त होते हैं। (उशती) हव्य चाहने वाले, (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्य वाले (वाम्) इन दोनों के (उरौ) विस्तीर्ण (उपस्थे) समीप स्थान में (उशन्तः) हवि को चाहने वाले (देवासः) देवगण (आ सीदन्तु) स्थित होते हैं।

भावार्थः—द्योतमान उत्तम रूप वाले, द्युलोक की पुत्री रूप (उषासानक्ता) दिन और रात्रि यज्ञ के स्थान को प्राप्त होते हैं। हवि चाहने वाले उत्तम ऐश्वर्य वाले इन दोनों के विस्तीर्ण समीपस्थ स्थान में हवि चाहने वाले देवगण भी स्थित होते हैं। ये सभी आकाशस्थ पदार्थ हवि को अग्नि के माध्यम से ग्रहण करते हैं और उसी के माध्यम से यज्ञ में भी प्राप्त होते हैं ॥६॥

ऊर्ध्वो ग्रावा बृहदग्निः समिद्धः प्रिया धामान्यदितेरुपस्थे ।
पुरोहितावृत्विजा यज्ञे अस्मिन् विदुष्टरा द्रविणमा यजेथाम् ॥७॥

पदार्थः—जब (ग्रावा) सोम कूटने की पाषाण-शिला (ऊर्ध्वः) उन्नत होती है अर्थात् ऊपर को जाती है, जब (बृहत्) महान् (अग्निः) अग्नि (समिद्धः) हवि आदि से सम्यक् दीप्त होता है तथा (प्रिया) प्रिय (धामानि) हवियों के रखने के पात्र (अदितेः) पृथिवी के (उपस्थे) यज्ञ वेदी पर रख दिये जाते हैं तब (वाम्) ये दोनों (ऋत्विजा पुरोहिता) दैव्या होतारौ = प्राण और अपान जो (विदुष्टरा) प्राप्त तर है (अस्मिन्) इस (यज्ञे) यज्ञ में (द्रविणम्) धन को (आ यजेथाम्) प्रदान करें।

भावार्थः—जब सोम कूटने की पाषाण-शिला ऊपर होती है, जब अग्नि हवि आदि से भली प्रकार दीप्त हो जाता है और हविपात्र वेदी पर

Scanned by CamScanner

रख दिये जाते हैं तब ये प्राण और अपान जो सभी को सर्वत्र प्राप्ततर हैं धन को प्रदान करते हैं। अर्थात् वर्षा आदि से धन की उत्पत्ति करते हैं ॥७॥

तिस्रो देवीर्बर्हिरिदं वरीय आ सीदत चकृमा वः स्योनम् ।
मनुष्वद्यज्ञं सुधिता हवींषीळा देवी घृतपदी जुषन्त ॥८॥

पदार्थः–(तिस्रः) तीन (देवीः) देवियां (वरीयः) विस्तीर्ण (इदम्) इस (बर्हिः) वेदी पर (आ सीदत) विराजमान होवें (वः) इनके लिए (स्योनम्) विस्तीर्ण (चकृम) बनाते हैं, (इला) इला (देवी) द्योतमान (घृतपदी) मधुर पदों वाली सरस्वती (मनुष्वद्) मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (सुधिता) अच्छी प्रकार निहित (हवींषि) हवियों को (जुषन्त) सेवन करें।

भावार्थः– इडा, सरस्वती, भारती ये तीन देवियां इस वेदी पर विराजमान होवें जिसे हम विस्तीर्ण बनाते हैं। ये तीनों मनुष्यों से युक्त यज्ञ में निहित हवियों को ग्रहण करें ॥८॥

देव त्वष्टर्यद्ध चारुत्वमानड्यदङ्गिरसामभवः सचाभूः ।
स देवानां पाथ उप प्र विद्वानुशन्यक्षि द्रविणोदः सुरत्नः ॥९॥

पदार्थः—(यत्) जिस कारण (त्वष्टः देवः) वायु (चारुत्वम्) हवियों से कल्याणरूपत्व को (आनट्) प्राप्त करता है, (यत्) जिस प्रकार यह (अङ्गिरसाम्) अंगारों वा प्राणों का (सचाभूः) सहभावी (अभवः) होता है अतः (सः) वह (द्रविणोदः) धन का दाता (सुरत्नः) सुधन (उशन्) हवि की इच्छा करता हुआ (विद्वान्) प्राप्त करता हुआ (देवानाम्) देवों के (पाथः) अन्न को (उप प्रयक्षि) देता है।

भावार्थः—वायु हवियों से कल्याणमय रूप को प्राप्त करता है, यह अंगारों और प्राणों का सहभावी होता है और हवि की इच्छा करता हुआ उसे प्राप्त कर देवों के हविरूप अन्न को उन्हें देता है ॥९॥

वनस्पते रशनया नियूया देवानां पाथ उप वक्षि विद्वान् ।
स्वदाति देवः कृणवद्धवींष्यवतां द्यावापृथिवी हवं मे ॥१०॥

पदार्थः—(वनस्पते) अग्नि (रशनया) बन्धन के समान परिधि बन्धन से (नियूय) बांधकर (देवानाम्) यज्ञ देवों के (पाथः) अन्न आदि हवि को

(विद्वान्) प्राप्त कर (उपयक्षि) उन्हें देता है (देवः) देव अग्नि वह (हवींषि) हमारे द्वारा दत्त हवियों को (स्वदाति) खाता है अर्थात् भस्म करता है और (कृणवत्) उन्हें देवों की बना देता है, (मे) मेरी (हवम्) पुकार की (द्यावा-पृथिवी) द्यु और पृथिवी (अवताम्) रक्षा करें।

भावार्थः—अग्नि रस्सी के समान परिधियों से बांधकर बिना इधर-उधर किये यज्ञ के देवों की हवि को प्राप्त कर उन्हें देता है। यह देव अग्नि हवियों को भस्म कर देता है और उन्हें देवों की बना देता है। मेरे शब्दों की द्यु और पृथिवी रक्षा करें ॥१०॥

आग्ने॑ वह॒ वरु॑णमि॒ष्टये॑ न॒ इन्द्रं॑ दि॒वो म॒रुतो॑ अ॒न्तरि॑क्षात् ।
सीद॑न्तु ब॒र्हिर्विश्व॒ आ यज॑त्राः॒ स्वाहा॑ दे॒वा अ॒मृता॑ मादयन्ताम् ॥११॥

पदार्थः—(अग्ने) वह अग्नि (नः) हमारे (इष्टये) याग के लिए (वरुणम्) सूर्य, (इन्द्रम्) वायु और (मरुतः) मरुतों को (दिवः) द्युलोक से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से (आवह) यज्ञ में लाता है (यजत्राः) यष्टव्य ये (विश्वे) सारे (देवाः) देव (बर्हिः) यज्ञ वेदी पर (आ सीदन्तु) उपस्थित होते हैं तथा (अमृताः) अमरणधर्मा ये (देवाः) देव (स्वाहा) स्वाहा बोलकर दी गई हवि से (मादयन्ताम्) तृप्त होते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि हमारे याग के लिए सूर्य, वायु और मरुतों को द्युलोक और अन्तरिक्ष से यज्ञ में लाता है। यष्टव्य ये देव यज्ञवेदी पर स्थित होते हैं तथा अमर ये स्वाहाकार करके प्रदत्त हवि को ग्रहण करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल का सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—७१

ऋषिः—१—११ बृहस्पतिः ॥ देवता—ज्ञानम् ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६, ८, १०, ११ विराट्त्रिष्टुप् । ९ विराड्जगती ॥ स्वरः—१—८, १०, ११ धैवतः । ९ निषादः ॥

Scanned by CamScanner

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥१॥

पदार्थः—(**बृहस्पते**) हे वेदवाणी के पालक प्रभो ! (**नामधेयम्**) पदार्थों के नाम को (**दधानाः**) अपने ज्ञान में धारण करने के लिए ग्रहण शक्ति से योग्य पवित्रान्तःकरण वाले ऋषि सृष्टियों की आदि में (**यत्**) जो (**प्र ऐरत**) प्रेरणा लेते और करते हैं अर्थात् उच्चारण करते हैं वह (**प्रथमम्**) आदि है, (**वाचः**) समस्त वाणियों का (**अग्रम्**) अग्र है, (**एषाम्**) इनका (**यत्**) जो (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**अरिप्रम्**) निर्दोष (**आसीत्**) है (**तत्**) वही (**एषाम्**) इन (**प्रेणा**) ईश्वर की प्रेरणा से प्राप्त है जो (**गुहा**) अन्तःकरण में (**निहितम्**) निहित हुई ही (**आविः**) प्रकट होती है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! सृष्टि की उत्पत्ति होने के अनन्तर प्रागवस्था में पवित्रान्तःकरण वाले पदार्थों का नाम अपने ज्ञान में धारण करने और रखने के योग्य ऋषि जिस वाणी को प्रेरणा से प्राप्त कर उच्चारण करते हैं वह सबसे प्रथम आदि वाणी है । वह सब वाणियों का अग्र है (अर्थात् बाद में उसी से अन्य वाणियां बनती हैं) श्रेष्ठ, अरिप्रम=निर्दोष और पूर्ण है । वह ऋषियों के अन्तःकरण में निहित प्रेरणा से प्रकट होती है ॥१॥

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥२॥

पदार्थः—(**तितउना**) चलनी से छाने हुए (**सक्तुम् इव**) सत्तू के समान (**यत्र**) जब (**धीराः**) गम्भीर धीर विद्वान् (**मनसा**) मन से (**पुनन्तः**) पवित्र एवं विचार करते हुए (**वाचम्**) वाणी को (**अक्रत**) बोलते हैं तब (**अत्र**) इस विषय में (**सखायः**) परस्पर विद्या से प्रेम रखने वाले विद्वान् (**सख्यानि**) शब्द और अर्थ के सम्बन्ध ज्ञान को (**जानते**) जानते हैं । (**एषाम्**) इन ज्ञाताओं की (**वाचि अधि**) वाणी में (**भद्रा**) कल्याणमयी (**लक्ष्मीः**) लक्ष्मी (**निहिता**) निहित होती है ।

भावार्थः—जिस प्रकार चलनी से सत्तू को छानकर साफ कर लिया जाता है उसी प्रकार जब धीर गम्भीर विद्वान् मन से विचार कर वाणी

Scanned by CamScanner

का प्रयोग करते हैं तब वे इसके मित्रभूत हुए वाणी के शब्दार्थ सम्बन्धों को जानते हैं और इनकी वाणी में कल्याणकारिणी लक्ष्मी निहित होती है ॥२॥

यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्टाम् ।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते ॥३॥

पदार्थः— धीर विद्वान् जन (**यज्ञेन**)पवित्रान्तःकरण वा पवित्र भावना से (**वाचः**) वाणी के (**पदवीयम्**) मार्ग को (**आयन्**) जानते हैं और (**ऋषिषु**) ऋषियों के अन्तःकरण में (**प्रविष्टाम्**) प्रविष्ट हुई प्राप्त हुई (**ताम्**) उस वाणी को (**अनु अविन्दन्**) प्राप्त करते हैं । अनन्तर (**ताम्**) उस को (**आभृत्य**) धारण कर (**पुरुत्रा**) सर्वत्र प्रचारित (**व्यदधुः**) करते हैं (**ताम्**) इस वेदवाणी को (**सप्त**) सात (**रेभाः**) गायत्री आदि छन्द (**अभि सं नवन्ते**) सर्वतः युक्त हुए होते हैं ।

भावर्थ—धीर विद्वान् पवित्र भावना से वाणी के मार्ग को जानते हैं और ऋषियों के अन्तःकरण में निहित होकर प्राप्त इसको ग्रहण करते हैं । अनन्तर इसको दूसरे सभी मनुष्यों में प्रचारित करते हैं और गायत्री आदि सात छन्द इस वेदवाणी में प्रयुक्त हैं ॥३॥

उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः शृण्वन्न शृणोत्येनाम् ।
उतो त्वस्मै तन्वं१ वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥४॥

पदादार्थः— (**उत त्वः**) एक तो (**वाचम्**) वाणी को (**पश्यन्**)देखता हुआ भी (**न**) नहीं (**ददर्श**) देखता (**उत त्वः**) एक तो (**शृण्वन्**) सुनता हुआ भी (**एनाम्**) इसको (**न**) नहीं (**शृणोति**) सुनता है, (**उतो त्वस्मै**) एक के लिए तो वाणी (**तन्वम्**) अपने ज्ञानमय रूप वा कलेवर को उसी प्रकार (**विसस्रे**) खोल देती है (**इव**) जिस प्रकार (**सुवासाः**) उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए (**उशती**) कामना करती हुई (**जाया**) पत्नी (**पत्ये**) पति के लिए अपने शरीर को खोल देती हैं ।

भावार्थः एक तो ऐसा है कि देखते हुए भी इस वाणी के रहस्य को नहीं देख पाता है, एक तो सुनते हुए भी इसके गूढ भाव को नहीं सुनता है, एक के लिए यह वाणी अपने विस्तृत ज्ञान कलेवर को उसी प्रकार खोल देती है जिस प्रकार वस्त्रों से सजी कामना करने वाली पत्नी अपने पति के लिए अपने तनू को खोल देनी है ॥४॥

Scanned by CamScanner

उत त्वं सख्ये स्थिरपीतमाहुर्नैनं हिन्वन्त्यपि वाजिनेषु ।
अधेन्वा चरति माययैष वाचं शुश्रुवाँ अफलामपुष्पाम् ॥५॥

पदार्थः—(**उत त्वम्**) एक को तो (**सख्ये**) विद्वानों की संसद् में (**स्थिर-पीतम्**) ज्ञान को स्थिरता से पिया हुआ (**आहुः**) कहते हैं, (**एनम्**) इसको (**वाजिनेषु**) वाणी से जानने योग्य अर्थों में (**अपि**) भी (**न**) नहीं (**हिन्वन्ति**) पहुंचते हैं । (**एषः**) वाणी और उसके अर्थ को न जानने वाला (**मायया**) केवल शब्दाम्बर के द्वारा (**चरति**) व्यवहार करता है क्योंकि इसने (**अफलाम्**) विना फल वाली और (**अपुष्पाम्**) विना पुष्पों वाली (**वाचम्**) वाणी को (**शुश्रुवान्**) सुना है ।

भावार्थः—एक को तो विद्वानों की संसद् में लोग ज्ञान को स्थिरता से पान किया हुआ पाते हैं। वाग्व्यवहार के विषय में इसका कोई पार नहीं पाता । वह व्यक्ति जिसने इस वाणी के तत्त्व को नहीं समझा है केवल शब्दाडम्बर से व्यवहार करता है क्योंकि उसने यज्ञ, देवता और अध्यात्म जो इसके फूल-फल हैं इनके ज्ञान के विना इस वाणी को सुना और जाना है ॥५॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ।
यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥६॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**सचिविदम्**) साथी को पहिचानने वाले (**सखायम्**) मित्र के तुल्य उपकारक वेद के स्वाध्याय को (**तित्याज**) छोड़ देता है (**तस्य**) उसका (**वाचि अपि**) वेद वाणी में भी (**भागः**) भाग (**न**) नहीं (**अस्ति**) होता है वह (**यद्**) जो कुछ (**ईम्**) भी (**शृणोति**) सुनता हैं (**अलकम्**) अलीक=व्यर्थ (**शृणोति**) सुनता है (**हि**) क्योंकि वह (**सुकृतस्य**) उत्तम कर्म के (**पन्थाम्**) मार्ग को (**न**) नहीं (**प्रवेद**) जानता है ।

भावार्थः–जो साथी को पहचानने वाले वेद के स्वाध्याय को छोड़ देता है उसका वेदवाणी में भी कोई भाग नहीं रह जाता वह जो कुछ भी सुनता है व्यर्थ सुनता है क्योंकि वह सुकृत के मार्ग को नहीं जानता है ॥६॥

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः ।
आदघ्नास उपकक्षास उ त्वे ह्रदाइव स्नात्वा उ त्वे ददृश्रे ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अक्षण्वन्तः**) समान आंख वाले, (**कर्णवन्तः**) समान कानों वाले (**सखायः**) परस्पर मित्र हुए भी लोग (**मनोजवेषु**) मनकी गतियों में (**असमाः**) समान नहीं (**बभूवुः**) होते हैं, उनमें (**त्वे**) कई तो (**आदघ्नासः**) मुखपर्यन्त पानी वाले, और (**त्वे**) कई (**उपकक्षासः**) कांख तक पानी वाले (**ह्रदा**) जलाशय के (**इव**) समान (**ददृशे**) दिखाई पड़ते हैं और (**उ त्वे**) कई एक (**स्नात्वाः**) स्नान करने के योग्य अत्यधिक गहरे जल वाले जलाशय के समान दीखते हैं।

भावार्थः आंख और कान में समान तथा परस्पर मित्रभूत भी मन की गतियों में समान नहीं होते हैं। कई तो मुखपर्यन्त पानी वाले जलाशय के समान, कई कोख तक पानी वाले जलाशय के समान और कई अगाध जल वाले जलाशय के समान होते हैं ॥७॥

हृदा तष्टेषु मनसो जवेषु यद् ब्राह्मणाः संयजन्ते सखायः ।
अत्राह त्वं वि जहुर्वेद्याभिरोहब्रह्माणो वि चरन्त्यु त्वे ॥८॥

पदार्थः (**यत्**) जब (**ब्राह्मणाः**) वेद के विद्वान् जन (**हृदा**) हृदय से (**तष्टेषु**) भली प्रकार विचारित (**मनसः**) मन के (**जवेषु**) वेगों अर्थात् ज्ञातव्य पदार्थों में (**सखायः**) समान ख्याति वाले होकर (**संयजन्ते**) परस्पर ज्ञान विचारों का आदान-प्रदान करते है (**अत्र ह**) तब इस अवसर पर (**त्वम्**) किसी को (**विजहुः**) अज्ञ जानकर छोड़ देते हैं (**त्वे**) कई एक (**ओह ब्रह्माणः**) ऊह शक्ति से युक्त वेदज्ञ (**वेद्याभिः**) ज्ञातव्य वा ज्ञानमयी प्रवृत्तियों के साथ (**विचरन्ति**) विचरते हैं।

भावार्थः—जब वेदज्ञ विद्वान् हृदय से भली प्रकार निश्चित किये गए ज्ञातव्य पदार्थों के विषय में समान ख्याति वाले होकर प्रवृत्त होते हैं तो इस अवसर पर एक वाणी के तत्त्व को न जानने वाले को तो छोड़ ही देते हैं। उसे विचार विनिमय में नहीं लगाते। कई एक ऊह=तर्क ज्ञान से युक्त वेदज्ञ ही ज्ञानमयी प्रवृत्तियों से विचरते हैं और ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं ॥८॥

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः ।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः ॥९॥

पदार्थः—(**इमे**) ये (**ये**) जो (**न अर्वाक्**) न इस लोक के ज्ञान से युक्त होकर (**चरन्ति**) विचरते हैं और (**न परः**) न परलोक को जानकर, अर्थात् न अपराविद्या में निपुण है और न परा विद्या में निपुण है (**न**) नहीं वे (**ब्राह्मणासः**) वेदार्थतत्पर है और (**न**) न (**सुकेतुरासः**) यज्ञ आदि कर्मकाण्ड में ही निपुण हैं (**ते**) वे (**एते**) ये (**अप्रजज्ञयः**) अविद्वान् होकर (**पापया**) अदैवी वाणी से युक्त एवं (**वाचम्**) बोलने मात्र की व्यावहारिकी वाणी को (**अभिपद्य**) प्राप्त कर (**सिरीः तन्त्रम्**) हल को (**तन्वते**) विस्तारित कर कृषक होते हैं।

भावार्थः—जो न इस लोक अर्थात् अपराविद्या में निपुण हैं, न पराविद्या को जानते हैं न वेद विद्या में पारंगत हैं और न कर्मकाण्ड को जानते हैं वे अविद्वान् होकर व्यावहारिकी अर्थात् बोलने मात्र की वाणी को जानते हुए खेती आदि का कार्य करते हैं ॥९॥

सर्वे नन्दन्ति यशसागतेन सभासाहेन सख्या सखायः।
किल्बिषस्पृत्पितुषणिर्ह्येषामरं हितो भवति वाजिनाय ॥१०॥

पदार्थः—(**सर्वे**) सब (**सखायः**) समान ख्याति वाले मित्रजन (**यशसा**) यश से यशस्वी होकर (**सभासाहेन**) सभा में अपना दबदबा जमाने में समर्थ (**सख्या**) मित्र प्राप्त कर (**नन्दन्ति**) प्रसन्न होते हैं, (**एषाम्**) इनमें मध्य में (**पितुः सनिः**) अन्न देने वाला (**किल्बिषस्पृत्**) पापाचरण अज्ञान आदि का नाश करने वाला होकर (**वाजिनाय**) वाणी के ज्ञान के लिए (**अरम्**) पर्याप्त (**हितः**) उपयोगी (**भवति**) होता है।

भावार्थः—सभी समान ख्याति वाले विद्वान् यश से युक्त और सभा में प्रभाव जमाने वाली शक्ति से युक्त हुए मित्रभाव को प्राप्त कर आनन्दित होते हैं। इनमें अन्न का देने वाला पाप और अज्ञान को नष्ट करने वाला व्यक्ति देववाणी के ज्ञान को प्राप्त करने में पर्याप्त समर्थ होता है ॥१०॥

ऋचां त्वः पोषमास्ते पुपुष्वान्गायत्रं त्वो गायति शक्वरीषु।
ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्यां यज्ञस्य मात्रां वि मिमीत उ त्वः ॥११॥

पदार्थः—(**त्वः**) एक होता (**ऋचाम्**) ऋचाओं के (**पोषम्**) पोषण= यथाविधि प्रयोग को (**पुपुष्वान्**) पुष्ट करता है, (**त्वः**) एक उदाता (**शक्वरीषु**) शक्वरी ऋचाओं में (**गायत्रम्**) गायत्र साम को (**गायति**) गाता है (**त्वः**)

Scanned by CamScanner

एक (ब्रह्मा) चतुर्वेदविद् ब्रह्मा (जातविद्याम्) कर्त्तव्य के उपस्थित होने पर कर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाली विद्या को (वदति) बताता है, (त्वः) एक अध्वर्यु (यज्ञस्य) यज्ञ की (मात्राम् उ) मात्रा को (विमिमीत) मापता वा निर्मित करता है ।

भावार्थः —इस मन्त्र में यज्ञ के चार ऋत्विजों का कार्य वर्णित है। पहला होता ऋचाओं का उच्चारण कर उनके प्रयोग को पुष्ट करता है। दूसरा उद्गाता साम गान शक्वरी ऋचाओं में करता है। तीसरा अध्वर्यु यज्ञ की मात्रा निर्धारित करता है और चौथा चतुर्वेदविद् ब्रह्मा सब क्रियाओं और कर्त्तव्यों को जताता है।

नोट —इस सूक्त में ज्ञान और भाषा के प्रादुर्भाव का वर्णन है। किस प्रकार प्रेरणा से ये प्रकट होते हैं यह बताया गया है। इसी लिए इस सूक्त का देवता भी ज्ञान है ॥११॥

यह दशम मण्डल में इकहत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७२

ऋषिः—१—९ बृहस्पतिर्बृहस्पतिर्वा लौक्य अदितिर्वा दाक्षायणी ॥
देवताः- देवाः ॥ छन्दः —१, ४, ६ अनुष्टुप् । २ पादनिचृदनुष्टुप् ।
३, ५, ७ निचृदनुष्टुप् । ८, ९ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—
गान्धारः ॥

देवानां नु वयं जाना प्र वोचाम विपन्यया ।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥१॥

पदार्थः—(वयम्) हम विद्वान् लोग (देवानाम् नु सृष्टि के दिव्य पदार्थों के (जाना) जन्मों वा उत्पत्ति के प्रकारों को (विपन्यया) विशेष स्पष्ट वाणी से (प्रवोचाम) वर्णन करते हैं। (उक्थेषु) वेद के ज्ञानपूर्ण मन्त्रों के (शस्यमानेषु) उच्चारित किये जाने पर (यः) जो देव युग (उत्तरे) सृष्टि होने के बाद के (युगे) समय में भी जगत् के व्यवहार में (पश्यात्) देखा जाता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हम विद्वज्जन जगदन्तर्वर्ती दिव्य पदार्थों के जन्म का विस्पष्ट वर्णन वाणी से करते हैं। यह देवयुग वेदमन्त्रों के पढ़े जाने पर सृष्टि के उत्पन्न होने के अनन्तर भी जगत् के व्यवहार में देखा जाता है ॥१॥

ब्रह्मणस्पतिरेता सं कर्मारइवाधमत् ।
देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदजायत ॥२॥

पदार्थ—(**ब्रह्मणस्पतिः**) ब्रह्माण्ड और प्रकृति के स्वामी परमेश्वर ने (**एता**) इन देवपदार्थों के परमाणुओं को (**कर्मार इव**) लोहार के समान (**सम आधमत्**) धौंका अर्थात् ताप से तप्त किया है (**देवानाम्**) इन दिव्य पदार्थों के (**पूर्व्ये युगे**) पूर्वयुग अर्थात् सृष्टि की प्रागवस्था में (**असतः**) अव्यक्त से (**सत्**) व्यक्त (**अजायत**) उत्पन्न होता है।

भावार्थः—प्रकृति के स्वामी परमेश्वर जगत् के पदार्थों के परमाणुओं को लोहार की तरह संतप्त करता है। सृष्टि की रचना के समय में असत्=अव्यक्त प्रकृति और परमाणु से सत्=व्यक्त जगद्वर्ती पदार्थ उत्पन्न होता है ॥२॥

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सदजायत ।
तदाशा अन्वजायन्त तदुत्तानपदस्परि ॥३॥

पदार्थ—(**देवानाम्**) इन देवों के (**प्रथमे**) प्रथम (**युगे**) युग में (**असतः**) अव्यक्त से (**सत्**) व्यक्त (**अजायत**) उत्पन्न होता है (**तत्**) उसी से (**आशाः**) दिशायें (**अन्वजायन्त**) उत्पन्न होती हैं (**तत् परि**) और उसी से (**उत्तानपदः**) सूर्य आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं।

भावार्थः—इन दैवी पदार्थों के उत्पत्ति काल में अव्यक्त से व्यक्त जगत् उत्पन्न होता है। उसी से दिशायें अथवा आकाश उत्पन्न होता है और उसी से सूर्य आदि पदार्थ जो अपनी किरणों को ऊपर फेंकते हैं वे भी उत्पन्न होते हैं ॥३॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त ।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(भूः) पृथिवी (उत्तानपदः) सूर्य से (जज्ञे) उत्पन्न होती है (भुवः) पृथिवी से (आशाः) पृथिवी की दिशा को बताने वाले भेद (अजायन्त) उत्पन्न होते हैं (अदितेः) उषा से (दक्षः) आदित्य (अजायत) उत्पन्न होता है (दक्षात् उ) आदित्य से (अदितिः) उषा (परि) उत्पन्न होती है ।

भावार्थः—पृथिवी सूर्य से उत्पन्न होती है और पृथिवी से उसके कोण और परिच्छेद को सूचित करने वाले भेद उत्पन्न होते हैं । अदिति=प्रातःकालिक उषा से आदित्य उत्पन्न होता और सायंकालिक उषा=सन्ध्या आदित्य से उत्पन्न होती है ॥४॥

अदि॑ति॒र्ह्यज॑निष्ट॒ दक्ष॒ या दु॑हि॒ता तव॑ ।
तां दे॒वा अन्व॑जायन्त भ॒द्रा अ॒मृत॑बन्धवः ॥५॥

पदार्थः—(अदितिः) उषा=सन्ध्या (या) जो (दक्षतव) इस आदित्य की (दुहिता) दुहिता है (अजनिष्ट) पैदा होती है (ताम्) उसको (भद्राः) उत्तम (अमृत बन्धवः) अमृत=जल को अपने अन्दर बांधने वाली (देवाः) किरणें (अन्वजायन्त) उत्पन्न करती हैं ।

भावार्थः—यह आदित्य की दुहिता भूत सन्ध्या उत्पन्न होती है जिसे जलधारी सूर्य-किरणें आदि उत्पन्न करती हैं ॥५॥

यद्दे॑वा अ॒दः स॑लि॒ले सुसं॑रब्धा॒ अति॑ष्ठत ।
अत्रा॑ वो॒ नृत्य॑तामिव ती॒व्रो रे॒णुरपा॑यत ॥६॥

पदार्थः—(यद्) जब (देवाः) ये देव पदार्थ (सुसंरब्धाः) अपने कारण स्वरूप को प्राप्त कर (अदः) इस (सलिले) कारण रूप प्रकृति में (अतिष्ठत) स्थित होते हैं (अत्र) तव इस अवस्था में (नृत्यताम्) नाचते हुए के समान (वः) इन का (तीव्रः) प्रचण्ड (रेणुः) परमाणु (अपायत्) चारों तरफ फैल जाता है ।

भावार्थः—जब ये देवपदा अपने कारण रूप को प्राप्त कर इस प्रकृति अथवा आकाश में स्थित होते हैं तब नाचते हुए के समान इनका तीव्र रेणु=परमाणु सर्वत्र फैलता रहता है ॥६॥

यद्दे॑वा॒ यत॑यो यथा॒ भुव॑ना॒न्यपि॑न्वत ।
अत्रा॑ समु॒द्र आ गू॒ळ्हमा सूर्य॑मजभर्तन ॥७॥

पदार्थ – (**यत्**) जब (**देवाः**) ये देव शक्तियां (**यतयः**) मेघों की (**यथा**) तरह (**भुवनानि**) लोकों को अपने परमाणुओं से (**अपिन्वत**) पूरित करते हैं कार्यरूप में परिवर्त्तित करते हैं, तब (**अत्र**) इस (**समुद्रे**) आकाश में (**आ गूढ़म्**) निगूढ़ (**सूर्यम्**) सूर्य को (**आजभर्तन**) चमका देते हैं।

भावार्थः जब मेघों की भाँति ये दिव्य पदार्थ अपने परमाणुओं से समस्त भुवनस्थ पदार्थों को पूरित कर कार्यरूप में ला देते हैं तब आकाश में सूर्य को भी चमका देते हैं ॥७॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्व१ स्परि ।
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्डमास्यत् ॥८॥

पदार्थः – (**अष्टौ**) आठ (**पुत्राः**) पुत्र वा कार्य (**अदितेः**) प्रकृति के होते हैं (**ये**) जो (**तन्वः परि**) शरीर से उत्पन्न होते हैं। वह अदिति=प्रकृति (**देवान्**) देवों को (**सप्तभिः**) सात पुत्रों से (**उप प्र ऐतु**) प्राप्त होती हैं (**मार्तण्डम्**) केवल कार्यरूप भूत संघात को (**परा**) परे (**आस्यत्**) रखती है।

भावार्थः—अदिति=प्रकृति के सात पुत्र हैं। वे हैं महत्तत्व, अहङ्कार और पंचतन्मात्रायें। ये प्रकृति कारण से उत्पन्न होते हैं। आठवां पुत्र जो कार्यरूप भूत संघात वा इन्द्रियसमूह है जिसे (मार्त्तण्ड) मरण धर्मा केवल कार्य कहा जाता है उसे उत्पन्न करती है ॥८॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमाभरत् ॥९॥

पदार्थः – (**सप्तभिः**) सात (**पुत्रैः**) पुत्रों=प्रकृति विकृतियों से प्रकृति (**पूर्व्यम्**) पूर्वकालिक (**युगम्**) युग अर्थात् सूक्ष्मावस्था को (**उप प्रैत्**) प्राप्त होती है, (**प्रजायै**) प्राणियों के शरीर अथवा जगदन्तवर्ती पदार्थों के संघातों को उत्पन्न करने के लिए और (**मृत्यवे**) मरने वा नष्ट होने के लिए (**त्वत्**) इससे (**मार्त्तण्डम्**) सूर्य वा कार्यरूप उत्पत्ति और मरणधर्मा पदार्थ को (**आभरत्**) आहृत करती है।

भावार्थः—सात प्रकृति विकृति रूपी पुत्रों से प्रकृति सूक्ष्मावस्था को प्राप्त रहती हैं परन्तु आठवें कार्यभूत संघात को उत्पन्न होने और नष्ट होने के लिए उत्पन्न करती है। यह इसकी कार्यावस्था होती है ॥९॥

यह दशम मण्डल में बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ७३

ऋषिः—१–११ गौरिवीतिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २, ५ त्रिष्टुप् । ३, ४, ८, १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ७ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ९ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ११ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

जनि॑ष्ठा उ॒ग्रः सह॑से तु॒राय॑ म॒न्द्र ओजि॑ष्ठो बहु॒लाभि॑मानः ।
अव॑र्ध॒न्निन्द्रं॑ म॒रुत॑श्चि॒दत्र॑ मा॒ता यद्वी॒रं द॒धन॒द्धनि॑ष्ठा ॥१॥

पदार्थः –(यत्) जब (धनिष्ठा) धारण करने वाली (माता) मातृ-भूमिस्थ प्रजा (वीरम्) वीर को धारण करती है अर्थात् राजा बनाती है तब वह (उग्रः) उग्र (मन्द्रः) स्तुतियोग्य (ओजिष्ठः) ओजिष्ठ (बहुलाभिमानः) अत्यधिक आत्म-सम्मानी और (सहसे) शत्रुओं के (तुराय) नाश करने के लिए (जनिष्ठाः) होता है । (अत्र) इस कार्य में (मरुतः चित्) सैन्यगण भी (इन्द्रम्) राजा को (अवर्धन्) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—जब मातृभूमिस्थ प्रजा वीर पुरुष को राजा बना देती है तो वह उग्र, स्तुत्य, ओजिष्ठ और आत्म सम्मान से युक्त होता है। वह शत्रुओं के संहार के लिए होता और इस कार्य में सैन्यगण भी उसको बढ़ाते हैं ॥१॥

द्रु॒हो निष॑त्ता पृश॒नी चि॒देवैः॑ पु॒रू शंसे॑न वावृधु॒ष्ट इन्द्र॑म् ।
अ॒भीवृ॑तेव॒ ता म॑हाप॒देन॑ ध्वा॒न्तात्प्र॑पि॒त्वादुद॑रन्त॒ गर्भाः॑ ॥२॥

पदार्थः– (द्रुहः) शत्रुओं से द्रोह करने वाले इन्द्र=राजा की (पृशनी-चित्) सेना भी (निषत्ता) उसके समीप स्थित होती है । और वह (एवैः) पदातियों से भी युक्त हुई होती है, (ते) वे सेना के लोग भी (पुरु) प्रभूत (शंसेन) प्रशंसा से (इन्द्रम्) राजा को (ववृधुः) बढाते हैं (ता) वे प्रजाजन (महापदेन) बड़े भारी राजाश्रय से (अभिवृता) सुरक्षित के समान (उद् अरन्त) उसी प्रकार ऊपर उठ जाते हैं जिस प्रकार (प्रपितत्वात् ध्वान्तात्) फैले हुए अन्धकार वाले मेघ से (गर्भाः) जल बाहर आ जाते हैं ।

भावार्थ—शत्रुओं के द्रोही राजा की सेना भी विविध पदातियों और गतिविधियों से युक्त हुई उसके साथ होती है । वे सेना के व्यक्ति भी बहुत

Scanned by CamScanner

प्रशंसा के साथ उसको बढ़ाते हैं। राजाश्रय से प्रजा रक्षित हुई विपत्तियों से उसी प्रकार ऊपर उठ जाती है जिस प्रकार गहरे अन्धकार वाले मेघ से पानी बाहर आ जाता है ॥२॥

ऋष्वा ते पादा प्र यज्जिगास्यवर्धन्वाजा उत ये चिदत्र ।
त्वमिन्द्र सालावृकान्त्सहस्रमासन्दधिषे अश्विना ववृत्याः ॥३॥

पदार्थः - (हे इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन् राजन् (ते) तेरे (पादा) दोनों चरण (ऋष्वा) महान् हैं (उत) और (ये चित्) जो भी (अत्र) इस राष्ट्र में (वाजा) वेगवान् व्यक्ति हैं वे (प्र अवर्धन्) तुझे बढ़ाते हैं (यत्) जब (प्र जिगासि) तू स्वयं शत्रुओं को जीतता है (हे इन्द्र) राजन् (त्वम्) तू (सहस्रम्) सहस्रों (सालावृकान्) कुत्तों के समान स्वामिभक्तों को (आसन्) मुख में अर्थात् मुख्य पदों पर (दधिषे) धारण करते हो, और (अश्विना) घोड़ों पर सवार सैन्य के दोनों पक्षों को (आववृत्याः) अपने अधीन रखते हो ।

भावार्थः - हे राजन् ! आपके दोनों चरण महान् हैं। जो कोई भी वेगवान् पुरुष इस राष्ट्र में हैं वे आप को बढ़ाते हैं। जब आप शत्रुओं पर जय प्राप्त करते हो। आप अनेकों स्वामिभक्तों को मुख्य पदों पर रखते हो और घुड़सवार दोनों सैन्य पक्षों को भी अधीन रखते हो ॥३॥

समना तूर्णिरुप यासि यज्ञमा नासत्या सख्याय वक्षि ।
वसाव्यामिन्द्र धारयः सहस्राश्विना शूर ददतुर्मघानि ॥४॥

पदार्थः (इन्द्र) हे राजन् ! (तूर्णिः) अत्यन्त वेग वाला तू (समना) संग्राम के समय में भी (यज्ञम्) यज्ञ से (उपयासि) जाते हो, (नासत्या) सत्य व्यवहार वाले मंत्री और न्यायाधीश को (सख्याय) मित्रभाव के लिए (वक्षि) धारण करते हो, (वसव्याम्) वसुसमूह=अर्थात् वसु विद्वानों के समूह में तुम (सहस्रम्) हजारों को (धारयः) धारण करते हो (हे शूर) हे शूरवीर राजन् ! (अश्विनौ) उत्तम विद्या और व्यवहार वाले मंत्री और न्यायाधीश भी (मघानि) धन ददतुः) देते हैं ।

भावार्थः--हे राजन् ! तू अत्यन्त वेग वाला है और युद्ध काल में भी यज्ञ में जाता है। सत्य व्यवहार वाले मंत्री और न्यायाधीश को आप अपना मित्र बनाते हो। विद्वानों के समूह में आप के सहस्रों विद्वान् होते हैं। हे शूर ! आपके मन्त्री और न्यायाधीश भी प्रजा को धन देते हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

मन्दमान ऋतादधि प्रजायै सखिभिरिन्द्र इषिरेभिरर्थम् ।
आभिर्हि माया उप दस्युमागान्मिहः प्र तम्रा अवपत्तमांसि ॥५॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) राजा (**ऋतात्**) यज्ञ से (**इषिरैः**) गमनशील (**सखिभिः**) मित्रों के साथ (**अधि मंदमानः**) अति हर्षित होकर प्रजा और यजमान के लिए (**अर्थम्**) अर्थ देता है, (**आभिः**) इन प्रजा जनों के द्वारा (**हि**) निश्चय (**मात्राः**) शत्रुओं के नाश की बुद्धि एवं युक्तियों को (**आ**) प्राप्त कर (**दस्युम**) शत्रु पर (**उप आ अगात्**) चढ़ाई करता है (**सः**) वह (**तम्राः**) रुकी हुई (**मिहः**) वृष्टि के समान (**तमांसि**) अन्धकारों को (**प्र अवयत्**) नष्ट कर देता है ।

भावार्थः—राजा यज्ञ से गतिशील मित्रों के साथ प्रसन्न होता हुआ प्रजा और यजमान को धन देता है । इन प्रजाओं के द्वारा वह शत्रुओं के विनाश की युक्ति और बुद्धि को प्राप्त कर शत्रु पर चढ़ाई करता है । जिस प्रकार वृष्टि रुकी हो तो उसे वायु झाड़ देता है उसी प्रकार वह राष्ट्र के सभी अन्धकारों को समाप्त कर देता है ॥५॥

सनामाना चिद् ध्वसयो न्यस्मा अवाहन्निन्द्र उषसो यथा नः ।
ऋष्वैरगच्छः सखिभिर्निकामैः साकं प्रतिष्ठा हृद्या जघन्थ ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) सूर्य वृत्र को मारने के लिए (**स नामाना चित्**) समान स्थान और नाम वाले वायु और अशनि को (**निध्वसयः**) भेजता है, (**यथा**) जिस प्रकार वह (**उषसः**) उषा के (**अनः**) शकट अथवा चक्र को (**अव अहन्**) नष्ट करता है, (**ऋष्वैः**) दीप्ति (**निकामैः**) इच्छा करने वाले (**सखिभिः**) मित्रों अर्थात् मरुतों के (**साकम्**) साथ (**अगच्छः**) जाता है तथा (**प्रतिष्ठा**) शरीरों (**हृद्या**) हृदयों का (**जघन्थ**) वध करता है ।

भावार्थः— सूर्य वृत्र=मेघ के मारने के लिए समान नाम और स्थान वाले वायु और अशनि को भेजता है । जिस प्रकार वह उषा के चक्र को नष्ट कर उदित होता है उसी प्रकार मित्र भूत मरुतों के साथ वह जाता है और मेघ के संघात और हृदय को विदारित करता है ॥६॥

त्वं जघन्थ नमुचिं मखस्युं दासं कृण्वान ऋषये विमायम् ।
त्वं चकर्थ मनवे स्योनान्पथो देवत्राञ्जसेव यानान् ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**त्वम्**) यह इन्द्र (**नमुचिम्**) जल को न छोड़ने वाले अर्थात् बांध रखने वाले मेघ को (**ऋषये**) क्रान्तदर्शी याज्ञिक के लिए (**दासम्**) अदाता को भी (**विमायम्**) मायारहित (**मखस्युम्**) दानशील (**कृण्वानः**) करता हुआ (**जघन्थ**) मारता है (**त्वम्**) वह (**मनवे**) मनुष्य के लिए (**देवत्रा**) देवों के मध्य जाने के (**पथः**) मार्गों को (**स्योनान्**) सुखद (**चकर्थ**) करता है तथा (**अंजसा इव**) अकुटिलरूप से (**यानान्**) चलने योग्य बनाता है ।

भावार्थः—यह इन्द्र=सूर्य क्रान्तदर्शी यज्ञकर्त्ता के लिए जल को न छोड़ने वाले मेघ को, जो अदाता है उसे मायारहित दानशील अर्थात् जल देने वाला बनाता हुआ मारता है । यह मनुष्य के लिए देवों के मध्य जाने वाले अर्थात् किरणों वायु आदि को प्राप्त करने वाले मार्गों को सुखद और सरलतया गम्य बनाता है । अर्थात् जल को आहरण कर आसानी से किरणों के पास पहुंचा कर अन्तरिक्ष में मेघ आदि बनाता है ॥७॥

त्वमेतानि पप्रिषे वि नामेशान इन्द्र दधिषे गभस्तौ ।
अनु त्वा देवाः शवसा मदन्त्युपरिबुध्नान्वनिनश्चकर्थ ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्रत्वम्**) यह इन्द्र सूर्य (**एतानि**) इन (**नाम**) जलों को (**वि पप्रिषे**) पूरित करता है, इसको (**ईशानः**) अधिकार में रखता हुआ (**गभस्तौ**) किरणों में (**दधिषे**) धारण करता है । (**त्वा**) इसको (**देवाः**) वायु आदि (**शवसा**) बल के साथ (**अनु मदन्ति**) और भी गतिशील करते हैं यह (**वनिनः**) जल वाले मेघों को (**उपरि बुध्नान्**) ऊपर मूल वाला अर्थात् उलटा (**चकर्थ**) कर देता है ।

भावार्थः—यह सूर्य इन जलों को अपनी किरणों में पूरित करता है । इसको अधिकरण में रखता हुआ धारण करता है, वायु आदि बल के साथ इसके सहायक होते हैं यह जल भरे मेघों को उलटा कर देता है और इससे उनका जल बहकर वर्षा करता है ॥८॥

चक्रं यदस्याप्स्वा निषत्तमुतो तदस्मै मध्विच्चच्छद्यात् ।
पृथिव्यामतिषितं यदूधः पयो गोष्वदधा ओषधीषु ॥९॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस इन्द्र का (**यत्**) जो (**चक्रम्**) आयुध (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**निषत्तम्**) निषण्ण है (**उतो**) अपि च (**तत्**) वह (**अस्मै**)

Scanned by CamScanner

इसके लिए (**मधु**) जल (**इत्**) भी (**चच्छद्यात्**) वश में रखता है (**यत्**) जो (**ऊधः**) मेघ से आया (**पयः**) जल (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**अतिसितम्**) विमुक्त हुआ है उसको (**गोषु**) किरणों में और (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**अदधाः**) देता है।

भावार्थः—इस इन्द्र का जो चक्र=आयुध अन्तरिक्ष में स्थित है वह इसके लिए जल को वश में करता है। जो मेघ से जल पृथिवी पर गिरता है उसे किरणों और ओषधियों आदि में यह इन्द्र देता है ॥९॥

अश्वा॑दि॒याये॑ति॒ यद्वद॒न्त्योज॑सो जा॒तमु॒त म॑न्य एनम् ।
म॒न्योरि॑याय ह॒र्म्ये॑षु तस्थौ॒ यतः॑ प्रज॒ज्ञ इन्द्रो॑ अस्य वेद ॥१०॥

पदार्थः कुछ विद्वान् लोग इस इन्द्र=विद्युत् को (**अश्वात्**) सूर्य से (**इयाय**) यह आया वा उत्पन्न हुआ है (**इति**) ऐसा (**यत्**) जो (**वदन्ति**) कहते हैं सो मैं (**एनम्**) इसको (**उत**) भी (**ओजसः**) वज्ररूपी ओज से ही (**जातम्**) उत्पन्न (**मन्ये**) मानता हूँ, (**अयम्**) यह (**मन्योः**) क्रोध से (**इयाय**) उत्पन्न हुआ है अतः जिससे (**हर्म्येषु**) शत्रुभूत मेघ के युद्धों में (**तस्थौ**) स्थित होता है (**यतः**) जहां से यह (**प्रजज्ञे**) उत्पन्न होता है, यह (**इन्द्रः**) इन्द्र ही (**अस्य**) इसको (**वेद**) जानता है।

भावार्थः कुछ विद्वान् कहते हैं कि इन्द्र=विद्युत् सूर्य से उत्पन्न होता है, मैं विद्वान् इसको ओज अर्थात् वज्ररूपी ओज से उत्पन्न हुआ मानता हूं। यह मन्यु से पैदा हुआ है इस लिए शत्रुभूत मेघों के युद्धों में स्थित रहता है। यह जहां से उत्पन्न होता है उसे यही इन्द्र ही जानता है। जो भी बलकृति है वह सब इन्द्र का कार्य है अतः बल के इन उद्गमों का विकल्प उठाकर विद्वानों के कथन द्वारा इन्द्र का रहस्य बताया गया है ॥१०॥

वयः॑ सुप॒र्णा उप॑ सेदु॒रिन्द्रं॑ प्रि॒यमे॑धा॒ ऋष॑यो॒ नाध॑मानाः ।
अप॑ ध्वा॒न्तमू॑र्णु॒हि पू॒र्धि चक्षु॑र्मुमु॒ग्ध्य॑स्मान्नि॒धये॑व ब॒द्धान् ॥११॥

पदार्थः—(**वयः**) गमनशील (**सुपर्णाः**) सुपतनशील आदित्य रश्मियें (**इन्द्रम्**) विद्युत् को (**उपसेदुः**) प्राप्त होती हैं, ये रश्मियां (**प्रियमेधाः**) पवित्र शुद्ध, (**ऋषयः**) देखने के हेतु (**नाधमानाः**) कामना करती हुई होती हैं, यह इन्द्र

Scanned by CamScanner

(ध्वान्तम्) अन्धकार को (अप ऊर्णुहि) दूर करता है (चक्षुः) देखने की शक्ति को (पूर्धि) पूरित करता है (अस्मान्) हम सबको (मुमुग्धि) मुक्त करता है, अन्धकार से जिस प्रकार (निधया) पाश से (बद्धान्) बंधे हुओं को लोग मुक्त करते हैं ।

भावार्थः-- गमनशील बिखरने वाली आदित्य की रश्मियें विद्युत् को प्राप्त होती हैं । ये शुद्ध पवित्र, देखने के साधन और विद्युन्मय होने के लिए उन्मुख होती हैं । यह इन्द्र अन्धकार को दूर करता है, देखने की शक्ति को पूरित करता है और पाश में बंधे लोगों के समान हम सबको अन्धकार से मुक्त करता है । इसका आध्यात्मिक अर्थ परमेश्वरपरक होगा ।।११।।

यह दशम मण्डल में तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—७४

ऋषिः –१—६ गौरिवीतिः ।। **देवता** --इन्द्रः ।। **छन्दः**—१, ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् ।। **स्वरः**— धैवतः ।।

वसूनां वा चर्कृष इयक्षन्धिया वा यज्ञैर्वा रोदस्योः ।
अर्वन्तो वा ये रयिमन्तः सातौ वनुं वा ये सुश्रुणं सुश्रुतो धुः ।।१।।

पदार्थः—(इयक्षन्) धनों को देने की इच्छा करता हुआ इन्द्र=वायु अथवा सूर्य (धिया) कर्म से (वा) अथवा (यज्ञैः) यज्ञों से (रोदस्योः) पृथिवी और आकाशस्थ मनुष्यों और शक्तियों द्वारा (चर्कृषे) आकृष्ट किया जाता है, (ये) जो (अर्वन्तः) जाने वाले (वा) और (रयिमन्तः) धन वाले हैं उनके द्वारा (सातौ) संसार संग्राम में वह आकृष्ट किया जाता है, (ये) जो (सुश्रुतः) प्रसिद्ध लोग (सुश्रुणम्) प्रसिद्ध (वनुम्) हिंसा को (धुः) धारण करते हैं उनके द्वारा भी इन्द्र आकृष्ट किया जाता है ।

भावार्थः—धनों का दान करता हुआ वायु अथवा सूर्य कर्म से अथवा यज्ञों से पृथिवी और आकाश के बीच रहने वाले मनुष्यों से आकृष्ट किया

Scanned by CamScanner

जाता है। जाने वाले और धन वालों से संसार संग्राम में आकृष्ट किया जाता है। शत्रु आदि हिंसा करने वालों से भी आकृष्ट किया जाता है ॥१॥

हवं एषामसुरो नक्षत्र द्यां श्रवस्यता मनसा निंसत क्षाम् ।
चक्षाणा यत्र सुवितायं देवा द्यौर्न वारेभिः कृणवन्त स्वैः ॥२॥

पदार्थ—(**एषाम्**) इन याज्ञिकों का (**असुरः**) प्रेरक (**हवः**) शब्द (**द्याम्**) आकाश को (**नक्षत्**) व्याप्त करता है तथा (**देवाः**) इन्द्र सम्बन्धी दिव्य पदार्थ (**श्रवस्यता**) अन्न हवि को चाहते हुए (**मनसा**) शक्ति से (**क्षाम्**) पृथिवी को (**निंसत**) प्राप्त होते हैं (**यत्र**) जिस पर (**चक्षाणाः**) सबके देखने की हेतु होती हुई किरणों (**सुविताय**) लोगों के हित के लिए (**वारेभिः**) वरणीय (**स्वैः**) अपने तेजों से (**द्यौर्न**) द्युलोक के समान (**कृण्वन्त**) करते हैं।

भावार्थः— इन यज्ञकर्त्ताओं का प्रेरक शब्द आकाश तक व्याप्त होता है। इन्द्र से सम्बन्ध रखने वाले दिव्य पदार्थ हवि ग्रहण करने की शक्ति से पृथिवी को प्राप्त होते हैं। उनकी किरणें वा तेज लोगों के देखने का कारण होते हुए लोगों के हितार्थ पृथिवी को अपने तेज से द्युलोक के समान करते हैं ॥२॥

इयमेषाममृतानां गीः सर्वताता ये कृपणन्त रत्नम् ।
धियं च यज्ञं च साधन्तस्ते नो धान्तु वसव्य१ मसामि ॥३॥

पदार्थः—(**इयम्**) यह (**एषाम्**) इन (**अमृतानाम्**) यष्टव्य देवों की (**गीः**) स्तुतिरूपा वाणी है, (**सर्वतातौ**) यज्ञ में (**ये**) जो (**रत्नम्**) अमूल्य धन को, (**कृपणन्त**) देते हैं, (**च**) और (**धियम्**) कर्म (**च**) और (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**साधन्तः**) सिद्ध कराते हुए (**ते**) वे (**नः**) हमें (**असामि**) प्रभूत (**वसव्यम्**) धन-समूह को (**धान्तु**) देवें।

भावार्थः—यह इन यष्टव्य देवों की प्रशंसामयी स्तुति है, यज्ञ में जो तेजोमय धन को देते हैं। कर्म और यज्ञ को सिद्ध एवं सम्पन्न कराते हुए प्रभूत धनसमूह को देते हैं ॥३॥

आ तत्त इन्द्रायवः पनन्ताभि य ऊर्वं गोमन्तं तितृत्सान् ।
सकृत्स्वं१ ये पुरुपुत्रां महीं सहस्रधारां बृहतीं दुदुक्षन् ॥४॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**सकृत्–स्वम्**) एक बार ही अनेक बार के अन्नों वनस्पति आदि को उत्पन्न करती हैं उस (**बृहतीम्**) विशाल, (**पुरुपुत्राम्**) बहुत पुत्रों वाली अर्थात् बहुत पुरुषों वाली और (**सहस्र धाराम्**) सहस्रों धाराओं वाली (**महीम्**) भूमि को (**दुधुक्षन्**) दुहना चाहते हैं तथा जो (**गोमन्तम्**) गौ बैल वाले (**ऊर्वम्**) सस्य समूह को (**तितृत्सान्**) काटना चाहते हैं (**ते**) वे (**आयवः**) मनुष्य लोग (**तत्**) उस समय (**ते**) तेरी (**पनन्त**) स्तुति करते हैं।

भावार्थः—जो एक ही वार में अनेक वार के अन्न, वनस्पति और ओषधि को उत्पन्न करती है उस विशाल, बहुत मनुष्यों वाली, सहस्रों धाराओं, धन अन्नादि को उत्पन्न करने वाली भूमि को दुहना चाहते हैं तथा गौ, बैल से युक्त सस्य समूह को काटना चाहते हैं वे मनुष्य उस समय तेरी स्तुति करते हैं ।।४।।

शचीव इन्द्रमवसे कृणुध्वमनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ।
ऋभुक्षणं मघवानं सुवृक्तिं भर्ता यो वज्रं नर्यं पुरुक्षुः ।।५।।

पदार्थः—(**हे शचीवः**) हे करने वाले यजमानो ! तुम (**अनानतम्**) कभी भी न झुकने वाले (**पृतन्यून्**) शत्रुओं का (**दमयन्तम्**) दमन करने वाले (**ऋभुक्षणम्**) महान् (**मघवानम्**) धन वाले (**सुवृक्तिम्**) प्रशंसा योग्य (**इन्द्रम्**, राजा को (**अवसे**) अपनी रक्षा के लिए (**कृणुध्वम्**) करो अर्थात् रक्षक बनाओ (**पुरुक्षुः**) बहुत गर्जना वाला (**यः**) जो (**नर्यम्**) मनुष्यों के हितकारी (**वज्रम्**) आयुध को (**भर्ता**) धारण करता है ।

भावार्थः—हे यजमान लोगो ! तुम न झुकने वाले, शत्रुओं के दमनकारी, महान्, धन वाले, प्रशंसायोग्य राजा को अपना रक्षक बनाओ जो गड़गड़ाता हुआ स्वयम् मनुष्यों के हितकारी आयुध को धारण करता है ।।५।।

यद्वावानं पुरुतमं पुराषाळा वृत्रहेन्द्रो नामान्यप्राः ।
अचेति प्रासहस्पतिस्तुविष्मान्यदीमुश्मसि कर्तवे करत्तत् ।।६।।

पदार्थः—(**वृत्रहा इन्द्रः**) विघ्नकारी शत्रुओं का हन्ता राजा (**पुराषाड्**) शत्रु पुरों का विजय करने वाला (**पुरुतमम्**) शत्रुओं के श्रेष्ठ नेता का (**ववान**) नाश करता है, (**नामानि**) अपने नामों और ख्यातियों को (**आ अप्राः**) पूर्ण करता

Scanned by CamScanner

है, (तुविष्मान्) बड़ा बलशाली, (प्रसहस्पतिः) बड़ेभारी सैन्यवल का स्वामी (अन्वेति) जाना जाता है (यत्) जो हम प्रजाजन (कर्त्तवे) करना चाहें (तत्) उसे (करत्) करता है ।

भावार्थः—विघ्नकारी शत्रुओं का घातक, शत्रुओं के पुरों का विजय करने वाला वह शत्रुओं के नेता का नाश करता है। अपने नाम और ख्यातियों को सार्थक करता है। शक्तिशाली और बड़े भारी सैन्यबल का स्वामी जाना जाता है। हम प्रजाजन जो करना चाहते हैं वह नहीं करता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७५

ऋषिः—१—६ सिन्धुक्षित्प्रैयमेधः देवताः—नद्यः ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती। २, ३ विराड्जगती। ४ जगती। ५, ७ आर्चीस्वराड्जगती। ६ आर्चीभुरिग्जगती। ८, ९ पादनिचृज्जगती ॥
स्वरः—निषादः ॥

प्र सु व॑ आपो महि॒मान॑मुत्त॒मं का॒रुर्वो॑चाति॒ सद॑ने वि॒वस्व॑तः ।
प्र स॒प्तस॑प्त त्रे॒धा हि च॑क्र॒मुः प्र सृ॒त्व॑रीणा॒मति॒ सिन्धु॒रोज॑सा ॥१॥

पदार्थः—(आपः वः) इन जलों की (उत्तमम्) उत्तम (महिमानम्) महिमा को (कारुः) ऋत्विग् (विवस्वतः) यजमान के (सदने) गृह में अर्थात् यज्ञशाला में (प्र सुवोचाति) बोलता है, ये नदियां (सप्तसप्त) सात सात होकर (त्रेधा) पृथिवी अन्तरिक्ष और द्युलोक तीन प्रकार से (प्रचक्रमुः) बहती है (प्रसृत्वरीणाम्) बहने वाली इनके मध्य में (सिन्धुः) अति स्यन्दन=बहाव वाली नदी (ओजसा) अपने वेगबल से (अति) दूसरी को अतिक्रमण करके (प्र) बहती है ।

भावार्थः—इन जलों की उत्कृष्टतम महिमा का ऋत्विग् यज्ञशाला में वर्णन करता है। ये नदियां जो प्रत्येक तीनों लोकों में बहती हैं सात-सात करके (७×३=२१) इक्कीस होती है। इन शीघ्रगामिनी नदियों में अत्यन्त स्पन्दन वाली नदी अधिक वेग वाली होती है ॥१॥

Scanned by CamScanner

प्र तेऽरदद्वरुणो यातवे पथः सिन्धो यद्वाजाँ अभ्यद्रवस्त्वम् ।
भूम्या अधि प्रवता यासि सानुना यदेषामग्रं जगतामिरज्यसि ॥२॥

पदार्थः– (सिन्धो ते) इस सिन्धु=स्यन्दनशीला अधिक बहाव वाली नदी के (यातवे) जाने के लिए (वरुणः) आदित्य ने (पथः) मार्ग (अरदत् बनाया है, (यत्) जिससे (त्वम्) यह (वाजान्) अन्न आदि को (अभि) लक्ष्य में रखकर (अद्रवः) बहती है । (भूम्याः) पृथिवी (अधि) पर (सानुना) ऊंचे उठे हुए (प्रवता) मार्ग से (यासि) बहती है (यत्) जिस उठे हुए मार्ग से बहती हुई यह (एषाम्) इन (जगताम्) जङ्गम प्राणियों पर (अग्रम्) प्रत्यक्ष (इरज्यसि) प्रभाव दिखाती है ।

भावार्थः—अति बहाव वाली नदी के जाने=बहने के लिए आदित्य ने मार्ग बना रखा है जिससे यह अन्न आदि को लक्ष्य में रखकर बहती है । भूमि पर के ऊंचे मार्ग से यह बहती है । जिस उन्नत मार्ग से यह बहती है वह इन प्राणियों को प्रत्यक्ष होता है और यह प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाती है ॥२॥

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना ।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥३॥

पदार्थः—(भूम्याः) भूमि के (उपरि) ऊपर होने वाला यह वेगवती नदी के बहाव का (स्वनः) शब्द (दिवि) आकाश में (यतते) पहुंचता है (भानुना) सूर्य के तेज से युक्त होकर (अनन्तम्) पर्याप्त (शुष्मम्) बल को (उत् इयर्ति) प्राप्त कराती है । (अभ्रादिव) मेघ से जिस प्रकार (वृष्टयः) वृष्टियाँ (प्रस्तनयन्ति) शब्द करती हुई भूमि पर पड़ती हैं उसी प्रकार इसके शब्द होते हैं, (यत्) जब (सिन्धुः) अति वेग वाली नदी (वृषभः न) सांड के समान (रोरुवत्) शब्द करती हुई (एति) जाती वा बहती है ।

भावार्थः—जब यह वेगवाली नदी सांड की तरह शब्द करती हुई बहती है तब मेघ से होने वाली वृष्टि के समान शब्द होता है। इसके बहाव का शब्द पृथिवी पर होता हुआ आकाश में पहुंचता है । सूर्य की किरणों से इसकी ऊर्मियां युक्त होती है और यह नदी अपने वेग को और भी बढ़ा लेती है ॥३॥

Scanned by CamScanner

अभि त्वा सिन्धो शिशुमिन्न मातरो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः ।
राजेव युध्वा नयसि त्वमित्सिचौ यदासामग्रं प्रवतामिनक्षसि ॥४॥

पदार्थः—(**सिन्धो त्वा**) इस वेग वाली नदी को (**शिशुम्**) शिशु को (**मातर इत् न**) माताओं के समान (**पयसा**) दूध से युक्त (**धेनवः इव**) गायों के समान (**वाश्राः**) शब्द करती हुई दूसरी नदियां (**अभि अर्षन्ति**) प्राप्त होती —मिलती हैं, (**त्वम् इत्**) यह ही (**युध्वा**) युद्ध करने वाले (**राजा इव**) राजा के समान (**सिचौ**) पानी से भरे दोनों तटों को (**नयसि**) बहाती है, (**यत्**) जब (**आसाम्**) इन (**प्रवताम्**) साथ में जाने वाली नदियों को (**अग्रम्**) आगे (**इनक्षि**) व्याप्त करती है ।

भावार्थः— जिस प्रकार मातायें शिशुओं को मिलती हैं और जिस प्रकार दूध से भरी हुई नव प्रसूता गाय आती है उसी प्रकार शब्द करती हुई दूसरी नदियां इसमें मिलती हैं । युद्ध करने वाले राजा के समान यह जब इसमें मिली नदियों के आगे रहती है और बाढ़ आती है तो दोनों तटों को भी बहाती है ॥४॥

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया ॥५॥

पदार्थः—(**इमम्**) इस मेरे (**स्तोमम्**) प्रशंसा वचन को ये नदियां (**आसचत**) सब प्रकार से सेवित कराती है (**शृणुहि**) सुनवाती है (**गङ्गे**) अति गमन शील नदी, (**यमुने**) मिलकर भी और अलग रहकर भी चलने वाली नदी, (**सरस्वति**) अधिक जल वाली नदी, (**शुतुद्रि**) शीघ्र बहने वाली नदी, (**परुष्ण्या**) पर्व वाली कुटिल गामिनी नदी, (**असिक्न्या**) जो नीले पानी वाली है, (**मरुद्वृधे**) मरुतों से बढ़ने वाली (**वितस्तया**) विस्तार वाली नदी के साथ (**आर्जिकीये**) सीधे बहने वाली नदी, (**सुषोमया**) जिसके किनारे पर सोमलता आदि हों ।

भावार्थः—ये भिन्न-भिन्न प्रकार के बहावों और जलों से युक्त नदियां हैं जिनका परिज्ञान करना चाहिए ॥५॥

सूचना—ये कोई व्यक्ति वाचक नाम नहीं हैं । इनके विषय में मेरी पुस्तक 'वैदिक इतिहास विमर्श' का वैदिक इतिहासों का निराकरण प्रकरण देखें ।

Scanned by CamScanner

तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या ।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्न्वा सरथं याभिरीयसे ॥६॥

पदार्थः— (**सिन्धो त्वम्**) यह सिन्धु=अधिक वेग वाली नदी (**क्रुमुम्**) क्रमणशील (**गोमतीम्**) गौ आदि जिसके किनारे पर चरती हों ऐसी नदी के प्रति (**यातवे**) जाने के लिए (**प्रथमम्**) पहले (**तृष्टामया**) क्षिप्रगामिनी जलधारा से (**सजूः**) मिलती है (**सुसर्त्वा**) उत्तम प्रकार से सरण वाली, (**रसया**) जलमयी (**त्या**) उस (**श्वेत्या**) श्वेत जलों वाली (**कुभया**) जिसके पानी में भूमि भासती है तथा (**मेहत्न्वा**) जिसमें जल किनारों पर सीझता है ऐसी नदी के साथ मिलती है (**याभिः**) जिनके साथ (**सरथम्**) प्रकाश सहित (**ईयसे**) जाती है ।

भावार्थः ये सब नदियां है जो अधिक बहाव वाली नदी से मिलकर सूर्य के प्रकाश में बहती हुई जाती है ॥६॥

ऋजीत्येनी रुशती महित्वा परि ज्रयांसि भरते रजांसि ।
अदब्धा सिन्धुरपसामपस्तमाश्वा न चित्रा वपुषीव दर्शता ॥७॥

पदार्थः—(**ऋजीती**) ऋजुगामिनी (**एनी**) श्वेत वर्णवाली (**रुशती**) भासमान् स्पन्दनवती नदी (**जयांसि**) वेग वाले जलों को (**परि भरते**) भरती है (**अदब्धा**) प्रवृद्ध (**सिन्धुः**) स्पन्दनवती नदी (**अप्साम्**) वेग वालियों में (**अपस्तमा**) अधिक वेगवाली है । यह (**अश्वा**) घोड़ी के (**न**) समान (**चित्रा**) चायनीय (**वपुषीइव**) शरीर वाली योषित् के समान (**दर्शता**) दर्शनीय होती है ।

भावार्थः—यह स्पन्दनशील नदी जो वेग वाली नदियों में अत्यधिक वेग वाली है और जो अश्वा तथा शोभन शरीर वाली योषित् के समान दिखाई पड़ती है वेग वाले जलों को अपने अन्दर भरती है ॥७॥

स्वश्वा सिन्धुः सुरथा सुवासा हिरण्ययी सुकृता वाजिनीवती ।
ऊर्णावती युवतिः सीलमावत्युताधि वस्ते सुभगा मधुवृधम् ॥८॥

पदार्थः—(**सिन्धुः**) यह स्पन्दन वाली नदी (**स्वश्वा**) अश्वों वाले प्रदेश वाली, (**सुरथा**) उत्तम रथ जिसके प्रदेश में होते हैं, (**सुवाशाः**) जो उत्तम वस्त्रों के बनने के प्रदेश वाली होती है, (**हिरण्ययी**) जिसके किनारे के प्रदेशों में सोने

Scanned by CamScanner

आदि की खानें भी होती है, (सुकृता) उत्तम कर्म जहां पर होते हैं, (वाजिनीवती) अन्नों वाली, (ऊर्णावती) जिसके प्रदेश में ऊन होती है, (युवतिः) सदा जलों से भरी हुई, (सीलमावती) ओषधि और वनस्पति से युक्त (उत) और (सुभगा) खुले प्रकाश वाली (मधुवृधम्) जल को बढाने वाले प्रदेश अथवा ओषधि को बढ़ाने वाले, अथवा मधु को बढ़ाने वाले प्रदेश को (अधि वस्ते) घेरती है।

भावार्थः -- ऐसी स्पन्दनशील नदी के किनारे के प्रदेशों में घोड़े, रथ-निर्माण, वस्त्रोत्पादन, स्वर्ण आदि धातुओं की खानें, ऊन की पैदावार, औषधियां आदि अधिकतर होती हैं ॥८॥

सुखं रथं युयुजे सिन्धुरश्विनं तेन वाजं सनिषदस्मिन्नाजौ ।
महान्ह्यस्य महिमा पनस्यतेऽदब्धस्य स्वयशसो विरप्शिनः ॥९॥

पदार्थः -- नदियों के नदी के समान वर्णन करने और मन्त्र के देवता के रूप में वर्णन करने की शैली है। यहां पर सिंधु नदी रूप में नहीं बल्कि नदी देवता रूप में वर्णित है —

(**सिन्धु**) अन्तरिक्षस्थ जल-प्रवाह अथवा जल को स्थित रखने वाला तत्त्व=वरुण (**सुखम्**) सुखकर (**अश्विनम्**) किरणों वाले (**रथम्**) चक्र को (**युयुजे**) जोड़ता है। (**तेन**) उससे (**वाजम्**) अन्न को (**अस्मिन्**) इस (**आजौ**) संसार संग्राम में (**सनिषत्**) देता है (**अस्य**) इसकी (**महिमा**) महत्ता (**महान्**) महती (**पनस्यते**) सुनी जाती है (**हि**) क्योंकि यह (**अदब्धस्य**) प्रभाव शाली (**स्वयशसः**) स्वयं यशस्वी और (**विरप्शिनः**) महाशक्ति है।

भावार्थः— अन्तरिक्षस्थ जल वेग (सिन्धुः) सुखकर और सूर्य किरणों के जाल को अपने साथ जोड़ता है। उससे अन्न आदि को इस संसार में देता है। उसकी महत्ता महती है। वह प्रभाव शाली, स्वयं यशस्वी और महा शक्ति है ॥९॥

सूचना - इस सूक्त में नदियों का वर्णन है। ये कोई विशेष व्यक्ति वाचक नाम वाली नदी नहीं हैं। क्योंकि इनका पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में होना भी बतलाया गया है।

यह दशम मण्डल में पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—७६

ऋषिः—१—८ जरत्कर्ण ऐरावतः सर्पः ॥ देवताः—ग्रावाणः ॥ छन्दः—
१, ६, ८, पादनिचृज्जगती । २, ३ आर्चीस्वराड्जगती । ४, ७
निचृज्जगती । ५ आसुरीस्वराडार्चीनिचृज्जगती ॥
स्वरः—निषादः ॥

आ व ऋञ्जस ऊर्जां व्युष्टिष्विन्द्रं मरुतो रोदसी अनक्तन ।
उभे यथा नो अहनी सचाभुवा सदः सदो वरिवस्यात उद्भिदा ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो ! (**ऊर्जाम्**) ऊर्जवती उषाओं के (**व्युष्टिषु**) उदित होने पर प्रभात वेला में मैं स्तावक वा यजमान (**वः**) आप सबको (**आ-ऋञ्जसे**) सुसज्जित करता हूं, आप लोग ही (**इन्द्रम्**) विद्युत् (**मरुतः**) मरुद्गण (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**अनक्तन**) हमारे ज्ञान में व्यक्त कराते हो । (**यथा**) जिस प्रकार (**सचाभुवा**) सहोत्पन्न द्यु और पृथिवी हमें अन्न आदि से (**सदः सदः**) सभी याग गृहों में (**वरिवस्यातः**) सेवा करते हैं उसी प्रकार (**अहनी**) दिन और रात्रि भी (**नः**) हमें (**उद्भिदा**) उद्भेदक अन्न आदि धनों से युक्त करें ।

भावार्थः—हे विद्वज्जनो ! मैं यजमान आप सबको उषाओं के उदय में (प्रभात वेला और सन्ध्या वेला में) सुसज्जित करता हूं। आप हमें विद्युत्, मरुद्गण, द्यु और पृथिवी लोक का ज्ञान देते हो। जिस प्रकार द्यु और पृथिवी हमारे यज्ञों में हमें लाभ पहुचाते हैं वैसे ही दिन और रात्रि भी अन्न आदि से हमें युक्त करें ॥१॥

तदु श्रेष्ठं सवनं सुनोतनात्यो न हस्तयतो अद्रिः सोतरि ।
विदद्ध्य१र्यो अभिभूति पौंस्यं महो राये चित्तरुते यदर्वतः ॥२॥

पदार्थ—हे विद्वानो ! आप लोग (**तत्**) उस (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**सवनम्**) यज्ञ को (**सुनोतन**) करो, (**अत्यः न**) जिस प्रकार अश्व (**हस्तयतः**) हाथों से नियन्त्रित होकर (**सोतरि**) अपने चलाने वाले के अधीन रहकर (**पौंस्यम्**) बल को (**विदत्**) प्राप्त करता है । (**अद्रिः**) आदरणीय (**अर्यः**) यजमान (**अभि-भूति**) प्रभावयुक्त (**पौंस्यम्**) बल को (**विदत्**) प्राप्त करता है । (**यत्**) यतः (**महः**) महान् (**राये**) धन की प्राप्ति के लिए (**अर्वतः**) आक्रमणकारी विघ्नों को (**तरुते**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग उस श्रेष्ठ यज्ञ को करो जो सब का कल्याणकारी है। जिस प्रकार घोड़ा हाथों से नियन्त्रित होकर चलाने वाले के आधीन रहकर बल को प्राप्त करता है उसी प्रकार आदरणीय यजमान विद्वानों के हाथों में रहकर प्रभावशाली बल को प्राप्त करता है। यतः वह महान् धन की प्राप्ति के लिए आक्रमणकारी विघ्नों-बाधाओं को नष्ट करता है ॥२॥

तदिद्ध्यस्य सवनं विवेरपो यथा पुरा मनवे गातुमश्रेत् ।
गोअर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥३॥

पदार्थः—(**अस्य**) इसका (**तत् सवनम्**) वह यज्ञ (**अपः**) समस्त प्रजाओं और लोकों को (**विवेः**) व्याप्त करे, जिससे (**यथा पुरा**) पूर्ववत् (**मनवे**) मनुष्य के हितार्थ (**गातुम्**) ज्ञान को (**अश्रेत्**) प्राप्त करे, (**गोऽअर्णसि**) गायों को छिपाने वाले (**अश्वनिर्णिजि**) घोड़ों को छिपाकर रूपान्तर देने वाले (**त्वाष्ट्रे**) शत्रु में हन्तव्य भावना करे, विद्वान् और लोग (**अध्वरेषु**) अहिंस्य कर्मों में (**ईम्**) इव (**अध्वरान्**) यज्ञों का (**अशिश्रयुः**) आश्रय लेवें।

भावार्थः—इस यजमान का यज्ञ विविध लोकों और प्रजाओं को व्याप्त करे जिससे पूर्ववत् मनुष्य के हितार्थ ज्ञान को वह प्राप्त करे। गायों को छिपाने वाले तथा अश्वों को छिपाकर रूपान्तर देने वाले में हन्तव्य भावना करे। तथा अहिंस्य कर्मों में यज्ञों को स्थान दे ॥३॥

अप हत रक्षसो भङ्गुरावतः स्कभायत निर्ऋतिं सेधतामतिम् ।
आ नो रयिं सर्ववीरं सुनोतन देवाव्यं भरत श्लोकमद्रयः ॥४॥

पदार्थः—(**अद्रयः**) हे आदरणीय विद्वानो ! (**रक्षसः**) राक्षस वृत्तियों को (**अप हत**) विनष्ट करो, (**भंगुरावतः**) नियम व्यवस्था को भंग करने वालों को (**स्कभायत**) दूर करो (**निर्ऋतिम्**) दुःखदायी आपदा तथा (**अमतिम्**) अज्ञानता को (**अपसेधत**) दूर भगाओ, (**नः**) हमारे लिए (**सर्ववीरम्**) सर्व प्रकार के पुत्रों और वीरों वाले (**रयिम्**) धन को (**सुनोतन**) दो (**देवाव्यम्**) भगवान् की प्यारी (**श्लोकम्**) स्तुति को (**भरत**) संपादित करो।

भावार्थः—हे आदरणीय विद्वानो ! आप राक्षसी प्रवृत्तियों को नष्ट करो, नियमों की अव्यवस्था करने वालों को दूर भगाओ, दुःखदायी आपदा

Scanned by CamScanner

और अज्ञता को दूर फेंको, हमारे लिए सब प्रकार पुत्र और वीर आदि से युक्त धन दो और भगवान् की प्यारी स्तुति का संपादन करो ॥४॥

दिवश्चिदा वोऽमवत्तरेभ्यो विभ्वना चिदाश्वपस्तरेभ्यः ।
वायोश्चिदा सोमरभस्तरेभ्योऽग्नेश्चिदर्च पितुकृत्तरेभ्यः ॥५॥

पदार्थः-- हे यजमान तू ! (**दिवः चित्**) आदित्य से भी (**अमवत्तरेभ्यः**) बलवाले (**वः**) इव (**विभ्वना चित्**) विद्युत् से भी (**आशु अपस्तरेभ्यः**) शीघ्र कर्म करने वाले, (**वायोः चित्**) वायु से भी (**सोमरभस्तरेभ्यः**) प्रेरक बल से बलशाली (**अग्नेः चिद्**) अग्नि से भी (**पितुकृत्तरेभ्यः**) अधिक अन्न को उत्पन्न करने वाले प्राणबलों के लिए (**अर्च**) आदर रख ।

भावार्थः—हे यजमान ! तू आदित्य से भी अधिक बल वाले, विद्युत् से भी अधिक शीघ्र कार्य करने वाले और अग्नि से भी अधिक अन्न उत्पन्न करने वाले इन प्राणों के ज्ञान के लिये आदर रख ॥५॥

भुरन्तु नो यशसः सोत्वन्धसो ग्रावाणो वाचा दिविता दिवित्मता ।
नरो यत्र दुहते काम्यं मध्वाघोषयन्तो अभितो मिथस्तुरः ॥६॥

पदार्थः— (**यशसः**) यशस्वी (**ग्रावाणः**) विद्वज्जन (**अन्धसः**) प्राणधारक अन्न से (**सोतुः**) उत्पन्न रस को (**भरन्तु**) प्राप्त करें, और औरों को भी देवें, (**यत्र**) जिसमें (**नरः**) मनुष्य (**दिविता**) उत्तम कामना से प्रेरित होकर (**दिवित्मता**) स्फूर्तिदायक (**वाचा**) वाणी से (**मिथस्तुरः**) परस्पर वेगवान् होकर एवं मिलकर (**अभितः**) सब ओर (**आघोषयन्तः**) ज्ञानोपदेश करते हुए (**काम्यम**) चाहने योग्य (**मधु**) मधुर ज्ञान को (**दुहते**) दुहे अर्थात् प्राप्त करे ।

भावार्थः—यशस्वी विद्वज्जन अन्न से उत्पन्न किये गए रस को प्राप्त करें और औरों को देवें । जिसमें मनुष्यजन कामना से प्रेरित होकर स्फूर्ति-दायक वाणी से परस्पर मिलकर अथवा परस्पर वेगवान् होकर ज्ञानोपदेश करते हुए चाहने योग्य मधुर ज्ञान को प्राप्त करें ॥६॥

सुन्वन्ति सोमं रथिरासो अद्रयो निरस्य रसं गविषो दुहन्ति ते ।
दुहन्त्यूधरुपसेचनाय कं नरो हव्या न मर्जयन्त आसभिः ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**रथिरासः**) देहरूप रथ में विद्यमान (**अद्रयः**) आदरणीय (**नरः**) नेता विद्वज्जन (**सोमम्**) सोम को (**सुन्वन्ति**) चुआते हैं (**गविषः**) स्तुति करने की कामना करते हुए (**ते**) वे (**ऊधः**) उस सोम से (**रसम्**) रस को (**उपसेचनाय**) अग्नि के उपसेचन के लिए (**निः दुहन्ति**) दोहन करते हैं **न**) यथा (**हव्या**) हव्य शेष को लोग (**आसभिः**) मुख से शेषभक्षण द्वारा (**मर्जयन्ति**) शुद्ध करते हैं।

भावार्थः—देहरूप रथ में स्थित आदरणीय पथप्रदर्शक विद्वज्जन सोम को निचोड़ते हैं और स्तुति की कामना करते हुए वे सोम से रस को अग्नि के उपसेचन के लिए दुहते हैं जिस प्रकार हुतशेष को लोग भक्षण द्वारा शुद्ध करते हैं ॥७॥

एते नरः स्वपसो अभूतन य इन्द्राय सुनुथ सोममद्रयः ।
वामंवामं वो दिव्याय धाम्ने वसुवसु वः पार्थिवाय सुन्वते ॥८॥

पदार्थः—(**नरः**) हे नेता (**अद्रयः**) आदरणीय विद्वानो ! (**एते**) ये (**ये**) ये जो आप लोग (**इन्द्राय**) यज्ञ में इन्द्र के लिए (**सोमम्**) सोम को (**सुनुथ**) तैयार करते हो उससे (**सु अपसः**) उत्तम कर्म वाले (**अभूतन**) हो जाते हो (**वः**) आप लोग (**वामम् वामम्**) वननीय श्रेष्ठ अन्न धन आदि को (**दिव्याय**) दिव्य (**धाम्ने**) तेजों अर्थात् यज्ञ देवों के लिए करते हो और (**वः**) आप लोग (**वसुवसु**) जो वासयोग्य धन है उसे (**पार्थिवाय**) पृथिवीस्थ यजमान के लिए (**सुन्वते**) करते हो ।

भावार्थः—हे नेता आदरणीय विद्वानो ! इन्द्र के लिए जो यज्ञ में आप लोग सोम तैयार करते हो इससे उत्तम कर्म वाले होते हो। आप लोग वननीय हव्य आदि धन को यज्ञ देवों को देते हो और वसने योग्य को यजमान को देते हो। हुतद्रव्य साररूप में देवों को जाता है और उस प्रभाव से उत्पन्न अन्न आदि यजमान एवम् पृथिवीस्थ मनुष्यों को प्राप्त होता है ॥८॥

यह दशम मण्डल में छिहत्तरवाँ सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ७७

ऋषिः—१—८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ६—८ विराट्त्रिष्टुप् । ५ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१—४, ६—८ धैवतः । ५ निषादः ॥

अभ्रप्रुषो न वाचा प्रुषा वसु हविष्मन्तो न यज्ञा विजानुषः ।
सुमारुतं न ब्रह्माणमर्हसे गणमस्तोष्येषां न शोभसे ॥१॥

पदार्थः—(अभ्रप्रुषः) मेघ से निकली पानी की बून्दों के (न) समान (वाचा) माध्यमिका वाणी से युक्त (मरुतः) मरुद्गण (वसु) धन को (प्रुषा) सींचते हैं वे (हविष्मन्तः) हवियों से युक्त (यज्ञाः) यागों की (न) तरह (विजानुषः) जगत् को अन्न आदि से संसन्न करने वाले होते हैं, मैं यजमान (ब्रह्माणम्) वेदज्ञ के (न) समान (सुमारुतम् गणम्) मरुतों के उत्तम समूह की (अस्तोषि) प्रशसा करता हूँ (न) सम्प्रति (शोभसे) शोभार्थ भी प्रशंसा करता हूं ।

भावार्थः—मेघ से गिरने वाले जलविन्दुओं के समान माध्यमिक वाक् से युक्त ये मरुत् लोग धन प्रदान करते हैं । हवियों से युक्त यागों की भांति ये जगत् को अन्न आदि से संपन्न करने वाले हैं । वेदज्ञ की भाति इस मरुद्गण की मैं यजमान प्रशंसा करता और संप्रति शोभार्थ भी प्रशंसा करता हूँ ॥१॥

श्रिये मर्यासो अञ्जीँरकृण्वत सुमारुतं न पूर्वीरति क्षपः ।
दिवस्पुत्रास एता न येतिर आदित्यासस्ते अक्रा न वावृधुः ॥२॥

पदार्थः—(श्रिये) जगत् के पदार्थों की शोभा के लिए (मर्यासः) मरणधर्मा मरुत् (अंजीन्) विविध शोभा साधनों को (अकृण्वत) उत्पन्न करते हैं (सुमारुतम्) इन उत्तम मरुद्गण को (पूर्वीः) बहुत सी (क्षपः) नाशक सेना भी (न अति) नहीं अतिक्रान्त कर सकती है, (दिवः) द्युलोक के पुत्र (एतः) गतिशील ये मरुत् (न) नहीं (येतिरे) यत्न करते हैं (ते) वे (आदित्यासः) अदिति के पुत्र (अक्राः) आक्रमणशील मरुत् (न) नहीं (ववृधुः)बढ़ते हैं ।

भावार्थ—जगत् के पदार्थों की शोभा के लिए ये मरुत् शोभा सामग्री को उत्पन्न करते हैं । बहुत-सी विनाशक सेना भी इनका अतिक्रमण नहीं

Scanned by CamScanner

कर सकती है। ये द्युलोक के पुत्र होने से गतिशील होते हुए इन्हें गति करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अदिति के पुत्र ये आदित्य होने से वस्तुओं की आयु को कम करते हैं ये बढ़ाते नहीं हैं ॥२॥

प्र ये दिवः पृथिव्या न बर्हणा त्मना रिरिचे अभ्रान्न सूर्यः ।
पाजस्वन्तो न वीराः पनस्यवो रिशादसो न मर्या अभिद्यवः ॥३॥

पदार्थः— (**ये**) जो मरुत् (**दिवः**) द्युलोक से और (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**न**) नहीं हैं बल्कि (**बर्हणा**) महत्व और (**त्मना**) अपनी निजी शक्ति से (**अभ्रात्**) मेघ से (**सूर्यः**) सूर्य के समान (**रिरि चे**) अतिरिक्त होते हैं। ये (**पाजस्वंतः**) बलवाले (**वीराः**) वीरों के (**न**) समान (**पनस्यवः**) स्तुति-योग्य होते हैं और (**रिशादसः**) शत्रुनाशक (**मर्याः**) मनुष्य के समान (**अभिद्यवः**) अभिगतदीप्ति होते हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुत् हैं वे न पृथिवी से सत्ता वाले हैं और न द्युलोक से सत्ता वाले हैं। ये मेघ से सूर्य की तरह अपनी महत्ता और निजी शक्ति से पृथिवी और द्यु आदि से अतिरिक्त हैं। बलशाली वीरों के समान ये प्रशंस्य हैं और शत्रुओं के नाशक मनुष्य के समान दीप्ति को प्राप्त हुए हैं ॥३॥

युष्माकं बुध्ने अपां न यामनि विथुर्यति न मही श्रथर्यति ।
विश्वप्सुर्यज्ञो अर्वागयं सु वः प्रयस्वन्तो न सत्राच आ गत ॥४॥

पदार्थः—(**युष्माकम्**) इन मरुतों के (**बुध्ने**) परस्पर संघात में (**अपाम्**) जलों के (**यामनि**) गमन की (**न**) भांति (**मही**) महती भूमि (**न**) न (**विथुर्यति**) व्यथित होती है (**न**) न (**श्रथर्यति**) विशीर्ण होती है, (**विश्वप्सुः**) विश्वरूप (**अयम्**) यह (**यज्ञः**) यज्ञ (**वः**) इनके (**अर्वाक्**) समक्ष (**सु**) सुष्ठुरूप से जाता है, (**प्रयस्वन्तः**) अन्न वाले परिष्कर्त्ता लोगों की भांति (**सत्राच**) साथ-साथ हुए (**आगत**) आते हैं।

भावार्थः— इन मरुतों के परस्पर संघात में जलों के गमन की भांति महती भूमि न व्यथित होती है और न विशीर्ण होती है। समस्त रूपों वाला यह यज्ञ पदार्थ इनके संमुख पहुँचता है और अन्न को परसने वा साफ करने वालों की भांति ये समूह में आते हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

यूयं धूर्षु प्रयुजो न रश्मिभिर्ज्योतिष्मन्तो न भासा व्युष्टिषु ।
श्येनासो न स्वयशसो रिशादसः प्रवासो न प्रसितासः परिप्रुषः ॥५॥

पदार्थः—(**यूयम्**) ये मरुत् (**धूःषु**) धुरों में (**रश्मिभिः**) रस्सी से बंधे अश्वों के (**न**) समान (**परिप्रुषः**) जाने वाले होते हैं, (**व्युष्टिषु**) उषाओं के उदयकालमे (**ज्योतिष्मन्तः**) प्रकाशमान आदित्यों के (**न**) समान (**भासा**) प्रकाश से युक्त होते हैं , (**श्येनासः**) वायुओं के (**न**) समान (**स्वयशसः**) स्वयं यशस्वी (**रिशादसः**) बुरी वस्तुओं के नाशक हैं, (**प्रवासः**) प्रवास करने वालों के (**न**) समान (**प्रसितासः**) प्रसिद्धगति हैं ।

भावार्थः—ये मरुत् धुरे में रस्सी से बंधे घोड़ों के समान जाने वाले, उषाओं के उदयकाल में आदित्यादि की भांति तेज वाले वायु के समान स्वयं यशस्वी और बुरे पदार्थों के नाशक हैं। ये प्रवास करने वालों की भांति प्रसिद्धगति हैं ॥५॥

प्र यद्वहध्वे मरुतः पराकाद्यूयं महः संवरणस्य वस्वः ।
विदानासो वसवो राध्यस्याराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोत ॥६॥

पदार्थः—(**यूयम् मरुतः**) ये मरुत् (**यत्**) जब (**पराकात्**) अत्यन्त दूर देश से (**वहध्वे**) आते हैं तब (**महः**) महान् (**संवरणस्य**) वरणीय, (**राध्यस्य**) राधनीय (**वस्वः**) धन को (**विदानासः**) देते हुए (**वसवः**) वासक ये (**आरात्**) दूर से (**चित्**) ही (**सनुतः**) अन्तर्हित (**द्वेषः**) द्वेष वालों को (**युयोत**) पृथक् करते हैं ।

भावार्थः—ये मरुत् जब अत्यन्त दूर प्रदेश अन्तरिक्ष से पृथिवी पर आते हैं तब उत्तम अन्न आदि धन को देते हुए आते हैं और दूर से ही वर्षा अन्न आदि की विरोधी शक्तियों को पृथक् कर देते हैं ॥६॥

य उदृचि यज्ञे अध्वरेष्ठा मरुद्भ्यो न मानुषो ददाशत् ।
रेवत्स वयो दधते सुवीरं स देवानामपि गोपीथे अस्तु ॥७॥

पदार्थः—(**अध्वरेष्ठाः**) यज्ञ में बैठा हुआ (**यः**) जो (**मानुषः**) मनुष्य (**यज्ञे**) यज्ञ के (**उदृचि**) वेद मन्त्रों के पाठ के साथ प्रारब्ध हो जाने पर (**मरुद्भ्यः न**) मरुतों के समान ऋत्विग् आदि को (**ददाशत्**) देता है (**सः**) वह

Scanned by CamScanner

(रेवत्) धनयुक्त (सुवीरम्) उत्तम संतान से युक्त (वयः) अन्न को (दधते) धारण करता है (देवानाम्) देवों के (गोपीथे) रक्षा में (अपि) भी (अस्तु) होता है ।

भावार्थः—यज्ञ में बैठा हुआ जो मनुष्य यज्ञ के मन्त्रों के साथ प्रारब्ध होने पर मरुतों के समान ऋत्विगादि के लिए धन आदि को देता है वह उत्तम संतान से युक्त धन सहित अन्न को पाता है और देवों से रक्षित भी होता हैं ॥७॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमा आदित्येन नाम्ना शम्भविष्ठाः ।
ते नोऽवन्तु रथतूर्मनीषां महश्च यामन्नध्वरे चकानाः ॥८॥

पदार्थ—(यज्ञियासः) यष्टव्य, (ऊमाः) रक्षक (आदित्येन) आदित्य सम्बन्धी (नाम्ना) जल से (शम्भविष्ठाः) सुख देने वाले (ते) वे (हि) ही मरुत् (यज्ञेषु) यज्ञों में (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें । वे (रथतूः) रश्मि चक्र को त्वरित करते हुए (अध्वरे यामन्) याग में जाने के लिए (महत्) महान् (हविः) हवि को (चकानाः) चाहते हुए (मनीषाम्) बुद्धि की (अवन्तु) रक्षा करें ।

भावार्थः—यष्टव्य, रक्षा करने वाले, आदित्य सम्बन्धी (किरणों में धृत) जल से सुख देने वाले, रश्मियों के चक्र को वेगवान् करते हुए, यज्ञ में अपने हव्य भाग को चाहते हुए हमारी रक्षा और हमारी बुद्धि की रक्षा के साधन बनें ॥८॥

यह दशम मण्डल में सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७८

ऋषिः—१—८ स्यूमरश्मिर्भार्गवः ॥ देवता—मरुतः ॥ छन्दः–१, आर्चीत्रिष्टुप् । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । २, ५, ६ विराड्जगती । ७ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१, ३, ४, ८ धैवतः । २, ५—७ निषादः ।

विप्रासो न मन्मभिः स्वाध्यो देवाव्योः न यज्ञैः स्वप्नसः ।
राजानो न चित्राः सुसन्दृशः क्षितीनां न मर्या अरेपसः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**मन्मभिः**) स्तुति एवं मननशक्ति से युक्त (**विप्रासः**) मेधावी लोगों के (**न**) समान(**स्वाध्यः**) अपने कार्य में संलग्न वा एकरत (**यज्ञैः**) यज्ञों के साथ युक्त (**देवाव्यः**) यजमानों के (**न**) समान (**स्वप्नसः**) अपने उत्तम कार्यों से युक्त (**राजानः**) राजाओं के (**न**) समान (**चित्राः**) चित्र विचित्र कार्य करने वाले तथा (**सुसंदृशः**) सुष्ठु रूप से लोगों के दर्शन के कारण, (**क्षितीनाम्**) पृथिवी के (**मर्याः**) मनुष्यों के (**न**) समान (**अरेपसः**) निर्दोष हैं ये मरुद्गण ।

भावार्थः—ये मरुत् लोग मननशील मेधावी के समान अपने कार्य में एकरत यजमानों के समान अपने उत्तम कर्मों से युक्त, राजाओं के समान चित्रविचित्र कार्यों वाले और सबकी दृष्टियों के कारणभूत एवम् पृथिवी पर रहने वाले विशुद्ध मनुष्यों के समान निर्दोष हैं ॥१॥

अग्निर्न ये भ्राजसा रुक्मवक्षसो वातासो न स्वयुजः सद्यऊतयः ।
प्रज्ञातारो न ज्येष्ठाः सुनीतयः सुशर्माणो न सोमा ऋतं यते ॥२॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुत् लोग हैं वे (**अग्निः**) अग्नि के (**न**) समान (**भ्राजसा**) तेज से युक्त, (**रुक्मवक्षसः**) तेज है वक्षस्थल में जिनके ऐसे (**वातासः**) वायुओं के (**न**) समान (**स्वयुजः**) स्वयं कार्यरत तथा (**सद्यऊतयः**) सद्यः गमन वाले, (**प्रज्ञातारः**) जानने वालों के (**न**) समान (**ज्येष्ठाः**) ज्येष्ठ, (**सुनीतयः**) उत्तम नीतियों वाले (**सुशर्माणः**) उत्तम सुखों वालों के (**न**) समान (**सोमः**) उत्तम हैं (**ऋतम्**) प्राकृतिक नियम पर (**यते**) चलने वाले के लिए ।

भावार्थः—ये मरुद्गण प्राकृतिक नियम पर चलने वाले के लिए अग्नि के समान सतेज, अन्तस्तल में ज्योतिधारक वायुओं के समान स्वयं कार्यरत, ज्ञानियों के समान ज्येष्ठ प्रभाव वाले, तथा उत्तम नीति और सुखों वालों के समान सोम शक्ति वाले हैं ॥२॥

वातासो न ये धुनयो जिगत्नवोऽग्नीनां न जिह्वा विरोकिणः ।
वर्मण्वन्तो न योधाः शिमीवन्तः पितॄणां न शंसाः सुरातयः ॥३॥

पदार्थः—(**ये**) जो मरुद्गण हैं वे (**वातासः**) वायुओं के (**न**) समान (**धुनयः**) हिलाने वाले (**जिगत्नवः**) गतिशील, (**अग्नीनाम्**) अग्नियों के (**जिह्वाः**) ज्वाला के (**न**) समान (**विरोकिणः**) रोचनायुक्त (**वर्मण्वन्तः**) वर्म वाले (**योधाः**) योद्धाओं के (**न**) समान (**शिमीवन्तः**) शौर्य कर्म वाले, (**पितृणाम्**)

Scanned by CamScanner

माता-पिता के (शंसाः) वाणी के (न) समान (सुरातयः) उत्तम दान वाले हैं।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे वायुओं के समान सबको झकोरने वाले, गतिशील, अग्नि की ज्वाला के समान रोचनायुक्त, कवचधारी योद्धाओं के समान सृष्टि में चलते प्राकृतिक संघर्ष के शौर्यशाली योद्धा और माता-पिता की वाणी के समान उत्तम अन्न आदि के दाता हैं ॥३॥

रथानां न येऽराः सनाभयो जिगीवांसो न शूरा अभिद्यवः ।
वरेयवो न मर्या घृतप्रुषोऽभिस्वर्तारो अर्कं न सुष्टुभः ॥४॥

पदार्थः—(ये) जो मरुद्गण हैं वे (रथानाम्) रथों के (अराः) अरों के (न) समान (सनाभयः) समान नाभि वाले, (जिगीवांसः) जयनशील (शूराः) शूरों के (न) समान (अभिद्यवः) सर्व प्रकार से तेजस्वी, (वरेयवः) परस्पर देने वाले (मर्याः) मनुष्यों के (न) समान (घृतप्रुषः) जल के वर्षाने वाले (अर्कम्) ऋचाओं के (अभिस्वर्तारः) उच्चारण करने वालों के (न) समान (सुष्टुभः) उत्तम शब्दों वाले हैं।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे रथों के अरों के समान समान नाभि वाले हैं (यद्यपि संख्या में बहुत हैं परन्तु सबन्धु हैं) जयनशील शूरों के समान सर्व प्रकार से तेजस्वी, परस्पर दाता मनुष्यों के समान जल की वर्षा करते वाले तथा ऋक् पाठ करने वालों के समान उत्तम शब्दों वाले हैं ॥४॥

अश्वासो न ये ज्येष्ठास आशवो दिधिषवो न रथ्यः सुदानवः ।
आपो न निम्नैरुदभिर्जिगत्नवो विश्वरूपा अङ्गिरसो न सामभिः ॥५॥

पदार्थः—(ये) जो मरुद्गण हैं वे (अश्वासः) अश्वों के (न) समान (ज्येष्ठासः) प्रशस्यतम तथा (आशवः) शीघ्रगति, (दिधिषवः) धारक शक्ति वाले (रथ्यः) रथस्वामियों के (न) समान (सुदानवः) उत्तम दान वाले, (आपः) जलों के (न) समान (निम्नैः) नीचे को बहने वाले (उदभिः) जलों के (जिगत्नवः) गमनशील (सामभिः) सा+अम=पृथिवी और सूर्य दोनों से सम्बन्ध रखने वाले (विश्वरूपाः) नाना रूप (अंगिरसः) अंगारों के (न) समान पृथिवी और सूर्य से संपर्क रखने वाले हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे अश्वों के समान शीघ्रगामी और प्रशस्त, धारक शक्ति वाले रथ स्वामियों के समान उत्तम दाता, जलों के समान नीले प्रदेश की ओर बहने वाले जलों के साथ गमनशील तथा पृथिवी और सूर्य दोनों से सम्बन्ध रखने वाले आग्नेय अङ्गारों के समान पृथिवी और सूर्य से सम्बन्ध रखने वाले हैं ॥५॥

ग्रावाणो न सूरयः सिन्धुमातर आदर्दिरासो अद्रयो न विश्वहा ।
शिशूला न क्रीळयः सुमातरो महाग्रामो न यामन्नुत त्विषा ॥६॥

पदार्थः—ये मरुद्गण (**सूरयः**) उदक के प्रेरक (**ग्रावाणः**) मेघों के (**न**) समान (**सिन्धुमातरः**) स्पन्दनशील धाराओं के निर्माता (**आदर्दिरासः**) विदारणशील (**अद्रयः**) वज्र अर्थात् बिजली के (**न**) समान (**विश्वहा**) विश्वरूप मेघ के हन्ता (**सुमातरः**) उत्तम माताओं वाले (**शिशूला**) शिशुओं के (**न**) समान (**क्रीडयः**) विहार करने वाले, (**उत**) और (**महाग्रामः**) महान् लोक समुदाय के (**न**) समान (**यामन्**) गमन में (**त्विषा**) दीप्ति से युक्त हैं ।

भावार्थः—ये मरुद्गण जलदाता मेघों के समान जलप्रवाहों में वेग देने वाले हैं, सबका विदारण करने वाली बिजली के समान विश्वरूप मेघ के हन्ता, उत्तम माताओं वाले शिशु के समान क्रीडा करने वाले तथा महान् लोक समुदाय के समान गमन में दीप्ति से युक्त हैं ॥६॥

उषसां न केतवोऽध्वरश्रियः शुभंयवो नाञ्जिभिर्व्यश्वितन् ।
सिन्धवो न ययियो भ्राजदृष्टयः परावतो न योजनानि ममिरे ॥७॥

पदार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे (**उषसाम्**) उषाओं के (**केतवः**) रश्मियों के (**न**) समान (**अध्वरश्रियः**) अन्तरिक्ष की शोभा, (**शुभंयवः**) शुभ की कामना करने वाले श्रेष्ठ विद्वानों के (**न**) समान (**अञ्जिभिः**) प्रकाशों से (**व्यश्वितन्**) प्रकाशमान होते हैं, (**सिन्धवः**) स्पन्दन वाले जल प्रवाह के (**न**) समान (**ययिवः**) गतिशील (**भ्राजन् ऋष्टयः**) दीप्तिमान दूरदेश तक जाने वाले अश्वों के (**न**) समान (**योजनानि**) दूरियों को (**ममिरे**) मापते हैं ।

भावार्थः—ये जो मरुद्गण हैं वे उषाओं की रश्मियों के समान अन्तरिक्ष की शोभा हैं, शुभ कामना करने वाले श्रेष्ठ विद्वानों के समान प्रकाशों से प्रकाशमान होते हैं तथा दीप्तिमान आयुधों वाले दूर प्रदेश में जाने वाले अश्वों के समान देश की दूरी को मापते हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

सुभागान्नो देवाः कृणुता सुरत्नानस्मान्त्स्तोतॄन्मरुतो वावृधानाः ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गात सनाद्धि वो रत्नधेयानि सन्ति ॥८॥

पदार्थः—(**वावृधानाः**) शक्ति से बढ़ते हुए ये (**मरुतः**) मरुद्गण (**देवाः**) देव (**नः**) हमें (**सुभागान्**) उत्तम अन्न आदि पदार्थों वाला (**कृणुत**) करते हैं तथा (**अस्मान्**) हम (**स्तोतॄन्**) परमेश्वर के स्तोताओं (**सुरत्नान्**) उत्तम रत्नों वाला (**कृणुत**) करते हैं । ये (**स्तोत्रस्य**) स्तोत्र के (**सख्यस्य**) संपर्क को (**अधि गात**) प्राप्त करते हैं (**हि**) क्योंकि (**वः**) इनके (**रत्नधेयानि**) रत्नदान (**सनात्**) चिरकाल से हैं ।

भावार्थः—शक्ति से बढ़ते हुए मरुद् देवगण हम भगवान् के भक्तों को अन्न आदि से युक्त और रत्न आदि से युक्त करते हैं । ये शब्दमय स्तोत्र से संपर्क रखते हैं और इनका यह रत्न आदि का देना सदा से है ॥८॥

यह दशम मण्डल में अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ७९

ऋषिः—१—७ अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा, सप्तिर्वा वाजम्भरः ॥
देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ६ विराट्-त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अपश्यमस्य महतो महित्वममर्त्यस्य मर्त्यासु विक्षु ।
नाना हनू विभृते सं भरेते असिन्वती बप्सती भूर्यत्तः ॥१॥

पदार्थः—मैं अग्निविद्याविद् (**अमर्त्यस्य**) अमरणधर्मा (**महतः**) महान् (**अस्य**) इस अग्नि के (**महित्वम्**) महिमा को (**मर्त्यासु**) मरणधर्मा (**विक्षु**) प्रजाओं में देखता हूं, इसके (**हनू**) हनू (**नाना**) नाना प्रकार से (**विभृते**) स्थित होकर (**संभरेते**) जगत् का पालन पोषण करती है, (**असिन्वती**) जिना बंधे हुए वा बांधे हुए (**बप्सती**) अशित पीत को खाती वा पचाती हुई (**भूरि**) बहुत (**अत्तः**) खाती हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मैं अग्निविद्याविद् मर्त्य प्रजा में वैश्वानर रूप में विद्यमान इस अमर्त्य अग्नि की महिमा को जानता हूं । इसके प्राणियों में रहने वाले और अप्राणियों में रहने वाले दो रूप हनू के समान हैं और सबका भरण-पोषण करते हैं । ये न बंधे हैं और न बांधते हैं सबके खाये-पिये हुए को पचाते हुए शरीर में और पदार्थों की शक्ति को खाते हुए अप्राणि जगत् में ये बहुत खाती हैं ।।१।।

गुहा शिरो निहितमृधगक्षी असिन्वन्नत्ति जिह्वया वनानि ।
अत्राण्यस्मै पड्भिः सं भरन्त्युत्तानहस्ता नमसाधि विक्षु ॥२॥

पदार्थः—इस अग्नि का (**शिरः**) मूर्धाभाग (**गुहा**) प्रत्येक प्राणी और अप्राणी के अन्तराल में ऊष्मारूप में स्थित हैं इसकी (**अक्षी**) दर्शनशक्ति (**ऋधक्**) पृथक् सूर्य और चन्द्ररूप में स्थित है (**असिन्वम्**) दांतों से न खाता हुआ यह (**जिह्वया**) जिह्वा=ज्वाला से (**वनानि**) जल काष्ठ आदि सभी को खाता है, (**अस्मै**) इस अग्नि [उदराग्नि] के लिए (**अधि विक्षु**) प्रजाओं के अन्दर लोग (**पड्भिः**) पैरों से चलकर (**उत्तानहस्ताः**) हाथ उठायेहुए (**नमसा**) उद्योग से (**अत्राणि**) खाद्य सामग्री (**संभरन्ति**) जुटाते हैं ।

भावार्थः—इस अग्नि का मूर्धा भाग आकाश अथवा प्रत्येक प्राणी और अप्राणी के अन्तराल में ऊष्मा रूप में स्थित हैं । इसकी आंख चन्द्र और सूर्य हैं । यह दांतों से न खाता हुआ अपनी ज्वाला के समान जिह्वा से जल, काष्ठ और वस्तुओं को खाता है । इस उदराग्नि को तृप्त करने के लिए लोग हर प्रकार का हाथ-पैर मारकर खाद्य सामग्री एकत्र करते हैं ।।२।।

प्र मातुः प्रतरं गुह्यमिच्छन्कुमारो न वीरुधः सर्पदुर्वीः ।
ससं न पक्वमविदच्छुचन्तं रिरिह्वांसं रिप उपस्थे अन्तः ॥३॥

पदार्थः—यह अग्नि (**कुमारः**) कुमार की (**न**) भांति (**मातुः**) पृथिवी सम्बन्धी (**उर्वीः**) बहुत-सी (**वीरुधः**) लता आदि को (**इच्छन्**) चाहता हुआ तथा (**गुह्यम्**) गोप्य (**प्रतरम्**) उनके मूल को भी चाहता हुआ (**प्र सर्पत्**) फैलता है (**पक्वम्**) पके हुए (**ससम्**) अन्न के (**न**) समान (**रिरिह्वांसम्**) मूल से पृथिवी के रस को पीते हुए (**शुचन्तम्**) दीप्यमान नीरस वृक्ष को (**रिपः**) पृथिवी के (**उपस्थे अन्तः**) पृथिवी के उत्संग में (**अविदत्**) पाता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः यह अग्नि कुमार की भांति पृथिवी सम्बन्धी लता आदि और उनके गूढ मूल को चाहता हुआ फैलता है। वह पके हुए अन्न के समान मूल से पृथिवी के रस को पीने वाले दीप्यमान नीरस वृक्ष को पृथिवी के उत्सङ्ग में प्राप्त करता है ॥३॥

तद्वामृतं रोदसी प्र ब्रवीमि जायमानो मातरा गर्भो अत्ति ।
नाहं देवस्य मर्त्यश्चिकेताग्निरङ्ग विचेताः स प्रचेताः ॥४॥

पदार्थः—(**रोदसी**) हे आचार्य और पुरोहित ! (**वः**) आप दोनों को (**ऋतम्**) सत्य (**प्रब्रवीमि**) कहता हूँ कि यह (**जायमानः**) उत्पन्न (**गर्भः**) गर्भ-भूत=अग्नि (**मातरा**) दोनों अरणियों को (**अत्ति**) खा जाता है। (**मर्त्यः**) मरणधर्मा (**अहम्**) मैं मनुष्य (**देवस्य**) अग्नि देव के रहस्य को (**न**) नहीं (**चिकेत**) जानता हूँ। (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि ही (**अंग**) निश्चय से (**विचेताः**) विशेष जानने योग्य और (**प्रचेताः**) प्रकृष्ट जानने योग्य है।

भावार्थः—हे आचार्य और पुरोहित मैं गृहस्थ आप से सत्य ही कहता हूं कि यह अग्नि जिन दो अरणी रूपी माताओं से उत्पन्न होता है उनको ही खा जाता है। मैं मरणधर्मा इस अग्निदेव के रहस्य को नहीं जानता। वह अग्नि ही विशेषरूप से जानने योग्य और प्रकृष्ट रूप से जानने योग्य हैं ॥४॥

यो अस्मा अन्नं तृष्वा३ दधात्याज्यैर्घृतैर्जुहोति पुष्यति ।
तस्मै सहस्रमक्षभिर्वि चक्षेऽग्ने विश्वतः प्रत्यङ्ङसि त्वम् ॥५॥

पदार्थः—(**यः**) जो मनुष्य (**अस्मै**) इस अग्नि के लिए (**तृषु**) शीघ्र (**अन्नम्**) अन्नरूप हवि को (**आ दधाति**) देता है (**आज्यैः**) चिकने (**घृतैः**) घृत आदि पदार्थों से (**जुहोति**) आहुति देता है (**पुष्यति**) समिधा आदि से पुष्ट करता है (**तस्मै**) उसके लिए यह अग्नि (**सहस्रम्**) सहस्र (**अक्षभिः**) ज्वालाओं से (**विचक्षे**) देखता है (**अग्नेत्वम्**) यह अग्नि (**विश्वभिः**) सब तरफ से (**प्रत्यङ्**) सामने (**असि**) है।

भावार्थः—जो मनुष्य इस अग्नि के लिए शीघ्र अन्न रूप हवि को देता है, चिकने घृत आदि पदार्थों से आहुति देता है और समिधा आदि से पुष्ट करता है उसे यह अग्नि अपनी सहस्रों ज्वालाओं से देखता है और सब प्रकार से सामने रहता है। अर्थात् सभी पदार्थों को उसे देता है ॥५॥

Scanned by CamScanner

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान् ।
अक्रीळन् क्रीळन्हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः ।

पदार्थः— (किम्) क्या (देवेषु) देवों में (त्यजः) क्रोध (एनः) पाप (अग्ने)इस अग्नि ने (चकर्थ) किया है (त्वाम्) इस अग्नि को ही (नु) क्षिप्रगति से (अविद्वान्) न जानता हुआ मैं यजमान (पृच्छामि) पूछता हूँ । (अक्रीडन्) कहीं पर न विहरता हुआ (क्रीडन्) कहीं पर खेलता हुआ (हरिः) हरणशील वह अग्नि (अत्तवे) खाद्य को (अदन्) खाता हुआ (गाम्) गौ, मनुष्य आदि के (असिः) तलवार के (इव) समान (पर्वशः) प्रत्येक पोर को (विचकर्थ) पृथक्-पृथक् कर देता है ।

भावार्थः—देवों में इस अग्नि ने क्या क्रोध अथवा पाप किया है इस बात को मैं यजमान इस अग्नि से ही पूछता हूं । यह कहीं पर विहरता हुआ क्रीडा करता हरणशील होकर खाद्य को खाता हुआ गौ पुरुष आदि को खड्ग के समान गांठ-गांठ को छिन्न-भिन्न कर देता है । यह छिन्न-भिन्न करना ही उसका वस्तुतः क्रोध और एनः है । अन्य कुछ नहीं । वह स्वयं इसे बता रहा है ।।४।।

विषूचो अश्वान्युयुजे वनेजा ऋजीतिभी रशनाभिर्गृभीतान् ।
चक्षदे मित्रो वसुभिः सुजातः समानृधे पर्वभिर्वावृधानः ।।७।।

पदार्थः (वनेजाः) जंगलों अथवा जलों में उत्पन्न यह अग्नि (विषूचः) सब तरब फैले, हमें (रशनाभिः) रस्सी से (गृभीतान्) बंधे हुए अश्वों के समान (ऋजीतिभिः) लताओं से वेष्ठित (अश्वान्) वृक्षों को (युयुजे) युक्त होता है, (वसुभिः) रश्मियों से (सुजातः) सुप्रवृद्ध हुआ (मित्रः) सूर्य के समान सभी को (चक्षदे) खंड-खंड कर देता और (पर्वभिः) गांठ-गांठ में (ववृधानः) बढ़ता हुआ (सम् आवृधे) सम्यग् बढ़ता है ।

भावार्थः— जंगलों में उत्पन्न यह अग्नि सब तरफ फैले हुए, रस्सी से बंधे घोड़ों के समान लता से परिवेष्टित वृक्षों से युक्त हो जाता है । रश्मियों से प्रवृद्ध हुए सूर्य के समान सभी को टुकड़े-टुकड़े कर देता है और गांठ-गांठ में बैठकर बढ़ता है । अर्थात् यह दावाग्नि का रूप धारण करता है ।।७।।

यह दशम मण्डल का उन्नासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

Scanned by CamScanner

सूक्त–८०

ऋषिः -- १ – ७ अग्निः सौचीको वैश्वानरो वा ॥ देवता – अग्निः ॥
छन्दः - १, ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७
निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः धैवतः ॥

अ॒ग्निः सप्तिं॑ वाज॒म्भ॒रं द॑दात्य॒ग्निर्वी॒रं श्रुत्यं॑ कर्म॒निष्ठाम् ।
अ॒ग्नी रोद॑सी॒ वि च॑रत्सम॒ञ्जन्न॒ग्निर्नारीं॑ वी॒रकु॑क्षिं॒ पुरं॑धिम् ॥१॥

पदार्थः—(**अग्निः**) स्वयंप्रकाश परमेश्वर ने (**वाजम्भरम्**) अन्न धन आदि को देने वाले (**सप्तिम्**) वायु को हमें, (**ददाति**) देता है, (**अग्निः**) वह परमेश्वर ही हमें (**श्रुत्यम्**) ज्ञानवाला (**कर्मनिष्ठाम्**) कर्मनिष्ठ (**वीरम्**) वीर सन्तान देता है, (**अग्निः**) वह परमेश्वर ही (**रोदसी** द्यु और पृथिवी लोक को (**समञ्जन्**) प्रकाशित करता हुआ (**वि चरत्**) व्याप्त हो रहा है, (**अग्निः**) वह प्रकाश स्वरूप परमेश्वर ही (**वीरकुक्षिम्**) वीर पुत्र को कोख में धारण करने वाली स्त्री (**पुरन्धिम्**) गृह को संभालने वाली (**नारीम्**) स्त्री को भी बनाता है ।

भावार्थः—स्वयंप्रकाश परमेश्वर अन्न आदि पदार्थों को देने वाले वायु को हमें देता है, वह ही ज्ञान वाले कर्मनिष्ठ पुत्र को देता है और वह ही द्यु और पृथिवी लोक को प्रकाशित करता हुआ व्याप्त करता है । वही गृह को चलाने वाली वीर पुत्र को कोख में धारण करने वाली स्त्री को भी पैदा करता है ॥१॥

अ॒ग्नेरप्न॑सः स॒मिद॑स्तु भ॒द्राग्निर्म॒ही रोद॑सी॒ आ वि॑वेश ।
अ॒ग्निरेकं॑ चोदयत्स॒मत्स्व॒ग्निर्वृ॒त्राणि॑ दयते पु॒रूणि॑ ॥२॥

पदार्थः—(**अप्नसः**) कर्मों से साधनभूत (**अग्नेः**) अग्नि के लिए (**भद्रा**) उत्तम (**समित्**) समिधा (**अस्तु**) चाहिए, (**अग्निः**) यह अग्नि ही (**मही**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी में (**आविवेश**) प्रविष्ट हो रहा है, (**अग्निः**) अग्नि (**एकम्**) अकेले को (**समत्सु**) संग्रामों में (**चोदयत्** , प्रेरित करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**पुरूणि**) बहुत (**वृत्राणि**) धनों को (**दयते**) प्रदान करता है ।

भावार्थः—कर्मों के साधन भूत अग्नि के लिए उत्तम समिधा

Scanned by CamScanner

चाहिए । वह अग्नि द्यु और पृथिवी लोकों में प्रविष्ट हो रहा है । अग्नि अकेले आदमी को भी संग्रामों में प्रेरित करता है और वह बहुत धन आदि का साधन बनता है ॥२॥

अग्निर्ह त्यं जरतः कर्णमावाग्निरद्भ्यो निरदहज्जरूथम् ।
अग्निरत्रिं घर्म उरुष्यदन्तरग्निर्नृमेधं प्रजयासृजत्सम् ॥३॥

पदार्थः—(अग्निः ह) अग्नि ही (जरतः) स्तावक के (त्यम्) उस (कर्णम्) कर्ण के साधक देह की (आवत्) रक्षा करता है, (अग्निः) अग्नि (अद्भ्यः) जलों के (जरूथम्) रोककर नष्ट करने वाले मेध को (निरदहत्) जला देता है, (अग्निः) अग्नि ही (घर्मेऽन्तः) अन्तरिक्षस्थ (अत्रिम्) वाक् की (उरुष्यत्) रक्षा करता है, (अग्निः) अग्नि (नृमेधम्) मनुष्यों को अन्न देने वाले को (प्रजया) सन्तान से (सम् असृजत्) युक्त करता है ।

भावार्थः अग्नि स्तावक यजमान के शरीर आदि की रक्षा करता है, वह जलों के रोधक और नाशक मेघ को जला देता है, अग्नि अन्तरिक्ष में माध्यमिका वाग् की रक्षा करता है और वही मनुष्यों को अन्न प्रदान करने वाले को सन्तान आदि से युक्त करता है ।

अग्निर्दाद् द्रविणं वीरपेशा अग्निर्ऋषिं यः सहस्रा सनोति ।
अग्निर्दिवि हव्यमा ततानाग्नेर्धामानि विभृता पुरुत्रा ॥४॥

पदार्थः (अग्निः) अग्नि (वीरपेशाः) प्रेरक ज्वाला रूप (द्रविणम्) धन को (दात्) देता है, (अग्निः) अग्नि (ऋषिम्) उस मन्त्र द्रष्टा को भी सन्तान आदि देता है (यः) जो (सहस्रा) सहस्रों का (सनोति) दान करता है, (अग्निः) अग्नि (दिवि) द्युलोक में (हव्यम्) यजमान द्वारा यज्ञ में हुत द्रव्य को (आ ततान) फैलाता हैं, (अग्नेः) अग्नि के (धामानि) तेज (पुरुत्रा) विविध लोकों और पदार्थों में (विभृता) धारित हैं ।

भावार्थः—अग्नि ज्वालाओं को विस्तारित करता है, वह उस मन्त्र-द्रष्टा को सन्तान आदि से युक्त करता है जो सहस्रों का दान करता है । अग्नि यजमान द्वारा यज्ञ में हुत द्रव्य को द्युलोक में फैलाता है और अग्नि के तेज विभिन्न लोकों और पदार्थों में निहित हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

अ॒ग्निमु॒क्थैर्ऋष॑यो॒ वि ह्व॑यन्ते॒ऽग्निं नरो॒ याम॑नि बाधि॒तासः॑ ।
अ॒ग्निं वयो॑ अ॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑न्तो॒ऽग्निः स॒हस्रा॒ परि॑ याति॒ गोना॑म् ॥५॥

पदार्थः—(**अग्निम्**) अग्नि की (**ऋषयः**) ऋषि लोग यज्ञ में (**उक्थैः**) मन्त्रों से (**विह्वयन्ते**) प्रशंसा करते हैं, (**यामनि**) संग्राम में (**बाधितासः**) शत्रुओं से बाधित (**नरः**) मनुष्य (**अग्निम्**) अग्नि का सहारा लेते हैं, (**वयः**) उष्णता की लहरें (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**अग्निम्**) अग्नि के आधार से ही (**पतन्तः**) विस्तृत हुई बढ़ती रहती हैं, (**अग्निः**) अग्नि (**गोनाम्**) किरणों के (**सहस्रा**) सहस्रों को (**परि याति**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—मन्त्रद्रष्टा ऋषि यज्ञों में मन्त्रों से अग्नि की प्रशंसा करते हैं । संग्राम में शत्रुओं से बाधित मनुष्य अग्नि का सहारा लेते हैं । अन्तरिक्ष में उष्ण लहरें अग्नि के आधार पर ही फैलती रहती हैं और अग्नि ही सहस्रों किरणों को प्राप्त करता है ॥५॥

अ॒ग्निं विश॑ ईळते॒ मानु॑षी॒र्या अ॒ग्निं मनु॑षो॒ नहु॑षो॒ वि जा॒ताः ।
अ॒ग्निर्गान्ध॑र्वीं प॒थ्या॑मृ॒तस्या॒ग्नेर्गव्यू॑ति॒र्घृत आ निष॑त्ता ॥६॥

पदार्थः—(**या**) जो (**मानुषीः**) मनुष्य सम्बन्धी (**विशः**) प्रजा हैं वे (**अग्निम्**) अग्नि की यज्ञ में (**ईडते**) प्रशंसा करते हैं, (**जाताः**) प्रसिद्ध (**मनुषः**) मननशील (**नहुषः**) मनुष्य लोग (**अग्निम्**) अग्नि की प्रशंसा करते है (**अग्निः**) अग्नि (**ऋतस्य**) जल के (**पथ्याम्**) मार्ग में अर्थात् अन्तरिक्ष में (**गान्धर्वीम्**) मेघ सम्बन्धी वाणी को प्राप्त करता है, (**अग्नेः**) अग्नि का (**गव्यूतिः**) मार्ग (**घृते**) प्रकाश में (**आ निषत्ता**) सर्वथा निषण्ण है ।

भावार्थः–जो मानुषी प्रजा है वह यज्ञ आदि में अग्नि की प्रशंसा करती है, प्रसिद्ध मननशील मनुष्य भी अग्नि की प्रशंसा करते हैं । अग्नि जल के मार्ग अन्तरिक्ष में मेघ सम्बन्धी वाणी को भी प्राप्त करता है और अग्नि का मार्ग प्रकाश में स्थित है ॥६॥

अ॒ग्नये॒ ब्रह्म॑ ऋ॒भव॑स्ततक्षुर॒ग्निं म॒हाम॑वोचामा सुवृ॒क्तिम् ।
अग्ने॒ प्राव॑ जरि॒तारं॑ यविष्ठा॒ग्ने महि॒ द्रवि॑ण॒मा य॑जस्व ॥७॥

पदार्थः—(**ऋभवः**) मेधावी लोग (**अग्नये**) परमेश्वर के लिए (**ब्रह्म**)

वेद मन्त्र का (ततक्षु) उच्चारण करते हैं, हम लोग (महाम्) उस महान् (अग्निम्) अग्नि को (सुवृक्तिम्) गुण का (अवाचाम्) उपदेश करें (यविष्ठ) हे उपास्य (अग्ने) प्रभु (जरितारम्) उपासक की (प्र अव) रक्षा कर, (अग्ने) हे प्रभो ! (महि) महान् (द्रविणम्) धन (आ यज) प्रदान कर ।

भावार्थ:—मेधावी लोग परमेश्वर के लिए वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हैं। हम सब महान् अग्नि के गुण का उपदेश करें। हे उपास्य प्रभो, उपासक की रक्षा कर। हे भगवन् महान् धन प्रदान कर ।।७।।

यह दशम मण्डल में अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त—८१

ऋषि:—१—७ विश्वकर्मा भौवन: ।। **देवता**—विश्वकर्मा ।। **छन्द:**—१, ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ।। **स्वर:**—धैवत: ।।

य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषिर्होता न्यसीदत् पिता नः ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमानः प्रथमच्छदवराँ आ विवेश ।।१।।

पदार्थ—(य:) जो (ऋषि:) सब जगत् का द्रष्टा (होता) सब जगत् का ग्रहण करने वाला (न:) हमारा (पिता) पिता है वह प्रभु (इमा) इन (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकों को (जुह्वत्) शक्ति प्रदान करता हुआ-अथवा आहुति देता हुआ (नि असीदत्) विराजता है, (स:) वह (आशिषा) भावना मात्र से (द्रविणम्) गतिशील जगत् को (इच्छमान:) चाहता हुआ (प्रथमच्छत्) प्रथम जगत् में व्यापक होता हुआ (अवरान्) पीछे उत्पन्न होने वाले जगत् में भी (आ विवेश) व्यापक होता है ।

भावार्थ:—यह सूक्त विश्वकर्मा भौवन=समस्त जगत् के कर्ता विश्व में व्यापक परमेश्वर के सर्वमेध=सृष्टि आदि सम्बन्धी यज्ञ से सम्बद्ध है। यहां सृष्टि रचना यज्ञ के रूप में वर्णित है। सब जगत् का द्रष्टा, समस्त जगत् को प्रलय में अन्दर ग्रहण करने वाला परमेश्वर जो हमारा पिता है वह समस्त जगत् को प्रलय काल में अपने अन्दर ले लेता है और सृष्टि के

Scanned by CamScanner

समय में वह समस्त जगत् को शक्ति प्रदान करता हुआ उसकी रचना करता है। वह कामना=सिसृक्षा से इस गतिशील ऐश्वर्यशाली जगत् को चाहता हुआ इसमें व्याप्त होता है और इसके बाद जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनमें भी व्यापक होता है ॥१॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ।
यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षाः ॥२॥

पदार्थ—(**किम् स्वित्**) कौन-सा (**आसीत्**) होता है (**अधिष्ठानम्**) आश्रय इस जगत् का ? (**कतमत् स्वित्**) कौन-सा होता है । (**आरम्भणम्**) मूल उपादान कारण ? इस जगत् का प्रारम्भ (**कथा**) किस प्रकार (**आसीत्**) होता हैं ? (**यतः**) जिससे (**विश्वकर्मा**) सब जगत् का बनाने वाला, (**विश्वचक्षाः**) समस्त जगत् का द्रष्टा परमेश्वर (**भूमिम्**) भूमि को (**जनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**महिना**) अपने ऐश्वर्य से भूमि और (**द्याम्**) द्युलोक को (**विऔर्णोत्**) आच्छादित करता है ।

भावार्थः—जगत् का आश्रय क्या है ? कौन सा मूल उपादान कारण है ? कैसे यह उत्पन्न होता है ? कि जिससे सब जगत् का द्रष्टा और सब जगत् का कर्त्ता परमेश्वर भूमि और द्यु को बनाता हुआ उन्हें अपनी व्यापकता से आच्छादित करता है। वस्तुतः परमेश्वर उसका आश्रय है। परमेश्वर की प्रकृति उसका उपदान है और उसी से वह जगत् को बनाता है। अगले मन्त्र में यह स्पष्ट हो जाता है ॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥३॥

पदार्थः—परमेश्वर (**विश्वतश्चक्षुः**) सर्वद्रष्टा, (**विश्वतो मुखः**) सर्ववक्ता, (**विश्वतोबाहुः**) सर्वशक्तिमान् (**विश्वतस्पात्**) सर्वव्यापक है, (**एकः**) अकेला देव वह परमेश्वर (**पतत्रैः**) प्रकृति के परमाणुओं द्वारा (**द्यावाभूमी**) द्यु और भूमि को (**संजनयन्**) उत्पन्न करता हुआ (**बाहुभ्याम्**) ज्ञान और क्रिया से (**सं धमति**) सम्पूर्ण जगत् को चलाता है ।

भावार्थः—वह परमेश्वर सर्वद्रष्टा, सर्ववक्ता, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक है। वह प्रकृति के परमाणुओं द्वारा अकेला ही द्यु और भूमि

Scanned by CamScanner

को उत्पन्न करता हुआ अपने ज्ञान और क्रिया से सम्पूर्ण जगत् को चलाता है ॥३॥

किं स्विद्वनं क उ स वृक्ष आस यतो द्यावापृथिवी निष्टतक्षुः ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥४॥

पदार्थः—(**किम् स्वित्**) कौन सा है (**वनम्**) वन, (**कः उ**) कौन सा (**वृक्षः**) वृक्ष (**आस**) है (**यतः**) जिससे परमेश्वर-प्रेरित शक्तियाँ (**द्यावा-पृथिवी**) आकाश और पृथिवी को (**निः ततक्षुः**) बनाती हैं, (**मनीषिणः**) हे विद्वान् पुरुषो ! (**मनसा**) अपने मनों से (**पृच्छत इत उ**) पूछो (**तत्**) उसे (**यत्**) जो (**भुवनानि**) होने के योग्य अर्थात् उत्पत्ति में समर्थ भवितव्य जगत् के कारणों को (**धारयन्**) धारण करता हुआ (**अधि अतिष्ठत्**) उनका अधिष्ठाता हो रहा है ।

भावार्थः– कौन सा है वह वन, कौन सा है वह वृक्ष जिससे परमात्मा-प्रेरित जगत् की रचना में लगी शक्तियां द्यु और पृथिवी लोक को उत्पन्न करती हैं । हे विद्वज्जनो ! अपने मन से पूछो उसको जो समस्त जगत् के कार्यरूप में परिणत होने वाले कारणों को धारण कर उसका अधिष्ठाता हो रहा है ॥४॥

या ते धामानि परमाणि यावमा या मध्यमा विश्वकर्मन्नुतेमा ।
शिक्षा सखिभ्यो हविषि स्वधावः स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः ॥५॥

पदार्थः (**विश्वकर्मन्**) हे समस्त विश्व के कर्त्तः प्रभो (**ते**) तेरे द्वारा निर्मित (**या**) जो (**परमाणि**) परम=उत्कृष्ट (**धामानि**) नाम, रूप और स्थान है, (**या**) जो (**मध्यमा**) मध्यम कोटि के हैं (**उत**) तथा (**या**) जो (**अवमा**) अवर कोटि के हैं (**इमा**) इन सब को (**सखिभ्यः**) ज्ञानी जीवों को (**शिक्ष**) सिखा, (**स्वधावः**) हे प्रकृति के स्वामी ! (**स्वयम्**) अपने आप (**हविषि**) अन्न आदि से (**वृधानः**) बढ़ाता हुआ (**तन्वम्**) जीवों के शरीर को (**यजस्व**) प्रदान करते हो ।

भावार्थः - हे विश्व के कर्त्तः प्रभो ! आप के द्वारा निर्मित उत्तम, मध्यम और अवर कोटि के जितने नाम, जल और स्थान हैं उन सबकी जीवों को शिक्षा देते हो और अन्नादि से बढ़ाते हुए जीव के शरीरों को प्रदान करते हो ॥५॥

Scanned by CamScanner

विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।
मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ॥६॥

पदार्थः—(**विश्वकर्मन्**) हे समस्त जगत् के निर्माता प्रभो ! (**हविषा**) अपनी प्रकृति शक्ति से (**वावृधानः**) प्रबल होता हुआ (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) द्यु लोक को (**यजस्व**) प्रदान करते हो अथवा संगत करते हो, (**अन्ये**) अन्य अज्ञानी (**जनासः**) जीव लोग (**अभितः**) सर्वथा (**मुह्यन्तु**) यथार्थ नहीं जान पाते हैं (**मघवा**) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी ही (**अस्माकम्**) हमारा (**इह**) इस जगत् में (**सूरिः**) ज्ञानदाता (**अस्तु**) है ।

भावार्थः—हे समस्त जगत् के निर्माता प्रभो ! आप अपनी प्रकृति-शक्ति से प्रबल हुए पृथिवी और द्यु लोक की संगति लगाते हो । अन्य अज्ञानी जीव लोग यथार्थता को नहीं जान पाते हैं । समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी परमेश्वर ! आप ही इस जगत् में हमारे ज्ञानदाता हैं ॥६॥

वाचस्पतिं विश्वकर्माणमूतये मनोजुवं वाजे अद्या हुवेम ।
स नो विश्वानि हवनानि जोषद्विश्वशम्भूरवसे साधुकर्मा ॥७॥

पदार्थः—हम (**वाचः पतिम्**) वेदवाणी के स्वामी (**विश्वकर्माणम्**) समस्त जगत् के कर्त्ता, (**मनोजुवम्**) मन के समान वेग वाले परमेश्वर को (**ऊतये**) अपनी रक्षा के लिए तथा (**वाजे**) ऐश्वर्य और ज्ञान के लिए (**हुवेम**) स्तुति करते हैं, अथवा बुलाते हैं । (**विश्व शम्भुः**) सब का कल्याणकारी, (**साधुकर्मा**) उत्तम कर्मों वाला (**सः**) वह परमेश्वर (**अवसे**) हमारे रक्षार्थ (**नः**) हमारे (**विश्वा**) समस्त (**हवनानि**) स्तुतियों, यज्ञ आदि को (**जोषत्**) स्वीकार करता है ।

भावार्थः—वेदवाणी के स्वामी, समस्त जगत् के कर्त्ता, मन के समान वेगवाले परमेश्वर को अपनी रक्षा के लिए तथा ज्ञान और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए पुकारते हैं । समस्त विश्व का कल्याणकर्ता, उत्तम कर्मों वाला वह प्रभु हमारी रक्षा के लिए हमारी समस्त स्तुतियों और यज्ञ आदि को स्वीकार करता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—८२

ऋषिः—१—७ विश्वकर्मा भौवनः ॥ देवता—विश्वकर्मा ॥
छन्दः—१, ५, ६ त्रिष्टुप् । २, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ।
७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

चक्षुषः पिता मनसा हि धीरो घृतमेने अजनन्नम्नमाने ।
यदेदन्ता अददृहन्त पूर्व आदिद् द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥१॥

पदार्थः—(**चक्षुषः**) चक्षु आदि से युक्त शरीर संघात का अथवा प्रकाशमान् सूर्य आदि लोक का (**पिता**) पालयिता अथवा उत्पादक (**मनसा**) ज्ञान शक्ति से (**हि**) निश्चय (**धीरः**) धीर (**घृतम्**) प्रकाश को पहले (**अजनत्**) उत्पन्न करता है पुनः (**नम्नमाने**) गतिशील (**एते**) द्यु और पृथिवी को उत्पन्न करता है (**यदा इत्**) जब (**पूर्वे**) पुराने (**अन्तः**) दिशाओं को (**अददृहन्त**) दृढ करता है (**आत् इत्**) तो (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अप्रथेताम्**) विस्तार को प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—नेत्र आदि से युक्त शरीरसंघात और सूर्य आदि प्रकाशक लोकों का उत्पादक, ज्ञान शक्ति से धीर परमेश्वर प्रकाश को अर्थात् विराट् को उत्पन्न करता है । पुनः गतिशील द्यु और पृथिवी को उत्पन्न करता है । जब वह दिशाओं और आकाश को उत्पन्न करता है तब द्यु और पृथिवी उसमें फैलाव को प्राप्त होते हैं ॥१॥

विश्वकर्मा विमना आद्विहाया धाता विधाता परमोत संदृक् ।
तेषामिष्टानि समिषा मदन्ति यत्रा सप्तऋषीन्पर एकमाहुः ॥२॥

पदार्थः (**विश्वकर्मा**) जगत् की रचना के विविध कर्मों को करने वाला, (**विमनाः**) व्यापक ज्ञान वाला (**आ**) समन्तात् (**विहाया**) आकाशवत् व्यापक (**धाता**) समस्त विश्व का धारक (**विधाता**) पृथिवी सूर्य आदि विविध पदार्थों का निर्माता, (**परमा**) परमोत्कृष्ट (**उत**) और (**संदृक्**) सर्वद्रष्टा है, (**यत्र**) जिसके नियन्त्रण और धारण में (**सप्त**) सात (**ऋषीन्**) इन्द्रियों से (**परः**) सूक्ष्म (**एकम्**) एक आत्मा को (**आहुः**) ज्ञानीजन कहते हैं (**तेषाम्**) इन इन्द्रियों के (**इष्टानि**) अभिलषित भोग्य पदार्थ जिसकी (**इषा**) ज्ञान और प्रयत्न से (**सं मदन्ति**) भली प्रकार हर्ष आदि के कारण होते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः -परमेश्वर जगत् की रचना के विविध कर्मों का कर्त्ता व्यापक ज्ञान वाला, आकाश व व्यापक, सबका धारक और निर्माता परमोत्कृष्ट और सर्वद्रष्टा हैं। उसके नियन्त्रण और व्यवस्था में सप्त इन्द्रियों से सूक्ष्म एक जीवात्मा है जिसे ज्ञानी जन जानते हैं, इन इन्द्रियों के भोग उस आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न से भली प्रकार हर्ष आदि के कारण होते हैं ॥२॥

यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामधा एक एव सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो परमेश्वर (**नः**) हमारा (**पिता**) पालक तथा (**जनिता**) उत्पन्न करने वाला, (**यः**) जो (**विधाता**) सब जगत् का रचयिता है, जो (**विश्वा**) समस्त (**धामानि**) स्थानों (**भुवनानि**) लोकों को (**वेद**) जानता है, (**यः**) जो (**देवानाम्**) समस्त पदार्थों का (**नामधाः**) नाम रखने वाला और (**एक एव**) अद्वितीय हैं (**तम्**) उस ही (**संप्रश्नम्**) सभी प्रश्नों के प्रश्न को (**अन्या**) दूसरे (**भुवना**) भुवन आदि (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—जो परमेश्वर हमारा पालक, हमारा उत्पन्न करने वाला जो समस्त जगत् का निर्माता है और समस्त स्थानों और लोकों तथा पदार्थों को जानता है और जो समस्त पदार्थों का नाम रखने वाला है वही अद्वितीय है। समस्त समस्याओं का वही एक मात्र समाधान है ॥३॥

त आयजन्त द्रविणं समस्मा ऋषयः पूर्वे जरितारो न भूना ।
असूर्ते सूर्ते रजसि निषत्ते ये भूतानि समकृण्वन्निमानि ॥४॥

पदार्थः --(**पूर्वे**) पूर्व कल्प के समान इस कल्प में (**ते**) वे (**ऋषयः**) जगत् को बनाने वाले पदार्थ (**जरितारः न**) स्तावकों के समान (**भूना**) अपनी शक्ति से (**अस्मै**) इस परमेश्वर की सृष्टि रचना कार्य के लिए (**द्रविणम्**) द्रुत गति संयोग और वियोग को (**सम् आ यजन्त**) संगत होते अथवा प्राप्त होते हैं (**ये**) जो (**निषत्ते**) दृढ़ (**असूर्ते**) गति रहित=स्थावर (**सूर्ते**) गतियुक्त=जंगम (**रजसि**) लोक में (**इमानि**) इन (**भूतानि**) भूत समुदाय को (**सम् अकृण्वन्**) उत्पन्न करते हैं।

भावार्थः—पूर्व कल्प के समान इस कल्प में वे जगत् के बनाने वाले

Scanned by CamScanner

पदार्थ अपनी शक्ति से परमेश्वर की सृष्टि-रचना के कार्य के लिए द्रुत-गति, संयोग और वियोग से संगत होते हैं जो दृढ़ स्थावर और जंगम जगत में इन समस्त भूत-जात को उत्पन्न करते हैं ॥४॥

परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ।
कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥५॥

पदार्थः– वह परमेश्वर (**दिवा परः**) महान् आकाश से भी परे हैं, वह (**एना**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी से भी (**परः**) परे है, (**यत्**) जो (**देवेभिः**) दिव्य पदार्थों और (**असुरैः**) मेघों से (**परः**) परे है (**कम् स्वित्**) किस **(प्रथमम्)** श्रेष्ठ (**गर्भम्**) गर्भ=विराट् रूपी हिरण्यगर्भ को (**आपः**) प्रकृति के परमाणु (**दध्रे**) धारण करते हैं (**यत्र**) जिसमें (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) देव=दिव्य पदार्थ और जीवगण (**समपश्यन्त**) अपने को देखते हैं ।

भावार्थः—परमेश्वर आकाश से भी परे हैं, इस पृथिवी से परे है, सूर्य अग्नि आदि देवों और मेघों से परे है ; किसको पहले प्रकृति परमाणु हिरण्यगर्भ रूप में धारण करते हैं कि जिसमें सभी दिव्य पदार्थ और जीव अपने को सन्निविष्ट पाते हैं ॥५॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन्विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥६॥

पदार्थः—(**तम् इत्**) उस ही (**गर्भम्**) विराट् में स्थित हिरण्यगर्भ को (**आपः**) प्रकृति परमाणु (**प्रथमम्**) पहले (**दध्रे**) धारण करते हैं (**यत्र**) जिसमें (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) पदार्थ (**समगच्छन्त**) संगत रहते है, (**अजस्य**) अजन्मा परमेश्वर के (**नाभौ अधि**) नाभि संग्रहण शक्ति में (**एकम्**) एकवत् (**समर्पितम्**) स्थापित है (**यस्मिन्**) जिसमें (**विश्वानि**) समस्त (**भुवनानि**) भुवन (**तस्थुः**) स्थित होते है ।

भावार्थः–उस ही परमेश्वर को हिरण्यगर्भ के रूप में प्रकृति परमाणु अपने अन्दर धारण करते हैं जिसमें सभी दिव्य पदार्थ और जीवगण संगत होते हैं । अजन्मा परमेश्वर की नाभि=धारक शक्ति में एक विराट् रूप ब्रह्माण्ड स्थापित है जिसमें समस्त लोक-लोकान्तर स्थित होते हैं ॥६॥

Scanned by CamScanner

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृप उक्थशासश्चरन्ति ॥७॥

पदार्थः—हे जीवो ! तुम (**तम्**) उस परमेश्वर को (**न**) नहीं (**विदाथ**) जानते हो (**यः**) जो (**इमा**) इन समस्त लोक लोकान्तरों को (**जजान**) उत्पन्न करता है, तथा (**अन्यत्**) तुम से भिन्न दूसरा होकर (**युष्माकम्**) तुम्हारे (**अन्तरम्**) हृदय में (**बभूव**) विद्यमान है, (**नीहारेण**) अज्ञानान्धकार से (**प्रावृताः**) आच्छादित जन, (**जल्प्याः**) बहुत बोलने वाले, (**असुतृपः**) प्राणों की तृप्ति में ही संलग्न जन और (**उक्थशासः**) केवल शब्दाडम्बर करने वाले (**चरन्ति**) घूमते हैं पर उसको नहीं जानते हैं ।

भावार्थः—हे जीवो ! तुम नहीं जानते हो उस परमेश्वर को जिसने इन समस्त लोक-लोकान्तरों को उत्पन्न किया है, तथा तुमसे भिन्न दूसरा होकर तुम्हारे अन्तःकरण में विद्यमान है, अज्ञान से आच्छादित, केवल बहस करने वाले अथवा शुष्क तर्क में रत, खाने पीने में ही लगे हुए और शब्दाडम्बर मात्र करने वाले उसको नहीं जान सकते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—८३

ऋषिः—१—७ मन्युस्तापसः ॥ देवता—मन्युः ॥ छन्दः—१ विराड्जगती । २ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ निषादः । २-७ धैवतः ॥

सूचना-ये ८३ और ८४ सूक्त मन्यु के सम्बन्ध में हैं । आत्मदीप्ति और अन्याय के प्रतीकार की भावना को मन्यु कहा जाता है । क्रोध में उग्रता होती और मन्यु में यह उग्रता उस प्रकार की नहीं होती । क्रोध में बुद्धि पर पर्दा पड़ जाता है परन्तु मन्यु में बुद्धि की जागरूकता रहती है ।

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

पदार्थ--(**यः**) जो मनुष्य (**ते**) इस (**वज्र**) वज्र के समान दृढ (**सायक**) सायक के समान बुराइयों का विध्वंसक (**मन्योः**) मन्यु की (**अविधत्**) सम्मान करता है वह (**विश्वम्**) समस्त (**सहः**) बाह्यबल (**ओजः**) शरीर बल को (**आनुषक्**) निरन्तर (**पुष्यति**) पुष्ट करता है, (**सहस्वना**) बलशाली, (**सहसा**) सहमान (**सहस्कृतेन**) बल से सब कुछ करने वाले (**त्वया**) इसके (**युजा**) साथ (**दासम्**) दस्यु और (**आर्यम्**) आर्य दोनों प्रकार के शत्रुओं को (**सासह्याम**) अभिभूत करें।

भावार्थः - जो मनुष्य वज्र के समान दृढ़ और सायक के समान बुराइयों का मुकाबला करने में कारगर मन्यु का सम्मान करता है वह बाह्य और शारीरिक दोनों प्रकार के बल को पुष्ट करता है। हम शक्तिशाली, शक्ति को बढ़ाने वाले इस मन्यु के सहारे से दस्यु और आर्य दोनों में जो भी दस्युकर्मा हो उसे दबा दें ॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ॥२॥

पदार्थः--(**मन्युः**) मन्यु (**इन्द्रः**) विद्युत् है, (**मन्युः**) मन्यु (**एव**) ही (**देवः**) देव (**आस**) है (**मन्युः**) मन्यु (**होता**) अग्नि है, (**मन्युः**) मन्यु ही (**जातवेदाः**) समस्त पदार्थों में विद्यमान (**वरुणः**) प्रदीप्त अग्नि है, (**याः**) जो (**मानुषीः**) मानुषी (**विशः**) प्रजायें हैं वे (**मन्युम्**) मन्यु की (**ईडते**) प्रशंसा करती हैं (**तपसा**) ताप से (**सजोषाः**) समान प्रीति (**मन्यो**) मन्यु (**नः**) हमारी (**पाहि**) रक्षा करता है।

भावार्थः—मन्यु विद्युत्, दिव्य शक्तियों, अग्नि और वरुण=प्रदीप्त-तम अग्नि के अंशों वाला है। मानुषी प्रजा इसको धारण करती है और यह ताप के साथ विद्यमान हो हमारी रक्षा का साधन है ॥२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान्तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥३॥

पदार्थः-- (**मन्यो**) यह मन्यु (**अभीहि**) हमें प्राप्त हो। यह (**तवसः**) बल से भी (**तवीयान्**) बलवान् है। (**तपसा युजा**) ताप से युक्त होकर (**शत्रून्**) काम अन्याय आदि शत्रुओं को (**जहि**) मारता है। (**अमित्रहा**) मित्र को न मारने वाला, (**वृत्रहा**) असुर प्रवृत्तियों का हन्ता (**च**) और (**दस्युहा**) दस्यु

Scanned by CamScanner

भावना का विनाशक (**त्वम्**) यह मन्यु (**नः**) हमें (**विश्वा**) समस्त (**वसूनि**) ऐश्वर्यों को (**आभर**) देता है।

भावार्थः—यह मन्यु हममें होना चाहिए। यह बल से भी अधिक बलवान् है। तापशक्ति से युक्त हुआ यह अन्याय आदि शत्रुओं का विनाश करता है। यह मित्रों का अविघातक आसुर भावनाओं का हन्ता और दस्युता का विघातक है। समस्त ऐश्वर्यों की प्राप्ति में यह हमारा सहयोगी होता है ॥३॥

त्वं हि म॑न्यो अ॒भिभू॑त्योजाः स्वय॒म्भूर्भामो॑ अभिमातिषा॒हः ।
वि॒श्वच॑र्षणिः॒ सहु॑रिः॒ सहा॑वान॒स्मास्वोजः॒ पृत॑नासु धेहि ॥४॥

पदार्थः—(**त्वम् हि**) यह ही (**मन्यो**) मन्यु (**अभिभूति ओजाः**) दूसरे विरोधी वलों का दबाने वाला, (**स्वयम्भूः**) अपने आप पैदा होने वाला (**भामः**) भीषण (**अभिमाति साहः**) शत्रुओं का विनाश करने वाला (**विश्व चर्षणिः**) समस्त मनुष्यों में किसी न किसी मात्रा में विद्यमान रहने वाला (**सहुरिः**) सहनशील, (**सहावान्**) सहनवान् यह (**अस्मासु**) हमारे लिए (**पृतनासु**) संग्रामों में (**ओजः**) ओज को (**धेहि**) धारण करता है।

भावार्थः—यह मन्यु दूसरे विरोधी भावों का दबाने वाला, स्वयं सत्ता वाला, भीषण, शत्रुओं का नाश करने वाला समस्त मनुष्यों में किसी न किसी मात्रा में विद्यमान, सहनशक्ति से युक्त, दबदबा वाला है। यह हमारे लिए संग्रामों में ओज धारण कराता है ॥४॥

अ॒भा॒गः सन्नप॒ परे॑तो अस्मि॒ तव॒ क्रत्वा॑ तवि॒षस्य॑ प्रचेतः ।
तं त्वा॑ मन्यो अक्र॒तुर्जि॑हीळा॒हं स्वा त॒नूर्ब॑ल॒देया॑य॒ मेहि॑ ॥५॥

पदार्थः—(**प्रचेतः**) प्रकृत चेतना से युक्त, (**तविषस्य**) महान् (**तव**) इस मन्यु के (**क्रत्वा**) कर्म से (**अभागः**) भागरहित (**सन्**) होता हुआ मैं (**अप परा इतः**) शत्रुओं से अभिभूत हो जाता हूँ, (**अक्रतुः**) अकर्मशील मैं (**तम् त्वा**) इस उसका (**जिहील**) अनादर करता हूं, (**अहम्**) मैं (**स्वा**) स्वयं (**तनूः**) अकेला शरीर हूं (**बलदेयाय**) बल प्रदान के लिए (**मा**) मुझे (**आ इहि**) प्राप्त होता है।

भावार्थः—सम्पूर्ण सावधानता से युक्त महान् इस मन्यु के कर्म से भागरहित मनुष्य शत्रुओं से अभिभूत हो जाता है। वह अकर्मण्य होकर

Scanned by CamScanner

इस मन्यु का अनादर करता है। परन्तु जब वह अकेला होता है तब इस मन्यु से बल प्राप्त करता है ॥५॥

अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥६॥

पदार्थः--(**अयम्**) यह मन्युरहित अकेला मनुष्य (**ते**) उस मन्यु का (**अस्मि**) हो जाता है, **मा**) मुझ को (**उपेहि**) प्राप्त हो, हे (**सुहुरे**) सहन शक्ते ! हे (**वज्रिन्**) वज्रिन् (**विश्वधायः**) सब में रहने वाले मन्यो ! (**प्रतीचीन**) पराङ्मुख हुआ तू (**माम् अभि आ ववृत्स्व**) मेरे पास आ और (**अर्वाङ्**) अभिमुख हो, (**दस्यून्**) दस्यु चोर डाकुओं को (**हनाव**) नष्ट कर (**उत**) और (**आपेः**) बन्धुत्व को (**बोधि**) समझो ।

भावार्थः—मन्युरहित मनुष्य अकेला होकर उस मन्यु का बन जाता है और बोलता है कि मन्यु उससे पराङ्मुख न होकर उसके पास आवे, उसके पास रहे और चोर डाकुओं का नाश कर बन्धुत्व का परिचय दे ॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि ।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥७॥

पदार्थः—वह कहता है कि—(**अभिप्रेहि**) मन्यु आवे, (**मे**) उसके (**दक्षिणतः**) दाहिने (**भव**) होवे, (**अध**) और (**वृत्राणि**) बुराइयों को (**भूरि**) बहुत प्रकार से (**जंघनाव**) नष्ट करे, (**ते**) उसके लिए यह (**धरुणम्**) धारक (**मध्वः**) मधु का (**अग्रम्**) श्रेष्ठ सार (**जुहोमि**) खाता है (**उभौ**) ये मन्यु और यह मनुष्य अर्थात् दोनों ही (**उपांशु**) शान्त हो (**प्रथमा**) पहले (**पिबाव**) पीयें ।

भावार्थः—वह मन्युहीन मनुष्य कहता है कि—मन्यु उसे प्राप्त हो, उसके दायें हो और बुराई एवम् बाधाओं को सब प्रकार से हटावे। मन्यु आवे इसलिए वह धारक मधु रस को खाता है। वह और यह मन्यु दोनों इस रस को पीयें ॥७॥

यह दशम मण्डल में तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—८४

ऋषिः १—७ मन्युस्तापसः ॥ देवता—मन्युः ॥ छन्दः – १, ३ त्रिष्टुप् । २ भुरिक्त्रिष्टुप् । ४, ५ पादनिचृज्जगती । ६ आर्चीस्वराड्-जगती । ७ विराड्जगती ॥ स्वरः—१—३ धैवतः । ४—७ निषादः ॥

त्वया॑ मन्यो स॒रथ॑मारु॒जन्तो॒ हर्ष॑माणासो धृषि॒ता म॑रुत्वः ।
ति॒ग्मेष॑व॒ आयु॑धा सं॒शिशा॑ना अ॒भि प्र य॑न्तु॒ नरो॑ अ॒ग्निरू॑पाः ॥१॥

पदार्थः (**मन्यो मरुत्वः**) इस वीरों आदि में विशेष रूप से रहने वाले मन्यु (**त्वया**) तेरे साथ (**सरथम्**) एक ही रथ=रमणीय साधन पर (**आरुजन्तः**) जाते हुए (**हर्षमाणासः**) दृप्ट (**धृषिताः**) हृष्ट (**तिग्मेषवः**) तीक्ष्ण बाणों वाले (**आयुधा**) शस्त्रों को (**संशिशानाः**) तीक्ष्ण करते हुए (**अग्निरूपाः**) अग्नि के समान तेजस्वी (**नरः**) मनुष्य (**अभि प्रयन्तु**) युद्ध में जाते हैं ।

भावार्थः वीर पुरुषों में विशेषरूप में रहने वाले इस मन्यु के साथ एक ही रथ आदि साधन पर बैठे हुए हृष्ट, धृष्ट, तीक्ष्ण बाणों वाले, अस्त्र शस्त्रों को तीक्ष्ण करते हुए अग्नि के समान तेजस्वी मनुष्य युद्ध के लिए जाते हैं ॥१॥

अ॒ग्निरि॑व मन्यो त्विषि॒तः स॑हस्व सेना॒नीर्नः॑ सहुरे हू॒त ए॑धि ।
ह॒त्वाय॒ शत्रू॒न्वि भ॑जस्व॒ वेद॒ ओजो॒ मिमा॑नो॒ वि मृधो॑ नुदस्व ॥२॥

पदार्थः (**मन्यो**) यह मन्यु (**अग्निः इव**) अग्नि के समान (**त्विषितः**) प्रज्वलित हुआ शत्रुओं को (**सहस्व**) अभिभूत करता है, (**सुहुरे**) सहनशील (**सेनानीः**) सेनानी (**हूतः**) बुलाया गया हुआ (**नः**) हमारे संग्राम में (**एधि**) होता है, (**शत्रून्**) शत्रुओं को (**हत्वाय**) मारकर (**वेदः**) उनका धन (**विभजस्व**) बांटता है, (**ओजः**) बलको (**मिमानः**) देता हुआ (**मृधः**) शत्रुओं को (**विनुदस्व**) मारता है ।

भावार्थः यह मन्यु अग्नि के समान दीप्त हुआ शत्रुओं को अभिभूत करता है । सहनशील यह सेनानी बनता है, शत्रुओं को मारकर धन पात्रों में बांट देता है, अन्य शत्रुओं को भी मारता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन्मृणन्प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् ।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुध्रे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥३॥

पदार्थः—(**मन्यो**) यह मन्यु (**रुजन्**) पीडा देता हुआ, (**मृणन्**) छिन्न-भिन्न करता हुआ (**प्रमृणन्**) विनष्ट करता हुआ (**अस्मे**) हमारे (**अभिमातिम्**) आक्रामक शत्रु को (**सहस्व**) मारता है, (**शत्रून्**) शत्रुभूत बुराइयों को (**प्रेहि**) आक्रान्त करता है, (**ते**) इसके (**उग्रम्**) प्रचण्ड (**पाजः**) बल को कौन (**आ रुरुधे ननु**) रोक सकता है (**एकजः वशी**) असहाय वशी (**त्वम्**) यह मन्यु (**वशम्**) वश में (**नयसे**) शत्रुओं को करता है ।

भावार्थः—यह मन्यु पीड़ा देता हुआ, छिन्न-भिन्न करता हुआ, विनष्ट करता हुआ हमारे आक्रामक को मारता है शत्रु पर आक्रमण करता है। इसके प्रचण्ड बल को कोई रोक नहीं सकता है। यह असहाय ही शत्रुओं को वश में करता है ॥३॥

एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि ।
अकृत्तरुक्त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ॥४॥

पदार्थः—(**मन्यो एकः**) यह एक मन्यु (**बहूनाम्**) बहुतों का (**ईडितः**) प्रशंसनीय (**असि**) है (**विशम् विशम्**) प्रत्येक प्रजा को (**युधये**) युद्ध के लिए (**सम् शिशाधि**) सम्यक् तीक्ष्ण करता है, (**अकृत्तरुक्**) अच्छिन्न दीप्ति के (**त्वया**) इसके (**युजा**) सहाय से (**वयम्**) हम (**द्युमन्तम्**) दीप्तिमय (**घोषम्**) घोष को (**विजयाय**) विजय के लिए (**कृण्महे**) करते हैं ।

भावार्थः—यह मन्यु अकेला ही बहुतों में प्रशंसनीय है। प्रत्येक प्रजा के व्यक्ति को युद्ध के लिए भली प्रकार तीक्ष्ण करता है। अच्छिन्न-दीप्ति इस मन्यु के साहाय्य से विजय के लिए दीप्तिमय घोष करते हैं ॥४॥

विजेषकृदिन्द्रइवानवब्रवो३ऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह ।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ ॥५॥

पदार्थः—(**मन्यो**) यह मन्यु (**इन्द्र इव**) इन्द्र के समान (**विजेषकृत्**) विजयकर्त्ता, (**अनवब्रवः**) अनिन्दित वचन होकर (**इह**) इस लोक में (**अस्माकम्**) हमारा (**अधिपा**) रक्षक (**भव**) होता है, (**सहुरे**) सहनशील (**ते**) इस मन्यु

Scanned by CamScanner

के (**प्रियम्**) प्रिय (**नाम**) तेज की (**गृणीमसि**) प्रशंसा करते हैं हम (**तम्**) उस (**उत्सम्**) उद्गम स्थान को (**विद्मः**) जानते हैं (**यतः**) जिससे (**आबभूथ**) पैदा होता है ।

भावार्थः – यह मन्यु इन्द्र के समान विजयकर्ता अनिन्दित वचन होकर इस लोक में हमारा रक्षक होता है । सहनशील इस मन्यु के प्रिय तेज की हम प्रशंसा करते हैं । हम उस उद्गम स्थान को जानते हैं जिससे यह पैदा होता है ॥५॥

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्यभिभूत उत्तरम् ।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि ॥६॥

पदार्थः – (**वज्र**) वज्रवत् दृढ (**सायक**) शत्रुनाशक (**अभिभूते**) अभिभावुक यह मन्यु (**आभूत्या**) अभिभव मे (**सहजाः**) साथ ही उत्पन्न हुआ(**उत्तरम्**) उत्कृष्टतर (**सहः**) बल को (**बिभर्षि**) धारण करता है (**पुरुहूत**) बहुतों से प्रशंसा किया जाने वाला (**मन्यो**) मन्यु (**महाधनस्य**) संग्राम के (**संसृजि**) सर्ग में (**क्रत्वा**) कर्म के (**सहः**) साथ (**नः**) हमारा (**मेदी**) स्निग्ध (**एधि**) होता है ।

भावार्थः – वज्रवत् दृढ, शत्रुनाशक, अभिभावुक यह मन्यु अभिभव से सहोत्पन्न हुआ उत्कृष्टतर बल को धारण करता है । बहु प्रशंसित मन्यु संग्राम के सर्ग में कर्म के साथ हमारा हर्षकारक होता है ॥६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः ।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥७॥

पदार्थः—(**वरुणः**) प्राणशक्ति (**च**) और (**मन्युः**) मन्यु (**संसृष्टम्**) सब के साथ मिला, (**उभयम्**) चर अचर दोनों प्रकार का (**समाकृतम्**) सम्पादित (**धनम्**) धन (**अस्मभ्यम्**) हमें (**दत्ताम्**) देवें (**शत्रवः**) शत्रुजन (**हृदयेषु**) हृदयों में (**भियम्**) डर को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**पराजितासः**) पराजित हुए (**अप निलयन्ताम्**) दूर भाग कर छिप जावें ।

भावार्थः —प्राणशक्ति और मन्यु साथ मिले चर-अचर दोनों प्रकार के सम्पादित धन को हमें देवें । शत्रुजन हृदयों में भीति को धारण करते हुए पराजित होकर भागकर दूर छिप जावें ॥७॥

यह दशम मण्डल में चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ८५

ऋषिः—१—४७ सूर्या सावित्री ॥ देवता—१—५ सोमः । ६—१६ सूर्याविवाहः । १७ देवाः । १८ सोमार्कौ । १९ चन्द्रमाः । २०—२८ नृणां विवाहमन्त्रा आशीःप्रायाः । २९, ३० वधूवासःसंस्पर्शनिन्दा । ३१ यक्ष्मनाशिनी दम्पत्योः । ३२—४७ सूर्या ॥ छन्दः—१, ३, ८, ११, २५, २८, ३२, ३३, ३८, ४१, ४५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ५, ९, ३०, ३१, ३५, ३९, ४६, ४७ अनुष्टुप् । ६, १०, १३, १६, १७, २९, ४२ विराडनुष्टुप् । ७, १२, १५, २२ पादनिचृदनुष्टुप् । ४० भुरिगनुष्टुप् । १४, २०, २४, २६, ३७ निचृत्त्रिष्टुप् । १९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २१, ४४ विराट्-त्रिष्टुप् । १३, २७, ३६ त्रिष्टुप् । १८ पादनिचृज्जगती । ४३ निचृज्जगती । ३४ उरोबृहती ॥ स्वरः–१–१३—१५—१७, २२, २५, २८—३३, ३५, ३८—४२, ४५—४७ गान्धारः । १४, १९—२१, २३, २४, २६, २७, ३६, ३७, ४४ धैवतः । १८, ४३ निषादः ३४ मध्यमः ॥

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥१॥

पदार्थः—(सत्येन) परमेश्वर के सत्य नियम से (**भूमिः**) भूमि (**उत्तभिता**) थमी हुई है, (**सूर्येण**) सूर्य से (**द्यौः**) द्युलोक (**उत्तभिता**) थमा है, (**ऋतेन**) सृष्टि के नियम से (**आदित्याः**) आदित्य स्थित हैं (**दिवि अधि**) आकाश में (**सोमः**) चन्द्रमा (**श्रितः**) स्थित है ।

भावार्थः—परमेश्वर के सत्य नियम से भूमि ठहरी हुई है । सूर्य से द्युलोक थमा हुआ है, सृष्टि नियम से आदित्य स्थित हैं और आकाश में चन्द्रमा स्थित है ॥१॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही ।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥२॥

पदार्थः—परमेश्वर द्वारा प्रदत्त (**सोमेन**) सोमशक्ति=बलदात्री शक्ति से (**आदित्याः**) आदित्य (**बलिनः**) बली है, (**सोमेन**) सोम से ही (**मही**) महती

Scanned by CamScanner

(पृथिवी) शक्तिशाली है, (अथो) और (एषाम्) इन (नक्षत्राणाम्) नक्षत्रों के (उपस्थे) स्थान आकाश में (सोमः) सोम तत्त्व (आहितः) रखा है ।

भावार्थः—परमेश्वर द्वारा प्रदत्त सोमशक्ति से आदित्य शक्तिवाले हैं, सोम से ही यह महतीभूमि शक्तिशालिनी है । इन नक्षत्रों के अन्तस्थान=आकाश में सोमतत्त्व भरा है ॥२॥

सोमं मन्यते पपिवान्यत्संपिंषन्त्योषधिम् ।

सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन ॥३॥

पदार्थः—(पपिवान्) पान करने वाला तो (सोमम्) सोम (मन्यते) मानता उसी को (यत्) जो कि (ओषधिम्) ओषधि को (संपिषंन्ति) पीसकर निचोड़ते और उसका रस पान करते हैं, परन्तु (यम्) जिस (सोमम्) सोम को (ब्रह्माणः) वैज्ञानिक मेधावी (विदुः) जानते हैं (तस्य) उसे (न) नहीं (अश्नाति) खाता है (कश्चन) कोई भी ।

भावार्थः—सोम ओषधि के रस को पीने वाला तो उस ओषधि को ही जिसे पीसकर रस निकाला जाता है सोम मानता है । परन्तु वैज्ञानिक मेधावी जिसे सोम कहते हैं उसको कोई खा नहीं सकता है । यह सोम तो जगत् के पदार्थों की धारिका एक शक्ति है ॥३॥

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।

ग्राव्णामिच्छृण्वन्तिष्ठसि न ते अश्नाति पार्थिवः ॥४॥

पदार्थः—(आच्छद्विधानैः) आच्छादित है विधान विद्या आदि जिनके द्वारा ऐसी दैवीशक्तियों से (सोमः) सोम (गुपितः) रक्षित है तथा (बार्हतैः) वृहत्साम से सम्बद्ध शक्तियों अर्थात् सात सोमपाल जिन्हें स्वान, भ्राज और अंघारि आदि नाम दिया जाता है उनसे (गुपितः) रक्षित हैं यह (ग्राव्णाम्) मेघों की (इत्) ही ध्वनि को (शृण्वन्) सुनता हुआ (तिष्ठसि) स्थित है (ते) इसे (पार्थिवः) पृथिवीस्थ कोई (न) नहीं (अश्नाति) खाता है ।

भावार्थ - यह सोम=धारिका शक्ति आच्छादक पदार्थों और सप्त सोमपालों से रक्षित है । इसको कोई पृथिवीस्थ प्राणी नहीं खा सकता है । भाव यह है कि अग्नि और सोम से यह सारा जगत् है । स्वान, भ्राज अंघारि बम्भारि आदि अग्नि के भेद हैं । उनसे यह आकाश में रक्षित सोम किसी पार्थिव प्राणी से नहीं खाया जाता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

यत्त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥५॥

पदार्थः—(त्वा देव) इस देव=दिव्य सोम को ऊपर पक्ष में रश्मियां (प्रपिबन्ति) पीती हैं (ततः) उसके अनन्तर पूर्वपक्ष में (पुनः) फिर (**आप्यायसे**) फिर पूर्ण हो जाता वा कर लेता है, (**वायुः**) वायु (**सोमस्य**) इस चन्द्रमा का (**रक्षिता**) रक्षक है (**समानाम्**) संवत्सरों के (**मासः**) महीने का (**आकृतिः**) कर्ता है ।

भावार्थः – चन्द्रमा जिसे भी सोम कहा जाता है वह महीने के कृष्ण पक्ष में रश्मियों द्वारा पीया जाता है और घटता है पुनः शुक्ल पक्ष में वह इसे पूरा कर लेता है। वायु इसकी गति का रक्षक है और यह वर्ष के महीने का कर्ता है ॥५॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी ।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**सूर्यायाः**) उषा का (**वासः**) वस्त्र अथवा उषा की कान्ति (**भद्रम् इत्**) भद्र ही है क्योंकि वह (**गाथया**) गाथायुक्त मन्त्रों से (**परिष्कृतम्**) अलंकृत हुआ (**एतिः**) रहता है । (**रैभी**) रैभी नामक ऋक् (**अनुदेयी**) विवाह के बाद देने योग्य (**आसीद्**) होती है और (**नाराशंसी**) नाराशंसी ऋक् (**न्योचनी**) ओढ़नी वा उपवस्त्र है ।

भावार्थः – यह ज्ञात रहे कि छन्दों का दैवी पदार्थों से सम्बन्ध है। अतः इस मन्त्र में बताया गया है सूर्या=उषा रूपी वधू का वस्त्र गाथा से अलंकृत है। उसकी विवाह की साड़ी रैभी ऋक् है और नाराशंसी उपवस्त्र ओढ़नी है ॥६॥

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥७॥

पदार्थः—(**यत्**) यदा (**सूर्या**) उषा (**पतिम्**) पति को (**अयात्**) प्राप्त होती है तब (**चित्तिः**) चित्ति=पूर्वचिति उसका (**उपबर्हणम्**) तकिये के समान (**आः**) होता है, (**चक्षुः**) नेत्र (**अभ्यञ्जनम्**) अभ्यंजन (**आः**) होता है (**द्यौः**) द्युलोक और (**भूमिः**) भूमि (**कोशः**) कोश (**आसीत्**) होता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जब सूर्या=उषा पति को प्राप्त होती है तब चित्ति उसका सिरहाना, चक्षु उसका आंजन होते हैं। द्यु और पृथिवी उसके कोश होते हैं ॥७॥

स्तोमा॑ आसन्प्रति॒धयः॑ कु॒रीरं॒ छन्द॑ ओप॒शः।
सू॒र्याया॑ अ॒श्विना॑ व॒राग्निरा॑सीत्पुरोग॒वः ॥८॥

पदार्थः—(**स्तोमाः**) स्तोम (**सूर्यायाः**) सूर्या=उषा के रथ के (**प्रतिधयः**) धारण करने वाले काष्ठ आदि (**आसन्**) होते हैं, (**कुरीरम्**) कुरीर (**छन्दः**) (**ओपशः**) शयन होता है (**अश्विना**) प्राण और अपान (**वरा**) वर (**पुरोगवः**) आगे चलने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**आसीत्**) होता है।

भावार्थः—स्तोम उसके रथ के काष्ठ आदि, कुरीर छन्द शयन होता है। प्राण अपान सहवाले और अग्नि आगे चलने वाला होता है ॥८॥

सोमो॑ वधू॒युर॑भवद॒श्विना॑स्तामु॒भा व॒रा।
सू॒र्यां यत्पत्ये॒ शंस॑न्तीं॒ मन॑सा सवि॒ताद॑दात् ॥९॥

पदार्थः—(**सोमः**) सोम पदार्थ (**वधूयुः**) वधू को चाहने वाला (**अभवत्**) होता है (**अश्विना**) प्राण और अपान (**उभा**) दोनों (**वरा**) सहवाले (**आस्ताम्**) होते हैं (**यत्**) जब (**सविता**) सविता (**मनसा**) मन से (**शंसन्तीम्**) कामना करती हुई (**सूर्याम्**) सूर्या=उषा को (**पत्ये**) पति को (**अददात्**) देता है।

भावार्थः—सोम पदार्थ वधू की कामना वाला होता है। प्राण और अपान दो सहवाले होते हैं। सविता पति को चाहती हुई सूर्या को पति को प्रदान करता है ॥९॥

मनो॑ अ॒स्या अन॑ आसी॒द् द्यौरा॑सीदु॒त छ॒दिः।
शु॒क्राव॑न॒ड्वाहा॑वास्तां॒ यदया॑त्सू॒र्या गृ॒हम् ॥१०॥

पदार्थः—(**मनः**) मन (**अस्याः**) इस सूर्या का (**अनः**) रथ (**आसीत्**) होता है (**उत**) और (**द्यौः**) द्युलोक (**छदिः**) ऊपर की छत (**आसीत्**) होती है, (**शुक्रौ**) प्रकाशमान सूर्य और चन्द्र (**अनड्वाहौ**) रथ के ले चलने वाले बैल

Scanned by CamScanner

(आस्ताम्) होते हैं (यत्) यदा (सूर्या) सूर्या उषा (गृहम्) गृह को (आयात्) जाती है ।

भावार्थः—जब सूर्या=उषा पति के गृह को जाती है तब मन उसका रथ होता है, द्युलोक ऊपर की छत होता है और प्रकाशमान सूर्य और चन्द्र रथ को खीचने वाले बैल होते हैं ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥

पदार्थः (ते) उस सूर्या के (गावौ) सूर्य चन्द्र रूपी बैल (ऋक् सामाभ्याम्) ऋक् और साम के नाम से अभिहित होने वाले (सामानौ) साम होकर (इतः) यहां से जावें, (ते) इसके (श्रोत्रम्) श्रोत्र (चक्रे) चक्र (आस्ताम्) होवें (दिवि) द्युलोक में (चराचरः) चलाचल (पन्थाः) मार्ग हो ।

भावार्थः—उस सूर्या के रथ के वाहक सूर्य चन्द्र रूपी बैल जो ऋक् और साम के नाम से कहे जाते है साम=संयत होकर यहां से जावें । इसके श्रोत्र रथ के चक्के हों और द्युलोक में इसका चलाचल मार्ग हो ॥११॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्यारोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥

पदार्थः—(यात्याः) जाती हुई (ते) इस सूर्या के रथ के (शुची) श्रोत्र (चक्रे) चक्के हैं (व्यानः) व्यान (अक्षः) अक्ष (आहतः) लगा है, (मनस्मयम्) मनोमय (अवः) रथ पर (पतिम्) पति के पास (प्रयती) जाती हुई (सूर्या) सूर्या (आ रोहत्) आरूढ होती है ।

भावार्थः—जाती हुई सूर्या के रथ के चक्के होते हैं दोनों कान और व्यान उस रथ का अक्ष होता है । मनोमय रथ पर पति के घर जाती सूर्या आरूढ़ होती है ॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥१३॥

पदार्थः—(सूर्यायाः) सूर्या का (वहतुः) विवाह (प्रागात्) होता है (यम्) जिसको (सविता) सूर्य (अवासृजत्) करता है (अघासु) मघा नक्षत्र

अर्थात् जाड़े के महीने में (**गावः**) सूर्य किरणें (**हन्यन्ते**) मारी जाती है अर्थात् मन्द हो जाती है और (**अर्जुन्योः**) रात्रि में (**परि उह्यते**) कठिनाई से बितायी जाती है।

भावार्थः—सूर्या का वह पिता सविता द्वारा किया जाने वाला विवाह होता है। मघा नक्षत्र अर्थात् माघ मास में सूर्य की किरणें मन्द पड़ जाती है और रात्रियें कठिनाई से बिताई जाती हैं ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन्पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥१४॥

पदार्थः (**यत्**) जब (**अश्विना**) प्राण और अपान (**सूर्यायाः**) सूर्या के (**वहतुम्**) विवाह को (**पृच्छमानौ**) पूछते हुए (**त्रिचक्रेण**) तीन चक्कों वाले रथ से (**आयातम्**) आते हैं (**तत्**) तब (**विश्वे**) समस्त (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**वाम्**) इन दोनों का (**अनु अजानन्**) अनुमोदन करते हैं (**पुत्रः**) पुत्र भूत (**पूषा**) वायु (**पितरौ**) प्राणापान रूपी पिता को (**अवृणीत्**) स्वीकृति देता है।

भावार्थः— सूर्या के विवाह में प्राण और अपान भाग लेते हैं। समस्त दिव्य पदार्थ इसका अनुमोदन करते हैं और वायु प्राणापान को स्वीकृति प्रदान करता है अर्थात् उनकी अनुकूलता में रहता है॥

यदयातं शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥१५॥

पदार्थः—(**शुभस्पती**) जल के रक्षक अश्विना=प्राण और उदान (**यत्**) जब (**सूर्याम् उप**) सूर्या के पास जाने के लिए (**वरेयम्**) वरार्थ कन्या देने वाले सविता के पास (**आयातम्**) आते हैं तो (**वाम्**) उनका (**एकम्**) एक (**चक्रम्**) चक्र (**क्व**) कहां (**आसीत्**) रहता है और वे (**क्व**) कहां पर (**देष्ट्राय**) देने के लिए (**तस्थथुः**) निवास करते हैं।

भावार्थः—जल के उत्पादक और रक्षक प्राण और उदान जब उषा के पास जाने के लिए सूर्य के पास आते हैं तब उनका तीन चक्रों में से एक चक्का कहां रह जाता है और वे जल आदि प्रदान करने में कहां रहते हैं? भाव यह है कि सूर्य के पास होने पर पृथिवी रूपी चक्का पास नहीं

Scanned by CamScanner

होता है केवल द्यु और अन्तरिक्ष ही पास होते हैं । ये दोनों अन्तरिक्ष में रहते हैं और शरीरादि में भी ॥१५॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥

पदार्थः—(सूर्ये ते) इस सूर्या के (द्वे) दो (चक्रे) चक्के जो सूर्य और चन्द्र रूप में है (ऋतुथा) ऋतु के अनुसार निर्दिष्ट है उनको (ब्रह्माणः) मेधावी जन (विदुः) जानते हैं (अथ) और (एकम्) एक (चक्रम्) चक्का संवत्सर रूप (यद्) जो (गुहा) गूढ़ है (तद्) उसको (अद्धातयः) कालविद् मेधावी जन (इद्) ही (विदुः) जानते हैं ।

भावार्थः—सूर्या के सूर्य और चन्द्र रूपी दो चक्रों को जो ऋतुश निर्दिष्ट होते है मौसमों को जानने वाले विद्वान् लोग जानते हैं। परन्तु सम्वत्सररूप जो तीसरा छिपा हुआ चक्र है उसे कालविद् जानते हैं ॥१६॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च ।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥१७॥

पदार्थ—(सूर्यायै) सूर्या के लिए (देवेभ्यः) अग्नि आदि देवों के लिए, (मित्राय) वायु (च) और (वरुणाय) जल के लिए (ये) जो (भूतस्य) भूत जात के (प्रचेतसः) सूचक हैं (तेभ्यः) उनके लिए (इदम्) यह (नमः) अन्न आदि युक्त हव्य सामग्री (अकरम्) हम करते हैं ।

भावार्थः—सूर्या, अग्नि आदि दिव्य पदार्थ, मित्र वरुण आदि जो प्ररा भूत ग्राम की सूचना देते रहते हैं उनके लिए यथार्थ हम अन्नादि से युक्त हवि तैयार करते हैं ॥१७॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम् ।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥१८॥

पदार्थः—(एतौ) ये दोनों सूर्य और चन्द्रमा (क्रीळन्तौ) खेलते हुए (शिशू) दो शिशुओं की भांति (अध्वरम्) अन्तरिक्ष (परि) में (मायया) भगवान् की बुद्धि द्वारा (पूर्वापरम्) एक दूसरे के पूर्व और बाद (चरतः) चलते हैं, (अन्यः)

Scanned by CamScanner

उनमें एक सूर्य (**विश्वानि**) समस्त (**भुवना**) भुवनों को (**अभि चष्टे**) प्राप्त होकर देखाता है (**अन्यः**) चन्द्रमा (**ऋतून्**) ऋतुओं को (**विदधत्**) करता हुआ (**पुनः**) फिर से (**जायते**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—दो खेलते हुए शिशुओं की भांति सूर्य और चन्द्रमा एक दूसरे के पहले और पीछे अन्तरिक्ष में उदित होते हैं । इन दोनों में सूर्य समस्त भुवनों को हमें दिखाता है और दूसरा चन्द्रमा ऋतुओं आदि को बनाता हुआ कला के हिसाब से पुनः-पुनः नया होता रहता है ॥१८॥

नवोनवो भवति जायमानोऽह्नां केतुरुषसामेत्यग्रम् ।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन्प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

पदार्थः—(**अह्नाम्**) दिनों का [प्रतिपदा आदि तिथियों का] (**केतुः**) प्रज्ञापक चन्द्रमा (**जायमानः**) अपनी कला से बढ़ता हुआ (**नवः नवः**) प्रति दिन नया-नया (**भवति**) होता रहता है यह (**उषसाम्**) उषाओं के (**अग्रम्**) अग्र को (**एति**) प्राप्त होता है (**आयन्**) पक्षान्तों को प्राप्त होता हुआ (**देवेभ्यः**) देवों को (**भागम्**) हविर्भाग (**विदधाति**) करता है अर्थात् देता है (**चन्द्रमाः**) चन्द्र (**दीर्घम्**) दीर्घ (**आयुः**) आयु (**प्रतिरते**) देता है ।

भावार्थः—तिथियों का और दिनों का प्रज्ञापक अपनी कला से घटता बढ़ता चन्द्रमा प्रतिदिन नवीन होता रहता है । यह उषाओं के अग्र को प्राप्त होता है । पक्षान्त को प्राप्त करता हुआ यज्ञ देवों को हविर्भाग प्रदान करता है और लोकों को दीर्घ आयु देता है ॥१९॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम् ।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व ॥२०॥

पदार्थः—(**सूर्ये**) हे उषः वेला के समान सुन्दर बधू ! तू (**सुकिंशुकम्**) उत्तम पुष्पों से सजाये हुए (**शल्मलिम्**) स्वच्छ साफ अथवा सेमरवृक्ष की लकड़ी के बने हुए (**विश्वरूपम्**) विविध रूपों वाले (**हिरण्यवर्णम्**) स्वर्ण आदि चमकीले धातुओं से मंडित (**सुवृतम्**) उत्तमता से व्यवहार में आने योग्य (**सुचक्रम्**) सुन्दर पहियों वाले रथ पर (**आरोह**) चढ़, तथा (**पत्ये**) पति के लिए (**वहतुम्**) अपने विवाह को (**स्योनम्**) सुखकर (**अमृतस्य**) अमृतका (**लोकम्**) स्थान (**कृणुष्व**) कर ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सुन्दर पुष्पों से सजे साफ स्वच्छ, नानारूप, स्वर्ण आदि से मंडित, उत्तमगति वाले और सुन्दर पहियों वाले रथ पर हे वधू ! तू चढ़ । अपने पति के लिए अपने विवाह को सुखकर अमृत का स्थान बना । अर्थात् पति के घर को स्वर्ग सम बना ॥२०॥

उदी॑र्ष्वातः पति॑वती॒ ह्ये॒३॑षा विश्वा॑वसुं॒ नम॑सा गी॒र्भिरी॑ळे ।
अ॒न्यामि॑च्छ पितृ॒षदं॒ व्य॑क्तां॒ स ते॑ भा॒गो ज॒नुषा॒ तस्य॑ विद्धि ॥२१॥

पदार्थः—(**विश्वावसुम्**) समस्त धनों के स्वामी तथा सबको वसाने वाले परमेश्वर की मैं (**नमसा**) नमस्कार और (**गीर्भिः**) वेद वाणियों से (**ईडे**) स्तुति करूँ, हे वर ! तू (**उदीर्ष्व**) उठ (**हि**) जिससे (**एषा**) यह कन्या (**पतिवती**) पतिवाली होवे, तू (**अन्याम्**) अपने से भिन्न गोत्रवाली और दूसरे से न गृह में ले जाई गई इस (**पितृषदम्**) पिता माता पर आश्रित (**व्यक्ताम्**) सुस्पष्ट यौवनवाली इस कन्या को (**इच्छ**) चाह (**ते**) तेरा (**सः**) वही (**भागः**) भाग है (**तस्य**) उस कन्यारूप भाग को (**जनुषा**) स्वयं उसमें पुत्ररूप से उत्पन्न होने के लिए (**विद्धि**) जान ।

भावार्थः—लड़की का पिता कहता है कि - समस्त धनों के स्वामी तथा सबको बसाने वाले परमेश्वर की मैं नमस्कार और वेदवाणी से स्तुति करूँ । हे वर ! तू उठ, स्वीकार कर जिससे यह कन्या पतिवाली होवे । तू अपने से भिन्न गोत्रवाली, किसी के गृह न ले जाई गई पिता माता पर आश्रित, स्पष्ट यौन वाली कन्या को चाह । तेरा यही भाग है इसमें स्वयं पुत्र रूप में उत्पन्न होने के लिए जान ॥२१॥

उदी॑र्ष्वातो॑ विश्वावसो॒ नम॑सेळामहे त्वा ।
अ॒न्यामि॑च्छ प्र॒फ॒र्व्यं॑१॒ सं जा॒यां पत्या॑ सृज ॥२२॥

पदार्थः—हे (**विश्वावसो**) गृहस्थाश्रम में वसने वाले वर ! (**त्वा**) तुझे (**नमसा**) आदर के साथ हम कन्या पक्ष के लोग (**ईडामहे**) सत्कृत करते हैं (**अतः**) इस स्थान से (**उदीर्ष्व**) उठ और तैयार हो तू (**अन्याम्**) अपने से भिन्न गोत्र की (**प्रफर्व्यम्**) खूब पुष्ट अङ्गों वाली कन्या को (**जायाम्**) जाया (**इच्छ**) चाह और (**पत्या**) पतिरूप से (**संसृज**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—हे गृहस्थाश्रम में जाने वाले वर ! तुम्हारा इस कन्या के

Scanned by CamScanner

पक्ष के लोग आदर से सत्कार करते हैं। अतः इस स्थान से उठ और तैयार हो। तू अपने से भिन्न गोत्र की खूब पुष्ट अंगों वाली कन्या को जायारूप में चाह और पतिरूप से उसे प्राप्त हो ॥२२॥

अनृक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात्सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ॥२३॥

पदार्थः– (**नः**) हमारे (**पन्थाः**) मार्ग (**अनृक्षरा**) कांटों से रहित (**ऋजवः**) सरल सीधे हों, (**येभिः**) जिनसे (**नः**) हमारे स्नेही जन (**वरेयम्**) उत्तम फल को (**यन्ति**) प्राप्त होते हैं, (**नः**) हमें (**अर्यमा**) न्यायकारी, (**भगः**) सुखदाता (**सम् सम्निनीयात्**) इन मार्गों से उत्तम प्रकार से ले चले, (**देवाः**) हे विद्वज्जानो ! (**नः**) हमारा (**जास्पत्यम्**) पति-पत्नी भाव (**सुयमम्**) संयम सहित और दृढ बद्ध हो।

भावार्थः—हमारे मार्ग काँटों से रहित और सरल सीधे हों जिनसे हमारे स्नेहीजन उत्तमफल को प्राप्त होते हैं। हमें न्यायकारी, सुखदाता विद्वज्जन इन मार्गों से उत्तम प्रकार से ले चलें। हे विद्वज्जन ! हमारा पति-पत्नी भाव दृढ़ताबद्ध और संयत हो ॥२३॥

प्र त्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद्येन त्वाबध्नात्सविता सुशेवः।
ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥२४॥

पदार्थः–मैं (**त्वा**) तुझे उस (**वरुणस्य**) ब्रह्मचर्य आश्रम के (**पाशाद्**) नियमपाश से (**प्रमुञ्चामि**) छुड़ाता हूं (**येन**) जिससे (**सुशेवः**) सुख चाहने वाले (**सविता**) पिता ने (**त्वा**) तुझे (**अबध्नात्**) बाँध रखा है, (**ऋतस्य**) सत्याचरण के (**योनौ**) स्थान तथा (**सुकृतस्य**) उत्तम कर्म के (**लोके**) क्षेत्र में (**पत्या**) मुझ पति के (**सह**) साथ (**त्वा**) तुझे (**अरिष्टाम्**) निरापदा (**दधामि**) धारण करता हूँ।

भावार्थः–हे वधू ! मैं तुझे ब्रह्मचर्य नियम के उस बन्धन से मुक्त करता हूं जिसे कल्याण चाहने वाले तुम्हारे पिता ने बांध रखा है। सत्याचरण के स्थान और सत्कर्म के क्षेत्र इस गृहस्थाश्रम में मुझ पति के साथ तुझे निरापदा करता हूँ ॥२४॥

Scanned by CamScanner

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम् ।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रा सुभगासति ॥२५॥

पदार्थः--हे वधू ! (इतः) इस पितृकुल से तुझे (प्र मुञ्चामि) मुक्त करता हूँ (न) नहीं (अमुतः) भर्तृगृह से मैं तुझे (सुबद्धाम्) सुबद्ध (करम्) करता हूँ, हे (मीढ्वः) वीर्यसेचक (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् पुरुष ! (यथा) जिससे (सुभगा) सौभाग्य वाली, (सुपुत्रा) उत्तम पुत्रों वाली (असति) होती है ।

भावार्थः-- हे वधू इस पितृकुल से तुझे मुक्त करता हूँ परन्तु पतिकुल से नहीं । पतिकुल में तुझे सुबद्ध करता हूं । हे वीर्यसेचक, ऐश्वर्यवन् ! पुरुष ! जिससे यह वधू सौभाग्यवाली और उत्तम पुत्रों वाली हो ॥२५॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याश्विना त्वा प्र वहतां रथेन ।
गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥२६॥

पदार्थः--हे वधू ! (पूषा) पोषण करने वाला वर पुरुष (त्वा) तुझे (इतः) इस पितृकुल से (हस्तगृह्य) पाणिग्रहण करके (नयतु) ले जावें (अश्विना) सह वाले आदि (त्वा) तुझे (रथेन) रथ से (प्रवहताम्) ले जावें (गृहान्) गृहों को (गच्छ) जा (यथा) जिससे (गृहपत्नी) गृहपत्नी (असः) हो (वशिनी) सब भृत्य आदि को वश में करने वाली (त्वम्) तू (विदथम्) पतिगृह के भृत्य आदि जनों को (आ वदासि) उत्तम वचन बोलो ।

भावार्थः-- पोषक पति तुझे हे वधू ! पिता माता के घर से पाणिग्रहणपूर्वक ले जावें । पति के भाई और पिता तुझे रथ से ले जावें । गृहों को तू जा जिससे गृहपत्नी हो । गृह के भृत्य आदिकों को वश में करती हुई तू उत्तम वचन बोले ॥२६॥

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन्गृहे गार्हपत्याय जागृहि ।
एना पत्या तन्वं१ सं सृजस्वाधा जिव्री विदथमा वदाथः ॥२७॥

पदार्थः--हे वधू] (इह) इस पति के गृह में (ते) तेरा (प्रियम्) कल्याण और सुख हो, (प्रजया) सन्तान के (सह) साथ (संमृध्यताम्) बढ़ और समृद्धि को प्राप्त हो, (अस्मिन्) इस (गृहे) गृह में (गार्हपत्याय) गार्हपत्य जीवन के कर्त्तव्य के लिए (जागृहि) जागरूक रह, (एना) इस (पत्या) पति

Scanned by CamScanner

के साथ (तत्वम्) अपने शरीर को (संसृजस्व) संश्लिष्ट कर (अध) अन्तर= निरन्तर (जिब्री) वृद्धावस्था से जीर्ण हुए (युवाम्) तुम पति और पत्नी (विदथम्) गृह के लोगों से (आवदाथः) प्रेम से वार्तालाप करो।

भावार्थः—हे बधू ! इस पति के गृह में तेरा कल्याण हो। तू संतान के साथ समृद्धि को प्राप्तकर इस घर में गृहस्थ आश्रम के कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए सदा जागृत रह। इस पति के साथ अपने शरीर को संश्लिष्ट कर और दोनों वृद्धावस्था को प्राप्त हुए बरावर उत्तम वचनों को घरवालों से बोला करो ।।२७।।

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते ।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥२८॥

पदार्थः—(नील लोहिनम्) आर्तव=मासिक धर्म (भवति) होता है (कृत्या) गृहस्थ के कार्य में (आसक्तिः) आसक्ति (व्यज्यते) प्रकट होने लगती है, (अस्याः) इस बधू के (ज्ञातयः) कुटुम्ब के लोग (एधन्ते) बढ़ते हैं और (पतिः) पति (बन्धेषु) सांसारिक बन्धनों में (बध्यते) बंधता है।

भावार्थः—पत्नी को मासिक धर्म होता है। गृहस्थ कार्य में आसक्ति प्रकट होने लगती है। इसके कुटुम्ब आदि के लोग बढ़ते हैं और पति सांसारिक बन्धनों में बंधता है ।।२८।।

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।
कृत्यैषा पद्वती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥२९॥

पदार्थः—(शामुल्यम्) शरीरस्थ मल अथवा उससे युक्त वस्त्र को (परा-देहि) दूर कर, (ब्रह्मभ्यः) ब्राह्मणों को (वसु) धन (विभज) दें, (एषा) यह वधू (कृत्या) गृहस्थ कार्य में (पद्वती) अपने पैरों पर खड़ी होने वाली (जाया) पत्नी (भूत्व्या) होकर (पतिम्) पति को (आ विशते) प्राप्त होती है।

भावार्थ—हे पुरुष ! शरीरस्थ मल वा उससे युक्त आर्तव वस्त्र को दूर कर दे। ब्राह्मणों को धन दे। यह वधू गृहस्थ कर्म में अपने पैरों पर खड़ी होने वाली जाया बनकर पति को प्राप्त हो रही है ।।२९।।

Scanned by CamScanner

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया ।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ।।३०।।

पदार्थः—(यद्) यदि (पतिः) पति (वध्वोः) वधू के (वाससा) वस्त्र से (स्वम्) स्वकीय (अङ्गम्) अंग को (अभिधित्सते) ढकता है अथवा उसके साथ संभोग करता है और (रुशती) रूप युक्त (अमुया) इस (पापया) पाप-युक्त शरीर से सम्पर्क करता है तो उसका (तनूः) शरीर (अश्रीरा) कान्तिहीन और रोगी हो जाता है ।

भावार्थः—आर्तव के समय में यदि पति पत्नी के वस्त्र से अपने शरीर को ढकता है अथवा उससे संभोग करता है और उसके इस अपवित्र रूपवान् शरीर से सम्पर्क करता है तो उसका और पत्नी का शरीर कान्ति-हीन एवं रोगी हो जाता है ।।३०।।

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु ।
पुनस्तान्यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ।।३१।।

पदार्थः –(ये) जो (यक्ष्माः) यक्ष्मा आदि रोग (वध्वः) वधू के (चन्द्रम्) आह्लादकारी (वहतुम्) शरीर को (जनात्) जनन समय अर्थात् माता पिता से पैतृक रूप में (अनु यन्ति) इसके शरीर में आ जाते हैं (यज्ञियाः) यज्ञ-विज्ञान द्वारा चिकित्सा करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग (तान्) उन रोगों को (पुनः) फिर (नयन्तु) वापस करें (यतः) जहां से (आगताः) ये आये हैं ।

भावार्थः—जो यक्ष्मा आदि पैतृक रोग इस वधू के आह्लादकारी शरीर में आये हैं उन्हें यज्ञ विद्या से चिकित्सा करने वाले विद्वान् जन जहां से वे रोग आये हैं वहीं पर वापस कर दें ।।३१।।

मा विदन्परिपन्थिनो य आसीदन्ति दम्पती ।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामप द्रान्त्वरातयः ।।३२।।

पदार्थः—(ये) जो (दम्पती) पति और पत्नी को (आ सीदन्ति) प्राप्त होते हैं वे (परि पन्थिनः) शत्रु रूप होकर (मा) न (विदन्) प्राप्त हों, वे दोनों (सुगेभिः) सुख साधनों से (दुर्गम्) दुःख से (अति इताम्) पार जावें (अरातयः) कमीना पन (अप द्रान्तु) दूर भाग जावें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः ये जो पति पत्नी को प्राप्त होते हैं वे रोग आदि अथवा शत्रुजन शत्रुरूप होकर न प्राप्त हों। ये पति पत्नी सुख साधनों और सुख-कर मार्गों से इस दुःख से पार जावें और कमीनापन की भावनायें इन से सदा ही दूर रहें ॥३२॥

सुमङ्गलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥३३॥

पदार्थः— (**इयम्**) यह (**वधूः**) वधू (**सुमङ्गलीः**) शुभ सौभाग्य कारिणी है (**सम् आ इत**) आप लोग आइये (**पश्यते**) देखिये (**अस्य**) इसे (**सौभाग्यम्**) सौभाग्य का आशीर्वाद (**दत्त्वाय**) देकर (**अथ**) अनन्तर (**अस्तम्**) गृह को (**वि परेतन**) जाइये।

भावार्थः हे विवाह में उपस्थित भद्र स्त्री पुरुषो ! यह वधू शुभा और सौभाग्यशालिनी है। आप लोग आइये, देखिये और इसे सौभाग्य का आशीर्वाद देकर अनन्तर अपने-अपने घरों को जाइये ॥३३॥

तृष्टमेतत्कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यां यो ब्रह्मा विद्यात्स इद्वाधूयमर्हति ॥३४॥

पदार्थः— यह आर्तव काल का वस्त्र अथवा सम्बन्ध (**तृष्टम्**) दाह जनक है (**एतत्**) यह, (**कटुकम्**) कटु तथा (**अपाष्ठवत्**) दूर रखने योग्य (**विषवत्**) विष के समान (**न**) नहीं है (**एतत्**) यह (**अत्तवे**) ग्रहण करने योग्य (**यः**) जो (**ब्रह्म**) बुद्धिमान् (**सूर्याम्**) सूर्य के दिनों की गति के अनुसार आर्तव से युक्त होने वाली इस स्त्री को (**विद्यात्**) जानता है (**सः इत्**) वह ही (**वाधूयम्**) वधू के सम्बन्ध को प्राप्त करने योग्य है।

भावार्थः—यह आर्तव समय का वस्त्र अथवा संभोग दाहजनक, कटु-परिणाम लाने वाला, दूर रखने की चीज और विष के समान है। जो बुद्धिमान् इस आर्त्तव के विषय का जानकार है वह ही वधू के सम्बन्ध को प्राप्त करने योग्य है ॥३४॥

आशसनं विशसनमथो अधिविकर्तनम्।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥३५॥

पदार्थः—(**आशसनम्**) आशसन=ढिठाई (**विशसनम्**) विशसन=विशेष ढिठाई (**अथो**) और (**अधिविकर्त्तनम्**) कटुवचन बोलना (**सूर्यायाः**) स्त्री के (**रूपाणि**) रूप हैं (**तानि**) उनको (**ब्रह्मा तु**) जानकार (**शुन्धति**) शुद्ध करता है।

भावार्थः—ढिठाई, अति ढिठाई और कटु वचन कहना—ये स्त्री के रूप हैं। जो जानकार है वह इन्हें शुद्ध कर देता है ॥३५॥

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः ।
भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥३६॥

पदार्थः—हे वधू ! पक्षान्तर में हे वर ! (**सौभगत्वाय**) सौभाग्य के लिए (**ते**) तुम्हारे (**हस्तम्**) हाथ को (**गृभ्णामि**) ग्रहण करता हूँ (**मया**) मुझ (**पत्या**) पति के साथ पक्षान्तर में मुझ पत्नी के साथ (**यथा**) जिस प्रकार (**जरदष्टिः**) वृद्धावस्था युक्त हो वैसी वा वैसा (**असः**) हो, (**भगः**) ऐश्वर्ययुक्त पुरुष (**अर्यमा**) न्यायकारी (**सविता**) उत्तम कर्मों का प्रेरक विद्वान् (**पुरन्धिः**) पोषक पुरुष (**देवाः**) विद्वज्जन (**त्वा**) तुझे (**मह्यम्**) मुझे (**गार्हपत्याय**) गृहस्थाश्रम के धर्म कर्म के लिए (**अदुः**) देते हैं।

भावार्थः—हे वधू ! अथवा हे वर ! हममें से एक दूसरा एक दूसरे के हाथ को सौभाग्य के लिए ग्रहण कर रहा है। मुझ पति वा मुझ पत्नी के साथ जिस प्रकार वृद्धावस्था युक्त हो वैसी और वैसा हो। ऐश्वर्यशाली उत्तमकर्मों के प्रेरक, पोषक, न्यायकारी, विद्वान् पुरुष मेरे लिए तुझे गृहस्थाश्रम धर्म के लिए देते हैं ॥३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति ।
या न ऊरू उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम् ॥३७॥

पदार्थः—(**पूषन्**) हे पोषक ! (**ताम्**) उस (**शिवतमाम्**) कल्याण-कारिणी वधू को (**आ ईरय**) प्रेरित कर, (**यस्याम्**) जिस उरू में (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग (**बीजम्**) वीर्यरूप बीज को (**वपन्ति**) बोते हैं (**या**) जो (**नः**) हमें (**उशती**) चाहती हुई (**ऊरू**) अपने ऊरू को (**विश्रयाते**) फैलाती है (**यस्याम्**) जिसमें (**उशन्तः**) चाहता हुआ मैं पति (**शेपम्**) रेतःसेजन इन्द्रिय का (**प्रहराम**) प्रहार करता हूँ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः हे पोषण करने हारे वर ! तू इस कल्याणकारिणी पत्नी को प्रेरित कर जिसके ऊरु के अन्दर पुरुष वीर्य का आधान करते हैं। जो हमें चाहती हुई अपने ऊरू के हम पर फैलाती है। और हम पति लोग अपनी अपनी पत्नियों के ऊरू में प्रजनन इन्द्रिय का प्रहार करते हैं ॥३७॥

तुभ्यमग्ने पर्यवहन्त्सूर्यां वहतुना सह ।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥३८॥

पदार्थः—हे वधू ! (**तुभ्यम्**) इस यज्ञाग्नि के (**परि**) चारों तरफ (**वहतुना**) दहेज के (**सह**) साथ (**सूर्याम्**) वधू को (**अवहन्**) घुमाते वा प्रदक्षिणा करते हैं (**अग्ने**) यह अग्नि (**पुनः**) फिर (**पतिभ्यः**) पति के लिए (**प्रजया सह**) प्रजा के साथ युक्त होने हारी (**जायाम्**) जाया रूप में (**दा**) देता है।

भावार्थः—विवाह में माता-पिता और सम्बन्धी आदि वधू को देय वस्तु के साथ यज्ञाग्नि की परिक्रमा कराते हैं। पुनः यह यज्ञाग्नि प्रजा को उत्पन्न करने हारी इस वधू को पति के प्रति प्रदान करता है ॥३८॥

पुनः पत्नीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा ।
दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥३९॥

पदार्थः—(**अग्निः**) कन्या में विद्यमान अग्नि की ऊष्मा (**पुनः**) तत्र (**आयुषा**) आयु (**वर्चसा**) वर्चस् के (**सह**) साथ (**पत्नीम्**) पत्नी को पति को प्रदान करती है, (**अस्याः**) इसका (**यः**) जो (**पतिः**) पति है (**दीर्घायुः**) लम्बी आयु वाला होकर (**शरदः**) शरद् ऋतुओं का (**शतम्**) सौ (**जीवाति**) जीवे।

भावार्थः- कन्या में विद्यमान ऊष्मा पुनः इस वधू को उसके पति को आयु और बल के साथ प्रदान करती है। इसका जो पति है वह लम्बी आयु वाला होकर सौ शरद ऋतुओं तक जीवित रहे ॥३९॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः ।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥४०॥

पदार्थः—विवाह के योग्य वधू को (**सोमः**) सोम शक्ति (**प्रथमः**) पहली (**विविदे**) प्राप्त करती है, (**गन्धर्वः**) गृहस्थाश्रम वाली शक्ति रजोदर्शन(**उत्तरः**)

Scanned by CamScanner

दूसरा (**विविदे**) प्राप्त करता है (**अग्निः**) ऊष्मा (**ते**) इसका (**तृतीयः**) तृतीय (**पतिः**) पालक है (**ते**) इसका (**तुरीयः**) चतुर्थ (**पतिः**) पालक (**मनुष्यजा**) मनुष्य से उत्पन्न हुआ होता है ।

भावार्थः— विवाह के योग्य वधू को पहले सोम शक्ति किशोरावस्था का गुण ग्रहण करती है। पुनः रजोदर्शन की अवस्था में गृहस्थाश्रम सम्बन्धी शक्ति ग्रहण करती है। तीसरी शक्ति इसकी शरीरस्थ ऊष्मा होती है और चौथी शक्ति=मनुष्यरूपी पति इसे प्राप्त करता है ।।४०।।

सोमो ददद् गन्धर्वाय गन्धर्वो ददग्नये ।
रयिं च पुत्रांश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम् ।।४१।।

पदार्थः— (**सोमः**) सोम शक्ति इस कन्या को (**गन्धर्वाय**) गृहस्थ धारण करने की शक्ति को (**ददत्**) देती है, (**गन्धर्वः**) यह गन्धर्वशक्ति उसे (**अग्नये**) यौवन की ऊष्मा को (**ददत्**) देती है (**अग्निः**) यह ऊष्मा (**अथो**) अनन्तर (**इमाम्**) इस वधू को (**मह्यम्**) मुझ पति को (**अदात्**) देता है (**रयिम्**) धन (**च**) और (**पुत्रान् च**) पुत्र भी देता है ।

भावार्थः कन्या की प्रथमावस्था शान्त सोम है, दूसरी अवस्था गृहस्थ की भावना का जिसमें उन्मेष होता है वह गन्धर्व है । तीसरी अवस्था जिसमें यौवन की ऊष्मा बढ़ती हैं अग्नि है और चौथी अवस्था में वह पति के योग्य हो जाती है ।।४१।।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ।।४२।।

पदार्थः— हे वर और वधू ! (**इह**) यहां (**एव**) ही (**स्तम्**) रहो (**मा**) नहीं (**वियौष्टम्**) वियुक्त हो, (**विश्वम्**) पूर्ण (**आयुः**) आयु को (**व्यश्नुतम्**) प्राप्त करो (**स्वे**) अपने (**गृहे**) घर में (**पुत्रैः**) पुत्रों (**नप्तृभिः**) पोतों और नातियों के साथ (**मोदमानौ**) प्रसन्न होते हुए (**क्रीडन्तौ**) खेलते हुए (**स्तम्**) रहो ।

भावार्थः— हे वर और वधू ! तुम दोनों इस आश्रम में स्थिर रहो । वियुक्त मत हो और पूर्ण आयु प्राप्त करो । अपने घर में पुत्र, पौत्र, नाती आदि के साथ प्रसन्न हो खेलते हुए रहो ।।४२।।

Scanned by CamScanner

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा ।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४३

पदार्थः—(**प्रजापतिः**) प्रजा का पालक अग्नि (**नः**) हमें (**प्रजाम्**) सन्तान (**आ जनयतु**) उत्पन्न करे, (**अर्यमा**) सूर्य (**आजरसाय**) वृद्धावस्था पर्यन्त (**समनक्तु**) संगत रखे, (**सा**) वह तू वधू (**अदुर्मङ्गली**) सुमंगली बनी हुई (**पतिलोकम्**) पति के पास (**आविश**) प्राप्त हो, (**द्विपदे**) दो पैर वाले मनुष्य और (**चतुष्पदे**) चार पैर वाले पशुओं के लिए (**शम्**) कल्याणकारिणी (**भव**) हो ।

भावार्थः— अग्नि हममें सन्तान उत्पन्न करे, सूर्य हमें वृद्धावस्था तक संगत रखे । हे वधू ! तू सुमंगली हुई पति के पास आ और मनुष्य और पशु आदि के लिए कल्याणकारिणी हो ॥४३॥

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवृकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४४॥

पदार्थः— हे वधू ! तु (**अघोरचक्षुः**) सौम्यदृष्टि और (**अपतिघ्नी**) पति की रक्षा करने वाली (**एधि**) हो (**पशुभ्यः**) पशुओं के लिए (**शिवा**) कल्याणकारिणी (**सुमनाः**) उत्तम मन वाली (**सुवर्चा**) उत्तम बल और ज्ञान वाली, (**वीरसूः**) उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली, और (**देवृकामा**) आपत्काल में आवश्यकता पढ़ने पर देवर की कामना वाली, और (**स्योना**) सुखकारिणी हो, (**द्विपदे**) मनुष्यों के लिए (**शम्**) कल्याणकारिणी (**भव**) हो और (**चतुष्पदे**) चौपायों के लिए (**शम्**) सुखकारिणी हो ।

भावार्थः हे वधू ! तू सौम्यदृष्टि और पति की रक्षा करने वाली हो । पशुओं के लिए कल्याणकारिणी, उत्तम मनवाली, उत्तम बल और ज्ञानवाली, वीर सन्तान को उत्पन्न करने वाली, आपत्काल में आवश्यकता पड़ने पर देवर की कामना वाली और सुखकारिर्णा हो । मनुष्य के लिए कल्याणकारिणी और चौपायों के लिए कल्याणकारिणी हो ॥४४॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु ।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि ।४५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः (मीढ्व) हे वीर्यसेचन हारे (इन्द्र) शक्तिशाली वर ! (सुभगाम्) सौभाग्यशालिनी (इमाम्) इस वधू को (त्वम्) तू (सुपुत्राम्) उत्तम पुत्रों वाली (कृणु) कर, (अस्याम्) इसमें (दश) दश (पुत्रान्) पुत्रों को (आ धेहि) पैदाकर (एकादशम्) ग्यारहवां (पतिम्) तुझ पति को (कृधि) कर।

भावार्थः— हे वीर्यसेचनहार शक्तिशाली वर ! तू इस सौभाग्यशालिनी पत्नी को उत्तम पुत्रों वाली कर। इसमें १० पुत्रों को पैदा कर और ग्यारहवां पुत्र स्वयम् बन जा। अर्थात् दश से अधिक सन्तान न पैदाकर ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

पदार्थः-- हे वधू ! तू (श्वसुरे) श्वसुर के अधीन (साम्राज्ञी) साम्राज्ञी (भव) हो (श्वश्र्वां) सासु के अधीन (साम्राज्ञी) साम्राज्ञी (भव) हो (ननान्दरि) ननदों के बीच (साम्राज्ञी) साम्राज्ञी (भव) हो और (देवृषु) देवरों के (अधि) बीच में (साम्राज्ञी) साम्राज्ञी (भव) हो।

भावार्थः—हे वधू ! तू श्वसुर के अधीन साम्राज्ञी हो, तू सासु के अधीन साम्राज्ञी हो, तू ननदों के बीच साम्राज्ञी और तू देवरों के बीच साम्राज्ञी हो ॥४६॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।

सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ ॥४७॥

पदार्थः— हे (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वज्जन ! (समञ्जन्तु) अच्छी प्रकार जानो (नौ) हम पति और पत्नी दोनों (सम् आपः) पानी के समान एक हैं, (हृदयानि) हृदय (मातरिश्वा) वायु हम दोनों के हृदय को (संदधातु) समान करे, (धाता) सूर्य (संदधातु) समान करे (देष्ट्री) सरस्वती (सम् उ दधातु) समान करे (नौ) हम दोनों का।

भावार्थः— हे समस्त विद्वज्जन ! आप देखें, हम दोनों का हृदय मिले हुए जल के समान है। वायु, सूर्य, सरस्वती सभी हम दोनों के हृदय को समान करें ॥४७॥

यह दशम मण्डल में पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ८६

ऋषिः -१--२३ वृषाकपिरैन्द्र इन्द्राणीन्द्रश्च ।। देवता --इन्द्रः ।। छन्दः--
१, ७, ११, १३ १४, १८, २३ पङ्क्तिः । २, ५ पादनिचृत्पङ्क्तिः ।
३, ६, ६, १०, १२, १५, २०--२२ निचृत्पङ्क्तिः । ४, ८,
१६, १७, १६ विराट्पङ्क्तिः ।।स्वरः पञ्चमः ।।

वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्रं देवममंसत ।
यत्रामदद्वृषाकपिरर्यः पुष्टेषु मत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१॥

पदार्थः—अनेक जीव वा प्राणी (**सोतोः**) जगत् के उत्पादक प्रभु से ही (**वि असृक्षत**) शरीर आदि में उत्पन्न किये जाते हैं परन्तु (**देवम्**) महान् देव (**इन्द्रम्**) उस ऐश्वर्यशाली भगवान् को (**न**) नहीं (**अमंसत**) मानते और जानते हैं (**यत्र**) जहां पर (**वृषाकपिः**) जीवात्मा (**अमदत्**) तृप्ति और आनन्द को प्राप्त होता है (**यः**) जो परमेश्वर (**मत्सखा**) मुझ जीव का मित्र है और (**पुष्टेषु**) बड़े-बड़े लोकों वा पुष्ट पदार्थों में भी विद्यमान होकर उनका (**अर्यः**) स्वामी है वही (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्माद्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः --जगत् के कर्त्ता भगवान् के द्वारा ही सभी प्राणी विविध योनियों में उत्पन्न किये जाते हैं परन्तु उसको सभी मानते और जानते नहीं हैं । वह इन्द्र=परमेश्वर वह है जिसमें वृषकपिः=आत्मा आनन्द से तृप्त होता है मोक्ष में और जो इन सभी पदार्थों में विद्यमान उनका स्वामी है । वह परमैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।।१।।

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथिः ।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् प्रभु ! तू (**पराहि**) परे ही (**धावसि**) दौड़ता जा रहा है यह (**वृषाकपेः**) जीवात्मा जो आप का प्राप्त करना चाहता है उसके लिए (**अति व्यथिः**) अत्यन्त व्यथा का विषय है, हे जीवात्मन् ! तू (**सोमपीतये**) आनन्दरस के पानार्थ (**अन्यत्र**) भौतिक पदार्थों और साधनों में (**नो अह**) नहीं ही (**प्रविन्दसे**) इस परमेश्वर को प्राप्त कर सकते हो, (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्माद्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू तो दूर ही दौड़ता जा रहा है। यह मुझ जीवात्मा के लिए व्यथा का विषय है। हे जीवात्मन् ! आनन्द रस के पानार्थ अपने अन्तरात्मा के अतिरिक्त किसी साधन और पदार्थ में उस परमेश्वर को नहीं ही प्राप्त किया जा सकता है। वह ऐश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२॥

किमयं त्वां वृषाकपिश्चकार हरितो मृगः ।
यस्मा इरस्यसीदु न्व१र्यो वा पुष्टिमद्वसु विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥३॥

पदार्थ हे स्वमो ! (**हरितः**) आकृष्ट हुआ, (**मृगः**) मार्गणशील=खोजी (**अयम्**) यह (**वृषाकपिः**) जीवात्मा (**त्वाम्**) तुझे लक्ष्य में रखकर (**किम्**) क्या (**चकार**) साधना करता है (**यस्मै**) जिसके लिए तू (**अर्यः नु वा**) स्वामी की भांति (**पुष्टिमत् वसु**) पुष्टि और ऐश्वर्य से युक्त धन (**इरस्यसि इत्**) देता ही जाता है वह (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—हे प्रभो ! आपकी ओर आकृष्ट और आप का खोजी यह जीवात्मा आप को लक्ष्य में रखकर क्या साधना करता है कि आप इसके लिए पुष्टि और ऐश्वर्य से युक्त धन स्वामी की भांति देते ही जाते हो। ऐश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥३॥

यमिमं त्वं वृषाकपिं प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वान्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥४॥

पदार्थः – हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (**इमम्**) इस (**यम्**) जिस (**वृषाकपिम्**) जीवात्मा की तू (**अभि रक्षसि**) सब प्रकार से रक्षा करता हैं (**अस्य**) इसके (**कर्णे**) इन्द्रिय गण पर (**वराहयुः**) वराह को चाहने वाला (**श्वा**) कुत्ता के सदृश लोभ (**जम्भिषत्**) कब्जा कर लेता है, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्य वाला प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः--हे ऐश्वर्यशालिन् प्रभो ! इस जिस जीवात्मा की तू सब प्रकार से रक्षा करता है इसके इन्द्रिय गण पर वराह को चाहने वाले कुत्ते के समान लोभ ने प्रभाव कर रखा है। प्रभो उसे हटा। परमैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥४॥

Scanned by CamScanner

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुषत् ।
शिरो न्वस्य राविषं न सुगं दुष्कृते भुवं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥५॥

पदार्थः –कपि के समान (**कपिः**) जीव (**मे**) इस प्रकृति के (**तष्टानि**) बने (**व्यक्ता**) व्यक्त पदार्थों को (**वि अदूदुषत्**) अपनी भोग तृष्णा से दूषित करता है (**अस्य**) इसके (**शिरः**) शिर को **राविषम्**) यह प्रकृति झुका देती है, (**दुष्कृतम्**) दुष्कर्मी पुरुष के लिए (**सुगम्**) यह प्रकृति सुज्ञेय एवं सुखकारी (**न भूवम्**) नहीं होती है (**इन्द्रः**) सर्वैश्र्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः– कपि के समान यह जीवात्मा इस प्रकृति के बने व्यक्त पदार्थों को अपनी भोग तृष्णा से दूषित करता है। यह प्रकृति इसके शिर को झुका देती हैं और इसे भोगी एवं दुष्कर्मी पुरुष के लिए सुज्ञेय और सुखकर नहीं होती है। सर्वैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥५॥

न मत्स्त्री सुभसत्तरा न सुयाशुतरा भुवत् ।
न मत्प्रतिच्यवीयसी न सक्थ्युद्यमीयसी विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥६॥

पदार्थः—(**मत्**) इस प्रकृति की अपेक्षा (**स्त्री**) कोई स्त्री (**सुभसत्तरा**) कान्तिवाली (**न**) नहीं (**सुयाशुतरा**) शीघ्र संग करने वाली (**भुवत्**) है (**न**) न तो (**मत्**) इससे अधिक (**प्रतिच्यवीयसी**) पति के पास अधिक जाने वाली और (**न**) नहीं (**सक्थि**) जांघ को (**उद्यमीयसी**) उठाकर आसक्त करने वाली है । (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) समस्त पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—इस प्रकृति की अपेक्षा अन्य कोई भी स्त्री न अधिक कान्तिवाली है, न शीघ्र संग करने वाली है, न पति के पास अधिक जाने वाली और आसक्ति करने वाली है, अर्थात् यह जीव को अपने भोगों में फसाने वाली है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥६॥

उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति ।
भसन्मे अम्ब सक्थि मे शिरो मे वीव हृष्यति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(उवे) यह (अम्ब) जगत् की जननी प्रकृति (अंग सुलाभिके) यह अनेक उत्तम लाभों को देने वाली (यथा इव) जैसी कैसी भी (भविष्यति) हो (मे) मुझ जीव की (अम्ब) अम्ब हैं, (मे) मेरी प्रजनन इन्द्रिय, (मे) मेरी (सक्थि) जंघा, (मे) मेरा (शिरः) शिर उससे (वि इव) कोकिल पक्षी के समान (हृष्यति) हृष्ट होते हैं। (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) समस्त पदार्थों से (उत्तरः) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—यह प्रकृति जगत् की जननी, लाभकारिणी हैं और जैसी कैसी भी हो यह मुझ जीव की माता है। क्योंकि इसका सम्बन्ध इन्द्र= परमेश्वर से है। मेरी प्रजनन इन्द्रिय, जंघा, शिर आदि कोकिल पक्षी के समान विशेष रूप से इसी से पुष्ट होते हैं। परमैश्वर्यवान् प्रभु समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥७॥

किं सुबाहो स्वङ्गुरे पृथुष्टो पृथुजाघने ।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपिं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥८॥

पदार्थ—(सुबाहो) उत्तम बाहुओं वाली, (स्वङ्गुरे) उत्तम अंगों वाली (पृथुष्टो) विशाल केशों वाली (पृथुजाघने) विशाल नितम्बवाली और (शूरपत्नि) शूर की पत्नी (त्वम्) यह प्रकृति (नः) हम सब जीवों के मध्य (वृषाकपिम्) मोक्ष के लिए यत्न करने वाले जीवात्मा को (किम्) क्यों (अभ्यमीषि) पीड़ित करती है, (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—उत्तम बाहुओं वाली, उत्तम अंगोंवाली, विशाल केशों वाली, विशाल नितम्बवाली, और शूर पत्नी यह प्रकृति जीवात्मा को क्यों पीड़ित करती है इसलिए कि वह इसके प्रति आसक्त है। सर्वैश्वर्यवान् परमेश्वर समस्त पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥८॥

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥९॥

पदार्थः—(शरारुः) घातुक मृग की भांति (अयम्) यह (वृषाकपिः) जीवात्मा (माम्) इस (अवीरामिव) वन्ध्या के समान (अभि मन्यते) मानता है जब कि (अहम्) यह प्रकृति (वीरिणी) ससन्तति (अस्मि) है यह (इन्द्र-

Scanned by CamScanner

पत्नी) परमेश्वर की पत्नी और (मरुत्सखा) अनेक मुक्त जीवों की सखी के समान है। (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (सर्वस्मात्) सब पदार्थों से (उत्तरः) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः— घातुक मृग के समान यह जीवात्मा इस प्रकृति को जड़ और वन्ध्या के समान मानता है जब कि यह परमेश्वर रूपी पुरुष की पत्नी सृष्टि का उपादान कारण और अनेक मुक्त जीवों की सखी के समान है। परमेश्वर सभी पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥९॥

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नी महीयते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१०॥

पदार्थः—(पुरा) पूर्व समय में (नारी) नर=पुरुष परमेश्वर की पत्नी-भूत प्रकृति (संहोत्रम्) परमेश्वर प्रदत्त निमित्तत्व एवं बीज शक्ति को (अव-गच्छति) प्राप्त होती है (वा) और (समनम् स्म) संसर्ग को प्राप्त करती है और (ऋतस्य) सृष्टि क्रम की (वेधाः) विधात्री, (वीरिणी) पदार्थों की उत्पादिका (इन्द्र पत्नी) पुरुष रूप परमेश्वर की पत्नी हुई (महीयते) महत्व को प्राप्त होती है।

भावार्थः— सृष्टि की प्रागवस्था में पुरुष=परमेश्वर की पत्नी परमेश्वर प्रदत्त बीज को ग्रहण करती है और संसर्ग को प्राप्त करती है। सृष्टि क्रम की विधात्री, जगत् के पदार्थों की उत्पादिका, परमेश्वर की पत्नी हुई महत्व को प्राप्त है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिषु सुभगामहमश्रवम्।
नह्यस्या अपरं चन जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥११॥

पदार्थः—(आसु) इन सारी (नारीषु) नारियों में (अहम) मैं (इन्द्रा-णीम्) प्रकृति को (सुभगाम्) अधिक ऐश्वर्यमयी (अश्रवम्) सुनता हूँ (अपरम्-चन) और (अस्याः) इसका (पतिः) पालक पति (जरसा) जीर्ण करने वाले काल से (नहि) नहीं (मरते) मरता है, (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्व-स्मात्) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—इन विश्व में देखी जाने वाली नारियों में (इन्द्राणी)

Scanned by CamScanner

इन्द्र=परमेश्वर की पत्नी प्रकृति को मैं खोजी जीव सबसे अधिक ऐश्वर्य-वाली सुनता और मानता हूं। सब को जीर्ण करने वाले काल से भी उस का पति नाश को नहीं प्राप्त होता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्यं हविः प्रियं देवेषु गच्छति विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१२॥

पदार्थः – (हे इन्द्राणि !), हे प्रकृति शक्ते ! (अहम्) मैं इन्द्र=परमेश्वर (सख्युः) मित्र (वृषाकपेः) जीवात्मा के (ऋते) विना (न) नहीं (ररण) इस जगत् में रमता वा इसे व्यक्त करता (यस्य) जिस मुझ इन्द्र परमेश्वर का (इदम्) यह जगत् (अप्यम्) प्रकृति के परमाणुओं से बना हुआ, (प्रियम्) प्रिय और (हविः) भोग्य (देवेषु) इन्द्रियों में (गच्छति) व्याप्त होता है अथवा प्राप्त होता है। (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) सब पदार्थों से (उत्तरः) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—मैं परमेश्वर हे प्रकृति शक्ते ! मित्र जीव के विना इस जगत् में नहीं रमता। जीव लोग भी इस जगत् में अवश्य रहते हैं। मेरा यह जगत् परमाणुओं से बना हुआ है। जीवों का प्रिय एवं भोग्य हुआ उनकी इन्द्रियों से गृहीत होता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१३॥

पदार्थः—(रेवति) ऐश्वर्यों से युक्त, (सुपुत्रे) उत्तम कार्य पदार्थों वाली, (सुस्नुषे) सुखदात्री (वृषाकपायि) जीवों के भोगों को देने वाली प्रकृति शक्ते ! (प्रियम्) प्रिय (काचित्करम्) सुख देने वाले (ते तेरे (हविः) भोग्य जगत् को (आत् उ) और (उक्षणः) सुख आदि के साधन शरीर आदि को (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर प्रलयकाल में (घसत्) खा जाता है। (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यमयि, सुखरात्रि, उत्तम कार्य पदार्थों स युक्त प्रकृतिशक्ते ! तेरा यह जीवों को प्रिय और उनको सुखदायी, उनके द्वारा

Scanned by CamScanner

भोग्य जगत् और शरीर आदि पदार्थ प्रलय काल में परमैश्वर्यवान् प्रभु के द्वारा खाया जाता है। अर्थात् प्रलीन कर दिया जाता है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१३॥

उक्ष्णो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम् ।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१४॥

पदार्थः—(**पंचदश**) दश प्राण और पांचभूत ये पन्द्रह पदार्थ, (**मे**) मेरे द्वारा बनाये गये (**उक्ष्णः**) सुखों के वर्धक शरीरों के (**विंशतिम्**) २० अंगों को (**सांकम् हि**) साथ ही (**पचन्ति**) पका कर पुष्ट करते हैं (**उत**) और (**मे**) मेरे द्वारा प्रदत्त शरीर के (**उभाकुक्षी**) दोनों पार्श्वों को (**पृणन्ति**) पूर्ण करते हैं । (**अहम्**) मैं (**पीव इत्**) सर्वदा परिपुष्ट इस सबको प्रलयकाल में (**अद्मि**) अपने अन्दर समा लेता हूँ, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—दश प्राण और पंचभूत मुझ परमेश्वर द्वारा बनाये गए शरीरों के बीस अङ्गों को साथ ही परिपक्व करके पुष्ट करते हैं और मेरे द्वारा प्रदत्त दोनों पार्श्वों को भी परिपूर्ण करते हैं। मैं सर्वदा परिपुष्ट इन्द्र=परमेश्वर इन सबको प्रलयकाल में अपने अन्दर समेट लेता हूँ। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१४॥

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१५॥

पदार्थः—(**न**) जिस प्रकार (**तिग्मशृंगः**) तीक्ष्ण सींगों वाला (**वृषभः**) बैल (**यूथेषु**) यूथों के (**अन्तः**) अन्दर (**रोरुवत्**) शब्द करता है उसी प्रकार यह जीव शारीरिक यूथों में गर्जता है, हे (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**भावयुः**) भावनामय उपासक (**यम्**) जिसको (**ते**) तुम्हारी प्राप्ति के लिए (**सुनोति**) उत्पन्न करता है वह (**ते**) तेरी प्राप्ति का (**मन्थः**) ज्ञान (**हृदे**) उपासक के हृदय के लिए (**शम्**) कल्याणकारी हो, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः -जिस प्रकार तीक्ष्ण सींगों वाला बैल यूथों के अन्दर शब्द करता है वैसे ही यह जीव शरीरावयवों के यूथों में गरजाता है। भावनामय

Scanned by CamScanner

उपासक जिसको तुम्हारी प्राप्ति के लिए उत्पन्न करता है वह तुम्हारी प्राप्ति के लिए तैयार (मन्थः) ज्ञान (हृदे) उपासक के हृदय के लिए हे इन्द्र=परमेश्वर कल्याणकारी हो। परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वस्मात्) सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१७॥

न सेशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृत् ।
सेदीशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१६॥

पदार्थः --(**न**) नहीं (**सः**) वह जीव (**ईशे**) अपने इन्द्रिय आदि पर शासन वा वस कर सकता है (**यस्य**) जिसका (**कपृत्**) प्रजनन इन्द्रिय निरन्तर (**सक्थ्याः**) स्त्री के जघनों के (**अन्तरा**) अन्दर (**रम्वते**) लटकता रहता है (**सः**) वह (**इत्**) ही (**ईशे**) वश में रखता है (**निषेदुषः**) सदा दृढ़ स्थिर (**यस्य**) जिसका (**रोमशम्**) प्रजनन इन्द्रिय (**विजृम्भते**) तेज से तमतमाता और स्थिर रहता है। (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्माद्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—वह मनुष्य वा जीव अपनी इन्द्रियां पर शासन और वश नहीं प्राप्त कर सकता है जो सदा स्त्री के साथ संभोग में ही लगा रहता है। हां वह वश में इन्द्रियों को कर सकता है जो ब्रह्मचर्य आदि तपों से अपनी इन्द्रिय को दृढ़ स्थिर रखता है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१६॥

न सेशे यस्य रोमशं निषेदुषो विजृम्भते ।
सेदीशे यस्य रम्बतेऽन्तरा सक्थ्या३ कपृद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१७॥

पदार्थः -(**न**) नहीं (**सः**) वह (**ईशे**) समर्थ होता है पत्नी के साथ संभोग और सन्तति जनन में (**निषेदुषः**) सोये हुए (**यस्य**) जिस गृहस्थ का (**रोमशम्**) प्रजनन इन्द्रिय (**विजृम्भते**) संभोग से पूर्व ही खुलकर रेतश्च्युत हो जाता है, (**स इत्**) वह ही इस कार्य में (**ईशे**) समर्थ होता है (**यस्य**) जिसका (**कपृत्**) प्रजनन इन्द्रिय (**सक्थ्या**) सक्थि के (**अन्तरा**) अन्दर (**रम्बते**) लम्बा और खड़ा होकर अन्दर तक पहुंचता है, (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थ -- पत्नी के संभोग और सन्ततिजनन में वह नहीं समर्थ होता है कि सोये हुए जिसका इन्द्रिय संभोग से पूर्व क्षरितवीर्य हो जाता है। वह

Scanned by CamScanner

समर्थ होता है जिसका प्रजनन इन्द्रिय योनि के अन्दर लम्बा खड़ा अन्दर तक प्रविष्ट होता है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१७॥

अयमिन्द्र वृषाकपिः परस्वन्तं हतं विदत् ।
असिं सूनां नवं चरुमादेधस्यान आचितं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१८॥

पदार्थः –(इन्द्र) हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! (अयम्) यह (वृषाकपिः) जीव (असिम्) असि के समान अज्ञान के नाशक ज्ञान को (सूनाम्) इन्द्रियों के (नवम्) नवीन (चरुम्) रमणीय विकरणभाव को (एधस्य) प्रकाशमान अन्तःकरण की (आचितम्) पूर्ण (अनः) स्फूर्ति को प्राप्त करे (आत्) अनन्तर (परस्वन्तम्) अपने अन्दर विद्यमान परमात्मा को दूर समझने के भाव को (हतम्) मारा गया (विदत्) जाने।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! यह जीव असि के समान अज्ञान तिमिर के नाशक ज्ञान को, इन्द्रियों के नूतन विकरणभाव को, प्रकाशमान अन्तःकरण की स्फूर्ति को प्राप्त करे और तब उसके बाद परमेश्वर आत्मा में विद्यमान होता हुआ भी दूर है - इस भाव को हत=नष्ट जाने ॥१८॥

अयमेमि विचाकशद्विचिन्वन्दासमार्यम् ।
पिबामि पाकसुत्वनोऽभि धीरमचाकशं विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥१९॥

पदार्थ—(विचिन्वन्) ज्ञान और कर्म का चयन करता हुआ, (विचाकशन्) ज्ञान से प्रकाशमान होकर (अयम्) यह मैं जीव (दासम्) सब सुखों के दाता (आर्यम्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु को (एमि) प्राप्त करूँ, (पाक सुत्वनः) पवित्र उत्पन्न ज्ञान का (पिबामि) पान करूँ (धीरम्) उस धीर प्रभु का (अभि अचाकशम्) साक्षात्कार करूँ (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (विश्वस्मात्) सब पदार्थों से (उत्तरः) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः— ज्ञान और कर्म का चयन करता हुआ ज्ञान से प्रकाशमान यह मैं जीव सब सुखों के दाता श्रेष्ठ परमेश्वर को प्राप्त करूँ। पवित्र उत्पन्न ज्ञान का पान करूँ। उस धीर प्रभु का साक्षात्कार करूँ। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥१९॥

Scanned by CamScanner

धन्वं च यत्कृन्तत्रं च कति स्वित्ता वि योजना ।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहाँ उप विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२०॥

पदार्थः—(**धन्व**) मरुप्रदेश (**च**) और (**कृन्तत्रम्**) अरण्य के समान है (**ता**) वे (**कति स्वित्**) कई (**योजना**) जीव के योग और वियोग वाले देह (**वृषाकपे**) हे जीव ! (**नेदीयसः**) सबके समीप विद्यमान परमेश्वर के (**अस्तम्**) शरण को (**आ इहि**) प्राप्त कर (**गृहान्**) और समय पर पुनः देह रूपी गृहों को (**वि एहि**) विशेष रूप से प्राप्त कर (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे जीव ! तेरे ये सभी देह मरुभूमि और अरण्य के समान हैं । सबके समीप रहने वाले भगवान् की शरण में आओ और मोक्ष प्राप्त कर समय बीत जाने पर पुनः इन शरीररूपी गृहों को प्राप्त करो । परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट हैं ॥२०॥

पुनरेहि वृषाकपे सुविता कल्पयावहै ।
य एषः स्वप्ननंशनोऽस्तमेषि पथा पुनर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२१॥

पदार्थः—हे (**वृषाकपे**) जीव ! तू (**पुनः**) फिर (**आ इहि**) शरीर में आता है मैं परमेश्वर और मेरी प्रकृति तेरे लिए (**सुविता**) शरीर और भोगों को (**कल्पयावहै**) बनाते हैं (**यः**) जो (**एषः**) यह (**स्वप्ननंशनः**) निद्रा को दूर करने वाला है उस (**पथा**) मार्ग से तू (**पुनः**) फिर (**अस्तम्**) मेरी शरण में (**एषि**) आता हो । (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ।

भावार्थः—हे जीव ! तू मरणानन्तर पुनः शरीर में आता है । मैं परमेश्वर और मेरी यह प्रकृति दोनों ही तेरे लिए शरीर और भोगों को बनाते हैं । यह निद्रा और अज्ञान का नाश करने वाला जो मार्ग है उसके द्वारा तू फिर मेरी शरण को प्राप्त होता है अर्थात् मोक्ष का लाभ करता है । परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२१॥

यदुदञ्चो वृषाकपे गृहमिन्द्राजगन्तन ।
क्व१स्य पुल्वघो मृगः कमगञ्जनयोपनो विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२२॥

पदार्थः—(**वृषाकपे इन्द्र**) हे सुखवर्षक और दुष्टों के कंपाने वाले प्रभो ! (**यत्**) जब (**उदञ्चः**) ऊर्ध्वगति वाले लोग (**गृहम्**) आप के मोक्ष धाम को (**अजगन्तन**) प्राप्त करते हैं तब (**स्यः**) यह बहुत विषयों को भोगने वाला (**मृगः**) मार्गणशील, (**जनयोपनः**) इन्द्रिय आदि को प्रसन्न करने वाला आत्मा (**क्व**) कहां पर (**कम्**) आनन्द को (**अगन्**) प्राप्त करता है (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—हे वृषाकपि इन्द्र=परमेश्वर ! जब उर्ध्वगति वाले लोग आप की शरण में पहुँच जाते हैं और मोक्ष को प्राप्त करते हैं तब उन सबकी आत्मा कहां पर आनन्द को प्राप्त करती है। अर्थात् वे सर्वत्र प्रभु में विचरती है। परमैश्वर्यवान् परमेश्वर सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२२॥

पर्शुर्ह नाम मानवी साकं ससूव विंशतिम् ।
भद्रं भल त्यस्या अभूद्यस्या उदरमामयद्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥२३॥

पदार्थः-- हे (**भल**) उत्तम पुरुष ! (**पर्शुः**) परशु (**नाम**) नाम की (**मानवी**) मानव शरीर की निर्मात्री प्रकृति (**साकम्**) एक साथ ही (**विंशतिम्**) बीस अंगुलियों अथवा २० अङ्गों को (**ससूव**) उत्पन्न करती है (**त्यस्याः**) उसी का (**भद्रम्**) कल्याण (**अभूत्**) होता है (**यस्याः**) जिसका (**उदरम्**) उदर (**आमयत्**) पीड़ित होता है (**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर (**विश्वस्मात्**) सब पदार्थों से (**उत्तरः**) सूक्ष्म और उत्कृष्ट है।

भावार्थः—हे मनुष्य ! पर्शु नाम की यह मानवों के शरीर की निर्मात्री प्रकृति एक साथ शरीर के २० अङ्गों को उत्पन्न करती है। उसी माता का कल्याण होता है जिसको प्रसव की पीड़ा होती है। परमैश्वर्यवान् प्रभु सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट है ॥२३॥

यह दशम मण्डल में छयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—८७

ऋषिः—१—२५ पायुः ॥ देवता—अग्नी रक्षोहा ॥ छन्दः—१, ८, १२, १७ त्रिष्टुप् । २, ३, २० विराट्त्रिष्टुप् । ४—७, ६—११, १८, १६ निचृत्त्रिष्टुप् । १३—१६ भुरिक्त्रिष्टुप् । २१ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । २२, २३ अनुष्टुप् । २४, २५ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—२१ धैवतः । २२—२५ गान्धारः॥

रक्षोहणं वाजिनमा जिघर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुप यामि शर्म ।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः समिद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥

पदार्थः—(**रक्षोहणम्**) कृमि कीट आदि के हन्ता (**वाजिनम्**) बल वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**आ जिघर्मि**) घृत से आहुत करता हूं, (**मित्रम्**) यजमानों के मित्र (**प्रथिष्टम्**) विस्तृत होने वाले (**शर्म**) सुखदाता को (**उपयामि**) समीप रखता हूँ (**शिशानः**) तीक्ष्ण (**अग्निः**) अग्नि (**क्रतुभिः**) यज्ञ आदि कर्मों से (**समिद्धः**) अति दीप्त हो (**सः**) वह (**दिवा**) दिन में (**सः**) वह (**नक्तम्**) रात्रि में (**नः**) हमें (**रिषः**) हिंसक जन्तुओं से (**पातु**) रक्षा करे ।

भावार्थः—रक्षः=कृमि कीट आदि का नाश करने वाले बलशाली अग्नि को घृत आदि से प्रज्वलित करता हूं । वह यजमानों का मित्र, बहुत विशाल और सुख का साधन है । उसे समीप रखता हूँ । तीक्ष्ण वह अग्नि यज्ञ आदि कर्मों से सदा अतिदीप्त हो । वह दिन में, वह रात्रि में हमें हिंसक जन्तुओं से बचावे ॥१॥

अयोदंष्ट्रो अर्चिषा यातुधानानुप स्पृश जातवेदः समिद्धः ।
आ जिह्वया मूरदेवान्रभस्व क्रव्यादो वृक्त्व्यपि धत्स्वासन् ॥२॥

पदार्थः—(**अयोदंष्ट्रः**) तीक्ष्ण और कर्त्तन से युक्त (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान और (**समिद्धः**) प्रदीप्त अग्नि (**अर्चिषा**) अपनी ज्वाला से (**यातुधानान्**) रोग के जन्तुओं को (**उपस्पृश**) जलाता है (**जिह्वया**) ज्वाला से (**क्रव्याद:**) कच्चे मांस को खाने वाले जन्तुओं, कृमियों आदि को (**मूरदेवान्**) मारक व्यापार वालों को (**आ रभस्व**) चपेट में लेता है और (**वृक्त्वी**) छेदन करके (**आसन् अपि**) मुख में भी (**धत्स्व**) रख ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—तीक्ष्ण कर्त्तनों से युक्त प्रदीप्त अग्नि अर्चि से रोगकारी जन्तुओं को मारता है । अपनी ज्वाला से कच्चे मांस को खाने वाले क्रिमियों आदि और मारक व्यापार वाले रोगाणुओं को चपेट में लेता है और छिन्न भिन्न करके अपने मुख में छिपा लेता है अर्थात् नष्ट कर देता है ॥२॥

उभोभयाविन्नुप धेहि दंष्ट्रा हिंस्रः शिशानोऽवरं परं च ।
उतान्तरिक्षे परि याहि राजञ्जम्भैः सं धेह्यभि यातुधानान् ॥३॥

पदार्थः—(**उभया विन्**) दोनों प्रकार की अर्थात् रचनात्मक और विध्वंसात्मक शक्तियों से युक्त, (**उभा**) दोनों (**दंष्ट्रा**) कर्तन शक्तियों से युक्त (**हिंस्रः**) विनाश करने वाला, (**शिशानः**) तीक्ष्ण हुआ अग्नि (**अवरम्**) अवर (**च**) और (**परम्**) पर जगत् (**उपधेहि**) स्थापित करती है (**राजन्**) चमकता हुआ यह अग्नि (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**परि याहि**) सब तरह फैलता है (**उत**) और (**जम्भैः**) दाढों से (**यातुधानान्**) जन्तुओं को (**अभि सम् धेहि**) संयुक्त करता है ।

भावार्थः—रचनात्मक और विध्वंसात्मक दोनों ही शक्तियों से युक्त अपनी दोनों प्रकार की कर्त्तन शक्तियों से संयुक्त विनाश करने वाला तीक्ष्ण हुआ यह अग्नि अवर और पर दोनों प्रकार के जगत् को स्थापित करता है । चमकता हुआ यह अग्नि अन्तरिक्ष में सब तरफ फैलता है और अपनी दाहक दाढ़ों में जन्तुओं को भस्म कर देता है ॥३॥

यज्ञैरिषूः संनममानो अग्ने वाचा शल्याँ अशनिभिर्दिहानः ।
ताभिर्विध्य हृदये यातुधानान्प्रतीचो बाहून्प्रति भङ्ध्येषाम् ॥४॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यज्ञैः**) यज्ञों द्वारा (**वाचा**) मन्त्रों के साथ (**इषूः**) इषुओं को (**संनममानः**) अधीन करता हुआ (**शल्यान्**) इन बाणों को=शल्यों को (**अशनिभिः**) दीप्तियों से (**दिहानः**) तीक्ष्ण करता हुआ (**ताभिः**) उन इषुओं से (**यातुधानान्**) जन्तुओं को (**हृदये**) हृदयमें (**विध्य**) बींध (**एषाम्**) इनमें से (**प्रतीचः**) आक्रामक (**बाहून्**) बाहुओं को (**भङ्ग्धि**) तोड़ दे ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारे मंत्रपूर्वक किए गए यज्ञों द्वारा इषुओं

Scanned by CamScanner

को अधीन करता हुआ इनके शल्यों को दीप्तियों से तीक्ष्ण करता हुआ जन्तुओं को हृदय में वींधता है और इनमें से आक्रमणकारी हैं उनके बाहुओं को भङ्ग कर देता है ॥४॥

अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि हिंस्राशनिर्हरसा हन्त्वेनम् ।
प्र पर्वाणि जातवेदः शृणीहि क्रव्यात्क्रविष्णुर्वि चिनोतु वृक्णम् ॥५॥

पदार्थ—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यातुधानस्य**) जन्तुओं के (**त्वचम्**) चर्म को (**भिन्धि**) भेदन करता है और (**एनम्**) इस (**हिंस्रा**) हिंसन शील को इस की (**अशनिः**) दीप्ति (**हरसा**) ताप से (**हन्ति**) मारता है, (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि (**पर्वाणि**) गांठों और जोड़ों को (**प्रशृणीहि**) छिन्न भिन्न करता है (**क्रविष्णुः**) मांस को चाहने वाला (**क्रव्याद्**) वृक (**वृक्णम्**) छिन्नसंधि इसको (**विचिनोतु**) खा जावे ।

भावार्थः—यह अग्नि इन जन्तुओं के चर्म को भेदन करता है और इस हिंसनशील को अपनी दीप्ति के ताप से मारता है। प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि इसके जोडों को छिन्न भिन्न करता है और मांस को चाहने वाला वृक इस छिन्न संधि को खा जावे ॥५॥

यत्रेदानीं पश्यसि जातवेदस्तिष्ठन्तमग्न उत वा चरन्तम् ।
यद्वान्तरिक्षे पथिभिः पतन्तं तमस्ता विध्य शर्वा शिशानः ॥६॥

पदार्थः—(**जातवेदः अग्ने**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि (**यत्र**) जहां पर भी (**तिष्ठन्तम्**) स्थित हुआ, (**उत वा**) अथवा (**चरन्तम्**) घूमता हुआ (**यत् वा**) चाहे (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**पथिभिः**) मार्गों से (**पतन्तम्**) जाता हुआ यातुधान=दुखदायक जन्तु (**इदानीम्**) सम्प्रति (**पश्यसि**) दीखे (**तम्**) उसको (**अस्ता**) प्रक्षेपक (**शिशानः**) तीक्ष्ण होता हुआ (**शर्वा**) ज्वालामय शर से (**विध्य**) भेदन कर देता है।

भावार्थः—प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान यह अग्नि तीक्ष्ण होकर और प्रक्षेपक होकर जहां भी बैठा, चलता फिरता अथवा अन्तरिक्ष में मार्गों से जाता हुआ दुःखदायक जन्तु दीखे, उसे अपनी तेजःशक्ति से मार देता है ॥६॥

Scanned by CamScanner

उतालब्धं स्पृणुहि जातवेद आलेभानादृष्टिभिर्यातुधानात् ।
अग्ने पूर्वो नि जहि शोशुचान आमादः क्ष्विङ्कास्तमदन्त्वेनीः ॥७॥

पदार्थः - (**जातवेदः अग्ने**) यह जातवेदा अग्नि (**आलेभानात्**) पकड़ने वाले (**यातुधानात्**) हानिकारक जन्तु से (**आलब्धम्**) पकड़े गए हुए को (**ऋष्टिभिः**) अपने चमकदार हिंसक तेजों से (**स्पृणुहि**) रक्षा करता है, (**उत**) और (**पूर्वः**) पूर्ण (**शोशुचानः**) तीक्ष्ण यह अग्नि (**आमादः**) कच्चा मांस खाने वाले इन जन्तुओं को (**निजहि**) मार देता है और (**तम्**) उस मरे हुए को (**एनी**) वेग से उड़ने वाली (**क्ष्विङ्काः**) चीलें (**अदन्तु**) खा जाती हैं।

भावार्थः --यह जातवेदा अग्नि पकड़ने वाले हानिकारक जन्तुओं से पकड़े गए हुए को अपने चमकदार हिंसक तेजों से रक्षा करता है और पूर्ण तीक्ष्ण वह अग्नि इन कच्चे मांस खाने वालों को मारता है तथा वेग से दौड़ने वाली चीलें इस मरे हुए को खा जाती हैं ॥७॥

इह प्र ब्रूहि यतमः सो अग्ने यो यातुधानो य इदं कृणोति ।
तमा रभस्व समिधा यविष्ठ नृचक्षसश्चक्षुषे रन्धयैनम् ॥८॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**यातुधानः**) पीड़ा देने वाला जन्तु हैं, (**यः**) जो (**इदम्**) विघ्नकारक कर्म को (**कृणोति**) करता है, (**यतमः**) जो भी है (**सः**) वह, (**इह**) यहां (**प्रब्रूहि**) प्रकट करता है (**तम्**) उसको (**यविष्ठ अग्ने**) यष्टव्य अग्नि (**समिधा**) दीप्त तेज से (**आरभस्व**) जलाता है और (**नृचक्षसः**) मनुष्यों को दिखाने के साधन भूत इस अग्नि के (**चक्षुषे**) तेज से (**एनम्**) इस को (**रन्धय**) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जो पीड़ा देने वाला जन्तु है, जो विघ्नकारी कार्य करता है, जो भी इस प्रकार का है, उसको यह अग्नि प्रकट कर देता है। अपने तेज से उसे जलाता है और नष्ट कर देता है ॥८॥

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः ।
हिंस्रं रक्षांस्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः ॥९॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**तीक्ष्णेन**) तीक्ष्ण (**चक्षुषा**) तेज से (**प्राञ्चम्**) उत्कृष्ट (**यज्ञम्**) यज्ञ की (**रक्ष**) रक्षा करता है और (**वसुभ्यः**)

धनैश्वर्यों के लिए (**प्र णय**) इसको ले चलता वा बढ़ाता है, यह (**प्रचेतः**) प्रकृष्ट चिन्तन के योग्य, (**नृचक्षः**) मनुष्यों की दृष्टि का कारण है (**हिंस्रम्**) हिंसा करने वाले (**रक्षांसि**) रोग जन्तुओं को (**अपि**) लक्ष्य करके (**शोशुचानम्**) प्रदीप्त (**त्वा**) इस अग्नि को (**यातुधानाः**) पीड़ाकारक प्राणी (**मा**) नहीं (**दभन्**) दबा पाते हैं।

भावार्थः—यह अग्नि चिन्तन का विषय है और मनुष्यों के देखने का साधन है। यह उत्कृष्ट यज्ञ की रक्षा करता है और धनादि ऐश्वर्यों की प्राप्ति के लिए उसे आगे बढ़ाता है। यह हिंसक जन्तुओं को दबाता है और इसे कोई पीड़ा देने वाला प्राणी नहीं दबा सकता है ॥९॥

नृचक्षा रक्षः परि पश्य विक्षु तस्य त्रीणि प्रति शृणीह्यग्रा ।
तस्याग्ने पृष्टीर्हरसा शृणीहि त्रेधा मूलं यातुधानस्य वृश्च ॥१०॥

पदार्थः—(**नृचक्षाः अग्ने**) मनुष्यों की दृष्टि का साधन यह अग्नि (**विक्षु**) प्रजाओं में (**रक्षः**) इस रोग के जन्तु को (**परिपश्य**) प्राप्त करता है (**तस्य**) उसके (**त्रीणि**) तीन (**अग्रा**) शिरों वा मुण्डों को (**प्रति शृणीहि**) छेदन कर देता है, (**तस्य**) उसके (**पृष्टीः**) पार्श्ववर्त्तियों को भी (**हरसा**) अपने तेज से (**शृणीहि**) छिन्न करता है और इस प्रकार से (**त्रेधा**) तीन तरह से (**यातुधानस्य**) इस पीड़ाकारी जीवों के (**मूलम्**) मूल को (**वृश्च**) काट देता है।

भावार्थः—मनुष्यों की दृष्टि का साधन यह अग्नि प्रजाओं में इन रोग जन्तुओं को प्राप्त कर इनके तीन शिरों को काट देता है इनके साथियों को भी नष्ट करता है और इस प्रकार इनके मूल को तीन प्रकार से काटता है। रोगकारी जन्तु तीन शिरों वा तीन डंकों वाले होते हैं। उन्हें यह नष्ट कर देता है ॥१०॥

त्रिर्यातुधानः प्रसितिं त एत्वृतं यो अग्ने अनृतेन हन्ति ।
तमर्चिषा स्फूर्जयञ्जातवेदः समक्षमेनं गृणते नि वृङ्धि ॥११॥

पदार्थः—(**यातुधानः**) पीड़ाकारी जन्तु (**यः**) जो (**ऋतम्**) शरीर में नियम से चल रहे नियमित कार्य को (**अनृतेन**) अपने डसने आदि अनियमित व्यवहार से (**हन्ति**) नष्ट करता है (**अग्ने ते**) इस अग्नि के (**त्रिः**) तीन (**प्रसितिम्**) बन्धन को (**एतु**) प्राप्त हो, (**तम् एनम्**) उस इसको (**जातवेदः**)

Scanned by CamScanner

यह अग्नि (**अर्चिषा**) अपने तेज से (**स्फूर्जयन्**) पीसता हुआ (**गृणते**) प्रार्थना करते यजमान के (**समक्षम्**) सामने ही (**निवृङ्धि**) काट डालता है।

भावार्थः—जो शरीरादि में चलते सत्य नियम को अपने काटने, डसने और रोगी करने के अनृत व्यवहार से नष्ट करता है ऐसा पीड़ाकारी रोगजन्तु अग्नि के बन्धन को तीन प्रकार (पकड़ना, जलाना और नष्ट कर देना,)से प्राप्त होता है। यह अग्नि उसको पीसता हुआ यजमान आदि के सामने ही नष्ट करता है ॥११॥

तद॑ग्ने चक्षुः॒ प्रति॑ धेहि रे॒भे श॑फा॒रुजं॒ येन॒ पश्य॑सि यातु॒धान॑म् ।
अ॒थ॒र्व॒वज्ज्योति॑षा॒ दैव्ये॑न स॒त्यं धूर्व॑न्तम॒चितं॒ न्यो॑ष ॥१२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**येन**) जिस तेज से (**शफारुजम्**) खुर के समान नखों वा दंशों [डंक] से पीड़ा देने वाले (**यातुधानम्**) पीड़ाकारी जन्तु को (**पश्यसि**) पाता है (**तत्**) उस (**चक्षुः**) तेज को (**रेभे**) शब्द करते हुए रोग जन्तु पर (**प्रति धेहि**) फेंकता है और (**सत्यम्**) शरीर आदि के सत्य नियम को (**धूर्वन्तम्**) बाधा करते हुए (**अचितम्**) थोड़ा भी ख्याल न करने वाले इसको (**दैव्येन**) द्युलोक में होने वाले (**ज्योतिषा**) प्रकाश अर्थात् सूर्य किरण वा अशनि से (**अथर्ववत्**) प्रज्वलित अग्नि के समान (**न्योष**) जला देता है।

भावार्थः—जिस तेज से अग्नि डंकों से दशने वाले रोग जन्तुओं को प्राप्त करता है उसी को इन पर फेंकता है। इन शरीर के सत्य नियमों का विघात करने वाले जन्तुओं को सूर्य की किरणों अथवा अशनि से अथर्ववत्=महा--प्रज्वलित अग्नि के समान जला देता है ॥१२॥

यद॑ग्ने अ॒द्य मि॑थु॒ना शपा॑तो॒ यद्वा॒चस्तृ॒ष्टं ज॒नय॑न्त रे॒भाः ।
म॒न्योर्मन॑सः शर॒व्या॒३ जाय॑ते॒ या तया॑ विध्य॒ हृद॑ये यातु॒धाना॑न् ॥१३

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यातुधानान्**) पीड़ाकारी जन्तुओं को (**हृदये**) हृदय में (**विध्य**) बींधता है (**तया**) उस (**शरव्या**) इपु से (**या**) जो (**यत्**) जब (**अद्य**) अभी (**मिथुना**) दो स्त्री पुरुष (**शपातः**) परस्पर आक्षेप करते हैं और (**यत्**) जब (**रेभाः**) स्तावक लोग (**वाचः**) वाणी की (**तृष्टम्**) कटुता को पैदा करते हैं तब (**मन्योः**) क्रुद्ध (**मनसः**) मन से (**जायते**) उत्पन्न होती है।

Scanned by CamScanner

भावार्थ: यह अग्नि पीड़ाकारी जन्तुओं को उनके हृदय में वस्तुतः उस तेजोवाण से बींधता है जो कि परस्पर झगड़ते स्त्री पुरुष के और कटुता का व्यवहार करते हुए स्तोताओं के क्रुद्ध मन से उत्पन्न होता है। अर्थात् क्रोधाग्नि के समान तेज से मारता है ॥१३॥

परां शृणीहि तपसा यातुधानान्पराग्ने रक्षो हरसा शृणीहि ।
परार्चिषा मूरदेवाञ्छृणीहि परासुतृपो अभि शोशुचानः ॥१४॥

पदार्थ:—(**अग्ने**) यह अग्नि (**अभि शोशुचानः**) तीक्ष्ण होता हुआ (**तपसा**) ताप से (**यातुधानान्**) पीड़ाकारक जन्तुओं को (**परा शृणीहि**)मारता है (**रक्षः**) रोगकारक कृमि को (**हरसा**) उष्णता से (**परा शृणीहि**) मारता है (**मूरदेवान्**) मारक व्यापार वाले घातक रोगाणुओं को (**अर्चिषा**) अपने तेज से (**पराशृणीहि**) मारता है और (**असुतृपः**) प्राणों से तृप्त होने वाले क्रिमियों को (**परा शृणीहि**) मारता है ।

भावार्थ:—यह अग्नि तीक्ष्ण होकर ताप से पीड़ाकारक जन्तुओं को मारता है, रोग कारक जन्तु को उष्णता से मारता है, घातक रोगाणुओं को तेज से मारता है और लोगों के प्राणों से तृप्त होने वाले जन्तुओं को भी नष्ट करता है ॥१४॥

पराद्य देवा वृजिनं शृणन्तु प्रत्यगेनं शपथा यन्तु तृष्टाः ।
वाचास्तेनं शरव ऋच्छन्तु मर्मन्विश्वस्यैतु प्रसितिं यातुधानः ॥१५॥

पदार्थ:—(**अद्य**) आज ही (**देवाः**) दिव्य शक्तियें अथवा किरणें (**वृजिनम्**) प्राणियों को प्राणों से वर्जित करने वाले पीड़ाकारी जन्तु को (**परा शृणन्तु**) मार दें, (**तृष्टाः**) कटुतापूर्ण (**शपथाः**) सभी प्राणियों के आक्रोश भी (**एनम्**) इसको (**प्रत्यक्**) भली प्रकार (**यन्तु**) चिपट जावें, (**वाचस्तेनम्**) अपनी वाणी का दुरुपयोग करने वाले इस जन्तु को (**शरवः**) वाण (**मर्मन्**) मर्म में (**ऋच्छन्तु**) घुस जावें, यह (**यातुधानः**) पीड़ाकारी जन्तु (**विश्वस्य**) व्याप्त अग्नि के (**प्रसितिम्**) जाल को (**एतु**) प्राप्त हो अर्थात् जाल में फँसे ।

भावार्थ: – तत्काल ही दिव्य शक्तियें प्राणियों के प्राण से जुदा करने वाले इस पीड़ाकारी जन्तु को मार दें, कटुता पूर्ण प्राणियों के आक्रोश भी

Scanned by CamScanner

इन्हें चिपटें, अपने डंक आदि का दुरुपयोग करने वाले इसके मर्म में बाण भी घुसें और इस प्रकार यह पीड़ाकारक जन्तु व्याप्त अग्नि के जाल में फँसें ॥१५॥

यः पौरुषेयेण क्रविषा समङ्क्ते यो अश्व्येन पशुना यातुधानः ।
यो अघ्न्याया भरति क्षीरमग्ने तेषां शीर्षाणि हरसापि वृश्च ॥१६॥

पदार्थः—(यः) जो (यातुधानः) पीड़ाकारक जन्तु (पौरुषेयेण) पुरुष-सम्बन्धी (क्रविषा) मांस से अपने को (समंक्ते) संगत करता है, (यः) जो (अश्व्येन) अश्वसम्बन्धी मांस से अपने को संगत करता है और जो (पशुना) पशु से अपने को संगत करता है, (यः) जो (अघ्न्यायाः) गाय के (क्षीरम्) दुग्ध को ही (भरति) हर लेता है (अग्ने) यह अग्नि अथवा राजा (तेषाम्) उनके (शीर्षाणि) शिरों को (हरसा अपि) तेज से (वृश्च) काट दे ।

भावार्थः—जो पीड़ाकारक जन्तु पुरुष सम्बन्धी, घोड़े सम्बन्धी तथा अन्य पशुओं सम्बन्धी मांस को खाता है और जो गाय के दूध को हरण कर लेता है अग्नि उसके शिर को तेज से काट दे ॥१६॥

संवत्सरीणं पय उस्रियायास्तस्य माशीद्यातुधानो नृचक्षः ।
पीयूषमग्ने यतमस्तितृप्सात्तं प्रत्यञ्चमर्चिषा विध्य मर्मन् ॥१७॥

पदार्थः—(नृचक्षः) हे मनुष्यों के कर्मों को देखने वाले (अग्ने) राजन् ! (उस्रियायाः) गाय का (यत्) जो (संवत्सरीणम्) संवत्सर में होने वाला (पयः) दुग्ध है (तस्य) उसको (यातुधानः) पीड़ाकारक जन्तु (मा) नहीं (आशीत्) खाने पावे (यतमः) उनमें जो कोई भी (पीयूषम्) पीयूष सदृश दुग्ध से (तितृप्सात्) अपने को तृप्त करने की इच्छा करे (तम्) उस (प्रत्यञ्चम्) विरोध में आने वाले को (अर्चिषा) तेज से (मर्मन्) मर्म में (विध्य) भेदन कर ।

भावार्थः—हे राजन् ! गाय के वर्ष में होने वाला जो दुग्ध है उसको पीड़ाकारी जन्तु न खाने पावे । यदि कोई भी उस दुग्ध को खाने की इच्छा करता है तो उसे अपने तेज से मर्म में भेदन कर दे ॥१७॥

विषं गवां यातुधानाः पिबन्त्वा वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः ।
परैनान्देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥१८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**यातुधानाः**) ये पीड़ाकारी जन्तु (**गवाम्**) गौओं के गृह में रखे हुए (**विषम्**) विष को (**पिबन्तु**) पीवें (**अदितये**) गौ के लिए (**दुरेवाः**) दुख देने वाले ये जन्तु (**वृश्च्यन्ताम्**) काटे जावें, (**देवः**) देव (**सविता**) सूर्य (**एनान्**) इनको (**परा ददातु**) दूर रखें, (**ओषधीनाम्**) ओषधियों के (**भागम्**) भाग को (**वरा जयन्ताम्**) अपने से दूर पावें ।

भावार्थः - ये पीड़ाकारी जन्तु गायों के गृहों में रखे विष को पीवें, गौ के लिए दुःखकारी ये काटे जावें, सविता देव इनको सदा दूर भगावें और ओषधियों का भाग भी इन्हें न प्राप्त हो ।।१८।।

स॒नाद॑ग्ने मृणसि यातु॒धाना॒न्न त्वा॒ रक्षां॑सि॒ पृत॑नासु जिग्युः ।
अनु॑ दह स॒हमू॑रान्क्र॒व्यादो॒ मा ते॑ हे॒त्या मु॑क्षत॒ दैव्या॑याः ॥१९॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यातुधानान्**) इन पीड़ाकारक जन्तुओं को (**सनाद्**) सदा (**मृणसि**) मारता है, ये (**रक्षांसि**) रोगकारी जन्तु (**त्वा**) इस अग्नि को (**पृतनासु**) संग्रामों में (**न**) नहीं (**जिग्युः**) जीत सकते हैं यह (**क्रव्यादः**) इन कच्चे मांस को खाने वालों को (**सहमूरान्**) समूल (**अनु दह**) जलाता है (**ते**) इसके (**दैव्यायाः**) दैव्य (**हेत्याः**) आयुध=विद्युत् से (**मा**) नहीं (**मुक्षत**) बचते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि सदा से इन पीड़ाकारी जन्तुओं को नष्ट करता है, इसके ये रोगकारी जन्तु कभी भी संग्रामों में नहीं जीत सकते हैं, इन कच्चे मांस खाने वालों को वह अग्नि समूल नष्ट करता है और इस अग्नि के दैव्य आयुध=अशनि से ये कोई भी नहीं बचते हैं ।।१९।।

त्वं नो॑ अग्ने अध॒रादुद॑क्ता॒त्त्वं प॒श्चादु॒त र॑क्षा पु॒रस्ता॑त् ।
प्रति॒ ते ते॑ अ॒जरा॑स॒स्तपि॑ष्ठा अ॒घशं॑सं॒ शोशु॑चतो दहन्तु ॥२०॥

पदार्थः—(**त्वम् अग्ने**) यह अग्नि (**नः**) हमारी (**अधरात्**) दक्षिण से (**उदक्तात्**) उत्तर से (**त्वम्**) यह (**पश्चात्**) पीछे से (**उत**) और (**पुरस्तात्**) आगे से (**रक्ष**) रक्षा करता है (**ते**) इस अग्नि के सम्बन्ध के (**ते**) वे (**तपिष्ठाः**) अत्यन्त तप्त (**अजरासः**) अजर (**शोशुचतः**) जलती हुई रश्मियां (**अघशंसम्**) इन पापियों को (**प्रतिदहन्तु**) जलाकर नष्ट करतीं हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारी दक्षिण, उत्तर, पीछे और आगे से रक्षा

Scanned by CamScanner

करता है। इसकी अति दाहक अजर जलती हुई रश्मियां इन सब पापी जन्तुओं को जलाकर नष्ट करती हैं ॥२०॥

पश्चात्पुरस्तादधरादुदक्तात्कविः काव्येन परि पाहि राजन् ।
सखे सखायमजरो जरिम्णेऽग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२१॥

पदार्थः –(**राजन्**) प्रकाशमान (**कविः**) क्रान्त दर्शन अग्नि (**पश्चात्**) पीछे (**पुरस्तात्**) आगे, (**अधरात्**) दक्षिण और (**उदक्तात्**) उत्तर से (**नः**) हमारी (**काव्येन**) अपने कार्य से (**परि पाहि**) रक्षा करता है (**सखे**) सखाभूत (**अजरः**) अजर यह मुझ (**सखायम्**) सखा को (**जरिम्णे**) जरा के लिए करता है, (**अग्ने त्वम्**) यह अग्नि (**अमर्त्यः**) अमर्त्य हुआ (**नः**) हम (**मर्तान्**) मरण धर्मा लोगों को जरा के लिए करता है।

भावार्थः—यह प्रकाशमान क्रान्तदर्शन अग्नि हमारी दक्षिण, उत्तर, पीछे आगे से अपने कार्य द्वारा रक्षा करता है। यह अजर, अमर हमारा सखा होकर हम मरण धर्मा लोगों को जरा के लिए योग्य बनाता है अर्थात् लम्बी आयु देता है ॥२१॥

परि त्वाग्ने पुरं वयं विप्रं सहस्य धीमहि ।
धृषद्वर्णं दिवेदिवे हन्तारं भङ्गुरावताम् ॥२२॥

पदार्थः—(**वयम्**) हम (**सहस्य**) बलशाली, (**विप्रम्**) श्रेष्ठ (**पुरम्**) पूरक (**धृषद्वर्णम्**) घर्षकरूप (**भंगुरावताम्**) उलटे चाल वाले इन रोगाणुओं के (**दिवेदिवे**) प्रतिदिन (**हन्तारम्**) हन्ता (**त्वा**) इस (**अग्ने**) अग्नि को (**परि धीमहि**) धारण करते हैं।

भावार्थः—हम बलशाली, श्रेष्ठ, पूरक, धर्षकरूप, टेढ़ीचाल वाले जन्तुओं के सदा विनाशक इस अग्नि को अपने ज्ञान और प्रयोग में धारण करते हैं ॥२२॥

विषेणं भङ्गुरावतः प्रति ष्म रक्षसो दह ।
अग्ने तिग्मेन शोचिषा तपुरग्राभिर्ऋष्टिभिः ॥२३॥

पदार्थः –(**अग्ने**) यह अग्नि (**विषेण**) व्यापक (**तिग्मेन**) तीक्ष्ण (**शोचिषा**) तेज से तथा (**तपुरग्राभिः**) तपनशील अग्रवाली (**ऋष्टिभिः**)

Scanned by CamScanner

ज्वालाओं से (भंगुरावतः) टेढी चाल वाले (रक्षसः) जन्तुओं को (प्रति दह स्म) जला देता है ।

भावार्थः—यह अग्नि व्यापक, तीक्ष्ण तेज और तपनशील है अग्र जिसके ऐसी ज्वालाओं से (भंगुरावतः) टेढ़ी चाल वाले इन जन्तुओं का दहन करता है ॥२३॥

प्रत्य॑ग्ने मिथुना द॑ह यातुधाना॑ किमीदिना॑ ।
सं त्वा॑ शिशामि जागृह्यद॑ब्धं विप्र मन्म॑भिः ॥२४॥

पदार्थः--(विप्र अग्ने) यह श्रेष्ठ अग्नि (मिथुना) मिथुन हुए (किमीदिना) वंचक (यातुधाना) पीड़ादायक जन्तुओं को (प्रति दह) दग्ध करता है, मैं (मन्मभिः) मननीय प्रशंसा वचनों से (त्वा) इस (अदब्धम्) न दबाये जाने वाले की (संशिशामि) प्रशंसा करता हूं, (जागृहि) यह जागृत होवे ।

भावार्थः—यह श्रेष्ठ अग्नि मिथुन हुए, वंचक पीड़ादायक जन्तुओं को दग्ध करता है। मैं मननीय प्रशंसा वचनों से इस अदम्य अग्नि की प्रशंसा करता हूं ॥२४॥

प्रत्य॑ग्ने हर॑सा हर॒ः शृणीहि विश्वत॒ः प्रति॑ ।
यातुधान॑स्य र॒क्षसो॒ बल॑ं॒ वि रु॑ज वी॒र्य॑म् ॥२५॥

पदार्थः—(अग्ने) यह अग्नि (हरसा) अपने तेज से (विश्वतः) सब तरफ से इन जन्तुओं के (हरः) हरणशील बल को (प्रति शृणीहि) नष्ट करता है, तथा (रक्षसः) रोगाणु (यातुधानस्य) पीड़ादायक जन्तु के (बलम्) बल और (वीर्यम्) वीर्य को (विरुज) भंग करता है ।

भावार्थः—यह अग्नि अपने तेज से सब तरफ से इन जन्तुओं के हरणशील बल को नष्ट करता है और रोगाणु तथा पीड़ादायक जन्तुओं के बल वीर्य को भङ्ग करता है ॥२५॥

यह दशम मण्डल में सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—८८

ऋषिः—१—१९मूर्धन्वानांगिरसो वामदेव्यो वा ॥ देवते—सूर्यवैश्वानरौ ॥
छन्दः—१—४, ७, १५, १९ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ८ त्रिष्टुप् । ६, ९—१४, १६, १७, निचृत्त्रिष्टुप् । १८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

हुविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त ॥१॥

पदार्थः—(पान्तम्) पीने योग्य (अजरम्) जरारहित (जुष्टम्) देवों की प्रिय (स्वर्विदि) सूर्य को प्राप्त (दिविस्पृशि) द्युलोक को भी स्पर्श करने वाले (अग्नौ) अग्नि में (आहुतम्) अभिहुत जो (हविः) हवि है (तस्य) उस (भर्मणे) भरण (भुवनाय) भावन और (धर्मणे) धारण के लिए (देवाः) विद्वान् लोग (कम्) सुखकर अग्नि को (स्वधया) अन्न से (पप्रथन्त) विस्तृत करते हैं ।

भावार्थः—ग्रहणीय, अक्षुण्ण, प्रिय और सूर्य को प्राप्त तथा द्युलोक को स्पर्श करने वाले अग्नि में डाली गई जो हवि है उसके पालन, भावन और धारण के लिए विद्वज्जन सुखकर अग्नि को विस्तारित करते हैं। अर्थात् यज्ञ द्वारा बढ़ाते हैं ॥१॥

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य ॥२॥

पदार्थ—सृष्टि के पूर्व प्रलय काल में (गीर्णम्) निगीर्ण [कारण में निगला हुआ] (तमसा) अन्धकार अथवा (तमसा) प्रकृति से (गूढम्) आच्छादित (स्वः)सारा (भुवनम्) जगत् (अग्नौ) ऊष्मा के (जाते) उत्पन्न होने पर (आविः अभवत्) प्रकट होता है, (तस्य) उस (अस्य) इस अग्नि=गर्मी वा ताप के (सख्ये) सहयोग में (देवाः) इन्द्र आदि देव, (पृथिवी) पृथिवी, (द्यौः) द्युलोक (उत) और (आपः) जलें और अन्तरिक्ष तथा (ओषधीः) ओषधियें (अरणयन्) खेलती वा प्रकट होती हैं।

भावार्थः—सृष्टि के पूर्व प्रलयकाल में समस्त जगत् अपने कारण में निगला गया हुआ प्रलयान्धकार अथवा प्रकृति से ढका रहता है। ताप के प्रकट होने पर वह प्रादुर्भूत होता है। तथा इस ताप के सहकार्य से इन्द्र

Scanned by CamScanner

आदि देव, पृथिवी, (द्यौः) द्युलोक, जलें और अन्तरिक्ष तथा ओषधियें आदि उत्पन्न होते हैं ॥२॥

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम् ।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम् ॥३॥

पदार्थः—(**यज्ञियेभिः**) यज्ञ करने वाले (**देवेभिः**) विद्वानों के द्वारा (**नु**) क्षिप्र (**इषितः**) प्रेरित मैं यजमान (**अजरम्**) जरारहित (**बृहन्तम्**) महान् (**अग्निम्**) वैश्वानर अग्नि की (**स्तोषाणि**) प्रशंसा करता हूँ (**यः**) जो (**भानुना**) अपने तेज से (**पृथिवीम्**) भूमि, (**उत**) और (**इमाम्**) इस (**द्याम्**) द्युलोक जो (**रोदसी**) रोदसी कहे जाते हैं तथा (**अन्तरिक्षं**) अन्तरिक्ष को (**आततान**) विस्तारित करता है ।

भावार्थः - यज्ञकर्त्ता विद्वानों से प्रेरित मैं यजमान उस वैश्वानर अग्नि की प्रशंसा करता हूं जो अपने तेज से रोदसी कहे जाने वाले द्यु और पृथिवी लोक तथा अन्तरिक्ष को फैलाता है ॥३॥

यो होतासीत्प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः ।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः ॥४॥

पदार्थः—(**देव जुष्टः**) यज्ञ देवों से सेवित (**यः**) जो वैश्वानर अग्नि (**प्रथमः**) मुख्य (**होता**) यज्ञ में हवि का ग्राहक (**अभूत्**) होता हैं (**यम्**) जिस को (**वृणानाः**) यजमान लोग (**आज्येन**) घी से (**सम् आञ्जन्**) संयुक्त करते हैं (**सः**) वह (**जातवेदाः अग्निः**) वैश्वानर अग्नि (**यत्**) जो (**पतत्रि**) उड़ने वाले पक्षी आदि, (**इत्वरम्**) जंगम (**स्थाः**) स्थावर (**जगत्**) जगत् है उसको (**श्वात्रम्**) शीघ्र (**अकृणोत्**) बनाता है ।

भावार्थः—यज्ञ देवों से सेवित जो वैश्वानर अग्नि मुख्य होता=हवि का ग्रहण करने वाला होता है और जिसको यजमान लोग घी से प्रज्वलित करते हैं वह पक्षी आदि जंगम और स्थावर आदि जितना जगत् है उसको उत्पन्न करता है ॥४॥

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन ।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**यत्**) जो (**जातवेदः अग्ने**) वैश्वानर अग्नि (**रोचनेन**) सूर्य के (**सह**) साथ (**भुवनस्य**) त्रिलोकी की (**मूर्धन्**) मूर्धा में (**अतिष्ठः**) स्थित है (**तम्**) उस (**त्वा**) इस अग्नि को हम (**मतिभिः**) मति, (**गीर्भिः**) वाणी (**उक्थैः**) प्रवचनों द्वारा (**अहेम**) प्राप्त करें वा जानें (**रोदसिप्राः**) द्यु और पृथिवी को अपने से पूरित करने वाला (**सः**) वह अग्नि (**यज्ञियः**) यज्ञार्ह (**अभवः**) होता है।

भावार्थः—जो जातवेदा एवं वैश्वानर अग्नि इस त्रिलोकी की मूर्धा में सूर्य के साथ स्थित है उस को हम बुद्धि वाणी=प्रशंसा और प्रवचनों से जानें। द्यु और पृथिवी को अपने तेज से पूरित करने वाला वह यज्ञार्ह होता हैं ॥५॥

मूर्धा भुवो भवति नक्तमग्निस्ततः सूर्यो जायते प्रातरुद्यन् ।
मायामू तु यज्ञियानामेतामपो यत्तूर्णिश्चरति प्रजानन् ॥६॥

पदार्थः—(**अग्निः**) यह वैश्वानर अग्नि (**नक्तम्**) रात्रि में (**भुवः**) भूतजात का (**मूर्धा**) मूर्धा स्थानी (**भवति**) होता है (**ततः**) फिर वह (**प्रातः**) प्रातःकाल (**उद्यन्**) उदित हुआ दिन में (**सूर्यः**) सूर्य (**जायते**) होता है, (**मायाम्-उ तु**) प्रज्ञा चातुर्य ही (**यज्ञियानाम्**) यज्ञ संपादक देवों का इसे विद्वज्जन मानते हैं, (**यत्**) जो (**प्रजानन्**) प्रज्ञायमान (**तूर्णिः**) शीघ्रगति सूर्य (**अपः**) अपने कर्म और अन्तरिक्ष आदि स्थानों में (**चरति**) विचरता है।

भावार्थः यह वैश्वानर अग्नि रात्रि में समस्त भूतजात की मूर्धा के समान होता है। प्रातः काल में उदित होता हुआ दिन में सूर्य रूप में होता है। विद्वान् इसे संसार रूपी यज्ञ के देवों का प्रज्ञाचातुर्य कहते हैं। सूर्य जो शीघ्रगति है और समस्त स्थानों को प्राप्त होता है वह अपने कर्मों और अन्तरिक्ष आदि स्थानों में विचरता है ॥६॥

दृशेन्यो यो महिना समिद्धोऽरोचत दिवियोनिर्विभावा ।
तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवा हविर्विश्व आजुहवुस्तनूपाः ॥७॥

पदार्थः—(**यः**) जो वैश्वानर अग्नि (**महिना**) महत्व से (**दृशेन्यः**) सबका दर्शनीय (**समिद्धः**) सम्यग् दीप्त, (**दिवियोनिः**) द्युस्थान में रहने वाला (**विभावा**) दीप्तिमान् हुआ (**अरोचत**) दीप्त होता हैं (**तस्मिन्**) उस (**अग्नौ**)

Scanned by CamScanner

वैश्वानर अग्नि में (तनूपाः) शरीर के रक्षक (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् (सूक्तवाकेन) उत्तम वाक्य वाले मन्त्र से (हविः) हवि को (आजुहवुः) डालते हैं।

भावार्थः—जो वैश्वानर अग्नि अपनी महिमा से सबका दर्शनीय सम्यग् दीप्त, द्यु स्थान में रहने वाला, दीप्तिमान होकर प्रकाशमान होता है उसमें समस्त विद्वान् लोग उत्तम वाक्य वाले मन्त्र से आहुति प्रदान करते हैं ॥७॥

सूक्तवाकं प्रथममादिदग्निमादिद्धविरजनयन्त देवाः ।
स एषां यज्ञो अभवत्तनूपास्तं द्यौर्वेद तं पृथिवी तमापः ॥८॥

पदार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (सूक्तवाकम्) उत्तम वाक्य वाले मन्त्र भाग को (प्रथमम्) पहले (जनयन्त) मन में उच्चारण करते हैं (आत् इत्) अनन्तर अग्नि को अरणियों से उत्पन्न करते हैं (आत् इत्) अनन्तर (हविः) आहुति (अजनयन्त) देते हैं (सः) वह अग्नि (एषाम्) इन देवों का (यज्ञः) यष्टव्य तथा (तनूपाः) शरीर का रक्षक होता है (तम्) उसको (द्यौः) द्यु=लोक (वेद) प्राप्त करता है (तम्) उसको (पृथिवी) पृथिवी लोक प्राप्त करता है (तम्) उसको (आपः) अन्तरिक्ष भी प्राप्त करता है।

भावार्थः—विद्वान् लोग उत्तम वाक्य वाले मन्त्र भाग को पहले मन में उच्चारण कर अग्नि को अरणियों से मथकर उत्पन्न करते हैं, और आहुति देते हैं। वह अग्नि इन विद्वानों का यष्टव्य है और शरीर का पालक है। उस हवि को ग्रहण करने वाले अग्नि को द्युलोक भी प्राप्त करता है, पृथिवी भी प्राप्त करती है और अन्तरिक्ष भी प्राप्त करना है। अर्थात् वह अग्नि इन सबको ही प्राप्त है ॥८॥

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा ।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा ॥९॥

पदार्थः—(देवासः) विश्व की दिव्य शक्तियाँ (यम्) जिस (अग्निम्) अग्नि को (अजनयन्त) उत्पन्न करते हैं (यस्मिन्) जिसमें (विश्वा) समस्त (भुवना) भूतग्राम को सर्वमेध सृष्टि यज्ञ में (आ जुहवुः) हवन कर देते हैं (ऋजूयमानः) ऋजुगति (सः) वह वैश्वानर अग्नि (महित्वा) महत्व से

Scanned by CamScanner

(अर्चिषा) तेज से (पृथिवीम्) पृथिवीं=अन्तरिक्ष को (द्याम्) द्युलोक को (उत) और (इमाम्) इस भूमि को (अतपत्) तपाता है।

भावार्थः—विश्व की दिव्य शक्तियां जिस अग्नि को उत्पन्न करती हैं और जिसमें सृष्टि काल में सर्वमेध यज्ञ में समस्त भूतग्राम को आहुत करते हैं वह वैश्वानर अग्नि अपने तेज और महत्व से अन्तरिक्ष, द्यु और इस पृथिवी को तपाता है ॥९॥

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम् ।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः ॥१०॥

पदार्थः—(देवासः) विश्व की दैवी शक्तियां (स्तोमेन) मन्त्र समूह के साथ (दिवि) द्युलोक में (शक्तिभिः) अपनी शक्तियों से (रोदसिप्राम्) द्यु और पृथिवी को पूरित करने वाले (अग्निम) वैश्वानर अग्नि को (अजीजनन्) उत्पन्न करते हैं, (कम्) सुखकर (तम् उ हि) उस ही को (त्रेधा) तीन प्रकार की (भुवे) होने के लिए (अकृण्वन्) करते हैं, (सः) वह (विश्वरूपाः) नाना प्रकार की (ओषधीः) ओषधियों को (पचति) पकाता है।

भावार्थः—विश्व की दैवी शक्तियां मन्त्रसमूह के साथ आकाश में अपनी शक्तियों से द्यु और पृथिवी के पूरक अग्नि को उत्पन्न करती हैं; पुनः उसको पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में तीन प्रकार की करती हैं। वह अग्नि ही नाना प्रकार की ओषधियों को पकाता है ॥१०॥

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम् ।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित्प्रापश्यन्भुवनानि विश्वा ॥११॥

पदार्थः--(यदा) जब (इत्) ही प्रातः वेला में (यज्ञियासः) यज्ञार्ह (देवाः) देव लोग (दिवि) आकाश में (एनम्) इस (आदितेयम्) प्रकाश के पुत्र सूर्य को (अदधुः) धारण करते हैं, (यदा) जब (चरिष्णू) चरणशील ये (मिथुनौ) सहचारी (अभूताम्) होते हैं अर्थात् उषा और सूर्य दोनों सहचारी होते हैं (आत् इत्) तब (विश्वा) सारे (भुवना) भूत समुदाय (प्रापश्यन्) इन दोनों को देखते हैं।

भावार्थः—जब प्रातः काल में यज्ञार्ह देव आकाश में इस वैश्वानर अग्नि को प्रकाश के पुत्र सूर्य के रूप में धारण करते हैं और जब चरणशील

Scanned by CamScanner

आदित्य और उषा सहचारी होते हैं तो समस्त प्राणी-समुदाय इन दोनों को देखता है ॥११॥

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन् ।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन् ॥१२॥

पदार्थः—(**देवाः**) विश्व की दिव्य शक्तियें (**विश्वस्मै**) समस्त (**भुवनाय**) जगत् के लिए (**वैश्वानरम्**) वैश्वानर अग्नि को (**अह्नाम्**) दिवसों का (**केतुम्**) प्रज्ञापक (**अकृण्वन्**) करती हैं (**यः**) जो वैश्वानर अग्नि (**विभातीः**) चमकती (**उषसः**) उषाओं को (**आततान**) विस्तारित करता है और (**यन्**) गति करता हुआ (**अर्चिषा**) ज्वाला से (**तमः**) अन्धकार को (**अप उ ऊर्णोति**) दूर भगाता है।

भावार्थः— विश्व की दिव्य शक्तियां समस्त जगत् के लिए वैश्वानर अग्नि को दिवसों का ज्ञापक करती हैं। यह वैश्वानर अग्नि चमकती उषाओं को विस्तारित करता है और गतिमान् हुआ अपनी ज्वाला से अन्धकार को दूर भगाता है ॥१२॥

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम् ।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम् ॥१३॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शन (**यज्ञियासः**) यज्ञार्ह (**देवाः**) दिव्य पदार्थ (**अजुर्यम्**) जरारहित (**वैश्वानरम्**) वैश्वानर आदित्यरूपी (**अग्निम्**) अग्नि को (**अजनयन्**) उत्पन्न करते हैं वह उत्पादित आदित्य रूपी अग्नि (**नक्षत्रम्**) कृतिका आदि नक्षत्रों को (**प्रत्नम्**) पुराण (**चरिष्णु**) चरण शील (**यक्षस्य**) आकाश के (**अध्यक्षम्**) अध्यक्ष (**तविषम्**) बलशाली (**बृहन्तम्**) महान् हैं उनको (**अमिनत्**) तेज से अभिभूत करता है।

भावार्थः— क्रान्तदर्शन यज्ञार्ह दिव्यपदार्थ जरारहित वैश्वानर आदित्य रूपी अग्नि को उत्पन्न करते हैं। वह आदिरूपी अग्नि प्राचीन चरणशील आकाश के अध्यक्ष, बलशाली, महान् कृतिका आदि नक्षत्रों को अपने तेज से अभिभूत करता है ॥१३॥

वैश्वानरं विश्वहा दीदिवांसं मन्त्रैरग्निं कविमच्छा वदामः ।
यो महिम्ना परिबभूवोर्वी उतावस्तादुत देवः परस्तात् ॥१४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हम (**मन्त्रैः**) वेद मन्त्रों से (**कविम्**) क्रांतदर्शन (**विश्वहा**) सदा (**दीदिवांसम्**) दीप्त (**वैश्वानरम्**) वैश्वानर (**अग्निम्**) अग्नि की (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**वदामः**) प्रशंसा करते हैं, (**यः**) जो (**महिम्ना**) महत्व से (**उर्वी**) द्यु और पृथिवी को (**परिबभूव**) परिभूत करता है (**उत**) और यह (**अधस्तात्**) नीचे तपता है (**उत**) और (**देवः**) सूर्यरूप देव (**परस्तात्**) ऊपर तपता है।

भावार्थः—हम वेदमन्त्रों से क्रान्तदर्शन, सदा प्रदीप्त वैश्वानर अग्नि की अच्छी प्रकार प्रशंसा करते हैं जो महत्व से द्यु और पृथिवी को परिभूत करता है और यह वैश्वानर अग्नि नीचे तपता है और सूर्य ऊपर तपता है ॥१४॥

द्वे स्रुती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम्।
ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥१५॥

पदार्थः—(**द्वे**) दो (**स्रुती**) मार्गों को (**अशृणवम्**) सुनता हूँ (**मर्त्यानाम्**) मरण धर्मा (**पितॄणाम्**) पितृ जनों का और मरणधर्मा (**देवानाम्**) विद्वानों का (**इदम्**) यह (**विश्वम्**) सारा जगत् (**ताभ्याम्**) इन दोनों मार्गों से (**एजत्**) जाता हुआ (**समेति**) चलता है, (**यत्**) जिसके अन्तरा (**पितरम्**) पिता (**च**) और (**मातरम्**) माता को प्राप्त होता है।

भावार्थः मत्यधर्मा पितृगण और विद्वानों के मैं विद्वान् दो मार्ग सुनता हूं। एक पितृयाण है और दूसरा देवयान है। इसी के अनुसार सारा जगत् चलता है। इसमें पिता और माता भी प्राप्त होते हैं ॥१५॥

द्वे समीची बिभृतश्चरन्तं शीर्षतो जातं मनसा विमृष्टम्।
स प्रत्यङ्विश्वा भुवनानि तस्थावप्रयुच्छन्तरणिर्भ्राजमानः ॥१६॥

पदार्थः—(**समीची**) संगत हुए (**द्वे**) द्यु और पृथिवी दोनों (**चरन्तम्**) गति करते हुए (**शीर्षतः**) शिरःस्थानी आदित्य से (**जातम्**) उत्पन्न (**मनसा**) लोगों के मन से (**विमृष्टम्**) विचारे जाने वाले अग्नि को (**बिभृतः**) धारण करते हैं, (**तरणिः**) शीघ्रगति, (**भ्राजमानः**) दीप्तिमान् (**अप्रयुच्छन्**) निरन्तर अपने कार्य में लगा हुआ (**सः**) वह अग्नि (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवनों को (**प्रत्यङ्**) अभिमुख हुआ (**तस्थौ**) स्थित होता है।

भावार्थः- संगत हुए द्यु और पृथिवी लोक दोनों ही गतिवाले, शिरः-

Scanned by CamScanner

स्थानीय आदित्य से उत्पन्न, लोगों के मन से विचारे जाने वाले अग्नि को धारण करते हैं। शीघ्रगति दीप्तिमान, निरन्तर कार्य में लगा यह अग्नि सभी लोकों के समक्ष स्थित होता है ॥१६॥

यत्रा वदेते अवरः परश्च यज्ञन्योः कतरो नौ वि वेद ।
आ शेकुरित्सधमादं सखायो नक्षन्त यज्ञं क इदं वि वोचत् ॥१७॥

पदार्थः (**यत्र**) जिस देवमण्डल में (**अवरः**) पार्थिव अग्नि (**चः**) और (**परः**) मध्यम वायु (**वदेते**) विवाद करते हैं (**यज्ञन्योः**) यज्ञ के नेता (**नौ**) हम दोनों में (**कतरः**) कौन (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**विवेद**) अधिक वा विशेष रूप से जानता है, (**सखायः इत्**) ऋत्विग् लोग (**सधमादम्**) यज्ञ को (**आशेकुः**) कर सकते हैं, और (**नक्षन्त**) अनुष्ठान करते हैं इनमें (**कः**) कौन (**इदम्**) इस निर्णय को (**विवोचत्**) बतावे ।

भावार्थः—यज्ञ के देवों के मण्डल में पार्थिव अग्नि और मध्यमस्थान अन्तरिक्षस्थ वायु परस्पर विवाद करते हैं कि उनमें से कौन यज्ञ को विशेष रूप से जानता है ? ऋत्विग् लोग यज्ञ कर सकते हैं और उसका अनुष्ठान करते हैं। इनमें से कौन इसका निर्णय बतावे। अर्थात् दोनों ही यथास्थान अपना महत्व रखते हैं ॥१७॥

कत्यग्नयः कति सूर्यासः कत्युषासः कत्यु स्विदापः ।
नोपस्पिजं वः पितरो वदामि पृच्छामि वः कवयो विद्मने कम् ॥१८॥

पदार्थः—(**अग्नयः**) अग्नियें (**कति**) कितनी हैं, (**सूर्यासः**) सूर्य (**कति**) कितने हैं (**उषासः**) उषायें (**कति**) कितनी हैं (**आपः**) जलें (**कति स्वित् उ**) कितने हैं ? (**पितरः**) हे पालक अनुभवी गुरुजनो (**वः**) आप से (**उपस्पिजम्**) स्पर्धावश (**न**) नहीं (**वदामि**) कहता हूँ हे (**कवयः**) क्रान्तदर्शियो (**कम्**) सुखपूर्वक (**विद्मने**) जानने के लिए (**वः**) आप से (**पृच्छाम**) पूछता हूं ।

भावार्थः कितनी हैं अग्नियें, कितने हैं सूर्य, कितनी हैं उषायें और कितने हैं जलें ? हे अनुभवी गुरुओ यह सब स्पर्धावश मैं नहीं पूछता हूँ अपितु हे क्रान्तदर्शियो सुखपूर्वक जानने के लिए यह पूछता हूं। यह जिज्ञासा किस प्रकार की जाती है इसका प्रकार बताया गया है ॥१८॥

Scanned by CamScanner

यावन्मात्रमुषसो न प्रतीकं सुपर्ण्यो॑ वसते मातरिश्वः ।
तावद्दधात्युप यज्ञमायन्ब्राह्मणो होतुरवरो निषीदन् ॥१९॥

पदार्थः—(**न**) संप्रति (**यावन् मात्रम्**) जितने समय तक (**उषसः**) उषा की (**प्रतीकम्**) प्रतीति वा चिन्ह को (**सुपर्ण्यः**) रात्रियें (**वसते**) आच्छादित करती हैं (**मातरिश्वन्**) हे वायो ! (**तावत्**) तब तक (**अवरः**) यह निकृष्ट (**ब्राह्मणः**) होता अग्नि (**होतुः**) वैश्वानर अग्नि के (**निषीदन्**) कर्म को करता हुआ (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**आयन्**) प्राप्त करता हुआ (**उप दधाति**) होता के कर्म को करता है ।

भावार्थः—१७वें मन्त्र में उठाये गए प्रश्न का उत्तर देते हुए इस मन्त्र में बताया गया है कि जब तक रात्रि उषा के चिन्ह को छिपा रखती है तब तक यह अवर होता=पार्थिव अग्नि होता के कार्य को करता हुआ यज्ञ को प्राप्त हो यज्ञ के कार्य को करता है। अर्थात् सायं और रात्रिकालिक यज्ञ में वैश्वानर अग्नि की प्रधानता हैं ॥१९॥

यह दशम मण्डल में अट्ठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ८९

ऋषिः—१—१८ रेणुः ॥ **देवता**—१–४, ६—१८ इन्द्रः । ५ इन्द्रासोमौ ॥ **छन्दः**—१, ४, ६, ७, ११, १२, १५, १८ त्रिष्टुप् । २ आर्चीत्रिष्टुप् । ३, ५, ९, १०, १४, १६, १७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । १३ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**— धैवतः ॥

इन्द्रं स्तवा नृतमं यस्य मह्ना विबबाधे रोचना वि ज्मो अन्तान् ।
आ यः पप्रौ चर्षणीधृद्वरोभिः प्र सिन्धुभ्यो रिरिचानो महित्वा ॥१॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिसकी (**मह्ना**) महिमा (**रोचना**) समस्त सूर्य आदि चमकने वाले पदार्थों के तेज को (**विबबाधे**) अभिभूत करती है (**विज्मः**) पृथिवी के (**अन्तान्**) पर्यन्त भागों तक अभिभूत करता है (**चर्षणीधृत्**) मनुष्यमात्र

Scanned by CamScanner

का पालक (महित्वा) महिमा से (सिन्धुभ्यः) समुद्रों (प्ररिरिचान) बढ़ा हुआ (यः) जो (वरोभिः) तमोवारक तेजों से (आ पप्रौ) आकाश आदि को पूर्ण करता है (नृतमम्) नेतृतम उस (इन्द्रम्) भगवान् की हे मनुष्य (स्तव) स्तुति कर।

भावार्थः – हे मनुष्य ! तू उस नेतृतम भगवान् की स्तुति कर जिसकी महिमा समस्त सूर्य आदि पदार्थों और पृथिवी की सीमाओं को भी अभिभूत करती है । अर्थात् वह अत्यन्त तेजस्वी और पृथिवी की सीमाओं से भी परे है । जो मनुष्यों का रक्षक और समुद्रों से भी बड़ा है और अपने तेज से द्युलोक और पृथिवी को भी पूरित करता है ॥१॥

स सूर्यः पर्युरू वरांस्येन्द्रो ववृत्याद्रथ्येव चक्रा ।
अतिष्ठन्तमपस्यं१ न सर्गं कृष्णा तमांसि त्विष्या जघान ॥२॥

पदार्थ – (सूर्यः) सब का प्रेरक (सः) वह (इन्द्रः) परमेश्वर (रथ्या) रथ सम्बन्धी (चक्रा) चक्के को (इव) सारथी के समान (उरु) बहुत (वरांसि) तेजों अर्थात् तेजस्वी सूर्य आदि पदार्थों को (परि आववृत्यात्) चलाता एवं घुमाता है, (न) संप्रति सदा (अतिष्ठन्तम्) गतिशील (अपस्यम्) क्रियायुक्त (सर्गम्) सृष्टिचक्र को भी चलाता है, (कृष्णा) काले अज्ञानान्धकार को (त्विष्या) दीप्ति से (जघान) नष्ट करता है ।

भावार्थः सब का प्रेरक परमेश्वर, रथ के चक्के को सारथी के समान, सूर्य आदि को चलाता और घुमाता है । वही सृष्टि चक्र को भी चलाता है और अपने ज्ञानप्रकाश से काले अज्ञानान्धकार को नष्ट करता है ॥२॥

समानमस्मा अनपावृदर्च क्ष्मया दिवो असमं ब्रह्म नव्यम् ।
वि यः पृष्ठेव जनिमान्यर्य इन्द्रश्चिकाय न सखायमीषे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! तू (समानम्) सदा एकरस (अनपवृत्) सबके समीप विद्यमान (क्ष्मया) पृथिवी से (दिवः) द्युलोक से भी (असमम्) महान् (नव्यम्) सदा ही नवीन (ब्रह्म) महान् (अस्मै) इस प्रभु की (अर्च) अर्चना कर, (यः) जो (इन्द्रः) प्रभु (अर्यः) सब का स्वामी है (पृष्ठा इव) पृष्ठ स्तोत्रों की भांति (जन्मानि) लोगों के जन्मों को (सखायम्) अपने सखा जीव को

Scanned by CamScanner

(विचिकाय) जानता है (न ईषे) किसी प्रकार किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता है ।

भावार्थः– हे मनुष्य ! तू सदा एकरस, व्यापक होने से सबके समीपवर्ती पृथिवी और द्युलोक से भी महान्, सदा ही नवीन महान् इस प्रभु की स्तुति प्रार्थना कर जो सबका स्वामी है और अपने मित्र जीव को तथा इन जीवों और पदार्थों के जन्मों को जानता है तथा स्वयं किसी वस्तु की इच्छा नहीं करता है ॥३॥

इन्द्राय गिरो अनिशितसर्गा अपः प्रेरयं सगरस्य बुध्नात् ।
यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिर्विष्वक्तस्तम्भ पृथिवीमुत द्याम् ॥४॥

पदार्थः—मैं स्तावक (सगरस्य) अन्तरिक्ष (बुध्नात्) प्रदेश से (अनिशितसर्गाः) अप्रतिहत गिरने वाली (अपः) जलों के समान (इन्द्राय) परमेश्वर के लिए (गिरः) स्तुतियों को (प्र ईरयम्) प्रेरित करता हूं, (यः) जो (अक्षेण) अक्ष से (चक्रिया इव) रथ के चक्र के समान (शचीभिः) अपने ज्ञान और क्रिया से (पृथिवीम्) पृथिवी (उत) और (द्याम्) द्युलोक को (विश्वक्) सब तरफ (तस्तम्भ) धारण करता है ।

भावार्थः— मैं स्तावक अन्तरिक्ष से निरन्तर गिरने वाली वर्षा की जलधारा के समान स्तुतियों को परमेश्वर के प्रति निरन्तर प्रेरित करता हूं । वह प्रभु पृथिवी और द्युलोक को अपनी ज्ञानक्रियाओं से उसी प्रकार सब ओर से थांमे हुए हैं जिस प्रकार अक्ष=धुरा रथ के चक्कों को थांभ रखता है ॥४॥

आपान्तमन्युस्तृपलप्रभर्मा धुनिः शिमीवाञ्छरुमाँ ऋजीषी ।
सोमो विश्वान्यतसा वनानि नार्वागिन्द्रं प्रतिमानानि देभुः ॥५॥

पदार्थः—(आपान्तमन्युः) न पातित तेजों वाला (तृपलप्रभर्मा) क्षिप्र प्रहार करने वाला (धुनिः) कँपा देने वाला, (शिमीवान्) कर्मवान् (शरुमान्) आयुध वाला (ऋजीषी) ऋजीष युक्त (सोमः) सोम पदार्थ (विश्वानि) समस्त (अतसा) काष्ठ आदि से युक्त (वनानि) अरण्यों को बढ़ाता है, (प्रतिमानानि) मापतोल के सभी मानदण्ड (इन्द्रम्) इन्द्र को (न अर्वाक्) न समक्ष (देभुः) आकृष्ट करते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः— धृततेजाः शीघ्र प्रहार करने वाला, कंपाने वाला, कर्मकारी, आयुधवाला तरछट आदि से युक्त यह सोम=वायु काष्ठ आदि से युक्त सारे अरण्यों को बढ़ाता है। मापतोल का कोई भी मापदण्ड इन्द्र=विद्युत को माप नहीं सकता है ॥५॥

न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः ।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीळु रुजति स्थिराणि ॥६॥

पदार्थः— (**यस्य**) जिस इन्द्र=परमेश्वर के (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी भी माप नहीं है, (**न**) नहीं (**धन्व**) जल उसका प्रतिमान है, (**न**) न तो अन्तरिक्ष और (**न**) न (**अद्रयः**) पर्वत ही उसके प्रतिमान हैं (**सोमः**) सोम पथार्थ भी उसके अधीन ही (**अक्षाः**) क्षरित होकर पृथिवी आदि पर आता है (**यस्य**) जिसका (**मन्युः**) तेज (**यत्**) जब (**अधिनीयमानः**) सर्वोपरि विराजमान होकर कार्य करता है तब (**वीळु**) दृढ़ वस्तु को (**शृणाति**) शीर्ण करता है और (**स्थिराणि**) स्थिर को (**रुजति**) भेदन करता है।

भावार्थः—वह परमेश्वर ऐसा है कि जिसका द्यु और पृथिवी प्रतिमान नहीं हैं और न जल अन्तरिक्ष और पर्वत आदि ही उसके मापक हैं। सोमरूपी अपस्तत्त्व भी उसी के अधीन होकर क्षरित होता है। उसका तेज इतना सर्वोपरि है कि वह दृढ वस्तु को शीर्ण और स्थिर को विदीर्ण करता है ॥३॥

जघान वृत्रं स्वधितिर्वनेव रुरोज पुरो अरदन्न सिन्धून् ।
बिभेद गिरिं नवमिन्न कुम्भमा गा इन्द्रो अकृणुत स्वयुग्भिः ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र=सूर्य अथवा विद्युत् (**वृत्रम्**) मेघ को (**जघान**) मारता है, (**वना**) जंगलों को (**स्वधितिः**) कुठार के (**न**) समान (**पुरः**) मेघ की पुरी को (**रुरोज**) छिन्न भिन्न करता है (**सिन्धून्**) नदियों को (**न**) सम्प्रति (**अरदत्**) वृष्टि जल से खोदता है (**नवम्**) नवीन (**कुम्भम्**) घड़े के (**न**) समान (**गिरिम्**) मेघ को (**बिभेद इव**) भेदन करता है (**सुयुग्भिः**) सहयोगी मरुतों के साथ (**गाः**) जलों को (**आ अकृणुत**) अभिमुख करता है।

भावार्थः— इन्द्र=सूर्य अथवा विद्युत् मेघ को मारता है। जिस प्रकार कुठार जंगलों को काटता है उसी प्रकार वह मेघों की नगरियों को ध्वस्त

Scanned by CamScanner

करता है और नदियों को पानी से युक्त करता है। वह नये घड़े के समान मेघ को भेदन करता है और अपने सहयोगी मरुतों के साथ वर्षाजल को अभिमुख करता है ॥७॥

त्वं ह त्यदृणया इन्द्र धीरोऽसिर्न पर्व वृजिना शृणासि ।
प्र ये मित्रस्य वरुणस्य धाम युजं न जना मिनन्ति मित्रम् ॥८॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**त्वम्**) तू (**ह**) ही (**त्यत्**) उन परम धनों को (**ऋणयाः**) देने वाला है (**न**) जिस प्रकार (**असि**) खड्ग (**पर्व**) पोर पोर को काटता है उसी प्रकार तू (**वृजिना**) अनेक पापों और बुराइयों को (**शृणासि**) काटता है । (**ये**) जो (**जनाः**) लोग (**मित्रस्य**) मित्र के (**वरुणस्य**) श्रेष्ठ पुरुष के (**धाम**) तेजस्वी कर्म (**युजम्**) सहयोगी (**मित्रम्**) मित्र को (**न**) संप्रति (**प्रमिनन्ति**) मारते हैं उनको भी आप (**शृणासि**) दण्ड देते हो ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू उन परम धनों का दाता है जो अत्यन्त लाभकर हैं, जिस प्रकार खड्ग पोर पोर को काटता है वैसे ही आप बुराइयों को काटते हो । जो लोग मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष के तेजस्वी कर्म और सहयोगी मित्र की हानि और हिंसा करते हैं उनको भी तू अपनी व्यवस्था से दण्ड देता है ॥८॥

प्र ये मित्रं प्रार्यमणं दुरेवाः प्र संगिरः प्र वरुणं मिनन्ति ।
न्य१मित्रेषु वधमिन्द्र तुम्रं वृषन्वृषाणमरुषं शिशीहि ॥९॥

पदार्थः—हे (**वृषन्**) शक्तिमन् (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् राजन् (**दुरेवाः**) दुष्ट गतिवाले (**ये**) जो जन (**मित्रम्**) सूर्यसम प्रकाशमान विद्वान् को (**प्रमिनन्ति**) मारते हैं (**अर्यमणम्**) न्यायकारी को (**प्र**) मारते हैं (**संगिरः**) स्तुति करने वाले मरुत्=ऋत्विजों को (**प्र**) मारते हैं, (**वरुणम्**) अत्यन्त वरणीय अधिकारी वा शासक को (**प्र**) मारते हैं, (**अमित्रेषु**) अमित्र भूत इनके ऊपर (**तुम्रम्**) गमनशील (**वृषाणम्**) दुःखों के वर्षक (**अरुषम्**) भास्वर (**वधम्**) वज्र को (**नि शिशीहि**) तीक्ष्ण कर ।

भावार्थः—हे शक्तिशाली राजन् ! दुष्ट गति वाले जो जन सूर्यसम तेजस्वी विद्वान् को, न्यायकारी पुरुष को, ऋत्विजों को, अत्यन्त वरणीय

Scanned by CamScanner

शासक को मारते हैं उन अमित्र भूत लोगों पर गमनशील, दुःख की वर्षा करने वाले भास्वर वज्र को तीक्ष्ण कर अर्थात् सख्त दण्ड दे ॥९॥

इन्द्रो॑ दि॒व इन्द्र॑ ईशे पृथि॒व्या इन्द्रो॑ अ॒पामिन्द्र॒ इत्पर्व॑तानाम् ।
इन्द्रो॑ वृ॒धामिन्द्र॒ इन्मेधि॑राणा॒मिन्द्रः॒ क्षेमे॒ योगे॒ हव्य॒ इन्द्रः॑ ॥१०॥

पदार्थ—(**इन्द्रः**) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु (**दिवः**) द्युलोक का (**ईशे**) शासन करता है, (**इन्द्रः**) सर्वैश्वर्यवान् वही (**पृथिव्याः**) पृथिवी का शासन करता है, (**इन्द्रः**) वह सर्वशक्तिमान् (**अपाम्**) जलों और अन्तरिक्ष का शासन करता है, (**इन्द्रः इत्**) वह सर्वशक्ति ही (**पर्वतानाम्**) मेघों पर शासन करता है, (**इन्द्रः**) परमेश्वर ही (**वृधाम्**) बढ़ने वालों का (**इत्**) भी और (**मेधिराणाम्**) मेधावियों का शासन करता है, (**इन्द्रः**) इन्द्र (**क्षेमे**) प्राप्त की रक्षा में (**हव्यः**) पुकारने योग्य है (**इन्द्रः**) परमेश्वर ही (**योगे**) अप्राप्त की प्राप्ति में भी (**हव्यः**) पुकारने योग्य है ।

भावार्थः—सर्वशक्तिमान् परमेश्वर द्युलोक का शासन करता है, पृथिवी लोक का शासन करता है, वही जलों और अन्तरिक्ष, मेघों, बढने वालों और मेधावी लोगों का भी शासन करता है । वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हमारे योग और क्षेम के वहन में हमारा रक्षक है ॥१०॥

प्राक्तुभ्य॒ इन्द्रः॒ प्र वृ॒धो अह॑भ्यः॒ प्रान्तरि॑क्षा॒त्प्र स॑मु॒द्रस्य॑ धा॒सेः ।
प्र वात॑स्य॒ प्रथ॑सः॒ प्र ज्मो अन्ता॒त्प्र सिन्धु॑भ्यो रिरिचे॒ प्र क्षि॒तिभ्यः॑ ॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**अक्तुभ्यः**) रात्रियों से भी (**प्र वृधः**) बड़ा है, (**अहभ्यः**) दिवसों से भी बड़ा है, (**अन्तरिक्षात्**) आकाश से भी (**प्र**) बड़ा है, (**समुद्रस्य**) समुद्र के (**धासेः**) धारक स्थान से भी (**प्र**) बड़ा है, (**वातस्य**) वायु के (**प्रथसः**) फैलाव से भी (**प्र**) बड़ा है, (**ज्मः**) पृथिवी के (**अन्तात्**) पर्यन्त से भी (**प्र**) बड़ा है (**सिन्धुभ्य**) नदियों से (**प्र रिरिचे**) अतिरिक्त है और (**क्षितिभ्यः**) क्षितिजों वा मनुष्यों से भी (**प्ररिरिचे**) अधिक है ।

भावार्थः—परमैश्वर्यवान् प्रभु रात्रियों, दिवसों, अन्तरिक्ष, समुद्र को घेरने वाले स्थान, वायु के फैलाव और पृथिवी के पर्यन्त भागों से भी बड़ा है । वह नदियों से भी अधिक बड़ा और क्षितिजों वा मनुष्यों से भी बड़ा हैं । वह व्यापक और इन सब से अधिक है ॥११॥

Scanned by CamScanner

प्र शोशुचत्या उषसो न केतुरसिन्वा ते वर्ततामिन्द्र हेतिः ।
अश्मेव विध्य दिव आ सृजानस्तपिष्ठेन हेषसा द्रोघमित्रान् ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! (**शोशुचत्याः**) जलती हुई (**उषसः**) उषाओं के (**केतुः**) प्रज्ञापक रश्मि के (**न**) समान (**ते**) तुम्हारी (**असिन्वा**) जिसका भेदन कोई नहीं कर सकता है ऐसी (**हेति**) वज्र (**प्रवर्त्तताम्**) प्रवृत्त होता है, (**तपिष्ठेन**) तापकारक (**हेषसा**) शब्द कारक हेति से (**द्रोघमित्राम्**) दुष्ट जनों को (**दिवः**) द्युलोक से (**आ सृजानः**) उत्पन्न (**अश्मा इव**) अशनि के समान (**विध्य**) ताड़ित कर ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् प्रभो! प्रकाशमान उषाओं की ज्ञापन करने वाली रश्मि के समान अभेद्य आप का न्याय वज्र अपने कार्य में प्रवृत्त होवे । वह तापकारी शब्द कारक न्यायवज्र से दुष्टजनों को उसी प्रकार दण्ड दे जिस प्रकार द्युलोक से उत्पन्न बिजली सब चीजों को नष्ट करती है ॥१२॥

अन्वह मासा अन्विद्वनान्यन्वोषधीरनु पर्वतासः ।
अन्विन्द्रं रोदसी वावशाने अन्वापो अजिहत जायमानम् ॥१३॥

पदार्थः—(**इन्द्रम् अनु अह**) सूर्य के अनुसार ही (**मासाः**) महीने (**अनु-अजिहत**) चलते हैं, (**वनानि**) अरण्य (**इत्**) भी उसी का अनुसरण (**ओषधीः**) ओषधियें भी (**अनु**) उसी का अनुसरण करती हैं, (**पर्वतासः**) मेघ भी उसी का (**अनु**) अनुसरण करते हैं । (**जायमानम्**) प्रादुर्भूत होते हुए इन्द्र=सूर्य का ही (**वावशाने**) कान्तियुक्त (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी अनुसरण करते हैं, (**आपः**) जलें भी (**इन्द्रम्**) सूर्य का (**अनु अजिहत**) अनुगमन करती है ।

भावार्थः—सूर्य के ही अनुसार महीने होते हैं, जंगल आदि भी उसी के अनुसार बढ़ते हैं, ओषधियां उसी के अनुसार होती है, मेघ भी सूर्य के ही अनुसार बनते हैं और प्रादुर्भूत होते सूर्य का ही द्यु और पृथिवी तथा जलें अनुसरण करते हैं ॥१३॥

कर्हि स्वित्सा त इन्द्र चेत्यासदघस्य यद्भिनदो रक्ष एषत् ।
मित्रक्रुवो यच्छसने न गावः पृथिव्या आपृगमुया शयन्ते ॥१४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः--हे (**इन्द्र**) तेजस्वी पुरुष ! (**ते**) तेरी (**अघस्य**) पापों का नाश कर देने वाली (**चेत्या**) शक्ति (**कर्हिस्वित्**) कब (**असत्**) प्रकट होगी (**यत्**) जिससे तू (**रक्षः**) राक्षसों को (**भिनदः**) भेदन करे और मित्रों पर क्रूरता करने वालों को (**आ ईषत्**) भयभीत करे (**यत्**) जिससे (**शसने**) हत्या-स्थान में (**गावः**) पशुओं के (**न**) समान वे (**आपृक्**) मर कर (**अमुया**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी के ऊपर (**शयन्ते**) पड़ें ।

भावार्थः—हे तेजस्वी पुरुष ! तेरी पापों का नाश करने वाली शक्ति कब प्रकट होगी कि जिससे तू राक्षसों का भेदन करे और मित्रों से द्रोह वा क्रूरता करने वालों को भयभीत करे । तथा जिससे हत्यागार में पशुओं के समान वे मरकर इस पृथिबी के ऊपर पड़जावें ॥१४॥

शत्रूयन्तो॑ अ॒भि ये न॑स्तत॒स्रे महि॒ व्राध॑न्त ओग॒णास॑ इन्द्र ।
अ॒न्धेना॒मित्रा॒स्तम॑सा सचन्तां सु॒ज्योति॑षो अ॒क्तव॒स्ताँ अ॒भि ष्यु॑ः ॥१५॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**शत्रूयन्तः**) शत्रुओं के समान व्यवहार करने वाले (**ओगणासः**) संघ बनाए हुए (**महि**) बहुत (**व्राधन्तः**) पीड़ित करते हुए (**नः**) हमें (**अभिततस्रे**) सब ओर से गिराते हैं, (**इन्द्र**) हे शत्रु नाशक पुरुष वे (**अमित्रा**) शत्रु गण (**अन्धेन**) अन्धकार मय (**तमसा**) तम से (**सचन्ताम्**) युक्त होवें और (**तान्**) उन्हें (**सुज्योतिषः**) उत्तम प्रकाश वाले दिन और (**अक्तवः**) रात्रिगण (**अभिष्युः**) पराजित करें ।

भावार्थः--ये जो शत्रु के समान व्यवहार करने वाले, संघ बनाये हुए बहुत पीड़ित करते हुए हमें सब ओर से गिराते हैं हे शत्रु नाशक पुरुष ! वे शत्रु गण घोर अन्धकार में पड़ें और उत्तम प्रकाश वाले दिन और रात्रियें भी पराजित करें ॥१५॥

पु॒रूणि॒ हि त्वा॒ सव॑ना॒ जना॑नां॒ ब्रह्मा॑णि॒ मन्द॑न्गृण॒ताम्ऋषी॑णाम् ।
इ॒मामा॒घोष॒न्नव॑सा॒ सहू॑तिं॒ ति॒रो विश्वाँ॒ अर्च॑तो याह्य॒र्वाङ् ॥१६॥

पदार्थः हे प्रभो ! (**त्वा**) तुझे (**जनानाम्**) मनुष्यों के (**पुरूणि हि**) बहुत (**सवना**) उपासना यज्ञ आदि तथा (**गृणताम्**) स्तावक (**ऋषीणाम्**) मन्त्र द्रष्टाओं के (**ब्रह्माणि**) मन्त्र (**मदन्**) प्रसन्न करते हैं, वे (**सहूतिम्**) एक साथ मिलकर करने योग्य इस प्रार्थना को भी (**अवसा**) ज्ञान और प्रेम से (**त्वा**)

Scanned by CamScanner

आप के लिए (**आघोषन्**) प्रकट करते हैं । हे प्रभो ! (**विश्वान्**) सब (**अर्नतः**) प्रार्थना करने वालों को (**अर्वाङ्**) साक्षात् (**अवसा**) रक्षा से (**तिरः**) संसार के दुःखों से दूर (**याहि**) प्राप्त करा ।

भावार्थः—हे प्रभो ! तुझे मनुष्यों के अनेकानेक उपासना यज्ञ आदि तथा स्तावक मन्त्र द्रष्टाओं के मन्त्र प्रसन्न करते हैं । वे सामूहिक प्रार्थना को भी ज्ञान और प्रेम से आप के लिए प्रकट करते हैं । हे भगवन् ! समस्त प्रार्थना करने वालों को साक्षात् रक्षा से संसार के दुःखों से पार कर ॥१६॥

एवा ते वयमिन्द्र भुञ्जतीनां विद्याम सुमतीनां नवानाम् ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो विश्वामित्रा उत त इन्द्र नूनम् ॥१७॥

पदार्थः—(**एव**) इस प्रकार (**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् ! (**वयम्**) हम (**ते**) तेरी (**भुञ्जतीनाम्**) रक्षात्मक (**नवानाम्**) नित्य नवीन (**सुमतीनाम्**) उत्तम अनुग्रह बुद्धियों को (**विद्याम**) सदा जानें, हम (**विश्वामित्रा**) सब के मित्र होकर (**वस्तोः**) दिन रात (**नूनम्**) अवश्य (**अवसा**) ज्ञान और प्रेम से (**ते**) तेरी (**गृणन्तः**) स्तुति करते हुए (**इन्द्र**) हे भगवन् !(**ते**) तेरी ज्ञानमयी वेदवाणियों को (**विद्याम**) जानें ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! हम तेरी रक्षात्मक नित्य नवीन उत्तम अनुग्रह बुद्धियों को जानें । हम सबके मित्र होकर दिनरात ज्ञान और प्रेमभाव से तेरी स्तुति करते हुए, हे भगवन् तेरी ज्ञानमयी वेदवाणी को समझें ॥१७॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि संजितं धनानाम् ॥१८॥

पदार्थः— हम लोग (**मघवानम्**) ऐश्वर्यों के स्वामी (**शुनन्**) महान् अथवा व्यापक (**इन्द्रम्**) समस्त ऐश्वर्यों के दाता (**वाजसातौ**) ऐश्वर्य और ज्ञान के प्रदान में (**नृतमम्**) सर्वश्रेष्ठ (**ऊतये**) रक्षा के कार्य में (**उग्रम्**) बलवान् (**शृण्वन्तम्**) सबकी सुनने वाले, (**समत्सु**) युद्धों में (**वृत्राणि**) विघ्नों को (**घ्नन्तम्**) नाश करने वाले (**धनानाम्**) समस्त धनों को (**संजितम्**) जीतने वाले प्रभु को (**अस्मिन्**) इस (**भरे**) जीवन संगर में (**हुवेम**) पुकारते हैं ।

भावार्थः—हम लोग ऐश्वर्यों के स्वामी, व्यापक, ऐश्वर्यशाली, ऐश्वर्य

Scanned by CamScanner

और ज्ञान के प्रदान में सर्वश्रेष्ठ, रक्षा के कार्य में बलवान्, सबकी पुकार को सुनने वाले, समस्त धनों को जीतने वाले (अर्थात् धन का स्वामी तो अन्त में प्रभु ही है अत वह जीतने वाला है और सभी धनवाले हारने वाले हैं) प्रभु को इस जीवन संग्राम में याद करते हैं ॥१८॥

यह दशम मण्डल में नवासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९०

ऋषिः—१—१६ नारायणः ॥ देवता—पुरुषः ॥ छन्दः—१—३, ७, १०, १२, १३ निचृदनुष्टुप् ।। ४—६, ९, १४, १५ अनुष्टुप् । ८, ११ विराडनुष्टुप् । १६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—१५ गान्धारः । १६ धैवतः ॥

विशेष वक्तव्य –यह सूक्त पुरुष सूक्त कहा जाता है। पुरुष=परमात्मा और जीवात्मा तथा प्रकृति का इस में वर्णन है। मूल्यांकन का कोई भी प्रकार केवल भौतिक नहीं हैं। पुरुष की अपेक्षा रखता है अतः प्रकृति पुरुषात्मक है। संसार और उसकी सृष्टिप्रक्रिया के जाने विना किसी अच्छे समाज की रचना नहीं हो सकती है। अतः इसमें संसार और समाज दोनों का वर्णन है। परमात्मा जीवात्मा और प्रकृतिरूपी कारणों और सृष्टि प्रक्रिया का वर्णन करके समाज का भी वर्णन किया गया है। शरीर और ब्रह्माण्ड की समता भी दिखाई गई है।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

पदार्थः—(**पुरुषः**) परमेश्वर (**सहस्रशीर्षा**) संसार के शिरों वाला है, (**सहस्राक्षः**) संसार भर की आँखों वाला है, (**सहस्रपात्**) संसार भर के पैरों वाला है, (**सः**) वह (**भूमिम्**) जगत् के महान् उपादान कारण प्रकृति को (**विश्वतः**) सब तरफ से (**वृत्वा**) आच्छादित करके (**दशाङ्गुलम्**) दश इन्द्रियों वाले शरीर को (**अत्यतिष्ठत्**) अतिक्रान्त करके स्थित है।

भावार्थः—परमात्मा पुरुष में संसार भरके शिर हैं, संसार भरकी आँखें हैं और संसार भर के पैर हैं। वह प्रकृति को अपनी व्यापकता से व्याप्त करके शरीर आदि से भी रहित है। अर्थात् वह शरीर नहीं धारण करता है ॥१॥

पुरु॑ष ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भाव्य॑म् ।
उ॒ताऽमृ॑त॒त्वस्येशा॑नो॒ यदन्ने॑नाति॒रोह॑ति ॥२॥

पदार्थः–(**यत्**) जो (**भूतम्**) उत्पन्न हो चुका है, (**यत्**) जो (**भाव्यम्**) उत्पन्न होने वाला है और (**यत्**) जो (**इदम्**) वर्तमान में है वह (**सर्वम्**) सब (**पुरुषः**) पुरुष (**एव**) ही है (**उत**) और (**अमृतत्वस्य**) अमरता अर्थात् मोक्ष का (**ईशानः**) स्वामी है, (**यत्**) जो (**अन्ने**) प्रकृति से (**अतिरोहति**) बढ़ता है उसका भी स्वामी है।

भावार्थः—भूत, वर्तमान और भविष्यत् में जो कुछ है वह पुरुषाधिष्ठित है। वह पुरुष=परमेश्वर मोक्ष का स्वामी है और अन्न=प्रकृति से जो कुछ भी होता बढ़ता है उस सब का स्वामी है। अर्थात् यह सारा जगत् प्रकृतिपुरुषात्मक है ॥२॥

ए॒तावा॑नस्य महि॒मातो॒ ज्याया॑ँश्च॒ पूरु॑षः ।
पादो॑ऽस्य॒ विश्वा॑ भू॒तानि॑ त्रि॒पाद॑स्या॒मृतं॑ दि॒वि ॥३॥

पदार्थः–(**एतावान्**) इतनी (**अस्य**) इस पुरुष की (**महिमा**) जगत् आदि विभूति है (**च**) और (**पुरुषः**) वह परमेश्वर तो (**अतः**) इससे भी (**ज्यायान्**) बड़ा है, (**विश्वा**) समस्त (**भूतानि**) भूतजात (**अस्य**) इसका (**पादः**) एक पाद है, (**अस्य**) इसके (**त्रिपाद्**) तीन पाद (**दिवि**) ज्ञान प्रकाश स्वरूप में (**अमृतम्**) अविनाशी हैं।

भावार्थः—यह जगत् आदि सब कुछ उस पुरुष की महिमा है। वह परमेश्वर तो इससे भी महान् है। यह सब कुछ भूतजात उसका एक पाद है। इसके तीन पाद ज्ञान प्रकाश-स्वरूप में अविनाशी हैं। अर्थात् परमेश्वर इस सब कुछ से भी महान् है ॥३॥

त्रि॒पादू॒र्ध्व उदै॒त्पुरु॑षः॒ पादो॑ऽस्ये॒हाभ॑व॒त्पुनः॑ ।
ततो॒ विष्व॒ङ्व्य॑क्रामत्साशनानश॒ने अ॒भि ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः (त्रिपाद्) तीन पादों वाला अविनाशी यह (पुरुषः) पुरुष (ऊर्ध्वः) ऊपर (उदैत्) विराजमान् होता है, (अस्य) इसका (पादः) एक पाद रूप यह जगत् (पुनः) तो फिर (इह) यहां (अभवत्) प्रकट होता है, (ततः) वह प्रभु (विश्वङ्) सर्वत्र (व्यक्रामत्) व्यापता है (सः) वह (अशनानशने) खाने और न खाने वाले अर्थात् चेतन और अचेतन को (अभि) अभिव्याप्त करता है।

भावार्थः—अविनाशी तीन पादों वाला पुरुष=परमेश्वर सबके ऊपर विराजमान होता है। उसका एक पादरूप यह जगत् प्रकट होता है। वह प्रभु सबको व्यापता है। जो चेतन अचेतन जगत् है उस सब को अभिव्याप्त करता है ॥४॥

तस्माद्विराळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥

पदार्थः—(तस्माद्) उस परमेश्वर अधिष्ठित प्रकृति से (विराड्) प्रकाशमय समष्टि रूप ब्रह्माण्ड (अजायत) उत्पन्न होता है, (विराजः अधि) विराट् के ऊपर अध्यक्ष रूप में (पुरुषः) पुरुष है (सः) वह पुरुष (जातः) उत्पन्न हुए से (अत्यरिच्यत) अतिरिक्त होता है, (पश्चात्) विराट् के पश्चात् (भूमिम्) भूमि (अथो) इसके अनन्तर (पुरः) नाना शरीरों को उत्पन्न करता है।

भावार्थः—उस परमेश्वराधिष्ठित प्रकृति विश्व का समष्टिरूप प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न होता है। परमेश्वर उसका अधिष्ठाता होकर उस पर विराजमान रहता है। वह अपने को उत्पन्न हुए से अतिरिक्त रखता है। विराट् के अनन्तर भूमि और उसके बाद शरीर आदि पुरियों को उत्पन्न करता है ॥५॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्मः इध्म शरद्धविः ॥६॥

पदार्थः—(यत्) जब (देवाः) विश्व की दिव्य शक्तियां (पुरुषेण) पुरुष=परमेश्वर के द्वारा प्रदत्त (हविषा) जगद्रचना सामग्री से (यज्ञम्) सृष्टि रचना रूप यज्ञ को (अतन्वत) विस्तारित करते हैं तब (अस्य) इसका (वसन्तः) वसन्त (आज्यम्) घृत (आसीत्) होता है (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु (इध्मः) समिधा और (शरद्) शरद् ऋतु (हविः) हवि होती है।

भावार्थः—जब विश्व की दिव्य शक्तियां परमेश्वर प्रदत्त जगद्रचना-सामग्री से सृष्टि रचना रूप यज्ञ का विस्तार करती हैं तब इस यज्ञ का वसन्त घृत, ग्रीष्मऋतु समिधायें और शरद् हवि होते हैं ॥६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥७॥

पदार्थः—(**अग्रतः**) पहले से (**जातम्**) विराट् के ऊपर अधिष्ठित (**यज्ञम्**) यष्टव्य अथवा पदार्थों का संगति करण करने वाले (**पुरुषम्**) परमेश्वर को दिव्य शक्तियां (**बर्हिषि**) आकाश में (**प्रौक्षन्**) अभिषिक्त करती हैं और (**तेन**) उसीके द्वारा प्रेरित हुए (**साध्याः**) सृष्टि साधन भूत (**देवाः**) दिव्य शक्तियां (**च**) और (**ये**) जो (**ऋषयः**) विश्वसृज् लोग (**अयजन्त**) इस सृष्टि के पदार्थों को योजना-वद्ध करते हैं।

भावार्थः—पहले से ही विराट् के ऊपर अधिष्ठित और समस्त जगत् के पदार्थों की संगति लगाने वाले परमेश्वर को दिव्य शक्तियां आकाश में अधिष्ठाता बनाती हैं और उसी से प्रेरित होकर सृष्टि की साधन भूत दिव्य शक्तियां और विश्वसृज् लोग इस सृष्टि को योजनावद्ध करते हैं ॥७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशून्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये ॥८॥

पदार्थः—(**सर्वहुतः**) सब कुछ को सृष्टि यज्ञ में आहुत करने वाले (**यज्ञात्**) पूजनीय एवं जगत् की योजना करने वाले परमेश्वर से (**पृषद्**) अन्न आदि प्राणदायक और (**आज्यम्**) धृत आदि पदार्थ (**सम्भृतम्**) उत्पन्न होते हैं, उसने ही (**तान्**) उन (**वायव्याम्**) वायव्य, (**आरण्यान्**) जंगली (**पशून्**) पशुओं को (**चक्रे**) उत्पन्न किया (**च**) और (**ये**) जो (**ग्राम्याः**) ग्राम्य हैं उन्हें भी।

भावार्थः—सृष्टियज्ञ में सब कुछ को आहुत करने वाले, जगत् की योजना करने वाले परमेश्वर के निमित्तत्व से अन्न आदि प्राणदायक और घृत आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं। उसने ही वायव्य और जंगली उन पशुओं को उत्पन्न किया है और जो ग्राम्य हैं उन्हें भी वही उत्पन्न करता है ॥८॥

Scanned by CamScanner

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥६॥

पदार्थः—(**सर्वहुतः**) सब कुछ को सृष्टि रचना रूप सर्वमेध में हुत करने वाले, (**यज्ञात्**) पूज्य एवं जगत् को योजनाबद्ध करने वाले (**तस्मात्**) उस परमेश्वर से (**ऋचः**) ऋचायें, (**सामानि**) साम मन्त्र (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं (**छन्दांसि**) अथर्ववेद के मंत्र (**तस्माद्**) उससे (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं और (**यजुः**) यजुर्वेद (**तस्माद्**) उससे (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः - सर्वमेध=सृष्टि यज्ञ में सब कुछ को हुत करने वाले तथा जगत् को योजनाबद्ध करने वाले उस परमेश्वर से ही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद उत्पन्न होते हैं ॥६॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

पदार्थः – (**तस्माद्**) उसी से (**अश्वाः**) घोड़े (**अजायन्त**) उत्पन्न होते हैं (**च**) और (**ये**) जो (**के**) कोई गर्दभ अश्वतर आदि (**उभयादतः**) दोनों तरफ दांत वाले हैं वे भी उत्पन्न होते हैं, (**तस्मात्**) उसी से (**ह**) ही (**गावः**) गौ आदि (**जज्ञिरे**) उत्पन्न होते हैं, (**तस्माद्**) उसी से (**जाताः**) उत्पन्न हुए (**अजावयः**) बकरी भेड़ आदि ।

भावार्थः—उस परमेश्वर के ही निमित्तत्व से घोड़े उत्पन्न होते हैं और उसी से दोनों तरफ दांत वाले गर्दभ अश्वतर आदि उत्पन्न होते हैं । गाय आदि पशु उससे उत्पन्न होते हैं और बकरी भेड़ भी उसी से उत्पन्न होते हैं ॥१०॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥११॥

पदार्थः—(**यत्**) जब दिव्य शक्तियां (**पुरुषम्**) सामाजिक पुरुष की (**व्यदधुः**) कल्पना करती हैं तब (**कतिधा**) कितने प्रकार से कल्पित करते हैं, (**अस्य**) इस समाज का (**मुखम्**) मुख सदृश (**किम्**) क्या (**आसीत्**) होता है, (**बाहू**) बाहू के समान (**कौ**) कौन होते हैं, (**ऊरु**) ऊरु के समान (**का**) कौन और (**पादा**) पैर के समान कौन (**उच्येते**) कहे जाते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जब देवशक्तियां सामाजिक पुरुष की कल्पना करती हैं तो उसे कितने प्रकार की कल्पित करती हैं ? उसके मुख सदृश कौन होता है, बाहुओं के समान कौन होता है, कौन ऊरु के समान होता है और कौन पैर के समान कहा जाता है ॥११॥

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥१२॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस समाज वा सामाजिक पुरुष का (**ब्राह्मणः**) ब्राह्मण (**मुखम्**) मुख के सदृश (**आसीद्**) बनाया गया है (**बाहू**) बाहुएं (**राजन्यः**) क्षत्रिय (**कृतः**) किया गया है, (**यत्**) जो (**अस्य**) इसका (**ऊरु**) ऊरु भाग के सदृश है (**तद्**) वह (**वैश्यः**) वैश्य है (**पद्भ्याम्**) पादस्थानीय सेवा और अभिमान राहित्य से (**शूद्रः**) शूद्र (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—इस समाज में ब्राह्मण का स्थान मुख के सदृश है, क्षत्रिय को गुण कर्म, स्वभाव के अनुसार बाहू बनाया गया है। वैश्य ऊरू के समान है और पद=अर्थात् सेवा और निरभिमानत्व से शूद्र उत्पन्न होता है। यहां पर (कृतः) पद का प्रयोग यह सूचना दे रहा है कि समाज में सभी शूद्रवत् उत्पन्न होते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य आदि गुण, कर्म तथा स्वभाव से बनाए जाते हैं ॥१२॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥१३॥

पदार्थः—यहां पर शरीर और ब्रह्माण्ड की एकता दिखाते हुए कहा गया है—

(**चन्द्रमा**) चन्द्रमा (**मनसः**) मन से (**जातः**) उत्पन्न हुआ है, (**चक्षोः**) नेत्रों से (**सूर्यः**) सूर्य (**अजायत**) उत्पन्न होता है, (**मुखाद्**) मुख से (**इन्द्रः**) इन्द्र (**च**) और अग्नि उत्पन्न होते हैं (**प्राणाद्**) प्राण से (**वायुः**) वायु (**अजायत**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—इस शरीर रूपी पिण्ड में मन चन्द्रमा रूप है, चक्षु सूर्यस्थानी हैं, मुख इन्द्र और अग्नि रूप है और प्राण वायुरूप है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥१४॥

पदार्थः—(**नाभ्या**) नाभि से (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**आसीद्**) होता है, (**शीर्ष्णः**) शिर से (**द्यौः**) द्युलोक (**समवर्तत**) होता है, (**पद्भ्याम्**) पैर से (**भूमिः**) भूमि (**श्रोत्रात्**) श्रोत्र से (**दिशः**) दिशायें और (**तथा**) इस प्रकार (**लोकान्**) अन्य लोकों को (**अकल्पयत्**) बनाया ।

भावार्थः—शरीर पिण्डस्थ नाभी अन्तरिक्ष, शिर द्युलोक, पैर भूमि, श्रोत्र दिशा स्थानीय है । इसी प्रकार अन्य लोक भी बनाए गए हैं ।

सूचना—शरीर और ब्रह्माण्ड में एकता है । समाज का निर्माण इस एकता को जाने विना नहीं हो सकता है । जब ज्ञानी शरीर में ब्रह्माण्ड के ही पदार्थों की स्थिति देखता है और शरीर के अंगों की तरह समाज के अंगों की रक्षा करता है तभी समाज ठीक चलता है ।।१४।।

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

पदार्थः—(**यद्**) जिस (**यज्ञम्**) सृष्टि यज्ञ को (**तन्वानाः**) विस्तारित करते हुए (**देवाः**) सृष्टि के साधन भूत देव (**पशुम्**) देखने वाले द्रष्टा (**पुरुषम्**) पुरुष को (**अबध्नन्**) उसमें बांधते हैं (**अस्य**) इस यज्ञ की (**सप्त**) सात (**परिधयः**) छन्द रूपी परिधियें हैं सात आवरण—समुद्र, त्रसरेणु, मेघ मण्डल, वृष्टिजल, वायु, धनंजय और सूत्रात्मा वायु, (**त्रिः सप्त**) इक्कीस (**समिधः**) समिधायें (**कृताः**) बनाई गई है । सात प्रकृति विकृतियें, पांच तन्मात्रायें, पांचभूत परमेश्वर, जीवात्मा, वेद वाणी और काल ।

यज्ञ की सात परिधियां होती हैं—ऐष्टिक आहवनीय की तीन, उत्तर वेदी की तीन और सातवीं आदित्य है । २१ समिधायें हैं—१२ मास पांच ऋतु, तीन लोक और २१ वीं आदित्य ।

भावार्थः– दिव्य शक्तियां जिस यज्ञ को करते हुए द्रष्टा पुरुष को उसमें भोक्ता रूप में बांधते हैं उसकी सात परिधियें और २१ समिधायें होती हैं ।।१५।।

Scanned by CamScanner

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥१६॥

पदार्थः - (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**यज्ञेन**) संगतिकरण आदि से अथवा अग्नि से (**यज्ञम्**) सृष्टि रूपी यज्ञ को (**अयजन्त**) करते हैं क्योंकि (**तानि**) वे (**धर्माणि**) संसार के धारक बल (**प्रथमानि**) मुख्य (**आसन्**) हैं (**ते ह**) वे ही (**महिमानः**) महान् सामर्थ्य वाले हुए (**नाकम्**) आनन्दस्वरूप परमेश्वर को (**सचन्त**) निमित्त कारण रूप में प्राप्त करते हैं (**यत्र**) जिसमें (**पूर्वे**) पूर्व सृष्टि के (**साध्या**) सृष्टि साधन सम्पन्न (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**सन्ति**) रहते हैं ।

भावार्थः—दिव्य शक्तियें संगतिकरण अथवा अग्नि के माध्यम से सृष्टि रूपी यज्ञ को सम्पन्न करती हैं । क्योंकि वे संसार के धारक बल ही मुख्य बल हैं । वे महिमा को प्राप्त करते हुए परमेश्वर को निमित कारण के रूप में प्राप्त करते हैं जिस परमेश्वर में ही पूर्व कल्प के सृष्टि साधन सम्पन्न दिव्य शक्तियें रहती हैं ॥१६॥

यह दशम मण्डल में नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९१

ऋषिः— १ — १५ अरुणो वैतहव्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः १, ३, ६ निचृज्जगती । २, ४, ५, ७, ९, १०, १३ विराड्जगती । ८, ११ पादनिचृज्जगती । १२, १४ जगती । १५ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः— १ — १४ निषादः । १५ धैवतः ॥

सं जागृवद्भिर्जरमाण इध्यते दमे दमूना इषयन्निळस्पदे ।
विश्वस्य होता हविषो वरेण्यो विभुर्विभावा सुषखा सखीयते ॥१॥

पदार्थः—(**जागृवद्भिः**) जागरूक यज्ञकर्ताओं से (**जरमाणः**) प्रशंसा किया जाता हुआ (**दमूनाः**) देने हारा (**इळः**) पृथिवी की (**पदे**) स्थान में (**इषयन्**) अन्न आदि को हवि रूप में ग्रहण करता हुआ, (**विश्वस्य**) सब (**हविषः**) हवि को (**होता**) ग्रहण करने वाला (**वरेण्यः**) उत्तम (**विभुः**)

Scanned by CamScanner

व्यापक (विभावा) दीप्तिमान् (सुसखा) सुमित्र यह अग्नि (सखीयते) सखित्व चाहने वाले यजमान के लिए (दभे) गृह में (सम् इध्यते) प्रज्वलित किया जाता है ।

भावार्थः—जागरूक यज्ञकर्ता लोगों के द्वारा प्रशंसा किया जाता हुआ अन्न आदि पदार्थों का दाता उत्तर वेदि में अन्न आदि हवि को ग्रहण करता हुआ, समस्त हवियों का खाने वाला, उत्तम, व्यापक, दीप्तिमान और यजमान का सुमित्र यह अग्नि सखित्व चाहने वाले यजमान के लिए गृह में प्रज्वलित किया जाता है ॥१॥

स दर्शतश्रीरतिथिर्गृहेगृहे वनेवने शिश्रिये तक्ववीरिव ।
जनंजनं जन्यो नाति मन्यते विश आ क्षेति विश्यो३ विशंविशम् ॥२॥

पदार्थः—(दर्शतश्रीः) दर्शनीय विभूति, (अतिथिः) आदर का पात्र (सः) वह अग्नि (गृहे गृहे) प्रत्येक गृहस्थ के घर में, (वने वने) प्रत्येक वन में (शिश्रिये) आश्रय पाता है, (जन्यः) जनों का हितकारी, वह अग्नि (जनम्-जनम्) सब जनों के पास (तक्ववीः इव) जाने वाले के समान (न अति मन्यते) तिरस्कार नहीं करता है, (विश्यः) प्रजाओं का हितकारी वह (विशः) प्रजाओं में (आक्षेति) जाता है (विशम् विशम्) प्रत्येक प्रजा में स्थित होता है ।

भावार्थः—दर्शनीय विभूति वाला, आदर का पात्र वह अग्नि गृहस्थ के घर घर में, प्रत्येक वन में आश्रय पाता है । सबके पास जाने वाले के समान वह अग्नि किसी को तिरस्कृत नहीं करता है । सभी उसमें यज्ञ कर सकते हैं । वह प्रजाओं का हितकारी प्रजा जनों को प्राप्त होता है और प्रत्येक मनुष्य में स्थित होता है ॥२॥

सुदक्षो दक्षैः क्रतुनासि सुक्रतुरग्ने कविः काव्येनासि विश्ववित् ।
वसुर्वसूनां क्षयसि त्वमेक इद् द्यावा च यानि पृथिवी च पुष्यतः ॥३॥

पदार्थः—(अग्ने) यह अग्नि (दक्षैः) बलों से (सुदक्षः) उत्तम बल वाला, (क्रतुना) कर्म से (सुक्रतुः) उत्तम कर्म वाला (काव्येन) क्रान्तदर्शन से (कविः) क्रान्त दर्शन, तथा (विश्ववित्) समस्त विश्व में रहने वाला (असि) है, वह (वसूनाम्) वसुओं में (वसु) वासयिता है (त्वम्) यह (एक इत्) एक ही (क्षयसि) निवास करता है (च) और (द्यावा) द्युलोक (च) और

Scanned by CamScanner

(पृथिवी) पृथिवी (यानि) जिन धनों को (पुष्यतः) बढ़ाते हैं उनका भी धारक है ।

भावार्थः—यह अग्नि बलों से उत्तम बल वाला कर्म से उत्तमकर्मा कान्तदृष्टि से क्रान्त दर्शन तथा समस्त पदार्थों में रहने वाला है । वह समस्त वसुओं में वासयिता है और अकेला पदार्थों में निवास करता है । वह दिव्य और पार्थिव दोनों प्रकार के धनों का दाता है ॥३॥

प्रजानन्नग्ने तव योनिमृत्वियमिळायास्पदे घृतवन्तमासदः ।
आ ते चिकित्र उषसामिवेतयोऽरेपसः सूर्यस्येव रश्मयः ॥४॥

पदार्थः—(अग्ने) यह अग्नि (ऋत्वियम्) ऋतुओं के अनुसार होने वाले (घृतवन्तम्) घृत से युक्त (तव) इसके (योनिम्) निवास स्थान (इलायाः) पृथिवी के (पदे) स्थान [उत्तरवेदि] में (प्रजानन्) प्राप्त करता हुआ (आसदः) स्थित होता है, (ते) इस अग्नि की (रश्मयः) रश्मियें (उषसाम्) उषाओं के (एतयः) प्रज्ञापक किरणों के समान (सूर्यस्य) सूर्य की (अरेपसः) विशुद्ध (रश्मयः) रश्मियों के समान (आ चिकित्रे) ज्ञात होती है ।

भावार्थः—यह अग्नि ऋतु ऋतु में होने वाले घृत युक्त अपने निवास स्थान उत्तरवेदि को प्राप्त होता हुआ स्थित होता है । इसकी रश्मियां उषा की प्रज्ञापक किरणों की भांति तथा सूर्य की विशुद्ध रश्मियों की भांति स्पष्ट ज्ञात होती हैं ॥४॥

तव श्रियो वर्ष्यस्येव विद्युतश्चित्राश्चिकित्र उषसां न केतवः ।
यदोषधीरभिसृष्टो वनानि च परि स्वयं चिनुषे अन्नमास्ये ॥५॥

पदार्थः—(तव) इस अग्नि के (श्रियः) रश्मि सम्बन्धी विभूतियां (वर्ष्यस्य) वर्षणशील मेघ की (विद्युतः) विद्युतों के समान तथा (उषसाम्) उषाओं के (केतवः) प्रज्ञापक प्रकाशों के (न) समान (चित्राः) विचित्र (चिकित्रे) ज्ञात होती हैं । (यद्) जब यह (ओषधीः) ओषधियों (च) और (वनानि) अरण्यों में (अभिसृष्टः) जलाने के लिए छोड़ा हुआ (स्वयम्) स्वयं ही (अन्नम्) अदनीय वस्तु को (आस्ये) ज्वाला रूपी मुख में (परि चिनुषे) ग्रहण कर लेता है ।

भावार्थः—इस अग्नि की रश्मि विभूतियां वर्षणशील मेघ की विद्युतों

Scanned by CamScanner

के समान तथा उषाओं के प्रज्ञापक प्रकाशों के समान विचित्र ज्ञात होती है। जब यह अग्नि ओषधि और जंगलों को जलाने के लिए छोड़ा गया स्वयं अपने अदनीय पदार्थ को अपने ज्वाला-मुख में ग्रहण करता है ॥५॥

तमोषधीर्दधिरे गर्भमृत्वियं तमापो अग्निं जनयन्त मातरः।
तमित्समानं वनिनश्च वीरुधोऽन्तर्वतीश्च सुवते च विश्वहा ॥६॥

पदार्थः—(**ऋत्वियम्**) ऋतु में प्राप्त होने वाले (**गर्भम्**) गर्भभूत (**तम्**) उस अग्नि को (**ओषधीः**) ओषधियां (**दधिरे**) धारण करती हैं, (**मातरः**) मातृभूत (**आपः**) जलें भी (**तम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्त**) उत्पन्न करते हैं। (**वनिनः**) वनस्पतियें (**च**) भी (**समानम्**) समान रूप से (**तम् इत्**) इसको ही उत्पन्न करती है, (**अन्तःवती**) गर्भवती (**वीरुधः**) लतायें (**च**) भी इस अग्नि को (**विश्वहा**) सदा (**सुवते**) उत्पन्न करती है।

भावार्थ—ऋतुओं में प्राप्त गर्भभूत अग्नि को ओषधियां धारण करती हैं, मातृभूत जलें भी उस अग्नि को उत्पन्न करती हैं, वनस्पतियें भी समान रूप से उस को ही उत्पन्न करती हैं और गर्भवती लतायें भी सदा उस अग्नि को उत्पन्न करती हैं ॥

वातोपधूत इषितो वशाँ अनु तृषु यदन्ना वेविषद्वितिष्ठसे।
आ ते यतन्ते रथ्यो३ यथा पृथक् शर्धांस्यग्ने अजराणि धक्षतः ॥७॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**यत्**) जब (**वातोपधूतः**) वायु से कम्पित किया हुआ (**वशान्**) कान्त वनस्पतियों के (**अनु**) प्रति (**तृषु**) शीघ्र (**इषित**) प्रेरित किया गया (**अन्ना**) अदनीय वनस्पति आदि को (**वेविषत्**) व्याप्त करना हुआ (**वितिष्ठसे**) इधर-उधर जाता है तब (**धक्षतः**) काष्ठों को जलाते हुए (**ते**) इसके (**अजराणि**) जरारहित (**शर्धांसि**) तेज (**रथ्यः यथा**) रथियों की भांति (**पृथक्**) पृथक् (**आयतन्ते**) जाते हैं।

भावार्थः - यह अग्नि जब वायु से कम्पित किया गया उत्तम वनस्पतियों की ओर प्रेरित हुआ वनस्पति आदि अपने खाद्य पदार्थों को व्याप्त कर इधर-उधर बढ़ता है तब काष्ठों को जलाते हुए इस अग्नि के तीव्र स्थायी तेज रथियों की भांति पृथक् विचरते हैं ॥७॥

Scanned by CamScanner

मेधाकारं विदथस्य प्रसाधनमग्निं होतारं परिभूतमं मतिम् ।
तमिदर्भे हविष्या समानमित्तमिन्महे वृणते नान्यं त्वत् ॥८॥

पदार्थः—(मेधाकारम्) मनुष्य के विचार को साधन प्रस्तुत करने वाले, (विदथस्य) यज्ञ के (प्रसाधनम्) प्रसाधन (होतारम्) हवि को ग्रहण करने वाले (परिभूतमम्) सब तेजों को अत्यन्त दबा लेने वाले (मतिम्) ज्ञान के विषय भूत (अग्निम्) अग्नि को हम स्वीकार करते हैं, (तम् इत) उनका ही (अर्भे) थोड़े (हविषि) हूयमान सामग्री के होने पर और (समानम्) समान रूप से (तम् इत) उसको ही (महे) अधिक हूयमान सामग्री के होने पर ऋत्विग् लोग (आवृणते) स्वीकार करते हैं (त्वत) इससे (अन्यम) भिन्न को (न) नहीं ।

भावार्थः—मनुष्य के विचार को साधन प्रस्तुत करने वाले, यज्ञ के साधक, हवि के ग्रहीता, समस्त तेजों को अपने तेज से अभिभूत करने वाले तथा ज्ञान के विषयभूत अग्नि को हम अपने कार्यों में स्वीकार करते हैं। थोड़े हव्य पदार्थों के होने की अवस्था में और अधिक हव्य पदार्थों के होने की अवस्था में भी समान रूप से इस ही अग्नि को ऋत्विग् लोग प्रयोग में लाते हैं, अन्य को नहीं ॥८॥

त्वामिदत्र वृणते त्वायवो होतारमग्ने विदथेषु वेधसः ।
यद्देवयन्तो दधति प्रयांसि ते हविष्मन्तो मनवो वृक्तबर्हिषः ॥९॥

पदार्थः—(त्वाम मत) इस ही (होतारम्) होता (अग्ने) अग्नि को (त्वायवः) इसको चाहने वाले (वेधसः) ऋत्विग् लोग (विदथेषु) यज्ञों में (अत्र) इस लोक में (वृणते) ग्रहण करते हैं, (यत्) जब (देवयन्तः) देवों के निमित्त यज्ञ करने की इच्छा करते हुए (वृक्तर्बाहिषः) कुशाओं को काटकर बिछाये हुए (हविष्मन्तः) हवियों को तैयार करके लिए हुए, (मनवः) मननशील, ऋत्विग् लोग (ते) इस अग्नि के लिए (प्रयासि) अन्न आदि हवियों को (दधति) प्रदान करते हैं।

भावार्थः – इस ही होता अग्नि को ऋत्विग्जन इस संसार में यज्ञों में स्वीकार करते हैं। देव यज्ञार्थ कुशायें आदि वेदी पर बिछाकर हवियों को लिए हुए मननशील ऋत्विग्जन इस अग्नि के लिए अन्न आदि हवि प्रदान करते हैं ॥९॥

Scanned by CamScanner

तवाग्ने होत्रं तव पोत्रमृत्वियं तव नेष्ट्रं त्वमग्निदृतायतः ।
तव प्रशास्त्रं त्वमध्वरीयसि ब्रह्मा चासि गृहपतिश्च नो दमे ॥१०॥

पदार्थः—(**अग्ने तव**) इस अग्नि का (**होत्रम्**) होता का कार्य है, (**तव**) इसका ही (**ऋत्वियम्**) प्राप्त काल के अनुसार (**पोत्रम्**) पोता का कार्य है, (**तव**) इसका ही (**नेष्ट्रम्**) नेष्ट्रा का कार्य है, (**त्वम्**) यह ही (**अग्नित्**) आग्नीध्र है (**ऋतायतः**) यजमान का, (**तव**) इसका ही (**प्रशास्त्रम्**) प्रशास्ता का कार्य है, (**त्वम्**) यह (**अध्वरीयसि**) अध्वर्यु का कार्य करता है, (**च**) और (**ब्रह्मा**) ब्रह्मा भी (**असि**) है (**च**) और (**नः**) हमारे (**दमे**) गृह में (**गृहपतिः**) यजमान भी है ।

भावार्थ—यह अग्नि होता, पोता, नेष्टा, आग्नीध्र, प्रशास्ता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और यजमान का कार्य करने वाला है। अर्थात् बहुत ही महत्व-पूर्ण है ॥१०॥

यस्तुभ्यमग्ने अमृताय मर्त्यः समिधा दाशदुत वा हविष्कृति ।
तस्य होता भवसि यासि दूत्य१मुप ब्रूषे यजस्यध्वरीयसि ॥११॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**मर्त्यः**) मनुष्य (**हविष्कृतिः**) यज्ञ में (**तुभ्यम् अग्ने**) इस अग्नि के लिए (**समिधा**) समिधायें (**दाशति**) प्रदान करता है (**उत वा**) अथवा (**हविः**) हवि डालता है, (**तस्य**) उसका यह (**होता**) होता (**असि**) होता है (**दूतम्**) दूतकर्म करने को (**यासि**) जाता है, (**उपब्रूषे**) प्रकट करता है (**यजसि**) हवि प्रदान करता है और (**अध्वरीयसि**) अध्वर्यु के कार्य को करता है ।

भावार्थः—जो मनुष्य यज्ञ में इस अग्निके लिए समिधा और हवि आदि प्रदान करता है उसका यह अग्नि होता होता है और अन्य देवों के प्रति हवि ले जाने का दूतकर्म भी करता है। यह हवि जिस देव की है उसे प्रदान करके ब्रह्मत्व का कार्य करता है और हुत को देवों को पहुँचाकर यजमान का कार्य करता है तथा इस प्रकार यज्ञ को सम्पन्न करके अध्वर्यु का कार्य करता है ॥११॥

इमा अस्मै मतयो वाचो अस्मदाँ ऋचो गिरः सुष्टुतयः समग्मत ।
वसूयवो वसवे जातवेदसे वृद्धासु चिद्वर्धनो यासु चाकनत् ॥१२॥

पदार्थ—(**वृद्धासु**) गुणों और ज्ञानों से प्रवृद्ध (**यासु**) जिन के आश्रय पर (**वर्धनः चित्**) सबको बढ़ाने वाला प्रभु (**चाकनत्**) उपासकों को चाहता है, (**इमाः**) ये (**मतयः**) बुद्धियें, (**इमाः वाचः**) ये वाणियां, (**इमा ऋचः**) ये ऋचायें (**इमा सुष्टुतयः गिरः**) ये उत्तम स्तुतियुक्त वचन (**वसूयवः**) हमारे लिए धनदा होने वाली होकर (**अस्मत्**) हमारी तरफ से (**वसवे**) सबको निवास देने वाले (**जातवेदसे**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान अग्नि अथवा सर्वज्ञ परमेश्वर को (**समग्मत**) प्राप्त होती हैं।

भावार्थः—ज्ञान में बढ़ी हुई जिन बुद्धियों आदि के आधार पर सब को बढ़ाने वाला भगवान् उपासकों को चाहता है वे ये बुद्धियें, वाणियां, ऋचायें, स्तुतियां हमारे लिए धनदात्री होकर पास से सर्वज्ञ और सब निवास देने वाले उस प्रभु को प्राप्त होती हैं ॥१२॥

इमां प्रत्नाय सुष्टुतिं नवीयसीं वोचेयमस्मा उशते शृणोतु नः ।
भूया अन्तरा हृद्यस्य निस्पृशे जायेव पत्य उशती सुवासाः ॥१३॥

पदार्थः—मैं (**अस्मै**) इस (**प्रत्नाय**) सनातन (**उशते**) सबका प्रिय चाहने वाले प्रभु के लिए (**इमाम्**) इन (**नवीयसीम्**) सदा नवी (**सुस्तुतिम्**) उत्तम स्तुति को (**वोचेयम्**) बोलूँ, वह प्रभु (**नः**) हमें सुने (**पत्ये**) पति को (**उशते**) चाहती हुई (**सुवासाः**) उत्तम वस्त्रों को पहने हुए (**जाया इव**) जाया के समान (**अस्य**) इस प्रभु के (**हृदि अन्तरा**) हृदय में (**निःस्पृशे**) स्पर्श करने के लिए (**भूयाः**) होऊँ।

भावार्थः—मैं इस सनातन और सब का प्रिय चाहने वाले प्रभु के प्रति इस सदा नवीन रहने वाली उत्तम स्तुति को बोलूं। जिस प्रकार सुन्दर वस्त्रों में सजी अपने पति को चाहने वाली स्त्री उसे प्राप्त होती है उसी प्रकार इस प्रभु के हृदय में पहुंचने वाला होऊँ ॥१३॥

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥१४॥

पदार्थः—(**यस्मिन्**) जिस परमेश्वर अथवा अग्नि के (**अधि**) नियन्त्रण में (**अवसृष्टाः**) उत्पन्न किये गए (**अश्वासः**) घोड़े, किरण आदि पदार्थ (**ऋषभासः**) शक्तिशाली बैल और मेघ आदि, (**उक्षणः**) सूर्य आदि, (**वशा**) गौ,

पृथिवी आदि, (मेषाः) मेष, बकरी आदि (आहुताः) प्रलय काल में पुनः अपने कारणों में वापस बुला लिए जाते हैं (कीलालपे) जल के रक्षक, सोम (सोमपृष्ठाय) जगत् के धारण करने वाले (वेधसे) मेधावी अथवा विधाता (अग्नये) स्वयं प्रकाश परमेश्वर अथवा अग्नि की स्तुति में अथवा प्रशंसा में (हृदा) हृदय से (चारुम्) सुन्दर (मतिम्) स्तुति वा प्रशंसा वाणी को मैं मनुष्य (जनये) संपन्न करता हूं ।

भावार्थः—जिस परमेश्वर के नियन्त्रण में उत्पन्न किए गए घोड़े, किरण आदि, शक्तिशाली बैल, मेघ आदि सूर्य आदि, गौ, पृथिवी आदि और भेड़ बकरी आदि पदार्थ प्रलय के समय में पुनः अपने कारणों से बुला लिए अथवा लीन कर लिए जाते हैं उस जल के रक्षक, जगत् के धारक, विधाता परमेश्वर की मैं हृदय से सुन्दर स्तुति करता हूं ॥१४॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिं रयिमस्मे सुवीरं प्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥१५॥

पदार्थ—(**अग्ने ते**) इस अग्नि के (**आस्ये**) ज्वालामय मुख में (**स्रुचि**) स्रुवा में (**घृतम् इव**) घी की भांति (**चम्वि**) चमस में (**सोमः इव**) सोम की भांति (**हविः**) पुरोडाश आदि हम लोगों से (**अहावि**) डाली जाती है। यह अग्नि (**अस्मे**) हमें (**वाजसनिम्**) अन्न से युक्त, (**सुवीरम्**) उत्तम सन्तानों वाली, (**प्रशस्तम्**) प्रशस्त (**यशसम्**) यशस्कर (**बृहन्तम्**) अपरिमित (**रयिम्**) धन को (**धेहि**) देता है ।

भावार्थः—इस अग्नि के ज्वालामय मुख में स्रुवा में घी के समान और चमस् में सोम के समान पुरोडाश आदि हवि को हम डालते हैं। यह हमें अन्नयुक्त, उत्तम सन्तति से युक्त, प्रशस्त, अपरिमित, यशस्कर धन को प्रदान करता है ॥१५॥

यह दशम मण्डल में इक्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—९२

ऋषिः—१—१५ शार्यातो मानवः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ६, १२, १४ निचृज्जगती । २, ५, ८, १०, ११,१५ जगती । ३, ४, ६, १३ विराड्जगती । ७ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

यज्ञस्य वो रथ्यं विश्पतिं विशां होतारमक्तोरतिथिं विभावसुम् ।
शोचञ्छुष्कासु हरिणीषु जर्भुरद्वृषा केतुर्यजतो द्यामशायत ॥१॥

पदार्थः—(वः) इन समस्त देवों=दिव्यशक्तियों का अन्यतम (यज्ञस्य) यज्ञ के (रथ्यम्) वाहक (विशाम्) प्रजाओं के (विश्पतिम्) पालक (होतारम्) होता (अक्तोः) रात्रि (अतिथिम्) अतिथिभूत और (विभावसुम्) विविध दीप्तियों के धनो इस अग्नि को हम प्रयोग में लाते हैं। (शुष्कासु) सूखी हुई ओषधियों में (शोचन्) जलता हुआ तथा (हरिणीषु) हरी-भरी ओषधियों में (जर्भुरत्) पुष्टि देता हुआ, (वृषा) वर्षा का हेतु (केतुः) प्रज्ञापक (यजतः) यष्टव्य यह अग्नि (द्याम्) द्युलोक में (अशायत) व्यापक है।

भावार्थः—समस्त दिव्य शक्तियों में एक, प्रजाओं के पालक यज्ञ के वाहक, रात्रि के अतिथिभूत और विविध दीप्तियों से युक्त इस अग्नि को हम प्रयोग में लाते हैं। शुष्क ओषधियों को जलाता हुआ और हरी-भरी को पुष्टि देता हुआ, वर्षा का कारण, प्रकाश का केतु और यष्टव्य अग्नि द्युलोक में व्यापक हो रहा है ॥१॥

इममञ्जस्पामुभये अकृण्वत धर्माणमग्निं विदथस्य साधनम् ।
अक्तुं न यह्वमुषसः पुरोहितं तनूनपातमरुषस्य निंसते ॥२॥

पदार्थः—(उभये) देव और मनुष्य दोनों (अञ्जः पाम्) अनायास रक्षक, (धर्माणम्) धारण (इमम्) इस (अग्निम्) अग्नि को (विदथस्य) यज्ञका (साधनम्) साधन वा साधक (अकृण्वत) बनाते हैं, (अरुषस्य) आरोचमान वायु के (तनूनपातम्) पुत्र, (यह्वम्) महान् (पुरोहितम्) सभी पदार्थों के पूर्व विद्यमान (उषसः) उषा के (अक्तुम्) अभिरञ्जक आदित्य के (न) समान इस अग्नि का (निंसते) आश्रय लेते हैं।

भावार्थः—जगत् की दिव्यशक्तियें और मनुष्य लोग दोनों ही अना-

Scanned by CamScanner

यासरक्षक, धारक इस अग्नि को यज्ञ का साधन—माध्यम बनाते हैं। आरोचमान वायु का पुत्र महान्, सब पदार्थों का पूर्ववर्ती उषा के प्रकट करने वाले आदित्य के समान इस अग्नि का आश्रय लेते हैं ॥२॥

बळस्य नीथा वि पणेश्च मन्महे वया अस्य प्रहुता आसुरत्तवे ।
यदा घोरासो अमृतत्वमाशतादिज्जनस्य दैव्यस्य चर्किरन् ॥३॥

पदार्थः—(**विपणेः**) विविध व्यवहारों के योग्य, (**अस्य**) इस अग्नि के (**नीथा**) सम्बन्धी वाणियां (**बट्**) सत्य हों ऐसा (**मन्महे**) मैं ज्ञानी चाहता हूं (**च**) और (**अस्य**) इस अग्नि की (**वयाः**) गतियां (**अत्तवे**) लोकों एवम् पदार्थों के ग्रहण के लिए (**प्रहुताः**) लगी वा संलग्न (**आसुः**) रहें । (**यदा**) जब (**घोरासः**) घोर ज्वालायें (**अमृतत्त्वम्**) अविनाशित्व को (**आशत**) प्राप्त होती हैं (**आत् इत्**) तब (**दैव्यस्य**) देवों में होने वाले (**जनस्य**) प्रकाश के जनक इस अग्नि के लिए लोग आहुतियों को (**चर्किरन्**) उसमें डालें ।

भावार्थः—विविध व्यवहारों में लाने योग्य इस अग्नि के सम्बन्ध में कही जाने वाली वाणियां सत्य हों, यही मुझ ज्ञानी की कामना है । तथा इस अग्नि की विविध गतियाँ लोकों और पदार्थों के धारण में संलग्न रहें । जब घोर ज्वालायें स्थिरता को प्राप्त होती हैं तब इस देवों में होने वाले अग्नि के लिए लोग आहुतियाँ डालें ॥३॥

ऋतस्य हि प्रसितिर्द्यौरुरु व्यचो नमो मह्यऽरमतिः पनीयसी ।
इन्द्रो मित्रो वरुणः सं चिकित्रिरेऽथो भगः सविता पूतदक्षसः ॥४॥

पदार्थः—(**ऋतस्य**) सृष्टि के शाश्वत नियम का (**प्रसितिः**) विस्तार (**हि**) निश्चय (**द्यौः**) द्युलोक, (**उरु**) महान् (**व्यचः**) अन्तरिक्ष, (**अरमतिः**) पर्यन्तरहित (**पनीयसी**)प्रशस्यतमा (**मही**) पृथिवी (**नमः**) अग्नि वा प्रकाश हैं, (**इन्द्रः**) विद्युत्, (**मित्रः**) उदान, (**वरुणः**) प्राण (**अथो**) और (**भगः**) वायु, तथा (**सविता**) सूर्य आदि (**पूतदक्षसः**) शुद्ध पवित्र बल वाले इस नियम का (**संचिकित्रिरे**) ज्ञान कराते हैं ।

भावार्थः—सृष्टि के शाश्वत नियम के ही विस्तार यह द्युलोक, महान् अन्तरिक्ष, पर्यन्तरहित पृथिवी और अग्नि हैं । विद्युत्, उदान, प्राण, वायु सूर्य आदि पवित्र शुद्ध बल वाले इस नियम का ज्ञान कराते हैं ॥४॥

Scanned by CamScanner

प्र रुद्रेण ययिना यन्ति सिन्धवस्तिरो महीमरमतिं दधन्विरे ।
येभिः परिज्मा परियन्नुरु ज्रयो वि रोरुवज्जठरे विश्वमुक्षते ॥५॥

पदार्थः—(सिन्धवः) स्यन्दनशीला जल धारायें (ययिना) गतिमय (रुद्रेण) मरुद् गण के साथ (अरमतिम्) पात्र रहित (महीम) पृथिवी को (तिरः दधन्विरे) आच्छादित करती हैं, (येभिः) जिनके द्वारा (परिज्मा) सब तरफ जाने वाला वायु (परियन्) चारों तरफ जाता हुआ (उरु) बहुत (ज्रयः) वेग करता हैं, और (जठरे) अन्तरिक्ष में (रोरुवत्) गर्जता हुआ पर्जन्य (विश्वम्) समस्त भुवन को (उक्षते) सींचता है ।

भावार्थः—स्यन्दनशील जलधारायें गतिमय मरुद्गण के साथप्रान्त-रहित पृथिवी को आच्छादित करती हैं । जिन मरुद्गणों के साथ सब तरफ जाने वाला वायु चलता हुआ बहुत वेग धारण करता है और अन्तरिक्ष में गर्जता हुआ पर्जन्य समस्त भुवन को वृष्टि से सींचता है ॥५॥

क्राणा रुद्रा मरुतो विश्वकृष्टयो दिवः श्येनासो असुरस्य नीळयः ।
तेभिश्चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमेन्द्रो देवेभिरर्वशेभिरर्वशः ॥६॥

पदार्थ—(असुरस्य) मेघ के (नीडयः) आवास भूत (दिवः) अन्तरिक्ष के (श्येनासः) गतिशील (विश्वकृष्टयः) मनुष्यों को न्याय करने वाले (रुद्राः) रुद्र से उत्पन्न ये (मरुतः) मरुत् लोग (क्राणाः) अपने कार्य को करते हुए विद्यमान हैं (तेभिः) उनके साथ (अर्वशेभिः) गतिवाले (देवेभिः) देवों के साथ (अर्वशः) गतिमान् (इन्द्रः) वायु (चष्टे) देखा जाता है उन्हीं के साथ (वरुणः) अपस्तत्व, (मित्रः) अग्नि और (अर्यमा) सूर्य (चष्टे) देखे जाते हैं ।

भावार्थः--मेघ के आवासभूत, अन्तरिक्ष लोक के गतिशील तत्त्व रुद्र से उत्पन्न ये मरुत् लोग अपने कार्य में लगे रहते हैं । इनके साथ, गतिशील अन्य दिव्य तत्त्वों के साथ गतिमान् वायु देखा जाता है और इन्हीं के साथ अपस्तत्त्व अग्नि और सूर्य देखे जाते हैं ॥६॥

इन्द्रे भुजं शशमानास आशत सूरो दृशीके वृषणश्च पौंस्ये ।
प्र ये न्वस्याहणा ततक्षिरे युजं वज्रं नृषदनेषु कारवः ॥७॥

पदार्थः – (शशमानासः) स्तुति करने वाले (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् प्रभु के आश्रय (भुजम्) रक्षा को (आशत) प्राप्त करते हैं क्योंकि (दृशीके) देखने में

Scanned by CamScanner

(सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी (पौंस्ये) बल में (वृषणः) मेघ के समान सुख आदि की वर्षा करने वाला है (ये) जो (कारवः) यजमान और ऋत्विज् लोग (अर्हणा नु) अर्चना द्वारा (अस्य) इस प्रभु की (प्र ततक्षिरे) स्तुति करते हैं (नृ संदनेषु) यज्ञों में (युजम्) साहाय्यकारी (वज्रम्) वज्रवत् अमोघ प्रभुबल को प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—स्तुति करने वाले ऐश्वर्यवान् प्रभु के आश्रय रक्षा को प्राप्त करते हैं। प्रभु देखने में सूर्य-सम तेजस्वी और बल में मेघ के समान सुख आदि वर्षा करने वाला है। जो यजमान और ऋत्विग्जन अर्चना द्वारा इस प्रभु की स्तुति करते हैं वे यज्ञों में साहाय्यकारी प्रभु बल को प्राप्त करते हैं ॥७॥

सूरश्चिदा हरितो अस्य रीरमदिन्द्रादा कश्चिद्भयते तवीयसः ।
भीमस्य वृष्णो जठरादभिश्वसो दिवेदिवे सहुरिः स्तन्नबाधितः ॥८॥

पदार्थः—(अस्य) इस परमेश्वर की आज्ञा और भय में (सूरः) सूर्य (चित्) भी (हरितः) किरणों को (आ) चारों तरफ प्रेरित करता है, और (आ रीरमत्) सभी जगत् को आनन्दित करता है (यः) जो (कः चिद्) कोई भी विश्व में है वह (तवीयसः) शक्तिशाली (इन्द्रात्) परमेश्वर के भय से (बिभेति) भयभीत होता है और (वृष्णः) कामों की वर्षा करने वाले (भीमस्य) भयंकर परमेश्वर के (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अभिश्वसः) वायुरूपी श्वास को लेते हुए (जठरात्) अन्तरिक्ष से (सुहुरिः) सबको पराजित करने वाला मेघ (अबाधितः) बाधा रहित हुआ (स्तन्) गर्जता है ।

भावार्थः—इस परमेश्वर की आज्ञा और भय से ही सूर्य अपनी किरणों को बिखेरता, तपता और जगत् को आनन्दित करता है। संसार में जो भी अग्नि आदि पदार्थ हैं परमेश्वर के भय से भीत होते हैं। कामनाओं की वर्षा करने वाले भयंकर परमेश्वर प्रतिदिन वायुरूपी श्वास को लेते हुए अन्तरिक्ष से शक्तिशाली मेघ निर्बाध गरजता है ॥८॥

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसा दिदिष्टन ।
येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥९॥

पदार्थः—(येभिः) जिन (एवयावभिः) वेगात्मक शक्तिशाली पदार्थों

सहित (स्ववान्) स्वयं शक्तिशाली, (शिवः) कल्याण कारी (स्वयशाः) स्वयं यशस्वी राजा (निकाममभिः) नितराम् कान्तियुक्त पदार्थों (दिवः) दिव्य वस्तुओं को (सिषक्ति) प्रदान करता है, हे लोगो ! (अद्य) आज उन्हीं शक्तियों से युक्त (रुद्राय) भयंकर (शिक्वसे) शक्तिशालो (क्षयद्वीराय) वीरों को नष्ट करने वाले को (नमसा) नमन के साथ (स्तोमम्) प्रशंसा वचन (दिदिष्टन) प्रयुक्त करो ।

भावार्थः -जिन वेगात्मक शक्तिशाली, पदार्थों सहित, स्वयं शक्तिशाली ,कल्याणकारी, स्वयं यशस्वी राजा कान्ति युक्त पदार्थों से दिव्य वस्तुओं को प्रजा को देता है उन्हीं शक्तियों और पदार्थों से युक्त उस भयंकर शक्तिशाली और शत्रुओं के वीरों को नष्ट करने वाले की नमन के साथ प्रशंसा करो ॥९॥

ते हि प्रजाया अभरन्त वि श्रवो बृहस्पतिर्वृषभः सोमजामयः ।
यज्ञैरथर्वा प्रथमो वि धारयद्देवा दक्षैर्भृगवः सं चिकित्रिरे ॥१०॥

पदार्थः—(हि) यतः (वृषभः) कामों की वर्षा करने वाला (बृहस्पतिः) वायु (सोमजामयः) सोमतत्व के साथी (ते) वे (देवाः) विश्वेदेव लोग (प्रजायाः) प्रजा के लिए (श्रवः) अन्न को (वि अभरन्त) वृष्टि आदि के द्वारा पुष्ट करते हैं अतः (अथर्वा) विद्वान् याज्ञिक (प्रथमः) प्रथम (यज्ञैः) यज्ञों से (विधारयत्) मार्ग स्थापित करता है। (भृगवः) तपस्वी लोग (दक्षैः) बलों द्वारा यज्ञों को (संचिकित्रिरे) ज्ञात करते हैं ।

भावार्थः—यतः कामों की वर्षा करने वाला वायु और सोमत्व के साथी विश्वेदेव प्रजा के लिए वृष्टि आदि के द्वारा अन्न को संपुष्ट करते हैं अतः विद्वान् याज्ञिक प्रथम यज्ञों द्वारा ही मार्ग स्थापित करता है और तपस्वी लोग आत्मज्ञान के बलों से इन यज्ञों को ज्ञात करते हैं ॥१०॥

ते हि द्यावापृथिवी भूरिरेतसा नराशंसश्चतुरङ्गो यमोऽदितिः ।
देवस्त्वष्टा द्रविणोदा ऋभुक्षणः प्र रोदसी मरुतो विष्णुरर्हिरे ॥११॥

पदार्थः (भूरिरेतसा) बहुत जलों वाले, (द्यावा पृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक, (यमः) वायु, (अदितिः) उषा (त्वष्टा देवः) सूर्य देव, (द्रविणोदाः) धन आदि का दाता अग्नि, (ऋभुक्षणः) प्रकाशकिरणें, (रोदसी) रुद्र

Scanned by CamScanner

की पत्नी=शक्ति (मरुतः) मरुत् लोग तथा (विष्णुः) आदित्य आदि (ते) वे देव लोग (चतुरंगः) चारों अग्नियों से युक्त (नराशंसः) यज्ञ में (प्र अहिरे) यथायोग्य स्थान दिए जाते हैं।

भावार्थः—बहुत जलों से युक्त द्यु और पृथिवी लोक वायु, उषा, सूर्य देव, अग्नि, प्रकाश किरणें, रुद्राणी जो रुद्र की पत्नी है वह, मरुत् गण और आदित्य आदि देव चारों प्रकार की अग्नियों से युक्त नाराशंस=यज्ञ में यथायोग्य स्थान दिए जाते हैं ।।११।।

उत स्य न उशिजामुर्विया कविरहिः शृणोतु बुध्न्यो३ हवीमनि ।
सूर्यामासा विचरन्ता दिविक्षिता धिया शमीनहुषी अस्य बोधतम् ।।१२

पदार्थः—(उत) और (नः) हम (उशिजाम्) ऋत्विजों की (उर्विया) महती प्रशंसा उक्ति को (स्यः) यह (कविः) क्रान्तदर्शन (अहिः बुध्न्यः) अन्तरिक्षस्थ अग्नि (हवीमनि) यज्ञ में (शृणोतु) सुनाने का साधन बने (दिवि-क्षिता) आकाश में रहने वाले (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्रमा (विचरन्ता) विचरते हुए (धिया) अपने कर्म से (बोधतम्) सबके लिए अपने ज्ञान का साधन बने तथा (शमीनहुषी) पृथिवी और द्यु (अस्य) इसके बोध का साधन बनें ।

भावार्थः - हम ऋत्विजों की प्रशंसा उक्ति को अन्तरिक्षस्थ अग्नि यज्ञ में सबको सुनाने का साधन बनें । आकाशस्थ सूर्य और चन्द्रमा तथा पृथिवी द्युलोक सबके लिए इसके बोध का साधन बनें ।।१२।।

प्र नः पूषा चरथं विश्वदेव्योऽपां नपादवतु वायुरिष्टये ।
आत्मानं वस्यो अभि वातमर्चत तदश्विना सुहवा यामनि श्रुतम् ।।१३।।

पदार्थः—(पूषा) विश्व की पोषणशक्ति (नः) हमारे (चरथम्) जंगम की (प्र अवतु) रक्षा करे, (विश्वदेवाः) सभी देवों का हितकारी (अपाम्-नपात्) जलों को न नष्ट होने देने वाला (वायुः) वायु (इष्टये) यज्ञ सिद्धि के लिए (प्रावतु) रक्षा करे (आत्मानम्) सबके आत्माभूत (वातम्) वायु को (वस्यः) प्रशस्त अन्न की प्राप्ति के लिए हे ऋत्विग् लोगो ! (अर्चत) गुण कर्म का कथन करो, (सुहवा) उत्तम प्रशंसा वाले (अश्विना) दिन और रात्रि (यामनि) आकाश मार्ग में (तत्) उस कथन को (श्रुतम्) दूसरों को सुनाने के साधन बनें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जगत् की पोषक शक्ति हमारे चेतन धन की रक्षा करे, समस्त देवों का हितकारक और जल का धारक और रक्षक वायु हमारे इष्ट के लिए हमारी रक्षा करे। हे ऋत्विग् लोग प्रशस्त धन की प्राप्ति के लिए सबके आत्माभूत वायु के गुण कर्म का वर्णन करो और दिन और रात्रि आकाश-मार्ग में हमारे इस कथन को दूसरों तक सुनाने का साधन बने ॥१३॥

विशामासामभयानामधिक्षितं गीर्भिरु स्वयशसं गृणीमसि।
ग्नाभिर्विश्वाभिरदितिमनर्वणमक्तोर्युवानं नृमणा अधा पतिम् ॥१४॥

पदार्थः—(**अभयानाम्**) संसार के भय से रहित (**आसाम्**) इन (**विशाम्**) मनुष्यों के (**अधिक्षितम्**) अन्दर निवास करने वाले (**स्वयशसम् उ**) स्वयं यशस्वी अग्नि का (**गीर्भिः**) वेद वाणियों से (**गृणीमसि**) गुणगान करते हैं, (**विश्वाभिः**) समस्त (**ग्नाभिः**) देव पत्नियों=अर्थात् देवों में निहित शक्तियों से युक्त (**अनर्वणम्**) अदीन (**अदितिम्**) देवों की माता प्रकृति का वर्णन करते हैं, (**अक्तोः**) रात्रि को (**युवानम्**) अपने तेज से मिश्रित करने वाले चन्द्रमा का, (**नृमणाः**) जो आदित्य है उसका (**अध**) और (**पतिम्**) सबके पालक इन्द्र का वर्णन करते हैं।

भावार्थः—भयरहित इन मनुष्यों के अन्दर विद्यमान स्वयं यशस्वी अग्नि का हम वेदवाणियों से वर्णन करते हैं, समस्त देवों की शक्तियों से युक्त अदीन प्रकृति, रात्रि को तेजोयुक्त करने वाले चन्द्र, आदित्य और इन्द्र=वायु का हम वर्णन करते हैं ॥१४॥

रेभदत्र जनुषा पूर्वो अङ्गिरा ग्रावाण ऊर्ध्वा अभि चक्षुरध्वरम्।
येभिर्विहाया अभवद्विचक्षणः पाथः सुमेकं स्वधितिर्वनन्वति ॥१५॥

पदार्थः—(**अत्र**) इस संसार में (**पूर्वः**) पूर्ण (**अङ्गिराः**) इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रमने वाला प्रभु (**जनुषा**) जगत् की उत्पत्ति के द्वारा (**रेभत्**) उपदेश करता है (**ऊर्ध्वा**) शीर्षस्थ (**ग्रावाणः**) विद्वज्जन (**अध्वरम्**) उस अविनाशी प्रभु का (**अभिचक्षुः**) साक्षात्कार करते हैं, (**विचक्षणः**) विश्व का द्रष्टा वह (**विहायाः**) आकाशवत् व्यापक (**अभवत्**) है, (**स्वधितिः**) अपने सामर्थ्य से जगत् को धारण करने वाला परमेश्वर (**येभिः**) जिन विद्वानों के द्वारा देखा

Scanned by CamScanner

जाता है उनसे युक्त प्राणीसमुदाय के हितार्थ (**सुमेकम**) उत्तम, (**पाथः**) पालनकारी जल को (**वनन्वति**) वृष्टि के मार्ग में प्रेरित करता है ।

भावार्थः—इस संसार में पूर्ण और इसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में विद्यमान प्रभु संसार की उत्पत्ति के द्वारा लोगों को अपने गुण कर्म स्वभाव और जीवों के उद्देश्य का उपदेश करता है। उच्च कोटि के विद्वान् उसका साक्षात् करते हैं। वह परमेश्वर समस्त विश्व के प्राणीसमुदाय के हितार्थ उत्तम जल को वृष्टि के मार्ग में प्रेरित करता है ॥१५॥

यह दशम मण्डल में बानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९३

ऋषिः—१—१५ तान्वः पार्थ्यः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१ विराट्पङ्क्तिः । ४ पादनिचृत्पङ्क्तिः । ५ आर्चीभुरिक्पङ्क्तिः । ६, ७, १०, १४ निचृत्पङ्क्तिः । ८ आस्तारपङ्क्तिः । ९ अक्षरपङ्क्ति । १२ आर्चीपङ्क्तिः । २, १३ आर्चीभुरिगनुष्टुप् । ३ पादनिचृदनुष्टुप् । ११ न्यङ्कुसारिणीबृहती । १५ पादनिचृद्बृहती ॥
स्वरः—१, ४—१०, १२, १४ पञ्चमः । २, ३, १३ गान्धारः । ११, १५ मध्यमः ॥

महि॑ द्यावापृथिवी भूतमु॒र्वी नारी॑ य॒ह्वी न रोद॑सी॒ सदं॑ नः ।
तेभि॑र्नः पात॒ सह्य॑स ए॒भिर्नः॑ पात॒ शू॒षणि॑ ॥१॥

पदार्थः—(**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**महि**) अत्यन्त (**उर्वी**) विस्तीर्ण (**भूतम**) होते हैं, (**यह्वी**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी (**नारी-न**) दो स्त्री की तरह (**नः**) हमारी रक्षा करने वाली (**सदम्**) सदा होती है। ये अपने (**एभिः**) रक्षा गुणों से (**नः**) हमें (**शूषणि**) बल के निमित्त (**पातम्**) रक्षण देती है (**तेभिः**) उन्हीं रक्षणों के द्वारा (**नः**) हमारे (**सह्यसः**) विनाश करने वाले का भी (**पातम**) रक्षण करती है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—द्यु और पृथिवी लोक अत्यन्त विस्तीर्ण हैं। ये दोनों स्त्रियों के समान हमारी रक्षा सदा करती हैं। अपने रक्षा के गुणों से ये जिस प्रकार हमारी रक्षा और पालना करती हैं वैसे ही उन्हीं से हमारे शत्रु की भी रक्षा करती हैं ॥१॥

यज्ञेयज्ञे स मर्त्यो देवान्त्सपर्यति ।
यः सुम्नैर्दीर्घश्रुत्तम आविवासात्येनान् ॥२॥

पदार्थः—(सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (यज्ञे यज्ञे) सभी यज्ञों में (देवान्) यज्ञ देवों की (परिचरति) हवि आदि से सेवा करता है (यः) जो (दीर्घश्रुत्तमः) अतिशिक्षित एवं पठित (सुम्नैः) सुख कारक हवियों से (एनान्) इन देवों की (आविवासति) परिचर्या करता है ।

भावार्थः—जो दीर्घश्रुत्तम मनुष्य सुखकारक हवियों से इन देवों की परिचर्या करता है वही मनुष्य सभी यज्ञों में वस्तुतः देवों की सेवा करता है। अर्थात् विना हवि के यज्ञ नहीं होता है ॥२॥

विश्वेषामिरज्यवो देवानां वार्महः ।
विश्वे हि विश्वमहसो विश्वे यज्ञेषु यज्ञियाः ॥३॥

पदार्थः—(विश्वेषाम्) समस्त भुवनों के (इरज्यवः) स्वामी (देवानाम्) द्योतन दान आदि गुणों से युक्त दिव्यशक्तियों का (वाः) वरणीय तेज धन (महः) महान् हैं, (विश्वे) ये सभी (विश्वमहसः) व्यापक तेजों वाले (हि) निश्चय ही (विश्वे) ये सभी (यज्ञेषु) यज्ञों में (यज्ञियाः) यष्टव्य है ।

भावार्थः—समस्त भुवनों पर अधिकार रखने वाली, द्योतन, दान, दीपन आदि गुणों से युक्त इन दिव्य शक्तियों का धन, तेज, बल आदि महान् है। ये सभी व्याप्त तेजों वाले और सभी यज्ञों में यष्टव्य हैं ॥३॥

ते घा राजानो अमृतस्य मन्द्रा अर्यमा मित्रो वरुणः परिज्मा ।
कद्रुद्रो नृणां स्तुतो मरुतः पूषणो भगः ॥४॥

पदार्थः—(अर्यमा) सूर्य, (मित्रः) उदान प्राण, (परिज्मा) सर्वत्रगति (वरुणः) वायु, (स्तुतः) स्तुत (रुद्रः) अग्नि (पूषणः) सबके पोषक (मरुतः)

मरुद्गण और (भगः) भग (ते) वे (राजानः) प्रकाशमान (अमृतस्य) हवि से (मन्द्राः) तृप्त होने वाले देव लोग (नृणाम्) मनुष्यों को (कत्) सुख देते हैं।

भावार्थः—सूर्य, उदान, प्राण, सर्वगति वायु, प्रशस्त अग्नि, सबके पोषक मरुद्गण और भग आदि सभी हवि से तृप्त होने वाले ये देव मनुष्यों को सुख देते हैं ॥४॥

उत नो नक्तमपां वृषण्वसू सूर्यामासा सदनाय सधन्या ।
सचा यत्साद्येषामहिर्बुध्नेषु बुध्न्यः ॥५॥

पदार्थः—(उत) और भी (वृषण्वसू) वृष्टि रूपी धन वाले (अश्विनौ) प्राणोदान, (अपाम्) जलों के सम्बन्धी (सधन्या) समान धन वाले (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र, (बुध्नेषु) अन्तरिक्ष में मेघों में (यत्) जो (अहिः बुध्न्यः) अग्नि (सदनाय) रहने के लिए (सादि) स्थित होता है (एषाम्) इनके (सचा) साथ (नक्तम्) रात दिन (उरुष्यताम्) हमारी रक्षा के साधन बनते हैं।

भावार्थः—वृष्टि धन वाले प्राण और उदान, जलों से सम्बन्ध रखने वाले, समान संपत्ति वाले सूर्य और चन्द्रमा अन्तरिक्षस्थ मेघ में रहने वाले अग्नि के साथ रात दिन हमारी रक्षा के साधन बनते हैं ॥५॥

उत नो देवावश्विना शुभस्पती धामभिर्मित्रावरुणा उरुष्यताम् ।
महः स राय एषतेऽति धन्वेव दुरिता ॥६॥

पदार्थः—(शुभस्पती) जल के स्वामी (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (उत) और (मित्रावरुणा) प्राण और उदान (नः) हमारी (धामभिः) अपने तेजों से (उरुष्यताम्) रक्षा करते हैं। ये जिसकी रक्षा करते हैं (सः) वह (महः) महान् (रायः) धनों को (एधते) प्राप्त करता है और (धन्व इव) मरुप्रदेश के समान (दुरिता) दुःखों को (अति) लांघ जाता है।

भावार्थः—जल के स्वामी सूर्य और चन्द्रमा तथा प्राण और उदान हमारी रक्षा करते हैं। ये देव वास्तव में जिसकी रक्षा करते हैं वह महान् धनों को प्राप्त करता है और मरु प्रदेश के समान दुःखों को लांघ जाता है ॥६॥

Scanned by CamScanner

उत नो रुद्रा चिन्मृळतामश्विना विश्वे देवासो रथस्पतिर्भगः ।
ऋभुर्वाजं ऋभुक्षणः परिज्मा विश्ववेदसः ॥७॥

पदार्थः—(**उत**) अपि च (**रुद्रा**) रुलाने वाले (**अश्विना**) प्राण और अपान (**चित्**) भी (**नः**) हमारी (**मृडताम्**) रक्षा करें, (**रथस्पतिः**) रमणीय शरीरों का पालक पूषा (**भगः**) ऐश्वर्य का स्वामी सम्वत्सरी तेज, (**ऋभुः**) महान् (**वाजः**) ज्ञानी (**ऋभुक्षणः**) महान् (**विश्ववेदसः**) सब धनों के स्वामी विश्वे देव और (**परिज्मा**) सर्वत्रगामी वायु हमारी रक्षा करे।

भावार्थः—शरीर से निकलते समय रुला देने वाले प्राण और अपान हमारी रक्षा करें। रमणीय शरीरों का पालक पूषा, सम्वत्सरीय तेज, महान् ज्ञानी, सर्वत्रगति वायु और महान् धनों के स्वामी सभी देव हमारी रक्षा करें ॥७॥

ऋभुर्ऋभुक्षा ऋभुर्विधतो मद आ ते हरी जूजुवानस्य वाजिना ।
दुष्टरं यस्य साम चिदृधग्यज्ञो न मानुषः ॥८॥

पदार्थः—(**ऋभुक्षाः**) इन्द्र=विद्युत् (**ऋभुः**) महान् है, (**विदधतः**) इन्द्र आदि देवों को बनाने वाले प्रभु का (**मदः**) आनन्द भी (**ऋभुः**) महान् है, (**आजूजुवानस्य**) शीघ्र गति देने वाले (**ते**) इस इन्द्र=विद्युत् के (**हरी**) धारण और आकर्षण अथवा धन और ऋण भेद (**वाजिना**) बलवान् हैं, (**यस्य**) जिस विद्युत् का (**सामचित्**) फेंकने वाला धर्म भी अथवा समन्वयन (**दुस्तरम्**) कठिन है (**यज्ञः**) इस विद्युत् का संयोग, विभाग आदि धर्म भी (**मानुषः**) मानुष=मनुष्य सम्बन्धी (**न**) नहीं है किन्तु (**ऋधक्**) सर्वथा भिन्न है।

भावार्थः—विद्युत् की शक्ति बहुत बड़ी है, इन्द्र आदि देवों को बनाने वाले परमेश्वर का आनन्द भी अपार है, शीघ्रता से गति प्रदान करने वाले इस विद्युत् के ऋणात्मक धनात्मक प्रकार एवं धारण आकर्षण भी बलवान् है, इसकी दूर फेंकने वाली शक्ति भी कठिन हैं और इस विद्युत् के संयोग विभाग आदि धर्म भी मानुष नहीं हैं। वे अमानुष और सर्वथा भिन्न हैं ॥८॥

कृधी नो अह्रयो देव सवितः स च स्तुषे मघोनाम् ।
सहो न इन्द्रो वह्निभिर्न्येषां चर्षणीनां चक्रं रश्मिं न योयुवे ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सवितः देव**) यह सूर्य देव (**न**) हमें (**अह्रयः**) सदा गौरव से उच्च मस्तक वाला करता है (**च**) और (**सः**) वह (**मघोनाम्**) यजमानों के बीच में (**स्तुषे**) प्रशंसा किया जाता है। (**इन्द्रः**) शरीरस्थ विद्युत् (**वह्निभिः**) ऊष्माओं अथवा वहन करने वाले (**मरुद्भिः**) प्राणों के साथ **(एषाम्)** इन सभी (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों के (**सहः**) बल को (**चक्रम् न**) रथ के चक्र के समान और (**रश्मिम्**) रास के (**न**) समान (**नि योयुवे**) नियन्त्रित करता है।

भावार्थः—यह सूर्य हमें सदा उच्च मस्तक रहने की प्रेरणा देता हैं, और वह यजमानों के द्वारा प्रशंसा किया जाता है। शरीरस्थ विद्युत् ऊष्मा और प्राणों के साथ इन सभी मनुष्यों के बल को उसी प्रकार नियन्त्रण में रखता है जिस प्रकार रथ का चक्र रथ को और रस्सी रस्सी से बंधे हुए को नियंत्रण में रखती है ॥९॥

ऐषु द्यावापृथिवी धातं महदस्मे वीरेषु विश्वचर्षणि श्रवः ।
पृक्षं वाजस्य सातये पृक्षं रायोत तुर्वणे ॥१०॥

पदार्थः—(**द्यावा पृथिवी**) हे विद्वान् और राजा ! आप दोनों (**अस्मे**) हमारे सम्बन्धी (**एषु**) इन (**वीरेषु**) पुत्र पौत्रों में (**विश्वचर्षणि**) सर्व मनुष्यों के हितकारी (**महत्**) महान् (**श्रवः**) धन और यश को (**आ धातम्**) दीजिए, (**वाजस्य**) अन्न और ज्ञान के बांटने के लिए (**पृक्षम्**) पालन-पोषणकारी अन्न (**उत**) और (**तुर्वणे**) शत्रुओं वा विपत्तियों को तरने के लिए (**राया**) धन के साथ दीजिए।

भावार्थः—हे विद्वान् और राजा ! आप दोनों हमारे पुत्र-पौत्रों में सर्व मनुष्यों का हितकारी यश और धन दीजिए। ज्ञान और अन्न के बांटने के लिए और बाधाओं एवं शत्रुओं से पार पाने के लिए धन के साथ पालन-पोषणकारी अन्न दीजिए ॥१०॥

एतं शंसमिन्द्रास्मयुष्ट्वं कूचित्सन्तं सहसावन्नभिष्टये सदा पाह्यभिष्टये ।
मेदतां वेदता वसो ॥११॥

पदार्थः—(**वसो**) हे सबको बास देने वाले, (**सहसावन्**) बलवन् (**इन्द्र**) परमैश्वर्यवन् प्रभो ! (**अस्मयुः**) हमें चाहने वाले (**त्वम्**) आप (**कूचित्**) कहीं पर भी (**सन्तम्**) स्थित (**एतम्**) इस (**शंसम्**) स्तोता को (**अभिष्टये**) इसकी

Scanned by CamScanner

अभीष्ट सिद्धि के लिए (सदा) सदा (पाहि) रक्षा करे, (वेदता) अपने ज्ञान से (मेदताम्) बोधयुक्त करें ।

भावार्थ—हे सबको निवास देने वाले, बलवन्, परमैश्वर्यवन् परमेश्वर हमें चाहने वाले आप कहीं पर भी स्थित इस मुझ स्तोता की मेरे अभीष्ट की सिद्धि के लिये सदा रक्षा करें और अपने ज्ञान से हमें बोधयुक्त करें ॥११॥

एतं मे स्तोमं तना न सूर्ये द्युतद्यामानं वावृधन्त नृणाम् ।
संवननं नाश्व्यं तष्टेवानपच्युतम् ॥१२॥

पदार्थः—(नृणाम्) उत्तम कर्मों के नेताओं के (संवननम्) सेवनीय (मे) मुझ स्तोता के (एतम्) इस (स्तोमम्) स्तोत्र को ऋत्विग् लोग उसी प्रकार (न) संप्रति (ववृधन्त) बढ़ाते हैं जिस प्रकार (सूर्ये) सूर्य में (द्युतद्यामानम्) दीप्त गमन (तना) विस्तृत रश्मियें प्रकाश को बढाती है तथा (न) जिस प्रकार (अनपच्युतम्) च्युतिरहित (अश्व्यम्) अश्व से चलने वाले रथ को (तष्टा) शिल्पी बनाता है ।

भावार्थः—उत्तम कर्मों के नेताओं के द्वारा सेवनीय मुझ स्तोता के स्तोत्र को ऋत्विग् लोग उसी प्रकार सदा उच्चारित करते हैं जिस प्रकार सूर्यस्थ प्रकाश को दीप्त गमन वाली रश्मियें बढ़ाती है और जिस प्रकार च्युतिरहित और अश्वों से चलने वाले रथ को शिल्पी बनाता हैं ॥१२॥

वावर्त येषां राया युक्तैषां हिरण्ययी ।
नेमधिता न पौंस्या वृथेव विष्टान्ता ॥१३॥

पदार्थः—(येषाम्) जिनकी स्तुति उपासना (राया) ज्ञान धन से (युक्ता) युक्त होती है और जिनके पौरुष (नेमधिता) संग्राम में (पौंस्या न) बलों के समान (वृथा इव) अनायास ही (विष्टान्ता) परस्पर गुथे अन्तों वाले होते हैं (एषाम्) इनकी वाणी (हिरण्ययी) प्रकाशमयी और हितरमणीय (ववर्त) होती है ।

भावार्थः—जिनकी स्तुति उपासना ज्ञान धन से युक्त होती है और जिनके पराक्रम संग्राम में बलों के समान अनायास ही परस्पर गुथे हुए अन्तों वाले होते हैं इनकी वाणी प्रकाशमयी एवं हितरमणीय होती है ॥१३॥

Scanned by CamScanner

प्र तद्दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु ।
ये युक्त्वाय पञ्च शतास्मयु पथा विश्राव्येषाम् ॥१४॥

पदार्थः— (**दुःसीमे**) सीमा रहित आकाश में (**वेने**) सूर्य के (**पृथवाने**) विस्तृत हो जाने पर अथवा महान् यज्ञ के विस्तृत होने पर तथा (**रामे**) रात्रि के अन्धकार में (**असुरे**) मेघ के समय में (**मघवत्सु**) धन प्राप्ति के कर्मों में मैं यजमान (**एषाम्**) इन समस्त देवों की (**विश्रावि**) स्पष्ट सुनने योग्य ढंग से स्तुति=प्रशंसा करता हूँ (**ये**) जो (**अस्मयुः**) अच्छी कामना रखने वाले हैं और (**पथा**) यज्ञ के मार्ग से हमें (**पञ्च शता**) सैकड़ों गुणों और शक्तियों से (**युक्त्वाय**) युक्त हो हमें प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः—सीमारहित आकाश में सूर्य के प्रकाशित हो जाने पर अथवा महान् यज्ञ के विस्तृत होने पर, रात्रि के अन्धकार में भी, मेघ के समय में और धन प्राप्ति के कर्मों में मैं यजमान स्पष्ट सुनने योग्य ढंग से इन देवों की प्रशंसा करता हूं जो हमारे प्रति अच्छी कामना रखने वाले हैं और यज्ञ के मार्ग से हमें सैकड़ों गुणों और शक्तियों से युक्त होकर हमें प्राप्त हैं ॥१४॥

अधीन्न्वत्र सप्ततिं च सप्त च ।
सद्यो दिदिष्ट तान्वः सद्यो दिदिष्ट पार्थ्यः सद्यो दिदिष्ट मायवः ॥१५॥

पदार्थः—(**अत्र नु**) इस विषय में (**तान्वः**) विस्तृत धन वाला (**सप्त-सप्ततिम्**) ७७ गायों की प्राप्ति की भगवान् से (**सद्यः**) सदा (**अधि दिदिष्ट**) याचना करता है, (**पार्थ्यः**) बहुत विस्तृत भूमि वाला (**सद्यः**) सदा (**अधि-दिदिष्ट**) याचना करता है,(**मायवः**) प्रज्ञावाला मनुष्य (**इत्**) भी (**सद्यः**) सदा (**अधि दिदिष्ट**) याचना करता है ।

भावार्थः—इस प्रकार इस विषय में विस्तृत धन वाला मनुष्य, विस्तृत भूमि वाला मनुष्य और प्रज्ञावाला मनुष्य भी प्रभु से ७७ गौवों=प्रभूत गौवों की प्राप्ति की याचना करता है ॥१५॥

यह दशम मण्डल में तिरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—९४

ऋषिः—१—१४ अर्बुदः काद्रवेयः सर्पः ॥ देवता —ग्रावाणः ॥ छन्दः—
१, ३, ४, १०, ११, १३ विराड्जगती । २, ६, १२ जगती । ८,
९ आर्चीस्वराड्जगती । ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१—४, ६, ८—१३ निषादः ५, ७,
१४ धैवतः ॥

प्रैते वदन्तु प्र वयं वदाम ग्रावभ्यो वाचं वदता वदद्भ्यः ।
यदद्रयः पर्वताः साकमाशवः श्लोकं घोषं भरथेन्द्राय सोमिनः ॥१॥

पदार्थः—(एते) ये विद्वान् पुरुष (प्र वदन्तु) उत्तम उपदेश करें (वयम्) हम भी (प्रवदद्भ्यः) उपदेश करते हुए (ग्रावभ्यः) विद्वानों से प्राप्त (वाचम्) वाणी को (प्रवदाम) अन्यों को उपदेश करें, हे ऋत्विग् लोग आप भी (वाचम्) उस वाणी का (वदत) उपदेश करो, (यत्) जब (अद्रयः) आदरणीय (पर्वताः) पर्वतों के समान धीर (सोमिनः) योगी (आशवः) तीक्ष्णबुद्धि विद्वान् आप सब (इन्द्राय) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु के लिए(साकम्) एक साथ (श्लोकम्) मन्त्रमय (घोषम्) घोष को (भरथ) करते हो ।

भावार्थः ये विद्वान् जन उत्तम उपदेश करें। हम भी उपदेश करने वाले विद्वानों से प्राप्त उपदेश का अन्यों को उपदेश करें। हे ऋत्विग् लोगो ! आप भी उस वाणी का उपदेश करो जब कि आदरणीय, पर्वतों के समान दृढ, योगयुक्त, तीक्षणबुद्धि विद्वान् आप सब एक साथ मिलकर मन्त्रमय घोष को उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिए करते हो ॥१॥

एते वदन्ति शतवत्सहस्रवदभि क्रन्दन्ति हरितेभिरासभिः ।
विष्ट्वी ग्रावाणः सुकृतः सुकृत्यया होतुश्चित्पूर्वे हविरद्यमाशत ॥२॥

पदार्थः—(पूर्वे) ज्ञानपूर्ण (एते) ये (ग्रावाणः) विद्वज्जन (शतवत्) सैकड़ों और (सहस्रवत्) सहस्र लोगों की भांति (वदन्ति) बोलते हैं, (सुकृतः) उत्तम कर्मों के करने वाले (विष्ट्वी) घर-घर में जाकर (हरितेभिः) तेजस्वी (आसभिः) मुखों से (सुकृत्यया) उत्तम-उत्तम कृत्यों के साथ (अभिक्रन्दन्ति) उपदेश करते हैं, और (होतुः चित्) होता अग्नि के (अद्यम्) अदनीय (हविः) हवि को यज्ञार्थ (आशत) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः-- पूर्णज्ञानी ये विद्वज्जन सैकड़ों सहस्रों के समान बोलते हैं। उत्तम कर्मों के करने वाले ये घर-घर में जाकर संस्कार आदि कृत्यों के साथ अपने तेजस्वी मुखों द्वारा उपदेश करते हैं और यज्ञ आदि कार्यों के लिए अग्नि के भक्ष्य हवि आदि को प्राप्त करते हैं ॥२॥

एते वदन्त्यविदन्नना मधु न्यूङ्खयन्ते अधि पक्व आमिषि।
वृक्षस्य शाखामरुणस्य बप्सतस्ते सूभर्वा वृषभाः प्रेमराविषुः ॥३॥

पदार्थः—(**वृक्षस्य**) वृक्ष के (**पक्वे**) पके (**आमिषि अधि**) फल में जिस प्रकार लोग (**मधु**) मधुर रस को (**अविदन्**) प्राप्त करते हैं और (**अना**) मुख से उसका बखान करते हैं उसी प्रकार (**एते**) ये विद्वान् लोग (**वदन्ति**) उपदेश करते हैं और (**वि ऊङ्खयन्ते**) नियम से उसका बार-बार अभ्यास करते हैं (**अरुणस्य**) दीप्तियुक्त (**वृक्षस्य**) प्रकृति वृक्ष की (**शाखाम्**) शाखा पर लगे फल को (**बप्सतः**) भोगने वाले (**ते**) वे (**सूभर्वाः**) उत्तम भोगों के भोक्ता (**वृषभाः**) बलवान् जन (**प्र ईम् अराविषुः**) परमेश्वर के विषय में अच्छी प्रकार वर्णन करते हैं।

भावार्थः—वृक्ष के पके फल में लोग जिस प्रकार मधुर रस को प्राप्त करते हैं और मुख से बखान करते हैं उसी प्रकार ये विद्वान् लोग उपदेश करते हैं और नियम से उसका बार-बार अभ्यास करते हैं। दीप्तियुक्त प्रकृतिरूपी वृक्ष की शाखा पर लगे फल के भोक्ता ये उत्तम भोगों वाले बलवान् जन उसके स्वामी परमेश्वर के विषय का वर्णन करते हैं ॥३॥

बृहद्वदन्ति मदिरेण मन्दिनेन्द्रं क्रोशन्तोऽविदन्नना मधु।
संरभ्या धीराः स्वसृभिरनर्तिषुराघोषयन्तः पृथिवीमुपब्दिभिः ॥४॥

पदार्थः—(**मदिरेण**) हर्षकर (**मन्दिना**) सुखदायी स्तुति वचन से (**एते**) ये विद्वान् लोग (**इन्द्रम्**) परमेश्वर को (**क्रोशन्तः**) पुकारते हुए (**बृहत्**) अत्यन्त (**वदन्ति**) शब्द करते हैं, (**अना**) मुख से (**मधु**) मधुर रस को (**अविदन्**) प्राप्त करते हैं (**संरभ्य**) कार्य में दृढ़ उद्योगी होकर (**धीराः**) धीर ये (**उपब्दिभिः**) शब्दों द्वारा (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**आघोषयन्तः**) घोष से पूरित करते हुए (**स्वसृभिः**) अंगुलियों से इंगित करके (**अनर्तिषुः**) भावनाओं को व्यक्त करते हुए हर्ष में नाचते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हर्षकर सुखदाया स्तुति वचन से ये विद्वान् लोग परमेश्वर को पुकारते हुए अत्यन्त शब्द करते हैं और मुख से मधुर रस का पान करते हैं। कार्य में दृढ़ उद्योगी होकर धीर ये लोग शब्दों द्वारा पृथिवी को घोष से पूरित करते हुए अंगुलियों के इंगित करके भावनाओं को व्यक्त कर हर्ष में नाचते हैं ॥४॥

सुपर्णा वाचमक्रतोप द्यव्याखरे कृष्णा इषिरा अनर्तिषुः ।
न्यङ्नि यन्त्युपरस्य निष्कृतं पुरू रेतो दधिरे सूर्यश्वितः ॥५॥

पदार्थः—(**सुपर्णाः**) सुपतनशील ग्रावा=मेघ (**उप द्यवि**) समीप अन्तरिक्ष में (**वाचम्**) शब्द (**अक्रत**) करते हैं (**आखरे**) मृगों के रहने के स्थान में (**इषिराः**) गमनशील (**कृष्णाः**) काले मृगों के समान (**सूर्यश्वितः**) सूर्यवत् श्वेतवर्ण ये (**अनर्तिषुः**) नाचते हैं (**निष्कृतम्**) निकाले हुए जल को (**उपरस्य**) मेघ के (**न्यक्**) नीचे (**नियन्ति**) गिराते हैं, (**पुरु**) बहुत सा (**रेतः**) जल (**दधिरे**) अपने अन्दर ही रखते हैं।

भावार्थः—सुपतनशील मेघ समीप अन्तरिक्ष में गरजते हैं। जिस प्रकार मृगशाला में काला हरिण जाता और नाचता है वैसे ही सूर्यवत् श्वेत दिखाई पड़ने वाले ये मेघ नाचते हैं। मेघ से निकले जल को ये नीचे गिराते हैं और बहुत-सा जल अपने अन्दर ही रखते हैं ॥५॥

उग्राइव प्रवहन्तः समायमुः साकं युक्ता वृषणो बिभ्रतो धुरः ।
यच्छ्वसन्तो जग्रसाना अराविषुः शृण्व एषां प्रोथथो अर्वतामिव ॥६॥

पदार्थः—(**वृषणः**) यज्ञ के (**धुरम्**) धारक बल को (**बिभ्रतः**) धारण करते हुए (**साकम्**) एक साथ (**युक्ताः**) लगे हुए ये ग्रावा=मेघ (**प्रवहन्तः**) रथ को वहन करने वाले (**उग्राः**) उग्र घोड़ों के (**इव**) समान (**सम् आयमुः**) एक साथ घूमते हैं, (**यत्**) जब (**श्वसन्तः**) उच्छ्वास लेते हुए (**जग्रसानाः**) वायु को अपने अन्दर प्राप्त करते हुए ये मेघ (**अराविषुः**) गरजते हैं तब (**एषाम्**) इनकी गर्जना (**अर्वताम्**) घोड़ों की (**प्रोथथः**) हृेषा के (**इव**) समान (**शृण्वे**) सुनाई पड़ती है।

भावार्थः—यज्ञ के धारक बल को धारण करते हुए एक साथ युक्त ये मेघ रथ को खींचने वाले उग्र घोड़ों के समान एक साथ घूमते हैं। जब

Scanned by CamScanner

ये फूलते हैं और वायु के वेग को अपने मध्य पाते हैं तब ये गरजते हैं और इनकी यह गर्जना घोड़ों की ह्रेषा के समान सुनाई पड़ती है ॥६॥

दशावनिभ्यो दशकक्ष्येभ्यो दशयोक्त्रेभ्यो दशयोजनेभ्यः ।
दशाभीशुभ्यो अर्चताजरेभ्यो दश धुरो दश युक्ता वहद्भ्यः ॥७॥

पदार्थः--(**दशावनिभ्यः**) दश अंगुलियां जिनके कार्य में सहयोग करती हैं, (**दशकक्ष्येभ्यः**) दश अंगुलियां जिनके कार्य की प्रकाशक हैं, (**दशयोक्त्रेभ्यः**) दश अंगुलियाँ जिनको बाँध रखने वाली हैं (**दशयोजनेभ्यः**) दश अंगुलियां जिनका सोम के साथ योग कराती है, (**दशाभीशुभ्यः**) दश अंगुलियां जिनके कर्मों में व्याप्त होती है, (**अजरेभ्यः**) न टूटने वाले, दृढ़ (**दश**) दश (**धुरः**) धु वा ताडन कर्मों से युक्त, (**दश**) दशों (**वहद्भ्यः**) व्याप्रियमाण (**ग्रावाणः**) सोम कूटने के पाषाणों के हे ऋत्विग् लोग ! आप (**अर्चत**) लाभ की प्रशंसा करो ।

भावार्थः--सोम को कूट कर निचोड़ने वाले पाषाणों के प्रत्येक कार्य को ये दश अंगुलियां ही संपादित करती हैं क्योंकि ये इन्हीं से पकड़े गए हुए सब कार्य करते हैं अतः इन दश अंगुलियों से संपादित कर्मों वाले इन पाषाणों के लाभ की ऋत्विग् लोग प्रशंसा करें ॥७॥

ते अद्रयो दशयन्त्रास आशवस्तेषामाधानं पर्येति हर्यतम् ।
त ऊं सुतस्य सोम्यस्यान्धसोंऽशोः पीयूषं प्रथमस्य भेजिरे ॥८॥

पदार्थः--(**ते**) वे (**अद्रयः**) पाषाण (**आशवः**) जल्दी से प्रयोग किये जाने वाले, और (**दशयन्त्रासः**) दश अंगुलियों से नियन्त्रित हैं, (**तेषाम्**) उनका (**हर्यतम्**) स्पृहणीय (**आधानम्**) अभिषव कर्म (**पर्येति**) चारों तरफ चालू होता है, (**ते उ**) वे ही (**सुतस्य**) चुआये गए (**सोम्यस्य**) सोम सम्बन्धी (**अंशोः**) खण्डरूप (**अन्धसः**) अन्नात्मक (**पीयूषम्**) अमृत को (**प्रथमस्य**) प्रथम (**भेजिरे**) सेवन करते हैं ।

भावार्थः--ये जल्दी काम में लगाये जाने वाले पाषाण दश अंगुलियों से नियन्त्रित हैं । इनका स्पृहणीय अभिषव कर्म चारों तरफ चालू रहता है । वे ही प्रथम चुवाये गए सोम के अन्न के अमृत को पहले सेवन करते हैं ॥८॥

Scanned by CamScanner

ते सोमादो हरी इन्द्रस्य विंसतेंऽशुं दुहन्तो अध्यासते गविं ।
तेभिर्दुग्धं पंपिवान्त्सोम्यं मध्विन्द्रो वर्धते प्रथते वृषायते ॥९॥

पदार्थः–(**ते**) वे (**सोमादः**) सोमतत्व को खाने वाले मेघ (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**हरी**) धारण और आकर्षण को (**विंसते**) प्राप्त करते हैं तथा (**गवि**) अन्तरिक्ष में (**अंशुम्**) सोम तत्त्व को (**दुहन्तः**) दोहन करते हुए (**अध्यासते**) स्थित रहते हैं (**तेभिः**) उनके द्वारा (**दुग्धम्**) दुहे गये (**सोम्यम्**) सोम सम्बन्धी (**मधु**) मधु को (**इन्द्रः**) सूर्य (**पपिवान्**) पीता हुआ (**वर्धते**) बढ़ता है, (**प्रथते**) विस्तृत होता है और (**वृषायते**) सर्व सुखकारी होता है ।

भावार्थः – सोम को खाने वाले ये मेघ सूर्य के धारण और आकर्षण को प्राप्त करते हैं । तथा अन्तरिक्ष में सोम तत्त्व का दोहन करते हुए स्थित रहते हैं । उनके द्वारा दुहे गए सोम सम्बन्धी रस=जल को सूर्य पीता हुआ बढ़ता, विस्तृत होता और सुखकारी है ॥९॥

वृषा वो अंशुर्न किला रिषाथनेळावन्तः सदमित्स्थनाशिताः ।
रैवत्येव महसा चारवः स्थन यस्य ग्रावाणो अजुषध्वमध्वरम् ॥१०॥

पदार्थः—(**अंशुः**) सोम (**वः**) आप को (**वृषा**) यज्ञ में सुखदाता होता है आप लोग भी (**किल**) निश्चय ही (**न**) न (**रिषाथन**) शीर्ण हो, (**इलावन्तः**) अन्नवालों के समान आप लोग (**सदम् इत्**) सदा ही (**आशिताः**) भोजन खाकर तृप्त (**स्थन**) होओ, (**रैवत्याः**) धनवालों के (**इव**) समान (**महसा**) तेज से युक्त (**चारवः**) कल्याणकारी (**स्थन**) होओ (**ग्रावाणः**) हे विद्वानो (**यस्य**) जिस यजमान के (**अध्वरम्**) यज्ञ को आप (**अजुषध्वम्**) सेवन करते हो उसको अपने उपदेश आदि से सुखी करो ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! सोम आप को यज्ञ में सुखदाता होता है । आप लोग भी शीर्ण न हों । अन्न वालों की भांति आप लोग सदा ही भोजन खाकर तृप्त होओ और धन वालों के समान तेज से युक्त तथा कल्याणकारी होओ । हे विद्वानो आप लोग जिस यजमान के यज्ञ में जाओ उसको उपदेश आदि से सुखी करो ॥१०॥

तृदिला अतृदिलासो अद्रयोऽश्रमणा अशृथिता अमृत्यवः ।
अनातुरा अजराः स्थामविष्णवः सुपीवसो अतृषिता अतृष्णजः ॥११॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे विद्वानो ! आप (**अश्रमणा**) श्रमण रहित, (**अशृथाः**) अशिथिल, (**अद्रयः**) आदरणीय, (**अमृत्यवः**) अमारित (**अनातुराः**) रोगरहित, (**अजराः**) जरारहित, (**अमविष्णवः**) सदा गतिशील, (**सुपीवसः**) सुबल, (**अतृषिताः**) तृष्णारहित (**अतृष्णजः**) स्पृहारहित (**तृदिलाः**) दुःखों को काटने वाले (**अतृदिलाः**) स्वयं न छिन्न-भिन्न होने वाले (**स्थ**) होओ !

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप श्रमरहित, अशिथिल, आदरणीय, अमारित, रोगरहित, जरारहित, सदा गतिशील, सुबल, तृष्णारहित, स्पृहा-रहित, दुःखों के काटने वाले और स्वयं न छिन्न-भिन्न होने वाले होओ ॥११॥

ध्रुवा एव वः पितरो युगेयुगे क्षेमकामासः सदसो न युञ्जते ।
अजुर्यासो हरिषाचो हरिद्रव आ द्यां रवेण पृथिवीमशुश्रवुः ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (**युगे युगे**) सभी समयों में (**ध्रुवा**) अपने नियम में निश्चल (**एव**) ही रहें, (**वः**) आप लोगों के (**पितरः**) माता-पिता (**क्षेमकामासः**) कल्याण चाहने वाले होकर (**सदसः**) किन्हीं स्थानों से (**न युञ्जते**) अपने को न जोड़ें अर्थात् सबके रहें और सर्वत्र जावें, (**अजुर्यासः**) जरारहित (**हविषाचः**) सोम के खाने वाले (**हरिद्रवः**) अश्व के समान गति वाले (**द्याम्**) आकाश (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**रवेण**) शब्द से (**आ अशुश्रवुः**) सुनावें ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप सभी समयों में अपने नियम में दृढ़ रहो । आपके माता-पिता सबका कल्याण चाहने वाले होकर किन्ही स्थानों से न चिपके रहें । वे सबके हों और सर्वत्र जावें । जरारहित, सोम के सेवन करने वाले अश्व के समान गति वाले आकाश और पृथिवी को अपने शब्द से गुंजा देवें ॥१२॥

तदिद्वदन्त्यद्रयो विमोचने यामन्नञ्जस्पा इव घेदुपब्दिभिः ।
वपन्तो बीजमिव धान्याकृतः पृञ्चन्ति सोमं न मिनन्ति बप्सतः ॥

पदार्थः—वे (**अद्रयः**) आदरणीय विद्वान् (**विमोचने**) संकटों के छुड़ाने के निमित्त (**यामन्**) सन्मार्ग में (**तत् इत्**) उसी परमेश्वर का (**अंजस्पा**) शीघ्र रक्षा करने वालों के (**इव**) समान (**घ इत्**) निश्चय ही (**उपब्दिभिः**) शब्दों द्वारा (**वदन्ति**) उपदेश करें, (**बीजम्**) बीज को (**वपन्तः**) बोते हुए (**धान्या-**

कृतः) किसान के (इव) समान (सोमम्) सोम को (बप्सतः) खाते हुए (पुञ्चन्ति) उसे बना रखते हैं (न मिनन्ति) नष्ट नहीं करते हैं ।

भावार्थः—वे आदरणीय विद्वान् लोग संकटों के निवारण के निमित्त सन्मार्ग में उसी परमेश्वर शीघ्र रक्षा करने वाले के समान शब्दों द्वारा उपदेश करें । जिस प्रकार किसान लोग खेत को काटते हैं और बीज भी बोते हैं उसी प्रकार ये विद्वान् सोम का भक्षण करते हुए भी उसे बना रखते हैं । उसको नष्ट नहीं करते हैं ॥१३॥

सुते अध्वरे अधि वाचमक्रता क्रीळयो न मातरं तुदन्तः ।
वि षू मुञ्चा सुषुवुषो मनीषां वि वर्तन्तामद्रयश्चायमानाः ॥१४॥

पदार्थः—(चायमानाः) पूजनीय (अद्रयः) आदरणीय (ग्रावाणः) विद्वान् लोग (अध्वरे अधि) यज्ञ में सोम के (सुते) सुत होने पर (मातरम्) माता को हाथ से (तुदन्तः) तड़ित करते हुए (आ क्रीडयः) खेलते कुमारों के समान (वाचम्) शब्द (अक्रत) करते हैं अर्थात् मन्त्रोच्चार करते हैं, तथा (विसुषुवुषः) विशेष रूप से जगत् के उत्पन्न करने वाले प्रभु की (मनीषाम्) स्तुति को (विमुञ्च) मुख से उन्मुक्त करें अर्थात् करें और (विवर्तन्ताम्) पुनः पुनः करें ।

भावार्थः—पूजनीय, आदर के पात्र विद्वान् लोग यज्ञ में सोम के सुत होने पर माता को हाथ से ताड़ित करके खेलते हुए कुमारों के समान शब्द करते हैं अर्थात् मन्त्रोच्चार करते हैं । तथा जगत् के उत्पन्न करने वाले प्रभु की स्तुति को कण्ठ से उन्मुक्त कर छेड़ते हैं और पुनः पुनः करते हैं ॥१४॥

यह दशम मण्डल में चौरानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ९५

ऋषिः—१,३, ६, ८—१०, १२, १४, १७ पुरूरवा ऐलः । २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६, १८ उर्वशी ॥ देवता—१, ३, ६, ८—१०, १२, १४, १७ उर्वशी । २, ४, ५, ७, ११, १३, १५, १६, १८ पुरूरवा ऐलः ॥ छन्दः—१, २, १२, त्रिष्टुप् । ३, ४, १३, १६, पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ५, १० आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ६—८, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ९, ११, १४, १७, १८ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

विशेष—इस सूक्त में पुरूरवा ऐल और उर्वशी का कथनोपकथन पाया जाता है। पुरूरवा के प्रक्रियानुसार मेघ, वायु और विद्वान् अर्थ होंगे उर्वशी भी प्रक्रियावश विद्युत्, वाक् और स्त्री अर्थ में प्रयुक्त है। इला नाम जल का है। इला=जल से उत्पन्न होने के कारण पुरुरवा मेघ को ऐल कहा गया है। आख्यान जो इतिहास नहीं है, अपना एक स्थान रखता है। यह जड़ पदार्थों में भी कल्पित किया जाता है। वैसा ही कथनोपकथन यहां पर भी है।

हये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचांसि मिश्रा कृणवावहै नु ।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन्परतरे चनाहन् ॥१॥

पदार्थः—(**हये**) हे (**घोरे**) घोर (**जाये**) जायाभूत अथवा जायमान विद्युत्! (**मनसा**) मन के समान वेग से युक्त रहने वाली तू (**तिष्ठ**) ठहर, (**वचांसि**) परस्पर एक दूसरे के वचनों अथवा माध्यमिक स्थानीय शब्दों को (**मिश्रा**) आदान प्रदान से मिश्रित अर्थात् उक्ति प्रत्युक्ति से मिश्रित (**कृणवावहै नु**) करें, ऐसा न करने पर (**नौ**) हमारे विषय के (**मंत्राः**) रहस्य (**अनुदितासः**) विना कहे हुए रह जावेंगे और (**एते**) ये ऐसी अवस्था में (**परतरे**) दूसरे (**अहन् चन**) दिनों में (**मयः**) सुख (**न**) नहीं (**करन्**) कर सकते हैं।

भावार्थः—यह मेघ में उत्पन्न होने वाली घोर विद्युत् जो मन के समान वेग से युक्त है स्थित होवे। मेघ और विद्युत् की जो वाणियां गर्जना और कड़क हैं वे परस्पर मिलें। विना ऐसा हुए मेघ और विद्युत् सम्बन्धी

Scanned by CamScanner

रहस्य बिना खुले रह जावेंगे अतः ये उक्ति प्रत्युक्ति द्वारा समझाये जावें ॥१॥

किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव ।
पुरूरवः पुनरस्तं परेहि दुरापना वातइवाहमस्मि ॥२॥

पदार्थः—उर्वशी का उत्तर—(**एता**) इस (**वाचा**) वाणी अर्थात् वार्तालाप से (**किम्**) क्या (**कृण**) हम दोनों करेंगे क्योंकि अब विद्युत् की कड़क के बाद वह तत्काल समाप्त हो जाती है और समाप्त हुई का पुनः मेघ से संपर्क नहीं हो सकता है अतः हम दोनों मिला तो सकते नहीं, (**तव**) तुम्हारे पास से (**अहम्**) मैं (**उषसाम्**) उषाओं के पूर्व होने वाली (**अग्रिमा**) पूर्ववती उषाओं के (**इव**) समान (**प्राक्रमिषम्**) अतिक्रान्त होती हूँ, अतः (**पुरुरवः**) हे पुरुरव=मेघ तू (**अस्तम्**) अपने घर वा स्थान को (**पुनः**) पुनः (**परा इहि**) जा (**अहम्**) मैं (**वातः**) वायु के (**इव**) समान (**दुरापना**) दुराप=न पकड़े जाने योग्य (**अस्मि**) हूँ ।

भावार्थः—परस्पर वाणी के मिलाने मात्र से दोनों का क्या बन सकता है । विद्युत् तो कड़क के बाद समाप्त हो जाती है । वह समाप्त हुई विद्युत् पुनः प्राप्त नहीं हो सकती । जिस प्रकार वीत गई हुई उषा की पूर्ववर्ती उषा पुनः वर्तमान उषा से नहीं मिल सकती है वैसे ही कड़क कर समाप्त हुई विद्युत् पुनः मेघ से नहीं मिलती । यह वायु के वेग के समान पकड़ में नहीं आने वाली है ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषाः शतसा न रंहिः ।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा मायुं चितयन्त धुनयः ॥३॥

पदार्थः—पुरुरवा का कथन—(**श्रिये**) श्री की प्राप्ति के लिए (**इषुधेः**) निषङ्ग=तूणीर से (**इषुः**) वाण (**असना**) प्रक्षेपण के लिए (**न**) नहीं समर्थ हो रहा है, तथा (**रंहिः**) अति वेगवान् (**अहम्**) मैं मेघ (**शतसा**) सैकड़ों प्रकार की (**गोषाः**) गर्जनाओं वाला (**न**) नहीं हो सक रहा है, (**अवीरे**) वीर रहित (**क्रतौ**) वर्षा आदि कर्म में मेरा साम (**न**) नहीं (**विदविद्युतत्**) चमक रहा है, (**उरा**) महान् अन्तरिक्ष में (**धुनयः**) मेघ गण (**मायुम्**) शब्द (**न**) नहीं (**चितयन्त**) प्रकट कर रहे हैं ।

भावार्थः—श्री की प्राप्ति के लिए जिस प्रकार तीर का प्रक्षेपण आवश्यक है वैसे विद्युत् का मेघ से पतन भी वर्षा के लिए आवश्यक है। विद्युत् के अभाव में उसकी गर्जना और वृष्टिकर्म आदि सभी रुद्ध हो जाते हैं। मेघसमूह शब्द भी आकाश में नहीं कर पाता है ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्तिगृहात्।
अस्तं ननक्षे यस्मिञ्चाकन्दिवा नक्तं श्नथिता वैतसेन ॥४॥

पदार्थः—(**उषः**) हे उषस्! (**सा**) वह यह उर्वशी (**वसु**) वासक (**वयः**) अन्न आदि को (**श्वसुराय**) सूर्य के लिए (**दधती**) धारण करती हुई (**यदि**) यदि (**वष्टि**) मेघ रूप पति को चाहे तो (**अन्तिगृहात्**) श्वसुर के घर से (**अस्तम्**) पति के कक्ष में (**ननक्षे**) जावे, (**यस्मिन्**) जहाँ पर (**दिवा**) दिन (**नक्तम्**) रात (**वैतसेन**) वेत से (**श्नथिता**) ताड़ित हुई (**चाकन्**) चाहे।

भावार्थः—हे उषस्! यह विद्युत् अन्न आदि को वृष्टि द्वारा उत्पन्न करके सूर्य के लिए धारण करती है जो मेघ का पिता होने से उसका श्वसुर है। यदि वह पति अर्थात् मेघ में ही बनी रहे तो यह सब कार्य न होवे। जिस प्रकार पति के संभोग की कामना वाली स्त्री पति के ही कक्ष में जाती है। परन्तु विद्युत् और मेघ में यह सम्भव नहीं ॥४॥

त्रिः स्म माह्नः श्नथयो वैतसेनोत स्म मेऽव्यत्यै पृणासि।
पुरूरवोऽनु ते केतमायं राजा मे वीर तन्व१स्तदासीः ॥५॥

पदार्थः—हे पुरूरवस्! तू (**माम्**) मुझे (**वैतसेन**) वेत के दण्ड से (**अह्नः**) दिन में (**त्रिः**) तीन वार (**श्नथयः**) ताड़ित करता है, (**उत**) और (**अव्यत्यै**) मुझ एक मात्र पत्नी को (**पृणासि स्म**) हर प्रकार से पूरित करते हो, इसी लिए (**ते**) तेरे (**केतम्**) घर को मैं विद्युत् (**आयम्**) प्राप्त हूँ अर्थात् विद्युत् मेघ में अपना स्थान बनाए हुए हैं (**वीर**) हे वीर तू (**तत्**) इस लिए (**मे**) मेरे (**तन्वः**) विद्युन्मय ढांचे का (**राजा**) राजा (**आसीः**) होता है।

भावार्थः—हे मेघ तू दिन में प्रातः, दो पहर, और सायम् जब हो मुझे ताड़ित करता है मुझे सब प्रकार से पूरित भी करता है। यही कारण है कि मैं विद्युत् मेघ में अपना स्थान बनाये रहती हूं। हे वीर तू मेरे विद्युन्मय ढांचे का राजा होता है ॥५॥

Scanned by CamScanner

या सुजूर्णिः श्रेणिः सुम्नआपि ह्रदेचक्षुर्न ग्रन्थिनी चरण्युः ।
ता अञ्जयोऽरुणयो न सस्रुः श्रिये गावो न धेनवोऽनवन्त ॥६॥

पदार्थः— पुरूरवा कहता है—(**या**) जो (**सुजूर्णिः**) उत्तम वेग वाली विद्युत् हैं, (**श्रेणिः**) श्रेणी विद्युत् है, (**सुम्न आपि**) तेज आदि को देने वाली विद्युत् है, (**ह्रदे चक्षु**) जल में रहने वाली विद्युत् (न) और (**ग्रन्थिनी**) ग्रन्थिनी (**चरण्युः**) चरण्यु=चरणशीला विद्युत् है, (**ता**) वे ये सारी विद्युतें (**ऋजयः**) चपला, (**अरुणयः**) तेजोमयी (**धेनवः**) नव प्रसूत (**गावः**) गायों के (**न**) समान (**श्रिये**) आश्रय के लिये (**न**) नहीं (**सस्रुः**) जाती हैं और शब्द करती है ।

भावार्थः—सुजूर्णि, श्रेणी, सुम्न आपि, ह्रदेचक्षु, ग्रथिनी और चरण्यू विद्युतें चपला और तेज वाली होती है । ये किसी विशेष स्थान को प्राप्त करने नहीं जाती हैं और शब्द करती हैं । जिस प्रकार नवप्रसूत गायें कहीं नहीं जाती और शब्द करती हैं ॥६॥

समस्मिञ्जायमान आसत ग्ना उतेमवर्धन्नद्यः स्वगूर्ताः ।
महे यत्त्वा पुरूरवो रणायावर्धयन्दस्युहत्याय देवाः ॥७॥

पदार्थः—उर्वशी का कथन—(**अस्मिन्**) इस पुरूरवा के (**जायमाने**) उत्पन्न होने पर (**ग्नाः**) छन्द, वाणी, और देवों की शक्तियां अर्थात् देवपत्नियें (**सम्**) साथ (**आसत्**) संगत होती है, (**उत**) और (**ईम्**) इसको (**स्वगूर्ताः**) स्वयं गतिशील (**नद्यः**) अन्तरिक्षस्थ जल वेग (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं, (**पुरूरवः**) हे पुरूरवस्=मेघ (**यत्**) जो (**त्वा**) तुम्हें (**देवाः**) दिव्य शक्तियें अथवा सूर्य-किरणें (**महे**) महान् (**दस्युहत्याय**) मेघवध रूपी (**रणाय**) रण के लिए (**अव-र्धयन्**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः - इस मेघ के उत्पन्न होने पर साथ ही साथ छन्द, माध्य-मिका वाक् और दैवी शक्तियां भी इससे संगत होती हैं । और इसको स्वयं गतिशील अन्तरिक्षस्थ जल धारायें भी बढ़ाती है । सूर्य किरणें अथवा अन्य देव तुझ मेघ को वृत्र युद्ध रूपी संग्राम के लिए बढ़ाते हैं ॥७॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे ।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन्रथस्पृशो नाश्वाः ॥८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः— पुरूरवा का कथन है (**यत्**) यदा (**सचा**) सहायभूत पुरूरवा= मेघ **अत्कम्**) अपने रूप को (**जहतीषु**) छोड़ती हुई (**अमानुषीषु**) दिव्यगुणों वाली (**आसु**) इस अप्सरस्=विद्युतों को (**मानुषः**) अग्नि के रेतस् को न दूषित करने वाला "मादुष" मेघ (**निषेवे**) सेवन करता है तब (**ताः**) वे अप्सरस्= विद्युतें (**मत्**) मुझ उर्वशी के पास से (**अप त्रसन्**) दूर भाग जाती हैं (**न**) यथा **तरसन्ती**) मृग को चाहती हुई (**भुज्युः**) मृगी व्याघ के डर से भागती है, (**न**) यथा (**रथस्पृशः**) रथ में जुते (**अश्वाः**) घोड़े (**अत्रसन्**) भागते हैं।

भावार्थः जब सहायभूत पुरूरवा=मेघ अपने रूप को छोड़ने वाली दिव्यगुणों वाली इन अप्सराओं=विद्युतों को मानुष=मादुष अर्थात् अग्नि के बीज को कायम रखने वाला मेघ सेवन करता है तब ये अप्सरायें=विद्युतें मुझ उर्वशी के पास से भाग जाती हैं जिस प्रकार व्याध के भय से मृगी भाग जाती हैं और रथ में जुते घोड़े भागते हैं ॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक्सं क्षोणीभिः क्रतुभिर्न पृङ्क्ते ।
ता आतयो न तन्वः शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशानाः ॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**आसु**) इन (**अमृतासु**) अमर अप्सराओं में (**मर्तः**) मरणधर्मा पुरूरवा=मेघ (**निःस्पृक्**) स्पर्श करता हुआ (**क्षोणीभिः**) वाणियों से (**न**) और (**क्रतुभिः**) कर्म से (**पृङ्क्ते**) संपर्क करता है तो (**ताः**) वे (**आतयः**) पत्नी भूत होकर (**स्वाः**) अपने (**तन्वः**) शरीरों को (**न**) नहीं (**शुम्भन्ति**) प्रकाशित करती हैं जिस प्रकार (**दन्दशानाः**) अपनी लगाम को चबाते हुये (**क्रीडयः**) खेलते हुए (**अश्वासः**) घोड़े अपने स्वरूप को रथी को नहीं देखने देते।

भावार्थः—जब इन अमर अप्सराओं में मरणधर्मा मेघ संपर्क करता है तो वे पत्नी होकर अपने शरीरों को इसे नहीं प्रकाशित करती हैं जिस प्रकार लगाम को काटते हुए अत्यन्त वेग से चलते हुए घोड़े अपने रूप को रथी को नहीं देखने देते हैं ॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद्भरन्ती मे अप्या काम्यानि ।
जनिष्टो अपो नर्यः सुजातः प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायुः ॥१०॥

पदार्थः—(**या**) जो (**उर्वशी**) ऋण और धनरूप से व्यापन करने वाली (**विद्युत्**) विद्युत् (**न**) सम्प्रति (**पतन्ती**) पदार्थों पर गिरती हुई (**मे**) मुझ

मेघ के (अप्या) जल सम्बन्धी (काम्यानि) चाहने योग्य कामों को (भरन्ती) संपादित करती हुई (दविद्योत्) चमकती है, (नर्यः) मनुष्यों के हितकारक (सुजातः) उत्तम पुत्र रूप (अपः) जलों को (जनिष्ठः) उत्पन्न करती है (उर्वशी) विद्युत् जमे प्राण वायु को उत्पन्न करके (दीर्घम्) दीर्घ (आयुः) आयु (प्रतिरत) प्रदान करती है।

भावार्थः- जो ऋण और धन से युक्त विद्युत् पदार्थों पर पड़ती हुई मुझ मेघ के जल वर्षण सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करती हुई चमकती है। मनुष्यों के हितकारक उत्तम जलों को उत्पन्न करती है। यह उर्वशी विद्युत् जमे प्राण वायु के रूप में दीर्घ आयु प्रदान करती है ॥१०॥

जज्ञिष इत्था गोपीथ्याय हि दधाथ तत्पुरूरवो म ओजः ।
अशासं त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि ॥११॥

पदार्थः— (इत्था) इस प्रकार (गोपीथ्याव हि) पृथिवी की रक्षा के लिए (जज्ञिषे) समर्थ हो, (पुरूरवाः) हे पुरूरवस् (तत्) उस (ओजः) अपने ओज को (मे) मुझ में (दधाथ) धारण करो, (सस्मिन्) सब (अहनि) दिन में (विदुषी) तुझे प्राप्तवती (त्वा) तुझे (अशासम्) चाहती हूं, तू (मे) मेरी (न) नहीं (अशृणोः) सुनता है (अभुक्) पालन न करता हुआ तू (किम्) क्या (वदासि) कह सकता है।

भावार्थः— इस प्रकार पृथिवी की रक्षा के समर्थ हो। हे मेघ उस ओज को मुझ में धारण कर। सभी दिन मैं तुझे प्राप्त हुई तेरी कामना रखती हूं, तू मेरी नहीं सुनता है। पालन न करने वाला तू क्या कह सकता है ॥११॥

कदा सूनुः पितरं जात इच्छाच्चक्रन्नाश्रु वर्तयद्विजानन् ।
को दम्पती समनसा वि यूयोदध यदग्निः श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

पदार्थः—पुरूरवस् का कथन — (कदा) कब (सूनुः) पुत्र (जातः) तेरे उदर से उत्पन्न हुआ (पितरम्) पिता को (इच्छात्) चाहेगा, कब (विजानत्) प्राप्त हुआ मुझ पिता को (चक्रन्) क्रन्दन करता हुआ (अश्रु) आंसू (न) नहीं (वर्तयत्) बहावेगा, (कः) कौन पुत्र (समनसा) समान मन वाले (दम्पती) पति पत्नी अर्थात् तुझ माता और मुझ पिता को (वि यूयोत्) वियुक्त करेगा,

Scanned by CamScanner

(अध) अब (यत्) जो (अग्निः) अग्नि है वह तुम्हारे (श्वशुरेषु) श्वसुरों में (दीदयत् दीप्त होवे ।

भावार्थः— कब पुत्र तुम्हारे उदर से उत्पन्न हुआ पिता को चाहेगा ? कब प्राप्त हुआ मुझ पिता को क्रन्दन करता हुआ आंसू नहीं बहावेगा ? कौन पुत्र अपने समवयस्क माता-पिता को वियुक्त करेगा ? कब यह जो अग्नि है वह तुम्हारे श्वसुरों सूर्य आदि पदार्थों में दीप्त होवे ॥१२॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्रन्न क्रन्ददाध्ये शिवायै ।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे परेह्यस्तं नहि मूर मापः ॥१३॥

पदार्थः—हे पुरूरवस् ! (त्वाम्) तुम्हारे (प्रति) प्रति (ब्रवाणि) मैं कहती हूँ तुम्हारा पुत्र (अश्रु) आंसू (वर्त्तयते) बहाता है, (आध्ये) चाही वस्तु में (शिवायै) कल्याण के उपस्थित होने पर (चक्रन्) क्रन्दन करता हुआ और आंसू (न) भी बहावेगा (यत्) जो (ते) तेरा अपत्य (अस्मे) मुझ में निहित है (तत्) उसे (ते) तुम्हारे पास (प्रहिनव) भेजती हूँ, (त्वम्) तू (अस्तम्) अपने घर को (परेहि) जा (मूरः) मूढ तू (मा) मुझे (नहि) नहीं (आपः) प्राप्त कर सकता है ।

भावार्थः—हे पुरूरवस् ! तुम्हारे प्रति मैं कहती हूं । तुम्हारा पुत्र आंसू बहाता है । सोची वस्तु में कल्याण उपस्थित होने पर वह क्रन्दन करता और रोता है । जो तेरा अपत्य मुझ में निहित है उसे मैं तुझे भेजती हूं । तू अपने घर जा । मूढ तू मुझे नहीं पा सकता है ॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत्परावतं परमां गन्तवा उ ।
अधा शयीत निर्ऋतेरुपस्थेऽधैनं वृका रभसासो अद्युः ॥१४॥

पदार्थः—(सुदेवः) तुम्हारे साथ खेलने वाला पति पुरूरवा (अद्य) अभी ही (प्रपतेत्) गिर पड़े, (अनावृत्) न सुरक्षित हुआ वह (परमाम्) परम (दूरावतम् उ) दूर देश को (गन्तवं) जाने को चला जावे अथवा महायात्रा=मृत्यु को प्राप्त हो जावे, (अध) अथवा (निर्ऋतेः) पृथिवी की (उपस्थे) गोद में (शयीत) सो जावे, (अध) अथवा (एनम्) इसको (रभसासः) वेग वाले (वृकाः) भेड़िये (अद्युः) खा जावें ।

भावार्थः—हे उर्वशी=विद्युत् तुम्हारे साथ खेलने वाला पुरूरवा=यह

Scanned by CamScanner

मेघ अभी ही गिर पड़े, असुरक्षित हुआ, दूर देश जाने के लिए प्रयाण करे अथवा महाप्रयाण कर जाये, अथवा पृथिवी की गोद में सो जावे, अथवा इसको वेग से दौड़ने वाले भेड़िये खा जावें ॥१४॥

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उ क्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ॥१५॥

पदार्थः—(**पुरूरवः**) हे पुरूरवस् ! तू (**मा**) मत (**मृथाः**) मर, (**मा**) मत (**प्रपप्तः**) गिरो (**अशिवासः**) अकल्याणकारी (**वृकासः**) वृक (**मा उ**) न (**त्वा**) तुझे (**अक्षन्**) खावें, (**स्त्रैणानि**) स्त्रियों की की गई मित्रता (**वै**) निश्चय से (**न सन्ति**) मित्रता नहीं होती है (**एता**) ये मित्रतायें वस्तुतः (**साला-वृकाणाम्**) जंगली कुत्ते वा भेड़ियों के (**हृदयानि**) हृदय हैं ।

भावार्थः—हे पुरूरवस् ! मरो मत, कूदकर गिरो या पड़ो भी नहीं । तुझे अभद्र भेड़िये भी न खावें । स्त्रियों की इस प्रकार कामवासनामयी मित्रता नहीं होती है । ये मित्रतायें तो जंगली कुत्ते अथवा भेड़ियों के हृदय के समान हैं ॥१५॥

यद्विरूपाचरं मर्त्येष्ववसं रात्रीः शरदश्चतस्रः ।
घृतस्य स्तोकं सकृदह्न आश्नां तादेवेदं तातृपाणा चरामि ॥१६॥

पदार्थ—(**यद्**) जब मैं देवरूप के विपरीत मरणधर्मा के रूप में (**मर्त्येषु**) मरणधर्माओं में (**अचरम्**) व्यवहार करूं तो मैं फिर (**रात्रीः**) रमणदात्री (**चतस्रः**) चार (**शरदः**) शरद् ऋतुओं तक ही (**अवसम्**) रह सकूं (**घृतस्य**) धृत वा जल का (**स्तोकम्**) तनिक मात्र ही (**अह्नः**) दिन में मैं (**सकृत**) एक ही वार (**आश्नाम्**) खाती हूँ और (**तात् एव**) उसी से ही (**इदम्**) संप्रति (**तातृषाणा**) तृप्त हुई (**चरामि**) विचरती हूँ ।

भावार्थः—जब मैं देवरूप के विपरीत मरणधर्माओं में व्यवहार तो चार शरद् ऋतुओं तक ही रह सकती हूं । मैं विद्युत् जल को तनिक मात्र खाती हूँ । और उसी से तृप्त हुई विचरती हूँ । मेघ मरणधर्मा है विद्युत् अमरण-धर्मा है ॥१६॥

अन्तरिक्षप्रां रजसो विमानीमुप शिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठः ।
उप त्वा रातिः सुकृतस्य तिष्ठान्नि वर्तस्व हृदयं तप्यते मे ॥१७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अन्तरिक्षप्राम्**) अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूरित करने वाली (**रजसः**) जल की (**विमानीम्**) निर्मात्री (**उर्वशीम्**) विद्युत् को मैं (**वसिष्ठः**) जलरूपमेध (**उपशिक्षामि**) वश में करता हूँ । (**सुकृतस्य**) उत्तम कर्म का (**रातिः**) दाता पुरूरवा=मेघ (**त्वा**) तुझे (**उपतिष्ठात्**) प्राप्त रहे, (**मे**) मेरा (**हृदयम्**) हृदय (**तप्यते**) तप्त हो रहा है (**निवर्तस्व**) निवृत्त होओ ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष को अपने तेज से पूरित करने वाली तथा जल की निर्मात्री विद्युत् को मैं वसिष्ठ=जल रूप मेघ ही वश में कर सकता हूं। उत्तम कर्म का दाता पुरूरवा=मेघ तुझे प्राप्त रहे,मेरा हृदय संतप्त हो रहा है अतः हे उर्वशी ! तुम अब चुप रहो ॥१७॥

इति॑ त्वा दे॒वा इ॒म आ॑हुरैळ॒ यथे॒मेतद्भव॑सि मृ॒त्युब॑न्धुः ।
प्र॒जा ते॑ दे॒वान्ह॒विषा॑ यजाति स्व॒र्ग उ॒ त्वमपि॑ मादयासे ॥१८॥

पदार्थः—हे (**ऐल**) पुरूरवस् ! (**त्वा**) तुझे (**इमे देवाः**) ये देव लोग (**इति**) ऐसा (**आहुः**) कहते हैं (**मृत्युबन्धुः**) मृत्यु का बन्धक (**यथा ईम् एतत्**) जिस प्रकार हो यह ऐसा होगा (**प्रजा**) उत्पन्न हुआ तू (**ते**) तेरे सम्बन्धी यष्टव्य (**देवान्**) देवों को (**हविषा**) हवि से (**यजाति**) यज्ञ कर (**त्वम्**) तू (**उ**) निश्चय (**अपि**) भी (**स्वर्गे**) स्वर्ग में (**मादयासे**) सुखी होगा ।

भावार्थः—हे ऐल पुरूरवस् ! तुझे ये देव लोग ऐसा कहते हैं कि तू मृत्यु का बन्धक होगा। उत्पन्न हुआ तू अपने सम्बन्धी यष्टव्य देवों के लिए यज्ञ कर। तू स्वर्ग में आनन्द प्राप्त करेगा ॥१८॥

यह दशम मण्डल में पिचानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ९६

ऋषिः—१—१३ बरुः सर्वहरिर्वैन्द्रः ॥ **देवता**—हरिस्तुतिः ॥ **छन्दः**—१, ७, ८ जगती । २—४, ९, १० निचृज्जगती । ५ आर्चीस्वराड्-जगती । ६ विराड्जगती । ११ आर्चीभुरिग्जगती । १२, १३ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—११ निषादः । १२, १३ धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

प्र ते॑ म॒हे वि॒दथे॑ शंसिषं॒ हरी॒ प्र ते॑ वन्वे व॒नुषो॑ हर्य॒तं मद॑म् ।
घृ॒तं न यो हरि॑भि॒श्चारु॒ सेच॑त॒ आ त्वा॑ विशन्तु॒ हरि॑वर्पसं॒ गिरः॑ ॥१॥

पदार्थः (**ते**) इस इन्द्र=सूर्य के (**हरी**) दो अश्वों —धारण और आकर्षण की (**महे**) महान् (**विदथे**) यज्ञ में (**प्रशंसिषम्**) मैं प्रशंसा करता हूं। (**वनुषः**) मेघ का वध करने वाले (**ते**) इस इन्द्र =सूर्य के सम्बन्धी (**हर्यतम्**) रमणीय (**मदम्**) सुख की (**वन्वे**) भगवान् से याचना करता हूं, (**यः**) जो (**हरिभिः**) जल आदि को हरण करने वाली किरणों के द्वारा (**चारु**) चरणीय=ग्रहणीय (**घृतम् न**) घृत के समान उत्पन्न जल को (**सेचते**) सींचता है (**हरिवर्पसम्**) चमकने वाले रूप से युक्त (**त्वा**) इस सूर्य की प्रशंसा में (**मे**) मेरी (**गिरः**) वाणियां (**आ विशन्तु**) सर्वत्र व्याप्त होवें।

भावार्थः—इस सूर्य के धारण और आकर्षण रूप दोनों गुणों की मैं यज्ञ आदि के महान् अवसरों पर प्रशंसा करता हूं। मेघ का बध करने वाले इस सूर्य के द्वारा सबको दिये जाने वाले सुख की प्राप्ति की परमेश्वर से याचना करता हूं। जो अपनी किरणों के द्वारा घृत के समान उत्पन्न जल से पृथिवी आदि को सींचता है उस सूर्य की प्रशंसा में मेरी वाणियां सब व्याप्त हों ॥१॥

हरिं॒ हि योनि॑म॒भि ये स॒मस्व॑रन्हि॒न्वन्तो॒ हरी॑ दि॒व्यं यथा॒ सदः॑ ।
आ यं पृ॒णन्ति॒ हरि॑भि॒र्न धे॒नव॒ इन्द्रा॑य शू॒षं हरि॑वन्तमर्चत ॥२॥

पदार्थः—(**ये**) जो (**योनिम् हि**) जगत् के विविध पदार्थों के कारणभूत (**हरिम्**) हरणशील सूर्य को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**समस्वरन्**) उसके गुणों और कार्यों की प्रशंसा करते हैं वे (**दिव्यम्**) द्युलोक में होने वाले (**सदः**) स्थान में सूर्य (**यथा**) जिस प्रकार स्थित हो अपने कार्यों को करता है और उसके (**हरी** धारण आकर्षण गुणों की (**हिन्वन्तः**) प्रशंसा करते हुए ऐसा ही करते हैं, (**यम्**) जिस सूर्य को (**धेनवः**) गौओं के (**न**) समान ऋत्विग् लोग (**हरिभिः**) हरित वर्ण के सोम रसों से (**आ पृणन्ति**) पूरित करते हैं, हे लोगो! आप (**इन्द्राय**) सूर्य के (**हरिवन्तम्**) तेजोमय किरणों से युक्त (**शूषम्**) बल की (**अर्चत**) प्रशंसा करते हो।

भावार्थः—जो लोग जगत् के विविध पदार्थों के कारणभूत हरणशील सूर्य को लक्ष्य में रखकर उसके गुणों और कार्यों की प्रशंसा करते हैं वे

Scanned by CamScanner

द्युलोक में होने वाले स्थान में सूर्य किस प्रकार स्थित है और किस प्रकार कार्यों को करता है और उसके धारण और आकर्षण की प्रशंसा करते हुए ऐसा करते हैं । उस सूर्य को गायों के समान ऋत्विग् लोग सोमरस से पूरित करते हैं । हे ऋत्विजो ! आप तेजोमय किरणों से युक्त बल की प्रशंसा करो ॥२॥

सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्योः ।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस इन्द्र=सूर्य का सम्बद्ध (**यः**) वह विद्युत्(**हरितः**) भासमान है, (**यः**) जो (**आयसः**) चुम्बक पदार्थों से निर्मित है, वह (**हरिः**) भासमान वज्र (**निकामः**) नितान्त कमनीय और (**आ**) चारों तरफ से घातक है (**हरिः**) वह भासमान वज्र (**गभस्त्योः**) सूर्य के रसादान और जल प्रदान रूपी हाथों में है, वह सूर्य (**द्युम्नी**) द्योतनशील (**सुशिप्रः**) उत्तम बलों वाला और (**हरिमन्यु सायकः**) हरणशील कोप और कृमि आदि के नाशक किरणों वाला अथवा हरित वर्ण के मननशील धनुष अर्थात् इन्द्र धनुष वाला हैं (**इन्द्रे**) सूर्य में (**रूपा**) रूप (**हरिता**) तेजस्क एवं भासमान ही (**नि मिमिक्षिरे**) निषिक्त हूं ।

भावार्थः—इस सूर्य से सम्बद्ध वज्र=विद्युत् भासमान है और चुम्बक पदार्थों से निर्मित है। वह भासमान वज्र नितान्त कमनीय और चारों तरफ से घातक है। वह भासमान वज्र सूर्य के रसादान और जल प्रदान कार्यों से सम्बद्ध है। सूर्य द्योतनशील, उत्तम बलों का केन्द्र और इन्द्र धनुष वाला है। सूर्य में सभी रूप तेजों वाले ही निषिक्त हैं ॥३॥

दिवि न केतुरधि धायि हर्यतो विव्यचद्वज्रो हरितो न रंह्या ।
तुददहिं हरिशिप्रो य आयसः सहस्रशोका अभवद्धरिम्भरः ॥४॥

पदार्थः—(**दिवि**) अन्तरिक्ष में (**केतुः**) सूचक झण्डे के (**न**) समान यह सूर्य (**अधि धायि**) निहित किया गया है, (**हर्यतः**) कमनीय (**वज्रः**) इसका वज्र (**विव्यचत्**) सब को व्याप्त करता हैं (**न**) जिस प्रकार (**हरितः**) भासमान (**रंह्याः**) वेगवाली किरणें सर्वत्र फैल जाती है, (**यः**) जो इसका (**आयसः**) चुम्बक तत्व निर्मित वज्र है वह (**अहिम्**) मेघ को (**तुदत्**) नष्ट करता है । वह

Scanned by CamScanner

सूर्य (हरिशिप्रः) हरणशील वलों वाला (हरिंभरः) हरणशील किरणों का स्वामी, (सहस्रशोकाः) अपरिमित दीप्ति वाला है।

भावार्थः—आकाश में यह सूर्य सूचक झण्डे के समान निहित है। इसका कमनीय वज्र उसी प्रकार सबको व्याप्त करता है जिस प्रकार भासमान वेगवाली किरणें सर्वत्र फैल जाती हैं। इस चुम्बक तत्वों का बना वज्र मेघ को नष्ट करता है। यह सूर्य हरणशील वलों वाला, हरणशील किरणों से युक्त और अपरिमित दीप्ति वाला है ॥४॥

त्वं त्वमहर्यथा उपस्तुतः पूर्वेभिरिन्द्र हरिकेश यज्वभिः।
त्वं हर्यसि तव विश्वमुक्थ्य१मसामि राधो हरिजात हर्यतम् ॥५॥

पदार्थः—(हरिकेश, हरिजात इन्द्र) हरण शील किरणों वाला, हरणशक्ति युक्त, (त्वंत्वम्) वह सूर्य ही (पूर्वेभिः) पूर्ण (यज्वभिः) यज्ञकर्ताओं द्वारा (उपस्तुत) प्रशंसा किया गया (अहर्यथाः) हवि आदि पदार्थों को हरण करता है, (त्वम्) यह (तव) इसके निमित्त प्रदत्त (विश्वम्) सब (उक्थ्यम्) प्रशस्य (असामि) असाधारण (हर्यतम्) कान्त (राधः) हवि आदि धन को (हर्यसि) ग्रहण करता है।

भावार्थः—हारक किरणों वाला हरणशील यह सूर्य ही ज्ञानपूर्ण यज्ञ कर्ताओं द्वारा प्रशंसा किया गया हुत पदार्थों को ग्रहण करता है। यह सभी असाधारण, प्रशस्य हवि आदि धनों को ग्रहण करता है ॥५॥

ता वज्रिणं मन्दिनं स्तोम्यं मद इन्द्रं रथे वहतो हर्यता हरी।
पुरूण्यस्मै सवनानि हर्यत इन्द्राय सोमा हरयो दधन्विरे ॥६॥

पदार्थः—(ता) वे (हर्यतौ) कमनीय (हरी) धारण और आकर्षण गुण (मन्दिनम्) सबके हर्ष के साधन भूत (वज्रिणम्) वज्र वाले, (स्तोम्यम्) प्रशसनीय (इन्द्रम्) सूर्य को (मदे) हर्षदायक (रथे) रमणीय संसार रथ में (वहतः) धारण करते हैं, (अस्मै) इस (इन्द्राय) सूर्य के लिए (हरयः) भासमान (सोमाः) लोक (पुरूणि) बहुत से (सवनानि) प्रातः दोपहर और सायम् सवनों को (दधन्विरे) धारण करते हैं।

भावार्थः—वे कमनीय धारण और आकर्षण गुण सबके सुख के साधन, वज्र के स्वामी, प्रशस्य सूर्य को हर्षदायक रमणीय संसार रथ में

Scanned by CamScanner

धारण करते हैं। इस सूर्य के लिए इसके प्रकाश से भासमान विविध लोक प्रभूत प्रातः मध्य और सायं सवनों को धारण करते हैं ॥६॥

अरं कामा॑य हर॑यो दधन्विरे स्थिराय॑ हिन्वन्हर॑यो हरीं तुरा ।
अर्वेद्भिर्यो हरि॑भिर्जोषमीय॑ते सो अ॑स्य कामं हरि॑वन्तमानशे ॥७॥

पदार्थः—(**हरयः**) हरणशील किरणें (**कामाय**) सूर्य की कामना के लिए (**अरम्**) पर्याप्त शक्ति को (**दधन्विरे**) धारण करती है, वे (**हरयः**) हरणशील किरणें (**स्थिराय**) सूर्य के स्थिर रहने के लिए (**तुरा**) त्वरमाण (**हरी**) धारण आकर्षण गुण को (**हिन्वन्**) प्रेरित करती हैं, (**यः**) जो (**अर्वद्भिः**) गमनशील (**हरिभिः**) किरणों से (**जोषम्**) सेवनीय वस्तु वा लोक को (**ईयते**) जाता है (**सः**) वह (**अस्य**) इस अपने (**कामम्**) कमनीय (**हरिवन्तम्** सोममय पदार्थ को (**आनशे**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—सूर्य की हरणशील किरणें सूर्य के कार्य की पूर्त्यर्थ पर्याप्त शक्ति को धारण करती है। वे सूर्य के स्थिर रहने के लिए त्वराशील धारण और आकर्षण गुणों को प्रेरित करती हैं। जो गमनशील किरणों से सेवनीय पदार्थ वा लोक को जाता है वह अपने कमनीय सोममय पदार्थ को प्राप्त करता है ॥७॥

हरि॑श्मशारुर्हरि॑केश आयसस्तु॑रस्पेये यो ह॑रिपा अव॑र्धत ।
अर्वेद्भिर्यो हरि॑भिर्वाजिनी॑वसुरति विश्वा दुरि॑ता पारि॑षद्धरी ॥८॥

पदार्थः—(**हरिश्मशारुः**) हरणशील किरणें जिसकी श्मश्रु के समान हैं वह, (**हरिकेशः**) भासमान किरणों वाला, (**आयसः**) चुम्बक तत्वमय (**यः**) जो सूर्य (**तुरस्पेये**) शीघ्रपेय जल में (**हरिपाः**) किरणों द्वारा पान करने वाला हुआ (**अवर्धत**) बढ़ता है, (**यः**) जो (**अर्वद्भिः**) गमनशील (**हरिभिः**) किरणों से (**वाजिनीवसुः**) अन्न और धनों की उत्पादक पृथिवी का स्वामी है वह (**हरी**) रसादान और रसप्रदान रूप कर्मों से (**विश्वा**) सभी (**दुरिता**) रोग आदि को (**पारिषद्**) पार लगाता है।

भावार्थः हरणशील किरणों और शक्तियों से युक्त, चुम्बक तत्वमय सूर्य शीघ्रता से पीने योग्य जल आदि पदार्थों को किरणों द्वारा पीता हुआ बढ़ता है। वह गमनशील किरणों द्वारा अन्न और धन की दात्री

Scanned by CamScanner

पृथिवी का स्वामी है। वह रसादान और रस प्रदान रूप कर्मों से समस्त रोग आदि से हमें पार लगाता है ॥८॥

स्रुवेव यस्य हरिणी विपेततुः शिप्रे वाजाय हरिणी दविध्वतः ।
प्र यत्कृते चमसे मर्मृजद्धरी पीत्वा मदस्य हर्यतस्यान्धसः ॥९॥

पदार्थः—(यस्य) जिस इन्द्र=परमेश्वर के शासन में (स्रुवा इव) यज्ञ में दो स्रुवों के समान (हरिणी) दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र (विपेततुः) गति करते हैं, और जिसकी (हरिणी) हरण शक्ति युक्त (शिप्रे) आकाश और पृथिवी दो दाढ़ों के समान (वाजाय) अन्न और ऐश्वर्य के लिए (दविध्वतः) चल रहे हैं (यत्कृते) जिसके बनाये (चमसे) भोग के क्षेत्र संसार में (मदस्य) सुखकारी (हर्यतस्य) कान्तियुक्त (अन्धसः) प्राण धारण कराने वाले रस को (पीत्वा) पीकर आत्मा (हरी) अपने ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को (प्र मर्मृजत्) पवित्र कर लेता है।

भावार्थः—जिस परमेश्वर के शासन में यज्ञ के दो स्रुवों की भांति दीप्तियुक्त सूर्य और चन्द्र गति करते हैं जिसकी हरणशक्ति युक्त आकाश और भूमि दो दाढ़ों के समान अन्न और ऐश्वर्य के लिए चल रहे हैं और जिसके बनाये भोग के क्षेत्र इस जगत् के सुखकारी कान्तियुक्त प्राण धारक रस को पीकर जीवात्मा अपने ज्ञान और कर्मेन्द्रियों को पवित्र करता है वह परमेश्वर उपासनीय है ॥९॥

उत स्म सद्म हर्यतस्य पस्त्यो३रत्यो न वाजं हरिवाँ अचिक्रदत् ।
मही चिद्धि धिषणाहर्यदोजसा बृहद्वयो दधिषे हर्यतश्चिदा ॥१०॥

पदार्थः—(उत) और भी (हर्यतस्य) कमनीय सूर्य का (सद्म) स्थान (पस्त्योः) द्यु और पृथिवी लोक से सम्बद्ध हैं, (हरिवाम्) हरण शक्तियों वाला यह (अत्यः न) अश्व के समान (वाजम्) संग्राम मेघ के साथ संग्राम में (अचिक्रदत्) जाता है, (ओजसा) ओज से युक्त सूर्य को (मही) महती (चित् धिषण) प्रशंसा (अहर्यत्) चाहती है, (हर्यतः चित्) यजमान के लिए (बृहत्) महान् (वयः) अन्न (आ दधिषे) धारण करता है।

भावार्थः—कमनीय सूर्य का स्थान द्यु और पृथिवी से सम्बद्धहै। वह हरणशक्ति वाला सूर्य अश्व की भांति वृत्र के संग्राम में जाता है। बल से

Scanned by CamScanner

युक्त उस सूर्य की महती प्रशंसा=प्रशस्ति करना चाहती है। यजमान के लिए वह प्रचुर अन्न को धारण करता है ॥१०॥

आ रोदसी हर्यमाणो महित्वा नव्यंनव्यं हर्यसि मन्म नु प्रियम् ।
प्र पस्त्यमसुर हर्यतं गोराविष्कृधि हरये सूर्याय ॥११॥

पदार्थः—(**हर्यमाणः**) हरण शक्ति को लगाता हुआ, (**महित्वा**) महिमा से (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक को (**आ**) आपूरित करता हैं तथा (**नव्यम् नव्यम्**) नवीन नवीन (**प्रियम् नु**) प्रियकारी (**मन्म**) प्रशंसा वचन को (**नु**) शीघ्र (**हर्यसि**) चाहता हैं (**असुरः**) बलवान् (**हर्यतम्**) कमनीय (**गोः**) जल के (**पस्त्यम्**) स्थान (**हरये**) हरणशील (**सूर्याय**) सूर्य के लिए (**आविः कृधि**) प्रकट करता है।

भावार्थः—हरण शक्ति युक्त आदित्य अपनी महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को आपूरित करता है तथा नवीन नवीन प्रशंसा वचन को प्राप्त करता है। बलवान् वह जल के उत्तम स्थान को हरणशील सूर्यात्मक अपने लिए प्रकट करता है ॥११॥

आ त्वा हर्यन्तं प्रयुजो जनानां रथे वहन्तु हरिशिप्रमिन्द्र ।
पिबा यथा प्रतिभृतस्य मध्वो हर्यन्यज्ञं सधमादे दशोणिम् ॥१२॥

पदार्थः—(**इन्द्र हर्यन्तम् त्वा**) इस भास्वर इन्द्र=सूर्य को जो (**हरि शिप्रम्**) हारक बल वाला है (**रथे**) प्रकाश चक्र में (**प्रयुजः**) जुते हुए किरण जाल (**जनानाम्**) लोगों के पास (**वहन्तु**) पहुंचाते हैं (**यथा**) जिससे (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**हर्यन्**) प्राप्त होता हुआ (**प्रतिभृतस्य**) उपहृत (**दशोणिम्**) दश अंगुलियों से चुआये गये (**मध्वः**) सोमरस को (**सधमादे**) अन्तरिक्ष में (**पिब**) पीता है।

भावार्थः—भास्वर और हारक बल वाले सूर्य को उसके प्रकाश चक्र में संयुक्त किरण जाल लोगों के समीप पहुँचाते हैं। यज्ञ को प्राप्त होता हुआ वह दश अंगुलियों द्वारा निचोड़े गए सोमरस को अन्तरिक्ष में पीता है ॥१२॥

अपाः पूर्वेषां हरिवः सुतानामथो इदं सवनं केवलं ते ।
ममद्धि सोमं मधुमन्तमिन्द्र सत्रा वृषञ्जठर आ वृषस्व ॥१३॥

पदार्थः – (हरिवः) रसादान और रसप्रदान कर्मों से युक्त इन्द्र=सूर्य (पूर्वेषाम्) पहले से (सुतानाम्) अभिषुत सोमों को (अपाः) पीता है, (अथ उ) और (इदम्) यह (सवनम्) माध्यन्दिन सवन (केवलम्) केवल (ते) इस का है, (वृषन्) बलशाली (इन्द्र) यह सूर्य (मधुमन्तम्) माधुर्ययुक्त (सोमम्) सोम को (ममद्धि) पीता है और (सत्रा) सदा (जठरे) ये जठर में (आवृषस्व) सींचता है ।

भावार्थः — रसादान और रस प्रदान कर्मों से युक्त सूर्य पहले से अभिषुत सोमों को पीता है और यह माध्यन्दिन सवन केवल इसका है। यह सूर्य माधुर्ययुक्त सोम को पीता है और निरन्तर अपने जठर में अर्थात् अन्तरिक्ष में सींचता है ॥१३॥

यह दशम मण्डल में छानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—९७

ऋषिः—१—२३ भिषगाथर्वणः ॥ देवता—ओषधीस्तुतिः ॥ छन्दः—१ २, ४ – ७, ११, १७ अनुष्टुप् । ३, ९, १२, २२,२३ निचृदनुष्टुप् । ८, १०, १३—१६, १८—२१ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः— गान्धारः ॥

या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥१॥

पदार्थः—(याः) जो (ओषधीः) ओषधियां (पुरा) पहले (देवेभ्यः) मनुष्य आदि से (पूर्वा) पुरातन (त्रियुगम्) वसन्त वर्षा और शरद् ऋतुओं में (जाता) उत्पन्न हुई है, (अहम्) मैं भिषग् (नु) निश्चय से (बभ्रूणाम्) बभ्रु वर्णवाली उन ओषधियों के (शतम् सप्त च) एक सौ सात (धामानि) नाम जन्म और स्थानों को (मेने) जानता हूँ ।

भावार्थः—जो औषधियां मनुष्य आदि से पुरातन हैं और वसन्त वर्षा और शरद् में पैदा होने वाली हैं उन भूरे वर्ण के पत्तों वाली ओषधियों के एक सौ सात नामों वाली, एक सौ सात स्थानों में होने वाली

Scanned by CamScanner

और शरीर के १०७ मर्मस्थानों पर प्रयुक्त की जाने वाली ओषधियों को मैं भिषग् जानता हूं ॥१॥

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः ।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥२॥

पदार्थः - (अम्बवः) इन मातृभूत ओषधियों के (शतम्) सौ (धामानि) नाम और प्रयोग के प्रकार एवं स्थान है (उत) और (सहस्रम्) हजारों (रुहः) प्ररोह हैं, (अधा) और (यूयम्) ये (शतक्रत्वः) सैकड़ों कर्मों वाली हैं (मे) मेरे (इमम्) इस रोगी को (अगदम्) रोगरहित (कृत) करती हैं ।

भावार्थः—मातृभूत इन ओषधियों के सैकड़ों नाम और प्रयोग के प्रकार हैं। इनके हजारों प्ररोह हैं। सैकड़ों कर्मों और प्रभावों वाली हैं। ये मेरे इस रोगी को रोगरहित करती हैं ॥२॥

ओषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥३॥

पदार्थः—(पुष्पवतीः) फूलों वाली (प्रसूवरीः) फलोंवाली (अश्वा इव) अश्वों के समान (सजित्वरीः) रोगों पर विजय पाने वाली (पारयिष्णवः) रुग्ण को रोग से पार लगाने वाली (वीरुधः) लतामयी (ओषधीः) ओषधियें (प्रति) रोगी के ऊपर (मोदध्वम) हृष्ट वा प्रभावशाली होती हैं ।

भावार्थः—पुष्पों वाली, फलों वाली, अश्वों के समान रोग पर विजय पाने वाली, रोगी को नीरोग करने वाली लताओं वाली ओषधियां रोगी के ऊपर प्रभावशाली, होती हैं ॥३॥

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे ।
सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥४॥

पदार्थः—(ओषधीः) ओषधियें (मातरः) मातृभूत और (देवीः) दीपन, द्योतन आदि गुणों वाली हैं (इति) इस प्रकार मैं वैद्य (वः) इनके (तत्) प्रभाव को (उपब्रुवे) बताता हूँ, (अश्वम्) इन्द्रियां, (गाम्) नाड़ी-नस (वासः) रक्त, (आत्मानम्) हृदय के प्रति हे (पुरुष) रोगी मैं (सनेयम्) इन्हें देता हूँ ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—ओषधियें माता के समान हैं और दीपन, द्योतन आदि गुणों वाली हैं। इनके इस प्रभाव का मैं वैद्य उपदेश करता हूँ। हे पुरुष ! इन्द्रियों, नाड़ी नसों, रक्त और हृदय आदि के विकारों में इनको देता वा प्रयुक्त करता हूं ॥४॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥५॥

पदार्थः—(**वः**) इन ओषधियों के ओषधिपने का (**अश्वत्थे**) वायु अथव मेघ पर (**निषदनम्**) आश्रय है, (**पर्णे**) पत्तों पर (**वः**) इनका (**वसतिः** निवास (**कृता**) किया गया है ये (**गोभाजः**) पृथिवी, जल, सूर्य और रश्मियों का सेवन करने वाली (**इत्किल**) निश्चय ही (**असथ**) हैं (**यत्**) जिससे (**पुरुषम्**) पुरुष के देह का (**सनवथ**) सेवन करती हैं।

भावार्थः—इन ओषधियों के ओषधिपने का आश्रय वायु, मेघ और विद्युत् पर है। पत्तों पर इनका निवास किया गया है। ये भूमि, जल, सूर्य किरण आदि का सेवन करती हैं और जिससे ये मनुष्य के देह पर प्रयुक्त की जाती हैं ॥५॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव ।
विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः ॥६॥

पदार्थः—(**यत्र**) जिसके चारों तरफ (**समितौ**) सभा में (**राजानः**) राजाओं के (**इव**) समान (**ओषधीः**) ओषधियें (**समग्मत**) संगत होती हैं, (**रक्षोहा**) कृमियों का नाशक, (**अमीव चातनः**) रोग का विनाशक (**सः**) वह (**विप्रः**) मेधावी (**भिषक्**) भिषक् (**उच्यते**) कहा जाता है।

भावार्थः—जिसके चारों तरफ ओषधियां उसी प्रकार विराजती है जिस प्रकार सभा में राजा लोग बैठते हैं,वह कृमियों का नाशक और रोगों का विनाश करने वाला मेधावी भिषग् कहा जाता है ॥६॥

अश्वावतीं सोमवतीमूर्जयन्तीमुदोजसम् ।
आवित्सि सर्वा ओषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥७॥

पदार्थः—मैं वैद्य (**अस्मै**) इस रोगी के (**अरिष्टतातये**) आरोग्य के लिए

Scanned by CamScanner

(**अश्वावतीम्**) अश्वावती, (**सोमावतीम्**) सोमावती (**ऊर्जयन्तीम्**) ऊर्जयन्ती (**उदोजसम्**) उदोजस् इन (**सर्वाः**) सभी (**ओषधीः**) ओषधियों को जानता हूँ ।

भावार्थः—मैं वैद्य अश्वावती, सोमावती, ऊर्जयन्ती और उदोजस् नाम की इन ओषधियों को इस रोगी के रोग निवारणार्थ जानता हूं ॥७॥

उच्छुष्मा ओषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते ।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥

पदार्थ— हे(**पुरुष**) रुग्ण मनुष्य ! (**तव**) तुम्हारे (**आत्मानम्**) शरीर के प्रति (**धनम्**) आरोग्य धन को (**सनिष्यन्तीनाम्**) देने की इच्छा करती हुई (**ओषधीनाम्**) ओषधियों के (**शुष्माः**) बल (**गोष्ठाद्**) गोशालें से (**गावः**) गायों के (**इव**) समान (**उदीरते**) आता है ।

भावार्थः— हे रुग्ण पुरुष !तुम्हारे शरीर के प्रति नीरोगता रूपी धन को देने की कामना करती हुई ओषधियों का बल तुझ में उनसे उसी प्रकार आता है जिस प्रकार गोशाला से गायें निकलती हैं ॥८॥

इष्कृतिर्नाम वो माताथो यूयं स्थ निष्कृतीः ।
सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ ॥९॥

पदार्थः-- (**वः**) इन ओषधियों की (**माता**) माता के समान पृथिवी (**इष्कृतिः नाम**) इष्कृति [अन्न आदि को उत्पन्न करने वाली] नाम की है, (**अथो**) और (**यूयम्**) ये इस लिए (**निष्कृतीः**) रोग को बाहर निकालने वाली होने से 'निष्कृति' हैं ये (**सीराः**) देह की नस नाड़ियों को प्राप्त कर (**पतत्रिणीः**) उनमें वेग से गति करने वाली (**स्थन**) होती है (**यत्**) जो पदार्थ (**आमयति**) शरीर को रोग से पीड़ित करता है उसे (**निष्कृथ**) बाहर निकाल देती हैं ।

भावार्थः— इन ओषधियों की माता पृथिवी 'इष्कृति' है अतः ये 'निष्कृति' हैं । ये शरीर की नस-नाड़ियों में वेग से गति करती हुई जो पदार्थ रोग से पीडित कर रहा होता है उसे वहार निकाल देती हैं ॥९॥

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेनइव व्रजमक्रमुः ।
ओषधीः प्राचुच्यवुर्यत्किं च तन्वो३ रपः ॥१०॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः–(**व्रजम्**) पथिक समूह पर (**स्तेन**) चोर के (**इव**) समान (**परिस्थाः**) देह में सर्वत्र व्याप्त हुई (**ओषधीः**) ओषधियां रोग समूह पर (**अति अक्रमीत्**) आक्रमण करती हैं (**यत्**) जो (**किञ्च**) कुछ (**तन्व**) शरीर का (**रपः**) दूषण है (**प्र अचुच्यवुः**) उसे देह से दूर करती हैं।

भावार्थः—जिस प्रकार चोर पथिकों के समूह पर आक्रमण करता है उसी प्रकार देह में सर्वत्र व्याप्त हुई ओषधियां रोग समूह पर आक्रमण करती हैं और शरीर में जो कुछ भी दूषण होता है उसे बाहर निकाल देती हैं ॥१०॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे ।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

पदार्थ—(**यत्**) जब (**अहम्**) मैं भिषग् (**वाजयन्**) रोगी को बल देता हुआ (**इमाः ओषधीः**) इन ओषधियों को (**हस्ते**) हाथ में (**आदधे**) लेता हूँ अर्थात् रोगी पर प्रयुक्त करता हूं तो (**यक्ष्मस्य**) रोग का आत्मा उसी प्रकार (**पुरा**) पूर्णतः (**नश्यति**) नष्ट हो जाता है जिस प्रकार (**जीवगृभः**) मृत्यु से प्राणी नष्ट हो जाते हैं।

भावार्थः—जब मैं रोगी में बल उत्पन्न करता हुआ इन ओषधियों को प्रयोग में लाता हूं तो रोग का आत्मा पूर्णतः भाग जाता है जिस प्रकार मृत्यु से प्राणी नष्ट हो जाते हैं ॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः ।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥१२॥

पदार्थः—ये (**ओषधीः**) ओषधियां (**यस्य**) जिस मनुष्य के (**अंगम् अंगम्**) अङ्ग अङ्ग में और (**परुष्परुः**) पोरु-पोरु में (**प्रसर्पथ**) व्याप्त हो जाती हैं (**उग्रः**) उग्र (**मध्यमशीरिव**) मध्यस्थ बलवान् पुरुष के समान (**ततः**) उससे (**यक्ष्मम्**) रोग को (**विबाधध्वे**) नष्ट कर देती हैं।

भावार्थः—ये ओषधियां जिस मनुष्य के अङ्ग-अङ्ग में और पोढ़-पोढ़ में व्याप्त हो जाती हैं, उग्र मध्यस्थ पुरुष के समान उसके शरीर से रोग को नष्ट कर देती हैं ॥१२॥

Scanned by CamScanner

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना ।
साकं वातस्य ध्राज्या साकं नश्य निहाकया ॥१३॥

पदार्थः—(यक्ष्म) यह रोग (चाषेण) भूख के (साकम्) साथ (प्रपत) नष्ट होता है, (किकिदीविना) विशेष वेदना की 'कि कि' आदि ध्वनि के (साकम्) साथ (प्रपत) नष्ट होता है । (वातस्य) वायु के (ध्राज्या) वेग के (साकम्) साथ तथा (निहाकया) पीड़ा की कराह के (साकम्) साथ (नश्य) नष्ट होता है ।

भावार्थः—यह रोग ओषधियों के सेवन से भूख के साथ नष्ट होता है, विशेष वेदना के 'कि कि' शब्द के साथ नष्ट होता है और वायु के वेग के साथ तथा पीड़ा की कराह के साथ ही प्रनष्ट हो जाता है ॥१३॥

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत ।
ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः ॥१४॥

पदार्थः—(वः) इन ओषधियों में (अन्या) अन्यतम (अन्याम्) दूसरी ओषधि के प्रभाव को (अवतु) रक्षित रखती हैं (अन्या) एक दूसरी (अन्यस्या) एक दूसरी के (उपावत) समीप रहती है (ताः) वे (सर्वाः) सभी ओषधियें (संविदाना) परस्पर मिली हुई (मे) मुझ वैद्य के (इदम्) इस (वचः) वचन की (प्र अवत) रक्षा करती हैं ।

भावार्थः—इन ओषधियों में एक दूसरी एक दूसरी के साथ मिलकर दी जाने पर एक दूसरे के प्रभाव की रक्षा करती हैं और बढ़ाती हैं । ये सभी मिलकर बनाई गई हुई मुझ वैद्य के वचन को (कि रोगी अच्छा हो जावेगा) पूरा करती हैं ॥१४॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥१५॥

पदार्थः—(याः) जो (फलिनीः) फलवाली, (याः) जो (अफलाः) विना फलवाली, जो (अपुष्पाः) विना फूल वाली (च) और (याः) जो (पुष्पिणीः) पुष्पवाली हैं (बृहस्पति प्रसूताः) प्राण अथवा विद्वान् से उत्पन्न की गई अथवा निर्मित की गई (ताः) वे (नः) हमें (अंहसः) रोगरूपी पाप से (मुञ्चन्तु) छुड़ाती हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो ओषधियां फलयुक्त अथवा विना फल वाली हैं, जो फूल वाली अथवा विना फूल वाली हैं वे विद्वान् वैद्य द्वारा निर्मित की गई अथवा प्राण द्वारा उत्पन्न होने वाली हमें रोगरूपी पाप से छुड़ाती हैं ॥१५॥

मुञ्चंतु मा शपथ्या३ दथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥१६॥

पदार्थः – ये ओषधियां (**मा**) मुझे (**शपथ्याद्**) मैं शपथ खाता हूँ कि अब ऐसा कुछ नहीं करूँगा कि यह रोग पुनः आवे—इत्यादि वक झक वाले रोग से (**मुञ्चन्तु**) दूर रखती हैं, (**अथो उत**) और (**वरुण्यात्**) जल के प्रभाव से उत्पन्न रोग से दूर रखती हैं (**अथो**) और (**यमस्य**) वायु के (**पड्वीशात्**) बन्धन से अर्थात् वायु जनित गठिया आदि रोग से (**अथो**) और (**देव किल्विषात्**) इन्द्रियजन्य रोगों से छुड़ाती हैं ।

भावार्थः—ये ओषधियाँ मुझे वक-झक वाले रोग से, जल के प्रभाव से उत्पन्न रोगों से, वायु जनित रोगों से और ऐन्द्रियिक रोगों से बचाती हैं ॥१६॥

अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥१७॥

पदार्थः—(**ओषधयः**) ओषधियां (**दिवः**) द्युलोक से (**अवपतन्ती**) नीचे आती हुई (**परि अवदन्**) कहती हैं कि (**यम्**) जिस (**जीवम्**) जीव को हम (**अश्नवामहै**) व्याप्त करती हैं (**सः**) वह (**पूरुषः**) पुरुष (**न**) नहीं (**रिष्याति**) विनष्ट होता है ।

भावार्थः—ओषधियों में विद्यमान रोगघातक ऊष्मायें और शैत्य द्युलोक से इनमें आते हुए कहते हैं कि हम जिस जीव को व्याप्त करते हैं वह कभी नष्ट नहीं होता है ॥१७॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे ॥१८॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(याः) जो (ओषधीः) ओषधियें (सोमराज्ञीः) सोमराजा=चन्द्रमा सम्बन्धी, (बह्वीः) बहुत और (उत विचक्षणाः) बहुत प्रकार से दिखाई पड़ने वाली हैं (तासाम्) उनमें (त्वम्) वह (उत्तमा) उत्तम (असि) है (अरम्) अत्यन्त (कामाय) कान्त (हृदे) हृदय के लिए (शम्) सुखदायक है।

भावार्थः—जो ओषधियाँ चन्द्रमा से रस लेकर बढ़ती हैं वे विविध प्रकार की हैं और उनमें भी वह उत्तम है और कोमल हृदय-भाग के लिये सुखकर हैं ॥१८॥

या ओषधीः सोमराज्ञीर्विष्ठिताः पृथिवीमनु ।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥१९॥

पदार्थ—(याः) जो (ओषधीः) ओषधियें (सोमराज्ञीः) चन्द्रमा के प्रभाव वाली हैं और (पृथिवीम्) पृथिवी (अनु) पर (निष्ठिताः) स्थित हैं वे (बृहस्पतिप्रसूताः) योग्य वैद्य से निर्मित की गई (अस्यै) इस रुग्ण तनू=शरीर के लिए (वीर्यम्) बल को (सम् दत्त) धारण करती हैं।

भावार्थः—जो ओषधियें चन्द्रमा के प्रभाव वाली हैं और पृथिवी पर स्थित हैं वे योग्य वैद्य से निर्मित की गई हुई इस रुग्ण शरीर के लिए बल को धारण करती हैं ॥१९॥

मा वो रिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः ।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम् ॥२०॥

पदार्थः—(खनिता) भूमि का खोदने वाला (अहम्) मैं (यस्मै) जिस रुग्ण के लिए (च) भी (वः) इनको (खनामि) खोदता हूँ (वः) वे (मा) नहीं (रिषत्) मारतीं (अस्माकम्) हमारे (सर्वम्) सब (द्विपत्) दो पैर वाले और (चतुःपत्) चार पैरों वाले (अनातुरम्) नीरोग (अस्तु) होवें।

भावार्थः—भूमि का खोदने वाला मैं जिसके लिए इन ओषधियों को खोदता हूँ उसे वे नहीं मारती हैं। हमारे मनुष्य और पशु आदि सभी नीरोग होवें ॥२०॥

याश्चेदमुपशृण्वन्ति याश्च दूरं परागताः ।
सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्यम् ॥२१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**याः च**) जिन ओषधियों के विषय में (**इदम्**) इस मुझ वैद्य के वचन को (**उपशृण्वन्ति**) लोग सुनते हैं (**याश्च**) और जो (**दूरम्**) दूर तक (**परागताः**) फैली हुई हैं (**सर्वाः**) वे सब (**वीरुधः**) लतायें (**संगत्य**) मिलकर (**अस्मै**) इस तनू के लिए (**वीर्यम्**) बल (**संदत्त**) देवें ।

भावार्थः—जिन ओषधियों के विषय में लोग उनके गुण दोष को मुझ वैद्य से सुन चुके हैं और जो दूर तक फैली हुई हैं वे सब ओषधियां मिलकर इस शरीर में बल देवें ॥२१॥

ओषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा ।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन्पारयामसि ॥२२॥

पदार्थः—(**ओषधयः**) ओषधियें (**राज्ञा**) ओषधियों के राजा (**सोमेन**) सोम के साथ (**संवदन्ते**) संवाद करती हैं कि (**राजन्**) हे सोमराजन् ! (**ब्राह्मणः**) वेदज्ञ विद्वान् (**यस्मै**) जिसके लिए हमारा (**कृणोति**) प्रयोग करता है (**तम्**) उसे (**पारयामासि**) संकट से पार करती हैं ।

भावार्थः ओषधियें अपने राजा सोमलता से संवाद करती हैं कि हे राजन् ! जिस रोगी पर हमारा प्रयोग किया जाता है उस को हम संकट से पार लगा देती हैं ॥२२॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः ।
उपस्तिरस्तु सो३स्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥२३॥

पदार्थः—(**त्वम्**) यह ओषधि (**उत्तमा**) उत्तम (**असि**) है (**वृक्षाः**) वृक्ष (**तव**) इसके (**उपस्तयः**) अधोवर्त्ती हैं अतः (**सः**) वह रोग (**उपस्तिः**) अधःशायी (**अस्तु**) होता है (**अस्माकम्**) हमारा (**यः**) जो (**अस्मान्**) हमें (**अभि दासति**) पीड़ित करता है ।

भावार्थः—यह ओषधि बहुत उत्तम है । वृक्ष इसके अधःशायी हैं अतः वह रोग हमारा अधःशायी होता है । इन ओषधियों के सेवन से जो कि हमें सताता है ॥२३॥

यह दशम मण्डल में सत्तानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—६८

ऋषिः—१—१२ देवापिरार्ष्टिषेणः ॥ देवताः—देवाः ॥ छन्दः—१, ७ भुरिक्त्रिष्टुप् । २, ६, ८, ११, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ३, ५ त्रिष्टुप् । ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, १० विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सूचना यह सूक्त वर्षकामेष्टि का वर्णन करता है। वर्षा के लिए यज्ञ का प्रकार इस सूक्त में वर्णित है। पाश्चात्य और उनके अनुयायी इस सूक्त से वेद में इतिहास दिखाते हैं परन्तु वास्तविक स्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। इसमें आर्ष्टिषेण, देवापि और शन्तनु पद आये हैं। परन्तु ये व्यक्तिवाचक नाम नहीं। आर्ष्टिषेण ऋष्टिषेण का पुत्र है। अर्थात् ऋष्टिषेण मरुद्गण हैं और उनके पुत्र देवापि और शन्तनु क्रमशः विद्युत् और जल हैं।

बृह॑स्पते॒ प्रति॑ मे दे॒वता॑मिहि मि॒त्रो वा॒ यद्वरु॑णो॒ वासि॑ पू॒षा ।
आ॒दि॒त्यैर्वा॒ यद्वसु॑भिर्म॒रुत्वा॒न्त्स प॒र्जन्यं॒ शन्त॑नवे वृषाय ॥१॥

पदार्थः—(बृहस्पते) वृष्टि का देव विजातीय तेज जो स्तनयित्नु और वृष्टि का भी स्वामी है (मे) इस वर्षा के (देवताम्) निमित्तभूत समस्त दिव्य पदार्थों का (प्रतीहि) प्रतिनिधि बनता है, वही (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (यद् वा पूषा) पूषा (असि) है (यत्) जो वह (आदित्यैः) आदित्यों अर्थात् १२ मासों की १२ प्रकार की सूर्य किरणों से, (वसुभिः) वसुओं से युक्त (मरुत्वान्) मरुतों से भी युक्त है, (सः) वह (शन्तनवे) जल के लिए (पर्जन्यम्) मेघ को (वृषाय) बरसाता है।

भावार्थः—वृष्टि का देने वाला विजातीय तेज जो स्तनयित्नु और वृष्टि का भी स्वामी है समस्त प्राकृतिक दिव्य शक्तियों का प्रतिनिधित्व करता है। वही मित्र, वरुण, पूषा है और वही आदित्य वसुओं और मरुतों से युक्त है। वह जल के लिए मेघ को बरसाता है ॥१॥

आ दे॒वो दू॒तो अ॑जि॒रश्चि॑कि॒त्वान्त्वद्दे॑वापे अ॒भि माम॑गच्छत् ।
प्र॒ती॒चीनः॒ प्रति॒ मामा व॑वृत्स्व॒ दधा॑मि ते द्यु॒मतीं॒ वाच॑मा॒सन् ॥२॥

पदार्थः—(देवापे त्वत्) विद्युत् के समीपता (देवः) द्योतन और दीपन युक्त (अजिरः) गतिशील, (दूतः) दूतभूत, (चिकित्वान्) संचयकारी वायु

Scanned by CamScanner

(माम्) इस बृहस्पति=विजातीय तेज को (अभि) लक्ष्य करके (आ अगच्छत्) आता है, यह बृहस्पति (प्रतीचीनः) अभिमुख होकर (माम्) विद्युत् के प्रति (आववृत्स्व) लौटता है और (ते) इसके लिए (द्युमतीम्) दीप्तियुक्त (वाचम्) वाक् को (आसन्) मुख में (आ दधामि) धारण कराता हैं।

भावार्थः—देवापि=विद्युत् द्वारा प्रेरित, द्योतन और दीपन युक्त, गतिमान् संचयकारी वायु इस विजातीय तेज को लक्ष्य करके उसके पास प्राप्त होता है। यह बृहस्पति=विजातीय तेज अतिमुख हुआ विद्युत् के प्रति लौटता है और उस विद्युत् के लिए दीप्तियुक्त गर्जना और कड़क वाली वाक् को उसके मुख में अर्थात् मेघ में धारण कराता है ॥२॥

अस्मे धेहि द्युमतीं वाचमासन्बृहस्पते अनमीवामिषिराम् ।
यया वृष्टिं शन्तनवे वनाव दिवो द्रप्सो मधुमाँ आ विवेश ॥३॥

पदार्थः— (बृहस्पते) यह विजातीय तेज जो स्तनयित्नु का भी स्वामी है (अस्मे) इस देवापि=विद्युत् के लिए (द्युमतीम्) दीप्तिवाली (अनमीवाम्) अरोगकारिणी, (इषिराम्) गमनमयी (वाचम्) माध्यमिका वाक् अर्थात् कड़क आदि को (आसन्) इस विद्युत् के मुख मेघ में (धेहि) धारण करता है (यया) जिस वाणी=कड़क के द्वारा (शन्तनवे) जल के लिए (वृष्टिम्) वृष्टि को (वनाव) बरसाता है, (दिवः) अन्तरिक्ष से (द्रप्सः) उदकस्पन्द माधुर्ययुक्त हुआ (आ विवेश) पथिवी पर व्याप्त होता है।

भावार्थः— वह विजातीय तेज जो स्तनयिलु का भी स्वामी है इस देवापि=विद्युत् के लिए दीप्ति वाली, अरोगकारिणी, गमनशीला माध्यमिका वाक् स्तनयित्नु को इस विद्युत् के मुख में धारण कराता है। जिससे जल के निमित्त वृष्टि बरसाता है और अन्तरिक्ष से उदकस्यन्द पृथिवी पर व्याप्त होता है ॥३॥

आ नो द्रप्सा मधुमन्तो विशन्त्विन्द्र देह्यधिरथं सहस्रम् ।
नि षीद होत्रमृतुथा यजस्व देवान्देवापे हविषा सपर्य ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्रः) यह बृहस्पति=विजातीय तेज (नः) हमें (मधुमन्तः) माधुर्ययुक्त (द्रप्साः) उदकस्यन्द वा वृष्टि संस्त्याय (आ विशन्तु) प्राप्त कराता है (सहस्रम्) अधिकाधिक (अधिरथम्) पृथिवीरूपी रथ पर विद्यमान धन (देहि)

Scanned by CamScanner

प्रदान करता है, (देवापे) यह देवापि=विद्युत् रूपी वृष्टि यज्ञ का पुरोहित (निषीद) ऋत्विक्कर्म में बैठता हैं (ऋतुथा) समय-समय पर (होत्रम्) हवन=यज्ञ को (यजस्व) करता है और (देवान्) वृष्टि के निमित्त (देवान्) दिव्य पदार्थों की (हविषा) घृत और हवि आदि से (सपर्य) सेवा करता है ।

भावार्थः--विजातीय तेज हमें माधुर्ययुक्त वृष्टि संस्त्याथ प्राप्त कराता है । अधिकाधिक पृथिवी पर लदा हुआ धन प्रदान करता है । यह देवापि=विद्युत् वृष्टि यज्ञ का पुरोहित होकर समय-समय पर यज्ञ का संपादन करता है और वृष्टि के निमित्त दिव्य पदार्थों की घृत हवि आदि से सेवा करता है ॥४॥

आर्ष्टिषेणो होत्रमृषिर्निषीदन्देवापिर्देवसुमतिं चिकित्वान् ।
स उत्तरस्मादधरं समुद्रमपो दिव्या असृजद्वर्ष्या अभि ॥५॥

पदार्थः—(आर्ष्टिषेणः) ऋष्टिषेण=मरुद्गणों का पुत्र आर्ष्टिषेण (ऋषिः) गतिशील सब को दिखाई पड़ने वाला और दिखाने वाला (देवापिः) विद्युत्तत्व (होत्रम्) वृष्टि रूपी यज्ञ को सम्पन्न कराने को (निषीदद्) स्थित होता है (देवसुमतिम्) वृष्टि की अन्य सहायक देवशक्तियों का सहयोग (चिकित्वान्) प्राप्त करता है, (सः) वह (उत्तरस्माद्) ऊपर विद्यमान अन्तरिक्षस्थ समुद्र से (अधरम्) पार्थिव (समुद्रम्) समुद्र पर (दिव्या) द्युलोक से उत्पन्न हुई (वर्ष्या) वर्षा के (अपः) जलों को (अभ्यसृजत्) गिराता है ।

भावार्थः--मरुद्गणों से उत्पन्न विद्युत्, जो गतिशील है, वृष्टि यज्ञ के संपादन के लिए स्थित होती है और वृष्टि की सहायक अन्य देवशक्तियों का सहयोग प्राप्त करती है । वह अन्तरिक्षस्थ समुद्र से भूमिस्थ समुद्र पर वृष्टि के जलों को गिराता है ॥५॥

अस्मिन्त्समुद्रे अध्युत्तरस्मिन्नापो देवेभिर्निवृता अतिष्ठन् ।
ता अद्रवन्नार्ष्टिषेणेन सृष्टा देवापिना प्रेषिता मृक्षिणीषु ॥६॥

पदार्थः—(अस्मिन्) इस (उत्तरस्मिन्) अन्तरिक्षस्थ (समुद्रे अधि) समुद्र में (आपः) जलें (देवेभिः) दिव्यशक्तियों के द्वारा (निवृताः) निरुद्ध (अतिष्ठन्) रहती हैं, (ताः) वे (आर्ष्टिसेनेन) मरुतों से उत्पन्न (देवापिना) देवापि=विद्युत् से (सृष्टाः) निर्मित एवम् (प्रेषिताः) प्रेरित की गई (मृक्षिणीषु) स्वच्छ भूमियों पर (अद्रवन्) स्रवित होती हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस अन्तरिक्षस्थ समुद्र में जलें दिव्य शक्तियों द्वारा निरुद्ध की गई ठहरी रहती हैं। मरुतों के पुत्र देवापि=विद्युत् से निर्मित एवन् प्रेरित की गई वे स्वच्छ भूमियों पर स्रवित होती हैं ॥६॥

यद्देवापिः शन्तनवे पुरोहितो होत्राय वृतः कृपयन्नदीधेत् ।
देवश्रुतं वृष्टिवनिं रराणो बृहस्पतिर्वाचमस्मा अयच्छत् ॥७॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**शन्तनवे**) जल के लिए (**पुरोहितः**) पुरोहित (**वृतः**) वरण किया हुआ (**देवापिः**) विद्युत्तत्व (**कृपयन्**) कृपा करता हुआ अथवा समर्थ हुआ (**होत्राय**) वर्षा रूपी यज्ञ के लिए (**अदीधेत्**) गतिमान् होता है तब (**बृहस्पतिः**) वृष्टि का देव और स्नयित्नु का स्वामी विजातीय तेज (**देवश्रुतम्**) देवों से श्रुत (**वृष्टिवनिम्**) वृष्टि को देने वाली (**वाचम्**) स्तनयित्नुलक्षणा वाणी को (**रराणः**) चाहता हुआ (**अस्मै**) इस देवापि=विद्युत् को (**अयच्छत्**) प्रदान करता है।

भावार्थः—जब शन्तनु=जल के लिए पुरोहित वरण किया हुआ देवापि=विद्युत्तत्व समर्थ हुआ वर्षा रूपी कार्य के लिए गतिमान् होता है तब वृष्टि का देव और स्तनयित्नु का स्वामी विजातीय तेज अथवा उससे युक्त मेघ वृष्टि देने वाली स्तनयित्नु वाणी को इस देवापि=विद्युत् के लिए प्रदान करता है। देवापि=विद्युत् को पुरोहित=पहले धारित इस लिए कहा गया है कि पहले चमकती है और बाद में वर्षती है ॥७॥

यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्यः समीधे ।
विश्वेभिर्देवैरनुमद्यमानः प्र पर्जन्यमीरया वृष्टिमन्तम् ॥८॥

पदार्थः—(**अग्ने यम् त्वाम्**) जिस उस अग्नि को (**शुशुचानः**) ज्वलित करता हुआ (**मनुष्यः**) मनुष्यों का हितकारी (**आर्ष्टिषेणः**) मरुतों से उत्पन्न (**देवापिः**) विद्युत्तत्व (**समीधे**) सम्यग् दीप्त करता है, (**विश्वेभिः**) सारे (**देवेभिः**) वृष्टि के सहयोगी देवों से (**अनुमद्यमानः**) प्रवृद्ध किया हुआ यह अग्नि=विजातीय तेज (**वृष्टिमन्तम्**) वृष्टि वाले (**पर्जन्यम्**) मेघ को वृष्टि के लिए (**प्र ईरय**) प्रेरित करता है।

भावार्थः—जिस उस अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ, मनुष्यों का हितकारी मरुतों से उत्पन्न विद्युत्तत्व भली प्रकार प्रदीप्त करता है वह

Scanned by CamScanner

तेजोरूप अग्नि वृष्टि सहायक के समस्त देवों से प्रवृद्ध किया हुआ वृष्टि वाले मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करता है ।।८।।

त्वां पूर्व ऋषयो गीर्भिरायन्त्वामध्वरेषु पुरुहूत विश्वे ।
सहस्राण्यधिरथान्यस्मे आ नो यज्ञं रोहिदश्वोप याहि ।।९।।

पदार्थ—(**रोहिदश्व**) तेजोमय ज्वालाओं वाले (**त्वाम्**) इस अग्नि को (**पूर्वे**) ज्ञानपूर्ण (**ऋषयः**) ऋषि जन (**गीर्भिः**) स्तुतियों के साथ (**आयन्**) प्राप्त करते हैं, (**त्वाम्**) इस (**पुरुहूत**) बहुतों से आहूत अग्नि को (**अध्वरेषु**) यज्ञों में प्राप्त करते हैं (**अस्मे**) हमें (**सहस्रम्**) अतिप्रचुर मात्रा में (**अधिरथानि**) रथों पर लदा धन प्राप्त हो (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ में (**आ उप याहि**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—जिस इस सबके द्वारा प्रशस्यमान अग्नि को ज्ञान पूर्ण ऋषि लोग प्रशंसा वचनों सहित प्राप्त करते हैं और जिसको मनुष्य लोग यज्ञों में प्रयोग करते हैं वह अग्नि हमारे यज्ञ में काम में आता है और यज्ञ के द्वारा प्रचुर मात्रा में रथ पर लदे हुए धनों को प्राप्त करने का साधन बनता है ।।९।।

एतान्यग्ने नवतिर्नव त्वे आहुतान्यधिरथा सहस्रा ।
तेभिर्वर्धस्व तन्वः शूर पूर्वीर्दिवो नो वृष्टिमिषितो रिरीहि ।।१०।।

पदार्थः—(**अग्ने त्वे**) इस अग्नि में किए जाने वाले यज्ञ में (**एतानि**) ये (**नवतिः नव**) ९९ वें (**सहस्रा**) सहस्रों (**अधिरथा**) रथों पर लदा धन धान्य ऋत्विजों की दक्षिणा में (**आहुतानि**) अर्पित हैं तथा इस अग्नि में भी प्रचुर मात्रा में सामग्री घी आदि अर्पित है, (**तेभिः**) उन हुत पदार्थों से (**शूर**) बलशाली, (**इषितः**) प्रेरित यह अग्नि (**पूर्वीः**) बहुत सी (**तन्वः**) ज्वालाओं को (**वर्धस्व**) बढ़ाता है और (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**नः**) हमारे लिए (**वृष्टिम्**) वृष्टि को (**रिरीहि**) पूरित करता है ।

भावार्थः—इस अग्नि में किये जाने वाले यज्ञ में ये रथों पर लदे प्रचुरमात्रा में धन धान्य ऋत्विजों की दक्षिणा में अर्पित हैं और हवि के रूप में घी और सामग्री भी अग्नि में अर्पित होती हैं इससे यह अग्नि अपनी ज्वालाओं को बढ़ाता है और अन्तरिक्ष से वृष्टि को पूरित करता है।।१०।।

Scanned by CamScanner

एतान्यंग्ने नवतिं सहस्रा सं प्र यंच्छ वृष्ण इन्द्राय भागम् ।
विद्वान्पथ ऋंतुशो देवयानानप्यौलानं दिवि देवेषु धेहि ॥११॥

पदार्थः—(**अग्ने**) यह अग्नि (**एतानि**) इन (**नवतिम् सहस्रा**) अत्यधिक मात्रा में आहुत पदार्थों के (**भागम्**) भाग को (**वृष्णे**) वर्षा करने वाले (**इन्द्राय**) इन्द्र के लिए (**सं प्रयच्छ**) देता है वह (**देवयानान्**) देवयान (**पथः**) मार्गो को (**विद्वान्**) प्राप्त करता हुआ (**दिवि**) अन्तरिक्ष में (**देवेषु**) देवों में (**अपि**) भी (**औलानम्**) जलों के संघात को (**धेहि**) धारण कराता है ।

भावार्थः—यह अग्नि इन अत्यधिक मात्रा में आहुत हवि आदि पदार्थों के भाग को वर्षा के करने वाले इन्द्र=विद्युत् वा वायु के पास भी पहुँचाता है । इन वृष्टि के सहयोगी देवों की गतिविधि और पद्धति को प्राप्त कर अन्तरिक्ष में इन देवों में जल-संघात को धारण कराता है ॥११॥

अग्ने बाधस्व वि मृधो वि दुर्गहापामीवामप रक्षांसि सेध ।
अस्मात्समुद्राद् बृहतो दिवो नोऽपां भूमानमुप नः सृजेह ॥१२॥

पदार्थ—(**अग्ने**) यह अग्नि (**दुर्गहा**) दुःख से गाहनीय मेघ के दुर्गों को (**विबाधस्व**) बाधायुक्त करता है (**नः**) हमारे लिये (**मृधः**) हिंसक कृमि कीट आदि को नष्ट करता है, (**अमीवाम्**) रोग को (**अप सेध**) दूर भगाता है, (**रक्षांसि**) रोगकारक जन्तुओं को (**अपसेधः**) भगाता (**अस्मात्**) इस (**समुद्रात्**) समुद्रवण के साधन भूत (**बृहतः**) महान् (**दिवः**) अन्तरिक्ष से (**नः**) हमारे लिये (**अपाम्**) जलों की (**भूमानम्**) महती मात्रा को (**इह**) इस लोक में (**उपसृज**) छोड़ता है ।

भावार्थः—यह अग्नि दुर्गह मेघ के समूहों को नष्ट करता है, हमारे स्वास्थ्य के लिए हिंसक कृमि कीट आदि को नष्ट करता है, रोग और रोगकारी जन्तुओं को भगाता है । तथा समुद्रवण के साधन भूत महान् अन्तरिक्ष से हमारे लिये प्रभूत मात्रा में जलों को बरसाता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में अट्ठानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ९९

ऋषिः—१—१२ वम्रो वैखानसः ॥ देवताः—इन्द्रः ॥ छन्दः – १, ७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ५, ९, १२ त्रिष्टुप् । ३, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ४ आसुरीस्वराडार्चीनिचृत्त्रिष्टुप् । ८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

कं नश्चित्रमिषण्यसि चिकित्वान्पृथुग्मानं वाश्रं वावृधध्यै ।
कत्तस्य दातु शवसो व्युष्टौ तक्षद्वज्रं वृत्रतुरमपिन्वत् ॥१॥

पदार्थः— हे इन्द्र=परमैश्वर्यवान् प्रभो ! (**ववृध्यै**) हमारी वृद्धि के लिए (**चिकित्वान्**) जानता हुआ तू (**नः**) हमें (**कम्**) कौन सा (**चित्रम्**) चायनीय (**पृथुग्मानम्**) बहुविस्तीर्ण (**वाश्रम्**) स्तुत्य धन (**इषण्यसि**) देना चाहता है, (**तस्य**) उस (**शवसः**) बलशाली प्रभु का (**दातु कम्**) कितना भारी दान है कि (**व्युष्टौ**) विविध कामनाओं के पूर्त्यर्थ (**वृत्रतुरम्**) मेघ को काटने वाले (**वज्रम्**) बज्र को (**तक्षत्**) बनाता है और (**अपिन्वत्**) वृष्टि जल को सींचता है ।

भावार्थः हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! हमारी वृद्धि के लिये जानता हुआ तू हमें कौन सा चायनीय,विस्तीर्ण स्तुत्य धन देना चाहता है । वस्तुतः उस तुझ बलशाली प्रभु का कितना भारी दान है कि तू हमारी कामनाओं की पूर्ति के निमित्त वृत्र=मेघ के विनाशक वज्र को बनाता है और वृष्टि से संसार को सींचता है ॥१॥

स हि द्युता विद्युता वेति साम पृथुं योनिमसुरत्वा ससाद ।
स सनीळेभिः प्रसहानो अस्य भ्रातुर्न ऋते सप्तथस्य मायाः ॥२॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**हि**) ही इन्द्र=प्रदीप्त अग्नि (**द्युता**) प्रकाशमान (**विद्युता**) विद्युत् से (**साम**) जल के मिश्रण और प्रक्षेपण की (**वेति**) प्राप्त होता है, (**असुरत्वा**) मेघ रूप से (**पृथुम्**) विस्तीर्ण (**योनिम्**) अन्तरिक्ष को (**आ ससाद**) प्राप्त होता है, (**सः**) वह (**सनीडेभिः**) मरुतों के साथ (**प्रसहानः**) मेघ को अभिभूत करता हुआ विद्यमान होता है, (**न**) संप्रति (**भ्रातुः**) भरण-पोषण कर्ता (**अस्य**) इस (**सप्तथस्य**) आदित्यों में सातवें आदित्य की (**ऋते**) जल के विषय में (**मायाः**) यह सब विविध कार्य कलाप है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—वह प्रदीप्त अग्नि प्रकाशमान विद्युत् से जल के मिश्रण और विक्षेपण को प्राप्त होता है, मेघरूप से महान् अन्तरिक्ष को प्राप्त होता है। वह मरुतों के साथ मेघ को अभिभूत करता हुआ विद्यमान है। भरण पोषण करने वाले इन आठ आदित्यों में सातवें आदित्य का जल के विषय में यह कार्यकलाप है ॥२॥

स वाजं यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परि षदत्सनिष्यन् ।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नञ्छिश्नदेवाँ अभि वर्पसा भूत् ॥३॥

पदार्थः—(**सः**) वह इन्द्र=ऐश्वर्यशाली जीव (**वाजम्**) ऐश्वर्य एवं ज्ञान को (**याता**) प्राप्त करता है, (**अपदुष्पदा**) बुराइयों से रहित मार्ग से (**यन्**) जाता हुआ (**स्वः साता**) सुख लाभ के निमित्त (**परि षदत्**) प्रयत्न करता है (**यत्**) जब (**अनर्वा**) अहिंसक होकर (**शतदुरस्य**) सैंकड़ों द्वारों वाले प्रभु के (**वेदः**) ऐश्वर्य का (**सनिष्यन्**) सेवन करना चाहता है तब (**वर्पसा**) बल से (**शिश्नदेवान्**) अब्रह्मचर्य भावनाओं को (**घ्नन्**) विनष्ट करता हुआ (**अभिभूत्**) समस्त दुःखों पर काबू पा लेता है।

भावार्थः—वह ऐश्वर्यशाली जीव ऐश्वर्य एवं ज्ञान को प्राप्त करता है। बुराइयों से रहित मार्ग से जाता हुआ सुखलाभ के निमित्त प्रयत्न करता है। जब अहिंसक होकर सैंकड़ों द्वारों वाले प्रभु के सैंकड़ों द्वारों वाले ऐश्वर्य का सेवन करना चाहता है तब बल से ब्रह्मचर्यविहीन भावनाओं को विनष्ट करता हुआ समस्त दुःखों पर काबू पा लेता है ॥३॥

स यह्व्यो३ वनीर्गोष्वर्वा जुहोति प्रधन्यासु सस्रिः ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वास ईरते घृतं वाः ॥४॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**अर्वा**) मेघों पर चढाई करने वाला (**सस्रिः**) सरणशील इन्द्र=वायु (**यह्व्यः**) महान् (**अवनीः**) गमनशील जलों को (**प्रधन्यासु**) बहुत धनों को प्रदान करने वाली (**गोषु**) भूमियों में (**आजुहोति**) फेंकता है, (**यत्र**) जिनमें (**अपादः**) पादरहित (**अरथाः**) रथरहित (**द्रोण्यश्वासः**) द्रुत व्यापन शील(**युज्यासः**) इन्द्र की मित्र भूत नदियें (**वाः**) वरणीय (**घृतम्**) उदक को (**ईरते**) प्रेरित करती हैं।

भावार्थ—वह मेघों पर आक्रमण करने वाला इन्द्र=वायु महान्

Scanned by CamScanner

गमनशील जलों को बहुत धनों को प्रदान करने वाली भूमियों पर फेंकता =बरसाता है। जिन भूमियों में विना पैर वाली, विना रथों वाली, शीघ्र फैलने वाली इन्द्र की मित्रभूत नदियां उत्तम जल को प्रेरित करती हैं ॥४॥

स रुद्रेभिरशस्तवार ऋभ्वा हित्वी गयमारेअवद्य आगात् ।
वम्रस्य मन्ये मिथुना विवव्री अन्नमभीत्यारोदयन्मुषायन् ॥५॥

पदार्थः—(**सः**) वह इन्द्र=वायु (**रुद्रेभिः**) रुद्रोत्पन्न मरुतों सहित (**अशस्तवारः**) अप्रशस्त वस्तुओं का निवारक है, (**ऋभ्वा**) महान् है, (**आरे-अवद्यः**) बुरी वस्तुओं को दूर फेंकने वाला है (**गयम्**) स्थान स्थान को (**हित्वी**) छोड़कर (**आ अगात्**) आता है, (**वम्रस्य**) ज्ञान का वमन करने वाले मनुष्य के (**मिथुनौ**) माता पिता को (**विवव्री**) व्याधि रहित (**मन्ये**) मानता हूँ यह (**अन्नम्**) जीवन शक्ति को (**अभीत्य**) अभि=प्राप्त करके (**मुषायन्**) लूटता हुआ (**अरोदयत्**) रुलाता है।

भावार्थ—वह वायु मरुतों के साथ हुआ अप्रशस्त का निवारक, महान् और बुरी वस्तुओं को दूर फेंकने वाला है। स्थान से स्थान को छोड़ता जाता हुआ वह ज्ञानी मनुष्य के माता-पिता को भी व्याधिरहित करता है ऐसा मैं यजमान मानता हूं। वह मेघ की जीवन शक्ति को प्राप्त कर उसे हरण करता है और मेघ को रुलाता है ॥५॥

स इद्दासं तुवीरवं पतिर्दन्षळक्षं त्रिशीर्षाणं दमन्यत् ।
अस्य त्रितो न्वोजसा वृधानो विपा वराहमयोअग्रया हन् ॥६॥

पदार्थः—(**स इत्**) वह ही (**पतिः**) सब का पालक इन्द्र=वायु (**दासम्**) दुष्काल लाने वाले, (**तुवीरवम्**) बहुत गर्जने वाले वृत्र=मेघ का (**दन्**) दमन करता हुआ (**त्रिशीर्षाणम्**) ऊपर मध्य और नीचे की तरफ को तीन शिरों वाले (**षड्क्षम्**) छ ऋतुएं जिसकी आंखों के समान हैं ऐसे विश्वरूप=विविध रंगों वाले मेघ को (**दमन्यत्**) मारता है, (**अस्य**) इस वायु के (**ओजसा**) वेग से (**त्रितः**) तीन स्थानों अर्थात् द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवी पर विद्यमान अग्नि (**वृधानः नु**) बढ़ाता हुआ (**अयोऽग्रया**) चुम्बकमयी (**विपा**) शक्ति से (**वराहम्**) जला-हारी मेघ को (**हन्**) मारता है।

भावार्थः—यह सबका पालक वायु दुष्काल लाने वाले बहुत गर्जने वाले परन्तु बरसने वाले मेघ का दमन करता हुआ तीनों दिशाओं में शिरों

Scanned by CamScanner

वाले और छः ऋतुओं में रहने वाले विश्वरूप=विविध रूपों वाले मेघ को मारता है। पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु तीनों स्थानों में विद्यमान अग्नि इस वायु के वेग से बढ़ा हुआ होकर चुम्बकमयी शक्ति से जलाहारी मेघ को मार गिराता है ॥६॥

स दु॒र्हणे॒ मनु॑ष ऊर्ध्वसा॒न आ सा॑विषदर्शसा॒नाय॒ शरु॑म् ॥
स नृत॑मो॒ नहु॑षो॒ऽस्मत्सुजा॑तः॒ पुरो॑ऽभिन॒दर्ह॑न्दस्यु॒हत्ये॑ ॥७॥

पदार्थः—(**सः**) वह इन्द्र=राजा (**द्रुहणे**) द्रोही (**मनुषे**) मनुष्य के लिए और (**अर्शसानाय**) हिंसाकारक के लिए (**ऊर्ध्वसानः**) शौर्य आदि गुणों में अधिक हुआ (**शरुम्**) विनाशक अस्त्र को (**आ साविषद्**) प्रयोग में लाता है, (**सः**) वह (**नृतमः**) उत्तम नर श्रेष्ठ (**नहुषः**) दुष्टों का बन्धनकारी (**अर्हन्**) पूज्य होकर (**अस्मत्**) हमारे (**दस्युहत्ये**) शत्रुओं से संग्राम में (**पुरः**) शत्रुओं की नगरी को (**अभिनत्**) तोड़ देता है।

भावार्थः—वह राजा द्रोही मनुष्यों और हिंसाकारी के हनन के लिए शौर्य आदि गुणों में अधिक हुआ विनाशक अस्त्र को प्रयोग में लाता है। वह नरों में श्रेष्ठ, दुष्टों का बन्धनकारी राजा जनता का पूज्य होकर हमारे शत्रुओं के संग्राम में उनकी पुरी को तोड़ देता है ॥७॥

सो अ॒भ्रियो॒ न यव॑स उद॒न्यन्क्षया॑य गा॒तुं वि॒दन्नो॑ अ॒स्मे ।
उप॒ यत्सीद॒दिन्दुं॒ शरी॑रैः श्ये॒नोऽयो॑पाष्टिर्हन्ति॒ दस्यू॑न् ॥८॥

पदार्थः—(**यवसे न**) जिस प्रकार यव तथा घास आदि की पुष्टि के लिए (**उदन्यन्**) जल से पूर्ण होकर (**अभ्रियः**) मेघ समूह (**गातुम्**) भूमि को (**विदत्**) प्राप्त करता है उसी प्रकार राजा (**नः**) हमारे (**क्षयाय**) निवास के लिए (**गातुम्**) भूमि को (**विदत्**) प्राप्त करे (**अस्मे**) हममें (**श्येनः**) शंसनीय (**यत्**) जो हो वह (**शरीरैः**) शरीरों से उस (**इन्दुम्**) आत्मा को (**उप सीदत्**) प्राप्त करता है (**अय अपाष्टिः**) लोहमयी ऐडी वाले पुरुष के समान बलशाली होकर वह (**दस्यून्**) काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**हन्ति**) नष्ट करता है।

भावार्थः—जिस प्रकार यव आदि अन्न और घास आदि चारे की पुष्टि के लिए जल से पूर्ण होकर मेघ समूह भूमि को प्राप्त होता है उसी प्रकार राजा हम प्रजाजनों के निवास के लिए भूमि को प्राप्त करे। हममें

Scanned by CamScanner

जो शसंनीय है वह शरीरों द्वारा आत्मा को प्राप्त करता है और लोहमयी ऐडी वाले पुरुष के समान काम, क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करता है ॥८॥

स व्राधतः शवसानेभिरस्य कुत्साय शुष्णं कृपणे परादात् ।
अयं कविमनयच्छस्यमानमत्कं यो अस्य सनितोत नृणाम् ॥९॥

पदार्थः—(सः) वह इन्द्र=वायु (शवसानेभिः) बल प्रकट करने वाले आयुधों से (व्राधतः) महान् शत्रुओं को (अस्य) फेंक देता है, (कृपणे) स्तुतिकर्ता (कुत्साय) ऋत्विग् के लिए (शुष्णम्) शोषक मेघ को (परादात्) खण्ड-खण्ड करता है, (अयम्) यह (कविम्) माध्यमिक देव अग्नि को (शस्यमानम्) प्रशंसनीय (अनयत्) बनाता है (यः) जो (अस्य) इसके (उत) और (नृणाम्) मरुतों के (अत्कम्) रूप को (सनिता) प्रदान करने वाला होता है ।

भावार्थः—वह वायु प्रबल आयुधों=शक्तियों से महान् शत्रुओं को फेंक देता है । स्तुति कर्त्ता ऋत्विक् के कल्याणार्थ शोषक मेघ को खण्ड-खण्ड करता है । यह माध्यमिक देव अग्नि को प्रशंसित बनाता है और इसके तथा मरुतों के रूप का प्रदान करने वाला है ॥९॥

अयं दशस्यन्नर्येभिरस्य दस्मो देवेभिर्वरुणो न मायी ।
अयं कनीन ऋतुपा अवेद्यमिमीताररुं यश्चतुष्पात् ॥१०॥

पदार्थः—(अयम्) यह इन्द्र=वायु मनुष्यों को सुख (दशस्यन्) देता हुआ (नर्येभिः) मनुष्यों के हितकारक मरुतों के सहयोग से (अस्य) मेघों को फेंक देता है, तथा (देवेभिः) द्योतमान सूर्य किरणों के साथ (दस्मः) दर्शनीय हैं, (वरुणः) आदित्य के (न) समान (मायी) मायावान् है, (कनीनः) कमनीय, (ऋतुपाः) ऋतुओं का पालक (अयम्) यह (अवेदि) जाना जाता है, (यः) जो (चतुष्पात्) चतुष्पाद् होकर (अररुम्) जलावरोधक मेघ को (अमिमीत) नष्ट करता है ।

भावार्थः— यह वायु मनुष्यों को सुख देता हुआ मरुतों के सहयोग से मेघ को फेंकता है । देवों के साथ यह दर्शनीय होता है । यह आदित्य के समान विविध कर्मों वाला है अतः मायावान् है । इसे ऋतुओं का पालक कहा जाता है । यह चतुष्पात्=चारों ओर व्याप्त होकर जल को रोकने वाले को मारता है ॥१०॥

Scanned by CamScanner

अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रजं दरयद्वृषभेण पिप्रोः ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद्गीः पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥११॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**सुत्वा**) ओषधि आदि तैयार कर (**यजतः**) यज्ञ करने वाला (**गीः**) स्तोता वा ऋत्विग् (**दीदयत्**) अपने गुणों से प्रकाशित होता है, (**पुरः**) शरीर रूपी पुरी को (**इयानः**) प्राप्त होता हुआ भी (**वर्पसा**) उत्तम आत्मबल से (**अभि भूत्**) सब इन्द्रिय आदि को वश में कर लेता है, (**ऋजिश्वा**) इन्द्रियों को वश में किये हुए (**औशिजः**) मेधावी (**अस्य**) इस प्रभु के (**स्तोमेभिः**) स्तुति वचनों से (**वृषभेण**) सुखवर्षक रूप से (**पिप्रोः**) पालनीय देह के (**व्रजम्**) समूह को (**दरयत्**) ज्ञान प्राप्त होने से तोड़ देता है और मुक्त हो जाता है ।

भावार्थः—जब औषधि आदि के रस को तैयार करके यज्ञ करने वाला ऋत्विग् अपने गुणों से प्रकाशित होता है तब शरीररूपी पुरी में रहता हुआ भी आत्मबल से सब इन्द्रिय आदि पर वश प्राप्त कर लेता है। इन्द्रियों को वश में किए हुए मेधावी वह पुरुष इस प्रभु के स्तुति वचनों से सुखवर्षक प्रभाव से पालना योग्य इस देह के समूह को तोड़ देता है और मुक्त हो जाता है ॥११॥

एवा महो असुर वक्षथाय वम्रकः पड्भिरुप सर्पदिन्द्रम् ।
स इयानः करति स्वस्तिमस्मा इषमूर्जं सुक्षितिं विश्वमाभाः ॥१२॥

पदार्थः—(**असुर**) हे बलवन् प्रभो (**एव**) इस प्रकार (**महः**) महान् (**वक्षथाय**) प्रभु की प्राप्ति के लिए (**पड्भिः**) कदम-कदम पर (**वम्रकः**) यह स्तोता (**इन्द्रम्**) आत्मा को (**उप सर्पत्**) प्राप्त कर लेता है । (**सः**) वह (**इयानः**) प्रभु को प्राप्त करता हुआ (**अस्मै**) इस अपने आत्मा के लिए (**स्वस्ति**) कल्याण (**करति**) करता है और (**विश्वम्**) सब (**इषम्**) ज्ञान (**ऊर्ज्जम्**) बल और (**सुक्षितिम्**) उत्तम मनुष्यों के समूह को (**आ अभाः**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—हे शक्तिशालिन् ! प्रभो ! इस प्रकार तुझ महान् प्रभु की प्राप्ति के लिए कदम-कदम पर यह स्तोता आत्मा को प्राप्त कर लेता है। वह यह प्रभु को प्राप्त करता हुआ इस अपने आत्मा के लिए सब ज्ञान,बल उत्तम मनुष्यों के समूह को प्राप्त करता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में निन्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १००

ऋषिः – १—१२ वुवस्युर्वान्दनः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१—३ जगती । ४, ५, ७, ११ निचृज्जगती । ६, ८, १० विराड्जगती । ६ पादनिचृज्जगती । १२ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—११ निषादः । १२ धैवतः ॥

इन्द्र दृह्य मघवन्त्वावदिद्भुज इह स्तुतः सुतपा बोधि नो वृधे ।
देवेभिर्नः सविता प्रावतु श्रुतमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१॥

पदार्थः—(**मघवन्**) हे बलशालिन् ! (**इन्द्र**) परमेश्वर ! तू (**त्वावत् इत्**) तुम्हारे चाहने वाले जीव को (**भुजे**) संसार के भोग और अनन्तर मोक्ष के भोग के लिए (**दृंह्य**) दृढ़ कर (**इह**) इस संसार में (**स्तुतः**) स्तुत तू (**सुतपाः**) उत्पन्न जगत् का पालक (**बोधि**) जाना जाता है । (**नः**) हमारे (**वृधे**) बढ़ने के लिए हो, (**देवैः**) अन्य देवों अथवा किरणों के साथ (**सविता**) सूर्य (**नः**) हमारे (**श्रुतम्**) ज्ञान की (**प्र अवतु**) रक्षा का साधन बनें, (**सर्वतातिम्**) सारे संसारी पदार्थों का विस्तार होता है जिससे ऐसी (**अदितिम्**) प्रकृति को (**आ वृणीमहे**) अपने ज्ञान में धारण करते हैं ।

भावार्थः—हे बलशालिन् समस्त धनों के स्वामिन् ! परमेश्वर ! तू चाहने वाले जीव को भोग और मोक्ष की प्राप्ति के लिए दृढ़ कर। इस संसार में तू जगत् का पालक जाना जाता है । तू हमारी वृद्धि के लिए हो । अन्य देवों के साथ सूर्य हमारे ज्ञान की रक्षा का साधन बने । हम समस्त संसार के विस्तार के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥१॥

भराय सु भरत भागमृत्वियं प्र वायवे शुचिपे क्रन्ददिष्टये ।
गौरस्य यः पयसः पीतिमानश आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥२॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् लोगो ! आप (**भराय**) सब के पोषक (**शुचिपे**) शुद्ध पवित्र, (**क्रंददिष्टये**) बहते समय शब्द करते हुए (**वायवे**) उस वायु के लिए (**ऋत्वियम्**) यथा काल (**भागम्**) हवि के भाग को (**सु**) सुष्ठुरूप से (**प्रभरत**) प्रदान करो, (**यः**) जो वायु (**गौरस्य**) गौरवर्ण (**पयसः**) दुग्ध अथवा रस के (**पीतिम्**) पान को (**आनशे**) प्राप्त करता है, (**सर्वतातिम्**

Scanned by CamScanner

अदितिम् आवृणीमहे) हम सब संसार के विस्तार के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं।

भावार्थः—हे ऋत्विग् लोगो ! आप सब के पोषक शुद्ध और पवित्र तथा बहते समय ध्वनि करने वाले वायु के लिए यथाकाल प्राप्त हवि के भाग को प्रदान करो। वह यह गौर वर्ण के दुग्ध आदि का पान करता है। हम समस्त संसार के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥२॥

आ नो देवः सविता साविषद्वय ऋजूयते यजमानाय सुन्वते।
यथा देवान्प्रतिभूषेम पाकवदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥३॥

पदार्थ—(**देवः**) द्योतन आदि गुणों से युक्त (**सविता**) सूर्य (**नः**) हम सम्बन्धी (**सुन्वते**) यज्ञ करते हुए, (**ऋजूयते**) सरल कामनाओं वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**वयः**) अन्न को (**आ साविषत्**) उत्पन्न करता है (**यथा**) जिससे (**देवान्**) यज्ञ के देवों को हम (**पाकवत्**) पुरोडाश पाक आदि करके (**प्रतिभूषेम**) हवि से अलंकृत करते हैं ....।

भावार्थः—द्योतन आदि गुणों से युक्त सूर्य हमारे सम्बन्धी यज्ञकर्त्ता सरलभावना वाले यजमान के लिए अन्न को उत्पन्न करता है जिससे यज्ञ के देवों को हम पुरोडाश आदि स्थालीपाक करके हवि से यज्ञ में अलंकृत करें=हवि प्रदान करें। हम समस्त संसार के उपादान कारण अदिति=प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥३॥

इन्द्रो अस्मे सुमना अस्तु विश्वहा राजा सोमः सुवितस्याध्येतु नः।
यथायथा मित्रधितानि संदधुरा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**अस्मे**) हमें (**सुमनाः**) उत्तम मन वाला बनाने वाला (**विश्वहा**) सदा (**अस्तु**) होवे, (**राजा**) सबका राजा (**सोमः**) परमेश्वर (**नः**) हमारे (**सुवितस्य**) स्तुति को (**अध्येतु**) प्राप्त करे (**यथा यथा**) जिस जिस प्रकार से (**मित्रधितानि**) मित्रों के लिए निहित धनों को (**संदधुः**) हम प्राप्त कर सकें ....।

भावार्थः—विद्युत् हमें उत्तम मन वाला बनाने का सदा साधन बने। सब का स्वामी परमेश्वर हमारी स्तुति को प्राप्त करे। जिस-जिस प्रकार

Scanned by CamScanner

से हम मित्रों के लिए निहित धनों को प्राप्त कर सकें वैसा अनुग्रह करे। हम जगत् के उपादान कारण प्रकृति को ज्ञान में धारण करते हैं ॥४॥

इन्द्रं उक्थेन शवसा परुर्दधे बृहस्पते प्रतरीतास्यायुषः ।
यज्ञो मनुः प्रमतिर्नः पिता हि कमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥५॥

पदार्थः–(**इन्द्रः**) परमेश्वर (**उक्थेन**) प्रशंसनीय (**शवसा**) बल से (**परुः**) प्रत्येक पदार्थ के पर्व=ग्रन्थि को (**दधे**) धारण करता है, (**बृहस्पते**) हे वेद वाणी वा महान् आकाश आदि के स्वामिन् ! आप (**आयुषः**) हमारी आयु के (**प्रतरीता**) बढ़ाने वाले (**असि**) होओ, (**यज्ञः**) उत्तम कर्म, (**मनुः**) मननशक्ति और (**प्रमतिः**) बुद्धि (**नः**) हमारे पालक होकर (**कम् हि**) सुखकारी हो.........।

भावार्थः—परमेश्वर ! प्रशंसनीय बल से प्रत्येक वस्तु के आधार भूत पर्व=जोड़ वा ग्रन्थि को धारण करता है। वेदों का स्वामी वह हमारी आयु को बढ़ाने वाला होवे। उत्तम कर्म, मननशक्ति, और बुद्धि हमारे पालक होकर हमें सुखकारी हो। हम समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥५॥

इन्द्रस्य नु सुकृतं दैव्यं सहोऽग्निर्गृहे जरिता मेधिरः कविः ।
यज्ञश्च भूद्विदथे चारुरन्तम आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्रस्य नु**) इन्द्र=विद्युत् का ही (**सुकृतम्**) सुसंपादित (**दैव्यम्**) देवों सम्बन्धी (**सहः**) तेज (**अग्निः**) अग्नि (**गृहे**) हम लोगों के गृहों में गार्हपत्य अग्नि के रूप में विद्यमान है, वह अग्नि (**जरिता**) हवि आदि का भक्षक, (**मेधिरः**) यज्ञ का साधन, (**कविः**) क्रान्तदर्शन, (**यज्ञः**) यष्टव्य (**च**) और (**चारुः**) उत्तम (**विदथे**) यज्ञ में (**अन्तमः**) समीपस्थ (**भूव**) रहता है।........।

भावार्थः—विद्युत् का ही संपादित देवों सम्बन्धी तेज अग्नि के रूप में हमारे गृहों में गार्हपत्य अग्नि होकर विद्यमान है। वह हवि आदि का भक्षक, यज्ञ का साधन, क्रान्तदर्शन, यष्टव्य चारु और समीपस्थ है। हम समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को ज्ञान में धारण करते हैं ॥६॥

Scanned by CamScanner

न वो गुहा चकृम भूरि दुष्कृतं नाविष्ट्यं वसवो देवहेळनम् ।
माकिर्नो देवा अनृतस्य वर्पस आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥७॥

पदार्थः—हे (**वसवः**) ज्ञान के वासक (**देवाः**) विद्वानो ! (**वः**) इन यज्ञ के देवों के (**गुहा**) प्रच्छन्न प्रदेश में (**आविष्टचम्**) प्रकट हुए (**देवहेडनम्**) देवद्रोहरूप (**भूरि**) प्रभूत (**दुष्कृतम्**) पाप को (**नः**) नहीं (**चकृम**) करें यदि हम पाप करें तो (**नः**) हमें (**अमृतस्य**) मनुष्य के (**वर्पसः**) रूप = शरीर प्राप्ति (**माकिः**) न होवें ।······ ।

भावार्थः—हे ज्ञान के वासक विद्वान् लोगो ! इन यज्ञ के देवों के प्रच्छन्न प्रदेश में प्रकट हुए देवद्रोह रूप महान् पाप को हम न करें। यदि हम ऐसा करें तो हमें मनुष्य का शरीर अगले जन्म में न मिले। सब जगत् के उपादान कारण प्रकृति को हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥७॥

अपामीवां सविता साविषन्न्य१ग्वरीय इदप सेधन्त्वद्रयः ।
ग्रावा यत्र मधुषुदुच्यते बृहदा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥८॥

पदार्थः—(**सविता**) सूर्य हमारे (**अमीवाम्**) रोग को (**अप सा विषत्**) दूर फेंक देता है, तथा (**अद्रयः**) मेघ (**वरीयः**) बड़े से बड़े हमारे रोग को (**न्यक्**) अघ (**अपसेधन्तु**) फेंक देते हैं, (**यत्र**) जिस प्रदेश में (**मधुसुत्**) सरस ज्ञान के उत्पादक (**ग्रावा**) विद्वान् की (**बृहत्**) बड़ी (**उच्यते**) स्तुति की जाती है ।···।

भावार्थ—जिस यज्ञ की जगह ज्ञान का प्रवाह बहाने वाले विद्वान् की महती प्रशंसा होती है वहां पर सूर्य हमारे रोगों को दूर फेंकता है, मेघ हमारे रोगों को नीचे गिरा देते हैं अर्थात् वृष्टि में बहा ले जातेहैं । हम सब जगत् के उपादान कारक प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥८॥

ऊर्ध्वो ग्रावा वसवोऽस्तु सोतरि विश्वा द्वेषांसि सनुतर्युयोत ।
स नो देवः सविता पायुरीड्य आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥९॥

पदार्थः—हे (**वसवः**) विद्वानो ! (**सोतरि**) मुझ यज्ञकर्त्ता की दृष्टि वा यज्ञ में (**ग्रावा**) वेद का ज्ञाता विद्वान् (**ऊर्ध्वः**) उपरि स्थान वाला हो, (**विश्वा**) समस्त (**द्वेषांसि**) द्वेषकारी शक्तियों को (**सनुतः**) निगूढ (**युयोत**) पृथक् करो (**देवः**) देव (**सविता**) सूर्य (**नः**) हमारा (**पायुः**) पालक और (**ईड्यः**) प्रशस्य है ।···।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे विद्वानो ! मुझ यज्ञकर्त्ता के यज्ञ में वेदज्ञ विद्वान् का स्थान ऊँचा है । आप समस्त द्वेषकारी शक्तियों को पृथक् करें । सूर्य देव हमारा रक्षक और प्रशस्य है । समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥९॥

ऊर्जं गावो यवसे पीवो अत्तन ऋतस्य याः सदने कोशे अङ्ग्ध्वे ।
तनूरेव तन्वो अस्तु भेषजमा सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥१०॥

पदार्थः—हे (**गावः**) गौवो ! (**याः**) जो (**ऋतस्य**) जल के (**सदने**) स्थान में (**कोशे**) कक्ष में (**अङ्ग्ध्वे**) प्राप्त करती हो । उस (**यवसे**) तृणवाले प्रदेश में (**पीवः**) बहुत बड़े हुए (**ऊर्जम्**) रस को (**अत्तन**) खाओ, तुम्हारा (**तनूः**) शरीर ही (**तन्वः**) तुम्हारे शरीर की (**भेषजम्**) ओषधि (**अस्तु**) होवे ……।

भावार्थः—हे गौवो ! जो जल के स्थान में कक्ष में प्राप्त करती हो उस घास वाले प्रदेश में बढ़े हुए रस को खाओ । तुम्हारा तन ही अपनी स्वस्थता के कारण तुम्हारे शरीर की ओषधि हो । बाहर की ओषधि की आवश्यकता न पड़े । हम समस्त जगत् के उपादान कारण प्रकृति को ज्ञान में धारण करते हैं ॥१०॥

क्रतुप्रावा जरिता शश्वतामव इन्द्र इद्भद्रा प्रमतिः सुतावताम् ।
पूर्णमूधर्दिव्यं यस्य सिक्तय आ सर्वतातिमदितिं वृणीमहे ॥११॥

पदार्थः—(**क्रतुप्रावा**) कर्म का पूरक (**शश्वतान्**) सबका (**जरिता**) जीर्ण करने वाला (**इन्द्रः इव**) इन्द्र=सूर्य ही (**अवः**) रक्षक है, (**सुतावताम्**) यज्ञ करने वालों का (**भद्रा**) भद्र (**प्रमतिः**) उत्तम बुद्धिदाता है, (**यस्य**) जिस के (**सिक्तये**) पान के लिए (**दिव्यम्**) द्युलोक में होने वाला (**ऊधः**) जल-प्रतिस्याय (**पूर्णम्**) पर्याप्त है ।……।

भावार्थः—कर्मों का पूरक सब का समय के उत्पादक होने से जीर्ण करने वाला सूर्य ही सबका रक्षक है । वह यज्ञ करने वालों का भद्र मति-दाता है । उसके पीने के लिए अन्तरिक्ष में उत्पन्न जलनिःस्यन्द पूर्ण है हम सब जगत् के उपादान कारण प्रकृति को अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥११॥

Scanned by CamScanner

चित्रस्ते भानुः क्रतुप्रा अभिष्टिः सन्ति स्पृधो जरणिप्रा अधृष्टाः ।
रजिष्ठया रज्या पश्व आ गोस्तूतूर्षति पर्यग्रं दुवस्युः ॥१२॥

पदार्थः—हे प्रभो ! (ते) तेरा (भानुः) प्रकाश (चित्रः) अद्भुत, (क्रतुप्राः) कर्म का पूरक और (अभिष्टिः) चाहने योग्य है, (ते स्पृधः) तेरी स्पृहणीय शक्तियां (जरणिप्राः) विद्वानों की इच्छाओं की पूरक और (अधृष्टाः) अधर्षणीय (सन्ति) हैं जिस प्रकार के (दुवस्युः) सेवक (पश्वः) पशु (गोः) गाय के (अग्रम्) आगे के नासिका आदि भाग को (रजिष्ठया) अति सरल (रज्या) रस्सी से (आ परि तु तूर्षति) पीड़ित करता है और आगे वेग से ले जाता है ऐसे ही मैं आप की स्तुति की प्रगतिशील करूं ।

भावार्थः— हे प्रभो ! तेरा प्रकाश अद्भुत है । वह कर्म का पूरक और चाहने योग्य है । तेरी स्पृहणीय शक्तियां विद्वानों की इच्छाओं की पूर्ण करने वाली और अधर्षणीय हैं । जिस प्रकार सेवक गाय आदि पशु की नाक में रस्सी लगाकर उसे दुःखित कर आगे ले जाता है वैसे ही मैं आप की स्तुति में तीव्र वेग लाऊं ॥१२॥

यह दशम मण्डल में एकसौवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०१

ऋषिः—१—१२ बुधः सौम्यः ॥ देवता—विश्वेदेवा ऋत्विजो वा ॥
छन्दः—१, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ८ त्रिष्टुप् । ३, १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ गायत्री । ५ बृहती । ९ विराड्जगती । १२ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—३, ७, ८, १०, ११ धैवतः । ४, ६ षड्जः । ५ मध्यमः । ९, १२ निषादः ॥

उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीळाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतोऽवसे नि ह्वये वः ॥१॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो (समनसः) समान मनों वाले होकर (उद् बुध्यध्वम्) जागो और जानो तथा (बहवः) अनेक (सनीडाः) समान निवास

वाले हुए (अग्निम्) यज्ञ की अग्नि को (सम् इन्धध्वम्) सम्यक् दीप्त करो (दधिक्राम्) अन्न की धारक माध्यमिक वाक् (अग्निम्) अग्नि, (उषसम्) उषा (देवीम्) द्योतन-दीपन शील (इन्द्रावतः) इन्द्र से युक्त (वः) इनको (अवसे) रक्षा के लिए (ह्वये) वर्णन करता हूँ।

भावार्थः—मित्रो समान मन वाले होकर जागो और जानो ! अनेक होते हुए भी एक स्थान में रहकर अग्नि को प्रज्वलित करो। इन्द्र से युक्त अन्न की धारक माध्यमिका वाक्, चमकती उषा और अग्नि का रक्षार्थ वर्णन करता हूं और इनका उपयोग उठाता हूं ॥१॥

मन्द्रा कृणुध्वं धिय आ तनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम्।
इष्कृणुध्वमायुधारं कृणुध्वं प्राञ्चं यज्ञं प्र णयता सखायः ॥२॥

पदार्थः—हे मित्रो ! (मन्द्रा) हर्षदायक स्तुतियों को करो, (धियः) कर्मों का (आ तनुध्वम्) विस्तार करो (अरित्रपर्णीम्) चप्पू से पार ले जायी जाने वाली (नावम्) नौका का निर्माण करो, (इष्कृणुध्वम्) अन्न और ज्ञान का विस्तार करो (आयुधा) आयुधों को (अरम्) पर्याप्त रूप से तैयार करो, (सखायः) हे सखा लोगो (प्राञ्चम्) प्रागञ्चन (यज्ञम्) यष्टव्य अग्नि को (प्रणयत) प्रदीप्त करो।

भावार्थः—हे मित्रो हर्षदायक स्तुतियां करो, उत्तम कर्मों का विस्तार करो, चप्पू से पार ले जायी जाने वाली नौका बनाओ, अन्न और ज्ञान को बढ़ाओ, आयुध तैयार करो और यज्ञाग्नि को प्राञ्जल करो ॥२॥

युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

पदार्थः—(सीरा) हलों को (युनक्तु) जोतो, (युगा) जूये को (वितनुध्वम्) विस्तृत करो, (योनौ) हल की लकीर=सीता के (कृते) बन जाने पर (इह) इसमें (बीजम्) बीज को (वपत) बोओ (गिरा) वेद वाणी के गान के साथ (नः च) हमारे (श्रुष्टिः) फसल (सभराः) हरी भरी पुष्ट (असत्) होवे (सृण्यः) हसिया वा दातरी (पक्वम्) पकी हुई फसल के (नेदीयः) समीप (आ इयात्) जावे।

भावार्थः—हल को जोतो। उसके जुए को विस्तृत करो। हल की बनी लकीर अर्थात् सीता में बीज को बोओ। वेदवाणी के गान के साथ हमारी

Scanned by CamScanner

फसल हरी-भरी और पुष्ट होवे। फसल के पक जाने पर हसिया वा दातरी से उसे काटो ॥३॥

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग (**सीरा**) हलों की (**युञ्जन्ति**) जोतते हैं (**युगा**) दोनों जूओं को (**पृथक्**) पृथक् (**वितन्वते**) विस्तारित करते हैं, (**धीराः**) धीर लोग (**देवेषु**) देवों में (**सुम्नया**) सुखदाता कर्मों के साथ रहते हैं।

भावार्थः—क्रान्तदर्शी लोग हल को जोतते हैं और दोनों हल के जुओं को विस्तृत करते हैं। धीर लोग सुखदायी कर्मों के साथ विद्वानों में रहते हैं ॥४॥

निराहावान्कृणोतन सं वरत्रा दधातन।
सिञ्चामहा अवतमुद्रिणं वयं सुषेकमनुपक्षितम् ॥५॥

पदार्थः– (**आहावान्**) गौवों के पानी पीने के स्थानों को (**निष्कृणोतन**) बनाओ (**वरत्राः**) रस्सियों को (**सं दधातन**) बराबर परस्पर जोड़ो, (**वयम्**) हम (**उद्रिणम्**) जल से भरे हुए (**सुसेकम्**) अच्छी प्रकार सींचने योग्य, (**अनुपक्षितम्**) कभी भी जिसका जल क्षीण न होवे ऐसे (**अवतम्**) अवट=कूप को (**सिञ्चामहा**) सींचे।

भावार्थः—गौवों के पानी पीने के स्थानों को बनाओ। रस्सियों को परस्पर जोड़ो। हम जल से भरे हुए, अच्छी प्रकार सींचने योग्य, कभी भी जिसका जल क्षीण न होवे ऐसे कूप से खेत की सिंचाई करें ॥५॥

इष्कृताहावमवतं सुवरत्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥६॥

पदार्थः—(**इष्कृत आहावम्**) उत्तम जल पीने के स्थान से युक्त (**सुवरत्रम्**) उत्तम रस्सियों से युक्त, (**सुसेचनम्**) सुखपूर्वक सेचन करने वाले (**उद्रिणम्**) जल वाले (**अक्षितम्**) अक्षय (**अवतम्**) कूप को प्राप्त कर (**सिञ्चे**) सिंचाई करूं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—उत्तम जलप्रपा से युक्त, उत्तम रश्मियों से युक्त, सुख-पूर्वक सेचन करने वाले, जल वाले, अक्षय कूप को प्राप्त कर सिंचाई करूं ॥६॥

प्रीणीताश्वान्हितं जयाथ स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम् ।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमंसत्रकोशं सिञ्चता नृपाणम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (अश्वान्) अश्वों को (प्रीणीत) घास आदि से प्रसन्न रखो, (हितम्) हितकारक कर्षण (जयाथ) करो, (रथम् इत्) रथ भी (स्वस्तिवाहम्) सुख पूर्वक ले जाने वाला (कृणुध्वम्) बनाओ, (द्रोणाहावम्) काष्ठ के जलपात्र से युक्त, (अंसत्रकोशम्) कवच के समान जल रक्षण कोश वाला (अश्मचक्रम्) पाषाण के घेरे वाला तथा (नृपाणम्) आदमियों के पानी पीने की व्यवस्था से युक्त (अवतम्) अवट=कूप को प्राप्त कर (सिञ्चत) सिंचाई का काम करो ।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! अश्वों को चारा पानी आदि से प्रसन्न रखो, उत्तम और हितकारक कर्षण करो। सुखपूर्वक ले जाने वाले रथ को बनाओ। काष्ठ के जल पात्र से युक्त, कवच के समान जल रक्षण कोश वाले, पाषाणमय घेरे वाले और मनुष्यों के पानी पीने की व्यवस्था से युक्त कूप बनाकर सिंचाई का कार्य करो ॥७॥

व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वं बहुला पृथूनि ।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहता तम् ॥८॥

पदार्थः—(व्रजम्) गोशाला (कृणुध्वम्) बनाओ, (सः) वह (हि) हो (वः) आप लोगों का (नृपाणः) पेय का साधन हो, (बहुला) अनेक और (पृथूनि) विस्तीर्ण (वर्म) कवचों को (सीव्यध्वम्) सी कर बनाओ, (आयसीः) लोहमयी (अधृष्टाः) अधर्षणीय (पुरः) नगरी (कृणुध्वम्) बनाओ (वः) तुम्हारा (चमसः) यज्ञ का चमस पात्र (मा) न (सुस्रोत्) ढीला करो (तम्) उसको (दृंहत) दृढ़ रखो ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! गोशाला बनाओ और वह ही आप लोगों का दुग्धपेय स्थान हो। बहुत से बड़े और मोटे कवचों को सीकर बनाओ। लोहमयी और अनाक्रमणीय पुरी बनाओ। तुम्हारा यज्ञ का चमसपात्र कभी ढीला-ढाला न हो। वह सदा ही दृढ़ रहे और यज्ञ चलता रहे ॥८॥

Scanned by CamScanner

आ वो धियं यज्ञियां वर्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥९॥

पदार्थः– (**देवाः**) हे विद्वान् ऋत्विग् गण !(**वः**) आप के (**ऊतये**)रक्षार्थ (**यज्ञियाम्**) यज्ञार्ह (**धियम्**) बुद्धि और कर्म की हम विद्वान् लोग (**आ वर्त्ते**) प्रेरणा करते हैं । (**इह**) इस मानव जीवन अथवा संसार में (**यज्ञियाम्**) यज्ञार्ह (**यजताम्**) पूजनीय (**देवीम्**) द्योतन दीपन आदि गुणों वाली उस बुद्धि को जागृत रखो । (**सा**) वह बुद्धि (**नः**) हम सबके लिए (**यवसा**) घास आदि को खाकर फिर गोष्ठ में (**गत्वी**) जाकर (**सहस्रधारा**) बहुत धारों से युक्त (**पयसा**) दूध को देने वाली (**महती**) बड़ी (**गौः**) गाय के (**इव**) समान (**दुहीयद्**) ज्ञान और व्यवहार आदि को देती है ।

भावार्थः– हे विद्वान् ऋत्विग्गण ! आप की रक्षा के लिए यज्ञमयी बुद्धि और कर्म भावना को हम विद्वान् लोग प्रवृत्त करते हैं । इस यज्ञार्ह पूज्य द्योतन, दीपन गुणों वाली बुद्धि को सदा जागृत रखो । वह उसी प्रकार ज्ञान और व्यवहार को देती है जिस प्रकार घास आदि खाकर पुनः गोष्ठ में आयी हुई गौ बहुधार से युक्त दुग्ध को देती है ॥९॥

आ तू षिञ्च हरिमीं द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः ।
परि ष्वजध्वं दश कक्ष्याभिरुभे धुरौ प्रति वह्निं युनक्त ॥१०॥

पदार्थः-- हे अध्वर्यो ! तू (**ईम् तु**) इस (**हरिम्**) हरित वर्ण सोम को (**द्रोः**) काष्ठमय द्रोण कलश के (**उपस्थे**) स्थान में (**सिञ्च**) सिक्त कर, हे पात्र बनाने वालो आप सब (**अश्मन्मयीभिः**) पाषाणमयी (**वाशीभिः**) वसूलियों से (**तक्षत**) इस पात्र को गढो, (**दश**) दश कलशों में भरे सोम को (**कक्ष्याभिः**) बारी बारी से (**परिष्वजध्वम्**) संस्कृत करो (**उभे**) दोनों (**धुरौ**) धुरों को (**वह्निम**) वहन करने वाले बैलों को (**प्रति युनक्त**) जोड़ो ।

भावार्थः-- हे अध्वर्यो ! इस हरित वर्ण सोम को द्रोणकलश में सिक्त करो । हे पात्र बनाने वालो ! आप पाषाणमयी वसुलियों से इस पात्र को गढो । दश कलशों में भरे सोम को बारी-बारी से संस्कृत करो और धुरों के वाहक बैलों को जोड़ो ॥१०॥

Scanned by CamScanner

उभे धुरौ वह्निरापिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः ।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं नि षू दधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥११॥

पदार्थः—(**उभे**) दोनों (**धुरौ**) गाड़ी के धुरों को (**आपिब्दमानः**) शब्द करता हुआ (**वह्निः**) वाहक बैल (**योनौ**) आकाश के (**अन्तः**) मध्य (**द्विजानिः**) पक्षी की (**इव**) भांति (**चरति**) चलता है । (**वनस्पतिम्**) अग्नि को (**वने**) काष्ठ=समिधाओं में (**आ अस्थापयध्वम्**) स्थापित करो, (**सु**) सुष्ठु (**नि दधिध्वम्**) स्थिर करो, (**उत्सम्**) कूप को (**अखनन्तः**) खोद कर तैयार करो ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! दोनों गाड़ी के धुरों को शब्द करता हुआ वाहक बैल आकाश में पक्षी की तरह चलता है । अग्नि को काष्ठ=समिधा में स्थापित करो और ठीक प्रकार से व्यवस्थित करो और कूप को खोद कर तैयार करो ॥११॥

कपृन्नरः कपृथमुद्दधातन चोदयत खुदत वाजसातये ।
निष्टिग्र्यः पुत्रमा च्यावयोतय इन्द्रं सबाध इह सोमपीतये ॥१२॥

पदार्थः--(**नरः**) हे ऋत्विग् लोगो यह इन्द्र=सूर्य (**कपृत्**) सुख का पूरक हैं इस (**कपृथम्**) सुख पूरक को (**चोदयत**) यज्ञ कर्म द्वारा प्रेरित करो, (**खुदत**) खेलने वाला बनाओ (**उत**) और (**दधातन**) ज्ञान और व्यवहार में धारण करो (**वाजसातये**) अन्न की प्राप्ति के लिए, (**सबाधः**) हे ऋत्विग्जन ! (**सोमपीतये**) सोमपानार्थ और (**ऊतये**) अपनी रक्षा के लिए (**इह**) इस यज्ञ में (**निष्टिग्र्यः**) अदिति के (**पुत्रम्**) पुत्र (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**आच्यवय**) सब तरफ से प्रेरित करो ।

भावार्थः-- हे ऋत्विग् लोगो ! यह सूर्य सुख का पूरक है । इस सुखदाता को यज्ञकर्म द्वारा अन्न आदि की प्राप्ति के लिए प्रेरित करो, विस्तृत करो और ज्ञान, व्यवहार में धारण करो । सोमपानार्थ और अपनी रक्षा के लिए अदिति के पुत्र सूर्य का लाभ उठाओ ॥१२॥

यह दशम मण्डल में एकसौ एकवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १०२

ऋषिः—१ –१२ मुद्गलो भार्म्यश्वः ॥ देवता—द्रुघण इन्द्रो वा ॥
छन्दः—१ पादनिचृद्बृहती । ३, १२ निचृद्बृहती । २, ४, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । ७, ८, १० विराट्त्रिष्टुप् । ११ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३, १२ मध्यमः । २, ४—११ धैवतः ॥

प्र ते रथं मिथुकृतमिन्द्रोऽवतु धृष्णुया ।
अस्मिन्नाजौ पुरुहूत श्रवाय्ये धनभक्षेषु नोऽव ॥१॥

पदार्थः—हे शत्रुओं के नाश करने वाले राजन् ! (ते) तुम्हारा (**रथम्**) रथ (**मिथूकृतम्**) व्यर्थ किया हुआ पड़ा है (**इन्द्रः**) सेनापति (**धृष्णुया**) धर्षण-शील अस्त्र से रक्षा करे, (**पुरुहूत**) हे वहुतों से प्रशंसित सेनापते ! (**अस्मिन्**) इस (**श्रवाय्ये**) प्रशंसनीय (**आजौ**) संग्राम में और (**धनभक्षेषु**) धनों के भक्षण करने वालों के मध्य में (**नः**) हमारी (**अव**) रक्षा करो ।

भावार्थः—हे शत्रुओं के हर्ष को नष्ट करने वाले राजन् ! आप का रथ व्यर्थ पड़ गया है । सेनापति प्रबल अस्त्र से रक्षा करे । हे सबके प्रशंसनीय सेनापते ! इस युद्ध और धन का अपहरण करने वाले चोरों के मध्य हमारी रक्षा करो ॥१॥

उत्स्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यदजयत्सहस्रम् ।
रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे कृतं व्यचेदिन्द्रसेना ॥२॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**अधिरथम्**) रथ पर सवार होकर (**सहस्रम्**) सहस्रों को (**अजयत्**) जीतती है तब (**अस्याः**) इस राजा की पत्नी मुद्गलानी मुद्गर-धारिणी के (**वासः**) वस्त्र को (**वातः**) वायु (**उद् वहति स्म**) ऊपर उडाता है, (**गविष्टौ**) भूमि और गौ आदि की प्राप्ति के निमित्तभूत संग्राम में (**मुद्गलानी**) मुद्गरधा-रिणी राजा की पत्नी (**रथीः**) रथी (**अभूत्**) होती है (**इन्द्र सेना**) राजा की सेनानी भूत वह (**भरे**) संग्राम में (**कृतम्**) किए हुए शत्रुओं के कृत्य को (**व्यचेत्**) उलटा कर देती है ।

भावार्थः—जब रथ पर सवार होकर सहस्रों को जीतती है तब इस मुद्गरधारिणी राजा की पत्नी के वस्त्र को वायु ऊपर उड़ाती है । यह

Scanned by CamScanner

भूमि आदि की प्राप्ति के निमित्त होने वाले संग्राम में रथी होती है और संग्राम में राजा की सेनानी बनकर शत्रुओं के किये-कराये को पलट देती है ॥२॥

अन्तर्यच्छ जिघांसतो वज्रमिन्द्राभिदासतः ।
दासस्य वा मघवन्नार्यस्य वा सनुतर्यवया वधम् ॥३॥

पदार्थः--(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**जिघांसतः**) मारने की इच्छा करने वाले (**अभिदासतः**) अभिद्रोह करने वाले के (**वज्रम्**) शस्त्र को (**अन्तर् यच्छ**) अन्तर्हित कर दो (**मघवन्**) हे धनों के स्वामिन् ! (**दासस्य**) दस्यु का हो (**वा**) अथवा (**आर्यस्य**) आर्य का हो उसके (**वधम्**) आयुध को (**सुनुतः**) अन्तर्हित (**यवय**) पृथक् करो ।

भावार्थः--हे राजन् ! मारने की इच्छा करने वाले अथवा अभिद्रोह करने वाले के शस्त्र को व्यर्थ कर दो दस्यु का हो अथवा आर्य का हो, उन दोनों के आयुध को अपने से दूर कर दो ॥३॥

उद्नो ह्रदमपिबज्जर्हृषाणः कूटं स्म तृंहदभिमातिमेति ।
प्र मुष्कभारः श्रव इच्छमानोऽजिरं बाहू अभरत्सिषासन् ॥४॥

पदार्थः--(**वृषभः**) शत्रु के मुद अर्थात् हर्ष को खा जाने वाले राजा का वृषभ -- बैल (**जर्हृषाणः**) खुश हुआ (**उद्नः**) जल के (**ह्रदम्**) ह्रद को (**अपिबत्**) पी जाता है (**कूटम्**) कुटिल अथवा छल वाले (**अभिमातिम्**) शत्रु को (**एति स्म**) आक्रमण करता हैं और (**तृंहत्**) विदीर्ण करता है (**प्रमुष्कभारः**) प्रवृद्धमुष्कमार वह बैल (**श्रवः**) यश (**इच्छमानः**) चाहता हुआ (**आजिरम्**) गमनशील शत्रु के (**बाहू**) बाहुओं को (**सिसासन्**) भंग करने की इच्छा करता हुआ (**प्राभरतः**) प्रहार करता है ।

भावार्थः--शत्रु के हर्ष को निगल जाने वाले राजा का एतदर्थ निर्मित सांड खुश हुआ जल के ढेर को पी जाता है । कूट चाल वाले शत्रु पर हमला करता है और उसे विदीर्ण करता है । अपनी शक्ति से भरा हुआ वह साँड बहादुरी चाहता हुआ गमनशील शत्रु की बाहुओं को भंग करने के लिए प्रहार करता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

न्यंक्रन्दयन्नुपयन्त एनममेहयन्वृषभं मध्य आजेः ।
तेन सूभर्वं शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रधने जिगाय ॥५॥

पदार्थः—(आजेः) संग्राम के (मध्ये) मध्य में (उपन्तः) समीपवर्ती (एनम्) इस (वृषभम्) सांड को (नि अक्रन्दयन्) चिल्लाने को प्रेरित करते हैं और (अमेहयन्) मूत्रोत्सर्ग आदि कृत्रिम रूप से कराते हैं (तेन) उस कृत्रिम यांत्रिक सांड के द्वारा (मुद्गलः) शत्रुओं के मद को चूर्ण करने वाला राजा (सुभर्वम्) उत्तम दुग्ध आदि को देने वाले (शतवत्) सैंकड़ों (सहस्रम्) सहस्रों (गवाम्) गायों को (प्रधने) संग्राम में (जिगाय) जीतता है ।

भावार्थः—संग्राम के मध्य में समीपवर्ती लोग इस यंत्रमय सांड को चिल्लाने के लिए प्रेरित करते हैं और उसे कृत्रिम रूप से मलोत्सर्ग आदि कराते हैं । उस यांत्रिक सांड के द्वारा शत्रुओं के मान का मर्दन करने वाला राजा दुग्ध को देने वाली सैकड़ों सहस्रों गौओं को संग्राम में जीतता है ॥५॥

ककर्दवे वृषभो युक्त आसीदवावचीत्सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्ति ष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ॥६॥

पदार्थः—शत्रुओं के (ककर्दवे) मारने के लिए (वृषभः) यह यांत्रिक सांड (युक्तः) जोड़ा हुआ (आसीत्) होता है, (अस्य) इस राजा की (केशी) केशवाली (सारथिः) सारथि मुद्गलानी (अवावचीत्) इस साँड को चिघाड़ने वाला करती है अर्थात् चिघांड़ा मरवाती है, (दुधेः) दुर्धर्ष (अनसः) रथ से (युक्तस्य) युक्त (द्रवतः) दौड़ते हुए इस यांत्रिक सांड के शब्द से (निष्पदः) पदाति योद्धा लोग (मुद्गलानीम्) राजा की पत्नी की (प्रति) तरफ (ऋच्छन्ति स्म) जाते हैं ।

भावार्थः—शत्रुओं के मारने के लिए यह यांत्रिक सांड रथ में जोड़ा जाता है । इस राजा की केशवाली सारथि-पत्नी मुद्गलानी इस कृत्रिम सांड से चिघाड मरवाती है । दुर्धर्ष, रथ के साथ युक्त, दौड़ते हुए इस यांत्रिक सांड के शब्द से पदाति भट मुद्गलानी की तरफ पहुँच जाते हैं ॥६॥

उत प्रधिमुदहन्नस्य विद्वानुपायुनग्वंसगमत्र शिक्षन् ।
इन्द्र उदावत्पतिमघ्न्यानामरंहत पद्याभिः ककुद्मान् ॥७॥

पदार्थः—(**विद्वान्**) विद्वान् मुद्गल = शत्रुमर्दक राजा (**अस्य**) इस रथ की (**प्रधिम्**) किनारे की लकड़ी को (**उद्वहन्**) ऊपर ले जाता है अर्थात् रथ को संनद्ध करता है, (**उत**) और (**अत्र**) इस रथ में (**वंसगम्**) उत्तम गतिवाले वृषभ = कृत्रिम साँड को (**शिक्षन्**) रस्सी में स्थापित करता हुआ (**उपायुनक्**) समीप में जोड़ देता है, (**इन्द्रः**) विद्युत् (**अघ्न्यानाम्**) गायों के (**पतिम्**) इस यांत्रिक सांड को (**उतावत्**) चलाती है (**ककुद्मान्**) डिल्लयुक्त वह सांड (**पथ्याभिः**) मार्गों से (**अरंहत्**) वेग से चलता है।

भावार्थः—विद्वान् शत्रुमर्दन राजा इस रथ के किनारे के काष्ठ को ऊपर ले जाकर रथ को संनद्ध करता है। और इस रथ में उत्तम गति वाले इस कृत्रिम सांड को जोड़ता है। विद्युत् गौओं के पति इस यांत्रिक सांड को चलाती है और रास्ते से वेग के साथ चलता है ॥७॥

शुनम॑ष्ट्रा॒व्य॑चरत्क॒प॒र्दी व॑र॒त्राया॒ं दार्वा॒नह्य॑मानः ।
नृ॒म्णानि॑ कृ॒ण्वन्ब॒हवे॒ जना॑य॒ गाः प॑स्पशा॒नस्तवि॑षीरधत्त ॥८॥

पदार्थः—(**शुनम्**) सुखपूर्वक चलने वाला, (**अष्ट्रावी**) प्रतोदनयन्त्र से युक्त (**कपर्दी**) कपर्दवाला (**वरत्रायाम्**) रस्सी में (**दारु**) रथाङ्गभूत काष्ठ से (**आनह्यमानः**) बंधा हुआ (**बहवे**) बहुत से (**जनाय**) जनों के लिए (**नृम्णानि**) सुखों को (**कृण्वन्**) करता हुआ (**गाः**) किरणों अथवा तेजों को (**पस्पशानः**) स्पर्श करता हुआ (**तविषीः**) बलों को (**अधत्त**) धारण करता है।

भावार्थः—सुखपूर्वक चलने वाला प्रतोदन यन्त्र से युक्त कपर्दवाला रस्सी में रथाङ्गभूत काष्ठ से बंधा हुआ बहुत से जनों के लिए सुखों को देता हुआ किरणों का स्पर्श करता बलों को धारण करता है ॥८॥

इ॒मं तं प॑श्य वृष॒भस्य॑ यु॒ञ्जं काष्ठा॑या॒ मध्ये॑ द्रु॒घणं॒ शया॑नम् ।
येन॑ जि॒गाय॑ श॒तव॑त्स॒हस्रं॒ गवां॒ मुद्ग॑लः पृत॒नाज्ये॑षु ॥९॥

पदार्थः—(**वृषभस्य**) यांत्रिक सांड के (**युञ्जम्**) सहयोगी (**काष्ठायाः**) आज्यन्त = संग्राम के (**मध्ये**) मध्य (**शयानम्**) सोते हुए (**तम्**) उस (**इमम्**) इस (**द्रुघणम्**) काष्ठ के घन को (**पश्य**) देखो। (**येन**) जिसके बल से (**मुद्गलः**) शत्रुओं के हर्ष को नष्ट करने वाला राजा (**पृतनाज्येषु**) संग्रामों में (**गवाम्**) गायों के (**शतवत्**) सैंकड़ों (**सहस्रम्**) सहस्रों समूह को (**जिगाय**) जीतता है।

भावार्थः—हे मनुष्य ! यांत्रिक सांड के सहयोगी संग्राम के मध्य सोते हुए=पड़े हुए उस द्रुघण=द्रु+धन काष्ठ के बने घन को देखो कि जिसके द्वारा शत्रुओं के हर्ष को नाश करने वाला राजा संग्राम में सैकड़ों और हजारों गायों के समूह को जीतता है ॥९॥

आरे अघा को न्वि१त्था ददर्श यं युञ्जन्ति तम्वा स्थापयन्ति ।
नास्मै तृणं नोदकमा भरन्त्युत्तरो धुरो वहति प्रदेदिशत ॥१०॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**आरे**) समीप में ही (**अघा**) शत्रुओं के नाशरूपी दुःखों को (**करोति**) उत्पन्न करता है (**कः नु**) कौन (**तम्**) उसको (**इत्था उ**) इस प्रकार (**ददर्श**) देखता है (**यम्**) जिस द्रुघण को (**युञ्जन्ति**) रथ में युक्त करते हैं और (**तम् ऊं**) उसको (**आस्थापयन्ति**) मारने के लिए स्थापित करते हैं (**अस्मै**) इसके लिए (**न तृणम्**) न घास (**न उदकम्**) न पानी (**भरन्ति**) देते हैं, वृषभ का (**उत्तरः**) उत्तरभूत यह द्रुघण स्वामी को जय और शत्रु को भय (**प्रदेदिशत्**) दिखाता हुआ (**धुरः**) रथ धुरा को (**वहति**) ले चलता है ।

भावार्थः—जो समीप में ही शत्रुओं के विनाश रूपी दुःखों को उत्पन्न करता है, जिसको रथ में युक्त करते हैं और शत्रु को मारने के लिए स्थापित करते हैं उसको कौन इस प्रकार देखता है । न इसे खाने को घास, न पीने को पानी देना पड़ता हैं । यह सांड का उत्तर बनकर राजा को विजय और शत्रु को भय दिखाता हुआ धुरों को ले चलता है ॥१०॥

परिवृक्तेव पतिविद्यमानट् पीप्याना कूचक्रेणेव सिञ्चन् ।
एषैष्या चिद्रथ्या जयेम सुमङ्गलं सिनवदस्तु सातम् ॥११॥

पदार्थः—(**परिवृक्ता**) परित्यक्ता स्त्री के (**इव**) समान (**पतिविद्यम्**) पति प्राप्ति को (**आनट्**) प्राप्त होती है (**पीप्याना**) वृद्धि को प्राप्त हुई हुई होती हैं (**कूचक्रेण**) पृथिवी के वलय के द्वारा (**सिञ्चन्**) सीचने वाले मेघ के (**इव**) समान शत्रुओं में शरधारा बरसाती वृद्धि को प्राप्त करती है, (**एषैष्या**) गायों के समूह को इस प्रकार प्राप्त करने की इच्छा करती हुई (**रथ्या**) सारथी भूत इस मुद्गलानी के द्वारा गो समूह को (**जयेम**) जीतते हैं (**सातम्**) उसका दिया हुआ (**सुमङ्गलम्**) मंगलमय हो (**सिनवत्**) अन्न वाला भी हो ।

भावार्थः—वह मुद्गलानी परित्यक्ता स्त्री के समान पति को प्राप्त करती है और वृद्धि को प्राप्त करने वाली होती है । पृथिवी को चक्राकार

Scanned by CamScanner

रूप में सींचने वाले मेघ के समान वह शरों की वर्षा करती हुई वृद्धि को प्राप्त होती है। गौओं के समूह को इस प्रकार ढूंढने की इच्छा वाली इस मुद्गलानी के द्वारा हम गोसमूह को जीतते हैं। उसका योगदान मंगलमय है और अन्न से युक्त हो ॥११॥

त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः ।

वृषा यदाजिं वृषणा सिषाससि चोदयन्वध्रिणा युजा ॥१२॥

पदार्थः—(**त्वम्**) तू (**इन्द्र**) हे इन्द्र=परमेश्वर (**विश्वस्य**) समस्त (**जगतः**) जंगम सृष्टि के (**चक्षुषः**) चक्षु का भी (**चक्षुः**) चक्षु (**असि**) है (**यत्**) जिससे (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला तू (**वध्रिणा**) पाश से (**युजा**) युक्त (**वृषणा**) वर्षक शक्तियों को (**चोदयन्**) प्रेरित करता हुआ (**आजिम्**) सभी विरोधी शक्तियों को (**सिषाससि**) वश में रखता है।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू समस्त जंगम सृष्टि की आंखों की भी आंख है जिससे कामनाओं की वृष्टि करने वाला तू पाश से युक्त वर्षक-शक्तियों को प्रेरित करता हुआ सभी विरोधी शक्तियों को वश में रखता है ॥१२॥

यह दशम मण्डल में एकसौ दोवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १०३

ऋषिः—१—१३ अप्रतिरथ ऐन्द्रः ॥ देवता—१—३, ५—११ इन्द्रः । ४ बृहस्पतिः । १२ अप्वा । १३ इन्द्रो मरुतो वा ॥ छन्दः १, ३—५, ९ त्रिष्टुप् । २ स्वराट्त्रिष्टुप् । ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । ७, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १०, १२ विराट्त्रिष्टुप् ॥ १३ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—१२ धैवतः । १३ गान्धारः ॥

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम् ।

सङ्क्रन्दनोऽनिमिष एकवीरः शतं सेना अजयत्साकमिन्द्रः ॥१॥

पदार्थः—(**आशुः**) शीघ्रगामी, अथवा व्यापक, (**शिशान**) निशित (**भीमः**) भयंकर (**वृषभः**) सांड के (**न**) समान (**घनाघनः**) घातक (**चर्षणीनाम्**) मनुष्यों का (**क्षोभणः**) क्षुब्ध करने वाला (**संक्रन्दनः**) गर्जना करने वाला (**अनिमिषः**) निमेषरहित, (**एक वीरः**) एक मात्र वीर (**इन्द्र**) विद्युत् मेघों की (**शतम्**) सैंकड़ों (**सेनाः**) सेनाओं को (**साकम्**) एक साथ ही (**अजयत्**) जीतता है ।

भावार्थ—व्यापक, तीक्ष्ण, भयंकर सांड के समान, घातक लोगों को क्षुब्ध करने वाला, गर्जनायुक्त, निमेषरहित एवं एकमात्र वीर इन्द्र=विद्युत् मेघों की सैंकड़ों सेनाओं को एक साथ ही जीतता है ॥१॥

सङ्क्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना ।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

पदार्थः—(**युधः**) युद्ध करने वाले (**नरः**) नेतारूप मरुत् लोग (**संक्रन्दनेन**) गर्जना वाले, (**अनिमिषेण**) निर्निमेष (**जिष्णुना**) जयनशील (**युत्कारेण**) युद्ध करने वाले (**दुश्च्यदनेन**) न विचलित किए जाने वाले (**धृष्णुना**) धर्षक (**वृष्णा**) वर्षा कराने वाले (**इषुहस्तेन**) प्रक्षेपक तेज से युक्त (**इन्द्रेण**) इन्द्र=विद्युत् के द्वारा (**तत्**) उस मेघ के युद्ध को (**जयत**) जीतते हैं और (**सहध्वम्**) अभिभूत करते हैं ।

भावार्थः—इस विद्युद् के सहयोगी मरुद् लोग गर्जनाशील, निर्निमेष जयनशील, युद्ध करने वाले, न विचलित किए जाने वाले, धर्षक, वर्षाकारी इन्द्र=विद्युत् के द्वारा इस मेघ युद्ध को जीतते हैं और मेघ को अभिभूत करते हैं ॥२॥

स इषुहस्तैः स निषङ्गिभिर्वशी संस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन ।
संसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥

पदार्थः—(**इषुहस्तैः**) प्रक्षेपक तेजों वाले मरुद्गणों से (**वशी**) वशी (**सः**) वह इन्द्र, (**निषंगिभिः**) असंसक्त बलों से वशी (**सः**) वह इन्द्र (**युधः**) युद्ध के लिए (**गणेन**) मेघ-गण के साथ (**संस्रष्टा**) एक होकर लड़ने वाला (**सः**) वह इन्द्र, (**संसृष्टजित्**) गुत्थमगुत्था होकर लड़ने वालों पर विजय शील, (**सोमपाः**) सोम तत्त्व को पीने वाला (**बाहुशर्धी**) वहनशील बलों से युक्त , (**उग्रधन्वा**) उग्र

Scanned by CamScanner

धनुष् वाला, (**प्रतिहिताभिः**) शत्रुओं के प्रति फेंकी गई इषुओं के द्वारा (**अस्ता**) मारने वाला है ।

भावार्थः—वह इन्द्र=विद्युत् प्रक्षेपक तेजों वाले मरुद्गणों से और असंसक्त बलों से वशी युद्ध के लिए शत्रुओं से गुत्थमगुत्था होकर लड़ने वाला सोम का पान करने वाला, उग्र धनुष् वाला और इषुओं से मारने वाला है ॥३॥

बृहस्पते परि दीया रथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः ।
प्रभञ्जन्त्सेनाः प्रमृणो युधा जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ॥४॥

पदार्थः (**बृहस्पते**) यह तेजोवान् अग्नि (**रथेन**) अपने तेजोमय चक्र से (**परिदीय**) चारों तरफ जाता है, यह (**रक्षोहा**) कृमि कीट और रोगाणुओं का हन्ता है, (**अमित्रान्**) अमित्रभूत मेघों को (**अपबाधमानः**) सर्वतः नष्ट करता हुआ (**सेनाः**) उनकी सेना को (**प्रभञ्जन्**) भंग करता हुआ (**प्रमृणः**) मारता हुआ (**युधा**) युद्ध से (**जयन्**) जय प्राप्त करता हुआ (**अस्माकम्**) इन मरुद्गणों आदि के (**रथानाम्**) रथों का (**अविता**) रक्षक (**एधि**) होता है ।

भावार्थः—यह तेजोवान् अग्नि अपने तेजोमय चक्र से चारों तरफ फैलता है । यह रोगाणुओं का नाश करने वाला है । अमित्रभूत मेघों को नष्ट करता हुआ, उनकी सेना को मारता हुआ, युद्ध से उन पर विजय करता हुआ इन इन्द्र और मरुद्गणों के रथों=रमणीय शक्ति चक्र का रक्षक होता है ॥४॥

बलविज्ञायः स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः ।
अभिवीरो अभिसत्वा सहोजा जैत्रमिन्द्र रथमा तिष्ठ गोवित् ॥५॥

पदार्थः—(**बलविज्ञायः**) सब बलों से बलभूत, (**स्थविरः**) महान् (**प्रवीरः**) प्रकृष्ट वीर (**सहस्वान्**) सब बलों को दबाने वाला (**वाजी**) गतिमान् (**सहमानः**) अभिभव करने वाला (**उग्रः**) उग्र (**अभिवीरः**) वीरों से युक्त (**अभिसत्वा**) अभिगत सत्व, (**सहोजा**) बली (**गोवित्**) जल को प्राप्त करने वाला (**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**जैत्रम्**) जयनशील (**रथम्**) रमणीय वज्र को (**आतिष्ठ**) काबू में लेता है ।

भावार्थः—सब बलों का बल, महान्, प्रकृष्ट वीर बलों का अभिभव करने वाला, गतिशील, उग्र, अतितेजस्वी, बली और जलों का प्राप्त करने वाला इन्द्र=विद्युत् वज्र पर अधिरूढ़ होता है ॥५॥

Scanned by CamScanner

गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्म प्रमृणन्तमोजसा ।
इमं सजाता अनु वीरयध्वमिन्द्रं सखायो अनु सं रभध्वम् ॥६॥

पदार्थः– हे (**सखायः सह जातः**) साथीभूत मित्रो (**गोत्रभिदम्**) मेघों एवं पर्वतों अथवा पृथिवी के विदारक, (**गोविदम्**) जल के प्रापक (**वज्रबाहुम्**) वज्र-धारक (**अज्म**) गमनशील मेघ को (**जयन्तम्**) जीतने वाले (**ओजसा**) बल से (**प्रमिणन्तम्**) विरोधी को अभिभूत करने वाले (**इमम्**) इस (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**अनुवीरयध्वम्**) आगे करके वीरता का प्रयोग करो और (**अनु संरभध्वम्**) शत्रुओं पर प्रहार करो ।

भावार्थः—हे साथी भूत मित्रो ! मेघों के विदारक, जल के प्रापक, वज्र धारक, मेघों के गमनशील वल को जीतने वाले, बल से विरोधी को दबाने वाले इस इन्द्र को आगे करके वीरता दिखाओ और शत्रुओं पर प्रहार करो ॥६॥

अभि गोत्राणि सहसा गाहमानोऽदयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः ।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळयुध्योऽस्माकं सेना अवतु प्र युत्सु ॥७॥

पदार्थः—(**गोत्राणि**) मेघों में (**सहसा**) बल से (**अभिगाहमानः**) प्रविष्ट होकर (**अदयः**) दया न करने वाला हुआ (**वीरः**) वीर (**शतमन्युः**) बहुत क्रोध में आया हुआ अथवा अति तेजस्क (**दुश्च्यवनः**) शत्रुओं को च्युत करने वाला (**पृतनाषाड्**) शत्रु सेना का विनाशक (**अयुध्यः**) दूसरा कोई जिससे युद्ध नहीं कर सकता है । (**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**युत्सु**) प्रहारों में (**अस्माकम्**) इन मरुतों आदि की (**सेनाः**) सेना की (**प्र अवतु**) रक्षा करता है ।

भावार्थः—मेघों में वल से पैठ जाने वाला, कठोर, वली, अति तेजस्क, मेघों को च्युत करने वाला, अयोधनीय इन्द्र=विद्युत् इन मरुतों आदि के सेना-समूह की रक्षा करता है ॥७॥

इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः ।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनां मरुतो यन्त्वग्रम् ॥८॥

पदार्थः—(**अभिभञ्जतीनाम्**) मेघों का अभिमर्दन करती हुई (**जयन्तीनाम्**) जय प्राप्त करती हुई (**आसाम्**) इन (**देवसेनानाम्**) देवों की सेना का (**इन्द्रः**)

विद्युत् (**नेता**) नायक (**बृहस्पतिः**) अग्नि (**पुरः**) आगे (**एतु**) होता है (**दक्षिणा**) दक्षता, (**यज्ञः**) यज्ञ भावना, (**सोमः**) सोम आगे होता है (**मरुतः**) मरुद्गण (**अग्रम्**) आगे (**यन्तु**) चलते हैं ।

भावार्थः—मेघों का मर्दन करती हुई, जय को प्राप्त करने वाली इन देवों की सेनाओं का इन्द्र=विद्युत् नायक है । बृहस्पति=अग्नि दक्षता यज्ञ-भावना, सोम आगे रहते हैं और मरुद्गण भी आगे रहते हैं ॥८॥

इन्द्र॑स्य॒ वृष्णो॒ वरु॑णस्य॒ राज्ञ॑ आदि॒त्यानां॑ म॒रुतां॒ शर्ध॑ उ॒ग्रम् ।
म॒हाम॑नसां भुवनच्य॒वानां॒ घोषो॑ दे॒वानां॒ जय॑तामु॒दस्था॑त् ॥९॥

पदार्थः—(**वृष्णः**) बली (**इन्द्रस्य**) इन्द्र=विद्युत् का, (**राज्ञः**) राजा (**वरुणस्य**) वरुण=वायु का, (**आदित्यानाम्**) आदित्यों का (**मरुताम्**) मरुतों के (**उग्रम्**) उग्र (**शर्धम्**) बल महान् है, (**महामनसाम्**) महामना (**भुवनच्यवानाम्**) भुवनों को कंपाने वाले (**जयताम्**) जीतते हुए (**देवानाम्**) देवों का (**घोषः**) विजयशब्द (**उदस्थात्**) गूंजता है ।

भावार्थः—बली इन्द्र=विद्युत्, राजा वायु, आदित्य मरुत् लोगों का उग्र बल महान् हैं। महामना, भुवनों को कम्पायमान करने वाले और जीतने वाले देवों का विजय घोष सर्वत्र गूंजता है ॥९॥

उद्ध॑र्षय मघव॒न्नायु॑धा॒न्युत्सत्व॑नां माम॒कानां॒ मनां॑सि ।
उद्वृ॑त्रहन्वा॒जिनां॒ वाजि॑ना॒न्युद्रथा॑नां॒ जय॑तां यन्तु॒ घोषाः॑ ॥१०॥

पदार्थः—(**मघवन्**) इन्द्र (**आयुधानि**) आयुधों को (**उत् हर्षय**) प्रयुक्त करता है, (**मामकानाम्**) इन देवों के (**सत्वनाम्**) प्राणियों के (**मनांसि**) मनों को (**उत्**) हर्ष से उठा हुआ करता है (**वृत्रहन्**) वृत्र का हन्ता यह इन्द्र (**वाजिनाम्**) वेग वाले पदार्थों के (**वाजिनानि**) वेग (**उत् यन्तु**) बढ़ते हैं (**जयताम्**) विजय प्राप्त करते हुए रथों के (**घोषाः**) जयघोष (**उत् यन्तु**) उठते हैं ।

भावार्थः—इन्द्र आयुधों को प्रयुक्त करता है । इन देवों के प्राणियों के मनों को उठाता है । वृत्र का हन्ता यह इन्द्र वेग से बलों के वेग बढ़ते हैं । विजय प्राप्त करते हुए रथों के जयघोष उठते हैं ॥१०॥

अ॒स्माक॒मिन्द्रः॒ समृ॑तेषु ध्व॒जेष्व॒स्माकं॒ या इष॑व॒स्ता ज॑यन्तु ।
अ॒स्माकं॑ वी॒रा उत्त॑रे भवन्त्व॒स्माँ उ॑ देवा अवता॒हवे॑षु ॥११॥

पदार्थः—(**अस्माकम्**) इन देवों के (**समृतेषु**) शत्रु की सेना को प्राप्त हुए इनके (**ध्वजेषु**) ध्वजाधारी सैनिकों की (**इन्द्रः**) इन्द्र रक्षक (**भवतु**) होता है तथा (**याः**) इन लोगों के जो (**इषवः**) वाण हैं (**ताः**) वे (**जयन्तु**) विजय प्राप्त करते हैं (**अस्माकम्**) इन देवों के (**वीराः**) वीर लोग (**उत्तरे**) ऊपर अर्थात् विजयी (**भवन्तु**) होते हैं, (**देवाः**) ये सभी देव लोग (**हवेषु**) संग्रामों में (**अस्मान् ऊं**) इनकी (**अवत**) रक्षा करते हैं।

भावार्थः—इन देवों के शत्रु सेना पर चढ़ाई करने वाले ध्वजधारी सैनिकों की इन्द्र रक्षा करता है। इनके वाण सदा विजय प्राप्त करते हैं। इन देवों के वीर विजयी होते हैं और समस्त दिव्य शक्तियें इन की संग्रामों में रक्षा करती हैं ॥११॥

अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वे परेहि ।
अभि प्रेहि निर्दह हृत्सु शोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ॥१२॥

पदार्थ—(**अप्वे**) सभी को प्राप्त होकर दुःख से व्याप्त करने वाली विषैली गैस (**अमीषाम्**) इन योद्धाओं के (**चित्तम्**) चित्त को (**प्रतिलोभयन्ती**) बेहोश करती हुई (**अंगानि**) शरीराङ्गों को (**गृहाण**) जकड़ती है (**परा इहि**) उन पर जाती है, (**अभि प्रेहि**) सब तरफ से पहुंचती है, (**हृत्सु**) हृदयों में (**शोकैः**) शोषक बल से (**निः दह**) भस्म करती है और (**अमित्राः**) शत्रु लोग (**अन्धेन**) घोर (**तमसा**) अन्धकार से (**सचन्ताम्**) युक्त हो जाते हैं।

भावार्थः—विषैली गैस इन योद्धाओं के चित्त को विमूढ करती हुई अङ्गों को जकड़ती है। उन पर जाती है और जाकर शोषक ताप से उनके हृदयों को जलाती हैं और शत्रु जन घोर अन्धकार में घिर जाते हैं ॥१२॥

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥१३॥

पदार्थः—(**नरः**) नेता मरुद्गण (**प्र इत**) जाते हैं (**जयत**) जय प्राप्त करते हैं, (**वः**) इन्हें (**इन्द्रः**) इन्द्र=विद्युत् (**शर्म**) शरण (**यच्छतु**) देता है, (**वः**) इनके (**बाहवः**) धारक शक्ति (**उग्राः**) प्रचण्ड (**सन्तु**) हो जाती हैं और ये लोग (**यथा**) जैसे (**अनाधृष्णाः**) दूसरों से अधर्षणीय हों ऐसा (**असथ**) होते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मरुद्गण जाते हैं, जय प्राप्त करते हैं। इनको इन्द्र=विद्युत् शरण देती है। इनकी धारक शक्ति प्रचण्ड हो उठती है और ये ऐसे हो जाते हैं कि कोई इन्हें अभिभूत नहीं कर सके ॥१३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तीनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०४

ऋषिः—१—११ **अष्टको वैश्वामित्रः** ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ६, १० निचृत्त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

असावि सोमः पुरुहूत तुभ्यं हरिभ्यां यज्ञमुप याहि तूयम् ।
तुभ्यं गिरो विप्रवीरा इयाना दधन्विर इन्द्र पिबा सुतस्य ॥१॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यशालिन् ! हे (**पुरुहूत**) सभी से प्रशंसित राजन् ! (**तुभ्यम्**) आप के लिये (**सोमः**) सोम आदि रस (**असावि**) तैयार किया गया है, (**हरिभ्याम्**) दोनों अश्वों द्वारा आकृष्ट यान से (**यज्ञम्**) हमारे यज्ञ में (**तूयम्**) शीघ्र (**उप याहि**) आओ, (**तुभ्यम्**) तुम्हारे लिए (**विप्रवीराः**) मेधावियों द्वारा प्रेरित (**गिरः**) प्रशंसायें (**इयानाः**) गमनशील हुई (**दधन्विरे**) चल रही है (**सुतस्य**) तैयार सोम को (**पिब**) पीओ ।

भावार्थः—हे सबसे प्रशंसा किये जाने वाले राजन् ! आप के लिए सोम आदि ओषधियों का रस तैयार है। आप अपने दोनों अश्वों द्वारा आकृष्ट यान से हमारे यज्ञ में शीघ्र आइये। तुम्हारे लिए मेधावी जनों द्वारा प्रेरित प्रशंसायें चालू हों। आप तैयार सोम का पान करें ॥१॥

अप्सु धूतस्य हरिवः पिबेह नृभिः सुतस्य जठरं पृणस्व ।
मिमिक्षुर्यमद्रय इन्द्र तुभ्यं तेभिर्वर्धस्व मदमुक्थवाहः ॥२॥

पदार्थः—(**हरिवः**) हे अश्वों वाले (**इन्द्र**) राजन् ! (**अप्सु**) जलों में (**धूतस्य**) कम्पित=अभिषुत (**नृभिः**) ऋत्विजों के द्वारा (**सुतस्य**) तैयार सोम को (**इह**) यहां पर (**पिब**) पी (**जठरम्**) पेट को (**पृणस्व**) भर (**यम्**) जिसको

Scanned by CamScanner

(अद्रयः) पाषाण शिलायें (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (मिमिक्षुः) तैयार करती हैं (उक्थवाहः) उक्थों से प्रशंसनीय तू (तेभिः) उन प्रशंसाओं के द्वारा (मदम्) हर्ष को (वर्धस्व) बढ़ा ।

भावार्थः—हे अश्वों वाले राजन् ! जल में निचोड़े गए और ऋत्विजों द्वारा तयार सोम रस का यहां पर आप पान करें और पेट को तृप्त करें। यह सोम पाषाण-शिलाओं ने आप के लिए निचोड़ा है। आप प्रशस्ति-भाजन हो अतः प्रशस्तियों के साथ अपने हर्ष को बढाइये ॥२॥

प्रोग्रां पीतिं वृष्ण इयर्मि सत्यां प्रयै सुतस्य हर्यश्व तुभ्यम् ।
इन्द्र धेनाभिरिह मादयस्व धीभिर्विश्वाभिः शच्या गृणानः ॥३॥

पदार्थः—(हर्यश्व इन्द्र) हे गमनशील अश्वों वाले राजन् ! (वृष्णे) धन आदि के बरसाने वाले (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए (उग्राम्) उग्र (सत्याम्) सत्य (सुतस्य) अभिषुत (पीतिम्) पान को (प्रयै) गमन के लिए (इयर्मि) प्रेरित करता हूँ (शच्या) कर्म से युक्त (गृणानः) प्रशस्यमान (विश्वाभिः) सारी (धेनाभिः) प्रशंसा वाणियों से (धीभिः) समस्त कर्मों से (इह) इस यज्ञ में (मादयस्व) तृप्त हो ।

भावार्थः—हे गमनशील अश्वों वाले राजन् ! सुख के वर्षक आपके लिए सोमपान तैयार करके आप के लिए प्रेरित है। आप पीवें। समस्त प्रशंसाओं, कर्मों आदि से आप इस यज्ञ में तृप्त होवें ॥३॥

ऊती शचीवस्तव वीर्येण वयो दधाना उशिज ऋतज्ञाः ।
प्रजावदिन्द्र मनुषो दुरोणे तस्थुर्गृणन्तः सधमाद्यासः ॥४॥

पदार्थः—(शचीवन्) प्रज्ञावन् (इन्द्र) राजन् ! (तव) आप के (ऊती) रक्षण से और आप के (वीर्येण) पराक्रम से (प्रजावत्) सन्तान आदि से युक्त (वयः) अन्न को (दधानाः) धारण करने वाले (ऋतज्ञाः) यज्ञ के ज्ञाता (उशिजः) मेधावी लोग (मनुषः) मनुष्य अथवा यजमान के (दुरोणे) गृह में (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए (सधमाद्यासः) साथ प्रसन्न होकर (तस्थुः) स्थित होते हैं ।

भावार्थः—हे प्रज्ञावन् राजन् ! आप के रक्षण से और आप के पराक्रम से सन्तान आदि से युक्त अन्न आदि धनों को प्राप्त किए यज्ञ के दाता

Scanned by CamScanner

मेधावी जन मनुष्यों के गृहों में आप की प्रशंसा करते हुए सह प्रसन्न होकर रहते हैं ॥४॥

प्रणीतिभिष्टे हर्यश्व सुष्टोः सुषुम्नस्य पुरुरुचो जनासः ।
मंहिष्ठामूतिं वितिरे दधानाः स्तोतार इन्द्र तव सूनृताभिः ॥५॥

पदार्थ—(**हर्यश्व इन्द्र**) हे वेगवान् घोड़ों वाले राजन् ! (**सुष्ठोः**) भली प्रकार प्रशंसा योग्य, (**सुषुम्नस्य**) उत्तम सुख एवं धन वाले (**पुरुरुचः**) बहुत दीप्ति वाले (**ते**) तुम्हारी (**प्रणीतिभिः**) प्रकृष्ट प्रदान नीतियों से (**स्तोतारः**) प्रशंसक (**जनासः**) लोग (**सूनृताभिः**) प्रिय और सत्य वाणियों से (**वितिरे**) अन्यों को देने के लिए (**तव**) तुम्हारी (**मंहिष्ठाम्**) अतिशः मंहनीय (**ऊतिम्**) रक्षा को (**दधानाः**) धारण करते हुए रहते हैं ।

भावार्थः—हे वेगवान् अश्वों वाले राजन् ! सब प्रकार प्रशंसनीय, उत्तम सुख और धन वाले, दीप्तिमान् आप के दान आदि के प्रशंसक लोग उत्तम प्रिय सत्य वाणियों से अन्यों को भी देने के लिए आप की अति महंनीय रक्षा को धारण करते हुए रहते हैं ॥५॥

उप ब्रह्माणि हरिवो हरिभ्यां सोमस्य याहि पीतये सुतस्य ।
इन्द्र त्वा यज्ञः क्षममाणमानड् दाश्वाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतः ॥६॥

पदार्थः—हे (**हरिवः**) अश्वों वाले (**इन्द्र**) राजन् ! (**सुतस्य**) अभिषुत (**सोमस्य**) सोम के (**पीतये**) पान के लिए (**हरिभ्याम्**) दो घोड़ों से आकृष्ट यान से हमारे (**ब्रह्माणि**) कर्मों को (**उपयाहि**) प्राप्त हो (**क्षममाणम्**) सामर्थ्यवान् (**त्वा**) तुझ को (**यज्ञः**) यज्ञ (**आनट्**) दुःखों से मुक्त करता है, तू (**दाश्वान्**) दान दाता और (**अध्वरस्य**) यज्ञ का (**प्रकेतः**) जानने वाला है ।

भावार्थः—हे अश्वों वाले राजन् ! अभिषुत सोम के पान के लिए दो अश्वों से आकृष्ट रथ से हमारे यज्ञोपासना आदि कर्मों में आइये । सामर्थ्यवान् तुझको यज्ञ दुःखों से मुक्त करता है । तू यज्ञ के विषय में जानने वाला और महान् दाता है ॥६॥

सहस्रवाजमभिमातिषाहं सुतेरणं मघवानं सुवृक्तिम् ।
उप भूषन्ति गिरो अप्रतीतमिन्द्रं नमस्या जरितुः पनन्त ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**सहस्रयाजम्**) अपरिमित अन्न और बल वाले, (**अभिमातिषाहम्**) शत्रुओं के नाशक, (**सुतेरणम्**) सोम आदि रस में आनन्द लेने वाले, (**मघवानम्**) यज्ञ और धन वाले (**सु वृक्तिम्**) उत्तम प्रशंसा वाले (**अप्रतीतम्**) युद्ध में जिसका कोई मुकाबला न कर सके (**इन्द्रम्**) राजा को (**गिरः**) प्रशंसा वचन (**उपभूषन्ति**) अलंकृत करते हैं (**जरितुः**) प्रशंसा करने वाले की (**समस्याः**) आदर-सूचक वाणियां (**पनन्त**) प्रशंसा करती हैं।

भावार्थः—प्रभूत अन्न और बल वाले, शत्रुओं का मर्दन करने वाला सोमरस का पान करने वाला, प्रशंसनीय, धन वाला और वेजोड़ राजा को प्रशंसायें अलंकृत करती हैं और आदरसूचक वाणियां उसकी प्रशंसा करती हैं ॥७॥

सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित् ।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्दः ॥८॥

पदार्थः—(**पूर्भित्**) हे शत्रु नगरी को छिन्न-भिन्न करने वाले (**इन्द्र**) राजन् ! (**याभिः**) जिनके द्वारा (**सिन्धुम्**) समुद्र को (**अतरः**) बढ़ाते हो वे (**सप्त**) सात (**आपः**) जल धारायें नदी रूप में (**देवीः**) जलदात्री और (**सुरणा**) उत्तम शब्द करती हुई (**अमृक्ता**) वे रोक टोक बहती हैं, (**नवतिम् नव च**) ९९ (**स्रवन्तीः**) बहती हुई (**स्रोत्याः**) नदियाँ (**देवेभ्यः**) यज्ञ के देवों को हवि देने के लिए (**च**) और (**मनुषे**) मनुष्य के भोग के लिए (**गातुम्**) गन्तव्य और मार्ग को (**विन्दः**) प्राप्त करते हो।

भावार्थः—हे शत्रुनगरी के विध्वंस करने वाले राजन् ! जिनके द्वारा समुद्र को बढ़ाते हो ऐसी सप्त जलधारायें नदी रूप में उत्तम शब्दों को करती हुई जल प्रदान करती बहती हैं। उन नदियों और यज्ञ के देवों के लिए हवि तथा मनुष्यों के लिए भोग का गन्तव्य और मार्ग आप प्राप्त करते हो ॥८॥

अपो महीरभिशस्तेरमुञ्चोऽजागरास्वधि देव एकः ।
इन्द्र यास्त्वं वृत्रतूर्ये चकर्थ ताभिर्विश्वायुस्तन्वं पुपुष्याः ॥९॥

पदार्थः—(**इन्द्रः**) यह सूर्य (**महीः**) प्रचुर (**अपः**) जलों को (**अभिशस्तेः**) दुःखदायी वृत्र=मेघ से (**अमुञ्चः**) मुक्त करता है, (**आसु**) इन (**अधि**) में

(एकः) अकेला (देवः) द्योतन दीपन गुणों वाला यह इन्द्र=सूर्य (अजागः) जागरूक रहता है (याः) जिन जलों को (त्वम्) यह सूर्य (वृत्रतूर्ये) वृत्र के साथ होने वाले संग्राम में (चकर्थ) उत्पन्न करता है (ताभिः) उन्हीं के द्वारा (विश्वायुः) सबकी आयु का हेतुभूत उस (तन्वम्) अपने शरीर को (पुपुष्याः) पुष्ट करता है।

भावार्थः—यह सूर्य मेघ से प्रचुर मात्रा में जल को वर्षा के लिए छुड़ाता है। इन में यह एकमात्र देव जागरूक रहता है। जिन जलों को यह मेघ का वध करके उन्मुक्त करता है उन्हीं के द्वारा रसादान से अपने शरीर को पुष्ट करता है ॥९॥

वीरेण्यः क्रतुरिन्द्रः सुशस्तिरुतापि धेना पुरुहूतमीट्टे ।
आर्दयद्वृत्रमकृणोदु लोकं ससाहे शक्रः पृतना अभिष्टिः ॥१०॥

पदार्थः—(इन्द्रः) यह सूर्य (वीरेण्यः) बहुत प्रबल (क्रतुः) कर्मवान् (सुशस्तिः) प्रशस्त (उत अपि) और (धेना) वेदवाणी (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रशस्य इन्द्र की (ईट्टे) प्रशंसा करती है, (वृत्रम्) अन्धकार करने वाले मेघ को यह इन्द्र (आर्दयत्) मारता है (लोकम् उ) प्रकाश को करता है, (अभिष्टिः) शत्रुओं का घातक (शक्रः) शक्तिशाली इन्द्र (पृतनाः) सेनाओं को (ससाहे) दबा देता है।

भावार्थः—यह सूर्य प्रबल कर्मवान् और प्रशस्त है। वेद वाणियां इस की प्रशंसा करती हैं। यह अन्धकार करने वाले मेघ को मारता है, प्रकाश करता है और शक्तिशाली अभिभूत करने वाला यह वृत्र की सेना को भी नष्ट करता है ॥१०॥

शुनं हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन्भरे नृतमं वाजसातौ ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्तं वृत्राणि सञ्जितं धनानाम् ॥११॥

पदार्थः—(अस्मिन्) इस (वाजसातौ) अन्न बांटने वाले (भरे) यज्ञ में (नृतमम्) नेतृसम (शुनम्) व्यापनशील (मघवानम्) मखों वाले (धनानाम्) जल अन्न आदि धनों के (संजितम्) उत्पन्न करने वाले (समत्सु) संग्रामों में (वृत्राणि) शत्रुओं के (घ्नन्तम्) हनन करने वाले (ऊतये) रक्षा के लिए (शृण्वन्तम्) सुने जाने वाले (उग्रम्) प्रचण्ड (इन्द्रम्) सूर्य को (हुवेम) हम ज्ञान में धारण करते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—अन्नादि के बांटने के लिए किये जाने वाले यज्ञ में व्यापनशील महान्, यज्ञों के साधन, धनों के उत्पन्न करने वाले, वृत्र=मेघों के हनन करने वाले, रक्षा में समर्थ सुने जाने वाले प्रचण्ड सूर्य को हम अपने ज्ञान में धारण करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चारवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०५

ऋषिः—१—११ सुमित्रो दुर्मित्रो वा कौत्सः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ पिपीलिकामध्योष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक् । ४, १० निचृदुष्णिक् । ५, ६, ८, ९ विराडुष्णिक् । २ आर्चीस्वराडनुष्टुप् । ७ विराडनुष्टुप् । ११ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१, ३—६, ८—१० ऋषभः । २, ७ गान्धारः । ११ धैवतः ॥

कदा वसो स्तोत्रं हर्यत आव श्मशा रुधद्वाः ।
दीर्घं सुतं वाताप्याय ॥१॥

पदार्थः—(स्तोत्रम्) प्रशंसामयी उक्ति (वसो) बसाने वाले (हर्यते) हरणशील वायु के लिए (स्तोत्रम्) हमारा प्रशंसा वचन (कदा) कब उसी प्रकार (आ अव रुधत्) अवरुद्ध करती है और (वाः) वरण करती है, जिस प्रकार (श्मशा) क्षेत्र की क्यारी (दीर्घम्) बड़े (सुतम्) उत्पन्न सस्य के प्रति (वाताप्याय) जल देने के लिए पानी को रोकती है और फिर छोड़ती है।

भावार्थः—हमारा प्रशंसामय वचन वासक हरणशील वायु को कब उसी प्रकार रोकता और वरण करता है जिस प्रकार क्षेत्र की क्यारी सस्य वा पौदों को पानी देने के लिए पानी को रोकती और फिर क्यारी में छोडती है ॥१॥

हरी यस्य सुयुजा विव्रता वेरर्वन्तानु शेपा ।
उभा रजी न केशिना पतिर्दन् ॥२॥

पदार्थः—(**यस्य**) जिस उस इन्द्र=वायु के (**सुयुजौ**) अच्छी प्रकार कार्य में लगे, (**विव्रतौ**) विशेष कार्यों को करने वाले, (**अर्वन्ता**) गतिमान् (**शेपा**) स्पर्शनशील (**हरी**) धारक और वाहक गुण (**उभा**) दोनों (**रजी**) द्यु और पृथिवी की तरह (**केशिना**) प्रकाश युक्त हुए अपने हैं वह (**पतिः**) इन दोनों का स्वामी इन्द्र=वायु (**दन्**) अन्न आदि देता हुआ (**अनुवेः**) गतिमान् होता है।

भावार्थः—जिस वायु के धारक और वाहक गुण जगत् में विशेष कार्यों का संपादन करते हैं और द्यु और पृथिवी की तरह प्रकाशयुक्त हुए गतिमान् हैं वह वायु सुख और अन्न आदि का साधन बनकर बहता है ।।२।।

अप योरिन्द्रः पापज आ मर्तो न शश्रमाणो बिभीवान् ।
शुभे यद्युयुजे तविषीवान् ।।३।।

पदार्थः—(**इन्द्रः**) वायु (**पापजे**) पाप से उत्पन्न वृत्र के युद्ध में (**मर्तः न**) मनुष्य की भांति (**आ शश्रमाणः**) श्रम करता हुआ (**बिभीवान्**) भीत होता है (**यत्**) जब वह (**तविषीवान्**) बलवान् होकर (**शुभे**) शोभा के लिए (**युयुजे**) युक्त होता है तब (**अप योः**) वृत्र=मेघ का अपयोग=वियोग करने वाला होता है।

भावार्थः—वायु वृत्र=मेघ के युद्ध में श्रम करता हुआ मनुष्य की भांति भीत होता है। जब वह मरुत् लोगों के साथ होकर बलवान् हुआ शोभा के लिए युक्त होता है तब वृत्र=मेघ को छिन्न-भिन्न करता है ।।३।।

सचायोरिन्द्रश्चर्कृष आँ उपानसः सपर्यन् ।
नदयोर्विव्रतयोः शूर इन्द्रः ।।४।।

पदार्थः—(**नदयोः**) नदनशील (**विव्रतयोः**) विशेष कर्म करने वाले धारक और वाहक कार्यों का नियन्ता (**इन्द्रः**) वायु (**शूरः**) शक्ति शाली है, (**इन्द्रः**) वायु (**सचा**) अन्य शक्तियों से युक्त हुआ, (**उपानसः**) प्राणनशील मरुतों का (**आ सपर्यन्**) आदर करता हुआ (**आयोः**) जल को (**चकृषे**) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—शब्द करने वाले, विशेष कर्म वाले धारक और वाहक

Scanned by CamScanner

गुणों और कार्यों का नियन्ता वायु शक्तिशाली है। वह अन्य भौतिक शक्तियों के साथ युक्त होकर मरुतों को साथ लिए मेघ से जल उत्पन्न करता है ॥४॥

अधि यस्तस्थौ केशवन्ता व्यचस्वन्ता न पुष्ट्यै ।
वनोति शिप्राभ्यां शिप्रिणीवान् ॥५॥

पदार्थः-- (यः) जो इन्द्र=सूर्य (केशवन्ता) प्रकाशमान (न) और (व्यचस्वन्ता) व्याप्ति वाले धारण और आकर्षण गुणों को (पुष्ट्यै) पुष्टि के लिए (अधितस्थौ) अधिकार में रखता है, वह (शिप्राभ्याम्) द्यु और पृथिवी लोकों के द्वारा (शिप्रिणीवान्) हनु वाला होकर (वनोति) कृमि आदि का नाश करता है ।

भावार्थः --जो सूर्य प्रकाशमान धारण और आकर्षण गुणों को लोकों के दृढ़ रखने और पोषण के लिए अधिकार में रखता है वह द्यु और पृथिवी लोक के द्वारा हनु वाला होकर कृमि कीट आदि रोग-जन्तुओं का नाश करता है ॥५॥

प्रास्तौदृष्वौजा ऋष्वेभिस्ततक्ष शूरः शवसा ।
ऋभुर्न क्रतुभिर्मातरिश्वा ॥६॥

पदार्थ-- (ऋष्वौजाः) व्याप्तबल वह इन्द्र=सूर्य (ऋष्वेभिः) मरुतों के साथ (प्रास्तौत्) स्तुत किया जाता है जो (शूरः) बली (शवसा) बल से (क्रतुभिः) कर्मों से (मातरिश्वा) आकाश में रहता हुआ (ऋभुः न) शिल्पी के समान (ततक्ष) वृत्र=मेघ को काटता है ।

भावार्थः--व्याप्त बलों वाला वह सूर्य मरुतों के साथ स्तुत किया जाता है जो बली है और बल तथा अपने कर्मों से आकाश में स्थित हुआ शिल्पी की भाँति मेघ को काटता है ॥६॥

वज्रं यश्चक्रे सुहनाय दस्यवे हिरीमशो हिरीमान् ।
अरुतहनुरद्भुतं न रजः ॥७॥

पदार्थः (हिरीमशः) हरणशील अथवा तेजस्क किरणों वाला, (हिरीमान्) हरितवर्ण (यः) जो इन्द्र=सूर्य (दस्यवे) जल न छोड़ने वाले मेघ के (सुहनाय)

भली प्रकार मारने के लिए (वज्रम्) वज्र को (चक्र) साधन बनाता है (सः) वह (अद्भुतम्) अद्भुत (रजः) अन्तरिक्ष के (न) समान (अरुतहनुः) अबाधगति है ।

भावार्थः—हरणशील किरणों वाला हरितवर्ण जो सूर्य जलावरोधक मेघ के भली प्रकार हनन के लिए वज्र को साधन बनाता है वह अद्भुत अन्तरिक्ष के समान अबाधगति है ॥७॥

अव॑ नो वृजि॒ना शि॑शीह्यृ॒चा व॑नेमानृ॒चः ।
नाब्र॑ह्मा य॒ज्ञ ऋध॒ग्जोष॑ति॒ त्वे ॥८॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! आप (नः) हमारी (**वृजिना**) बुराइयों अर्थात् हमारे लिए वर्जनीय कर्मों को (**अव शिशीहि**) अत्यन्त क्षीण कर, हम (**ऋचा**) मन्त्र से (**अनृचः**) विना मन्त्र वाले कर्मों अथवा भावों को (**वनेम**) नष्ट करें (**अब्रह्म**) विना वेदमन्त्र का यज्ञ (**त्वे**) तुझे (**ऋधग्**) तनिक भी (**न**) नहीं (**जोषति**) पसन्द आता है ।

भावार्थः - हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! हमारे लिए वर्जनीय कर्मों को क्षीण करके हमसे दूर करो ! हम मन्त्रों द्वारा विना मन्त्र के किये जाने वाले कर्मों अथवा भावों को दबा देवें । विना वेद मन्त्र के होने वाला यज्ञ आप के यज्ञ के रूप में नहीं भाता है। क्योंकि वह यज्ञ नहीं है ॥८॥

ऊ॒र्ध्वा यत्ते॑ त्रे॒तिनी॒ भूद्य॒ज्ञस्य॑ धू॒र्षु सद्म॑न् ।
स॒जूर्नावं॒ स्वय॑शसं॒ सचा॒योः ॥९॥

पदार्थ—(**यत्**) जो (**ते**) तेरी (**यज्ञस्य**) यज्ञ की (**त्रेतिनी**) तीनों लोकों में व्यापक शक्ति (**धूः सु**) जगत् के धारक तत्वों में (**सद्मनि**) सब के आश्रय आकाश में (**ऊर्ध्वा**) ऊपर होकर (**भूत्**) विद्यमान होती है वह (**आयोः**) जीव मात्र की (**सचा**) साथी और (**सजूः**) समान प्रेरणा वाली है, उस (**स्वयशसम्**) स्वयं यशवाली (**नावम्**) नौका के समान तारने वाले नौका को हम प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे प्रभो ! जो तुम्हारे यज्ञ की तीनों लोकों में व्याप्त शक्ति जगत् के धारक तत्वों में और सब लोकों के आश्रय आकाश में सर्वोपरि होकर विद्यमान है वह जीवमात्र की सहयोगी और समानरूप में प्रेरणादात्री है उस (स्वयशसन्) स्वयं यश शाली नौका के समान तारने वाली नौका को हम प्राप्त करें ॥९॥

Scanned by CamScanner

श्रिये ते पृश्निरुपसेचनी भूच्छ्रिये दर्विररेपाः ।
यया स्वे पात्रे सिञ्चस उत् ॥१०॥

पदार्थः – (**ते**) इस इन्द्र=सूर्य की (**श्रिये**) शोभा के लिए (**पृश्निः**) पृथिवी (**उपसेचनी**) जल को दुहने वाली (**भूत्**) होती है, (**दर्विः**) अन्तरिक्ष (**अरेपाः**) शुद्ध पवित्र हुआ इस की शोभा के लिए होता है (**यया**) जिस दर्वि के समान अन्तरिक्ष (**स्वे पात्रे**) अपने पात्र=किरणजालमय पात्र में (**उत् सिञ्चसे**) सिक्त करता है ।

भावार्थः—इस सूर्य की शोभा के लिये पृथिवी वृष्टिजल का दोहन करती है । अन्तरिक्ष शुद्ध पवित्र हुआ इसकी शोभा के लिए समर्थ होता है । इसके द्वारा रसादान से वह इस जल को अपनी किरणों में ग्रहण करता है ॥१०॥

शतं वा यदसुर्य प्रति त्वा सुमित्र इत्थास्तौद्दुर्मित्र इत्थास्तौत् ।
आवो यद्दस्युहत्ये कुत्सपुत्रं प्रावो यद्दस्युहत्ये कुत्सवत्सम् ॥११॥

पदार्थः—हे (**असुर्य**) बलवन् इन्द्र=प्रभो (**त्वा**) आप के (**प्रति**) प्रति (**शतम्**) शत संख्यायुक्त (**वा**) अथवा प्रभूत धन की (**यद्**) जब कामना करता है (**यत्**) जो आप (**दस्युहत्ये**) बुराइयों के साथ लड़ने में (**कुत्सपुत्रम्**) स्तुतिकर्ता के पुत्र स्तावक की (**प्राव**) रक्षा करते हो (**यत्**) जो आप (**दस्यु-हत्ये**) बुराइयों से लड़ने में (**कुत्सवत्सम्**) स्तोता के वत्स स्तावक की (**प्रावः**) रक्षा करते हो इसलिए कुत्सपुत्र=स्तोता का पुत्र सुमित्र=सद्गुणों और सज्जनों से मित्रता रखने वाला स्तावक (**इत्था**) इस प्रकार से (**अस्तौत्**) स्तुति करता है और कुत्सवत्स दुर्मित्र=दुर्गुणों और बुराईयों से द्वेष करने वाला (**इत्था**) इस प्रकार (**अस्तौत्**) स्तुति करता है ।

भावार्थः—हे बलशालिन् प्रभो ! जब प्रभूत धन की कामना करता है तब सद्गुणों का मित्र स्तावक आपकी इस प्रकार स्तुति करता है और बुराइयों का द्वेषी स्तावक इस प्रकार स्तुति करता है । आप स्तोता वा उपासक के पुत्र=अति उपासक सद्गुणों के मित्र की और, स्तोता के पुत्र=अति स्तोता की बुराइयों के निवारक की बुराई से लड़ने में रक्षा करते हो ॥११॥

यह दशम मण्डल में एक सौ पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १०६

ऋषिः १-११ भूतांशः काश्यपः ॥ देवते अश्विनौ ॥ छन्दः—१, ३, ७ त्रिष्टुप् । २, ४, ८-११ निचृत्त्रिष्टुप् । ५, ६ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः— धैवतः ॥

उभा उं नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे ॥१॥

पदार्थः—(**उभा**) दोनों अश्विना=ऋणात्मक धनात्मक विद्युत् (**नूनम् उ**) निश्चय ही (**तत् इत्**) उस प्रयोज्य वस्तु को (**अर्थयेथे**) चाहते हैं कि जिसमें ये दोनों (**वस्त्रा**) वस्त्रों को (**अपसा**) बुनकर के (**इव**) समान (**धियः**) कर्मों को (**वितन्वाथे**) विस्तृत करते हैं, (**सध्रीचीना**) साथ ही साथ रहकर (**सुदिना इव**) रात्रि दिन अथवा सूर्य और चन्द्रमा के समान (**यातवे**) गति, प्राप्ति के लिए (**ईम्**) जल को (**प्राजीगः**) निगरण करते हैं । (**पृक्षः**) अन्न अथवा स्पर्श को (**आतंसयेथे**) अलंकृत करते हैं ।

भावार्थः—दोनों अश्विनी=ऋणात्मक धनात्मक विद्युत् निश्चय ही उसी ग्राह्य और प्रयोज्य वस्तु को अपने लिए चाहते हैं जिसमें वे दोनों अपने कर्मों का उसी प्रकार विस्तार कर सकते हैं जिस प्रकार बुनकर कपड़े का विस्तार करते हैं । दोनों साथ ही साथ रहकर रात-दिन अथवा सूर्य और चन्द्रमा के समान गति, प्राप्ति और आकर्षण आदि के लिए जल को निगरण करते हैं और अन्न तथा स्पर्श आदि को अलंकृत करते हैं ॥१॥

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात् ॥२॥

पदार्थः—ये दोनों (**फर्वरेषु**) पूरक पदार्थों में (**उष्टारा इव**) दाह और कान्तियुक्त, (**श्रयेथे**) आश्रय लेते हैं, (**प्रायोगा**) जोते गये दो बैलों के (**इव**) समान (**श्वात्र्या**) आशु गमन और व्यापनशील दोनों (**शासुः**) नियन्त्रक के अधिकार (**आ इथः**) आते हैं (**जनेषु**) लोगों में (**दूता इव**) दूत के समान (**यशसा**) यशस्वी (**स्थः हि**) होते हैं (**अवपानात्**) पानी पीने के बने प्याऊ स्थान से (**महिषा**) भैंसों के समान (**मा**) नहीं (**अप स्थातम्**) अलग होते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों पूरक पदार्थों में दाह और कान्तियुक्त हुए आश्रय

Scanned by CamScanner

लेते हैं। जोते गये बैलों के समान कहीं भी जोते गये ये आशु गमन व्यापन-शील होते हैं। जनों में ये दूत के कार्य का सम्पादन कर उसके समान प्रशंसा प्राप्त करते हैं। जिस प्रकार भैंसा उदपान से दूर नहीं जाता उसी प्रकार ये एक-दूसरे से पृथक् नहीं होते हैं ॥२॥

साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३॥

पदार्थः—ये दोनों (साकं युजा) एक साथ रहने वाले (शकुनस्य) पक्षी के (पक्षौ) पक्षों के (इव) समान (चित्रा) चायनीय ये दोनों (पश्वा) दो पशु के समान (यजुः) संयोग को प्राप्त (आ गमिष्टम्) होते हैं (देवयोः) देवों की कामना करने वाले यज्ञकर्त्ता की (अग्निः) अग्नि के समान (दीदिवांसा) दीप्तिमान् (परिज्माना इव) चारों तरफ गति करने वालों के समान ये गतिशील (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों को (यजथः) सम्पादित करते हैं।

भावार्थः—ये दोनों साथ रहने वाले पक्षी के दो पक्षों के समान हैं। अद्भुत ये दो पशुओं के समान संयोग=संघटन को प्राप्त होते हैं। देवों की कामना वाले यज्ञकर्त्ता की यज्ञाग्नि के समान दीप्तिमान् होते हैं और चारों तरफ गति करने वालों के समान विविध कार्यों का सम्पादन करने वाले होते हैं ॥३॥

आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४॥

पदार्थः—(वः) ये दोनों (अस्मे) हमारे लिए (आपी) बन्धु के समान लाभकारी हैं, (पुत्रा) पुत्र को (पितरा) माता-पिता के समान ये हमारी रक्षा के साधन हैं, ये दोनों (उग्रा) अग्नि और आदित्य के समान उग्र हैं, (रुचा) दीप्ति से युक्त, (तुर्यै) त्वरित-कारिता (नृपती) दो राजाओं के (इव) समान (पुष्टयै) पुष्टि के लिए (किरणा इव) आदित्य की दो किरणों के समान (भुज्यै) भोग के लिए (श्रुष्टीवाना) सुख वाले के (इव) समान (हवम्) शब्द व्यवहार में (आगमिष्टम्) प्रयोग में आते हैं।

भावार्थः—ये दोनों हमारे लिए बन्धु के समान लाभकारी, पुत्र के प्रति माता-पिता के समान रक्षा के साधन, अग्नि और आदित्य के समान

Scanned by CamScanner

उग्र, राजा के समान त्वरित कार्य करने वाले, पोषण के लिए दो किरणों के समान, भोगार्थ सुख वालों के समान हमारे शब्द-व्यवहार में प्रयोग में आते हैं ॥४॥

वंसगेव पूषर्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता ।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या३ पुरीषा ॥५॥

पदार्थः—(**वंसगा इव**) दो वृषभों के समान (**पूषर्यो**) पोषण कार्य करने वाले, (**मित्रा इव**) दो मित्रों अर्थात् मित्र और वरुण=प्राण और उदान के समान (**शिम्बाता**) सुखकारी अथवा सुखपूर्वक सतत गामी और (**ऋतौ**) सर्वत्र प्राप्त होने वाले, (**शतरा**) सैकड़ों कार्यों को करने वाले तथा (**शातपन्ता**) सैकड़ों प्रकार से व्यवहार में लाये जाने वाले, (**वाजा इव**) दो अश्वों के समान (**वयसा**) गति से (**उच्चा**) उच्च तथा (**घर्म्येष्ठा**) ताप से युक्त, (**मेषा इव**) दो भेड़ों के समान (**इषा**) ज्ञान के द्वारा (**सपर्या**) व्यवहार में सेवनीय तथा (**पुरीषा**) पुष्ट हैं ।

भावार्थः—ये दोनों अश्विनी=विद्युतें बैल के समान पोषणकार्य करने वाले, प्राण और उदान के समान सुखकारी, सर्वत्र प्राप्त होने वाले, सैकड़ों कार्यों को सिद्ध करने वाले और सैकड़ों प्रकार से व्यवहार में लाये जाने वाले, दो अश्वों के समान गति में उच्च, ताप से युक्त, दो भेड़ों के समान ज्ञान के द्वारा व्यवहार में सेवनीय और पुष्ट हैं ॥५॥

सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मरायु ॥६॥

पदार्थः—ये दोनों अश्विनी=विद्युतें (**सृण्या इव**) दो अंकुशों के समान (**जर्भरी**) पोषक और (**तुर्फरीतू**) हन्ता हैं, (**नैतोशा इव**) दो शत्रुघातक राजपुत्रों के समान (**तुर्फरी**) नाशक और (**पर्फरीका**) विदारक (**उदन्यजा इव**) समुद्रोत्पन्न दो रत्नों के समान (**जेमना**) जयनशील (**मदेरू**) हर्षकारी (**ता**) ये दोनों (**मे**) मेरे (**जरायु**) जीर्ण होने वाले और (**मरायु**) मरणधर्मा शरीर को (**अजरम्**) अजर=जरारहित करते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों विद्युतें दो अंकुशों के समान भरणशील और हननशील हैं, दो शत्रुघातक राजकुमारों के समान ये हन्ता और विदारक हैं ।

Scanned by CamScanner

समुद्रोत्पन्न दो रत्नों के समान ये जयनशील (अर्थात् बहुमूल्य पदार्थोंमें जिस प्रकार ये रत्न जय प्राप्त करते हैं मूल्य स्पर्धा में उसी प्रकार ये शक्तियों में जयशील हैं) ये मदेरु=हर्षदायक हैं। ये दोनों प्रयोग द्वारा हमारे जरा और मृत्यु वाले शरीर को जरारहित करते हैं ॥६॥

पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत्खरमज्रा खरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७॥

पदार्थः—(**पज्रा इव**) दो समर्थ मनुष्यों के समान (**उग्रा**) उग्र (**चर्चरम्**) चरणशील, (**जारम्**) जरायुक्त (**मरायु**) मरणशील शरीर को (**क्षद्म इव**) जल के समान (**अर्थेषु**) गन्तव्य विषयों में (**तर्तरीथः**) पार लगाते हैं (**ऋभून्**) दो शिल्पियों के समान (**खरमज्रा**) तीक्ष्ण शुद्धि करने वाले ये दोनों (**खरज्रुः**) अतिशय वेग शक्ति को (**आपन्**) प्राप्त करते हैं, (**वायुः न**) वायु के समान सभी स्थानों को (**पर्फरत्**) पूरित करते हैं और (**रयीणाम्**) सम्पदाओं को (**क्षयत्**) ऐश्वर्ययुक्त करते अथवा प्राप्त कराते हैं।

भावार्थः—दो समर्थ पुरुषों के समान ये उग्र अश्विनी=विद्युतें चरणशील जरायुक्त, मरणशील शरीर को जलके समान गन्तव्य विषयोंमें लेजाते हैं दो शिल्पी जिस प्रकार अपने रथ को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार अत्यन्त शोधक गुणों वाले ये दोनों अतिशय वेग वाली शक्ति को पूरित करते हैं और सम्पदाओं को प्राप्त कराते हैं ॥७॥

घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेविता तुर्फरी फारिवारम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ॥८॥

पदार्थः—ये दोनों (**घर्मा इव**) ताप और शैत्य के समान (**जठरे**) अन्तरिक्ष में (**मधु**) जल को सम्भक्त करने वाले, (**भगेविता इव**) ऐश्वर्य की रक्षा करने वालों के समान (**तुर्फरी**) घातक और (**अरम्**) पर्याप्त शक्ति तथा (**फारिवा**) आयुध शक्ति से युक्त, (**पतरा इव**) पतनशील पक्षी के समान (**चचरा**) अतिशय गतिवाले, (**चन्द्रनिर्णिक्**) आह्लादक रूपों वाले, (**मन ऋंगा**) मन के समान वेग से आभूषित (**मनन्या इव**) दो स्तावकों के समान (**जग्मी**) गमनशील हैं।

भावार्थः—ये दोनों विद्युतें ताप और शैत्य के समान अन्तरिक्ष में जल को संभक्त करने वाले हैं। ऐश्वर्य की रक्षा करने वालों के समान

Scanned by CamScanner

घातक, पर्याप्तशक्ति और आयुधीय शक्तियों वाले, पतनशील दो पक्षी के समान अतिशय गतिवाले, आह्लादक रूपों वाले, मन के समान वेग से भूषित और दो स्तावकों के समान गमनशील हैं ॥८॥

बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।

कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोऽशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९॥

पदार्थः– (बृहन्ता इव) दो बड़े पुरुषों के समान (गम्भरेषु) गहन जलों में (प्रतिष्ठाम्) स्थिति को (विदाथः) प्राप्त करते हैं, (तरतः) तैरते पुरुष के (पादा इव) दोनों पैरों के समान (गाधम्) जल की गहराई में (विदाथः)प्राप्त होते हैं (कर्णा इव) दोनों कानों के समान (शासुः) स्तावक को (अनु स्मराथः) अनुस्मरण कराते हैं, (अंशा इव) अवयवों के समान (नः) हमारे (चित्रम्) अद्भुत (अप्नः) कर्म का (भजतम्) आश्रयण करते हैं ।

भावार्थः– दो बड़े पुरुषों के समान ये गहन जलों में स्थिति को प्राप्त करते हैं । तैरते मनुष्य के दोनों पैरों के समान जल की गहराई को प्राप्त होते हैं, दोनों कानों के समान स्तावक को अथवा शब्दों को बोलने वालों को अपने बोले शब्दों का अनुश्रवण करा कर पुनः अनुस्मरण करने के साधन बनते हैं और हम मनुष्यों के अद्भुत कर्मों का अनुकरण करते हैं ॥९॥

आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।

कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात्सचेथे ॥१०॥

पदार्थः—(आरंगरा इव) शब्दायमान मेघों के समान (मधु) जल को (आ ईरयेथे) प्रेरित करते हैं, (सारघा इव) मधुमक्षियों के समान (नीचीनवारे) नीचे द्वार वाली (गवि) जल को ऊपर की ओर प्रेरित करते हैं (कीनारा इव) स्वेदयुक्त पुरुष के समान (स्वेदम्) जल को (आसिष्विदाना) सब तरफ से क्षरण करने वाले (इव) जिस प्रकार (क्षामा) क्षीण गौयें (सूयवसात्) घास आदि से (ऊर्जाम्) ऊर्ज=बल को प्राप्त करती हैं वैसे ये (ऊर्जाम्) बल को (सचेथे) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः— शब्दायमान मेघों के समान जल को प्रेरित करते हैं, मधु-मक्षिका के समान नीचे की ओर बहने वाले जल को ऊपर की ओर प्रेरित

Scanned by CamScanner

करते हैं, स्वेदयुक्त पुरुष के समान जल को क्षरण करते हैं और जिस प्रकार क्षीण गौवें घास आदि खाकर ऊर्ज—बल को प्राप्त करती हैं वैसे ये भी बल को प्राप्त करते हैं ॥१०॥

ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप यातम् ।
यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो अश्विनोः काममप्राः ॥११॥

पदार्थः हम (**स्तोमम्**) मन्त्र समूह को (**ऋध्याम**) अधिक मात्रा में पढ़ें और प्रयुक्त करें (**वाजम्**) ज्ञान और अन्न को (**आ सनुयाम**) स्वयं प्राप्त करे तथा औरों को देवें, (**सरथा**) रथ सवार के समान (**इह**) यहां पर (**नः**) हमारे (**मंत्रम्**) विचार में ये दोनों (**उपयातम्**) उपस्थित रहें, (**गोषु**) गायों के (**अन्तः**) मध्य विद्यमान (**मधु**) मधुर दुग्ध के (**न**) समान (**पक्वम्**) पके हुए (**यशः**) अन्न को ये यज्ञ में प्राप्त होते हैं । (**भूतांशः**) भूतों के अंशों को जानने वाला (**अश्विनोः**) इन दोनों विद्युतों का (**कामम्**) यथेच्छ (**अप्राः**) काम में पूरित करता है ।

भावार्थः—मन्त्रसमूह को हम अधिक पढ़ें, समझें और तदनुसार प्रयुक्त करें । ज्ञान और अन्न को स्वयं प्राप्त करें और दूसरों को देवें । रथ पर सवार मनुष्यों के समान ये यहां हमारे विचार में उपस्थित रहें । गायों में विद्यमान दुग्ध के समान पके अन्न को यज्ञ में प्राप्त करते हैं । भूतों का ज्ञाता इन दोनों को यथेच्छ कार्य में आपूरित करता है ॥११॥

सूचना—इस सूक्त १०६ में ऐसे मन्त्र हैं जिनके विषय में यह शंका उठायी जाती है कि इन मन्त्रों का कोई अर्थ है ही नहीं । ये अनर्थक हैं। इस प्रकार का यह कथन कोई नई बात नहीं । महाभारत काल में इस प्रकार की शंका को उठाकर यास्क ने अपने निरुक्त और जैमिनि ने मीमांसा में उत्तर दिया है और सिद्ध किया है कि सभी मन्त्र सार्थक हैं । यह सूक्त अश्विनी देवता वाला है जो ऋणात्मक धनात्मक विद्युत् का वर्णन करता है । अश्विनी भी युगल है । सारे मन्त्रों का अर्थ कर दिया गया है और इन का अर्थ नहीं लगता है—इस धारणा को निर्मूल कर दिया गया है ।

यह दशम मण्डल में एक सौ छवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१०७

ऋषिः—१—११ दिव्यो दक्षिणा वा प्राजापत्या ॥ देवताः—दक्षिणा तद्दातारो वा ॥ छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती ॥ स्वरः—१—३, ५—११ धैवतः । ४ निषादः ॥

आविरभून्महि माघोनमेषां विश्वं जीवं तमसो निरमोचि ।
महि ज्योतिः पितृभिर्दत्तमागादुरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

पदार्थः—(**एषाम्**) इन यजमानों के याग की सिद्धि के लिए (**माघोनम्**) सूर्य सम्बन्धी (**महि**) महत्तेज (**आविः**) प्रकट (**अभूत्**) होता है, (**विश्वम्**) समस्त (**जीवम्**) जंगम और स्थावर जगत् (**तमसः**) अन्धकार से (**निरमोचि**) निर्मुक्त होता है (**पितृभिः**) रात्रि के द्वारा (**दत्तम्**) दी गई (**महि**) महत् (**ज्योतिः**) सूर्य रूपी ज्योतिः (**आ अगात्**) आती है (**दक्षिणायाः**) याग का समय दिन का है अतः सूर्योदय से याग का समय आ जाने से दक्षिणा=यज्ञ की दक्षिणा देने से उत्पन्न हुई दक्षता=परिपूर्णता का (**उरुः**) विस्तृत (**पन्था**) मार्ग (**अदर्शि**) दिखाई पड़ता है।

भावार्थः- इन यजमानों के याग की सिद्धि के लिए सूर्य सम्बन्धि महत्तेज प्रकट होता है । तथा समस्त जंगम स्थावर जगत् अन्धकार से मुक्त होता है । रात्रि के द्वारा प्रदत्त सूर्य का उदय होता है और यज्ञ का समय हो जाने से दक्षिणा का विस्तृत मार्ग दिखाई पड़ता है ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदाः सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्वं भजन्ते वासोदाः सोम प्र तिरन्त आयुः ॥२॥

पदार्थः—(**दक्षिणावन्तः**) दक्षिणा देने वाले (**दिवि**) प्रकाशमान स्थिति में (**उच्चा**) उच्च स्थान को (**अस्थुः**) प्राप्त करते हैं, (**ये**) जो (**अश्वदाः**) अश्व की दक्षिणा या दान करने वाले हैं (**ते**) वे (**सूर्येण**) सूर्य के साथ प्रकाशमान होकर स्थित होते हैं, (**हिरण्यदाः**) स्वर्ण तथा रत्नों का दान करने वाले (**अमृतत्वम्**) अमरत्व को (**भजन्ते**) प्राप्त करते हैं (**सोम**) हे सोम=विद्वन् (**वासोदाः**) निवास स्थान देने वाले (**आयुः**) अपनी आयु को (**प्रतिरन्ते**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—दक्षिणा देने वाले प्रकाश की स्थिति में उच्च पद को प्राप्त

Scanned by CamScanner

करते हैं। अश्वों का दान करने वाले सूर्यसम तेजस्वी होकर स्थित होते हैं। स्वर्ण और रत्न आदि के दाता अमरता को प्राप्त करते है और हे विद्वन्! निवास स्थान के दाता अपनी आयु को बढ़ाते हैं ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिभ्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नरः प्रयतदक्षिणासोऽवद्यभिया वहवः पृणन्ति ॥३॥

पदार्थः—(**दैवी**) यज्ञ देवों और विद्वानों सम्बन्धी (**पूर्त्तिः**) पूरिका क्रिया (**देवयज्या**) देवों के निमित किए गए यज्ञ का अंगभूत (**दक्षिणा**) दक्षिणा (**कवारिभ्यो**) कुत्सित कर्मी अथवा कुत्सित धन स्वामियों के लिए (**न**) नहीं होती है (**हि**) क्योंकि (**ते**) वे (**न**) नहीं (**पृणन्ति**) देवों को हवि आदि से प्रसन्न करते हैं, (**अथा**) अतः (**प्रयतदक्षिणासः**) दक्षिणा देने वाले (**बहवः**) बहुत से (**नरः**) यज्ञ कर्त्ता यजमान (**अवद्यभिया**) पाप वा बुराई के भय से (**पृणन्ति**) देवों को यज्ञ में हवि आदि से तृप्त करते हैं।

भावार्थः—यज्ञ देवों और विद्वानों सम्बन्धी पूरिका क्रिया और याग की अंगभूत दक्षिणा कार्य कुत्सितकर्मी अथवा कुत्सित धन स्वामियों के लिए नहीं है क्योंकि न वे यज्ञ याग करते हैं और न कोई उत्तम कर्म ही करते हैं अतः दक्षिणा देने वाले बहुत से यज्ञ कर्त्ता यजमान पाप के भय से (कि ऐसा न करने से पाप होगा) यज्ञ आदि कर्मों को करते हैं ॥३॥

शतधारं वायुमर्कं स्वर्विदं नृचक्षसस्ते अभि चक्षते हविः ।
ये पृणन्ति प्र च यच्छन्ति सङ्गमे ते दक्षिणां दुहते सप्तमातरम् ॥४॥

पदार्थः—(**ते**) वे यजमान लोग (**शतधारम्**) सैकड़ों प्रकार के शब्दों से युक्त (**वायुम्**) वायु को (**स्वर्विदम्**) अन्तरिक्ष में विद्यमान (**अर्कम्**) सूर्य (**नृचक्षसः**) दूसरे यज्ञ देवों को (**हविः**) हवि (**अभिचक्षते**) देना जानते हैं, (**ये**) जो (**पृणन्ति**) देवों को हवि से परिपूर्ण करते हैं (**च**) और (**संगमे**) समागम युक्त यज्ञ में (**यच्छन्ति**) हवि आदि देते हैं (**ते**) वे (**सप्तमातरम्**) सात होता आदि ऋत्विग् कर्म के निर्माता हैं जिसमें ऐसी (**दक्षिणाम्**) दक्षिणा को ऋत्विजों के लिए (**दुहते**) दुहते हैं।

भावार्थः—वे यजमान जन बहु प्रकार के शब्दों वाले वायु आकाशस्थ सूर्य और अन्य यज्ञ देवों के निमित्त हवि देना जानते हैं। जो देवों को तृप्त

Scanned by CamScanner

करते और यज्ञ में हवि आदि देते हैं वे सात ऋत्विजों सम्बन्धी दक्षिणा को ऋत्विजों को प्रदान करते हैं ॥४॥

दक्षिणावान्प्रथमो हूत एति दक्षिणावान्ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव मन्ये नृपतिं जनानां यः प्रथमो दक्षिणामाविवाय ॥५॥

पदार्थः –(**हूतः**) ऋत्विग् आदि से बुलाया गया (**दक्षिणावान्**) दक्षिणा देने वाला व्यक्ति (**प्रथमः**) मुख्य होकर (**एति**) विचरता हैं, (**ग्रामणीः**) गांवों का नेता होकर (**अग्रम्**) सब के आगे (**एति**) चलता है, (**तम्**) उसे (**एव**) ही (**जनानाम्**) लोगों का (**नृपतिम्**) पालन करने वाला (**मन्ये**) मैं पुरोहित मानता हूँ (**यः**) जो (**प्रथमः**) मुख्य हुआ (**दक्षिणाम्**) दक्षिणा (**आविवाय**) प्रदान करता है ।

भावार्थः –ऋत्विजों से बुलाया गया दक्षिणा का दाता मुख्य व्यक्ति होकर विचरता है । वह ग्राम का नेता होकर सब के आगे चलता है । उसे ही मैं पुरोहित लोगों का पालन कर्त्ता मानता हूं जो मुख्य हुआ दक्षिणा प्रदान करता है ॥५॥

तमेव ऋषिं तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम् ।
स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥

पदार्थः—(**तम्**) उसकी (**एव**) ही (**ऋषिम्**) ऋषि, (**तम् उ**) उसे ही (**ब्रह्माणम्**) ब्रह्मा, (**यजन्यम्**) यज्ञ का नेता अध्वर्यु (**सामगाम्**) सामों को गाने वाला (**उक्थशासम्**) शस्त्रों का शंसक अर्थात् होता (**आहुः**) ज्ञानी जन कहते हैं (**सः**) वह (**शुक्रस्य**) प्रदीप्त अग्नि के (**तिस्रः**) तीन (**तन्वः**) शरीर=आहवनीय आदि तीन अथवा प्रदीप्त ज्योति के अग्नि, वैद्युत और आदित्य रूपी को (**वेद**) जानता हैं (**प्रथमः**) मुख्यभूत (**यः**) जो (**दक्षिणया**) दक्षिणा से ऋत्विग् आदि को (**रराध**) सम्पन्न करता हैं ।

भावार्थः –विद्वज्जन उसी को ऋषि, उसे ही ब्रह्मा, अध्वर्यु, सामगान करने वाला और होता कहते हैं जो प्रदीप्त अग्नि के आहवनीय आदि तीन भेद अथवा प्रदीप्त ज्योति के अग्नि, वैद्युत और आदित्यरूप तीन भेदों को जानता है और मुख्य होकर दक्षिणा से ऋत्विग् आदि का सत्कार करता है ॥६॥

Scanned by CamScanner

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्मं कृणुते विजानन् ॥७॥

पदार्थः—(यः) जो (दक्षिणा) दक्षिणा में (अश्वम्) घोड़ा देता है, (दक्षिणा) दक्षिणा में (गाम्) गाय (ददाति) देता है, (दक्षिणा) दक्षिणा में (चन्द्रम्) चांदी (उत्) और (यत्) जो (हिरण्यम्) सोना देता है (दक्षिणा) दक्षिणा में (अन्नम्) अन्न (वनुते) देता है, वह (नः) हम लोगों में (आत्मा) आत्मा से [स्वयम्] (विजानन्) इस रहस्य को जानता हुआ (दक्षिणाम् दक्षिणा को अपना (वर्म) कवच (कृणुते) बनाता है ।

भावार्थः—जो दक्षिणा में अश्व, गाय, चांदी, सोना और अन्न प्रदान करता है वह हम लोगों में स्वयं इस रहस्य को जानकर दक्षिणा को अपना कवच=रक्षा का साधन बनाता है ॥७॥

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्तेह भोजाः ।
इदं यद्विश्वं भुवनं स्वश्चैतत्सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

पदार्थः—(भोजाः) दान दाता लोग (न) न (मम्रुः) यश से कभी मरते नहीं, (न) न तो (न्यर्थम्) उत्पात को (ईयुः) प्राप्त होते हैं, (ह) निश्चय ही (भोजा) दान दाता लोग (न) न बाधित होते हैं और (न) न तो (व्यथन्ते) व्यथा को ही प्राप्त होते हैं, (इदम्) यह (यत्) जो (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) लोक हैं और (स्वः) स्वर्ग (एतत्) यह (सर्वम्) सब कुछ (दक्षिणा) लोगों का दिया गया दान (एभ्यः) इन दाताओं को (ददाति) देता है ।

भावार्थः—दानदाता लोग कभी यश से मरते नहीं । उनको न उत्पात का भय और न किसी बाधा का भय होता है । यह जो कुछ भी भूत जात और स्वर्ग आदि है इन सब कुछ को लोगों को दिया गया दान इन दाताओं को प्रदान करता है ॥८॥

भोजा जिग्युः सुरभिं योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्वं१ या सुवासाः ।
भोजा जिग्युरन्तःपेयं सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूताः प्रयन्ति ॥९॥

पदार्थ—(भोजाः) दान दाता लोग (सुरभिम्) सुगन्ध पूर्ण (योनिम्)

गृह को (**अग्रे**) प्रथम (**जिग्युः**) प्राप्त करते हैं (**भोजाः**) दान दाता (**वध्वम्**) स्त्री को प्राप्त करते हैं (**या**) जो (**सुवासाः**) उत्तम वस्त्रों वाली है, (**भोजाः**) दानदाता लोग (**सुरायाः**) यश की (**अन्तः पेयम्**) अगाध गहराई को (**जिग्युः**) प्राप्त करते हैं, (**ये**) जो (**अहूताः**) विना बुलाए अर्थात् अकस्मात् अनाहूत जो आपत्तियां विघ्न बाधायें (**प्रयन्ति**) आती हैं उनको (**भोजाः**) दानदाता लोग (**जिग्युः**) जीतते हैं।

भावार्थः—दान दाता लोग सुगन्धिपूर्ण गृह, उत्तम-वस्त्र युक्त पत्नी अगाधयश को प्राप्त करते हैं। अनाहूत आने वाली विपत्तियों पर विजय प्राप्त करते हैं ॥९॥

भोजायाश्वं सं मृजन्त्याशुं भोजायास्ते कन्या३ शुम्भमाना ।
भोजस्येदं पुष्करिणीव वेश्म परिष्कृतं देवमानेव चित्रम् ॥१०॥

पदार्थः—(**भोजाय**) दानी पुरुष के लिए परिचारक लोग (**आशुम्**) शीघ्रगामी अश्व को (**संमृजन्ति**) भली प्रकार साफ और सुसज्जित करते हैं। (**भोजाय**) दानी के लिए (**शुम्भमाना**) सुशोभित (**कन्या**) युवती पत्नी के रूप में विवाहविधि से (**आस्ते**) प्राप्त होती हैं, (**भोजस्य**) दानी के लिए (**परिष्कृतम्**) अलंकृत (**चित्रम्**) उत्तम (**देवयाना इव**) देवयान के समान (**इदम्**) यह (**वेश्म**) गृह (**पुष्करिणी इव**) कमलयुक्त सरसी के समान होता है।

भावार्थः—दानी के लिए परिचारक शीघ्रगामी अश्व को स्वच्छ और सुसज्जित करते हैं। दानी को सुसज्जित युवती विवाह करके पत्नी रूप में प्राप्त होती और दानी का उत्तम देवयान के समान सुशोभित गृह कमखिली सरसी के समान होता है ॥१०॥

भोजमश्वाः सुष्टुवाहो वहन्ति सुवृद्रथो वर्तते दक्षिणायाः ।
भोजं देवासोऽवता भरेषु भोजः शत्रून्त्समनीकेषु जेता ॥११॥

पदार्थः—(**भोजम्**) दानी को (**सुष्टुवाहः**) उत्तमता से वहन करने वाले (**अश्वाः**) घोड़े (**वहन्ति**) वहन करते हैं उसके द्वारा प्रदत्त (**दक्षिणायाः**) दक्षिणा का (**सुवृत**) उत्तम चक्रवाला (**रथः**) रथ उसके लिए (**वर्तते**) विद्यमान होता है, (**देवासः**) विद्वान् लोग (**भोजम्**) दानी की (**भरेषु**) यज्ञों में (**अवत**) रक्षा करते हैं (**भोजः**) दानी (**समनीकेषु**) संग्रामों में (**शत्रून्**) शत्रुओं का (**जेता**) जीतने वाला होता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—दानी को उत्तमगति वाले घोड़े वहन करते हैं। उसके द्वारा प्रदत्त दक्षिणा का उत्तमचक्रादि वाला रथ उसके प्रयोग के लिए विद्यमान रहता है। विद्वान् लोग दानी की यज्ञों में रक्षा करते हैं। दानी संग्रामों में शत्रुओं पर विजयी होता है ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१०८

ऋषिः—१, ३, ५, ७, ९ पणयोऽसुराः। २, ४, ६, ८, १०, ११ सरमा-देवशुनी ॥ देवताः—१, ३, ५, ७, ९ सरमा। २, ४, ६, ८, १०, ११ पणयः ॥ छन्दः—१ विराट्त्रिष्टुप्। २, १० त्रिष्टुप्। ३—५, ७—९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सूचना—इस सूक्त में सूर्य किरणों को मेघ जब छिपा लेता है तो सरमा=माध्यमिका वाक् उसे प्राप्त कराती है इसका आलंकारिक वर्णन है। इसे ही देवशुनी=देवों को कुतिया कहा जाता है।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यध्वा जगुरिः पराचैः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत्कथं रसाया अतरः पयांसि ॥१॥

पदार्थः—पणि=मेघ की उक्ति—(**सरमा**) देवों की कुतिया यह माध्यमिका वाक् (**किम्**) क्या (**इच्छन्ती**) चाहती हुई (**इदम्**) इस हमारे स्थान पर (**प्रानट्**) आई है, (**पराचैः**) आकर पुनः आसानी से लौटने योग्य गतियों से (**जगुरिः**) प्रयत्न से भी न जाने योग्य (**हि अध्वा**) यह मार्ग दूर है, (**का**) कौन सी (**अस्मेहितिः**) इसमें हमारे स्वार्थ की बात निहित है (**का**) कैसी (**परितक्म्या**) रात्रि (**आसीत्**) है, (**कथम्**) किस प्रकार से (**रसायाः**) अन्तरिक्षस्थ जलधारा के (**पयांसि**) जल को (**अतरः**) यह सरमा तैरती है।

भावार्थः—पणि=मेघ यह विचारते हैं—किस वस्तु वा उद्देश्य को चाहती हुई यह माध्यमिका वाक् हम मेघों के स्थान में आई है। यह मार्ग ऐसा दूर और विकट है कि जहां आना-जाना आसान नहीं है। इसमें

हमारे सम्बन्धी उसका क्या हित है। उसकी रात्रि कैसे बीतती है और अन्तरिक्षस्थ जलधारा के जल को वह किस प्रकार तैर कर आती है ॥१॥

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्तीं पणयो निधीन्वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरं पयांसि ॥२॥

पदार्थः—सरमा=माध्यमिका वाक् जो देवशुनी कही जाती है उसकी उक्ति—मैं सरमा (**इन्द्रस्य**) सूर्य की (**दूतीः**) दूती हूँ (**इषिता**) उसके द्वारा प्रेषित हुई (**चरामि**) यहां पर आती हूँ,(**पणयः वः**) इन पणियों के द्वारा अपहृत (**महः**) महान् (**निधीन्**) गोनिधियों को (**इच्छन्ती**) चाहती हुई विचरती हूं, (**अतिष्कदः**) सूर्य इसे सोखकर शुष्क न कर दे इस (**भियसा**) भय से (**तत्**) वह नदी जल (**नः**) मेरी (**आवत्**) रक्षा करता है (**तथा**) उसी प्रकार से (**रसायाः**) अन्तरिक्षस्थ जलधारा के (**पयांसि**) जलों को (**अतरम्**) तैरती हूं।

भावार्थः—मैं सूर्य की दूती हूं और सूर्य द्वारा प्रेषित होकर यहां गोनिधियों=सूर्य किरणों को चाहती हुई आती हूँ। सूर्य कहीं सोखकर इसे शुष्क न कर दे, इस भय से यह नदी जल मेरी रक्षा करता है और इसी प्रकार मैं इस अन्तरिक्ष जलधारा के जलों को तैरती हूं ॥२॥

कीदृङिन्द्रः सरमे का दृशीका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ॥३॥

पदार्थः—(**सरमे**) हे सरमे ! मध्यमा वाक् रूप देवशुनी (**इन्द्रः**) इन्द्र=सूर्य (**कीदृग्**) कैसा है ?(**का दृशीका**) उसकी शक्ति कैसी है, (**यस्य**) जिसकी (**दूतीः**) दूती हुई तू (**इदम्**) हम पणियों=मेघों के इस स्थान को (**पराकात्**) दूर से (**असरः**) आती हो, यह सरमा (**आ गच्छात् च**) आती है (**एना**) इसे (**मित्रम्**) मित्र के समान (**दधाम**) ग्रहण करें और (**नः**) हमारी (**गवाम्**) गौओं का (**अथ**) अब यह (**गोपतिः**) स्वामी (**भवाति**) होवे । पणि ऐसा कहते और विचारते हैं ।

भावार्थः—कैसा है इन्द्र=सूर्य ? कैसी है उसकी शक्ति ? जिसकी दूती बनकर दूर देश से इस स्थान पर आती हो। अच्छा है, यह आ रही है, इसको मित्रवत् धारण करें और अब यह हमारी गौवों को जो हमने अपहरण करके रखी हैं उनका स्वामी बने ॥३॥

Scanned by CamScanner

नाहं तं वेद दभ्यं दभत्स यस्येदं दूतीरसरं पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ॥४॥

पदार्थः—(**पणयः**) हे पणि=मेघ लोगो (**तम्**) उस (**इन्द्रम्**) इन्द्र को (**दभ्यम्**) हन्तव्य (**न**) नहीं (**वेद**) जानता हूँ (**सः**) वह (**दभत्**) सभी को मारता है (**यस्य**) जिसकी (**दूतीः**) दूती (**पराकात्**) दूर स्थान से (**इदम्**) इस स्थान पर (**असरम्**) आती हूँ (**गभीराः**) गम्भीर (**स्रवतः**) नदियां (**तम्**) उसको (**न**) नहीं (**गूहन्ति**) आच्छादित करती हैं (**इन्द्रेण**) इन्द्र=सूर्य के द्वारा (**हताः**) मारे गये तुम लोग (**शयध्वे**) सो जाओगे ।

भावार्थः—सरमा कहती है—हे पणि लोगो ! उस इन्द्र को किसी से हन्तव्य नहीं जानती हूं । वह सभी को मारता है जिसकी दूती मैं दूर से इस स्थान पर आती हूं । गहरी से गहरी नदियां भी उसको नहीं डुबा सकती हैं । इन्द्र=सूर्य से मारे गये तुम लोग सो जाओगे ॥४॥

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥५॥

पदार्थः—पणि कहते हैं—(**सरमे**) हे सरमे ! हे सुभगे ! (**दिवः**) द्युलोक के (**अन्तान्**) पर्यन्त को (**परिपतन्ती**) जाती हुई तू (**इमाः**) इन (**याः**) जिन (**गावः**) किरणों को (**ऐच्छः**) चाहती हो (**एनाः**) इन किरणों को (**ते**) तेरे लिए (**कः**) कौन (**अयुध्वी**) विना लड़े (**अवसृजात्**) छोड़ेगा (**उत**) और (**अस्माकम्**) हमारे (**आयुधा**) आयुध (**तिग्मा**) तीक्ष्ण (**सन्ति**) हैं ।

भावार्थः—हे सुभगे सरमे ! द्युलोक के अन्त प्रदेशों तक जाती हुई तू इन जिन किरणों को चाहती है उन किरणों को तेरे लिए कौन विना युद्ध किये देगा ? और हमारे आयुद्ध तीक्ष्ण हैं ॥५॥

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ॥६॥

पदार्थः—सरमा कहती है—हे (**पणयः**) पणि लोगो ! (**वः**) तुम्हारे (**वचांसि**) वचन (**असेन्या**) सेनार्ह नहीं हैं (**तन्वः**) शरीर (**अनिषव्याः**) इषु के सहन योग्य नहीं हैं, और (**पापीः**) पापी हैं (**वः**) आपका (**पन्थाः**)

मार्ग (एतवै) जाने के लिए (अधृष्टः) असमर्थ (अस्तु) हो (बृहस्पतिः) इन्द्र के द्वारा प्रेरित बृहस्पति=अग्नि अथवा वायु (उभया) तुम्हारे दोनों शरीरों की (न) नहीं (मृडात्) रक्षा करेगा ।

भावार्थः—हे पणि लोगो ! तुम्हारे वचन सेनाओं के वचन जैसे नहीं, तुम्हारे शरीर भी बाण सहन करने योग्य नहीं हैं और पापी हैं । आपका मार्ग जानने के लिए सर्वथा असमर्थ हैं । इन्द्र=सूर्य द्वारा प्रेषित अग्नि वा वायु तुम्हारे बाण न सहने योग्य और पापी दोनों शरीरों की रक्षा नहीं करेगा ॥६॥

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिन्यृष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥७॥

पदार्थः—(सरमे) हे सरमे=माध्यमिका वाक् (अयम्) यह (निधिः) कोष (अद्रिबुध्नः) मेघों से बन्धा हुआ (गोभिः) गौओं=किरणों (अश्वेभिः) अश्वों=गतिशील तेजों (वसुभिः) धनों से (निऋष्टः) व्याप्त है (ये) जो (सुगोपाः) उत्तम रक्षा करने वाले (पणयः) पणि हैं (ते) वे (तम्) उसकी (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (रेकु पदम्) इस शंकास्पद स्थान को (अलकम्) व्यर्थ ही (आ जगन्थ) आई हो ।

भावार्थः—हे सरमे ! यह कोष मेघों से बन्धा हुआ गौ, अश्व और धनों से व्याप्त है । जो उत्तम रक्षक पणि=मेघ हैं वे इसकी रक्षा करते हैं । इस शंकास्पद स्थान को व्यर्थ ही आई हो ॥७॥

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अङ्गिरसो नवग्वाः ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥८॥

पदार्थः—सरमा की उक्ति—(सोमशिताः) सोमतत्त्व से अर्थात् वायु से तीक्ष्ण किये गए (नवग्वाः) नवनीतगति वाले (अयास्यः) दृढ़ (ऋषयः) गतियुक्त (अंगिरसः) अग्नि के अङ्गार (इह) तुम मेघों के इस स्थान में (आगमन्) आते हैं (ते) वे (गोनाम्) किरणों के (एतम्) इस (ऊर्वम्) समूह को (विभजन्त) विभक्त करते हैं (अथ) इस लिए (एतत्) इस (वचः) वचन को "कि मैं यहां व्यर्थ आती हूँ" हे (पणयः) मेघो (वमन् इत्) छोड़ने वाले ही बनो ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—वायु से तीक्ष्ण हुए नवनीतगति ये दृढ़ अङ्गार तुम मेघों के इस स्थान में आते हैं। वे इन किरणों के समूह को विभक्त करते हैं। अतः हे मेघो! "मैं यहां व्यर्थ में आती हूँ" इस कथन को त्याग दो। इसमें कोई तत्त्व नहीं ॥८॥

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रबाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ॥९॥

पदार्थः—पणियों की उक्ति—(**सरमे**) हे सरमे! (**त्वम्**) तू (**दैव्येन**) देवसम्बन्धी (**सहसा**) बल से (**प्रबाधिता**) पीड़ित की गई (**आ जगन्थ**) आई है तो (**स्वसारम्**) बहन (**त्वा**) तुझे (**कृणवै**) बनाते हैं (**पुनः**) फिर (**मा**) मत (**गाः**) वापस जाओ, (**सुभगे**) हे सुभगे! (**ते**) तुझे (**गवाम्**) किरणों के समूह को (**अप भजाम**) लाकर बांटते हैं।

भावार्थः—हे सुभगे सरमे! यदि तू देवों सम्बन्धी बल से पीड़ित की गई आई है तो तुझे हम बहन बनाते हैं। तू देवों के पास फिर वापस मत जाओ। तुझे हम गौओं के समूह को लाकर देते हैं ॥९॥

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोराः।
गोकामा मे अच्छदयन्यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥१०॥

पदार्थः—सरमा की उक्ति - (**अहम्**) मैं (**भ्रातृत्वम्**) तुम्हारे साथ भाई-पने की बात (**न**) नहीं (**वेद**) जानती हूं (**स्वसृत्वम्**) बहन भी तुम्हारी (**नो**) नहीं बनना चाहती अतः बहनपने की बात भी नहीं जानती हूँ, (**इन्द्रः**) सूर्य (**च**) और (**घोराः**) घोर (**अंगिरसः**) अग्नि के अङ्गारे ही इस बात को जानते हैं कि (**यदा**) जब मैं (**आयम्**) इन्द्र आदि को प्राप्त होऊंगी, (**मे**) मुझसे सम्बद्ध (**गोकामा**) गौ की कामना वाले इन्द्र आदि इस तुम मेघों के स्थान को (**अच्छदयन्**) घेर लेंगे, (**अतः**) इस लिए (**पणयः**) हे मेघो! (**वरीयः**) श्रेष्ठ गोसमूह को छोड़कर (**अप इत**) दूसरे स्थान को चले जाओ।

भावार्थः—मैं भाईपने और बहनपने की बात को नहीं जानती हूं। इस विषय में इन्द्र और घोर अग्नि के अंगार ही जानते हैं कि मैं कब इन्द्र आदि को प्राप्त होऊंगी। गौओं=किरणों की कामना वाले इन्द्र आदि हे मेघो तुम्हारे इस स्थान को घेर लेंगे। तुम गौवों को छोड़ कर दूसरे स्थान पर चले जाओ ॥१०॥

Scanned by CamScanner

दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनतीर्ऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळहाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्राः ॥११॥

पदार्थः—(**पणयः**) हे मेघो ! (**दूरम् वरीयः**) दूर के उत्तम स्थान पर (**इत**) चले जाओ, (**गावः**) तुम्हारे द्वारा हरण की गई किरणें (**ऋतेन**) जल के माध्यम से (**मिनतीः**) मेघसम्बन्धी द्वारपिधान को तोड़ती हुई (**उत् यन्तु**) निकल जावेगी, (**याः**) जिन (**निगूढाः**) छिपाई गई हुई को (**बृहस्पतिः**) अग्नि, (**सोमः**) वायु, (**ग्रावाणः**) पर्जन्य, (**ऋषयः**) प्राण (**च**) और (**विप्राः**) मरुत् लोग (**अविन्दन्**) प्राप्त करेंगे ।

भावार्थः- हे मेघो ! दूर के अच्छे स्थान पर चले जाओ । तुम्हारे द्वारा अपहृत किरणें जल के माध्यम से मेघ सम्बन्धी द्वार के ढक्कन को तोड़ती हुई निकल जावेंगी और इन छिपी हुई किरणों को अग्नि, वायु, पर्जन्य, प्राण और मरुत् लोग प्राप्त करेंगे ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसौ आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १०९

ऋषिः—१—७ जुहूर्ब्रह्मजाया, ऊर्ध्वनामा वा ब्राह्मः ॥ देवताः—विश्वे देवाः ॥ छन्दः —१ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४, ५ त्रिष्टुप् । ३ विराट्-त्रिष्टुप् । ६, ७ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१—५ धैवतः । ६, ७ गान्धारः ॥

सूचनाः—इस सूक्त में 'जुहू' और बृहस्पति का वर्णन है । वाणी आदिम अवस्था में अव्यक्त रहती है । इस अव्यक्त वाणी को देव लोग जब अपने पुरोहित शान्त अंगार रूप अग्नि को देते तो वह उसे वापस कर देता है क्योंकि अव्यक्तता दोष के कारण यह यज्ञ के प्रयोगमें नहीं आ पाती है । पुनः इसे व्यक्त करके यज्ञ के व्यवहार के योग्य बनाकर बृहस्पति को ये दैवी शक्तियां देती हैं तब इसका नाम 'जुहू' हो जाता है । अव्यक्तावस्था में यह 'ब्रह्म जाया' कही जाती है । यज्ञ व्यवहार में लाने योग्य होने पर यह 'जुहू' है । इसी यज्ञ विज्ञान का इस सूक्त में वर्णन है । विराट् के रेत पिण्ड जब अंगाररूप होते हैं तब ये अंगिरा कहलाते हैं जब वे शान्त हो प्रकाशमान होते हैं तब उन्हीं की समष्टि को बृहस्पति कहा जाता है ।

Scanned by CamScanner

तेऽवदन्प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषेऽकूपारः सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवीः प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

पदार्थः— (**ते**) वे (**प्रथमाः**) प्रथम विराट् की अवस्था के अनन्तर वाले (**अकूपारः**) आदित्य, (**सलिलः**) सूक्ष्म जल (**मातरिश्वा**) वायु (**वीडुहरा**) अतितेजस्क (**तपः**) ताप से (**उग्रः**) प्रचण्ड अग्नि (**मयो भूः**) सुखदाता सोम (**देवीः**) दिव्य (**आपः**) जलें जो (**ऋतेन**) सृष्टि नियम के अनुसार (**प्रथमजाः**) प्रथमोत्पन्न हैं (**ब्रह्मकिल्विषे**) वाणी की अव्यक्तता एवं यज्ञ के योग्य न होने रूप दोष के विषय में बृहस्पति=देवपुरोहित अग्नि से (**अवदन्**) प्रकट करते हैं ।

भावार्थः—वे सर्व प्रथमावस्था में उत्पन्न सृष्टि नियम के अनुसार प्रथमज आदित्य, सूक्ष्म जल, वायु, अतितेजस्क अग्नि, सोम, दिव्य जलें, (ब्रह्म जाया) उत्पादित यज्ञ प्रयोग में अव्यक्त वाणी के अव्यक्तता दोष को देव पुरोहित शान्ताङ्गार (बृहस्पति) से प्रकट करते हैं ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजायां पुनः प्रायच्छदहृणीयमानः ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

पदार्थ— (**प्रथमः**) मुख्य (**राजा**) दीप्तिमान (**सोमः**) सोम=सोमतत्त्व (**ब्रह्म जायाम्**) ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न की गई अव्यक्त वाणी को व्यक्त=यज्ञकार्य के योग्य करके (**अहृणीयमानः**) विना किसी संकोच के आता हुआ (**पुनः**) फिर देवपुरोहित बृहस्पति को (**प्र अयच्छत्**) प्रदान करता है, (**वरुणः**) वायु (**अन्वर्तिता**) इसका अनुमोदक (**आसीत्**) होता है, (**मित्रः**) सूर्य भी इसका अनुमोदक होता है, (**होता**) हवि आदि का ग्रहण करने वाला (**अग्निः**) अग्नि (**हस्त गृह्य**) अपनी गति से ग्रहण करके (**आ निनाय**) देता है ।

भावार्थः मुख्य दीप्तिमान सोमतत्त्व इस अव्यक्त ब्रह्म जाया=ब्रह्म के द्वारा उत्पन्न वाणी को व्यक्त तथा यज्ञोपयोग में आने वाली हुई को विना किसी संकोच बृहस्पति को पुनः प्रदान करता है। वायु और सूर्य इस कार्य का अनुमोदन करते हैं और हवि आदि का ग्रहोता होता अग्नि अपनी क्रियाओं से इसे ग्रहण कर बृहस्पति को प्रदान करता है ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा तथा राष्ट्रं गुपितं क्षत्रियस्य ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः– (**अस्याः**) इस ब्रह्मजाया=अव्यक्तता से व्यक्तता और यज्ञ में प्रयोगार्हता को प्राप्त वाणी के (**आधिः**) कलेवर को (**हस्तेन**) गति और क्रिया से ही (**ग्राह्यः**) ग्राह्य है (**इयम्**) यह (**ब्रह्मजाया**) ब्रह्मजाया (**इति**) ऐसी है, (**च**) और (**अवोचन् इत्**) प्रकट भी करते हैं (**एषा**) यह (**प्रहये**) प्रेषित (**दूताय**) दूत के लिए (**तथा**) वैसे ही (**न**) नहीं(**तस्थे**) होती है अर्थात् अपने स्वरूप नहीं प्रकाशित करती है जिस प्रकार (**क्षत्रियः**) राजा का (**गुपितम्**) रक्षित (**राष्ट्रम्**) राष्ट्र शत्रु के प्रति अपने स्वरूप को नहीं प्रकट करता है।

भावार्थः—इस अव्यक्तता से व्यक्तता को आई हुई और यज्ञ में प्रयोगार्ह वाणी के कलेवर को गति और यज्ञ आदि की क्रिया से ही ग्रहण किया जा सकता है। यह ब्रह्मजाया ऐसी ही है। यह किसी दूसरे प्रेषित वा प्रेरित माध्यम को अपने को उसी प्रकार नहीं प्रकट करती है जिस प्रकार क्षत्रिय का रक्षित राष्ट्र शत्रुओं को अपना स्वरूप नहीं प्रकट करता है॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्तऋषयस्तपसे ये निषेदुः ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

पदार्थः—(**देवाः**) विद्वान् लोग (**एतस्याम्**) इसके विषय में (**अवदन्त**) कहते हैं और (**पूर्वे**) ज्ञान पूर्ण (**सप्त**) सात (**ऋषयः**) शरीरस्थ तर्क साधन (**ये**) जो (**तपसे**) इस कठिन तपोमय कार्य के लिए (**निषेदुः**) शरीर में स्थित हैं वे भी यही बताते हैं कि (**उपनीता**) पास लाई गई (**ब्राह्मणस्य**) यज्ञ के ज्ञाता विद्वान् बृहस्पति की यह (**जाया**) यज्ञार्हा वाणी (**भीमा**) पाप आदि के कर्मों के लिए भयंकर है (**दुर्धाम्**) दुःख से धारण योग्य इस वाणी को बृहस्पति=देवों का पुरोहित (**परमे व्योमन्**) परम आकाश में (**दधाति**) धारण करता हैं।

भावार्थः—ज्ञान पूर्ण विद्वान् और हमारे शरीर में स्थित तर्क के साधन भी यही बोलते हैं यह देवों द्वारा बृहस्पति को दी गई वाणी बड़ी भयंकर है। यह बृहस्पति=शान्तांगार तेज ही इसे आकाश में धारण करता है ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम् ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं१ न देवाः ॥५॥

पदार्थः—(**ब्रह्मचारी**) ब्रह्मचारी (**चरति**) तप का आचरण करता विचरता है, (**विषः**) समस्त यज्ञों और ज्ञानों को (**वेविषत्**) अपनी बुद्धि में व्याप्त

Scanned by CamScanner

करता है, (सः) वह (देवानाम्) देवों का (एकम्) एक (अंगम्) अंग (भवति) बन जाता है, (तेन) इस लिए (देवाः) हे विद्वानो ! वह (जायाम्) गृहस्थाश्रम में पत्नी को उसी प्रकार प्राप्त करता है (न) यथा (सोमेन) सोम के द्वारा (नीताम्) लाई गई (जुह्वम्) जुहू को (बृहस्पतिः) बृहस्पति (अविन्वत्) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करता हुआ सर्वत्र विचरता है । वह समस्त यज्ञकर्मों और ज्ञानों को अपनी बुद्धि में धारण करता है । उससे वह योग्य होकर, हे विद्वानो ! उसी प्रकार गृहस्थाश्रम में पत्नी को प्राप्त करता है जिस प्रकार देव पुरोहित बृहस्पति सोम से लाई गई जुहू=वाणी को प्राप्त करता है ॥५॥

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत ।
राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥६॥

पदार्थः—(देवाः) देव लोग (वै) निश्चय से (पुनः) फिर (ददुः) देते हैं, (उत) और मनुष्य भी (पुनः) फिर देते हैं, (राजानः) राजा लोग (सत्यम्) यथार्थ (कृण्वानाः) करते हुए (ब्रह्मजायाम्) ब्रह्मजाया को (पुनः) फिर (ददुः) देते हैं ।

भावार्थः— देव लोग निश्चय ही यज्ञार्ह वाणी को पुनः देते हैं, मनुष्य लोग भी इसका पुनः पुनः आदान-प्रदान और प्रचार के नियम को यथार्थ करते हुए इस यज्ञार्ह वाणी का पुनः-पुनः प्रचार करते हैं ॥६॥

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम् ।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥७॥

पदार्थः—(देवैः) देव लोग (ब्रह्मजायाम्) अयज्ञार्ह अव्यक्त वाणी को (निकिल्बिषम्) यज्ञार्ह और व्यक्त (कृत्वी) करके बृहस्पति को (पुनर्दाय) फिर देकर (पृथिव्याः) पृथिवी से उत्पन्न (ऊर्जम्) अन्न को (भक्त्वाय) भजनीय= सेवनीय हवि आदि रूप में बनाकर (उरुगायम्) अत्यन्त प्रशंसनीय यज्ञ को (उपासते) सेवन करते हैं ।

भावार्थ—देव लोग अव्यक्त और यज्ञ में न प्रयुक्त की जा सकने वाली वाणी को व्यक्त और यज्ञ में प्रयुक्त की जा सकने वाली बनाकर

Scanned by CamScanner

बृहस्पति=देवों के पुरोहित शान्त अग्नि को देते हैं। अर्थात् ब्रह्मजाया को जुहू करके प्रदान करते हैं। वे पृथिवी से उत्पन्न अन्न को अन्न आदि की हवि बनाकर दैवी यज्ञ को चलाते हैं और उसी के अनुरूप यह हमारा यज्ञ आदि कार्य होता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११०

ऋषिः—१—११ जमदग्नी रामो वा ॥ देवता—आप्रियः ॥ छन्दः—१, २, ५, १०, ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ आर्चीत्रिष्टुप् । ४, ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ६, ७, ९ त्रिष्टुप् ॥ ॥ स्वरः—धैवतः ॥

समिद्धो अद्य मनुषो दुरोणे देवो देवान्यजसि जातवेदः ।
आ च वह मित्रमहश्चिकित्वान्त्वं दूतः कविरसि प्रचेताः ॥१॥

पदार्थः—(**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान अग्नि (**देवः**) द्योतन दीपन गुणों से युक्त (**मनुषः**) मनुष्य के (**दुरोणे**) गृह में (**अद्य**) आज (**समिद्धः**) सम्यक् दीप्त हुआ (**देवान्**) यज्ञ भागी देवों को (**यजसि**) इस यज्ञ में संगत करता है (**दूतः**) हवि के वहन करने से दूत भूत, (**प्रचेताः**) प्रकृष्ट चित्त वालों के ज्ञान का विषय (**कविः**) क्रान्तदर्शन (**त्वम्**) यह अग्नि (**मित्रमहः**) याज्ञिकों का आदरणीय (**चिकित्वान्**) विचार का विषय (**असि**) है, (**देवान्**) देवों को (**आ वह च**) प्राप्त कराता है।

भावार्थः—प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, द्योतन दीपन गुणों से युक्त मनुष्यों के गृहों में प्रदीप्त किया हुआ यज्ञ देवों की इस यज्ञ में संगति लगाता है। वह क्रान्तदर्शन प्रकृष्ट ज्ञान का विषय देवों का और यजमानों के आदर का विषय है। वह यज्ञ देवों को यज्ञ में प्राप्त कराता है ॥१॥

तनूनपात्पथ ऋतस्य यानान्मध्वा समञ्जन्त्स्वदया सुजिह्व ।
मन्मानि धीभिरुत यज्ञमृन्धन्देवत्रा च कृणुह्यध्वरं नः ॥२॥

पदार्थः—(**सुजिह्वः**) उत्तम ज्वालाओं वाला (**तनूनपात्**) अग्नि (**ऋतस्य**) यज्ञ के (**यानान्**) फल प्रापक (**पथः**) मार्गभूत हवि आदि पदार्थों को (**मध्वा**) मधु और घृत से (**समंजन्**) भली प्रकार प्रदीप्त करता हुआ (**स्वदय**) खाता है, (**मन्मानि**) हमारे द्वारा प्रयुक्त स्तोत्रों को (**धीभिः**) कर्मों से (**उत**) और (**यज्ञम्**) यजनीय हव्य आदि (**ऋन्धन्**) समृद्ध करता हुआ (**नः**) हमारे (**अध्वरम् च**) यज्ञ को (**देवत्रा**) देवों में (**कृणुहि**) करता है ।

भावार्थः– उत्तम ज्वालाओं वाला यह अग्नि यज्ञ के फल के प्रापक हवि आदि पदार्थों को मधु घृत आदि से भली प्रकार प्रदीप्त करता हुआ खाता है तथा हवनीय हवि आदि को और हमारे द्वारा प्रयुक्त स्तोत्रों को कर्मों से समृद्ध करता हुआ हमारे यज्ञ को देवों में फैलाता है ॥२॥

आजुह्वान ईड्यो वन्द्यश्चा याह्यग्ने वसुभिः सजोषाः ।
त्वं देवानामसि यह्व होता स एनान्यक्षीषितो यजीयान् ॥३॥

पदार्थः—(**आजुह्वानः**) अन्य यज्ञ देवों का यज्ञ में लाने वाला (**ईड्यः**) प्रशस्य, (**वन्द्यः**) वन्दनीय और (**वसुभिः**) वसुसंज्ञक देवों के साथ (**सजोषः**) सहप्रीत (**अग्ने**) अग्नि (**आ याहि**) इस यज्ञ में विद्यमान होता है (**यह्व**) महान् (**त्वम्**) यह अग्नि (**देवानाम्**) देवों का (**होता**) हवि ग्राहक (**असि**) है, (**सः**) वह (**यजीयान्**) यष्टितर और (**इषितः**) चाहा गया (**एनान्**) इन देवों की (**यक्षि**) यज्ञ में संगति बैठाता है ।

भावार्थ—यज्ञ में दूसरे यज्ञ देवों को लाने वाला प्रशस्य, वन्दनीय, और वसु संज्ञक देवों से युक्त यह इस यज्ञ में विद्यमान होता है। महान् यह अग्नि देवों का हविग्राहक उत्कृष्ट यज्ञकर्ता और इन देवों की यज्ञ में संगति बैठाता है ॥३॥

प्राचीनं बर्हिः प्रदिशा पृथिव्या वस्तोरस्या वृज्यते अग्रे अह्नाम् ।
व्यु प्रथते वितरं वरीयो देवेभ्यो अदितये स्योनम् ॥४॥

पदार्थः—(**अह्नाम्**) दिनों के (**अग्रे**) पहले (**वस्तोः**) वसने योग्य (**अस्याः**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**प्रदिशा**) दिशा के द्वारा (**प्राचीनम्**) पूर्वीय प्रदेशस्थ (**बर्हिः**) यह लोक (**वृज्यते**) प्रकट होता हैं (**वितरम्**) विस्तृत (**वरीयः**) उत्तम यह (**वि प्रथते**) विस्तार को प्राप्त होता है तथा (**देवेभ्यः**) देवों (**अदितये**) पृथिवी के लिए (**स्योनम्**) सुखकर होता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—दिन के उदय काल में वसने योग्य इस पृथिवी की दिशा के कारण से पूर्वीय प्रदेशस्थ यह लोक भाग प्रकाश में आकर प्रकट होता है तथा पुनः वह बढता जाता है और सारा लोक व्यक्त हो जाता है। यह इस प्रकार देवों और पृथिवी के लिए सुखद होता है ॥४॥

व्यचस्वतीरुर्विया वि श्रयन्तां पतिभ्यो न जनयः शुम्भमानाः ।
देवीर्द्वारो बृहतीर्विश्वमिन्वा देवेभ्यो भवत सुप्रायणाः ॥५॥

पदार्थ—(**व्यचस्वतीः**) व्याप्तिमयी (**उर्विया**) विस्तीर्ण (**देवीः**) द्योतन युक्त (**द्वारः**) द्वार उसी प्रकार (**विश्रयन्ताम**) विशेष आश्रय देवें (**न**) जिस प्रकार (**पतिभ्यः**) पतियों को (**शुम्भमानाः**) सुसज्जित हुई (**जनयः**) पत्नियें आश्रयण करती हैं, ये (**बृहती**) बड़ी द्वारें (**विश्वमिन्वाः**) सबको प्रसन्न करने वाली और (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**सुप्रायणाः**) विस्तृत (**भवत**) होवें।

भावार्थः—व्याप्तिमयी विस्तीर्ण प्रकाश से युक्त की हुई ये द्वार उसी प्रकार विशेष आश्रय वाली हों जिस प्रकार अपने पतियों को चाहती हुई सुसज्जित पत्नियां आश्रय देती हैं ये बड़े द्वार सबको प्रसन्न करने वाले और देवों=विद्वानों के लिए विस्तृत हों ॥५॥

आ सुष्वयन्ती यजते उपाके उषासानक्ता सदतां नि योनौ ।
दिव्ये योषणे बृहती सुरुक्मे अधि श्रियं शुक्रपिशं दधाने ॥६॥

पदार्थः—(**सुष्वयन्ती**) अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाली (**यजते**) यष्टव्य (**उपाके**) प्रसंगतः प्राप्त (**दिव्ये**) द्युलोक में उत्पन्न, (**बृहती**) बड़ी (**योषणे**) योषा के समान प्रिय लगने वाली (**सुरुक्मे**) उत्तम दीप्ति वाली (**शुक्रपिशम**) सुरोचन रूपा (**श्रियम**) शोभा को (**अधि दधाने**) धारण करती हुई (**उषासानक्ता**) उषा और रात्रि (**योनौ**) इस यज्ञस्थान में (**आ निषदताम**) विद्यमान होते हैं।

भावार्थः—अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाली प्रसंग से प्राप्त, द्युलोकोत्पन्न, बृहती, योषावत् प्रिय लगने वाली, उत्तम दीप्ति वाली, सुरोचन रूप वाली शोभा को धारण करने वाली उषा और रात्रि भी इस यज्ञ-स्थान में यज्ञ देवता के रूप में प्राप्त होती है ॥६॥

दैव्या होतारा प्रथमा सुवाचा मिमाना यज्ञं मनुषो यजध्यै ।
प्रचोदयन्ता विदथेषु कारू प्राचीनं ज्योतिः प्रदिशा दिशन्ता ॥७॥

पदार्थः—(मनुषः) मनुष्य के (यजध्यै) यज्ञ की सिद्धि के लिए (यज्ञम्) यज्ञ का (मिमाना) निर्माण करते हुए (प्रथमा) मुख्य (सुवाचा) उत्तम स्तोत्रों से प्रशस्य (विदथेषु) यज्ञों में (कारू) कर्म की प्रेरणा करने वाले, और ऋत्विजों यजमानों को (प्रचोदयन्ता) प्रेरित करते हुए (प्राचीनम्) पूर्व में स्थित (ज्योतिः) आहवनीय को (प्रदिशा) प्रदिष्ट मार्ग से (दिशन्ता) दिखाते हुए (दैव्या होतारा) अग्नि और आदित्य इस यज्ञ को प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—सब मनुष्यों के यज्ञ की सिद्धि के लिए यज्ञ का निर्माण करते हुए, मुख्यभूत, प्रशस्य, यज्ञों में कर्म की प्रेरणा के साधन, ऋत्विजों और यजमानों को प्रेरित करते हुए, पूर्वस्थ आहवनीय ज्योति का प्रदिष्ट मार्ग से निर्देश करते हुए अग्नि और आदित्य इस यज्ञ में अपना भाग प्राप्त करते हैं ॥७॥

आ नो॑ य॒ज्ञं भार॑ती॒ तूय॑मे॒त्विळा॑ मनु॒ष्वदि॒ह चे॒तय॑न्ती ।
ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरे॒दं स्यो॒नं सर॑स्वती॒ स्वप॑सः सदन्तु ॥८॥

पदार्थः—(भारती) सूर्य की दीप्ति, (तूयम्) शीघ्र (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ में (आ एतु) प्राप्त हो, (मनुष्वद्) मनुष्य की भांति (इला) अन्न की उत्पादिका पृथिवी (चेतयन्ती) हमें चेताने का साधन बनती हुई (इह) इस यज्ञ में (एतु) प्राप्त हो, (सरस्वती) वाक् भी (एतु) प्राप्त हो, इस प्रकार (स्वपसः) उत्तम कर्मों वाली (तिस्रः) तीनों (देवी) देवियां (इदम्) इस (स्योनम्) सुखकर (बर्हिः) यज्ञ को (आ सदन्तु) प्राप्त हों।

भावार्थः—भारती=आदित्य दीप्ति, इला=मही और सरस्वती=माध्यमिका वाक्—ये तीनों देवियां इस सुखकारक हमारे यज्ञ को प्राप्त हों ॥८॥

य इ॒मे द्यावा॑पृथि॒वी जनि॑त्री रू॒पैरपिं॑शद्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ।
तम॒द्य हो॑तरिषि॒तो यजी॑यान्दे॒वं त्वष्टा॑रमि॒ह य॑क्षि वि॒द्वान् ॥९॥

पदार्थः—(यः) जो (जनित्री) उत्पादिका (इमे) इन (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी को तथा (विश्वा) समस्त (भुवनानि) भुवनों को (रूपैः) रूपों से (अपिंशत्) युक्त करता है (तम्) उस (त्वष्टारम्) रूपों के स्वामी त्वष्टा=सूर्य (देवम्) देव के लिए (होतः) हे होता ! (यजीयान्) अतिशय

Scanned by CamScanner

याज्ञिक (**विद्वान्**) विद्वान् (**इषितः**) चाहा गया (**इह**) इस यज्ञ में (**अद्य**) आज (**यक्षि**) यज्ञ कर ।

भावार्थ—जो रूपों का अधिपति त्वष्टा=सूर्य सबके उत्पादक इन द्यु और पृथिवी लोक को तथा समस्त भुवनों को रूपों से अलंकृत करता है उस के लिए हे यज्ञकर्त्ता होता तू यज्ञ कर ॥९॥

उपावसृज त्मन्या समञ्जन्देवानां पाथ ऋतुथा हवींषि।
वनस्पतिः शमिता देवो अग्निः स्वदन्तु हव्यं मधुना घृतेन ॥१०॥

पदार्थः—हे यूप=यजमान (**त्मन्या**) स्वयम् (**ऋतुथा**) प्राप्त काल में (**देवानाम्**) यज्ञ देवों का (**पाथः**) अन्नभूत घृत आदि तथा अन्य (**हवींषि**) हवियों को (**समञ्जन्**) भली प्रकार व्यक्त करते हुए (**उपावसृज**) तैयार कर के प्रदान कर, (**वनस्पतिः**) प्राण, (**शमिता**) मृत्यु देवः) द्योतन दीपन आदि गुणों से युक्त (**अग्निः**) अग्नि (**मधुना**) मधुर (**घृतेन**) घृत से युक्त (**हव्यम्**) हव्य पदार्थ को (**स्वदन्तु**) खावें ।

भावार्थः—हे यजमान ! तू यज्ञ देवों की अन्नभूत हवियों को समय-समय पर भली प्रकार व्यक्त करके प्रदान किया कर। प्राण, मृत्यु और अग्नि मधुर घृत से युक्त इस हवि को खावें ॥१०॥

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।
अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥११॥

पदार्थः—(**अग्निः**) यह अग्नि (**सद्यः**) तत्काल (**जातः**) उत्पन्न हुआ (**यज्ञम्**) यज्ञ का (**वि अमिमीत**) निष्पादन करता है, वह (**देवानाम्**) देवों का (**पुरोगाः**) प्रथमगामी अर्थात् मुख्य (**अभवत्**) होता है, (**प्रदिशि**) प्राची दिशा में (**ऋतस्य**) आहवनीय रूप (**अस्य**) इस (**होतुः**) होमनिष्पादक अग्नि के (**वाचि**) ज्वाला में (**स्वाहाकृतम्**) स्वाहा बोल कर डाली गई (**हविः**) हवि को (**देवाः**) अन्य दैवी प्रकृति शक्तियां (**अदन्तु**) खाती हैं ।

भावार्थः—अग्नि अपने उत्पत्ति काल से ही यज्ञ का निष्पादन करता है। वह देवों का मुख्य है। आहवनीय रूप इस होमनिष्पादक अग्नि के मुख=ज्वाला में डाली गई हवि को अन्य सभी यज्ञदेव प्राप्त करते हैं ॥११॥

यह दशम मण्डल में एकसौ दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १११

ऋषिः—१—१० अष्टादंष्ट्रो वैरूपः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ ४ त्रिष्टुप् । ३, ६, १० विराट्त्रिष्टुप् । ५, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषां यथायथा मतयः सन्ति नृणाम् ।
इन्द्रं सत्यैरेरयामा कृतेभिः स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः ॥१॥

पदार्थः—(**मनीषिणः**) हे मनीषियो ! (**यथायथा**) जैसी-जैसी (**नृणाम्**) उत्तम कर्मों के नेता मनुष्यों की (**मतयः**) बुद्धियां (**सन्ति**) हैं उसके अनुसार (**मनीषाम्**) भगवान् की स्तुति (**प्रभरध्वम्**) किया करो, हम (**सत्यैः**) यथार्थ (**कृतेभिः**) कृत्यों और स्तुतियों से (**इन्द्रम्**) परमैश्वर्यशाली प्रभु की (**आ ईरयाम**) स्तुति करते हैं, (**हि**) क्योंकि (**वीरः**) महाबली (**विदानः**) सब कुछ का ज्ञाता (**सः**) वह (**गिर्वणस्युः**) वेदवाणियों से स्तुति करने योग्य है ।

भावार्थः—हे मनीषियो ! जैसी-जैसी उत्तम कर्म के नेता मनुष्यों की बुद्धियां होती हैं तदनुसार भगवान् की स्तुति किया करो । हम यथार्थ कृत्यों और स्तुतियों से परमैश्वर्यशाली प्रभु की स्तुति करते हैं । वह महाबली, सबका ज्ञाता और वेदवाणियों द्वारा स्तुति किये जाने योग्य है ॥१॥

ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥२॥

पदार्थः (**ऋतस्य**) जल के (**सदसः**) स्थान अन्तरिक्ष का (**धीतिः**) धारक आदित्य (**अद्यौत्**) प्रकाशमान होता है (**गार्ष्टेयः**) गाय के पुत्र (**वृषभः**) बैल की भांति वह (**गोभिः**) किरणों द्वारा (**सम् आनट्**) व्यापन करता है (**तविषेण**) महान् (**रवेण**) आकाशस्थ शब्द से (**उदतिष्ठत्**) उन्नत होता है तथा (**महान्ति**) बड़े से बड़े (**रजांसि चित्**) जलों वा लोकों को (**सं विव्याच**) व्याप्त करता है ।

भावार्थः—जल के स्थान अन्तरिक्ष का धारक आदित्य प्रकाशमान हो रहा है । वह गौ से उत्पन्न वृषभ के समान किरणों द्वारा सब स्थानों को व्याप्त करता है । महान् आकाशस्थ शब्द से वह ऊपर रहता है तथा बड़े से बड़े लोकों को व्याप्त करता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

इन्द्रः॒ किल॒ श्रुत्या॑ अ॒स्य वे॑द॒ स हि जि॒ष्णुः प॑थि॒कृत्सूर्या॑य ।
आन्मेनां॑ कृ॒ण्वन्नच्यु॑तो॒ भुव॒द्गोः पति॑र्दि॒वः स॑न॒जा अप्र॑तीतः ॥३॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस विश्व की सब बातों को (**श्रुत्यै**) सुनने के लिए (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**किल**) ही (**वेद**) जानता है, (**सः हि**) वह ही (**जिष्णुः**) सब पर विजय पाने वाला है और (**सूर्याय**) सूर्य आदि ग्रहों के लिए (**पथिकृत्**) मार्ग बनाने वाला है, (**आत्**) और (**अच्युतः**) अच्युत वह (**मेनाम्**) वेदवाणी को (**कृण्वन्**) उत्पन्न करता हुआ (**गोः**) पृथिवी का (**दिवः**) द्युलोक का (**सनजा**) सनातन (**अप्रतीतः**) अप्रतिम (**पतिः**) पति (**भुवत्**) होता है ।

भावार्थः—इस विश्व की सब बातों के सुनने के लिए वह भगवान् ही जानता है । वही सब पर विजय प्राप्त करने वाला और सूर्य आदि ग्रहों के मार्ग का निर्माता है । अच्युत वह वेदवाणी का प्रकाश करता हुआ पृथिवी, द्यु आदि का सनातन और अप्रतिम स्वामी होता है ॥३॥

इन्द्रो॑ म॒ह्ना म॑ह॒तो अ॑र्ण॒वस्य॑ व्र॒तामि॑ना॒दङ्गि॑रोभिर्गृणा॒नः ।
पु॒रूणि॑ चि॒न्नि त॑ताना॒ रजां॑सि दा॒धार॒ यो ध॒रुणं॑ स॒त्यता॑ता ॥४॥

पदार्थः—(**अंगिरोभिः**) जगत् के अङ्ग-अङ्ग में विद्यमान तापों से (**गृणानः**) प्रकट किया जाता हुआ (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**मह्ना**) अपनी महिमा से (**महतः**) महान् (**अर्णवस्य**) अन्तरिक्षस्थ समुद्र के (**व्रता**) कार्य कलापों को (**अमिनात्**) मापता है वह ही (**पुरूणि**) बहुत से (**रजांसि चित्**) लोकों को (**नितताम**) बनाता वा फैलाता है (**यः**) जो (**सत्यताता**) द्युलोक अथवा आकाश में (**धरु-णम्**) धारक बल को (**दाधार**) धारण करता है ।

भावार्थः— जगत् के अङ्ग-अङ्ग में विद्यमान तापों से स्वभावतः प्रकट किया जाता हुआ परमेश्वर अपनी महिमा से महान् अन्तरिक्षस्थ समुद्र के कार्य कलापों को मापता है । वह ही सभी लोकों को धारण करता है और वही है जो द्युलोक में धारक बल को धारण करता है ॥४॥

इन्द्रो॑ दि॒वः प्र॑ति॒मानं॑ पृथि॒व्या विश्वा॑ वेद॒ सव॑ना॒ हन्ति॒ शुष्ण॑म् ।
म॒हीं चि॒द्द्यामात॑नो॒त्सूर्ये॑ण चास्क॒म्भ चि॒त्कम्भ॑नेन॒ स्कभी॑यान् ॥५॥

पदार्थः—(**दिवः**) द्युलोक और (**पृथिव्याः**) पृथिवी का (**प्रतिमानम्**) मापने वाला (**इन्द्रः**) परमेश्वर (**विश्वा**) समस्त (**सवना**) उत्पन्न पदार्थों को

(वेद) जानता है, (शुष्णम्) शोषक मेघ को (हन्ति) मारकर बरसाता है (महीम्) पृथिवी को और (द्याम् चित्) द्युलोक को भी (सूर्येण) सूर्य के द्वारा (आतनोत्) विस्तृत प्रकाश वाला करता है, (स्कभीयान्) महती धारण शक्ति से युक्त वह (स्कम्भनेन) धारण शक्ति से सब लोकों को (अस्कम्भ च) धारण करता है।

भावार्थः— पृथिवी और द्युलोक का मापने वाला परमेश्वर समस्त पदार्थों को जानता है और शोषक मेघ को मारकर बरसाता है। पृथिवी और द्युलोक को सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित करता है। वह सबसे अधिक धारक शक्ति वाला है। वह धारण शक्ति से समस्त लोगों को धारण करता है ॥५॥

वज्रेण हि वृत्रहा वृत्रमस्तरदेवस्य शूशुवानस्य मायाः ।
वि धृष्णो अत्र धृषता जघन्थाथाभवो मघवन्बाह्वोजाः ॥६॥

पदार्थः—(धृष्णो) धर्षणशील, (मघवन्) धनों का स्वामी (वृत्रहा) मेघ का मारने वाला इन्द्र=सूर्य (वज्रेण) वज्र के द्वारा (वृत्रम् मेघ को (अस्तः) मारता है (अदेवस्य) न प्रकाश वाले (शूशुवानस्य) अपने बल से बढ़ने वाले उस मेघ की (मायाः) माया को (धृषता) समर्थ वज्र से (अत्र) इस काल में ही (वि जघन्थ) नष्ट करता है (अथ) और (बाह्वोजाः) बहुत ही ओज वाला (अभवः) होता है।

भावार्थः धर्षणशील, धनों का स्वामी एवन् मेघ का मारने वाला सूर्य बज्र को द्वारा मेघ को मारता है। न प्रकाश वाले, अपने बल से बढ़ने वाले इस मेघ की माया के समर्थ वज्र से नष्ट करता है और बहुत ही ओज वाला है ॥६॥

सचन्त यदुषसः सूर्येण चित्रामस्य केतवो रामविन्दन् ।
आ यन्नक्षत्रं ददृशे दिवो न पुनर्यतो नकिरद्धा नु वेद ॥७॥

पदार्थः—(यत्) जब (उषसः) उषायें (सूर्येण) सूर्य से (सचन्त) संगत होती हैं तब (अस्य) इस इन्द्र=सूर्य की (केतवः) सब की ज्ञापक रश्मियें (चित्राम्) नाना वर्णों वाली (राम्) श्री को (अविन्दन्) प्राप्त होती हैं, (यत्) जब (दिवः) दिन में (नक्षत्रम्) नक्षत्र (न) नहीं (आ ददृशे) दिखाई

Scanned by CamScanner

पड़ता है तब (**पुनः**) फिर (**यतः**) जाते हुए इस सूर्य की रश्मि को (**नकिः नु**) कोई भी नहीं (**वेद**) जानता हैं (**श्रद्धा**) यह सत्य है ।

भावार्थः – जब उषायें सूर्य के साथ संगत होती हैं तब इस सूर्य की ज्ञापक रश्मियां नाना वर्णों वाली शोभा को प्राप्त होती हैं। जब दिन में नक्षत्र नहीं दिखाई पड़ते हैं तब जाते हुए इनकी रश्मियों को कोई भी नहीं जानता है यह सत्य है ॥७॥

दूरं किल प्रथमा जग्मुरासामिन्द्रस्य याः प्रसवे सस्रुरापः ।
क्व स्विदग्रं क्व बुध्न आसामापो मध्यं क्व वो नूनमन्तः ॥८॥

पदार्थः—(**आसाम्**) इन जलों के मध्य में (**प्रथमाः**) प्रथमगामिनी (**आपः**) जलें (**दूरम्**) दूर (**जग्मुः**) चली जाती हैं (**याः**) जो (**इन्द्रस्य**) इन्द्र = सूर्य की (**प्रसवे**) प्रेरणा में (**सस्रुः**) जाती हैं, (**आसाम्**) इनका (**क्व स्वित्**) कहां (**अग्रम्**) अग्र है, (**क्व**) कहां (**बुध्नः**) मूल है, (**वः**) इनका (**क्व**) कहां (**मध्यम्**) मध्य है (**आपः**) इन जलों का (**क्व**) कहां (**नूनम्**) निश्चय ही (**अन्तः**) अन्त है ।

भावार्थः - इन जलों में प्रथम गामिनी जलें दूर चली जाती हैं जो कि सूर्य की किरणों के प्रेरण से जाती हैं । इन का प्रारम्भ कहां, इनका मूल कहां ? इनका मध्य कहां ? और इनका अन्त कहां ? अर्थात् तारतम्य में यह विवरण ज्ञात नहीं होता है ॥८॥

सृजः सिन्धूँरहिना जग्रसानाँ आदिदेताः प्र विविज्रे जवेन ।
मुमुक्षमाणा उत मुमुचेऽधेदेता न रमन्ते नितिक्ताः ॥९॥

पदार्थ - यह इन्द्र = सूर्य (**अहिना**) मेघ के द्वारा (**जग्रसानान्**) खाई गई (**सिन्धून्**) स्यन्दनवती जल धाराओं को (**सृजः**) निर्गत करता हैं, (**आदिद**) अनन्तर (**एताः**) ये (**जवेन**) वेग से (**प्र विविज्रे**) चलित होती है (**याः**) जो (**मुमुक्षमाणाः**) छूटना चाहती हैं वे (**मुमुचे**) इन्द्र से मुक्त कर दी जाती हैं (**अध इत्**) और (**एताः**) ये (**नितिक्ताः**) अत्यन्त शुद्ध हुई (**न रमन्ते**) एक स्थान पर नहीं खेलती हैं अपितु सर्वत्र विखरती हैं ।

भावार्थः - यह इन्द्र=सूर्य मेघ द्वारा खाई हुई स्यन्दनशील जलों को उनसे निकालता है । अनन्तर ये वेग से चलित हो जाती हैं । जो मुक्त होने

Scanned by CamScanner

योग्य हैं वे मुक्त की जाती हैं। ये अत्यन्त शुद्ध जलें एक साथ नहीं खेलती हैं अपितु पृथक्-पृथक् विचरती हैं ॥९॥

सध्रीचीः सिन्धुमुशतीरिवायन्त्सनाज्जार आरितः पूर्भिदासाम् ।
अस्तमा ते पार्थिवा वसून्यस्मे जग्मुः सूनृता इन्द्र पूर्वीः ॥१०॥

पदार्थः—(**सध्रीचीः**) साथ-साथ जाने वाली जलें (**उशतीः इव**) अपने-अपने पति को चाहने वाली पत्नियों के समान (**सिन्धुम्**) समुद्र को (**आयन्**) जाती हैं, (**जारः**) शत्रु को जीर्ण करने वाला (**पूर्भित्**) पुरी का भेदक (**सनात्**) सदा (**आसाम्**) इनका (**आरितः**) प्रेरक और स्वामी होता है, (**ते**) इस इन्द्र के (**अस्तम्**) गृह=अन्तरिक्ष को (**अस्मे**) हमारे द्वारा प्रदत्त (**पार्थिवा**) पार्थिव (**वसूनि**) हवि आदि तथा (**पूर्वीः**) ज्ञानपूर्ण (**सूनृताः**) स्तुति वाणियाँ (**जग्मुः**) जाती हैं।

भावार्थः— साथ-साथ जाने वाली जलें अपने-अपने पति को चाहती हुई पत्नियों के समान समुद्र को प्राप्त होती हैं। शत्रु को जीर्ण करने वाला पुरी का भेदक इन्द्र सदा इनका प्रेरक स्वामी होता है। इस इन्द्र के स्थानभूत अन्तरिक्ष को हमारे द्वारा यज्ञ में आहुति रूप में प्रदत्त पार्थिव हवि आदि तथा ज्ञानपूर्ण स्तुति वाणियां जाती हैं ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११२

ऋषिः—१—१० नभः प्रभेदनो वैरूपः ॥ देवताः—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३, ७, ८ विराट्त्रिष्टुप् । २, ४—६, ९, १० निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इन्द्र पिब प्रतिकामं सुतस्य प्रातःसावस्तव हि पूर्वपीतिः ।
हर्षस्व हन्तवे शूर शत्रूनुक्थेभिष्टे वीर्या प्र ब्रवाम ॥१॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! (**सुतस्य**) उत्पन्न हुए इस जगत् की (**प्रतिकामम्**) पूरी इच्छा के साथ (**पिब**) रक्षा करते हैं (**हि**) क्योंकि

(**प्रातः सावः**) सृष्टि की प्रातः वेला में उत्पन्न किया गया यह जगत् (**तव**) आप की (**पूर्व पीतिः**) पूर्ण रक्षा पर आधारित है, हे (**शूर**) हे महाबली ! तू (**शत्रून्**) हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं के (**हन्तवे**) हननार्थ हमें (**हर्षस्व**) हर्षित करता है (**उक्थेभिः**) मन्त्रों द्वारा हम (**ते**) तुम्हारे (**वीर्या**) पराक्रमों की (**प्रब्रवाम**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् प्रभो ! उत्पन्न इस जगत् की आप सर्वथा रक्षा करते हैं । यह सृष्टि की प्रभात बेला में रचा गया विश्व आप की ही पूर्ण रक्षा पर आधारित है । हे बलशालिन् ! हमारे काम, क्रोध आदि शत्रुओं के विनाशार्थ हमें आप हर्षित करते हैं । हम मन्त्रों द्वारा आपके पराक्रमों की प्रशंसा करते हैं ॥१॥

यस्ते रथो मनसो जवीयानेन्द्र तेन सोमपेयाय याहि ।
तूयमा ते हरयः प्र द्रवन्तु येभिर्यासि वृषभिर्मन्दमानः ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**ते**) आप की (**यः**) जो (**रथः**) रमणीय गति है वह (**मनसः**) मन से भी (**जवीयान्**) अति वेग वाली है, (**तेन**) उस गति से (**सोमपेयाय**) जगत् की रक्षा के लिए (**याहि**) प्राप्त होते हो (**ते**) तेरे (**हरयः**) गमन-साधन अथवा क्रिया (**तूयम्**) शीघ्र (**आ प्र द्रवन्तु**) सब तरफ व्याप्त हो जाती है (**वृषभिः**) शक्ति शाली (**येभिः**) जिनके आप (**मन्दमानः**) सबको हर्षित करते हुए (**यासि**) सर्वत्र पहुँचे होते हो ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् ! आपकी रमणीय गति मन से भी अति वेगवाली है । उससे आप जगत् की रक्षा के लिए प्राप्त होते हो, आपके गमन साधन अथवा क्रिया शीघ्र सब तरफ व्याप्त हो जाती है । जिन शक्तिशाली क्रियाओं के द्वारा आप सबको हर्षित करते हुए सर्वत्र पहुँचे होते हो ॥२॥

हरित्वता वर्चसा सूर्यस्य श्रेष्ठै रूपैस्तन्वं स्पर्शयस्व ।
अस्माभिरिन्द्र सखिभिर्हुवानः सध्रीचीनो मादयस्वा निषद्य ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! आप (**हरित्वता**) हरितवर्ण (**सूर्यस्य**) सूर्य के (**वर्चसा**) तेज से और (**श्रेष्ठैः**) उसके श्रेष्ठ (**रूपैः**) रूपों से (**तन्वम्**) हमारे शरीर को (**स्पर्शयस्व**) तेजोयुक्त करते हैं, (**अस्माभिः**) हम (**सखिभिः**) मित्रों द्वारा (**हुवानः**) स्तुत हुए (**सध्रीचीनः**) हमारे साथ रहने वाले आप (**निषद्य**) हमारे हृदय में व्यापक होकर (**मादयस्व**) हमें आनन्दित करते हो ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! आप हरित वर्ण वाले सूर्य के तेज से और उसके श्रेष्ठ रूपों से हमारे शरीर को तेजोयुक्त करते हो । हम मित्रों द्वारा स्तुत और हमारे साथ विद्यमान आप हमारे हृदय में व्यापक होकर हमें आनन्दित करते हो ॥३॥

यस्य॒ त्यत्ते॑ महि॒मानं॒ मदे॑ष्वि॒मे म॒ही रोद॑सी॒ नावि॑विक्ताम् ।

तदोक॒ आ हरि॑भिरिन्द्र यु॒क्तैः प्रि॒येभि॑र्याहि प्रि॒यमन्न॒मच्छ॑ ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमेश्वर ! (**इमे**) ये (**मही**) महान् (**रोदसी**) द्यु और पृथिवी लोक (**ते**) तेरी (**त्यत्**) उस (**मदेषु**) आनन्दों में होने वाली (**महिमानम्**) महिमा को (**न**) नहीं (**अविविक्ताम्**) पृथक् करते हैं (**प्रियेभिः**) प्रियकर (**युक्तैः**) योगयुक्त (**हरिभिः**) मनुष्यों के द्वारा (**तत्**) उस (**ओकः**) हृदय गृह में (**आ याहि**) प्राप्त किए जाते हो तथा (**प्रियम्**) जीवों की प्रिय (**अन्नम्**) प्रकृति को (**अच्छ**) अच्छी प्रकार (**आ याहि**) व्याप्त करते हो ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! ये महान् द्यु और पृथिवी लोक भी तेरी आनन्दों में होने वाली महिमा से पृथक् नहीं होते हैं, उसी में रहते हैं । प्रियकर योगी मनुष्यों द्वारा उस हृदय गृह में प्राप्त किए जाते हो । तथा जीवों के प्रिय प्रकृति कारण आप अच्छी प्रकार व्याप्त करते हो ॥४॥

यस्य॒ शश्व॑त्पपि॒वाँ इ॑न्द्र॒ शत्रू॑ननानुकृ॒त्या रण्या॒ च॒कर्थ॑ ।

स ते॒ पुर॑न्धि॒ तवि॑षीमियर्ति॒ स ते॒ मदा॑य सु॒त इ॑न्द्र॒ सोमः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! तू (**शश्वत्**) निरन्तर (**पपिवान्**) सोमपान करने वाला है (**यस्य**) जिस प्रजाजन के शत्रुओं को (**अनानुकृत्या**) अनुकरण रहित (**रण्या**) आयुध प्रहार से (**चकर्थ**) मारते हो (**सः**) वह भी (**ते**) तुम्हारी (**तविषीम्**) महती (**पुरन्धिम्**) बुद्धि को (**इयर्ति**) प्राप्त करता है, (**सः**) वह (**सोमः**) सोम (**ते**) तुम्हारे (**मदाय**) आनन्द के लिए (**सुतः**) तैयार किया गया है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू निरन्तर सोम आदि ओषधियों का पान करने वाला है । तू जिस प्रजाजन के शत्रुओं को जिसका कोई दूसरा अनुकरण करने में समर्थ नहीं है ऐसे आयुध-प्रहार से मारता है वह प्रजाजन भी आप की महती बुद्धि को प्राप्त करता है । यह सोमरस तेरे आनन्द के लिए तैयार किया गय। है ॥५॥

Scanned by CamScanner

इदं ते पात्रं सनवित्तमिन्द्र पिबा सोममेना शतक्रतो ।
पूर्ण आहावो मदिरस्य मध्वो यं विश्व इदभिहर्यन्ति देवाः ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे राजन् ! (**इदम्**) यह (**पात्रम्**) पात्र (**ते**) तेरे लिए (**सनवित्तम्**) प्राप्त है, (**शतक्रतो**) हे शतक्रतो राजन् । (**एना**) इस से (**सोमम्**) सोम को (**पिब**) पी, (**मदिरस्य**) हर्षकारक (**मध्वः**) मधुर सोम रस का (**आहावः**) पात्र विशेष (**पूर्णः**) भरा है, जिसको (**विश्वे**) सभी (**देवाः**) देव (**इत्**) भी (**अभिहर्यन्ति**) चाहते हैं ।

भावार्थः—हे राजन् ! तेरे लिए यह पात्र प्राप्त है । हे शतक्रतो ! राजन् ! इससे सोम का पान कर । हर्षकारक मधुर सोमरस का पात्रविशेष भरा है जिसे सभी देव भी चाहते हैं ॥६॥

वि हि त्वामिन्द्र पुरुधा जनासो हितप्रयसो वृषभ ह्वयन्ते ।
अस्माकं ते मधुमत्तमानीमा भुवन्त्सवना तेषु हर्य ॥७॥

पदार्थः—(**इन्द्र वृषभ त्वाम् हि**) इस सुख वर्षक इन्द्र=वायु को (**हितप्रयसः**) हवि को लिए हुए (**पुरुधा**) बहुत से (**जनासः**) जन (**ह्वयन्ते**) आह्वान करते हैं (**अस्माकम्**) हमारे सम्बन्धी (**इमा**) ये (**ते**) इसके (**सवना**) सवन (**मधुमत्तमानि**) मधुमत्तम (**भुवन्**) हैं (**तेषु**) उन सवनों में (**हर्य**) सोमपान करता है ।

भावार्थः—सुख के वर्षक इस इन्द्र=वायु का यज्ञ देवता के रूप में हवि लिए बहुत से लोग यज्ञार्थ आह्वान भरे शब्दों में वर्णन करते हैं । हमसे सम्बद्ध ये इसके सवन मधुमतम हैं । इन में यह सोमपान करता है ॥७॥

प्र त इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।
सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥८॥

पदार्थः—(**ते इन्द्र**) इस इन्द्र=वायु के (**पूर्व्याणि**) पूर्णता सम्पन्न (**कृतानि**) किए हुए (**प्रथमा**) मुख्य (**वीर्या**) पराक्रमों की (**नूनम्**) निश्चय ही (**प्रप्रवोचम्**) प्रशंसा करता हूँ (**सतीनमन्युः**) जल प्रवर्षण की क्रिया और गुण वाला (**अद्रिम्**) मेघ को (**अश्रथयः**) शिथिल करता है (**ब्रह्मणे**) सूर्य के लिए (**गाम्**) किरणों को (**सुवेदनाम्**) अच्छी प्रकार से प्राप्य (**अकृणोः**) करता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस वायु के पूर्णता सम्पन्न प्रधान कार्य-कलापों की मैं प्रशंसा करता हूं। जल प्रवर्षण की क्रिया और गुणों से युक्त यह मेघ को विदीर्ण करता है और सूर्य के लिए किरणों को अच्छी प्रकार प्राप्य करता है ॥८॥

नि षु सीद गणपते गणेषु त्वामाहुर्विप्रतमं कवीनाम् ।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कं मघवञ्चित्रमर्च ॥९॥

पदार्थः—(**गणपते**) पदार्थ-गणों का पालक यह (**इन्द्रः**) वायु (**गणेषु**) पदार्थ समूहों में (**सु**) सुष्ठुरूप से (**नि सीद**) स्थित होता है, (**त्वाम्**) इसको (**कवीनाम्**) क्रान्तदर्शन वाले पदार्थों में (**विप्रतमम्**) देवतम (**आहुः**) कहते हैं, (**त्वत्**) इसके (**ऋते**) विना (**किम् चन**) कुछ भी (**आरे**) दूर वा समीप में (**न**) नहीं (**क्रियते**) किया जाता है, तथा (**मघवन्**) अन्न आदि धनों का स्वामी (**महाम्**) महान् (**चित्रम्**) अद्भुत (**अर्कम्**) जल समूह को (**अर्च**) प्राप्त करता है।

भावार्थः—यह वायु जगत् के पदार्थसमूहों का पालक है और पदार्थ-समूहों में विराजमान है। इसको विद्वान् लोग क्रान्तदर्शन दिव्य शक्तियों अर्थात् देवों में देवतम कहते हैं। इसके विना संसार का कोई भी कार्य कहीं पर नहीं हो सकता है। यह अन्न आदि का पालक और दाता महान् जल-समूह को प्राप्त करता है ॥९॥

अभिख्या नो मघवन्नाधमानान्त्सखे बोधि वसुपते सखीनाम् ।
रणं कृधि रणकृत्सत्यशुष्माभक्ते चिदा भजा राये अस्मान् ॥१०॥

पदार्थः—(**मघवन्**) हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! (**सखे**) हे परम मित्र ! भगवन् (**नाधमानान् नः**) ऐश्वर्य और ज्ञान की याचना करने वाले हम लोगों को (**अभिख्या**) कृपादृष्टि से देख, (**वसुपते**) हे समस्त जीवों और जगत् के पालक तू (**सखीनाम्**) हम मित्रों को (**बोधि**) ज्ञान से बोधयुक्त कर, (**सत्य-शुष्म**) हे सत्य बल वाले ! तू (**रणकृत्**) जगत् में होने वाले रमणीय के कार्यों का कराने वाला है, अतः (**रणम्**) रमणीय कार्य को (**कृधि**) करता है, (**अभक्ते चित्**) असंविभक्त धन के होते हुए भी (**अस्मान्**) हम सबको (**राये**) आत्मिक धन की प्राप्ति के लिए (**आ भज**) भागी कर।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे ऐश्वर्यों के स्वामिन्, हे परममित्र ! हे भगवन् ! हम ऐश्वर्य और ज्ञान की याचना करने वालों को कृपादृष्टि से देख। तू हम मित्रों को ज्ञान से बोधयुक्त कर, हे सत्यबल ! तू जगत् में रमणीय कार्यों का करने वाला है अतः रमणीय कार्य को करता है। असंविभक्त धन के होते हुए भी हम सब को आत्मिक धन की प्राप्ति के लिए भागी बना ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११३

ऋषिः—१—१० शतप्रभेदनो वैरूपः ॥ देवता – इन्द्रः ॥ छन्दः – १, ५ जगती । ३, ६, ६ विराड्जगती । २ निचृज्जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ७, ८, आर्चीस्वराड्जगती । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१—६ निषादः । १० धैवतः ॥

तमस्य द्यावापृथिवी सचेतसा विश्वेभिर्देवैरनु शुष्ममावताम् ।
यदैत्कृण्वानो महिमानमिन्द्रियं पीत्वी सोमस्य क्रतुमाँ अवर्धत ॥१॥

पदार्थः—(**अस्य**) इस इन्द्र=वायु के (**तम्**) उस (**शुष्मम्**) बल की (**सचेतसा**) समान चिन्तन के साधन भूत (**द्यावा पृथिवी**) द्यु और पृथिवी लोक (**विश्वेभिः**) सारे (**देवैः**) देवों के साथ (**अनु आवताम्**) रक्षा करते हैं, (**यत्**) जिससे (**कृण्वानः**) मेघ वध आदि कार्यों को करता हुआ (**इन्द्रियम्**) इन्द्र सम्बन्धी (**महिमानम्**) महिमा को (**ऐत्**) प्राप्त होता है, (**सोमस्य**) सोम को (**पीत्वी**) पीकर (**क्रतुमान्**) कर्मवान् वह (**अवर्धत**) बढ़ता है।

भावार्थः—इस वायु के बल की द्यु और पृथिवी जो समान चिन्तन के विषय हैं अन्य देवों के साथ रक्षा करते हैं। जिससे मेघ वध आदि कार्यों को करता हुआ यह अपने इन्द्रत्व की महिमा को प्राप्त करता है और सोम को पीकर कर्मवान् हुआ बढ़ता है ॥१॥

तमस्य विष्णुर्महिमानमोजसांशुं दधन्वान्मधुनो वि रप्शते ।
देवेभिरिन्द्रो मघवा सयावभिर्वृत्रं जघन्वाँ अभवद्वरेण्यः ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**विष्णुः**) आदित्य (**मधुनः**) मधुर सोम के (**अंशुम्**) अंशु=तत्व को (**दधन्वान्**) धारण करता है, (**अस्य**) इस इन्द्र=वायु की (**तम्**) उस (**महिमानम्**) महिमा को (**ओजसा**) अपने बल से (**विरप्शते**) बतलाता है, (**मघवा**) अन्न आदि का स्वामी (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु (**सधावभिः**) साथ रहने वाले (**देवैः**) मरुतों के साथ (**वृत्रम्**) मेघ को (**जघन्वान्**) मारता है और (**वरेण्यः**) श्रेष्ठ (**अभवत्**) होता है ।

भावार्थ—आदित्य सोम के तत्व को धारण करता है । इस वायु की महिमा को अपने बल से बतलाता है । अन्न आदि का स्वामी वायु साथी मरुतों के साथ मेघ का वध करता है और श्रेष्ठ होता है ॥२॥

वृत्रेण यदहिना बिभ्रदायुधा समस्थिथा युधये शंसमाविदे ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सह त्मनावर्धन्नुग्र महिमानमिन्द्रियम् ॥३॥

पदार्थ—(**युधये**) लड़ने के लिए (**आयुधा**) वज्र आदि आयुधों को (**बिभ्रत्**) धारण करता हुआ इन्द्र=वायु (**यत्**) जो (**अहिना**) मारने योग्य (**वृत्रेण**) वृत्र=मेघ के साथ (**सम् अस्थिथाः**) सामना करता है वह (**आविदे**) जानकारी के लिए है, (**शंसम्**) मैं यजमान प्रशंसा करता हूं । (**ते उग्र**) उस उग्र इन्द्र=वायु के (**इन्द्रियम्**) इन्द्रत्व सम्बन्धी (**महिमानम्**) महत्व को (**अत्र**) इस युद्ध काल में (**विश्वे**) सब (**मरुतः**) मरुत् लोग (**त्मना सह**) अपने साथ (**अवर्धन्**) बढ़ाते हैं ।

भावार्थः—युद्धार्थ वज्र आदि आयुधों को धारण करता हुआ इन्द्र जो मारने योग्य मेघ के साथ सामना करता है वह सबके ज्ञान के लिए है । उसके महान् वृत्रवध कार्य की मैं यजमान प्रशंसा करता हूं । उसके इन्द्रत्वपने को मरुद्गण इस युद्धकाल में स्वयं बढ़ाते हैं ॥३॥

जज्ञान एव व्यबाधत स्पृधः प्रापश्यद्वीरो अभि पौंस्यं रणम् ।
अवृश्चदद्रिमव सस्यदः सृजदस्तभ्नान्नाकं स्वपस्यया पृथुम् ॥४॥

पदार्थः—(**वीरः**) बलवान् वह इन्द्र=वायु (**जज्ञानः**) पैदा होता हुआ (**एव**) ही (**स्पृधः**) मेघात्मक शत्रुओं को (**वि अबाधत**) पीड़ित करता है (**रणम्**) रण को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर (**पौंस्यम्**) अपने बल को (**प्र अपश्यत्**) देखता है (**अद्रिम्**) मेघ को (**अवृश्चत्**) काटता है (**सस्यदः**) बहती जलों को

(अव सृजत्) वर्षोन्मुख करता है और (स्वपस्यया) अपने कर्म की इच्छा से (पृथुम्) विस्तृत (नाकम्) द्यु लोक को (अस्तभ्नात्) धारण करता है।

भावार्थः—इन्द्र=वायु उत्पन्न होता हुआ ही मेघरूपी शत्रुओं को पीड़ित करता है। इस रण को दृष्टि में रखता हुआ वह अपने बल को देखता है। मेघ को काटता है और बहने वाली जलों को वर्षणोन्मुख करता है। वह अपने कर्म से विस्तृत द्युलोक को धारण करता है ॥४॥

आदिन्द्रः सत्रा तविषीरपत्यत वरीयो द्यावापृथिवी अबाधत ।
अवाभरद्धृषितो वज्रमायसं शेवं मित्राय वरुणाय दाशुषे ॥५॥

पदार्थः—(आत्) तथा (इन्द्रः) वायु (तविषीः) समस्त वेगवाली शक्तियों को (सत्रा) साथ ही (अपत्यत) प्राप्त करता है (वरीयः) महती महिमा से (द्यावापृथिवी) द्यु और पृथिवी लोक को (अबाधत) वृत्रयुद्ध में बाधित करता है, (धृषितः) प्रगल्भ वह (मित्राय) यजमान और (वरुणाय) पुरोहित के लिए (शेवम्) सुख (दाशुषे) देने के (आयसम्) विशेष गति वाले (वज्रम्) वज्र को (अव अभरत्) धारण करता है।

भावार्थः—इन्द्र=वायु समस्त वेग वाली शक्तियों को साथ ही प्राप्त करता है और महती महिमा से द्यु और पृथिवी लोक को वृत्रयुद्ध में बाधित करता है। प्रगल्भ वह यजमान और पुरोहित को सुख देने के लिए विशेष गति वाले वज्र को धारण करता है ॥५॥

इन्द्रस्यात्र तविषीभ्यो विरप्शिन ऋघायतो अरंहयन्त मन्यवे ।
वृत्रं यदुग्रो व्यवृश्चदोजसापो बिभ्रतं तमसा परीवृतम् ॥६॥

पदार्थः—(अत्र) इस युद्ध काल में (विरप्शिनः) शब्दायमान (ऋघायतः) मेघों को मारते हुए (इन्द्रस्य) इन्द्र=वायु के (तविषीभ्यः) सेनाओं के (मन्यवे) प्रख्यापन के लिए (अरंहयन्त) जलें निकलने लगती हैं (यत्) जब (तमसा) अन्धकार से (परीवृतम्) आच्छादित (अपः) जलों को (बिभ्रतम्) पकड़े हुए (वृत्रम्) मेघ को (उग्रः) उग्र इन्द्र (व्यवृश्चत्) काटता है।

भावार्थः इस युद्ध में शब्दायमान मेघों को मारते हुए इन्द्र की सेनाओं के प्रख्यापन के लिए जलें बाहर निकलने लगती हैं जब अन्धकार से आच्छादित और जल को न छोड़ने वाले मेघ को उग्र इन्द्र=वायु काटता है ॥६॥

Scanned by CamScanner

या वीर्याणि प्रथमानि कर्त्वा महित्वेभिर्यतमानौ समीयतुः ।
ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत ॥७॥

पदार्थ—(महित्वेभिः) मंहनीय अपने बलों से (यतमानौ) प्रयत्नशील न्द्र और वृत्र (प्रथमानि) पूर्वभावी (या) जो (कर्त्वा) करणीय (वीर्याणि) राक्रम हैं उनका (समीयतुः) संयोजन करते हैं, (हते) वृत्र के हत होने पर ध्वान्तम्) घोर (तमः) अन्धकार (अव दध्वसे) ध्वस्त हो जाता है, (इन्द्रः) न्द्र (मह्ना) अपनी महिमा से (पूर्वहूतौ) प्रथम आह्वान में (अपत्यत) ाता है ।

भावार्थः—मंहनीय स्वकीय बलों से प्रयत्नशील इन्द्र और वृत्र अपने ाथमिक करणीय पराक्रम को संयोजित करते हैं । वृत्र=मेघ के मारे जाने र घोर अन्धकार ध्वस्त हो जाता है । इन्द्र अपनी महिमा से प्रथम ाह्वान में ही जाता है ॥७॥

विश्वे देवासो अध वृष्ण्यानि तेऽवर्धयन्त्सोमवत्या वचस्यया ।
रद्धं वृत्रमहिमिन्द्रस्य हन्मनाग्निर्न जम्भैस्तृष्वन्नमावयत् ॥८॥

पदार्थः—(विश्वे देवासः) समस्त ऋत्विज् लोग (अध) अनन्तर (ते) इस इन्द्र के (वृष्ण्यानि) बलों को (सोमवत्या) सोम से युक्त (वचस्यया) स्तुति करने की इच्छा से (अवर्धयन्) बढ़ाते हैं, (इन्द्रस्य) इन्द्र=वायु के (हन्मना) हनन साधन से (रद्धम्) हिंसित (वृत्रम्) जलके आवरक (अहिम्) मेघ को (तृषु) शीघ्र ही (आ वयत्) खा जाता है (न) जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि (जम्भैः) अपने ज्वालाख्य दान्तों से (अन्नम्) अन्न को खाता है ।

भावार्थः—ऋत्विग् लोग इस इन्द्र के बलों को सोमयुक्त स्तुति की इच्छा से बढ़ाते हैं । वायु के हनन साधन से हिंसित जलावरक मेघ को वह वायु उसी प्रकार खा जाता है जिस प्रकार अग्नि अपने ज्वालामय दाढों से अन्न को खा जाता है ॥८॥

भूरि दक्षेभिर्वचनेभिर्ऋक्वभिः सख्येभिः सख्यानि प्र वोचत ।
इन्द्रो धुनिं च चुमुरिं च दम्भयञ्छ्रद्धामनस्या शृणुते दभीतये ॥९॥

पदार्थः—हे यजमान और ऋत्विग् लोगो ! (**दक्षेभिः**) वृद्धि हेतु (**ऋक्वभिः**) मन्त्रयुक्त (**सख्येभिः**) मैत्री योग्य (**वचनेभिः**) वचनों से (**सख्यानि**) मित्रता को लक्ष्य में रखकर (**भूरि**) बहुत बार (**प्रवोचत**) बोलो, (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु (**दभीतये**) मारने के लिए (**धुनिम्**) कम्पनशील (**च**) और (**चुमुरिम्**) जल को खा जाने वाले मेघ को (**दम्भयन्**) मारते हुए (**श्रद्धामनस्या**) सत्यधारक शक्ति से (**शृणुते**) सुनने का साधन होता है ।

भावार्थः—हे यजमान और ऋत्विग्जनो ! आप लोग वृद्धिकारक, मन्त्रमय, मैत्री योग्य वचनों को मित्रभाव को लक्ष्य में रखकर इन्द्र की बहुत बार प्रशंसा करो । वायु मेघों को मारने के हेतु कम्पनशील और जलों को खा जाने वाले मेघ का हनन करते हुए सत्य की धारिका शक्ति से यज्ञ में बोले गए वचनों को सुनने-सुनाने का साधन होता है ॥९॥

त्वं पुरूण्या भरा स्वश्व्या येभिर्मंसै निवचनानि शंसन् ।
सुगेभिर्विश्वा दुरिता तरेम विदो षु ण उर्विया गाधमद्य ॥१०॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू हमें (**पुरूणि**) बहुत (**स्वश्व्यानि**) उत्तम अश्व आदि से युक्त धनों को (**आ भर**) दे (**येभिः**) जिनसे युक्त (**निवचनानि**) स्तोत्रों को (**शंसन्**) कहता हुआ मैं (**मंसै**) आप की पूजा करूँ, (**सुगेभिः**) उत्तम गन्तव्यों के साधन भूत उन धनों से (**विश्वा**) समस्त (**दुरिता**) दुरितों को (**तरेम**) तरें, हे भगवन् ! (**अद्य**) अब (**नः**) हमारे (**गाधम्**) ग्रथित स्तोत्र को (**उर्विया**) महत्व के साथ (**सु**) सुष्ठुरूप से (**विद**) स्वीकार कर ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू हमें प्रभूत मात्रा में अश्व आदि से युक्त उत्तम धनों को प्रदान कर जिनसे युक्त मैं स्तोत्रों को बोलता हुआ आप की पूजा करूँ । उत्तम गन्तव्यों के साधन भूत उन धनों से समस्त दुरितों को हम तैर जावें । हे भगवन् ! आप हमारे ग्रथित स्तोत्रों को भली प्रकार स्वीकार करें ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—११४

ऋषिः—१—१० सध्रिर्वैरूपो घर्मो वा तापसः ॥ देवता:—विश्वेदेवाः ॥
छन्दः—१, ५, ७ त्रिष्टुप् । २, ३, ६ भुरिक्त्रिष्टुप् । ८, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १० पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ जगती ॥
स्वरः—१—३, ५—१० धैवतः । ४ निषादः ॥

घर्मा समन्ता त्रिवृतं व्यापतुस्तयोर्जुष्टिं मातरिश्वा जगाम ।
दिवस्पयो दिधिषाणा अवेषन्विदुर्देवाः सहसामानमर्कम् ॥१॥

पदार्थः—(घर्मा) दीप्तिमान् अग्नि और आदित्य (समन्ता) दिशाओं को व्याप्त करते हुए (त्रिवृतम्) तीनों लोकों की (व्यापतुः) व्यापन करते हैं (मातरिश्वा) वायु (तयोः) उन दोनों को (जुष्टिम्) सेवा को (जगाम) प्राप्त होता है, (दिधिषाणाः) धारणशक्ति से युक्त (देवाः) रश्मियें (दिवः) द्युलोक के (पयः) जल को (अवेषन्) व्याप्त करती हैं अर्थात् वरसती हैं (सहसामानम्) सामों के सहित (अर्कम्) सूर्य को (विदुः) प्राप्त करती हैं ।

भावार्थः—प्रदीप्त अग्नि और आदित्य दिशाओं को व्याप्त करते हुए तीनों लोकों को व्यापते हैं । वायु उन दोनों के सहयोग को प्राप्त होता है । धारण शक्ति वाली रश्मियें द्युलोक के जल को बरसाती हैं और सामों सहित सूर्य को प्राप्त करती हैं ॥१॥

तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः ।
तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु ॥२॥

पदार्थः—(तिस्रः) तीन (निर्ऋतीः) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय गतियें (देष्ट्राय) भोग और अपवर्ग को देने के लिए (उपासते) प्रस्तुत हैं, (दीर्घश्रुतः) विशाल ज्ञान वाले (वह्नयः) धीरजन इनको (विजानन्ति) जानते हैं (कवयः) क्रान्तदर्शी लोग (तासाम्) इनके (निदानम्) कारण प्रकृति जीव और परमेश्वर को (नि चिक्युः) भली प्रकार जानते हैं (याः) जो (परेषु) उत्कृष्ट (गुह्येषु) गोपनीय गूढ (व्रतेषु) कर्मों में लगी हैं ।

भावार्थः—उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय रूपी तीनों क्रियायें इस जगत् में जीवों के भोग और अपवर्ग की सिद्धि के लिए प्रस्तुत हैं । विशाल ज्ञान वाले धीर लोग इनको जानते हैं । क्रान्तदर्शी लोग इनके कारण को भी जानते हैं कि जो ये उत्कृष्ट गूढ कार्यों में लगी हैं ॥२॥

Scanned by CamScanner

चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते ।
तस्यां सुपर्णा वृषणा नि षेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम् ॥३॥

पदार्थः—(**चतुष्कपर्दा**) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूपी चार शिखाओं वाली वेदवाणी (**घृतप्रतीका**) ज्ञानमय प्रकाश से युक्त हुई (**सुपेशा**) उत्तम रूपों वाली (**युवतिः**) युवती के समान (**वयुनानि**) समस्त ज्ञानों को (**वस्ते**) आच्छादित करती है (**तस्याम्**) उस वेदवाणी में (**वृषणौ**) शक्तिशाली (**सुपर्णा**) उत्तम ज्ञान गुण वाले जीवात्मा और परमात्मा (**निषेदतुः**) विराजते हैं (**यत्र**) जिसमें (**देवाः**) दिव्य शक्तियें (**भागधेयम्**) अपने भाग को **दधिरे**) धारण करती हैं ।

भावार्थः—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूपी चार शिखायें जिनकी हैं ऐसी ज्ञानप्रकाश से युक्त वेदवाणी उत्तम रूपों वाली युवती के समान समस्त ज्ञान-विज्ञानों को आच्छादित करती है । उस वेद वाणी में शक्तिशाली ज्ञानगुण वाले जीवात्मा और परमात्मा विराजमान हैं और उसी में सारी दैवी शक्तियाँ अपना स्थान पाती हैं ॥३॥

एकः सुपर्णः स समुद्रमा विवेश स इदं विश्वं भुवनं वि चष्टे ।
तं पाकेन मनसापश्यमन्तितस्तं माता रेळ्हि स उ रेळ्हि मातरम् ॥४॥

पदार्थः—(**एकः**) एक (**सः**) वह (**सुपर्णः**) सुपतन मध्यमस्थान वायु (**समुद्रम्**) अन्तरिक्ष में (**आ विवेश**) प्रविष्ट हो स्थित है, (**सः**) वह (**इदम्**) इस (**विश्वम्**) समस्त (**भुवनम्**) भुवन को (**विचष्टे**) अपनी प्रवृत्तियों से प्रकाशमान करता है (**तम्**) उसको (**पाकेन**) परिपक्व (**मनसा**) मन से (**अन्तितः**) समीप में (**अपश्यम्**) मैं विद्वान् देखता हूं, (**तम्**) उसको (**माता**) जलों की निर्मात्री माध्यमिका वाक् (**रेळ्हि**) प्राप्त करती है और (**सः**) वह (**मातरम्**) उस माध्यमिका वाक् को (**रेळ्हि**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः— एक शोभनगति माध्यमिक देव वायु अन्तरिक्ष में व्याप्त है । वह इस समस्त भुवन को अपनी प्रवृत्तियों से प्रकाशमान करता है । मैं विद्वान् उसको परिपक्व मन से जानता हूं । जलों की उत्पादिका माध्यमिका वाक् उसको प्राप्त करती है और वह उस माध्यमिका वाक् को प्राप्त करता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

सुपर्णं विप्राः कवयो वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ।
छन्दांसि च दधतो अध्वरेषु ग्रहान्त्सोमस्य मिमते द्वादश ॥५॥

पदार्थः - (**कवयः**) क्रान्तदर्शी (**विप्राः**) मेधावी लोग (**सुपर्णम्**) उत्तम ज्ञान वाले परमात्मा को (**एकम्**) एक (**सन्तम्**) होते भी (**वचोभिः**) अपनी वाणियों और उसके नामों से उसे (**बहुधा**) बहुत नामों वाला (**कल्पयन्ति**) करते हैं (**च**) और (**अध्वरेषु**) अध्वरों में (**छन्दांसि**) सप्त छन्दों को (**दधतः**) धारण करते हुए (**सोमस्य**) सोम के (**द्वादश**) बारह (**ग्रहान्**) ग्रहण साधन भूत पात्रों को (**मिमते**) तैयार करते हैं ।

भावार्थः—क्रान्तदर्शी मेधावी लोग उत्तम ज्ञान वाले प्रभु को एक होते हुए भी अपनी वाणी = स्तुतियों वा वर्णनों तथा उस प्रभु के नामों से उसे विविध नामों वाला करते हैं । यज्ञों में सप्त छन्दों को धारण करते हुए सोम के बारह पात्रों को तैयार करते हैं ॥५॥

षट्त्रिंशांश्च चतुरः कल्पयन्तश्छन्दांसि च दधत आद्वादशम् ।
यज्ञं विमाय कवयो मनीष ऋक्सामाभ्यां प्र रथं वर्तयन्ति ॥६॥

पदार्थः—(**कवयः**) क्रान्तदर्शी लोग (**षट्त्रिंशान्**) छत्तीस (**च**) और (**चतुरः**) चार इस प्रकार ४० ग्रहों को (**कल्पयन्तः**) सोम से पूरित करते हुए (**च**) और (**छन्दांसि**) गायत्री आदि छन्दों को (**आ द्वादशम्**) द्वादश संख्या वाले प्रउग से आरम्भ कर शस्त्र पर्यन्त स्तुत शस्त्र आदि रूपों में धारण करते हुए (**मनीषा**) बुद्धि से (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**विमाय**) निर्मित करके (**रथम्**) इस रमणीय यज्ञ को (**ऋक्सामाभ्याम्**) ऋक् और साम से (**प्रवर्तयन्ति**) संपादित करते हैं ।

भावार्थः – क्रान्तदर्शी लोग चालीस ग्रहों को सोम से पूर्ण करते हैं और गायत्री आदि छन्दों को प्रउग से लेकर शस्त्र पर्यन्त द्वादश पर्यन्त स्तुत शस्त्र आदि रूपों में धारण करते हुए बुद्धि से यज्ञ को निर्मित कर उसके भव्य एवम् रमणीय स्वरूप का ऋक् और नाम से संपादन करते हैं ॥६॥

चतुर्दशान्ये महिमानो अस्य तं धीरा वाचा प्र णयन्ति सप्त ।
आप्नानं तीर्थं क इह प्र वोचद्येन पथा प्रपिबन्ते सुतस्य ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अन्ये**) दूसरी (**चतुर्दश**) चौदह (**महिमानः**) विभूतियां (**अस्य**) इस यज्ञ की हैं, (**तम्**) उस यज्ञ को (**सप्त**) सात (**धीराः**) धीमान् होता आदि (**वाचा**) वाणी से (**प्र नयन्ति**) प्रकृष्ट रूप में सम्पन्न करते हैं (**आप्रानम्**) चात्वाल और उत्कर के मध्य व्याप्त (**तीर्थम्**) सोम पीने के मार्ग को (**इह**) यहां पर (**कः**) कौन (**प्रवोचत्**) बतावे (**येन**) जिस (**पथा**) मार्ग से (**सुतस्य**) अभिषुत सोम को (**प्र पिबन्ते**) देव लोग पीते=ग्रहण करते हैं।

भावार्थः—दूसरी भी यज्ञ की चौदह विभूतियां है। इस यज्ञ को बुद्धिमान् होता आदि सात ऋत्विग् वेदवाणी से सम्पन्न करते हैं। चात्वाल और उत्कर के मध्यवर्ती तीर्थ=सोम पीने के मार्ग को यहां पर कौन बता सकता है कि जिससे देव लोग सोम का ग्रहण करते हैं। अर्थात् यज्ञविज्ञान कुशल ही बता सकता है ॥७॥

सहस्रधा पञ्चदशान्युक्था यावद् द्यावापृथिवी तावदित्तत् ।
सहस्रधा महिमानः सहस्रं यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक् ॥८॥

पदार्थः—(**सहस्रधा**) सहस्रों सूक्तों वाले अथवा सहस्रों प्रकार के मन्त्रों वाले होते हुए भी (**उक्था**) वैदिक सूक्त (**पञ्चदश**) पन्द्रह प्रकार के हैं (**तत्**) वह ब्रह्म (**तावत् इत्**) उतना है (**यावत्**) जितने में (**द्यावा पृथिवी**) प्रकाशमान और अप्रकाशमान सभी लोक लोकान्तर स्थित हैं, (**सहस्रधा**) प्रभूत शक्तियों वाला है वह और (**सहस्रम्**) प्रभूत तथा प्रचुर हैं (**महिमानः**) उसकी महिमा (**यावद्**) जितना (**विष्टितं**) व्यापक है (**ब्रह्म**) परमेश्वर (**तावती**) उतनी है (**वाक्**) वेदवाणी ।

भावार्थः— सहस्रों सूक्तों वाले अथवा सहस्रों मन्त्रों वाले होते हुए भी वैदिक उक्थ पन्द्रह प्रकार के हैं। वह परमेश्वर उतना व्यापक हैं जितने में प्रकाशमान और अप्रकाशमान सभी लोक लोकान्तर और आकाश स्थित है। वह प्रभूत शक्तियों वाला है तथा उसकी महिमा बहुत है। जितना व्यापक वह हैं उतनी ही उसकी वेदवाणी है ॥८॥

कश्छन्दसां योगमा वेद धीरः को धिष्ण्यां प्रति वाचं पपाद ।
कमृत्विजामष्टमं शूरमाहुर्हरी इन्द्रस्य नि चिकाय कः स्वित् ॥९॥

पदार्थः—(**कः**) कौन (**धीरः**) धीमान् (**छन्दसाम्**) छन्दों=वैदिक छन्दों के (**योगम्**) प्रयोग वा विनियोग को (**आ वेद**) जानता है, (**कः**) कौन

Scanned by CamScanner

(धिष्ण्याम्) होता आदि के सात स्थानों तथा तदनुसारी (वाचम्) वाणी को (प्रति पपाद) प्रतिपादित करता है। (कः) कौन (ऋत्विजाम्) ऋत्विजों के मध्य (अष्टमम्) आठवें (शूरम्) पूरक को किसको (आहुः) कहते हैं (कः स्वित्) कौन (इन्द्रस्य) इन्द्र के (हरी) ऋक् और साम रूपी दो अश्वों को (नि चिकाय) जानता है।

भावार्थः— वैदिक छन्दों के विनियोग को कौन जानता है ? कौन सप्त होता ऋत्विजों को स्थान और उनके कार्यों को प्रतिपादित करता है? कौन ऋत्विजों के मध्य आठवां पूरक कौन हो इसको जानता है ! और कौन ऋक् और साम रूप इन्द्र के अश्वों को जानता है ? याज्ञिक ही इसे जानता है ॥९॥

भूम्या अन्तं पर्येके चरन्ति रथस्य धूर्षु युक्तासो अस्थुः ।
श्रमस्य दायं वि भजन्त्येभ्यो यदा यमो भवति हर्म्ये हितः ॥१०॥

पदार्थः (एके) कई अश्व=किरणें (भूम्याः) महान् द्युलोक के (अन्तम्) पर्यन्तों में (परिचरन्ति) विचरती हैं, (ये) जो (रथस्य) सूर्य मण्डल की (धूर्षु) धुरी में (युक्ता) जुड़े (अस्थुः) स्थित होते हैं (यदा) जब (यमः) सूर्य (हर्म्ये) अपने स्थान द्युलोक में (हितः) निहित (भवति) होता है तब देवगण (एभ्य) इन के लिए (श्रमस्य) परिश्रम के (दायम्) दूर करने अर्थात् शक्ति को बराबर कायम रखने के लिए बल को (विभजन्ति) वितरित करते हैं।

भावार्थः – कई किरणें महान् द्युलोक के पर्यन्त भागों तक विचरती हैं। ये ही सूर्य मण्डल की धुरा में जुडी हुई होती हैं। जब सूर्य द्युलोक में निहित होता है तब इनकी शक्ति को बढ़ाने और कायम रखने के लिए देव गण=दिव्य शक्तियां बल प्रदान करती हैं ॥१०॥

सूचना – इस सूक्त में यज्ञ के विज्ञान का विशेष वर्णन है। इसका ज्ञान प्रत्येक को रखना चाहिये और यज्ञ-प्रक्रिया में जो परिभाषायें पाई जाती हैं उनका भी आधार यह सूक्त है। इन विशिष्ट परिभाषाओं को समझकर यह भी समझना चाहिए कि वेद का ज्ञान अनन्त है तथा ब्रह्म स्वयं अनन्त है।

यह दशम मण्डल में एकसौ चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—११५

ऋषिः—१—९ उपस्तुतो वार्ष्टिहव्यः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २, ४, ७ विराड्जगती । ३ जगती । ५ आर्चीभुरिग्जगती । ६ निचृज्जगती । ८ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृच्छक्वरी ॥ स्वरः—१—७ निषादः । ८, ९ धैवतः ॥

चित्र इच्छिशोस्तरुणस्य वक्षथो न यो मातरावप्येति धातवे ।
अनूधा यदि जीजनदधा च नु ववक्ष सद्यो महि दूत्यं चरन् ॥१॥

पदार्थः—(**शिशोः**) शिशुभूत (**तरुणस्य**) तरुण=नूतन अग्नि की (**वक्षथः**) वहन शक्ति (**चित्रः**) अद्भुत (**इत्**) ही है (**यः**) जो (**धातवे**) स्तनपान के लिए (**मातरौ**) द्यु और पृथिवी लोक को (**न अप्येति**) नहीं जाता है, (**यदि**) यदि (**अनूधाः**) स्तनरहित इस पृथिवी और द्युलोक ने (**जीजनत्**) उत्पन्न किया है तो फिर ठीक है, परन्तु ऐसा नहीं (**अध च**) और (**नु**) निश्चय (**सद्यः**) उत्पन्न होते ही यह अग्नि (**महि**) महान् (**दूत्यम्**) दूत कर्म को (**चरन्**) करता हुआ देवों के प्रति हवि को (**ववक्ष**) ले जाता है ।

भावार्थः—शिशुभूत नवीन इस अग्नि की वहनशक्ति अद्भुत ही है कि यह स्तन पान के लिए द्यु और पृथिवी लोक को नहीं जाता है । यदि विना स्तन वा दुग्ध वालों ने उसे उत्पन्न किया है अतः वह नहीं जाता है ऐसा भी नहीं है । उत्पन्न होते ही यह अग्नि महान् दूत कर्म को करते हुए देवों के लिए हवि वहन करता है ॥१॥

अग्निर्ह नाम धायि दन्नपस्तमः सं यो वना युवते भस्मना दता ।
अभिप्रमुरा जुह्वा स्वध्वर इनो न प्रोथमानो यवसे वृषा ॥२॥

पदार्थः—(**अपस्तमः**) कर्मवत्तम (**अग्निः**) अग्नि (**नाम**) नाम (**धायि**) दिया गया है (**दन्**) यजमानों को धन आदि देता हुआ (**यः**) जो (**भस्मना**) भासक तेज से (**दता**) दाँत से (**वना**) काष्ठों को (**संयुवते**) संयुक्त हो जलाता है (**अभि प्रमुरा**) हरि से संवेष्टित (**जुह्वा**) जुहू से (**स्वध्वरः**) शोभन यज्ञों वाला यह अग्नि उसी प्रकार हवि आदि को ग्रहण करता है (**न**) जिस प्रकार (**इनः**) समर्थ (**प्रोथमानः**) पुष्टांग (**वृषा**) बैल (**यवसे**) घास में प्रवृत्त होता है ।

भावार्थः—इसे कर्मवत्तम अग्नि नाम दिया गया है । यह यजमानों

Scanned by CamScanner

के लिए धन आदि का दाना है । भासक तेज से और दांत से यह काष्ठों को जला देता है । हवि से संवेष्टित जुहू से यह अग्नि उसी प्रकार हवि आदि को ग्रहण करता है जिस प्रकार समर्थ पुष्टाङ्ग बैल घास आदि में प्रवृत्त होता है ॥२॥

तं वो विं न द्रुषदं देवमन्धस इन्दुं प्रोथन्तं प्रवपन्तमर्णवम् ।
आसा वह्निं न शोचिषा विरप्शिनं महिव्रतं न सरजन्तमध्वनः ॥३॥

पदार्थः—हे स्तोता लोगो ! (वः) आप (द्रुसदम्) काष्ठ अरणि में विद्यमान, (देवम्) द्योतन शील (अन्धसः) यजमान के अन्न के (इन्दुम्) सेचन करने वाले, (प्रोथन्तम्) शब्दायमान (प्रवपन्तन्) दाहक (अर्णवम्) उदक वाले (आसा) देवों के समीप (वह्निम्) वृषभ के (न) समान हवि के वाहक (शोचिषा) दीप्ति से (विरप्शिनम्) महान् (महिव्रतम्) महाकर्मा आदित्य के (न) समान (अध्वनः) मार्गों के (सरजन्तम्) प्रकाशक (तम्) उस अग्नि की (विम् न) पक्षी के समान प्रशंसा करो ।

भावार्थः हे स्तोता लोगो ! आप काष्ठ की अरणियों में विद्यमान द्योतनशील अन्न के सेचक, शब्दायमान, दाहक, उदकवान्, देवों के समीप वृषभ की तरह हवि ले जाने वाले, दीप्ति से महान्, महाकर्मा आदित्य के समान मार्ग के प्रकाश और पक्षी के समान गतिशील अग्नि की प्रशंसा करो ॥३॥

वि यस्य ते ज्रयसानस्याजर धक्षोर्न वाताः परि सन्त्यच्युताः ।
आ रण्वासो युयुधयो न सत्वनं त्रितं नशन्त प्र शिषन्त इष्टये ॥४॥

पदार्थः—(अजर यस्य) अजर जिस (ज्रयसानस्य) गतिशील (ते) उस (धक्षोः) दाहक अग्नि के (अच्युताः) न च्युत होने वाले प्रभाव (वाता न) वायुओं के समान (वि परि सन्ति) सर्वत्र विद्यमान होते हैं (युयुधयः न) योद्धाओं के समान (रण्वासः) शब्दायमान ऋत्विग् लोग (इष्टये याग के लिए (प्रशिषन्तः) चाहते हुए (सत्वनम्) बलवान् (त्रितम्) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में विद्यमान अग्नि को (आ नशन्त) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—अजर, गतिशील, दाहक अग्नि के न च्युत होने वाले प्रभाव वायुओं की तरह सर्वत्र विद्यमान होते हैं । योद्धाओं के समान शब्दायमान

Scanned by CamScanner

ऋत्विग् लोग याग के लिए चाहते हुए तीन=पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक में विद्यमान अग्नि को प्राप्त करते हैं ॥४॥

स इद॒ग्निः कण्व॑तमः॒ कण्व॑सखा॒र्यः पर॒स्यान्त॑रस्य॒ तरु॑षः ।
अ॒ग्निः पा॑तु गृण॒तो अ॒ग्निः सू॒रीन॒ग्निर्द॑दातु॒ तेषा॒मवो॒ नः ॥५॥

पदार्थः—(**कण्वतमः**) अत्यन्त शब्दकारी, (**कण्वसखः**) ऋत्विजों का मित्र (**अर्यः**) स्वामी (**स इत्**) वह ही (**अग्निः**) अग्नि (**परस्य**) बाह्य और (**अन्तरस्य**) आन्तरिक बाधाओं का (**तरुषः**) विनाशक होता है (**अग्निः**) अग्नि (**गृणतः**) स्तोताओं की (**पातु**) रक्षा करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**सूरीन्**) यजमानों की रक्षा करता है, (**अग्निः**) अग्नि (**तेषाम्**) उन इन (**न**) हम लोगों को (**अवः**) रक्षण और अन्न (**ददातु**) देता है ।

भावार्थः—अत्यन्त शब्दकारी, ऋत्विजों का मित्र, गतिशील वह ही अग्नि बाह्य और आन्तरिक बाधाओं का विघातक है। अग्नि स्तोताओं की रक्षा करता है, वही यजमानों की रक्षा करता है और वही उन इन हम सबों को रक्षण और अन्न देता है ॥५॥

वा॒जिन्त॑माय॒ सह्य॑से सुपित्र्य तृ॒षु च्यवा॑नो॒ अनु॑ जा॒तवे॑दसे ।
अ॒नु॒द्रे चि॒द्यो धृ॑ष॒ता वरं॑ स॒ते म॒हिन्त॑माय॒ धन्व॒नेद॑वि॒ष्यते ॥६॥

पदार्थः—(**सुपित्र्य**) उत्तम किरणों वाले, (**वाजिन्तमाय**) अतिशय अन्न आदि से युक्त (**सह्यसे**) शत्रुनाशक (**अनुद्रे**) आपत्ति में (**धृषता**) शत्रुधर्षक (**धन्वना इत्**) निज बल से (**अविष्यते**) रक्षा करने वाले (**सते**) भूष्णु (**महिन्तमाय**) दातृतम (**जातवेदसे**) अग्नि को (**तृषु**) शीघ्र (**अनुच्यवानः**) उद्युक्त (**यः**) जो मैं (**वरम्**) वरणीय हवि प्रदान करता हूं ।

भावार्थः—उत्तम रश्मियों वाले, अन्न आदि के अतिशय दाता, शत्रु के नाश के साधन, आपत्ति में निज बल से रक्षा करने वाले, बहुत से लाभों के दाता अग्नि को यज्ञ में प्रवृत्त हुआ मैं हवि प्रदान करता हूं ॥६॥

ए॒वाग्निर्मर्तैः॑ स॒ह सू॒रिभि॒र्वसुः॑ ष्टवे॒ सह॑सः सू॒नरो॒ नृभिः॑ ।
मि॒त्रासो॒ न ये सुधि॑ता ऋता॒यवो॒ द्यावो॒ न द्यु॒म्नैर॒भि सन्ति॒ मानु॑षान् ॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(सहसः) बल का (सुनरः) सूनु = पुत्र (अग्निः) अग्नि (एव) इस प्रकार (नृभिः) कर्म के नेता (मर्तैः) मनुष्यों के साथ (सूरिभिः) विद्वानों से (वसुः) धन आदि साधनों को लक्ष्य में रखकर (स्तवे) प्रशंसा किया जाता है, (मित्रासः न) मित्रों के समान (सुधिताः) सुहित (ऋतायवः) यज्ञ की कामना करने वाले विद्वान् लोग (द्यावः न) द्योतमान के समान (द्युम्नैः) यशों से (मानुषान्) सर्वसाधारण मनुष्यों का (अभि सन्ति) अतिक्रमण कर जाते है।

भावार्थः—बल का पुत्र अत्यन्त बलशाली अग्नि इस प्रकार कर्म के नेता मनुष्यों के साथ विद्वानों से धन आदि साधनों को लक्ष्य में रखकर प्रशंसा से युक्त किया जाता है। मित्रों के समान उत्तम हितकारी, यज्ञ की कामना करने वाले विद्वान् लोग द्योतमान पदार्थों के समान अपने यशों से सर्व साधरण से ऊपर उठ जाते हैं ॥७॥

ऊर्जो नपात्सहसावन्निति त्वोपस्तुतस्यं वन्दते वृषा वाक् ।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥८॥

पदार्थः—(ऊर्जः) शक्ति का (नपात्) अपत्य (सहसावन्) तेजस्वी है यह अग्नि (इति) इस प्रकार (त्वा) इस अग्नि को (उपस्तुतस्य) स्तुति कर्त्ता यजमान की (वृषा) हवि और घी की वर्षा करने वाली (वाक्) वाणी (वन्दते) इसके गुणों की वन्दना = प्रशंसा करती है (द्राघीयः) लम्बी (आयु) आयु को (प्रतरम्) निरन्तर (दधानाः) धारण करते हुए हम (त्वाम्) इस अग्नि की (स्तोषाम) प्रशंसा करते हैं और (त्वया) इसके द्वारा (सुवीराः) उत्तम सन्तानों वाले होवें।

भावार्थः—शक्ति का अपत्य और तेजस्वी है यह अग्नि ऐसा जान कर इस अग्नि की स्तावक यजमान की हवि घृत आदि से युक्त वाणी प्रशंसा करती है। हम सब लम्बी आयु को सदा धारण करते हुए इस अग्नि का गुणगान करते हैं और इसके द्वारा हम भगवान् की कृपा से उत्तम सन्तानों वाले होवें ॥८॥

इति त्वाग्ने वृष्टिहव्यंस्य पुत्रा उंपस्तुतास ऋषयोऽवोचन् ।
ताँश्च पाहि गृंणतश्च सूरीन्वषड्वषळित्यूर्ध्वासो
अनक्षन्नमो नम इत्यूर्ध्वासो अनक्षन् ॥९॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः – (**इति**) इस प्रकार (**अग्ने त्वा**) इस अग्नि के विषय में (**वृष्टिहव्यस्य**) वृष्टि के लिए यज्ञ करने वाले अथवा वर्षाकाल में यज्ञ करने वाले विद्वान् वेदज्ञ के (**पुत्रासः**) पुत्र (**उपस्तुतासः**) स्तावक (**ऋषयः**) मन्त्रद्रष्टा लोग (**अवोचन्**) वार्ता करते है (**तान् च**) उनकी (**पाहि**) यह अग्नि रक्षा करता है (**गृणतः सूरीन् च**) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों की (**पाहि**) रक्षा करता है (**वषड् वषड् इति**) यज्ञों को करके (**ऊर्ध्वासः**) ऊँचे उठे हुए इस अग्नि को (**अनक्षन्**) प्राप्त करते हैं और (**नमः नमः इति**) अन्न आदि से (**ऊर्ध्वासः**) उत्कृष्ट होकर (**अनक्षन्**) प्राप्त होते हैं ।

भावार्थः— इस प्रकार इस के विषय में वृष्टि के लिए एवम् बर्षाकाल में यज्ञ करने वाले वेदज्ञ विद्वान् के पुत्र स्तावक मन्त्रद्रष्टा लोग चर्चा वार्ता करते हैं। उनकी यह अग्नि रक्षा करता है। वह यज्ञों के करने वाले और अन्न आदि से अग्नि को तृप्त करने वाले दोनों की रक्षा का साधन बनता है ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ११६

ऋषिः—१—९ अग्नियुतः स्थौरोऽग्नियूपो वा स्थौरः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥
छन्दः—१, ८, त्रिष्टुप् । २ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप् ।
५, ७ विराट्त्रिष्टुप् । ६ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । **स्वरः**—
धैवतः ॥

पिबा सोमं महतः इन्द्रियाय पिबा वृत्राय हन्तवे शविष्ठ ।
पिब राये शवसे हूयमानः पिब मध्वस्तृपदिन्द्रा वृषस्व ॥१॥

पदार्थः – (**इन्द्रः**) यह इन्द्र=सूर्य (**महते**) महान् (**इन्द्रियाय**) इन्द्रत्व की प्राप्ति के लिए (**सोमम्**) सोमतत्त्व का (**पिबा**) पानक रता है, (**शविष्ठ**) शक्तिशाली यह (**वृत्राय**) वृत्र=मेघ के (**हन्तवे**) मारने के लिए सोम को (**पिब**) पीता है, तथा (**हूयमानः**) प्रशंसनीय यह (**शवसे**) अन्न और (**राये**) धन के देने के लिए सोम का (**पिब**) पान करता है, (**मध्वः**) मधुर रसों को (**पिब**)

Scanned by CamScanner

पीता है (तृपत्) तृप्ति प्राप्त करता हुआ (आ वृषस्व) ऐश्वर्यों की वृष्टि करता है।

भावार्थः— यह इन्द्र=सूर्य महान् इन्द्रत्व की प्राप्ति के लिए सोम-तत्त्व=जल आदि रसों का पान करता है, मेघ के वध के लिए पान करता है, प्रशंसनीय यह अन्न और धन प्रदानार्थ सोम का पान करता है। मधुर रसों का पान करता है। तृप्ति प्राप्त करता हुआ वृष्टि तथा अन्य ऐश्वर्यों की वर्षा करता है ॥१॥

अस्य पिब क्षुमतः प्रस्थितस्येन्द्र सोमस्य वरमा सुतस्य ।
स्वस्तिदा मनसा मादयस्वार्वाचीनो रेवते सौभगाय ॥२॥

पदार्थः— (**इन्द्र**) यह सूर्य (**क्षुमतः**) अन्नमिश्रित, (**प्रस्थितस्य**) हविर्धान से उत्तर वेदि की तरफ प्रस्थापित (**आ सुतस्य**) चुआये गए (**अस्य**) इस (**सोमस्य**) सोमरस के (**वरम्**) उत्तम अंश को (**पिब**) पीता है, (**स्वस्तिदाः**) सुख का दाता, (**अर्वाचीनः**) अभिमुख होने वाला यह (**रेवते**) धनयुक्त (**सौभगाय**) सौभाग्य के लिए हमें (**मनसा**) अपनी शक्ति से (**मादयस्व**) हर्षित करता है।

भावार्थः—यह सूर्य अन्नमिश्रित एवम् हविर्धान से उत्तर वेदि की तरफ स्थापित, चुआये गए इस सोम रस के उत्तम अंश को ग्रहण करता है। वह सबका कल्याणदाता है और धनयुक्त सौभाग्य के लिए हमें अपनी शक्ति से सुखी करता है ॥२॥

ममत्तु त्वा दिव्यः सोम इन्द्र ममत्तु यः सूयते पार्थिवेषु ।
ममत्तु येन वरिवश्चकर्थ ममत्तु येन निरिणासि शत्रून् ॥३॥

पदार्थः—(**दिव्यः**) द्युलोक में उत्पन्न (**सोमः**) सोम (**त्वा**) इस (**इन्द्रः**) इन्द्र को (**ममत्तु**) तृप्त करता है (**यः**) जो सोम (**पार्थिवेषु**) पार्थिव स्थानों में (**सूयते**) तैयार किया जाता है वह (**ममत्तु**) तृप्त करता है, (**येन**) जिससे (**वरिवः**) प्रशस्त धन (**चकर्थ**) यह सूर्य करता है वह भी (**ममत्तु**) इससे तृप्त करता है, (**येन**) जिस सोम के द्वारा (**शत्रून्**) मेघ आदिकों को (**निरिणासि**) निकाल फेंकता है वह सोम भी (**ममत्तु**) इसकी तृप्ति करता है।

भावार्थः—द्यु लोक में उत्पन्न सोम इस सूर्य को प्राप्त होता है, जो पृथिवी पर तैयार किया जाता है वह भी इसे प्राप्त होता है, जिससे उत्तम

Scanned by CamScanner

धन आदि की उत्पत्ति का कार्य यह सूर्य करता है वह भी इसे प्राप्त होता है और जिससे मेघ को मारता है वह सोम भी इसे प्राप्त है ॥३॥

आ द्विबर्हा अमिनो यात्विन्द्रो वृषा हरिभ्यां परिषिक्तमन्धः ।
गव्या सुतस्य प्रभृतस्य मध्वः सत्रा खेदामरुशहा वृषस्व ॥४॥

पदार्थः (**द्विबर्हाः**) द्यु और पृथिवी इन दोनों का धारण करने वाला (**अमिनः**) सर्वत्र गमन करने वाला (**वृषा**) वर्षा का कारणभूत (**परिषिक्तम्**) परिषिक्त (**अन्धः**) सोम के प्रति (**हरिभ्याम्**) धारण और आकर्षण अथवा रसादान और रस प्रदान गुणों से (**यातु**) जाता है (**गवि**) पृथिवी पर (**आसुतस्य**) चुआये गए (**प्रभृतस्य**) पात्रों में रखे (**मध्वः**) सोम के पान से (**सत्रा**) हमारे यज्ञ में प्राप्त होता है और (**अरुशहा**) मेघ का विनाशक वह (**खेदाम्**) किरणों को (**आ वृषस्व**) बरसाता है ।

भावार्थः––दोनों लोकों का धारक सर्वत्रगामी वर्षा का हेतुभूत सूर्य परिषिक्त सोम के प्रति रसादान और इस प्रदान गुणों के साथ प्राप्त होता है। पृथिवी पर तैयार किये गए, पात्रों में रखे सोम के पान से हमारे यज्ञ में प्राप्त होता है। मेघों का विनाशक वह किरणों को बरसाता है ॥४॥

नि तिग्मानि भ्राशयन्भ्राश्यान्यव स्थिरा तनुहि यातुजूनाम् ।
उग्राय ते सहो बलं ददामि प्रतीत्या शत्रून्विगदेषु वृश्च ॥५॥

पदार्थः– यह इन्द्र=सूर्य (**भ्राश्यानि**) प्रकाशमान (**तिग्मानि**) तीक्ष्ण किरणों को (**भ्राशयन्**) अति प्रकाशमान करता हुआ (**यातुजूनाम्**) यातुधान=रोगकारी जन्तुओं के (**स्थिरा**) दृढ़ शरीरों को (**अवतनुहि**) क्षीण करता है (**ते उग्राय**) इस उग्र सूर्य के लिए इस कार्य में मैं विद्वान् (**सहः**) घातक (**बलम्**) हविरूप बल को (**ददामि**) देता हूँ, यह (**शत्रून्**) शत्रुभूत रोगाणुओं के (**प्रतीत्य**) प्रति जाकर (**विगदेषु**) स्वास्थ्यकारी प्रवृत्तियों में उन्हें (**वृश्च**) काटता है ।

भावार्थः– सूर्य प्रकाशमान तीक्ष्ण किरणों को अति प्रकाशमान और तीक्ष्ण करता हुआ रोगकारक जन्तुओं के दृढ़ शरीरों को क्षीण करता है। इस उग्र सूर्य के लिए इस कार्य में मैं विद्वान् घातक हवि रूप बल को यज्ञ-माध्यम से देता हूँ। इस स्वास्थ्य प्रदान की अपनी प्रवृत्तियों में सूर्य रोगाणुओं के प्रति प्राप्त होकर उन्हें मारता है ॥५॥

Scanned by CamScanner

न्यर्य इन्द्र तनुहि श्रवांस्योजः स्थिरेव धन्वनोऽभिमातीः ।
अस्मद्र्यग्वावृधानः सहोभिरनिभृष्टस्तन्वं वावृधस्व ॥६॥

पदार्थः—(अर्यः इन्द्रः) सब का स्वामी इन्द्र=सूर्य (श्रवांसि) अन्न आदि को (वितनुहि) बढ़ाता है, (ओजः) अपने ओज से अभिमातीः) शत्रुभूत मेघों के प्रति (स्थिरा इव) स्थिर आयुधों की भांति (धन्वनः) अन्तरिक्ष सम्बन्धी शक्तियों को विस्तृत करता है, (अस्मद्र्यक्) हमारे समक्ष हुआ (अनिभृष्टः) अपरिभव-नीय वह (सहोभिः) तेजों से (वावृधानः) बढ़ता हुआ (तन्वम्) अपने कलेवर को (ववृधस्व) बढ़ाता है ।

भावार्थः—सब ग्रहों का स्वामी वह सूर्य अन्न आदि की वृद्धि का कारण बनता है । अपने ओज से शत्रुभूत मेघों के प्रति स्थिर आयुधों की भांति अन्तरिक्ष सम्बन्धी शक्तियों और प्रवृत्तियों को विस्तृत करता है । हमारे समक्ष हुआ अपरिभवनीय वह तेजों से बढ़ता हुआ अपने कलेवर को बढ़ाता है ॥६॥

इदं हविर्मघवन्तुभ्यं रातं प्रति सम्राळ्हृणानो गृभाय ।
तुभ्यं सुतो मघवन्तुभ्यं पक्वोऽद्धीन्द्र पिब च प्रस्थितस्य ॥७॥

पदार्थः—(इदम्) यह (रातम्) हमारे द्वारा प्रदत्त (हविः) हवि (मघवन् तुभ्यम्) इस धनों के स्वामी इन्द्र=सूर्य के लिए है, (सम्राट्) सम्यक् राजमान (अहृणानः) विना संकोच (प्रति गृभाय) ग्रहण करता है (मघवन् इन्द्र तुभ्यम्) इस मघवान् इन्द्र के लिए (सुतः) सोम तैयार हैं, (तुभ्यम्) इसके लिए (पक्वः) पुरोडाश आदि पाक होते हैं, यह (अद्धि) खाता है (च) और (प्रस्थितस्य) पात्र में रखे हुए सोम का (पिब) पान करता है ।

भावार्थः—यह हमारे द्वारा प्रदत्त हवि धनों के स्वामी सूर्य के लिए है । वह सम्यक् प्रकाशमान विना संकोच इसे ग्रहण करता है । इसके लिए सोम अभिषुत होता है, इसके लिए पुरोडाश पकाया जाता है । यह इनको खाता और पीता है । अर्थात् यह ग्रहण करता है ॥७॥

अद्धीदिन्द्र प्रस्थितेमा हवींषि चनो दधिष्व पचतोत सोमम् ।
प्रयस्वन्तः प्रति हर्यामसि त्वा सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः ॥८॥

पदार्थः— (**इन्द्रः**) यह सूर्य (**प्रस्थिता**) उत्तर वेदि के प्रति स्थापित (**इमा**) इन (**हवींषि**) हवियों को (**अद्धि इव**) अग्नि के माध्यम से खाता है (**चनः**) अन्न को (**दधिष्व**) धारण करता है (**उत**) और (**सोमम्**) सोम को पीता है (**पचता**) पके पुरोडाश आदि को खाता है। हम लोग (**प्रयस्वन्तः**) अन्न वाले होकर (**त्वा**) इसके (**प्रति हर्यामसि**) चाहते हैं। (**यजमानस्य**) यजमान की (**कामाः**) कामनायें (**सत्याः**) सत्य (**सन्तु**) होवें।

भावार्थः—यह सूर्य उत्तर वेदि के प्रति स्थापित इन हवियों को अग्नि के माध्यम से खाता है, अन्न को धारण करता है, सोम को पीता है और पुरोडाश आदि को ग्रहण करता है। हम अन्न आदि से सम्पन्न होकर इस इन्द्र की कामना करते हैं। यजमान के चाहे हुए मनोरथ पूरे हो ॥८॥

प्रेन्द्राग्निभ्यां सुवचस्यामियर्मि सिन्धाविव प्रेरयं नावमर्कैः।
अयाइव परि चरन्ति देवा ये अस्मभ्यं धनदा उद्भिदश्च ॥९॥

पदार्थः—मैं यजमान (**इन्द्राग्नीभ्याम्**) सूर्य और अग्नि के लिए (**सुवचस्याम्**) उत्तम प्रशंसा वचन की (**प्र इयर्मि**) प्रेरणा करता हूँ, (**सिन्धौ**) नदी में (**नावम्**) नौका की (**इव**) भांति (**अर्कैः**) मन्त्रों से (**प्रेरयम्**) प्रेरित करता हूँ, वे (**देवाः**) देव लोग (**अयाः इव**) ऋत्विजों अथवा कर्मकरों की (**इव**) भांति (**परिचरन्ति**) हमारी धनादि से परिचर्या करते हैं (**ये**) जो (**अस्मभ्यम्**) हमारे लिए (**धनदाः**) धन देने वाले (**च**) और (**उद्भिदः**) हमारे विघ्न-बाधाओं के उद्भेदक हैं।

भावार्थः—मैं यजमान सूर्य और अग्नि की प्रशंसा में उत्तम वचनों का प्रयोग करता हूं जिस प्रकार नदी में नौका को प्रेरित किया जाता है उसी प्रकार मन्त्रों से इनका वर्णन करता हूं। वे देव लोग ऋत्विजों की भांति धन आदि के प्रदान से हम पर अनुग्रह करते हैं जो कि हमारे लिए धन दाता और हमारी विघ्न बाधाओं के विघातक हैं ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त ११७

ऋषिः -- १—९ भिक्षुः ॥ देवता धनान्नदानप्रशंसा ॥ छन्दः—१ निचृज्जगती । २ पादनिचृज्जगती । ३, ७, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ६ त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः— १–२ निषादः । ३ – ९ धैवतः ॥

न वा उ॑ दे॒वाः क्षुध॒मिद्व॒धं द॑दुरु॒ताशि॑त॒मुप॑ गच्छन्ति मृ॒त्यवः॑ ।
उ॒तो र॒यिः पृ॑ण॒तो नोप॑ दस्यत्यु॒ताපृ॑ण॒न्म॑र्डि॒तारं॒ न वि॑न्दते ॥१॥

पदार्थः– (**देवाः उ**) देवों ने (**वं**) निश्चय ही सब को (**क्षुधम्**) भूख (**न इव्**) नहीं (**ददुः**) दी है अपितु (**वधम्**) मौत दी है (**उत**) और (**आशितम्**) खाने वाले को भी (**मृत्यवः**) मृत्युयें (**उप गच्छन्ति**) प्राप्त होती हैं, (**उतो**) और (**पृणतः**) देने वाले का (**रयिः**) धन (**न**) नही (**उपदस्यति**) नष्ट होता है (**उत**) और (**अपृणन्**) न देने वाला (**मर्डितारम्**) सुख देने वाले को (**न**) नहीं (**विन्दते**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—दैवी शक्तियों ने निश्चय ही सबको भूख नहीं, अपितु मौत दी है और खाने को भी मौत आती है । देने वाले का धन क्षीण नही होता है और अदाता कभी सुख देने वाले व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता है ॥१॥

य आ॒ध्राय॑ चकमा॒नाय॑ पि॒त्वोऽन्न॑वा॒न्त्सन्र॑फि॒तायो॑पज॒ग्मुषे॑ ।
स्थि॒रं मनः॑ कृणु॒ते सेव॑ते पु॒रोतो चि॒त्स म॑र्डि॒तारं॒ न वि॑न्दते ॥२॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**अन्नवान्**) अन्न वाला अथवा अन्न का स्वामी धनी (**आध्राय**) दुर्बल (**पित्वः**) अन्न को (**चकमानाय**) चाहने वाले (**रफिताय**) दरिद्रता से पीड़ित (**उपजग्मुषे**) गृह पर याचनार्थ आये हुए के लिए न देने में (**मनः**) मन को (**स्थिरम्**) दृढ़ (**कृणते**) कर लेता है (**पुरा**) सामने (**चित्**) ही उत्तम वस्तुओं का (**सेवते**) सेवन करता है (**सः**) वह अपने को (**मर्डितारम्**) सुख देने वाले को (**न**) नहीं (**विन्दते**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—जो धन और अन्न का स्वामी दुर्बल, अन्न को चाहने वाले और दारिद्रय से पीड़ित तथा गृह पर जाकर आवश्यकता की पूर्ति के लिए याचना करने वाले को कुछ न देने के विषय में मन को दृढ़ कर लेता है वह अपने को सुखी करने वाले को नहीं प्राप्त करता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

स इद्भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय ।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**इत्**) ही (**भोजः**) दाता है (**यः**) जो (**गृहवे**) प्रतिगृहीता, (**अन्नकामाय**) अन्न चाहने वाले (**चरते**) घर पर आकर याचना करने वाले (**कृशाय**) अभाव से पीड़ित के लिए (**ददाति**) देता है (**अस्मै**) उस के लिए (**यामहूतौ**) इस दान क्रिया रूपी यज्ञ में (**अरम्**) पर्याप्त फल (**भवति**) होती है, अथवा लोगों की सभा में पर्याप्त सम्मान मिलता है (**उत**) और (**अप-रीषु**) अन्य विरोधी वर्गों में भी (**सखायम्**) मित्र (**कृणुते**) बना लेता है ।

भावार्थः—वह ही दाता है जो अर्थी, अन्न चाहने वाले, घर पर आकर याचना करने वाले, अभाव पीड़ित के लिए देता है । इस दाता को जल और विद्वानों के मध्य पर्याप्त सम्मान मिलता है और वह अन्य विरोधी वर्गों में भी अपना मित्र बना लेता है ॥३॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात्प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत ॥४॥

पदार्थः—(**न**) नहीं है (**सः**) वह (**सखा**) सखा (**यः**) जो (**सचाभुवे**) साथी (**सचमानाय**) सेवा करने के लिए समय पर तत्पर (**सख्ये**) मुसीबत में पड़े मित्र के लिए (**पित्वः**) अन्न आदि आवश्यक वस्तुओं को (**न**) नहीं (**ददाति**) देता है (**अस्मात्**) इस अदाता के पास से (**अप प्र इयात्**) अर्थी मित्र बिना कुछ पाए वापस जाता है तो फिर (**तत्**) वह (**ओकः**) घर (**न**) नहीं (**अस्ति**) है, (**सः**) वह वापस गया अर्थी सखा (**अन्यम्**) दूसरे (**पृणन्तम्**) दाता (**अरणम्**) धन के स्वामी को (**चित्**) भी (**इच्छेत्**) चाह सकता है ।

भावार्थः—वह सखा सखा नहीं है जो साथी, समय पर काम में आने वाले सखा के लिए अन्न आदि आवश्यकता की वस्तुओं को नहीं देता है । यदि उस अदाता के पास से वह अर्थी मुसीबत में पड़ा मित्र वापस जाता है तो वह घर घर नहीं है । वह निराश हुआ मित्र दूसरे दाता धन के स्वामी के पास भी जा सकता है ॥४॥

पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान्द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम् ।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रान्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**तव्यान्**) धन आदि से प्रवृद्ध मनुष्य को (**इत्**) भी चाहिए कि (**नाधमानाय**) याचना करने वाले को (**पृणीयाद्**) धन देवे, (**द्राघीयांसम्**) दीर्घतम (**पन्थाम्**) व्यवहार और सुकृत के मार्ग को (**अनुपश्येत**) देखे, (**ओ हि**) अरे (**रायः**) ये धन तो (**रथ्या चक्रा**) रथ के पहिये के (**इव**) समान (**वर्तन्ते**) होते हैं और (**अन्यम् अन्यम्**) दूसरे से दूसरे के पास (**उपतिष्ठन्ते**) ठहरते हैं।

भावार्थः—धन से बढ़े हुए व्यक्ति को भी चाहिए कि वह याचना करने वाले को धन देवे और व्यवहार तथा परमार्थ के दीर्घतम मार्ग को देखे। अरे !! ये धन तो रथ के पहिये के समान फिरते हैं और एक से दूसरे के पास जाते रहते हैं ॥५॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

पदार्थः—(**अप्रचेताः**) अप्रकृष्टज्ञान (**सः**) वह अदाता धन का स्वामी (**अन्नम्**) अन्न आदि पदार्थों को (**मोघम्**) व्यर्थ (**विन्दते**) प्राप्त करता है, मैं परमेश्वर अथवा विद्वान् (**ब्रवीमि**) कहता हूँ कि (**सत्यम्**) वास्तव में (**तस्य**) उसकी यह (**वधः इत्**) मौत ही है (**न**) न तो वह (**अर्यमणम्**) सत्यवादी विद्वान् का (**पुष्यति**) पोषण करता है (**न**) और न (**सखायम्**) आपत्तिग्रस्त मित्र का पोषण करता है (**केवलादी**) अकेला खाने वाला वह (**केवलाघः**) केवल पाप खाने वाला (**भवति**) होता है।

भावार्थः—आगे पीछे न देखने वाला वह धन का स्वामी अन्न आदि पदार्थों को व्यर्थ ही प्राप्त करता है। मैं परमेश्वर यह उपदेश करता हूं कि वास्तव में यह उसका धन उसकी मौत है। न तो वह विद्वान् को पोषण करता है न मुसीबत में साथी जनों का ही। वह अकेला भोग करने वाला खाने वाला केवल पाप खाने वाला होता है ॥६॥

कृषन्नित्फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चरित्रैः ।
वदन्ब्रह्मावदतो वनीयान्पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥७॥

पदार्थः—(**कृषन् इत्**) कृषि करता अथवा भूमि को गहरा खोदता ही (**फालः**) हल का फाल (**आशितम्**) कृषक को अन्न का भोक्ता (**कृणोति**) करता है (**अध्वानम्**) मार्ग पर (**यन्**) चलता हुआ मनुष्य अपने (**चरित्रैः**) गमन-

Scanned by CamScanner

कार्य से (**अपवृङ्क्ते**) दूर गन्तव्य तक जाता है, (**वदन्**) उपदेश देता (**ब्रह्मा**) ब्राह्मण (**अवदतः**) न उपदेश देने वाले से (**वनीयान्**) श्रेष्ठ होता है (**पृणन्**) दाता (**आपिः**) बन्धु (**अपृणन्तम्**) अदाता को (**अभिस्यात्**) अतिक्रान्त कर जाता है ।

भावार्थः - खेत को गहराई से खोदता हुआ हल का फाल कृषक को अन्न का भोक्ता बनाता है । रास्ते पर चलता हुआ यात्री अपनी चाल से गन्तव्य स्थान को प्राप्त करता है । उपदेष्टा ब्राह्मण अनुपदेष्टा ब्राह्मण की अपेक्षा श्रेष्ठ होता है । दाता बन्धु अदाता को अपने दान-यश से अतिक्रान्त कर बड़ा होता है ॥७॥

एकपाद्भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात्त्रिपादमभ्येति पश्चात् ।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे सम्पश्यन्पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥८॥

पदार्थः —(**एकपाद्**) एक भाग का धनी (**भूयः**) पुनः (**द्विपदः**) दुगुना (**विचक्रमे**) करता है, (**द्विपात्**) द्विगुण वाला (**पश्चात्**) बाद में (**त्रिपादम्**) तीन गुना (**अभि एति**) होता है, (**चतुष्पात्**) चार गुना धनी मनुष्य (**द्विपदाम्**) एक गुना दो गुना वालों के (**पंक्तीः**) क्रम को (**अभिस्वरे**) अभिगमन में (**संपश्यन्**) देखता हुआ (**उपतिष्ठमानः**) जाता हुआ (**एति**) होता है ।

भावार्थः—एक भाग वाला मनुष्य जल्दी द्विगुण धन वाला होना चाहता है । द्विगुण फिर त्रिगुण धन का स्वामी होना चाहता है । चौगुना धन वाला इन एक गुना दुगुना धनों वालों के क्रम और कार्यकलाप को देखता हुआ इनके इस अभिवृद्धि वाले मार्ग पर आगे बढ़ता है ॥८॥

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः सम्मातरा चिन्न समं दुहाते ।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित्सन्तौ न समं पृणीतः ॥९॥

पदार्थः - (**समौ चित्**) समान होते हुए भी (**हस्तौ**) दोनों हाथ (**समम्**) समान कार्य (**न**) नहीं (**विविष्टः**) करते हैं । (**संमातरा**) एक माता द्वारा उत्पन्न की दो गायें (**चित्**) भी (**समम्**) समान दूध (**न**) नहीं (**दुहाते**) देती हैं, (**यमयोः**) युगल बच्चों का (**चित्**) भी (**समा**) बराबर (**वीर्याणि**) बल (**न**) नहीं होता है, (**ज्ञाती**) समान परिवार के (**सन्तौ**) होते हुए (**चित्**) भी दो व्यक्ति (**समम्**) समान (**न**) नहीं (**पृणीतः**) दान करते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—दो हाथ समान होते हुए भी समान कार्यशक्ति वाले नहीं। एक ही गाय की दो बछियायें समान दूध नहीं देती हैं। दो जोड़ुवा बच्चों का बल बराबर नहीं होता है। एक ही परिवार के दो व्यक्तियों में समान दानशक्ति नहीं होती है ॥९॥

यह दशम मण्डल में एक सौ सतरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—११८

ऋषिः—१—९ उरुक्षय आमहीयवः ॥ **देवताः**—अग्नी रक्षोहा ॥ **छन्दः**—१ पिपीलिकामध्यागायत्री। २, ५ निचृद्गायत्री। ३, ८, विराड्गायत्री। ६, ७, पादनिचृद्गायत्री। ४, ९ गायत्री ॥
स्वरः—षड्जः ॥

अग्ने हंसि न्य१त्रिणं दीद्यन्मर्त्येष्वा ।
स्वे क्षये शुचिव्रत ॥१॥

पदार्थः—(**शुचिव्रतः**) शुद्धि कर्म वाला, (**अग्ने**) यह अग्नि (**स्वे**) अपने (**क्षये**) स्थान = यज्ञ वेदी में (**मर्त्तेषु**) मनुष्यों में (**आ दीद्यत्**) प्रकाशमान हुआ (**अत्रिणम्**) प्राणियों के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को (**निहंसि**) मारता है।

भावार्थः—धातु आदि को शुद्ध करने के कर्मों वाला यह अग्नि यज्ञ वेदी और मनुष्यों के शरीरों में प्रकाशमान हुआ समस्त प्राणियों के शरीर को खा जाने वाले रोगाणुओं को मारता हैं ॥१॥

उत्तिष्ठसि स्वाहुतो घृतानि प्रति मोदसे ।
यत्त्वा स्रुचः समस्थिरन् ॥२॥

पदार्थः—यह अग्नि (**स्वाहुतः**) अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ (**उत्तिष्ठसि**) उठता=बढ़ता है (**घृतानि**) घृतों के प्रति (**मोदसे**) प्रसन्न होता है (**यत्**) जब (**त्वा**) इस अग्नि को (**स्रुचः**) जुहू आदि पात्र (**समस्थिरन्**) संगम होते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जब जुहू आदि यज्ञपात्र आदि अच्छी प्रकार संगत होते हैं तब अच्छी प्रकार हवि आदि से युक्त किया हुआ यह अग्नि बढ़ता है और घृतों आदि से और भी प्रज्वलित होता है ॥२॥

स आहुतो वि रोचतेऽग्निरीळेन्यो गिरा ।
स्रुचा प्रतीकमज्यते ॥३॥

पदार्थः—(**आहुतः**) हवि से युक्त, (**गिरा**) मन्त्रमयी वाणी द्वारा (**ईडेन्यः**) प्रशंसनीय (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**विरोचते**) अति दीप्त होता है, (**स्रुचा**) स्रुवा से (**प्रतीकम्**) सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही (**अज्यते**) घृत से सिक्त किया जाता है ।

भावार्थः—हवि आदि से युक्त और वेदवाणी से प्रशंसनीय वह अग्नि विशेष दीप्त होता है और सभी यज्ञ देवों से पूर्व ही स्रुवा द्वारा घी से सिक्त किया जाता है ॥३॥

घृतेनाग्निः समज्यते मधुप्रतीक आहुतः ।
रोचमानो विभावसुः ॥४॥

पदार्थः—(**मधुप्रतीकः**) घृत मिश्रित मधुर पदार्थों से सिक्त (**आहुतः**) प्रशंसा किया गया, (**विभावसुः**) अपने प्रकाश से सब को आच्छादित करने वाला (**रोचमानः**) प्रकाशमान (**अग्निः**) अग्नि (**घृतेन**) घी और घी सहित हवि से (**समज्यते**) भली प्रकार सिक्त होता है ।

भावार्थः—मधुर पदार्थों से सिक्त, प्रशंसित, प्रकाशमान अग्नि घी और घी मिले हवि आदि से भली प्रकार सिक्त किया जाता है ॥४॥

जरमाणः समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
तं त्वा हवन्त मर्त्याः ॥५॥

पदार्थः—(**हव्यवाहनः**) हवि को देवों तक पहुंचाने वाला (**जरमाणः**) स्तुतियों से भी युक्त किया गया अग्नि (**देवेभ्यः**) देवों के लिए (**समिध्यसे**) प्रज्वलित किया जाता है, (**मर्त्याः**) मनुष्य यजमान (**तम् त्वा**) इस उस अग्नि की (**हवन्त**) प्रशंसा करते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हवि का देवों तक वाहक, स्तुतियों से गुणगान किया गया यह अग्नि देवों को हवि आदि पहुँचाने के लिए प्रज्वलित किया जाता है। हम सब मनुष्य यजमान भी इस अग्नि की प्रशंसा करते हैं ॥५॥

तं मर्ता अमर्त्यं घृतेनाग्निं संपर्यत ।

अदाभ्यं गृहपतिम् ॥६॥

पदार्थः—(**अदाभ्यम्**) अधर्षणीय, (**गृहपतिम्**) घर में पालित (**अमर्त्यम्**) मरणधर्म रहित (**तम्**) उस (**अग्निम्**) अग्नि को (**मर्ताः**) ऋत्विग्जन (**घृतेन**) घृत से (**सपर्यत**) सेवित करते हैं।

भावार्थः—अधर्षणीय, गृह में रक्षित, मरण धर्म रहित अग्नि की ऋत्विग् लोग घृत और सामग्री से सेवा करते हैं ॥६॥

अदाभ्येन शोचिषाग्ने रक्षस्त्वं दह ।

गोपा ऋतस्य दीदिहि ॥७॥

पदार्थ—(**अग्ने त्वम्**) यह अग्नि (**अदाभ्येन**) अदभ्य (**शोचिषा**) तेज से (**रक्षः**) रोगोत्पादक कृमि कीटों को (**दह**) जलाता है, (**ऋतस्य**) यज्ञ का (**गोपाः**) रक्षक यह (**दीदिहि**) दीप्त होता है।

भावार्थः – यह अग्नि अदभ्य तेज से रोगकारी कृमि कीटों को जलाता है, यज्ञ का रक्षक वह दीप्त होता है ॥७॥

स त्वमग्ने प्रतीकेन प्रत्योष यातुधान्यः ।

उरुक्षयेषु दीद्यत् ॥८॥

पदार्थः—(**सः**) वह (**त्वम्**) यह (**अग्ने**) अग्नि (**प्रतीकेन**) अपने तेज से (**यातुधान्यः**) रोगकारी कीटाणुओं और कीड़े मकोड़ों की मादा जातियों को (**प्रति ओष**) जलाता है (**उरुक्षयेषु**) बहुत बड़ी यज्ञ वेदियों में (**दीद्यत्**) दीप्तिमान होता हुआ।

भावार्थः—बड़ी-बड़ी आहवनीय आदि यज्ञ वेदियों में दीप्त होता हुआ यह अग्नि रोगकारक कीड़ों-मकोड़ों की मादा जाति को भी जलाता है ॥८॥

Scanned by CamScanner

तं त्वा गीर्भिरुरुक्षया हव्यवाहं समीधिरे ।

यजिष्ठं मानुषे जने ॥९॥

पदार्थः—(**उरुक्षयाः**) विस्तृत निवास वाले यजमान लोग (**हव्यवाहम्**) हवि के वाहक, (**मानुषे**) मनुष्य सम्बन्धी (**जने**) संघ में (**यजिष्ठम्**) अति यज्ञार्ह (**तम् त्वा**) उस इस अग्नि को (**गीर्भिः**) वेद मन्त्रों के साथ (**सम् ईधिरे**) प्रज्वलित करते हैं ।

भावार्थः—विस्तृत निवास वाले यजमान लोग हवि के वाहक मनुष्यों में अत्यन्त यजनीय इस अग्नि को वेद मन्त्रों के साथ घृत हवि आदि से प्रज्वलित करते हैं ॥९॥

यह दशम मण्डल में एक सौ अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त ११९

ऋषिः—१—१३ लब ऐन्द्रः ॥ **देवता**—आत्मस्तुतिः ॥ **छन्दः**—१—५, ७—१० गायत्री । ६, १२, १३ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री ॥ **स्वरः**—षड्जः ॥

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥१॥

पदार्थः—(**इति वै इति**) ऐसा ही और इस प्रकार से (**मे**) मुझ राजा का (**मनः**) मन होता है कि यज्ञ करने वालों को (**गाम्**) गौ (**अश्वम्**) अश्व (**सनुयाम्**) प्रदान करूं (**इति**) इसीलिए (**कुवित्**) सदा (**सोमस्य**) सोमलता आदि ओषधियों का (**अपाम् इति**) पान करता हूँ ।

भावार्थः—ऐसा ही, और इस प्रकार मुझ राजा का मन होता है कि मैं यज्ञ करने वालों को गाय और घोड़े प्रदान करूँ, इसलिए सदा गिलोय आदि ओषधियों के रस का पान करता हूं ॥१॥

प्र वाताइव दोधत उन्मा पीता अयंसत ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**दोधतः**) कम्पायमान (**वाता इव**) वायुओं के समान (**पीताः**) पिए गए (**सोमाः**) गिलोय आदि का रस (**मा**) मुझ को (**प्र**) प्रकर्षेण (**उत्-अयंसत**) उद्यमशील बनाते हैं इस लिए मैं सदा सोम आदि लताओं के रसों का पान करता हूं ।

भावार्थः—कम्पायमान वायु के समान ये पिये गये गिलोय आदि ओषधियों के रस मुझे उद्यमी बनाते हैं इस लिए मैं इस रस का पान करता हूं ॥२॥

उन्मा पीता अयंसत रथमश्वा इवाशवः ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥३॥

पदार्थः—(**रथम्**) रथ को (**आशवः**) आशुगामी (**अश्वाः इव**) अश्वों की भांति (**पीताः**) पिए गए सोमलता के रस (**मा**) मुझे (**उद् अयंसत**) उद्यमी और गतिशील बनाते हैं इसलिए मैं सदा सोमरस का पान करता हूँ ।

भावार्थः—जिस प्रकार आशुगामी घोड़े रथ को ले जाते हैं उसी प्रकार पिया गया सोमरस मुझे उद्यमी और क्रियाशील बनाता है इसलिए मैं सोमलता आदि औषधियों के रस का पान करता हूं ॥३॥

उप मा मतिरस्थित वाश्रा पुत्रमिव प्रियम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥४॥

पदार्थः—(**इव**) जिस प्रकार (**वाश्रा**) शब्द करती हुई गौ (**प्रियम्**) प्रिय (**पुत्रम्**) वत्स को प्राप्त होती है इसी प्रकार (**मतिः**) बुद्धि (**मा**) मुझे (**उप अस्थित**) उपस्थित रहती है इस लिए मैं सदा सोम का पान करता हूँ ।

भावार्थः—जिस प्रकार शब्द करती हुई धेनु अपने प्यारे बछड़े को प्राप्त होती है उसी प्रकार बुद्धि मुझ से संयुक्त रहती है । इसीलिए मैं सोम ओषधि का पान करता हूं ॥४॥

अहं तष्टेव बन्धुरं पर्यचामि हृदा मतिम् ।

कुवित्सोमस्यापामिति ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**बन्धुरम्**) रथ को (**तष्टा इव**) शिल्पी की भांति (**अहम्**) मैं राजा (**हृदा**) हृदय से (**मतिम्**) बुद्धि को (**पर्यचामि**) प्राप्त करता हूँ, इस लिए मैं सदा सोमलता आदि ओषधियों के रस का पान करता हूँ ।

भावार्थः—जिस प्रकार शिल्पी उत्तम रथ को बनाता है उसी प्रकार मैं राजा हृदय के साथ बुद्धि को संगत करता हूँ । इस लिए मैं सदा सोम-रस का पान करता हूं ॥५॥

नहि मे अक्षिपच्चनाच्छान्त्सुः पञ्च कृष्टयः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥६॥

पदार्थ—(**पंच कृष्टयः**) चार वर्ण और पाँचवा अवर्ण इस प्रकार पांच प्रकार के मनुष्य (**मे**) मेरे (**अक्षिपत् चन**) दृष्टिपात को (**नहि**) नहीं (**अच्छान्त्सुः**) छिपाते हैं अतः मैं सोमरस का पान करता हूँ ।

भावार्थः- पांच प्रकार के मनुष्य मेरी दृष्टि से ओझल नहीं होते और सदा मेरे नियन्त्रण में रहते हैं अतः मैं सोमरस का पान करता हूं ॥६॥

नहि मे रोदसी उभे अन्यं पक्षं चन प्रति ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥७॥

पदार्थः—(**उभे**) दोनों (**रोदसी चन**) द्यु और पृथिवी भी (**मे**) मेरे (**अन्यम्**) दूसरे (**पक्षम्**) बाजू के (**प्रति**) प्रति समान नहीं है अतः मैं सोमरस का पान करता हूँ ।

भावार्थः—दोनों द्यु और पृथिवी लोक भी मेरे बाजू के समान नहीं है अतः मैं सोमरस का पान करता हूं ॥७॥

अभि द्यां महिना भुवमभी३मां पृथिवीं महीम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥८॥

पदार्थः—मैं (**महिना**) अपने प्रभाव से (**द्याम्**) द्युलोक को (**अभि-भुवम्**) अभिभूत करता हूं तथा (**महीम्**) महती (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) पृथिवी को (**अभि**) अभिभूत करता हूं, इसलिए मैं सोम=गिलोय आदि ओषधियों के रस का पान करता हूँ ।

भावार्थः—मैं अपने प्रभाव से द्युलोक और इस महती पृथिवी को अभिभूत करता हूँ। इसलिए मैं सोम के रस का पान करता हूं ॥८॥

हन्ताहं पृथिवीमिमां नि दधानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥९॥

पदार्थः - (**हन्त**) संभवतः (**अहम्**) मैं (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) भूमि को (**इह वा**) इस अन्तरिक्ष में (**इह वा**) इस द्युलोक में (**निदधानि**) स्थापित कर दूं अतः मैं सोमरस का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं इस भूमि को अन्तरिक्ष अथवा द्यु लोक में उठाकर रख सकता हूँ अतः मैं सोमरस का पान करता हूं ॥९॥

ओषमित्पृथिवीमहं जङ्घनानीह वेह वा ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१०॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**पृथिवीम्**) इस पृथिवी को (**ओषम् इत्**) तापमान-युक्त कर सकता हूं और (**इह वा**) यहां (**इह वा**) वहां कहीं भी (**जङ्घनानि**) ले जा सकता हूँ। अतः सोम का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं इस पृथिवी को तापमान युक्त कर सकता हूं और इधर-उधर कहीं भी ले जा सकता हूं। इस लिए सोमरस का पान करता हूं ॥१०॥

दिवि मे अन्यः पक्षो३धो अन्यमचीकृषम् ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥११॥

पदार्थः - (**दिवि**) आकाश में (**मे**) मेरा (**अन्यः**) एक (**पक्षः**) बाजू हैं और (**अन्यम्**) दूसरे बाजू को (**अधः**) नीचे अर्थात् भूमि पर (**अचीकृषम्**) खींचता हूँ, इस लिए मैं सोम का पान करता हूँ।

भावार्थः—मैं अपने एक बाजू को आकाश में और दूसरे को पृथिवी पर रखता हूं। इसी लिये मैं सोमरस का पान करता हूं ॥११॥

अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१२॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**नभ्यम् अभि**) अन्तरिक्ष में (**उदीषितः**) उदित (**महामहः**) तेजों का तेज सूर्य (**अस्मि**) हूँ, इस लिए मैं सोमरस का पान करता हूं ।

भावार्थः—मैं आकाश में उदित महातेजस्क सूर्य हूं । इस लिए सोम रस का पान करता हूं ॥१२॥

गृहो याम्यरंकृतो देवेभ्यो हव्यवाहनः ।
कुवित्सोमस्यापामिति ॥१३॥

पदार्थः—(**गृहः**) हवि का गृहीता (**अरंकृतः**) अलंकृत (**देवेभ्यः**) देवों के लिए हवि का वाहक अग्नि भूत मैं (**यामि**) व्यवहार करता हूं ।

भावार्थः—हवि का गृहीता अलंकृत और देवों के लिये हवि का वाहक अग्नि रूप मैं समस्त व्यवहारों को प्राप्त होता हूं ॥१३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२०

ऋषिः—१—९ बृहद्दिव आथर्वणः ॥ देवता - इन्द्रः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । । २, ३, ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५, ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ७, ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेषनृम्णः ।
सद्यो जज्ञानो नि रिणाति शत्रूननु यं विश्वे मदन्त्यूमाः ॥१॥

पदार्थः—(**तत् इत्**) वह ब्रह्म ही (**भुवनेषु**) भुवनों में (**ज्येष्ठम्**) ज्येष्ठ और श्रेष्ठ (**आस**) है (**यतः**) जिसकी निमित्तकारणता से (**उग्रः**) प्रचण्ड (**त्वेषनृम्णः**) प्रदीपन बल वाला इन्द्र=सूर्य (**जज्ञे**) उत्पन्न होता है, (**सद्यः**) तत्काल (**जज्ञानः**) उत्पन्न हुआ वह (**शत्रून्**) शत्रुभूत मेघ तथा आवरण आदि को (**नि रिणाति**) नष्ट करता है (**विश्वे**) समस्त (**ऊमाः**) मनुष्य तथा रक्षक बल (**यम्**) जिसको (**अनु**) लक्ष्य में रखकर (**मदन्ति**) प्रसन्न होते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—समस्त भुवनों में देश, काल और शक्ति में ज्येष्ठ एवम् श्रेष्ठ वह परमेश्वर ही है। उसी की निमित्तता से यह प्रचण्ड प्रदीप्त सामर्थ्य वाला सूर्य उत्पन्न होता है। वह सूर्य अपने उत्पत्तिकाल से ही मेघ तथा अन्य आवरण आदि विरोधी बलों को क्षीण करता है। उसी को रखकर सभी मनुष्य और रक्षक बल प्रसन्न होते हैं ॥१॥

वावृधानः शवसा भूर्योजाः शत्रुर्दासाय भियसं दधाति ।
अव्यनच्च व्यनच्च सस्नि सं ते नवन्त प्रभृता मदेषु ॥२॥

पदार्थः—(**शवसा**) बल से (**ववृधानः**) बढ़ता हुआ (**भूर्योजाः**) प्रभूत बल, (**शत्रुः**) शातन करने वाला इन्द्र=सूर्य (**दासाय**) मेघ के लिए (**भियसम्**) भय को (**दधाति**) उत्पन्न करता है, (**अव्यनत्**) प्राणवत् जङ्गम जगत् (**च**) और (**व्यनत् च**) स्थावर भी (**सस्नि**) सूर्य द्वारा शोधित होता है, (**ते**) इसके (**मदेषु**) हर्षों में (**प्रभृताः**) पोषित (**सम् नवन्त**) संगत होते हैं।

भावार्थः—बल से प्रवर्धमान प्रभूतबल, छेदक सूर्य मेघ के लिए भय उत्पन्न करता है। जङ्गम और स्थावर जगत् उसी से शोधित होते हैं। उसी के हर्षकारी प्रभावों में सब संगत होते हैं ॥२॥

त्वे क्रतुमपि वृञ्जन्ति विश्वे द्विर्यदेते त्रिर्भवन्त्यूमाः ।
स्वादोः स्वादीयः स्वादुना सृजा समदः सु मधु मधुनाभि योधीः ॥३॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर! (**विश्वे**) सब (**त्वे**) तेरी आज्ञा पालन में (**क्रतुम् अपि**) यज्ञ आदि कर्मों को भी (**वृञ्जन्ति**) करते हैं (**यत्**) जिससे (**एते**) ये (**ऊमाः**) यजमान लोग पुत्र द्वारा (**द्विः**) दुगुने और पौत्र द्वारा (**त्रिः**) तिगुने (**भवन्ति**) होते हैं, (**स्वादोः**) स्वादु से भी (**स्वादीयः**) अधिक स्वादु वस्तु को (**स्वादुना**) स्वादु कारण से (**सृज**) उत्पन्न कर और (**मधुना**) मधुर से (**मधु**) मधुर को (**सु अभि योधीः**) भली प्रकार संगत कर।

भावार्थः—हे प्रभो! सब तेरी आज्ञा पालन में यज्ञ आदि कर्मों को करते हैं। जिससे ये यजमान लोग पुत्र और पौत्र आदि से दुगुने-तिगुने होते हैं। प्रभो आप स्वादु से स्वादु वस्तु को स्वादु कारण से, मधुर को मधुर से संगत करो ॥३॥

Scanned by CamScanner

इति चिद्धि त्वा धना जयन्तं मदेमदे अनुमदन्ति विप्राः ।
ओजीयो धृष्णो स्थिरमा तनुष्व मा त्वा दभन्यातुधाना दुरेवाः ॥४॥

पदार्थः—(**इति चित् हि**) इस प्रकार हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**धना**) समस्त धनों को (**जयन्तम्**) अधिकार में रखने वाले (**त्वा**) तेरी (**विप्राः**) मेधावी लोग (**मदे मदे**) सभी हर्ष के अवसरों पर (**अनु मदन्ति**) स्तुति करते हैं (**धृष्णो**) हे समस्त बलों को अभिभूत करने वाले ! (**ओजीयः**) ओजस्वी तू (**स्थिरम्**) दृढ़ स्थिर धन को हम लोगों के लिए (**आतनुष्व**) विस्तृत कर, (**दुरेवाः**) दुःखदायक (**यातुधानाः**) बाधक शक्तियें (**त्वा**) तुझे (**मा**) नहीं (**दभन्**) दवा सकती हैं ।

भावार्थः—इस प्रकार हे परमेश्वर समस्त धनों के स्वामी! तुझ प्रभु की मेधावीजन सभी हर्ष के समयों में स्तुति करते हैं। हे समस्त बलों को अभिभूत करने वाले ओजस्वी ! तू हमें दृढ एवम् स्थायी धन दे, दुःखदायी बाधक शक्तियें तुझे नहीं दबा सकती हैं ॥४॥

त्वया वयं शाशद्महे रणेषु प्रपश्यन्तो युधेन्यानि भूरि ।
चोदयामि त आयुधा वचोभिः सं ते शिशामि ब्रह्मणा वयांसि ॥५॥

पदार्थः हे भगवन् ! (**युधेन्यानि**) युद्ध के योग्य (**भूरि**) प्रभूत बलों को (**प्रपश्यन्तः**) जानते हुए (**त्वया**) तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत (**वयम्**) हम (**रणेषु**) संग्रामों में (**शाशद्महे**) शत्रुओं का कर्तन करते हैं, (**ते**) आपके (**आयुधा**) वज्र आदि आयुध की (**वचोभिः**) स्तुतियों से (**चोदयामि**) प्रशंसा करता हूं, (**ब्रह्मणा**) वेद मन्त्र से (**वयांसि**) यज्ञ आदि के लिये अन्न को (**सं शिशामि**) भली प्रकार संस्कृत करता हूँ ।

भावार्थः—हे भगवन् ! युद्ध करने योग्य प्रभूत बलों को भली-भांति जानते हुए तुम्हारे द्वारा अनुगृहीत हम संग्रामों में शत्रुओं का कर्त्तन करते हैं। आप के वज्र आदि आयुधों की हम स्तुतियों से प्रशंसा करते हैं और यज्ञ आदि के लिए अन्न का और हवि का संस्कार करते हैं ॥५॥

स्तुषेय्यं पुरुवर्पसमृभ्वमिनतममाप्त्यमाप्त्यानाम् ।
आ दर्षते शवसा सप्त दानून्प्र साक्षते प्रतिमानानि भूरि ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**स्तुषेय्यम्**) स्तोतव्य, (**पुरुवर्पसम्**) संसार के बहुत से रूपों से युक्त, (**ऋभ्वम्**) व्यापक (**इनतमम्**) ईश्वरतम (**आप्त्यानाम्**) आप्त्यों में परम (**आप्त्यम्**) आप्त परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं, (**यः**) जो (**शवसा**) अपने अधीनस्थ सूर्य आदि तेजों द्वारा (**सप्त**) सात (**दानून्**) नमुचि, कुवय आदि मेघों को (**आदर्षते**) विदीर्ण करता है और उनके (**भूरि**) बहुत से (**प्रतिमानानि**) बलों को (**प्र साक्षते**) क्षीण कराता है।

भावार्थः—स्तोतव्य, संसार के समस्त रूपों से युक्त, व्यापक ईश्वरतम और आप्तों में भी परम आप्त परमेश्वर की हम स्तुति करते हैं। जो प्रभु अपने अधीनस्थ सूर्य आदि बलों द्वारा नमुचि, कुवय आदि सात मेघों को विदीर्ण कराता और उसके प्रभूत बलों को क्षीण कराता है ॥६॥

नि तद्द॑धिषेऽव॑रं परं॑ च यस्मि॒न्नावि॒थाव॑सा दुरो॒णे ।
आ मा॒तरा॑ स्थापयसे जिग॒त्नू अत॑ इनोषि॒ कर्व॑रा पु॒रूणि॑ ॥७॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**अवरम्**) समीप वाले (**च**) और (**परम्**) दूर वाले (**तत्**) इस जगत् का (**नि दधिषे**) धारण करता है (**दुरोणे**) गृहरूप (**यस्मिन्**) जिसमें (**अवसा**) अपने रक्षण में सब पदार्थों की आप (**अविथ**) रक्षा करते हैं, (**मातरा**) सब की मातारूप द्यु और पृथिवी को जो (**जिगत्नू**) गमनशील हैं **आ स्थापयसे**) सर्व प्रकार से स्थापित करता है (**अतः**) तू इसलिए (**पुरूणि**) प्रभूत (**कर्वरा**) कर्मों को (**इनोषि**) अभिव्याप्त करता है अर्थात् संपादित करता है।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! तू समीप और दूर तक फैले हुए इस जगत् को धारण करता है। गृहरूप जिस जगत् में विद्यमान समस्त प्राणियों और पदार्थों की आप अपनी रक्षणशक्ति से रक्षा करते हैं। आप गमनशील द्यु और पृथिवी को स्थापित करते हैं। इसलिए आप अत्यधिक कर्मों को करते हैं ॥७॥

इ॒मा ब्रह्म॑ बृ॒हद्दि॑वो विवक्ती॒न्द्रा॑य शू॒षम॑ग्रि॒यः स्व॒र्षाः ।
म॒हो गो॒त्रस्य॑ क्षयति स्व॒राजो॒ दुर॑श्च॒ विश्वा॑ अवृणो॒दप॒ स्वाः ॥८॥

पदार्थ—(**स्वर्षाः**) अत्यन्त ज्ञान प्रकाश वाला (**अग्रियः**) विद्वानों का अग्रणी (**बृहद्दिवः**) महाज्ञानी (**इन्द्राय**) परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये

Scanned by CamScanner

(शूषम्) अपने को सुखकर लगे ऐसे प्रकार से (इमा) इस (ब्रह्म) वेद मन्त्रों से युक्त स्तुतियों को (विवक्ति) करता है, (स्वराजः) ज्ञान से स्वयं राजमान (महः) महती (गोत्रस्य) वेदवाणी का (क्षयति) स्वामी होता है (विश्वाः) समस्त (स्वाः) स्वभूत (दुरः) द्वारों को अर्थात् ज्ञान प्राप्ति के माध्यमों को (अपावृणोत्) खोल देता है ।

भावार्थः—अत्यन्त ज्ञान प्रकाश वाला, विद्वानों का अग्रणी महा ज्ञानी परमेश्वर के लिए अपने को आनन्दित करे—ऐसे प्रकार से वेदमन्त्रों की स्तुति को बोलता है। ज्ञान से स्वयं दीप्त महती वेदवाणी का वह परमेश्वर स्वामी है। वह अपनी प्राप्ति के समस्त माध्यमों को ज्ञानी उपासक के लिए खोल देता है ॥८॥

एवा महान्बृहद्दिवो अथर्वावोचत्स्वां तन्वमिन्द्रमेव ।
स्वसारो मातरिभ्वरीररिप्रा हिन्वन्ति च शवसा वर्धयन्ति च ॥९॥

पदार्थः—(एव) इस प्रकार (महान्) महान् (अथर्वा) स्थिरमति (बृहद्दिवः) महा ज्ञानी (इन्द्रम्) भगवान् के प्रति (एव) ही (स्वाम्) अपनी (तन्वम्) विस्तृत स्तुति को (अवोचत्) बोलता है (च) और (अरिप्राः) निर्दुष्ट (मातरिश्वरीः) निर्मात्री (स्वसारः) स्वयम् सरणशील (शवसा) बल से (हिन्वन्ति) जगत् को प्रसन्न करती हैं (च) और (वर्धयन्ति) बढ़ाती हैं ।

भावार्थः—इस प्रकार महान् स्थिरमति महाज्ञानी विद्वान् भगवान् के प्रति अपनी विस्तृत स्तुति को बोलता है और निर्दुष्ट निर्मात्री एवम् पालनकर्त्री स्वयं सरणवती शक्तियां भगवान् के द्वारा दिए गए बल से जगत् को प्रसन्न करती हैं और बढ़ाती है ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२१

ऋषिः—१—१० हिरण्यगर्भः प्राजापत्यः ॥ देवता—कः ॥ छन्दः—१, ३, ६, ८, ९ त्रिष्टुप् । २, ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, १० विराट्त्रिष्टुप् । ७ स्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

Scanned by CamScanner

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) सृष्टि की प्रागवस्था में (**हिरण्यगर्भः**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (**समवर्तत**) विद्यमान रहता है, (**जातः**) प्रसिद्ध अथवा जनक वह (**भूतस्य**) उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् का (**एकः**) एक मात्र (**पतिः**) स्वामी (**आसीत्**) होता है (**सः**) वह (**इमाम्**) इस (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**उत**) और (**द्याम्**) द्युलोक को (**दाधार**) धारण करता है (**कस्मै**) सुखस्वरूप उस (**देवाय**) देव के लिए हम (**हविषा**) श्रद्धा और भक्ति विशेष से (**विधेम**) उपासना करें ।

भावार्थः—पहले स्व प्रकाश स्वरूप परमेश्वर विद्यमान रहता है। अत्यन्त प्रसिद्ध अथवा सबका जनक वह समस्त उत्पन्न जगत् का एक मात्र स्वामी है। वह इस पृथिवी और द्युलोक का धारण करता है। उस सुख-स्वरूप देव=परमेश्वर की हम श्रद्धा भक्ति से उपासना करें ॥१॥

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्य च्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

पदार्थ—(**यः**) जो परमेश्वर (**आत्मदा**) आत्मज्ञान का दाता, (**बलदा**) भौतिक और आध्यात्मिक बलों का दाता है, (**यस्य**) जिसकी (**विश्वे**) सभी (**उपासते**) उपासना करते हैं (**यस्य**) जिसके (**प्रशिषम्**) प्रकृष्ट शासन तथा आज्ञा को (**देवाः**) समस्त प्राकृतिक शक्तियां और विद्वज्जन (**उपासते**) स्वीकार करते हैं (**यस्य**) जिसकी (**छाया**)कृपा की छाया (**अमृतम्**) अमरत्वमय है और जिसका न मानना ही (**मृत्युः**) मृत्यु है, उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) देव के लिए हम सदा (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से (**विधेम**) उपासना करें।

भावार्थः—जो परमेश्वर आत्मज्ञान का दाता भौतिक आत्मिक बलों का देने हारा है, जिसकी सब उपासना करते हैं और जिसके शासन एवम् आज्ञा को समस्त प्राकृतिक दैवी शक्तियां और विद्वज्जन स्वीकार करते हैं, जिसकी कृपादृष्टि में अमरत्व है और जिसका न मानना ही मृत्यु है उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करते हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**प्राणतः**) श्वास लेने वाले, (**निमिषतः**) आंख झपकने वाले अथवा अजीवित (**जगतः**) जगत् का (**महित्वा**) अपनी सामर्थ्य से (**एकः इव**) एक ही (**राजा**) राजा (**बभूव**) होता है (**यः**) जो (**अस्य**) इस (**द्विपदः**) दो पैरों वाले मनुष्य आदि तथा (**चतुष्पदः**) पशु आदि प्राणियों का (**ईशे**) स्वामी है उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) परमेश्वर के लिए हम (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से (**विधेम**) उपासना करते हैं ।

भावार्थः—जो अपने सामर्थ्य से प्राणवान्, अप्राणवान् जगत् का एक मात्र राजा है । जो दो पैरों वाले मनुष्यादि एवम् चार पैरों वाले पशु आदि प्राणियों का स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रं रसया सहाहुः ।
यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

पदार्थः—(**हिमवन्तः**) हिम से ढके पर्वत तथा दूसरे पहाड़ भी (**यस्य**) जिसकी (**महित्वा**) महिमा को (**आहुः**) कहते हैं (**रसया सह**) नदियों के सहित (**समुद्रम्**) सभी समुद्र (**यस्य**) जिसकी (**महित्वा**) महिमा को (**आहुः**) कहते हैं (**यस्य**) जिसकी (**इमा**) ये (**प्रदिशः**) प्रदिशायें (**यस्य**) जिसके (**बाहू**) बाहुयें हैं उस (**कस्मै**) सुखस्वरूप (**देवाय**) देव परमेश्वर के लिए (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से (**विधेम**) उपासना करें ।

भावार्थः—जिसकी महिमा को बनाते हैं ये हिमाच्छादित और दूसरे प्रकार के पर्वत तथा नदियों सहित ये समुद्र । जिसकी ये प्रदिशायें उसके बाहुओं के समान हैं । उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळ्हा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

पदार्थः—(**येन**) जिससे (**उग्राः**) प्रचण्ड (**द्यौः**) द्युलोक (**च**) और

Scanned by CamScanner

(**पृथिवी**) पृथिवी (**दृढ़ा**) दृढ़ किए गए हैं (**येन**) जिससे (**स्वः**) अन्तरिक्ष (**स्तभितम्**) धारित है (**येन**) जिससे (**नाकः**) आदित्य आदि प्रकाशमान लोक स्थापित हैं, (**यः**) जो (**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में (**रजसः**) धूलि कणों के समान लोकों का (**विमानः**) बनाने वाला है अथवा जो अन्तरिक्ष में जल की बूंदों का बनाने वाला है, (**कस्मै**) उस सुखस्वरूप (**देवाय**) देव परमेश्वर की हम (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना (**विधेम**) करें।

भावार्थः—जिसके द्वारा प्रचण्ड द्युलोक और पृथिवी दृढ़ किए गये हैं, जिसके द्वारा अन्तरिक्ष और प्रकाशमान लोक स्थापित हैं, जो आकाश में धूलिकणों के समान लोकों का अथवा जल की बूंदों का बनाने वाला है उस सुखस्वरूप परमेश्वर देव की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥५॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ।
यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥६॥

पदार्थः—(**अवसा**) रक्षण से (**तस्तभाने**) धारित (**रेजमाने**) दीप्तिमान (**क्रन्दसी**) द्यु और पृथिवी (**मनसा**) अपने प्रकट बल से (**यम्**) जिसको (**अभ्यैक्षेताम्**) प्रकट करते हैं (**यत्र अधि**) जिसके अधिनियम में (**उदितः**) उदित हुआ (**सूरः**) सूर्य (**विभाति**) प्रकाशमान होता है (**कस्मै**) उस सुख स्वरूप (**देवाय**) देव के लिए (**हविषा**) श्रद्धा और विशेष भक्ति से हम (**विधेम**) उपासना करें।

भावार्थ—जिसके रक्षण से धारित, दीप्तिमान द्युलोक और पृथिवी अपने प्रकट बल से जिसको प्रकट करते हैं, जिसके अधिनियम में उदय को प्राप्त सूर्य चमकता है उस सुख स्वरूप=देव परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से सदा उपासना करें ॥६॥

आपो ह यद् बृहतीर्विश्वमायन्गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ।
ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥७॥

पदार्थः—(**यत्**) जिससे (**बृहती**) महान् (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनयन्तीः**) प्रकट करने वाले (**गर्भम्**) हिरण्मयाण्ड को (**दधानाः**) धारण करते हुए (**आपः**) प्रकृति परमाणु (**विश्वम्**) समस्त जगत् को (**आयन्**) प्राप्त करते

Scanned by CamScanner

हैं (ततः) इसलिए (देवानाम्) देवादिकों और प्राणियों का (असुः) प्राणभूत (एकः) एक परमेश्वर (समवर्तत) विद्यमान रहता है उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) देव की हम (हविषा) श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना (विधेम) सदा किया करें।

भावार्थः—यतः महान् अग्नि को प्रकट करने वाले, हिरण्यमय अण्ड को धारण करते हुए प्रकृति परमाणु समस्त जगत् को अपने से प्राप्त करते हैं इस लिये देव आदि को और प्राणियों का प्राणभूत एक परमेश्वर विद्यमान रहता है। उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें ॥७॥

यश्चिदापो महिना पर्यपश्यद्दक्षं दधाना जनयन्तीर्यज्ञम् ।
यो देवेष्वधि देव एक आसीत्कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥८॥

पदार्थः—(यः चित्) जो (यज्ञम्) समस्त विकृति समूह (जगत्) जगत् को (जनयन्तीः) प्रकट करते हुए (दक्षम्) अग्निताप को धारण करते हुए (आपः) प्रकृति परमाणुओं को (महिना) अपनी महिमा से (पर्यपश्यत्) देखता है (यः) जो (देवेषु अधि) समस्त देवों का (एकः) एक ही (देवः) देव (आसीत्) है, उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) देव के लिए (हविषा) श्रद्धा और विशेष भक्ति से हम सदा उपासना (विधेम) किया करें।

भावार्थः—जो समस्त विकारजात को प्रकट करते हुए ताप को धारण करते हुए प्रकृति-परमाणुओं को अपनी महिमा से देखता है, जो देवों का एक मात्र अधिदेव हैं, उस सुखस्वरूव देव की हम सदा श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना किया करें ॥८॥

मा नो हिंसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवं सत्यधर्मा जजान ।
यश्चापश्चन्द्रा बृहतीर्जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९॥

पदार्थः—(यः) जो (पृथिव्याः) भूमि का (जनिता) उत्पादक है, (वा) और (यः) जो (सत्य धर्मा) सत्यधर्मा (दिवम्) द्यु लोक को (जजान) उत्पन्न करता है, (च) और (यः) जो (बृहतीः) महान् (चन्द्राः) आह्लादक (अपः) जलों को (जजान) उत्पन्न करता है वह (नः) हमें (मा) नहीं (हिंसीत्) दुःख देता है, (कस्मै) उस सुखस्वरूप (देवाय) देव की (हविषा) श्रद्धा और विशेष भक्ति से हम (विधेम) सदा उपासना किया करें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—जो भूमि का उत्पादक हैं, और जो सत्यधर्मा द्युलोक को उत्पन्न करता है वह प्रभु हमें दुःख नहीं देता है। उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम सदा श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना किया करें ॥९॥

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

पदार्थः—(**प्रजापते**) हे प्रजा के स्वामिन् ! (**त्वत् अन्यः**) आप से भिन्न कोई (**एता**) इन (**ता**) उन (**विश्वा**) समस्त (**जातानि**) उत्पन्न हुए पदार्थों पर (**न**) नहीं (**परि बभूव**) अध्यक्ष होता है (**यत्कामाः**) जिस कामना वाले हम (**ते**) तेरी (**जुहुमः**) उपासना करें (**तत्**) वह (**नः**) हमें (**अस्तु**) मिले (**वयम्**) हम (**रयीणाम्**) धनों के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होवें।

भावार्थः—हे प्रजा के स्वामिन् ! तुझसे भिन्न कोई अन्य इस समस्त विश्व के पदार्थों का अध्यक्ष नहीं है। तू ही इनका अध्यक्ष है। जिस वस्तु की कामना वाले हम आप की उपासना करते हैं वह हमें प्राप्त हो। आप की कृपा से हम धनों के स्वामी बनें ॥१०॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२२

ऋषिः—१—८ चित्रमहा वासिष्ठः ॥ **देवताः**—अग्निः ॥ **छन्दः**—१ त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ जगती । ३, ८ पादनिचृज्जगती । ४, ६ निचृज्जगती । ७ आर्चीस्वराड्जगती ॥ **स्वरः**—१, ५ धैवतः । २—४, ६—८ निषादः ॥

वसुं न चित्रमहसं गृणीषे वामं शेवमतिथिमद्विषेण्यम् ।
स रासते शुरुधो विश्वधायसोऽग्निर्होता गृहपतिः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(**वसुम् न**) वासक आदित्य के समान (**चित्रमहसम्**) अद्भुत तेज वाले, (**वामम्**) वननीय (**शेवम्**) सुखकर (**अतिथिम्**) आदरणीय (**अद्विषेण्यम्**) द्वेषरहित अग्नि की मैं यजमान (**गृणीषे**) प्रशंसा करता हूँ, (**होता**) हवि

का ग्रहण करने वाला, (**गृहपतिः**) गृह का पालक (**सः**) वह (**अग्निः**) अग्नि (**शुरुधः**) शोक=ताप को रोकने वाली (**विश्वधायसः**) सब के रस का पान करने वाली शक्तियों का पदार्थों को और (**सुवीर्यम्**) उत्तम बल को (**रासते**) प्रदान करता है ।

भावार्थः—सबको निवास देने वाले आदित्य के समान अद्भुत तेजों वाले, वननीय आदरणीय और द्वेष्यरहित इस अग्नि की मैं यजमान प्रशंसा करता हूं । होता, गृह का पालक यह अग्नि ताप को रोकने वाली और सब को रसोंका पान करानेवाली शक्तियों वा पदार्थों को और उत्तम बल को प्रदान करता है ॥१॥

जुषाणो अग्ने प्रति हर्य मे वचो विश्वानि विद्वान् वयुनानि सुक्रतो ।
घृतनिर्णिग्ब्रह्मणे गातुमेरय तव देवा अजनयन्ननु व्रतम् ॥२॥

पदार्थः—(**सुक्रतो**) शोभनकर्मन् अथवा उत्तम ज्ञान वाले (**अग्ने**) हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर (**जुषाणः**) प्रीति से सेव्यमान तू (**विश्वानि**) मेरे सभी (**वयुनानि**) ज्ञात ज्ञेय और कर्मों को (**विद्वान्**) जानने वाला है, (**मे**) मेरे (**वचः**) वचन को (**प्रतिहर्य**) स्वीकार कर, (**घृतनिर्णिक्**) हे प्रकाश स्वरूप ! (**ब्रह्मणे**) वेदज्ञ यजमान के लिए (**गातुम्**) ज्ञातव्य की (**आ ईरय**) प्रेरणा कर (**देवाः**) विद्वान् लोग और दैवी शक्तियें (**तव**) तुम्हारे (**व्रतम्**) नियम के (**अनु**) अनुसार ही (**अजनयन्**) सब कार्यों का सम्पादन करते हैं ।

भावार्थः—हे शोभनकर्मन् प्रभो ! प्रीति से उपासना किये गये आप मेरे स्तुति वचन को स्वीकार करें । आप मेरे समस्त ज्ञान ज्ञेयों और कर्मों को जानते हैं । हे प्रकाश स्वरूप ! आप वेदज्ञ यजमान के लिए ज्ञातव्य की प्रेरणा दें । विद्वान् और समस्त दैवी शक्तियां तुम्हारे नियम के अनुसार ही अपने कार्यों का संपादन करती हैं ॥२॥

सप्त धामानि परियन्नमर्त्यो दाशद्दाशुषे सुकृते मामहस्व ।
सुवीरेण रयिणाग्ने स्वाभुवा यस्त आनट् समिधा तं जुषस्व ॥३॥

पदार्थः—अग्नि (**सप्त धामानि**) सात लोकों को (**परियन्**) व्याप्त करता है, (**अमर्त्यः**) मरण धर्मरहित वह (**सुकृते**) उत्तम कर्म करने वाले (**दाशुषे**) दाता यजमान के लिए (**दाशत्**) सब लाभों को देता है (**मामहस्व**) धन आदि

को देता है, (यः) जो (ते) इस अग्नि को (समिधा) प्रदीप्त करने के साधन भूत समिधा घृत और हवि से (आनट्) प्राप्त होता है (तम्) उस यजमान को यह अग्नि (स्वाभुवा) बढ़ाने वाले (सुवीरेण) उत्तम सन्तान आदि से युक्त (रयिणा) धन से (जुषस्व) प्रसन्न करता है ।

भावार्थः--अग्नि सप्त लोकों में व्याप्त होता है, मरणधर्म से रहित वह दाता और उत्तम कर्मों वाले यजमान के लिगे सब लाभों को देता है और धन आदि भी देता है। जो दीपन के साधन समिधा, घृत, हवि आदि से इसे प्रदीप्त करता है उसे उत्तम सन्तान से युक्त समृद्धिदायक धन से प्रसन्न करता है ॥३॥

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम् ।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम् ॥४॥

पदार्थः—(हविष्मन्तः) हवि आदि से युक्त (सप्त) सप्त ऋत्विग् लोग (यज्ञस्य) यज्ञ के (केतुम्) प्रज्ञापक (प्रथमम्) सब यज्ञ देवों में प्रथम, (पुरोहितम्) सामने रखे जाने वाले, (वाजिनम्) बलवान् (शृण्वन्तम्) सुनाने के साधनभूत (घृतपृष्ठम्) दीप्तावयव, (उक्षणम्) वृष्टि के दाता, (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम के साधन (पृणते) हवि आदि के द्वारा अग्नि को दीप्त करने वाले यजमान को (पृणतम्) धन आदि देने वाले (अग्निम्) अग्नि की (ईलते) प्रशसा करते हैं ।

भावार्थः – हवि आदि से युक्त सात ऋत्विग् लोग यज्ञ के ज्ञापक, देवों में मुख्य तथा पुरोहित आदि विशेषणों स युक्त इस अग्नि की प्रशंसा करते हैं ॥४॥

त्वं दूतः प्रथमो वरेण्यः स हूयमानो अमृताय मत्स्व ।
त्वां मर्जयन्मरुतो दाशुषो गृहे त्वां स्तोमेभिर्भृगवो वि रुरुचुः ॥५॥

पदार्थः—(सः त्वम्) वह यह अग्नि (दूतः) देवों को पहुँचने वाला दूत, (प्रथमः) मुख्य और (वरेण्यः) वरेण्य है, (हूयमानः) हवि आदि से तृप्त किया गया वह (अमृताय) हमें अमरत्व प्राप्ति के लिए (मत्स्व) हर्षित करता है, (दाशुषः) यजमान (मरुतः) ऋत्विग् लोग (गृहे) घर में (त्वाम्) इस अग्नि को (मर्जयन्) हवि आदि से अलंकृत करते हैं और (त्वाम्) इसको (भृगवः) तपस्वी लोग (स्तोमेभिः) स्तोत्रों से (वि रुरुचुः) प्रदीप्त करते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—यह अग्नि यज्ञ देवों तक जाने वाला दूत, मुख्य और वरेण्य है। हवि आदि से तृप्त किया गया यह हमें अमरत्व की प्राप्ति के लिये (मत्स्व) हर्षित करता है। यजमान और ऋत्विग् लोग घर में इस अग्नि को हवि आदि से अलंकृत करते हैं। इसको तपस्वी जन स्तोत्रों से प्रदीप्त करते हैं ॥५॥

इषं दुहन्त्सुदुघां विश्वधायसं यज्ञप्रिये यजमानाय सुक्रतो ।
अग्ने घृतस्नुस्त्रिर्ऋतानि दीद्यद्वर्तिर्यज्ञं परियन्त्सुक्रतूयसे ॥६॥

पदार्थः—(**सुक्रतो**) उत्तम यज्ञ आदि कर्मों के साधन भूत (**अग्ने**) अग्नि (**यज्ञप्रिये**) यज्ञों से देवों को प्रसन्न करने वाले (**यजमानाय**) यजमान के लिए (**विश्वधायसम्**) सबको फल देने वाली (**सुदुघाम्**) यज्ञरूपी गौ से (**इषम्**) अन्न और ज्ञान का दोहन करता हुआ (**घृतस्नुः**) घृत से दीप्त ज्वाला वाला (**त्रिः**) तीन (**ऋतानि**) पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्यु लोक को (**दीद्यत्**) प्रकाशमान करता है (**यज्ञम् वर्ति**) यज्ञ के स्वरूप को (**परियन्**) धारण करता हुआ (**सुक्रतूयसे**) उत्तम यज्ञ कर्मों के समान व्यवहार करता है।

भावार्थः—यज्ञ आदि उत्तम कर्मों का साधनभूत यह अग्नि सबको फल देने वाले यज्ञ से ज्ञान और अन्न का दोहन यजमान के लिए करता है। घृत से प्रदीप्त ज्वालाओं वाला वह तीनों लोकों को प्रकाशित करता है और यज्ञ के स्वरूप को धारण करता हुआ उत्तमकर्मा के समान व्यवहार को कराता है ॥६॥

त्वामिदस्या उषसो व्युष्टिषु दूतं कृण्वाना अयजन्त मानुषाः ।
त्वां देवा महयाय्याय वावृधुराज्यमग्ने निमृजन्तो अध्वरे ॥७॥

पदार्थः—(**अस्याः**) इस (**उषसः**) उषा के (**व्युष्टिषु**) विवासन काल प्रभात वेलाओं में (**मानुषाः**) मनुष्य लोग (**त्वाम् इत्**) इस अग्नि को ही (**दूतम्**) दूत (**कृण्वानाः**) बनाकर (**अयजन्त**) यज्ञ करते हैं (**देवाः**) विद्वज्जन (**आज्यम्**) घृत तथा सामग्री आदि को (**अध्वरे**) यज्ञ में (**निमृजन्तः**) डालते हुए (**अग्ने त्वाम्**) इस अग्नि को (**महयाय्य**) महत्व प्राप्त करने के लिए (**वावृधुः**) बढ़ाते हैं।

भावार्थः—इस उषा के निवासक प्रभात काल में मनुष्य लोग इस

Scanned by CamScanner

अग्नि को देवों का दूत बनाकर यज्ञ करते हैं। विद्वज्जन हवि आदि को डालते हुए महत्व प्राप्ति के लिए इस अग्नि को बढ़ाते हैं ॥७॥

नि त्वा वसिष्ठा अह्वन्त वाजिनं गृणन्तो अग्ने विदथेषु वेधसः ।
रायस्पोषं यजमानेषु धारय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थ—(**वसिष्ठाः**) ज्ञान और कर्म में वसने वाले (**वेधसः**) ऋत्विग् लोग (**विदथेषु**) यज्ञों में (**गृणन्तः**) परमेश्वर की स्तुति करते हुए (**वाजिनम्**) शक्तिशाली (**अग्ने त्वा**) इस अग्नि की (**नि अह्वन्त**) प्रशंसा करते हैं, यह अग्नि (**यजमानेषु**) हम यजमान लोगों में (**रायः**) धन की (**पोषम्**) पुष्टि को (**धारय**) धारण कराता है, हे विद्वज्जनो (**यूयम्**) आप लोग (**नः**) हमें (**सदा**) सर्वदा, (**स्वस्तिभिः**) सुखदायक साधनों द्वारा (**पात**) रक्षा करें।

भावार्थः— ज्ञान और कर्म में रमने वा बसने वाले ऋत्विग् लोग यज्ञों में परमेश्वर की स्तुति करते हुए शक्तिशाली इस अग्नि की प्रशंसा करते हैं। यह अग्नि हम लोगों में धन की पुष्टि को धारण कराता है। हे विद्वानो! आप सदा सुखकारी साधनों से हमारी रक्षा करें ॥८॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १२३

ऋषिः—१–८ वेनः ॥ **देवता**—वेनः ॥ **छन्दः**—१, ५, ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २–४, ६, ८ त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—धैवतः ॥

अयं वेनश्चोदयत्पृश्निगर्भा ज्योतिर्जरायू रजसो विमाने ।
इममपां संङ्गमे सूर्यस्य शिशुं न विप्रा मतिभी रिहन्ति ॥१॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**वेनः**) आदित्य (**ज्योतिः**) द्योतमान तथा (**जरायुः**) मेघों के मध्य वेष्टित हुआ (**रजसः**) जल के (**विमाने**) निर्माता अन्तरिक्ष में (**पृश्निगर्भाः**) सूर्यरश्मियें गर्भ में हैं जिनके ऐसे जलों को (**चोदयत्**) वृष्टयर्थ प्रेरित करता है, (**अपाम्**) अन्तरिक्षस्थ जलों के तथा **सूर्यस्य**) सूर्य के

Scanned by CamScanner

(**संगमे**) संगमन स्थान अन्तरिक्ष में (**इमम्**) इस आदित्य को (**विप्राः**) ज्ञानी-जन (**शिशुम् न**) शिशु के समान (**मतिभिः**) प्रशंसा वचनों से (**रिहन्ति**) स्तुत करते हैं ।

भावार्थः—यह आदित्य द्योतमान तथा मेघों के मध्य वेष्टित हुआ सूर्य रश्मियों से युक्त अन्तरिक्षस्थ जलों को जल के निर्माता अन्तरिक्ष में वृष्टि के लिए प्रेरित करता है। अन्तरिक्षस्थ जलों और सूर्य के संगमन स्थान में विद्यमान इस आदित्य की ज्ञानीजन शिशु की भाँति प्रशंसा वचनों से प्रशंसा करते हैं ॥१॥

समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो नभोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि ।
ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः ॥२॥

पदार्थः—(**नभोजाः**) आकाश में उत्पन्न (**वेनः**) आदित्य (**समुद्रात्**) अन्तरिक्ष से (**ऊर्मिम्**) जल धारा को (**उदियर्ति**) भूमि पर प्रेरित करता अथवा बरसाता है (**हर्यतस्य**) कान्तिमान् आदित्य के (**पृष्ठम्**) पीठ को विद्वान् लोग (**दर्शि**) देखते हैं (**ऋतस्य**) जल के (**सानौ**) शिखरभूत (**विष्टपि अधि**) अन्तरिक्ष में (**समानम्**) समान (**योनिम्**) स्थान वाले इस आदित्य की (**व्राः**) विद्वान्-जन (**अभ्यनूषत**) प्रशंसा करते हैं ।

भावार्थः—आकाशस्थ आदित्य अन्तरिक्ष से जलधारा को पृथिवी पर प्रेरित करता है। कान्तिमान् इस सूर्य के पृष्ठ भाग को ज्ञानी जन देखते हैं। जल के शिखरभूत अन्तरिक्ष में समान स्थान में स्थित इस आदित्य की विद्वज्जन प्रशंसा करते हैं ॥२॥

समानं पूर्वीरभि वावशानास्तिष्ठन्वत्सस्य मातरः सनीळाः ।
ऋतस्य सानावधि चक्रमाणा रिहन्ति मध्वो अमृतस्य वाणीः ॥३॥

पदार्थः—(**पूर्वीः**) बहुत (**समानम्**) समान स्थान को (**अभि**) प्राप्त कर (**वावशानाः**) शब्द करती हुई (**वत्सस्य**) वत्सभूत विद्युत् की (**मातरः**) माताभूत (**सनीलाः**) समान स्थान वाली जलें (**तिष्ठन्**) स्थित रहती हैं । (**ऋतस्य**) जल के (**सानौ अधि**) सर्वोच्च स्थान में (**चक्रमाणाः**) प्रवर्तमान (**मध्वः**) मधुर (**अमृतस्य**) जल के (**वाणीः**) शब्द इस वेन=आदित्य की (**रिहन्ति**) अर्चना करती हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—बहुत सी समान स्थान को प्राप्त शब्द करती हुई वत्सभूत विद्युत् की माताभूत समान स्थान वाली जलें अन्तरिक्ष में स्थिर रहती हैं। जल के सर्वोच्च स्थान अन्तरिक्ष में प्रवर्तमान मधुर जल के शब्द=गर्जन इस आदित्य की प्रशंसा करते हैं ॥३॥

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन्।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥४॥

पदार्थः - (**विप्राः**) मेधावी लोग इस वेन=आदित्य के (**रूपम्**) स्वरूप को (**जानन्तः**) जानते हुए (**अकृपन्त**) इसकी प्रशंसा करते हैं (**मृगस्य**) अन्वेष्टव्य (**महिषस्य**) महान् आदित्य के (**घोषम्**) मेघस्थ शब्द को (**ग्मन्**) जानते हैं वे (**ऋतेन**) सत्यभूत नियम के द्वारा (**यन्तः**) आदित्य को जानते हुए (**सिन्धुम्**) स्यन्दनशील जल समूह को (**अधि अस्थुः**) पहुँचते हैं (**गन्धर्वः**) किरणों का धारक यह आदित्य (**अमृतानि**) अमर (**नाम**, जलों को (**विदत्**) प्राप्त करता है।

भावार्थः--मेधावी लोग इस आदित्य के स्वरूप को जानते हुए इस की प्रशंसा करते हैं। अन्वेष्टव्य महान् मेघ की गर्जना को भी जानते हैं। वे सृष्टि नियम द्वारा आदित्य को जानते हुए स्यन्दनशील जल समूह को पहुँचते हैं। किरणों का धारक यह आदित्य जलों को प्राप्त करता है ॥४॥

अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन्।
चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्यये स वेनः ॥५॥

पदार्थः—(**अप्सराः**) अप्सारिणी, विद्युत् (**योषा इव**) स्त्री के समान (**उपसिष्मियाणा**) हंसती हुई अर्थात् गरजती हुई अथवा चमकती हुई (**परमे**) परम (**व्योमन्**) अन्तरिक्ष में (**जारम्**) जलों के जरयिता आदित्य को (**बिभर्ति**) धारण करती है, अर्थात् पुष्ट करती है, (**प्रियस्य**) प्रिय इस सूर्य के (**योनिषु**) स्थानों में (**चरत्**) विचरती है (**सः**) वह (**वेनः**) आदित्य (**प्रियः**) उस विद्युत् का प्रिय (**सन्**) हुआ (**हिरण्यये**) ज्योतिष्क (**पक्षे**) अपने पक्षभूत मेघ में (**सीदत्**) उसके साथ स्थित होता है।

भावार्थः- अप्सारिणी=जल को प्राप्त कराने वाली विद्युत् स्त्री के समान गर्जती हुई अथवा चमकती हुई अन्तरिक्ष में जलों के जरयिता आदित्य को पुष्ट करती है। प्रिय आदित्य के स्थानों अर्थात् अन्तरिक्ष और

Scanned by CamScanner

मेघों में यह विद्युत् विचरती है। इस विद्युत् का प्रिय यह आदित्य अपने भास्वर पक्ष मेघ में इसके साथ स्थित होता है ॥५॥

नाके॑ सुप॒र्णमुप॒ यत्पत॑न्तं हृ॒दा वेन॑न्तो अ॒भ्यच॑क्षत त्वा ।
हिर॑ण्यपक्षं॒ वरु॑णस्य दू॒तं य॒मस्य॒ योनौ॑ शकु॒नं भु॑र॒ण्युम् ॥६॥

पदार्थः—(हृदा) हृदय से (वेनन्तः) कामना करते हुए मेधावीजन (नाके) अन्तरिक्ष में (उप पतन्तम्) गति करते हुए (सुपर्णम्) शोभन किरणों वाले, (हिरण्यपक्षम्) प्रकाशमान पक्षों से युक्त (वरुणस्य) जलीय तत्व के (दूतम्) दूत (यमस्य) नियामक वैद्युत अग्नि के (योनौ) स्थान अन्तरिक्ष में (शकुनम्) पक्षी के समान वर्तमान (भुरण्युम्) भरण करने वाले जिस (त्वा) इस आदित्य को (यत्) जिस प्रकार (अभि अचक्षत) देखते हैं उसी प्रकार हम सब भी देखा करें।

भावार्थः - हृदय से जानने की इच्छा करते हुए मेधावीजन अन्तरिक्ष में गतिशील, उत्तम किरणों वाले, प्रकाशमान पक्षों वाले जलीय तत्व के दूत और वैद्युत अग्नि के स्थान अन्तरिक्ष में पक्षी के समान वर्तमान भरण=पोषण करने वाले आदित्य को जिस प्रकार देखते और जानते हैं वैसे ही हम सब भी देखा करें ॥६॥

ऊ॒र्ध्वो ग॑न्ध॒र्वो अधि॒ नाके॑ अस्थात्प्र॒त्यङ् चि॒त्रा बिभ्र॑द॒स्यायु॑धानि ।
वसा॑नो॒ अत्कं॑ सुर॒भिं दृ॒शे कं स्व१॒॑र्ण नाम॑ जनत प्रि॒याणि॑ ॥७॥

पदार्थः—(ऊर्ध्वः) ऊपर वर्तमान (गन्धर्वः) जलों का धारक आदित्य (अस्य) अपने (चित्रा) अद्भुत (आयुधानि) वज्र आदि आयुधों को (बिभ्रद्) धारण करता हुआ, (दृशे) लोगों के दर्शनार्थ (सुरभिम्) शोभन (अत्कम्) रूप को (वसानः) आच्छादित करता हुआ, (स्वः कम् न) प्रकाश के समान (प्रियाणि) प्रियकर (नाके अधि) आकाश में (अस्थात्) स्थित होता है। तथा (नाम) उदक जलों को (जनत) उत्पन्न करता है।

भावार्थः—उपरि स्थान में वर्तमान जलों का धारक अपने अद्भुत वज्र आदि आयुधों को धारण करता हुआ, शोभन रूप को आच्छादित करता हुआ, प्रकाश के समान यह आदित्य आकाश में स्थित होता है और जलों को उत्पन्न करता है ॥७॥

Scanned by CamScanner

द्रप्सः समुद्रमभि यज्जिगाति पश्यन्गृध्रस्य चक्षसा विधर्मन् ।
भानुः शुक्रेण शोचिषा चकानस्तृतीये चक्रे रजसि प्रियाणि ॥८॥

पदार्थः— (**विधर्मन्**) अन्तरिक्ष में स्थित (**द्रप्सः**) उदक बिन्दुओं का धारक (**गृध्रस्य**) रसों को चाहने वाले सूर्य के (**चक्षसा**) तेज से (**पश्यन्**) प्रकाशमान आदित्य (**यत्**) जब (**समुद्रम्**) क्लेदयुक्त मेघ को (**अभि जिगाति**) प्राप्त होता है तब (**भानुः**) सूर्य (**शुक्रेण**) शुभ्र (**शोचिषा**) तेज से (**तृतीये**) तीसरे (**रजसि**) लोक अर्थात् द्युलोक में (**चकानः**) चमकता हुआ (**प्रियाणि**) प्रियकर जलों को (**चक्रे**) उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष में स्थित, जल विन्दुधारी रसों को चाहने वाले सूर्य के तेज से प्रकाशमान आदित्य जब क्लेदनयुक्त मेघ को (अभि जिगाति) प्राप्त होता है तब सूर्य शुभ्र तेज से द्युलोक में चमकता हुआ प्रियकर जलों को उत्पन्न करता है ॥८॥

सूचना—इस आठवें मन्त्र में आदित्यात्मक रूप में और भानु के रूप में एक ही सूर्य का वर्णन उसके भिन्न-भिन्न कार्यों और गुणों के कारण है । एक ही सूर्य की उसके कार्यों से भिन्न संज्ञा हो जाती है ।

यह दशम मण्डल में एकसौ तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२४

ऋषिः—१, ५—६ अग्निवरुणसोमानां निहवः । २—४ अग्निः ॥ **देवता**—१ ४ अग्निः । ५ ८ यथानिपातम् । ६ इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, ३, ८ त्रिष्टुप् । २, ४, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट्त्रिष्टुप् । ६ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ७ जगती ॥ **स्वरः**—१—६, ८, ६ धैवतः । ७ निषादः ॥

इमं नो अग्न उप यज्ञमेहि पञ्चयामं त्रिवृतं सप्ततन्तुम् ।
असो हव्यवाळुत नः पुरोगा ज्योगेव दीर्घं तम आशयिष्ठाः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः - (**अग्ने**) अग्नि (**त्रिवृतम्**) पाकयज्ञ, हविर्यज्ञ तथा सोमयज्ञ भेद वाले (**पञ्चयामम्**) चार वर्ण पांचवां अवर्ण जिससे यज्ञ करता है अथवा चार ऋत्विज् और यजमान से किये जाने वाले (**सप्त तन्तुम्**) अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम उक्थ्य, षोडशी, वाजपेय, अतिरात्र आप्तोर्याम रूप में विस्तीर्ण, (**इमम्**) इस (**नः**) हमारे (**यज्ञम्**) यज्ञ (**उप आइहि**) प्राप्त होता है, हमारा (**हव्यवाट्**) हव्यवाहक (**असः**) होता है, (**उत**) और (**नः**) हमारा (**पुरोगाः**) होता अग्रगण्य होता है, (**ज्योक् एव**) चिरकाल तक (**दीर्घम्**) दीर्घ (**तमः**) अन्धकार में (**आ अशयिष्ठाः**) छिपा रहता है अर्थात् पृथिवी के अन्तराल, जलकी गहराई और मेघ आदि के अन्दर छिपा रहता है ।

भावार्थः—यह अग्नि हमारे त्रिवृत, पंचयाम, सप्ततन्तु यज्ञ को प्राप्त होता है । वह हमारे द्वारा प्रदत्त हवि का वाहक और पुरोगन्ता होता है और वह अत्यन्त गूढ स्थानों में भी विद्यमान रहता है ॥१॥

अदे॑वादे॒वः प्र॒चता॒ गुहा॒ यन्प्र॒पश्य॑मानो अमृत॒त्वमे॑मि ।
शि॒वं॒ यत्सन्त॒मशि॑वो॒ जहा॑मि॒ स्वात्स॒ख्याद॒रणीं॒ नाभि॑मेमि ॥२॥

पदार्थः—(**गुहा**) गुहा में वर्तमान (**अदेवान्**) अदेवरूप अग्नि से (**प्रचता**) देवों से याचना किए जाने से (**यन्**) बाहर आता हुआ (**देवः**) देवनशील (**प्रपश्यमानः**) हवि को प्राप्त होता हुआ (**अमृतत्वम्**) देवत्व को (**ऐमि**) प्राप्त होता है (**शिवम्**) कल्याणकारक (**सन्तम्**) होते हुए भी यज्ञ को (**अशिवः**) अशिव होकर (**यत्**) जब (**जहामि**) छोड़ देता है तब (**स्वात्**) स्वकीय (**सख्यात्**) मैत्री भाव से (**नाभिम्**) बन्धनशील (**अरणीम्**) अरणी को (**एमि**) प्राप्त हो जाता है ।

भावार्थः—जब यज्ञ की हवि को वहन न करते यह अग्नि अप् आदि पदार्थों में गूढ़ रहता है तब यह अदेव रहता है पुनः जब यह हवि का वहन करता है तब यह देवत्व को प्राप्त कर लेता है । शिव यज्ञ को अशिव रूप जब यह छोड़ देता है तब बांध रखने वाली अरणी में जा बैठता है ॥२॥

पश्य॑न्न॒न्यस्या॒ अति॑थिं व॒याया॑ ऋ॒तस्य॒ धाम॒ वि मि॑मे पु॒रूणि॑ ।
शंसा॑मि पि॒त्रे असु॑राय॒ शेव॑मयज्ञि॒याद्य॒ज्ञियं॒ भाग॑मेमि ॥३॥

पदार्थः—(**अन्यस्याः**) इस पृथिवी से भिन्न (**वयायाः**) गमनीय द्युलोक सम्बन्धी (**अतिथिम्**) सततगामी सूर्य को (**पश्यत्**) देखता हुआ (**ऋतस्य**) यज्ञ

के (पुरूणि) बहुत से (धाम) कलेश्वरों को (वि मिमे) निष्पादित करता है (पित्रे) पितृभूत (असुराय) देवजन के लिए (शेवम्) सुख को उद्देश में रखकर (शंसामि) उक्थ को कहलाता है और (अयज्ञियात्) अयज्ञमय स्थान से निकल कर (यज्ञियम्) यज्ञिय (भागम्) भाग को (एमि) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—इस पृथिवी से गमनीय द्युलोक सम्बन्धी सततगामी सूर्य को देखता हुआ अर्थात् सूर्य से होने वाले वसन्त आदि ऋतुओं को प्राप्त होता हुआ विविध यज्ञों को निष्पन्न करता है, पितृभूत देवजनों के सुख को उद्देश्य में रखकर यह अग्नि अयज्ञिय गूढ़ स्थानों से निकल कर यज्ञिय भाग को प्राप्त होता है ॥३॥

ब॒ह्वीः समा॑ अकरम॒न्तर॑स्मि॒न्निन्द्रं॑ वृणा॒नः पि॒तरं॑ जहामि ।
अ॒ग्निः सोमो॒ वरु॑ण॒स्ते च्य॑वन्ते प॒र्याव॑र्द्रा॒ष्ट्रं तद॑वाम्याय॒न् ॥४॥

पदार्थः—(बह्वीः) बहुत (समाः) संवत्सरों तक (अस्मिन्) इस वेदि के (अन्तः) अन्दर (अकरम्) निवास करता है, (इन्द्रम्) इन्द्र को (वृणानः) स्वीकार करते हुए (पितरम्) पितृभूत अरण्य को (जहामि) छोड़ देता है, जब यह गुहा में छिपा रहता है तब (अग्निः) यज्ञ निष्पादक अग्नि, (सोमः) सोम, (वरुणः) वरुण भूमि के राष्ट्र से (च्यवन्ते) च्युत होते है (आयन्) पुनः आ कर (तत्) उस (राष्ट्रम्) राष्ट्र को (पर्यावत्) पुनः लौटा कर (अवामि) असुरों से बचाता है ।

भावार्थः—बहुत सम्वत्सरों तक इस वेदि में यह अग्नि निवास करता है । इन्द्र को स्वीकार करता हुआ पितभूत वनस्पति और अरण्य को छोड़ देता है । जब यह यज्ञ में न रहकर गुहा में छिपा रहता है तब यज्ञ निष्पादक अग्नि, सोम=पूषा, वरुण वायु भूमि के राष्ट्र से च्युत हो जाते हैं । वापस आकर यह अग्नि पुनः उस राष्ट्र को वापस लेकर असुरों से उसकी रक्षा करता है ॥४॥

नि॒र्मा॒या उ॒ त्ये असु॑रा अभूव॒न्त्वं च॑ मा वरुण का॒मया॑से ।
ऋ॒तेन॑ राजन्ननृ॑तं वि॒विञ्च॒न्मम॑ रा॒ष्ट्रस्याधि॑पत्य॒मेहि॑ ॥५॥

पदार्थः—अग्नि के यज्ञिय रूप में आ जाने पर (त्ये) वे (असुराः) असुर लोग (निर्माया उ) माया रहित (अभूवन्) हो जाते हैं, (च) यदि (त्वम्)

यह (वरुणः) वरुण (मा) उस अग्नि को (कामयासे) चाहता हैं तो (ऋतेन) सत्य से (राजन्) राजा भूत यह (अनृतम्) असत्य को (विविञ्चत्) पृथक् करता हुआ (मम) अग्नि से पुनः वापस लाये गये (राष्ट्रस्य) राष्ट्र के (आधिपत्यम्) आधिपत्य को (आ इहि) प्राप्त करता है।

भावार्थः--अग्नि के यज्ञियरूप में आ जाने पर ये असुर लोग माया-रहित हो जाते हैं। यदि यह वरुण उस अग्नि को चाहता है तो सत्य से असत्य का विवेचन करता हुआ राजा के रूप में इस वापस लिए गये राष्ट्र के आधिपत्य को प्राप्त करता है॥५॥

इदं स्व॑रि॒दमिदा॑स वा॒मम॒यं प्र॑का॒श उ॒र्व॑न्तरि॑क्षम् ।
हना॑व वृ॒त्रं नि॒रेहि॑ सोम ह॒विष्ट्वा॒ सन्तं॑ ह॒विषा॑ यजाम ॥६॥

पदार्थः—यहां पर यह अग्नि की उक्ति कल्पित की गई है सोम के प्रति—

(सोम) हे सोम ! (इदम्) यह (स्वः) द्युलोक है, (इदम्) यह (इत्) ही (वामम्) वननीय (आस) होता हैं, (अयम्) यह (प्रकाशः) प्रकाश का आधारभूत हैं, यह है (उरु) विस्तीर्ण (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष, संप्रति हम दोनों (वृत्रम्) मेघ को (हनाव) मारें (निरेहि) निकल (हविः सन्तम् त्वा) हवि होते हुए भी तेरे लिए देवता रूप में (हविषा) हवि से (यजाम) यज्ञ करते हैं।

भावार्थः—सोम=सोमतत्व के प्रति अग्नि की उक्ति है कि —हे सोम= सोमतत्त्व ! यह द्युलोक है । यह ही वननीय होता है। यह प्रकाश का आधार भूत है। यह विस्तीर्ण अन्तरिक्ष है। इस समय हम दोनों मेघ का हनन करें, निकलकर आओ ! तू हविरूप है परन्तु हम देवता-रूप में तुम्हारे लिए हवि प्रदान करते हैं ॥६॥

क॒विः क॑वि॒त्वा दि॒वि रू॒पमास॑जदप्र॑भूती॒ वरु॑णो॒ निर॒पः सृ॑जत् ।
क्षेमं॑ कृण्वा॒ना जन॑यो॒ न सिन्ध॑व॒स्ता अ॑स्य॒ वर्णं॒ शुच॑यो भरिभ्रति ॥७॥

पदार्थः—(कविः) क्रान्तदर्शन सूर्य (कवित्वा) क्रान्तदर्शन से (दिवि) द्युलोक में (रूपम्) अपने तेज को (आ सृजत्) आसक्त करता है, (अप्रभूती) अल्प यत्न से (वरुणः) वायु अथवा जलीयतत्व (अपः) जलों को (निः सृजत्) निकालता है (ताः) ये जलें (सिन्धवः) स्पन्दनशील जल धारायें होकर (जनयः-न) अपने पतियों के प्रति जायाओ के समान (क्षेमम्) क्षेम (कृण्वानाः) करती

Scanned by CamScanner

हुई (शुचयः) दीप्यमान (अस्य) इस वरुण के (वर्णम्) शुक्ल भास्वर रूप को (भरिभ्रति) धारण करती हैं ।

भावार्थः क्रान्तदर्शन सूर्य अपनी तीक्ष्णता से द्युलोक में अपने तेज को आसक्त करता है । अल्प प्रयत्न से वरुण=आपस्तत्व जलों को निकालता है । वे जलें स्यन्दनवाली जलधारायें होकर अपने-अपने पतियों के प्रति पत्नियों की तरह लोक के क्षेम को करती हुई दीप्यमान हुई इस वरुण के शुक्ल भास्वर रूप को धारण करती हैं ॥७॥

ता अस्य ज्येष्ठमिन्द्रियं सचन्ते ता ईमा क्षेति स्वधया मदन्तीः ।
ता ईं विशो न राजानं वृणाना बीभत्सुवो अप वृत्रादतिष्ठन् ॥८॥

पदार्थः—(ताः) वे स्यन्दन वाली जल धारायें (अस्य) इस वरुण के (ज्येष्ठम्) श्रेष्ठ (इन्द्रियम्) बल को (सचन्ते) धारण करती हैं (ताः) उन (स्वधया) हवि में डाले गए अन्न आदि से (मदन्तीः) तृप्त करती हुई जलों को (ईम्) यह वरुण (आ क्षेति) प्राप्त करता है, (ताः) वे (विशः न) प्रजा के समान (ईम्) इस वरुण को (राजानम्) राजा (वृणानाः) वरण करती हुई (बीभत्सुवः) वृत्र से आवृत हुई वृत्र के वध के बाद (वृत्रात्) उस वृत्र से (अप-अतिष्ठन्) दूर रहती हैं ।

भावार्थः—वे स्यन्दन वाली जल धारायें वरुण के श्रेष्ठ बल को धारण करती हैं । पुनः यज्ञ में डाली गई अन्नमय हवि से तृप्त हुई उन धाराओं को वरुण प्राप्त करता है । वे प्रजा के समान वरुण को राजा वरण करती हुई वृत्र से आच्छादित हुई भी वृत्र=मेघ के वध के बाद उस से दूर हो जाती हैं ॥८॥

बीभत्सूनां सयुजं हंसमाहुरपां दिव्यानां सख्ये चरन्तम् ।
अनुष्टुभमनु चर्चूर्यमाणमिन्द्रं नि चिक्युः कवयो मनीषा ॥९॥

पदार्थः—(कवयः) विद्वान् लोग (बीभत्सूनाम्) मेघ से बधे हुए (दिव्यानाम्) अन्तरिक्ष जलों के (सख्ये) सख्य में (चरन्तम्) वर्तमान (हंसम्) सूर्य को (सयुजम्) सखा (आहुः) कहते हैं तथा (अनुष्टुभम्) अनुष्टुप् से युक्त यज्ञ को (अनु) लक्ष्य में रखकर (चर्चूर्यमाणम्) पुनः पुनः चलते हुए (इन्द्रम्) वायु को (मनीषा) बुद्धि से (नि चिक्युः) जानते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः— विद्वान् लोग मेघ से बंधे हुए अन्तरिक्षस्थ जलों की मैत्री में वर्तमान सूर्य को इनका सखा कहते हैं तथा अनुष्टुप् छन्द से युक्त यज्ञ को लक्ष्य में रखकर पुनः पुनः बहते हुए वायु को बुद्धि से जानते हैं ॥६॥

सूचना—इस सूक्त में जल आदि में गूढ़ और हवि को न वहन करने वाले अग्नि का हवि वहन कार्य में प्रवृत्त होकर अदेवत्व से देवत्व प्राप्त करने का वर्णन है। जो पूर्ववर्ती मन्त्रों से प्रकट होता है। जब यज्ञ की भावना पृथिवी पर लुप्त होने लगती है तब असुर पृथिवी को अपने काबू में कर लेते हैं और देव लोग पृथिवी पर से अपना राज्य गंवा बैठते हैं। सारी पृथिवी आसुरी=मेघमयी बन जाती है। विष्णु जो यज्ञ है उसका देव लोग विस्तार करते हैं और वह बढ़ने लगता है। बढ़ती हुई वह यज्ञ भावना समस्त पृथिवी पर फैल जाती है और सारी पृथिवी यज्ञ वेदी बन जाती है। इस प्रकार जितनी यह भूमि है उतनी यह वेदी है। देवों का पुनः पृथिवी पर राज्य होता है। इसी बात का संकेत एक से पांच मन्त्रों में किया गया है।

यह दशम मण्डल में एकसो चौवीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१२५

ऋषिः—१—८ वागम्भृणी ॥ देवता—वागम्भृणी ॥ छन्दः—१, ३, ७, ८ विराट्त्रिष्टुप् । ४, ५, त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१, ३—८ धैवतः । २ निषादः ॥

सूचना—यह १२५ वां सूक्त वागम्भृणीय सूक्त है। अम्भृण शब्द बहुत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। बहुतों की वाणी अर्थात् राजा की सर्वोच्च सभा (राजपरिषद्) का इस सूक्त में वर्णन है। उसकी अपनी शक्ति आदि को उसी के द्वारा वर्णन कराया गया है। इस प्रकार सारा कथन राजपरिषद् का स्वयं का है।

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः ।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्र सभा (**रुद्रेभिः**) रुद्र संज्ञक विद्वानों और कार्यकरों से, (**वसुभिः**) वसुसंज्ञक विद्वानों और कार्यकरों से (**चरामि**) अपने कार्य कलाप में विचरती हूँ, (**अहम्**) मैं (**आदित्यैः**) आदित्य संज्ञक विद्वानों और कार्यकरों से (**उत**) तथा (**विश्वदेवैः**) समस्त वैज्ञानिक और विद्याविदों से अपने कार्यों में विचरती हूं, (**अहम्**) मैं (**उभा**) दोनों (**मित्रावरुणा**) वायु और जलों को (**बिभर्मि**) अपने काबू में रखती हूं, (**अहम्**) मैं (**इन्द्राग्नी**) विद्युत् और अग्नि को और (**अहम्**) मैं (**उभा**) दोनों (**अश्विनौ**) भूमि और आकाश को अपने काबू में रखती हूं । २४ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालन से हुए विद्वान् को वसु, ३६ वा ४४ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालन से हुए विद्वान् रुद्र और ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालन और विद्या प्राप्ति से हुए विद्वान् को आदित्य कहा जाता है ।

भावार्थः—मैं राष्ट्रपरिषत् वसु, रुद्र, आदित्य विद्वानों और कार्य-कर्ताओं तथा समस्त वैज्ञानिक और विद्याविदों से अपने कार्यकलापों में विचरती हूं । मैं वायु और जल, विद्युत् और अग्नि तथा आकाश और भूमि पर अपना अधिकार रखती हूँ ॥१॥

अहं सोम॑माह॒नसं॑ बिभर्म्य॒हं त्वष्टा॑रमु॒त पू॒षणं॒ भग॑म् ।
अहं द॑धामि॒ द्रवि॑णं ह॒विष्म॑ते सुप्रा॒व्ये॒३॒॑ यज॑मानाय सुन्व॒ते ॥२॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्रसभा (**आहनसम्**) शत्रुओं के विनाशक (**सोमम्**) सोमतत्व को (**बिभर्मि**) धारण करती हूँ, (**अहम्**) मैं (**त्वष्टारम्**) सूर्य को (**उत**) और (**पूषणम्**) राष्ट्र के पोषक बल और (**भगम्**) ऐश्वर्य को धारण करती हूं, (**हविष्मते**) हवि आदि से यज्ञ करने वाले, (**सुप्राव्ये**) अच्छी प्रकार लोगों को तृप्त करने वाले (**सुन्वते**) उत्तम पदार्थों के उत्पादक (**यजमानाय**) देव पूजा, संगति करण और दान के करने वाले के लिए (**द्रविणम्**) धन को (**अहम्**) मैं (**दधामि**) धारण करती हूँ ।

भावार्थः मैं राष्ट्रसभा शत्रुओं के विनाशक सोमतत्व को धारण करती हूं । सूर्य, पोषक बल और समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्य को मैं धारण करती हूं । हवि आदि यज्ञ करने वाले, सब लोगों को अन्न आदि से तृप्त करने वाले, उत्तम पदार्थों के उत्पादक तथा भगवान् की उपासना, संगति करण और दान को करने वाले व्यक्ति के लिये धन को मैं धारण करती हूँ ॥२॥

Scanned by CamScanner

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम् ।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम् ॥३॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं राष्ट्रसभा (**राष्ट्री**) पूरे राष्ट्र की स्वामिनी हूं (**वसूनाम्**) धनों की (**संगमनी**) सम्यक् प्राप्ति कराने वाली हूं, (**यज्ञियानाम्**) उत्तम कार्यों और व्यवहारों की (**प्रथमा**) मुख्य (**चिकितुषी**) सोच विचार और निर्णय करने वाली मैं हूं, (**देवाः**) विद्वान् और नागरिकजन (**ताम्**) उस (**मा**) मुझ राष्ट्रसभा को (**भूरि**) बहुत सी शक्तियों, कार्यों और अधिकारों को (**आवेशयन्तीम्**) प्राप्त हुई, (**भूरिस्थात्राम्**) बहुत के रूप में स्थित तथा (**पुरुत्रा**) बहुत जनों से युक्त (**व्यदधुः**) बनाते हैं ।

भावार्थः—मैं राष्ट्रसभा ही राष्ट्र की स्वामिनी हूं, धनों का संगनन मैं करती हूं, समस्त उत्तम कार्यों और व्यवहारों का मुख्य सोच-विचार और निर्णय करने वाली मैं हूं। विद्वान् और प्रजाजन मुझे बहुत सी शक्तियों, कार्यों, और अधिकारों को देकर बहुतों के समूह के रूप में बहुतों से युक्त हुई निर्मित करते हैं ॥३॥

मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम् ।
अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि ॥४॥

पदार्थः—(**यः**) जो (**अन्नम्**) अन्न को (**अत्ति**) खाता है, (**यः**) जो (**विपश्यति**) देखता है, (**यः**) जो (**प्राणिति**) श्वास आदि लेता है (**यः**) जो (**ईम्**) इस (**उक्तम्**) कहे हुए को सुनता है (**सः**) वह (**मया**) मेरे द्वारा ही ऐसा करता है, जो (**अमन्तवः**) विरोधी विचार करने वाले हैं (**ते**) वे (**माम्**) मेरे लिए (**उप क्षियन्ति**) विरोध भी करते हैं (**श्रुत**) हे श्रुतजन ! (**श्रुधि**) सुनो (**ते**) तेरे लिए (**श्रद्धिवम्**) श्रद्धायुक्त बात को (**वदामि**) कहती हूं ।

भावार्थः—जो खाता है, जो देखता है, जो श्वास आदि लेता है, जो कही बात को सुनता है उसका यह सब कुछ मुझसे ही होता है। विरोधी विचार वाले प्रजाजन मुझ पर आक्षेप भी करते हैं परन्तु मैं श्रद्धायुक्त बात को कहती हूं। हे श्रुत व्यक्ति ! तू इसे सुन ॥४॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम् ॥५॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—जो (देवेभिः) विद्वानों से (जुष्टम्) प्रीति से सेवित है (उत) और जो (मानुषेभिः) मनुष्य लोगों सेवित है उस (इदम्) इस का (अहम् एव) मैं राष्ट्रसभा ही (स्वयम्) स्वयम् (वदामि) उपदेश करती हूँ, (यम्) जिसको गुण, कर्म और स्वभाव से (कामये) चाहती हूं (तम्) उस (तम्) उसको (उग्रम्) ऊँचा (कृणोमि) करती हूँ, (तम्) उसको (ब्रह्माणम्) ब्राह्मण, (तम्) उसको (ऋषिम्) ऋषि (तम्) उसको (सुमेधाम्) उत्तम बुद्धि वाला बनाती हूं।

भावार्थः—जो विद्वानों से और जो मनुष्यों से सेवित ज्ञान अथवा व्यवहार है उसको मैं ही स्वयम् उपदेश करती हूं जिसको मैं गुण, कर्म, स्वभाव के परीक्षण से चाहती हूं, ब्राह्मण बनाती, ऋषि बनाती और ज्ञानी बनाती हूँ ॥५॥

अहं रुद्राय धनुरा तनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उं ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥६॥

पदार्थः—(अहम्) मैं राष्ट्रसभा (रुद्राय) कठोर शत्रु के लिए, (ब्रह्मद्विषे) ज्ञान के द्वेषी, (शरवे) हिंसक के (हन्तवा उ) हनन के लिए (धनुः) धनुष् (आतनोमि) तानती हूँ, (अहम्) मैं (जनाय) जनों के हित के लिए (समदम्) संग्राम (कृणोमि) करती हूं, (अहम्) मैं (द्यावापृथिवी) द्युलोक और पृथिवी पर (आविवेश) व्याप्त रहती हूँ।

भावार्थ—मैं राष्ट्रसभा कठोर शत्रु, ज्ञान के द्वेषी, हिंसक के हनन के लिए धनुष् तानती हूं। मैं जनों के हित के लिए संग्राम करती हूं और मैं द्युलोक और पृथिवी पर व्याप्त रहती हूं ॥६॥

अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे ।
ततो वि तिष्ठे भुवनानु विश्वोतामूं द्यां वर्ष्मणोप स्पृशामि ॥७॥

पदार्थ—(अहम्) मैं राष्ट्रसभा (अस्य) उस राष्ट्र की (मूर्धन्) शिर पर (पितरम्) पालक राजा वा मुख्य को (सुवे) उत्पन्न करती वा स्थापित करती हूं, (मम) मेरा (योनिः) स्थान (अप्सु अन्तः) आकाश में और (समुद्रे) समुद्र में भी है, (ततः) उसी कारण से (विश्वा) समस्त (भुवना) भुवनों (अनु) में (वितिष्ठे) स्थित रहती हूँ, (उत) और (अमूम्) इस (द्याम्) आकाश को (वर्ष्मणा) श्रेष्ठता से (उपस्पृशामि) छूती हूँ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—मैं राष्ट्रसभा इस राष्ट्र के मस्तक पर राजा अथवा पालक को बैठाती हूँ। मेरा स्थान अन्तरिक्ष और समुद्र में भी है। सारे भुवनों में प्रविष्ट होकर मैं रहती हूं। अपने गौरव से आकाश को छूती हूँ ॥७॥

अहमेव वातंइव प्र वाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा पर एना पृथिव्यैतावती महिना सं बभूव ॥८॥

पदार्थः—(**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवनों के (**आरभमाणा**) व्यवहार को चालू करते हुए (**अहम् एव**) मैं ही (**वात इव**) वायु के समान (**प्रवामि**) बहती हूँ, (**दिवा**) द्युलोक से (**परः**) परे (**एना**) इस (**पृथिव्याः**) पृथिवी से (**परः**) परे (**एतावती**) इतनी (**महिना**) महिमा (**संबभूव**) है।

भावार्थः—समस्त भुवनों के कार्य-व्यवहार को करती हुई मैं वायु की तरह बहती हूं। द्युलोक, पृथिवी से परे भी इतनी विस्तृत मेरी महिमा है ॥८॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १२६

ऋषिः १–८ कुल्मलबर्हिषः शैलूषिः, अंहोमुग्वा वामदेव्यः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ५, ६ निचृद्बृहती। २–४ विराड्बृहती। ७ बृहती। ८ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१–७ मध्यमः। ८ धैवतः ॥

न तमंहो न दुरितं देवासो अष्ट मर्त्यम्।
सजोषसो यमर्यमा मित्रो नयन्ति वरुणो अति द्विषः ॥१॥

पदार्थ—हे (**देवासः**) विद्वानो! (**यम्**) जिस (**मर्त्यम्**) मनुष्य के (**द्विषः**) द्वेषकारी काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**सजोषसः**) सम्मिलित हुए (**अर्यमा**) न्यायकारी, (**मित्रः**) मित्र, (**वरुणः**) वरणीय श्रेष्ठ विद्वान् (**अति नयन्ति**) दूर करते हैं (**तम्**) उसे (**न**) न तो (**अंहः**) पाप (**न**) न (**दुरितम्**) दुरित ही (**अष्ट**) व्यापता है।

भावार्थः—हे विद्वज्जनो ! जिस मर्त्य=मनुष्य के द्वेष्टा काम क्रोध आदि शत्रुओं को न्यायकारी मनुष्य, मित्र, वरणीय पुरुष मिलकर दूर कर देते हैं उसे न पाप और नहीं ही कोई दुरित व्याप्त होता है ॥१॥

तद्धि वयं वृणीमहे वरुण मित्रार्यमन् ।
येना निरंहसो यूयं पाथ नेथा च मर्त्यमति द्विषः ॥२॥

पदार्थः—(**वरुण**) हे वरणीय पुरुष ! (**मित्र**) हे मित्रभूत पुरुष ! (**अर्यमन्**) हे न्यायकारिन् पुरुष ! (**यूयम्**) आप लोग (**येन**) जिस अपने रक्षण से (**अंहसः**) पाप से (**मर्त्यम्**) मनुष्य की (**निपाथ**) रक्षा करते हो, (**च**) और (**द्विषः**) काम क्रोध आदि को (**अतिनेथ**) दूर करते हो (**तत्**) उस रक्षण को (**हि**) ही (**वयम्**) हम (**वृणीमहे**) मांगते हैं ।

भावार्थः—हे वरणीय पुरुष ! हे मित्र ! हे न्यायकारी पुरुष ! आप लोग जिस अपने रक्षण से मनुष्य को पाप से बचाते हो तथा काम क्रोध आदि शत्रुओं को दूर करते हो हम आप के उस रक्षण को अपने लिए मांगते हैं ॥२॥

ते नूनं नोऽयमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।
नयिष्ठा उ नो नेषणि पर्षिष्ठा उ नः पर्षण्यति द्विषः ॥३॥

पदार्थः—(**अयम्**) यह (**वरुणः**) वरुण (**मित्रः**) मित्र (**अर्यमा**) अर्यमा (**ते**) वे (**नूनम्**) निश्चय ही (**नः**) हमारे (**ऊतये**) रक्षण के लिए होते हैं, हे वरुण आदि देवो ! (**नः**) हमें (**नेषणि**) नेतव्य विषय में (**नयिष्ठाः**) ले चलो (**द्विषः**) द्वेष कारियों को (**अति पर्षिष्ठाः**) पार लगाओ ।

सूचनाः ये मित्र, वरुण और अर्यमा आदि योग्यजन निश्चय ही हमारे रक्षण के लिए होते हैं । हे इस प्रकार के पुरुषो ! आप हमें हमारे नेतव्य विषयों में नेता बनकर ले चलें और पार लगाने योग्य विषयों में हमें द्वेषों से पार ले जावें ॥३॥

यूयं विश्वं परि पाथ वरुणो मित्रो अर्यमा ।
युष्माकं शर्मणि प्रिये स्याम सुप्रणीतयोऽति द्विषः ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**वरुणः**) हे वरुण, (**मित्रः**) हे मित्र, (**अर्यमा**) हे अर्यमन् (**यूयम्**) आप (**विश्वम्**) समस्त जगत् की (**परिपाथ**) रक्षा करते हो, हे (**सुप्रणीतयः**) उत्तम नीति वाले वरुण आदि ! हम सब (**युष्माकम्**) आप लोगों के (**प्रिये**) अनुकूल (**शर्मणि**) सुख में (**स्याम**) होवें, (**द्विषः**) द्वेषकारी काम क्रोध मोह आदि को (**अति**) दूर करो ।

भावार्थः—हे वरुण ! हे मित्र ! हे अर्यमन् ! आप लोग समस्त जगत् की रक्षा करते हो । हे उत्तम व्यवहार और नीति वाले ! हम आप लोगों के प्रिय सुख में होवें और हम से हमारे काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि शत्रुओं को दूर करो ॥४॥

आ॒दि॒त्यासो॒ अति॒ स्रिधो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।
उ॒ग्रं म॒रुद्भी॑ रु॒द्रं हु॑वे॒मेन्द्र॑म॒ग्निं स्व॒स्तयेऽति॒ द्विषः॑ ॥५॥

पदार्थः—(**आदित्यासः**) ब्रह्मचर्य आदि नियमों का ४८ वर्ष तक पालन करके विविध विद्याओं को प्राप्त किए हुए विद्वान् (**वरुणः**) वरुण, (**मित्रः**) मित्र (**अर्यमा**) अर्यमन् ! आप लोग (**स्रिधः**) हिंसक वृत्तियों को हम से (**अति**) दूर कीजिए, हम (**मरुद्भिः**) ऋत्विजों सहित (**उग्रम्**) तेजस्वी (**रुद्रम्**) रुद्र ब्रह्मचारी विद्वान् (**इन्द्रम्**) ऐश्वर्यशाली पुरुष राजा को, (**अग्निम्**) ज्ञान से प्रकाशमान नेता को (**स्वस्तये**) अपने कल्याण के लिए (**हुवेम**) पुकारते हैं, वे (**द्विषः**) हमारे काम क्रोध आदि को (**अति**) दूर करें ।

भावार्थः—आदित्य विद्वान् की कोटि में विद्यमान वरुण, मित्र और अर्यमा लोग हमारी हिंसक प्रवृत्तियों को दूर करें । हम लोग अपने कल्याणार्थ ऋत्विजों सहित तेजस्वी रुद्र ब्रह्मचारी विद्वान्, ऐश्वर्यशाली राजा ज्ञान से प्रकाशमान नेता को पुकारते हैं । वे हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को हम से दूर करें ॥५॥

ने॒तार॑ ऊ॒ षु ण॑स्ति॒रो वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा ।
अति॒ विश्वा॑नि दुरि॒ता राजा॑नश्चर्षणी॒नामति॒ द्विषः॑ ॥६॥

पदार्थः— **नेतारः**) उत्तम कर्मों के नेता, (**वरुणः**) वरणीय पुरुष, (**मित्रः**) मित्र तथा (**अर्यमा**) न्यायकारी पुरुष (**नः**) हमारे दुर्गुणों को (**सु**) सुष्ठु प्रकार से (**तिरः**) दूर करें (**चर्षणीनाम**) मनुष्यों के (**राजानः**) स्वामी ये (**विश्वानि**)

समस्त (दुरिता) दुःखों-पापों आदि को (अति) दूर करें (द्विषः) काम क्रोध आदि को (अति) हटावें ।

भावार्थ -- उत्तम कर्मों के नेता ये वरुण, मित्र और अर्यमा हमारे दुर्गुणों को भली प्रकार से हमसे दूर करें। मनुष्यों के स्वामी ये समस्त दुःखों और पापों को दूर रखें और हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को हटावें ॥४॥

शुनमस्मभ्यमूतये वरुणो मित्रो अर्यमा ।

शर्म यच्छन्तु सप्रथ आदित्यासो यदीमहे अति द्विषः ॥७॥

पदार्थः—(**वरुणः**) वरुण (**मित्रः**) मित्र, (**अर्यमा**) अर्यमा (**ऊतये**) रक्षा के लिए (**अस्मभ्यम्**) हमें (**शुनम्**) सुख दें, (**आदित्यासः**) आदित्य संज्ञक विद्वान् लोग (**सप्रथः**) विस्तृत (**शर्म**) वह सुख हमें (**यच्छन्तु**) दें (**यत्**) जिसे हम (**ईमहे**) चाहते हैं (**द्विषः**) हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को (**अति**) दूर हटावे ।

भावार्थः - ये वरुण, मित्र और अर्यमा हमारी रक्षा के लिए हमें सुख प्रदान करें। आदित्य विद्वान् विस्तृत वह सुख हमें दें जिसको हम चाहते हैं। हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं को हमसे दूर करें ॥७॥

यथा ह त्यद्वसवो गौर्यं चित्पदि षिताममुञ्चता यजत्राः ।

एवो ष्व१स्मन्मुञ्चता व्यंहः प्र तार्यग्ने प्रतरं न आयुः ॥८॥

पदार्थः-- हे (**वसवः**) वासक एवम् वसुविद्वानो ! हे (**यजत्राः**) यज्ञ करने वालो ! (**त्यत् ह**) वह प्रसिद्ध आप लोग (**यथा**) जिस प्रकार (**पदि**) पांव में (**षिताम्**) बंधी हुई (**गौर्यम् चित्**) गौर वर्ण वाली गाय को (**अमुञ्चत**) छुड़ाते हो (**एवो**) उसी प्रकार (**अस्मत्**) हम से (**अंहः**) बुराई को (**सु**) भली प्रकार से (**वि मुञ्चत**) छुड़ाओ, (**अग्ने**) हे विद्वान् ! आचार्य ! (**नः**) हमारे (**आयुः**) जीवन को (**प्रतरम्**) दीर्घ (**प्रतारि**) बढ़ाओ ।

भावार्थ -- हे वसु विद्वानो ! हे यज्ञकर्त्ता आप लोग जिस प्रकार पांव में रस्सी बंधी गाय को छुड़ाते हो इसी प्रकार हमसे बुराई को छुड़ाकर दूर करो। हे विद्वन् आचार्य ! हमारी आयु को आप लम्बी बढ़ाओ ॥८॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१२७

ऋषिः—१–८ कुशिकः सौभरो, रात्रिर्वा भारद्वाजी।। देवता—रात्रिस्तवः ।।
छन्दः—१, ३, ६ विराड्गायत्री । २ पादनिचृद्गायत्री । ४, ५, ८ गायत्री । ७ निचृद्गायत्री ।। स्वरः—षड्जः ।।

रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्य१क्षभिः ।
विश्वा अधि श्रियोऽधित ।।१।।

पदार्थः–(**आयती**) आती हुई (**अक्षभिः**) रंजक तेजों अथवा नक्षत्रों से (**पुरुत्रा**) बहुत स्थानों में (**देवी**) देवन शीला (**रात्री**) यह रात्रि (**वि अख्यत्**) विशेष रूप से देखी जाती है, (**विश्वाः**) समस्त (**श्रियः**) शोभाओं को (**अधि अधित**) धारण करती है ।

भावार्थः—आती हुई और चमकते नक्षत्रों अथवा तेजों से बहुत से प्रदेशों में देवनशील भूत यह रात्रि विशेषरूप से दिखाई पड़ती है । यह समस्त शोभाओं को धारण करती है ।।१।।

ओर्वप्रा अमर्त्या निवतो देव्यु१द्वतः ।
ज्योतिषा बाधते तमः ।।२।।

पदार्थः--(**अमर्त्या**) मरणरहिता (**देवी**) देवनशीला रात्रि (**उरु**) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को (**आ अप्राः**) तम से पूरित करती है, तथा (**निवतः**) नीचे जाने वाले लता गुल्मों आदि को (**उद्वतः**) उठे हुए वृक्षादिकों को अपने प्रभाव से घेरती है, बाद में उस (**तमः**) अन्धकार को (**ज्योतिषा**) ग्रह नक्षत्रादि रूप तेज से (**बाधते** , बाधित करती है ।

भावार्थः—मरणरहित, देवनशीला रात्रि विस्तीर्ण अन्तरिक्ष को तम से पूरित करती है तथा नीचे जाने वाले लता गुल्मादिकों, और ऊपर खड़े हुए वृक्ष आदि को अपने प्रभाव से घेरती है । बाद में ग्रह नक्षत्र आदि तेजों से उस अन्धकार को पीड़ित करती है ।।२।।

निरु स्वसारमस्कृतोषसं देव्यायती ।
अपेदु हासते तमः ।।३।।

Scanned by CamScanner

पदार्थ—(आयती) आती हुई (देवी) देवनशीला रात्रि (स्वसारम्) भगिनी (उषसम्) उषा को (निः अकृत उ) प्रकाश से संस्कृत करती है (तमः) अन्धकार (अपइत्) दूर होता हुआ (हासते) जाता है । अर्थात् अपगत होता है ।

भावार्थः—आती हुई देवनशीला रात्रि अपनी भगिनी उषा को प्रकाश से संस्कृत करती है और उसके उदय होने से रात्रि सम्बन्धी अन्धकार अपगत हो जाता है ॥३॥

सा नो॑ अ॒द्य यस्या॑ व॒यं नि ते॒ याम॒न्नवि॑क्ष्महि ।

वृ॒क्षे न व॑स॒तिं वयः॑ ॥४॥

पदार्थः - (यस्याः) जिस (ते) इस रात्रि के (यामन्) प्राप्त होने पर (वयम्) हम उसी प्रकार (नि अविक्ष्महि) सुख से घर में निवास करते हैं (न) जिस प्रकार (वृक्षे) वृक्षपर (वयः) पक्षिगण (वसतिम्) निवास करते हैं (सा) वह रात्रि (अद्य) आज सुखकारी होवे ।

भावार्थः—जिस इस रात्रि के आने पर हम उसी प्रकार अपने घरों में सुख से निवास करते हैं जिस प्रकार वृक्ष पर पक्षिगण निवास करते हैं, वह रात्रि आज हमें सुखावहा हो ॥४॥

नि ग्रामा॑सो अविक्षत॒ नि प॒द्वन्तो॒ नि प॒क्षिणः॑ ।

नि श्ये॒नास॑श्चिद॒र्थिनः॑ ॥५॥

पदार्थः—जिस रात्रि के आ जाने पर (ग्रामासः) सारे लोग (नि अविक्षत) सो जाते हैं, (पद्वन्तः) पशु आदि (नि) सो जाते हैं (पक्षिणः) पक्षी लोग (नि) सो जाते हैं (अर्थिनः) शीघ्र गमन वाले (श्येनाः चित्) श्येन आदि भी (नि अविक्षत) सो जाते हैं वह रात्रि सब को सुख देने वाली हो ।

भावार्थः—जिस रात्रि के आ जाने पर सारे लोग सो जाते हैं, सारे पशु सो जाते हैं, सारे पक्षी सो जाते हैं और शीघ्र गमन वाले श्येन भी सो जाते हैं वह रात्रि सब को सुख देने वाली हो ॥५॥

या॒वया॑ वृ॒क्यं१॒॑ वृकं॑ य॒वय॑ स्ते॒नमू॑र्म्ये ।

अथा॑ नः सु॒तरा॑ भव ॥६॥

पदार्थः—(उर्म्ये) यह रात्रि (वृक्यम्) मादा भेड़िया और (वृकम्)

भेड़िये को (यवय) हमसे दूर रखे, (स्तेनम्) चोर को दूर रखे, (अथ) और (नः) हमारे लिए (सुतरा) अच्छी प्रकार बीतने वाली (भव) होवे ।

भावार्थः—यह रात्रि मादा भेड़िया और नर भेड़िया से हमें दूर रखे, चोर से हमें दूर रखे और भगवान् की कृपा से सुख से बीतने वाली होवे ॥६॥

उप॑ मा॒ पेपि॑शत्तमः॑ कृ॒ष्णं व्य॑क्तमस्थित ।
उष॑ ऋ॒णेव॑ यातय ॥७॥

पदार्थः—(पेपिशत्) सबको आश्लिष्ट करने वाला (कृष्णम्) काला (व्यक्तम्) स्पष्ट रूप नैश (तमः) अन्धकार (माम्) मुझ को (उप अस्थित) उपस्थित होता है (उषस्) यह उषा (ऋणा इव) ऋणों की भांति (यातय) भगा देती है ।

भावार्थः—सभी पदार्थों को आश्लिष्ट करने वाला काला स्पष्ट रूप वाला नैश अन्धकार मुझे घेरता है । यह उषा ऋण की भांति उस अन्धकार को भगा देती है ॥७॥

उप॑ ते॒ गा इ॒वाक॑रं वृणी॒ष्व दु॑हितर्दिवः ।
रात्रि॒ स्तोमं॒ न जि॒ग्युषे॑ ॥८॥

पदार्थः—(रात्रि ते) इस रात्रि को (गा इव) गौवों के समान (उप-आकरम्) अपने समक्ष करता हूँ (दिवः) प्रकाशमान सूर्य की (दुहितः) पुत्री अथवा दिन की तनूपा यह रात्रि (जिग्युषः) जयन शील मुझ यजमान के (स्तोमम् न) स्तोत्र के समान हवि आदि को भी (वृणीष्व) यज्ञ में प्राप्त करती है ।

भावार्थः—दुग्ध देने वाली गायों के समान मैं यजमान दिन अथवा द्योतमान सूर्य की पुत्री इस रात्रि को अपने समक्ष रखता हूं अर्थात् अपने ज्ञान में रखता हूँ । यज्ञ में यह मेरे स्तोत्र की भांति ही हवि आदि को भी प्राप्त करती है ॥८॥

यह दशम मण्डल में एक सौ सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१२८

ऋषिः—१—९ विहव्यः ॥ देवता—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ३ विराट्त्रिष्टुप् । २, ५, ८ त्रिष्टुप् । ३, ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ भुरिक्त्रिष्टुप् । ९ पादनिचृज्जगती ॥ स्वरः—१—८ धैवतः । ९ निषादः ॥

ममा॑ग्ने॒ वर्चो॑ विह॒वेष्व॑स्तु व॒यं त्वेन्धा॑नास्त॒न्वं॑ पुषेम ।
मह्यं॑ नमन्तां प्र॒दिश॒श्चत॑स्र॒स्त्वयाध्य॑क्षेण॒ पृत॑ना जयेम ॥१॥

पदार्थः (अग्ने) यह अग्नि ऐसा है कि इसके द्वारा (विहवेषु) संग्रामों और यज्ञों में (मम) मुझे (वर्चः) दीप्ति (अस्तु) होती है, (त्वा) इस को (इन्धानः) प्रज्वलित करते हुए हम (तन्वम्) इसके और अपने शरीर की (पुषेम) पुष्टि करते हैं, (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) दिशायें (मह्यम्) मेरे लिए (नमन्ताम्) नम्र बनती वा झुकती है (त्वया) इसके (अध्यक्षेण) अध्यक्ष=प्रभावशाली होने से (पृतनाः) संग्रामों को (जयेम) जीतते हैं ।

भावार्थः—यह अग्नि ऐसा है कि इसके द्वारा संग्रामों तथा यज्ञों में मुझे दीप्ति होती है । इसको जलाते हुए हम हवि आदि से इसके और यज्ञ से होने वाले लाभों से अपने शरीर की पुष्टि करते हैं । चारों दिशायें मेरे लिए झुकती हैं । इस अग्नि के प्रभावशाली होने से हम संग्रामों को जीतते हैं ॥१॥

मम॑ दे॒वा वि॑ह॒वे स॑न्तु॒ सर्व॒ इन्द्र॑वन्तो म॒रुतो॒ विष्णु॑र॒ग्निः ।
ममा॒न्तरि॑क्षमु॒रुलो॑कमस्तु॒ मह्यं॒ वातः॑ पवतां॒ कामे॑ अ॒स्मिन् ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्रवन्तः) इन्द्र के सहित (मरुतः) मरुद्गण, (विष्णुः) सूर्य, (अग्निः) अग्नि आदि (सर्वे) सभी (देवाः) देव (मम) मेरे (विह्वे) यज्ञ में और संग्राम में (सन्तु) साधक होवें, (मम) मेरे लिए (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष (उरुलोकम्) विस्तीर्ण प्रकाश वाला (अस्तु) होवे, (मह्यम्) मेरे लिए (कामे) कमनीय (अस्मिन्) इस यज्ञ में (वातः) वायु (पवताम्) बहे ।

भावार्थः—इन्द्र=विद्युत् के सहित मरुद्गण, सूर्य, अग्नि आदि सभी देव मेरे यज्ञ में और संग्राम में साधक होवें । मेरे लिए अन्तरिक्ष विस्तीर्ण प्रकाश वाला होवे । मेरे लिये कमनीय यज्ञ में वायु अनुकूलता से बहे ॥२॥

Scanned by CamScanner

मयि देवा द्रविणमा यजन्तां मय्याशीरस्तु मयि देवहूतिः ।

दैव्या होतारो वनुषन्त पूर्वेऽरिष्टाः स्याम तन्वा सुवीराः ॥३॥

पदार्थः—(**देवाः**) ये यज्ञ के सभी इन्द्र आदि देव और विद्वज्जन (**मयि**) मुझ स्तोता में (**द्रविणम्**) धन को (**आ यजताम्**) प्राप्त करावें, (**मयि**) मुझ पर (**आशीः**) आशीर्वाद (**अस्तु**) होवें (**मयि**) मुझ में (**देवहूतिः**) यज्ञ हो, (**पूर्वे**) ज्ञान से परिपूर्ण (**दैव्या होतारः**) याज्ञिक ऋत्विग्जन (**वनुषन्त**) देवों के प्रति आहुति देवें, (**सुवीराः**) उत्तम सन्तान वाले (**तन्वा**) शरीर से (**अरिष्टाः**) उत्पीड़ित (**स्याम**) होवें ।

भावार्थः—यज्ञ के इन्द्र आदि सभी देव और विद्वज्जन मुझ स्तोता को धन प्राप्त करावें । मुझ पर आशीर्वाद बरसे । मुझ में सदा यज्ञ की भावना रहे । ज्ञान से पूर्ण याज्ञिक ऋत्विग्जन देवों के प्रति आहुति देवें । उत्तम सन्तान वाले हम शरीर से अपीड़ित होवें ॥३॥

मह्यं यजन्तु मम यानि हव्याकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु ।

एनो मा नि गां कतमच्चनाहं विश्वे देवासो अधि वोचता नः ॥४॥

पदार्थः—(**मह्यम्**) मेरे लिए ऋत्विग्जन (**यजन्तु**) यज्ञ का सम्पादन करें, (**यानि**) जो (**हव्या**) हवनीय पदार्थ हैं वे (**मम**) मेरे हों, (**मे**) मेरे (**मनसः**) मन का (**आकूतिः**) संकल्प (**सत्या**) सत्य (**अस्तु**) हो (**अहम्**) मैं (**कतमत्-चन**) किसी भी (**एनः**) पाप को (**मा**) न (**निगाम्**) प्राप्त होऊं वा करूं (**विश्वे देवाः**) हे विद्वान् लोगो ! आप (**नः**) हमें (**अधिवोचत**) उपदेश करो ।

भावार्थः—मेरे लिए ऋत्विग्जन यज्ञ का संपादन करें । जो हवनीय पदार्थ हैं वे सदा हमारे पास तैयार रहें । मेरे मन के संकल्प सत्य हों । मैं किसी भी पाप को न करूं । हे विद्वान् लोगो ! आप हमें उत्तम उपदेश किया करो ॥४॥

देवीः षळुर्वीरुरु नः कृणोत विश्वे देवास इह वीरयध्वम् ।

मा हास्महि प्रजया मा तनूभिर्मा रधाम द्विषते सोम राजन् ॥५॥

पदार्थः—(**षट्**) छः द्युलोक, पृथिवी, दिन, रात्रि, जलें और ओषधियें जो (**देवीः**) देवनशील हैं और (**उर्वीः**) विशाल हैं (**उरु**) महत् धन (**नः**) हमें

(कृणोत) देवें (विश्वे देवासः) समस्त दिव्य शक्तियें (इह) इस धन आदि की प्राप्ति में (वीरयध्वम्) पराक्रम करें, (मा) न (प्रजया) सन्तान और (मा) न तो (तनूभिः) शरीरों से (हास्महि) रहित हों, (राजन्) दीप्तिमान् (सोम) हे सोम=ज्ञानिन् ! (द्विषते) शत्रु के (मा) नहीं (रधाम) वश होवें।

भावार्थः—द्युलोक, पृथिवी, दिन, रात्रि, जल और ओषधि ये छः देवनशील पदार्थ हमें प्रचुर धन और शक्ति देवें। समस्त दिव्य शक्तियें इस धन आदि की प्राप्ति में पराक्रम करते रहें। हम सन्तान और शरीर से रहित न हों। हे दीप्तिमन् ज्ञानिन् ! हम कभी शत्रु के वश में न हों ॥५॥

अग्ने मन्युं प्रतिनुदन्परेषामदब्धो गोपाः परि पाहि नस्त्वम् ।
प्रत्यञ्चो यन्तु निगुतः पुनस्तेऽमैषां चित्तं प्रबुधां वि नेशत् ॥६॥

पदार्थः—(अग्ने) हे राजन् ! (परेषाम) शत्रुओं के (मन्युम) क्रोध को (प्रतिनुदन्) तिरस्कृत करते हुए (अदब्धः) अपीड़ित (गोपाः) रक्षक (त्वम्) तू (नः) हमारी (परि पाहि) रक्षा कर। (ते) वे शत्रु लोग (प्रत्यञ्चः) प्रति निवर्तमान, (निगुतः) गुनगुनाते हुए (पुनः) फिर अपने स्थान पर (यन्तु) चले जावें, (प्रबुधाम्) प्रबुध्यमान (एषाम्) इन शत्रुओं का (चित्तम्) मन (अमा) एक साथ ही (विनेशत्) नष्ट हो जावें।

भावार्थः— हे राजन् ! शत्रुओं के क्रोध को तिरस्कृत करते हुए, अपीड़ित और रक्षक आप हमारी रक्षा करें। वे शत्रु अपने पीछे लौटते हुए और गुनगुनाते हुए अपने स्थान को वापस जावें। प्रबुध्यमान इन शत्रुओं के होश हवाश नष्ट हो जावें ॥६॥

धाता धातॄणां भुवनस्य यस्पतिर्देवं त्रातारमभिमातिषाहम् ।
इमं यज्ञमश्विनोभा बृहस्पतिर्देवाः पान्तु यजमानं न्यर्थात् ॥७॥

पदार्थः—(धात्रीणाम्) धारक अथवा उत्पादक शक्तियें एवम् पदार्थों का भी (धाता) धारक एवं उत्पादक (यः) जो इन्द्र=परमेश्वर (भुवनस्य) भुवन का (पतिः) स्वामी है उस (त्रातारम्) सब के रक्षक (अभि मातिसाहम्) समस्त बुराइयों को नष्ट करने वाले (देवम्) देव परमेश्वर की हम उपासना करते हैं, (उभा) दोनों (अश्विना) ऋत्विग् और पुरोहित (बृहस्पतिः) वेदवाणी का पालक महा वेदज्ञ तथा (देवाः) समस्त विद्वान् लोग (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को और यजमान को (न्यर्थात्) बुराई वा खराबी से (पान्तु) बचावें।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—धारकों का धारक, उत्पादकों का उत्पादक जो परमेश्वर जगत् का स्वामी है उस सबके रक्षक और बुराइयों को दूर करने वाले प्रभु की मैं उपासक यजमान उपासना करता हूं। दोनों ऋत्विग् और पुरोहित महादेव और अन्य विद्वान् जन इस यज्ञ और यजमान को बुराई और खराबी से बचावें ॥७॥

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन्हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः ।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः ॥८॥

पदार्थः—(**उरुव्यचाः**) विस्तीर्ण व्यापन युक्त (**महिषः**) महान् (**पुरुहूतः**) बहुतों के द्वारा प्रशंसनीय (**पुरुक्षु**) बहुत निवास वाला इन्द्र=सूर्य (**अस्मिन्**) इस (**हवे**) हवन में (**नः**) हमें (**शर्म**) सुख (**यंसद्**) देवे। (**हर्यश्वः**) हरणशील किरणों वाला (**सः**) वह (**इन्द्रः**) सूर्य (**नः**) हमारी (**प्रजायै**) सन्तति को (**मृडय**) सुखी करे, (**नः**) हमें (**मा**) न (**रिरिषः**) पीड़ित करे (**मा**) न (**परा दाः**) परित्याग करे।

भावार्थः—विस्तीर्ण व्यापन वाला, बहुतों के द्वारा प्रशंसनीय, बहुत निवास वाला, सूर्य हमारे इस हवन में हमें सुख दे। हरणशील किरणों वाला वह हमारी सन्तति को सुखी करे। हमें न पीड़ित करे और न हमारा परित्याग करे ॥८॥

ये नः सपत्ना अप ते भवन्त्विन्द्राग्निभ्यामव बाधामहे तान् ।
वसवो रुद्रा आदित्या उपरिस्पृशं मोग्रं चेत्तारमधिराजमक्रन् ॥९॥

पदार्थः—(**नः**) हमारे (**ये**) जो (**सपत्नाः**) शत्रु हैं (**ते**) वे हमसे (**अप भवन्तु**) दूर रहें, (**तान्**) उन्हें हम (**इन्द्राग्नीभ्याम्**) विद्युद् और अग्नि के द्वारा (**अव बाधामहे**) बाधित करें, (**वसवः**) वसु संज्ञक विद्वज्जन, (**रुद्राः**) रुद्र ब्रह्मचारी विद्वज्जन और (**आदित्याः**) आदित्य विद्वज्जन (**मा**) मुझे (**उपरिस्पृशम्**) उच्चस्थानीय, (**उग्रम्**) तेजस्वी (**चेत्तारम्**) विचार करने वाला (**अधिराजम्**) अधीश्वर (**अक्रन्**) बनावें।

भावार्थः—हमारे जो शत्रु लोग हैं वे हम से दूर भागें। उन्हें हम विद्युद् और अग्नि की शक्ति से बाधित करें। वसु, रुद्र और आदित्य संज्ञक विद्वान् और प्रजाजन मुझे उच्चपदस्थ, तेजस्वी, विचारवान् अधीश्वर बनावें ॥९॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १२९

ऋषिः १- ७ प्रजापतिः परमेष्ठी ॥ देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१-३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ ६ त्रिष्टुप् । ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सूचना इस १२९वें सूक्त को नासदीयसूक्त कहा जाता है। इसका देवता भाववृत्त=सत्ता है। इसमें जगत् के मूल कारणों और सृष्टि की प्रागवस्था एवम् उत्पत्ति का वर्णन है। लोग इसकी व्याख्या बहुत तोड़ मरोड़ कर करते हैं। परन्तु इस सूक्त में त्रैतवाद का वर्णन है—यह सन्देह-रहित तथ्य है।

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

पदार्थः—(तदानीम्) सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व (न) न (असत्) अभाव वा असत्ता (आसीत्) होता है (नो) और न (सत्) व्यक्त जगत् (आसीत्) रहता है (न) न (रजः) लोक रहता है और (नो) न (व्योम) अन्तरिक्ष (आसीत्) रहता है (यत्) जो आकाश से (परः) ऊपर नीचे लोक-लोकान्तर हैं वे भी नहीं रहते। (किम्) क्या (आवरीवः) किसको घेरता वा आवृत्त करता है, सब कुछ (कुहकस्य) कुहरान्धकार के (शर्मन्) गृह=आवरण में रहता है, (गहनम्) गहन (गभीरम्) गहरा (अम्भः) जल (किम्) क्योंकि (आसीत्) रह सकता है।

भावार्थः—सृष्टि की रचना के पूर्व न अभाव रहता और न व्यक्त जगत् रहता है, न कोई लोक-रहता है न यह अन्तरिक्ष तथा उसके ऊपर नीचे के लोक-लोकान्तर रहते हैं। क्या किसको घेरता वा आवृत करता है? सब कुछ कुहक=कुहरे के अन्धकार में आवृत रहता है। गहन गहरा जल क्योंकर हो सकता है? ॥१॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास ॥२॥

पदार्थः—उस अवस्था में (न) न तो (मृत्युः) मृत्यु (आसीत्) रहता है (न) और न (तर्हि) उस समय (अमृतम्) काल का नित्य व्यवहार रहता है,

Scanned by CamScanner

तथा (रात्र्याः) रात्रि का और (अह्नः) दिन का (प्रकेतः) प्रज्ञापक चिन्ह वा व्यवहार (आसीत्) रहता है (अवातः) कम्पनरहित (स्वधया) प्रकृति से युक्त (तत्) वह (एकम्) एक ब्रह्म=महान् परमेश्वर (आनीत्) चेतना का व्यवहार करता है (तस्मात्) उससे (परः) परे (अन्यत् ह) दूसरा उसके समान, उससे बड़ा वा उस जैसा (किञ्चन) कोई (न) नहीं (आस) रहता है ।

भावार्थः—उस अवस्था में न मृत्यु और न नित्य काल का व्यवहार रहता है । तथा दिन और रात्रि का ज्ञापक चिन्ह वा व्यवहार भी नही होता है । स्वधा=प्रकृति से युक्त कम्पनरहित एक परमेश्वर अपने में स्फूर्त्तिमान् रहता है । उससे भिन्न,उस समान,उससे अधिक और उस जैसा कोई नहीं रहता है ॥२॥

तम॑ आसी॒त्तम॑सा गू॒ळ्हमग्रे॑ऽप्रके॒तं स॑लि॒लं सर्व॑मा इ॒दम् ।
तु॒च्छ्येना॒भ्वपि॑हितं॒ यदासी॒त्तप॑स॒स्तन्म॑हि॒नाजा॑यतैक॑म् ॥३॥

पदार्थः—(अग्रे) सृष्टि से पूर्व की अवस्था में (तमसा) अन्धकार से (गूढम्) आच्छादित (तमः) प्रकृति (आसीत्) रहती है, (सर्वम्) सब कुछ (इदम्) यह (अप्रकेतम्) अप्रकट चिन्हरहित (सलिलम्) सबको लीन किये हुए सलिल=प्रधान प्रकृति (आः) व्यापता है (यत्) जो (आभु) व्यापक प्रकृति (तुच्छ्येन) कारणरूपता से (अपिहितम्) आच्छादित (आसीत्) रहती है (तद्) उसको (तपसः) ताप के (महिना) प्रभाव से (एकम्) एक परमेश्वर (अजायत) कार्यरूप में उत्पन्न करता है ।

भावार्थः—सृष्टि से पूर्व की अवस्था में अन्धकार से आच्छादित प्रकृति विद्यमान रहती है । यह सब कुछ कारण रूप सलिल=प्रकृति में लीन रहता है । व्यापक प्रधान वा प्रकृति तत्त्व कारणरूप में व्यापता रहता है । उसको ही वह अद्वितीय परमेश्वर अपने ताप के प्रभाव एवम् निमित्तता से कार्यरूप में प्रकट करता है ॥३॥

काम॒स्तदग्रे॒ सम॑वर्त॒ताधि॒ मन॑सो॒ रेतः॑ प्रथ॒मं यदासी॑त् ।
स॒तो बन्धु॒मस॑ति॒ निर॑विन्दन्हृ॒दि प्र॒तीष्या॑ क॒वयो॑ मनी॒षा ॥४॥

पदार्थः—(अग्रे) प्रागवस्था में (कामः) सृष्टि रचना की इच्छा=इक्षति= ईक्षण (अधि सम् अवर्तत) सब के ऊपर विद्यमान होता है (तत्) वह (यत्)

Scanned by CamScanner

जोकि (**मनसः**) मन का (**प्रथमम्**) प्रथम (**रेतः**) बीज (**आसीत्**) होता है (**कवयः**). कान्तदर्शन विश्वसृज् तत्त्व (**हृदि**) प्रकृति के केन्द्र में विद्यमान (**मनीषा**) परमेश्वर की ज्ञान शक्ति से (**प्रतीष्य**) प्रेरित होकर (**सतः**) व्यक्त जगत् के (**बन्धुम्**) बांधने वाले कार्य कारणात्मक व्यवहार को (**असति**) अव्यक्त प्रकृति में अथवा व्यक्तता के बन्धनभूत कार्य जगत् को अव्यक्त प्रकृति में (**निरविन्दन्**) प्राप्त करते हैं ।

भावार्थः—प्रागवस्था में सृष्टिरचना की इच्छा=ईक्षति अथवा काम सब पर विद्यमान होता है और वह ही मन का प्रथम बीज होता है। क्रान्तदर्शन विश्वसृज् आदि कारण तत्त्व प्रकृति के केन्द्र में विद्यमान भगवान् की मनीषा=ज्ञान शक्ति से प्रेरित होकर व्यक्तता के बन्धन करने वाले कार्य जगत् को अथवा कार्यकारण सम्बन्ध को अव्यक्त कारण प्रकृति में प्राप्त करते हैं ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरि स्विदासी३त् ।
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

पदार्थः—(**एषाम्**) इन कारण तत्त्वों की (**रश्मिः**) रश्मि (**तिरश्चीनः**) चारों तरफ हुई (**विततः**) फैली हुई हो जाती है, (**अधः स्वित्**) नीचे को भी (**आसीत्**) होती है और (**उपरि स्वित्**) ऊपर को भी (**आसीत्**) होती है, उसमें दिखाई पड़ता है कि (**रेतोधाः**) अपने कर्म फलों के बीज को धारण करने वाले जीव (**आसन्**) हैं और (**महिमानः**) मुक्त जीव भी (**आसन्**) हैं, (**स्वधा**) प्रकृति (**अवस्तात्**) नीचे और (**प्रयतिः**) परमेश्वर का प्रयत्न (**परस्तात्**) उसके ऊपर है ।

भावार्थः—इन कारणों की रश्मि चारों ओर हुई फैल जाती है। नीचे को और ऊपर को भी होती है। उस रश्मि प्रकाश में अपने कर्मों के फल की वासना और कर्मों को धारण करने वाले बद्धजीव भी दिखाई पड़ते हैं और मुक्त जीव भी दिखाई पड़ते हैं। स्वधा=प्रकृति नीचे और परमेश्वर का प्रयत्न उसके ऊपर विद्यमान होता है ॥५॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**कः**) प्रजापति=परमेश्वर (**अद्धा**) निश्चय से (**वेद**) जानता है, (**इह**) इस विषय में (**कः**) सुख स्वरूप वह भगवान् ही (**प्रवोचत्**) बताता है कि (**कुतः**) कहां से (**आ जाता**) आई और (**कुतः**) कहां से (**इयम्**) यह (**विसृष्टिः**) विविध सृष्टि है, (**देवाः**) विद्वान् और इन्द्रिय आदि (**अस्य**) इस जगत् के (**विसर्जनेन**) रचने के (**अर्वाक्**) बाद होते हैं । (**अथ**) अतः इनमें (**कः**) कौन (**वेद**) जानता है (**यतः**) जिससे यह जगत् (**आ बभूव**) उत्पन्न होता है ।

भावार्थः—प्रजापति=परमेश्वर निश्चय से जानता है और इस विषय में सुख स्वरूप वह परमेश्वर ही बताता है कि कहां से यह सृष्टि आई और कहां से यह विविध सृष्टि हुई है । विद्वान् और इन्द्रियगण भी इस जगत् की रचना के बाद होते हैं अतः इनमें कौन जानता है कि जिससे यह जगत् उत्पन्न हुआ है ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥७॥

पदार्थः—(**इयम्**) यह (**विसृष्टिः**) विविध सृष्ट=(**यतः**) जिससे (**आबभूव**) उत्पन्न होती (**वा**) अथवा (**यदि**) जिसमें (**दधे**) धारित है या अथवा जिसमें (**न**) नहीं (**दधे**) धारित है उसको (**यः**) जो (**अस्य**) इसका (**अध्यक्षः**) अधिष्ठाता एवम् आधार (**परमे**) परमोत्कृष्ट (**व्योमन्**) प्रकाश स्वरूप में स्थित है (**सः**) वह (**अंग**) ही (**वेद**) सर्वथा जानता है, (**वा**) और (**यदि**) यदि दूसरा कोई जानता है तो वह (**न**) नहीं (**वेद**) पूर्णतया जानता है ।

भावार्थः—यह विविध सृष्टि जिससे उत्पन्न होती अथवा जिसमें धारित होती है वा जिसमें नहीं धारित होती उसको इसका अधिष्ठाता परमेश्वर ही पूर्णतया जानता है अन्य कोई इसे पूर्णतया नहीं जानता है ॥७॥

सूचना - इस सूक्त के मन्त्रों में प्रयुक्त स्वधा, नमः, सलिल और आयु पदों का अर्थ प्रकृति है । इस विषय का सप्रमाण वणन मेरी पुस्तकें 'वैदिक ज्योति' और 'दर्शनतत्त्व विवेक' में देखा जा सकता है ।

यह दशम मण्डल में एकसो उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १३०

ऋषिः—१—७ यज्ञः प्राजापत्यः : देवता—भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१ विराड्जगती । २ भुरिक्त्रिष्टुप् । ३, ६, ७ त्रिष्टुप् । ४ विराट्-त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१ निषादः । २—७ धैवतः ॥

सूचना—इस सूक्त का देवता भी भाववृत्त है। इस सूक्त में सृष्टि का वर्णन यज्ञ के रूप में किया गया है। यज्ञ वेद मन्त्रों से सम्पन्न होता है। वेद मन्त्रों का सम्बन्ध सृष्टि के पदार्थों के साथ है। छन्द ही पदार्थों को घेरते हैं। इनसे ही प्रत्येक पदार्थ की परिधि बनती है। इस विषय का वर्णन यहां सूक्त में किया गया है।

यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं देवकर्मेभिरायतः ।
इमे वयन्ति पितरो य आययुः प्र वयाप वयेत्यासते तते ॥१॥

पदार्थः—(**यः**) जो विश्वरूप (**यज्ञः**) यज्ञ (**विश्वतः**) चारों तरफ से (**तन्तुभिः**) विस्तार करने वाले कारणों से (**ततः**) विस्तृत किया गया है, (**एकशतम्**) १०१ [८ वसु १२ आदित्य, ११ रुद्र, ११ विश्वदेव, ४९ मरुत् तथा १० विश्वसृज] (**देवकर्मभिः**) देवों की गतिविधियों से (**आयतः**) दीर्घ विस्तार को लाया गया है, (**इमे**) ये (**पितरः**) पालक शक्तियां (**ये**) जो (**आययुः**) इस जगत् को व्याप्त करती है इस विश्व को (**वयन्ति**) बुनती है, (**प्रवय**) ऊपर को बुनो (**अपवय**) नीचे को बुनो-ऐसी प्रेरणा करती हैं (**तते**) इस जगत्‌रूपी यज्ञपट के विस्तृत रूप में तन जाने पर (**इति**) इस प्रकार (**आसते**) इसमें स्थित वा कार्यरत होते हैं।

भावार्थः—जो विश्वसर्गरूप यज्ञ चारों तरफ से विस्तार के कारणों से विस्तृत किया जाता है तथा १०१ देवकर्मों=दैवी पदार्थों की गति-विधियों से प्रवर्धित होता है उसे ये पालक शक्तियां (विश्वसृज्) जो इसमें व्याप्त हैं पट की भांति बुनती हैं। ऊपर बुनो और नीचे को बुनो—ऐसी प्रेरणा करती हैं। इस जगत् रूपी यज्ञ पट के विस्तृत रूप में तन जाने पर इस प्रकार इसमें स्थित और कार्यरत होती हैं ॥१॥

पुमाँ एनं तनुत उत्कृणत्ति पुमान्वि तत्ने अधि नाके अस्मिन् ।
इमे मयूखा उप सेदुरू सदः सामानि चक्रुस्तसराण्योतवे ॥२॥

पदार्थः—(**पुमान्**) परम पुरुष परमेश्वर ही (**एनम्**) इस संसार सर्ग को (**तनुते**) वस्त्रवत् तानता वा विस्तारित करता है और समय पर (**उत्कृणत्ति**) समेटता है (**पुमान्**) परम पुरुष ही (**अस्मिन्**) इस भूलोक में तथा (**नाके अधि**) आकाश में इस सर्ग को (**तत्ने**) फैलाता है (**इमे**) ये (**मयूखाः**) रश्मिभूत विश्वसृज् देव (**सदः**) इस यज्ञ में देवयजन स्थान को (**उप सेदुः**) प्राप्त करते हैं तथा (**ओतवे**) इस यज्ञ पट को बुनने के लिए (**सामानि**) रथन्तर आदि सामों को (**तसराणि**) बाना बनाते हैं।

भावार्थः—परम पुरुष परमेश्वर ही संसार सर्ग को वस्त्रवत् तानता है और विस्तृत करता है और समय पर प्रलयकाल में समेटता है। परम पुरुष ही इस पृथिवी पर और आकाश में इस सर्ग को विस्तृत करता है। ये रश्मिभूत विश्वसृज देव इस यज्ञ में देवयजन स्थान को प्राप्त करते हैं तथा इस यज्ञ पट को बुनने के लिए रथन्तर आदि सामों को ताना बनाते हैं ।।२।।

कासीत्प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्यं किमासीत्परिधिः क आसीत् ।
छन्दः किमासीत्प्रउगं किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ।।३।।

पदार्थः—(**यत्**) जब (**विश्वे**) सब (**देवाः**) साध्यदेव (**देवम्**) परमदेव परमेश्वर को (**अयजन्त**) इस सर्गात्मक यज्ञ में निमित्त कारण प्रजापतिरूप करते हैं तब (**प्रमा**) प्रमाण (**का**) किस प्रकार का (**आसीत्**) होता है (**प्रतिमा**) मापने का साधन क्या होता है, (**निदानम्**) इष्ट ध्येय क्या होता है ? (**आज्यम्**) घृत वा सामग्री (**किम्**) क्या (**आसीत्**) होता है, (**परिधिः**) जिस प्रकार यज्ञ में परिधिरूप तीन समिधायें रखी जाती हैं उस प्रकार की परिधि क्या होती है ? गायत्री आदि (**छन्दः**) छन्दः (**किम्**) क्या (**आसीत्**) क्या होता है, (**प्रउगम् उक्थम्**) प्रउग आदि उक्थ क्या रहता है ।

भावार्थः—जिस समय समस्त साध्यदेव परमदेव परमेश्वर को इस सर्गात्मक यज्ञ में निमित्त कारण प्रजापतिरूप करते हैं तब प्रमाण क्या होता है ? मापने का साधन क्या होता है ? इष्ट ध्येय क्या होता है ? घृत क्या होता है, परिधि क्या होती है ? गायत्री आदि छन्द कौन होते हैं और प्रउग आदि उक्थ क्या होता है ।।३।।

Scanned by CamScanner

अग्नेर्गायत्र्यभवत्सयुग्वोष्णिहया सविता सं बभूव ।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान्बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

पदार्थः—(**अग्नेः**) अग्नि के (**सयुग्वा**) साथ सम्बद्ध हुआ (**गायत्री**) गायत्री छन्द (**अभवत्**) उत्पन्न होता है, (**उष्णिहया**) उष्णिग् (**सविता**) सविता (**संबभूव**) होता है, (**उक्थैः**) स्तुत शस्त्रों सहित (**अनुष्टुभा**) अनुष्टुप् छन्द से संबद्ध हुआ (**महस्वान्**) तेजस्वी (**सोमः**) सोम उत्पन्न होता है (**बृहस्पतेः**) बृहस्पति के (**वाचम्**) वाक्य को वृहती छन्दः (**आवत्**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—अग्नि [जो यज्ञ का देवता और मन्त्र का भी देवता है] उससे सम्बद्ध गायत्री छन्द, उष्णिग् छन्द से सम्बद्ध सविता, स्तुत शस्त्रों से युक्त अनुष्टुप् छन्द से सम्बद्ध तेजस्वी सोम और वृहती छन्द से सम्बद्ध बृहस्पति उत्पन्न होते हैं। अर्थात् इन यज्ञ के देवों और मन्त्रों के विषयों का सम्बन्ध इन छन्दों से होता है ।।४।।

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्नः ।
विश्वान्देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः ॥५॥

पदार्थः—(**विराट्**) विराट् छन्द (**मित्रावरुणयोः**) मित्र और वरुण से (**अभिश्रीः**) आश्रित वा सम्बद्ध होते हैं अर्थात् मित्रावरुण विराट् छन्दः से सम्बद्ध उत्पन्न होते हैं, (**इह**) इस यज्ञ में (**अह्नः भागः**) दिनका भाग माध्यम दिन सवन और (**त्रिष्टुप्**) त्रिष्टुप् छन्दः (**इन्द्रस्य**) इन्द्र के आश्रित है अर्थात् इनसे सम्बद्ध इन्द्र उत्पन्न होता है, (**विश्वान् देवान्**) विश्वे देवों को (**जगती**) जगती छन्द (**आविशे**) व्याप्त करता है अर्थात् विश्वे देवों का सम्बन्ध जगती छन्द से है, (**तेन**) उस यज्ञ के द्वारा (**ऋषयः**) ऋषि और (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग (**चाक्लृप्रे**) रचे जाते हैं ।

भावार्थः—मित्र और वरुण विराट् छन्द से सम्बद्ध उत्पन्न होते हैं, दिनका भागभू मध्याह्नसवन और त्रिष्टुप् छन्द से सम्बद्ध इन्द्र उत्पन्न होना है, विश्वेदेव जगती छन्दः से सम्बद्ध उत्पन्न होते हैं और इस प्रकार उस यज्ञ के द्वारा ऋषि और मनुष्य आदि उत्पन्न किये जाते हैं।।५।।

चाक्लृप्रे तेन ऋषयो मनुष्या यज्ञे जाते पितरो नः पुराणे ।
पश्यन्मन्ये मनसा चक्षसा तान्य इमं यज्ञमयजन्त पूर्वे ॥६॥

पदार्थः – (**पुराये**) सृष्टि सम्बन्धी इस (**यज्ञे**) यज्ञ के (**जाते**) होने पर (**तेन**) उसके द्वारा (**ऋषयः**) ऋषि लोग, (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग और (**नः**) हमारे (**पितरः**) पूर्वपालक माता-पिता आदि (**चाक्लृप्रे**) उत्पन्न किये जाते हैं (**ये पूर्वे**) जो पूर्ववर्त्ती साध्य देव आदि (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) सृष्टि यज्ञ को (**श्रयजन्त**) संपन्न करते हैं (**तान्**) उनको (**चक्षसा**) दर्शनहेतुभूत (**मनसा**) मन से (**पश्यन्**) जानते हुए मैं सृष्टिविद्या का ज्ञाता (**मन्ये**) विचरता हूँ।

भावार्थः– सृष्टि सम्बन्धी इस यज्ञ के वितत होने पर उसके द्वारा ऋषि, मनुष्य और उनमें हमारे माता-दिता आदि उत्पन्न किये जाते हैं। जो पूर्ववर्त्ती साध्य देव आदि इस सृष्टि यज्ञ को संपन्न करते हैं उनको मैं सृष्टि विद्या का ज्ञाता अन्वेषण-प्रधान मन से जानते हुए विचरता हूँ ॥६॥

सहस्तोमाः सहछन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्याः ।
पूर्वेषां पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो३ न रश्मीन् ॥७॥

पदार्थः—(**सहस्तोमाः**) त्रिवृत् पञ्च दश आदि स्तोमों सहित (**सहछन्दसः**) गायत्री आदि छन्दों सहित (**आवृतः**) आवर्तमान, (**सहप्रमाः**) यज्ञ की इयत्ता आदि के साथ (**दैव्याः**) देव सम्बन्धी (**सप्त**) सात (**ऋषयः**) शीर्षण्य प्राण (**पूर्वेषाम्**) पूर्वसृष्टियों के (**पन्थाम्**) क्रम और मार्गव्यवस्था को (**अनुदृश्य**) अनुकरण करते हुए (**धीराः**) दृढ़ हुए (**रथ्यः न**) रथी के समान (**रश्मीन्**) कार्यकारण सम्बन्धों को (**अन्वालेभिरे**) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः त्रिवृत्, पञ्चदश आदि स्तोमों के सहित, गायत्री आदि छन्दों के सहित, आवर्तमान, यज्ञ की इयत्ता आदि के सहित देवसम्बन्धी, और दृढ़ सात शीर्षण्य प्राण पूर्वसृष्टियों कर्म और मर्गाव्यवस्था का अनुकरण करते हुए, रथी के समान, जगत् के कार्यकारण सम्बन्ध को प्राप्त करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१३१

ऋषिः १—७ सुकीर्तिः काक्षीवतः ॥ देवता १ ३, ६, ७ इन्द्रः । ४, ५ अश्विनौ ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ५, ६, ७ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः——१—३, ५—७ धैवतः । ४ गान्धारः ॥

अप प्राचं इन्द्र विश्वाँ अमित्रानपापाचो अभिभूते नुदस्व ।
अपोदीचो अप शूराधराचं उरौ यथा तव शर्मन्मदेम ॥१॥

पदार्थः—(**अभिभूते**) सबको दबाने वाले, (**शूर**) शक्तिशालिन् (**इन्द्र**) हे राजन् ! (**प्राचः**) समक्ष उपस्थित (**विश्वान्**) समस्त (**अमित्रान्**) शत्रुओं को (**अप नुदस्व**) हमसे दूर कर **अपाचः**) पीछे वाले शत्रुओं को (**अप नुदस्व**) हमसे दूरकर, (**उदीचः**) ऊपर की दिशा में विद्यमान शत्रुओं को (**अप**) दूर कर (**अधराचः**) नीचे की दिशा में विद्यमान शत्रुओं को दूर कर हम (**यथा**) जिस प्रकार से (**तव**) आपके (**उरौ**) विस्तीर्ण (**शर्मन्**) आश्रम में (**मदेम**) हृष्ट होवें ऐसा कर ।

भावार्थः हे सबको अभिभूत करने वाले, शक्तिशाली राजन् ! आप समक्ष, पीछे, ऊपर और नीचे विद्यमान हमारे सभी शत्रुओं को हमसे दूर करें । हम जिस प्रकार आप के विस्तीर्ण रक्षाश्रय में प्रसन्न रहें ऐसा करें ॥१॥

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नमोवृक्तिं न जग्मुः ॥२॥

पदार्थः—(**अंग**) हे इन्द्र=राजन् ! (**यवमन्तः**) कृषक लोग (**यथा**) जिस प्रकार (**अनुपूर्वम्**) क्रम से (**वियूय**) अलग करके (**यवम्चित्**) यव आदि फसल को (**कुविद्**) भली प्रकार (**दान्ति**) काटते हैं उसी प्रकार (**इह इह**) यहां-वहां सर्वत्र (**एषाम्**) इनके भोग के साधनभूत धनों को (**कृणहि**) कर (**ये**) जो (**बर्हिषः**) यज्ञ में (**नमोवृक्तिम्**) अन्न आदि की हवि का वर्जन (**न**) नहीं (**जग्मुः**) करते हैं ।

भावार्थः—हे राजन् ! जिस प्रकार से कृषक लोग अनुक्रम से फसल को पृथक् विचार करके पके यव आदि को भली प्रकार काटते हैं उसी प्रकार

Scanned by CamScanner

सर्वत्र यज्ञ में अन्न आदि हवियों को देने वाले यजमानों के लिए भोग्य अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न कर ॥२॥

नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति नोत श्रवो विविदे सङ्गमेषु ।
गव्यन्त इन्द्रं सख्याय विप्रा अश्वायन्तो वृषणं वाजयन्तः ॥३॥

पदार्थः (ऋतुथा) समय पर (स्थूरि) एक बैल की गाड़ी वा विना बैल की गाड़ी (यातम्) गन्तव्य प्रदेश को प्राप्त (नहि) नहीं (अस्ति) होती है (उत) और (श्रवः) अन्न यश भी (संगमेषु) संग्रामों में (न) नहीं (विविदे) प्राप्त करती (गव्यन्तः) गौ चाहने वाले, (अश्वायन्तः) अश्व चाहने वाले, (वाजयन्तः) अन्न चाहने वाले (विप्राः) मेधावी हम लोग (वृषणम्) सुख की वर्षा करने वाले (तम्) उस (इन्द्रम्) इन्द्र राजा वा विद्वान् को (सख्याय) मैत्री के लिए पुकारते हैं ।

भावार्थः– एक बैल की गाड़ी अथवा विना बैल की गाड़ी न गन्तव्य देश को जा सकती है और न संग्रामों में कीर्ति को प्राप्त करती है । इस लिए सब प्रकार साधनों से संपन्न होकर हम गाय, अश्व, धन की कामना करने वाले विद्वान् राजा वा ऐश्वर्यशाली विद्वान् को मैत्री के लिए पुकारते हैं और सहायक बनाते हैं ॥३॥

युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

पदार्थः (अश्विना) आचार्य और उपदेशक (शुभः) उत्तम धन आदि के (पती) स्वामी (युवम्) आप दोनों (सुरामम्) उत्तम सुखकारक भोजन आदि को (विपिपाना) ग्रहण करते हुए (आसुरे) आसुरी प्रवृत्ति वाले (नमुचौ) अदान दाता के संघर्ष में (सचा) साथ-साथ होकर (कर्मसु) इन संघर्ष कर्मों में (इन्द्रम्) मुझ यजमान की (आवतम्) रक्षा करते हो ।

भावार्थः हे उत्तम धन आदि के स्वामी आचार्य और उपदेशक आप दोनों उत्तम भोजन आदि को ग्रहण करते हुए आसुरी प्रवृत्ति वाले अदानदाता के संघर्ष के समय संघर्ष कर्मों में मुझ यजमान की रक्षा करते हो ॥४॥

Scanned by CamScanner

पु॒त्रमि॑व पि॒तरा॑व॒श्विनो॒भेन्द्रा॑वथुः॒ काव्यै॑र्दं॒सना॑भिः ।
यत्सु॒रामं॒ व्यपि॑बः॒ शची॑भिः॒ सर॑स्वती त्वा मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

पदार्थः— हे (**मघवन्**) धनिक (**इन्द्र**) यजमान (**पुत्रम्**) पुत्र को (**पितरा-इव**) माता-पिता की तरह (**उभा**) दोनों (**अश्विना**) आचार्य और पुरोहित (**काव्यैः**) प्रशंसनीय (**दंसनाभिः**) कर्मों से (**आवथुः**) रक्षा करते हैं (**यत्**) जब तू (**सुरामम्**) उत्तम पदार्थों का (**शचीभिः**) शक्ति के साथ (**व्यपिबः**) सेवन करता है तब (**सरस्वती**) बुद्धि (**त्वा**) तुम्हारी (**अभिष्णक्**) सहायक होती है।

भावार्थः—हे धनिक यजमान! पुत्र को माता-पिता की तरह ये दोनों आचार्य और पुरोहित अपने प्रशंसनीय कर्मों से तुम्हारी रक्षा करते हैं। जब आप उत्तम उपभोगों का सेवन करते हो तब उनके द्वारा प्रदत्त बुद्धि आप की सहायक होती है ॥५॥

इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ अवो॑भिः सुमृ॒ळीको॑ भवतु वि॒श्ववे॑दाः ।
बाध॑तां॒ द्वेषो॒ अभ॑यं कृणोतु सु॒वीर्य॑स्य॒ पत॑यः स्याम ॥६॥

पदार्थः—(**सुत्रामा**) उत्तम त्राता, (**स्ववान्**) शक्तिमान् (**विश्व वेदाः**) समस्त धनों वाला (**इन्द्रः**) राजा (**अवोभिः**) रक्षण साधनों द्वारा (**सुमृडीकः**) सुखकारी (**भवतु**) होता है (**द्वेषः**) द्वेष करने वालों को (**बाधताम्**) हटाता है, (**अभयम्**) निर्भय (**कृणोतु**) करता है, हम (**सुवीर्यस्य**) उत्तम बल पराक्रम के (**पतयः**) स्वामी (**स्याम**) होते हैं।

भावार्थः—उत्तम रक्षक शक्तिमान् समस्त धनों वाला राजा अपने साधनों द्वारा सुखकारी होता है, द्वेष करने वालों को हटाता है, हमें निर्भय करता है। हम उत्तम बल के स्वामी होते हैं ॥६॥

तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म ।
स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ इन्द्रो॑ अ॒स्मे आ॒राच्चि॒द् द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥७॥

पदार्थः— (**वयम्**) हम (**यज्ञियस्य**) पूज्य (**तस्य**) उस इन्द्र=विद्वान् के (**सुमतौ**) सुमति और (**भद्रे**) कल्याणकारी (**सौमनसे**) सौमनस्य में (**अपि**) भी (**स्याम**) रहें, (**सुत्रामा**) उत्तमरक्षक, (**स्ववान्**) धनवान् (**सः**) वह (**इन्द्रः**)

Scanned by CamScanner

विद्वान् (अस्मे) हमसे (दूरात् चिद्) दूर देश में (द्वेषः) शत्रुओं को (सनुतः) अन्तर्हित (युयोतु) फेंक दें।

भावार्थः—हम पूजनीय, उस विद्वान् की सुमति और उसके कल्याणकारी सौमनस्य में रहें। उत्तम रक्षक धनवान् वह विद्वान् हमारे द्वेषकारी शत्रुओं को हमसे दूर छिपे स्थान में फेंक देवे ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ।

सूक्त—१३२

ऋषिः—१—७ शकपूतो नार्मेधः॥ देवताः—१ लिंगोक्ताः। २—७ मित्रावरुणौ॥ छन्दः—१ बृहती। ७ महासतोबृहती। २, ४ पादनिचृत्पङ्क्तिः। ३ पङ्क्तिः। ५, ६ विराट्पङ्क्तिः। स्वरः—१, ७ मध्यमः। २—६ पञ्चमः॥

ईजानमिद् द्यौर्गूर्तावसुरीजानं भूमिरभि प्रभूषणि।
ईजानं देवावश्विनावभि सुम्नैरवर्धताम् ॥१॥

पदार्थः—(ईजानम् इत्) यज्ञ करने वाले को ही (द्यौः) द्युलोक (गूर्तावसु) ऐश्वर्य को हाथ में लिए (सुम्नैः) नाना सुखों से बढ़ाता है (ईजानम्) यज्ञ करने वाले को (भूमिः) भूमि (प्रभूषणि) प्रचुर सत्ता प्राप्त करने के निमित्त (अभि) बढ़ाती है, (ईजानम्) यज्ञशील को (अश्विनौ देवौ) दिन रात्रि भी सुखों से (अभि अवर्धताम्) बढ़ाते हैं।

भावार्थ—यज्ञशील को द्युलोक ऐश्वर्य को हाथ में लिए नाना सुखों से बढाता है। यज्ञशील को भूमि भी प्रचुर सत्ता की प्राप्ति में सुखों से बढ़ाती है। यज्ञशील मनुष्य को देवनशील दिन और रात्रि भी सुखों से बढ़ाते हैं ॥१॥

ता वां मित्रावरुणा धारयत्क्षिती सुषुम्नेषितत्वता यजामसि।
युवोः क्राणाय सख्यैरभि ष्याम रक्षसः ॥२॥

पदार्थः—(**धारयत्क्षितो**) जिनके लिए मनुष्य हवि धारण करते हैं, (**सुधुम्नः**) उत्तम धन वाले (**ता**) उन (**वाम्**) इन (**मित्रावरुणा**) प्राण और अपान के लिए (**इषितत्वता**) प्राप्तव्य गुण के कारण (**यजामसि**) संगत करते हैं (**युवो**) इनके (**सख्यैः**) मैत्री भावों से (**ऋणाय**) कर्मकर्ता यजमान के लिए (**रक्षस**) बाधक शक्तियों को (**अभिष्याम**) अभिभूत करते हैं।

भावार्थः जिनके लिए मनुष्य हवि धारण करते हैं उत्तम धन वाले, उन इन प्राण अपान को प्राप्तव्य इनके गुणों के कारण संगत करते हैं, इनके सहयोग से हम कर्मकर्ता यजमान के लिए बाधक शक्तियों पर काबू प्राप्त करते हैं ॥२॥

अधा चिन्नु यद्दिधिषामहे वामभि प्रियं रेक्णः पत्यमानाः ।
दद्वाँ वा यत्पुष्यति रेक्णः सम्वारन्नकिरस्य मघानि ॥३॥

पदार्थः—(**वाम्**) इन दोनों मित्रावरुण=मित्र और वरणीय पुरुष के लिए (**यत्**) जब हम (**दिधिषामहे**) खाद्य आदि वस्तुओं को धारण करते हैं (**अधा चित्**) तो (**नु**) शीघ्र ही (**प्रियम्**) अभीष्ट (**रेक्णः**) धन को (**पत्यमानाः**) प्राप्त करने वाले होते हैं। (**वा**) और (**यत्**) जो मनुष्य (**दद्वान्**) हवि आदि प्रदान करके (**रेक्णः**) धन को (**पुष्याति**) पुष्ट करता है (**अस्य**) इसके (**मघानि**) धन (**नकिः**) नहीं (**सम् आरन् उ**) व्यर्थ होते हैं।

भावार्थः—इन दोनों मित्र और वरणीय पुरुष के लिए जो मनुष्य खाद्य आदि वस्तुओं को देता है वह शीघ्र ही धन आदि का प्राप्त करने वाला होता है। यज्ञ में हवि प्रदान करके जो मनुष्य धन को पुष्ट करता है उसका धन-क्षीण नहीं होता है ॥३॥

असावन्यो असुर सूयत द्यौस्त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा ।
मूर्धा रथस्य चाकन्नैतावतैनसान्तकध्रुक् ॥४॥

पदार्थः—(**द्यौः**) द्योतमान अदिति (**त्वम्**) इस (**असौ**) उस (**अन्यः**) अन्य (**असुर**) प्राणदाता भिन्न=सूर्य को (**सूयते**) उत्पन्न करती है, (**वरुण**) वरुण=वायु (**विश्वेषाम्**) सभी का (**राजा**) दीपनाधार (**असि**) है ये मित्र और वरुण=सूर्य और वायु (**रथस्य**) यज्ञ का (**मूर्धा**) उच्चैस्तम कार्य इनको (**चाकन्**) चाहता है इसलिए (**अन्तक ध्रुक्**) मृत्यु का द्रोही यह यज्ञ (**एतावता**) लेश मात्र भी (**एनसा**) पाप से (**न**) नहीं युक्त होवे।

Scanned by CamScanner

भावार्थः द्योतमान प्रकृति जो कि दिव्य पदार्थों की माता है इस प्राणदाता सूर्य को पृथक् उत्पन्न करती है। यज्ञ का सर्वोच्च पद=हवि ग्रहण करने का पद इन सूर्य और वायु को चाहता है। इसलिए मृत्यु को हटाने वाला यह यज्ञ लेशमात्र भी पाप से युक्त नहीं होता है ॥४॥

अस्मिन्त्स्वे॑३ तच्छकपूत एनो॑ हिते मित्रे निग॑तान्हन्ति वीरान् ।

अवोर्वा यद्धात्तनूष्ववः प्रियासु यज्ञियास्ववा॑ ॥५॥

पदार्थः—(**अस्मिन्**) इस (**शकपूते**) कर्म से पवित्र यजमान पुरुष में (**उहिते**) हितकारी (**मित्रे**) मित्र के होने पर भी (**एनस्**) स्वल्प भी पाप यदि रहता है तो वह (**निगतान्**) उसके अधीन रहने वाले (**वीरान्**) पुत्र पौत्र आदि को भी (**सु हन्ति**) भली प्रकार हानि पहुँचाता है। मित्र और वरणीय विद्वान् (**यत्**) जब (**अर्वा**) व्यापक (**अपः**) रक्षण वा ज्ञान (**धात्**) देते हैं तब (**अवः**) हवि के दाता अथवा ज्ञानी यजमान के (**प्रियासु**) प्रिय (**यज्ञियासु**) यज्ञिय (**तनूषु**) शरीरांगों में कोई तनिक भी पाप नहीं रहता है।

भावार्थः—इस कर्म से पवित्र यजमान पुरुष में हितकारी मित्र के होने पर भी यदि स्वल्प भी पाप रहता है तो अधीन रहने वाले पुत्र पौत्र आदि को भी भली प्रकार हानि पहुँचाता हैं। मित्र और वरणीय विद्वान् जब व्यापक रक्षण और ज्ञान देते हैं तब यजमान के प्रिय यज्ञिय शरीरों में तनिक भी पाप नहीं रहता है। अर्थात् वह पाप नहीं करता है ॥५॥

युवोर्हि मातादि॑तिर्विचेतसा द्यौर्न भूमिः पय॑सा पुपूतनि॑ ।

अव॑ प्रिया दि॑दिष्टन सूरो॑ निनिक्त रश्मिभिः ॥६॥

पदार्थः—(**विचेतसा**) विशेष चिन्तन के विषयभूत मित्र और वरुण=सूर्य और वायु (**युवोः**) दोनों की (**हि**) ही (**माता**) माता (**अदितिः**) भूमि वा अखण्डनीय पृथिवी है, (**द्यौः न**) द्युलोक की भांति यह (**भूमिः**) भूमि (**पयसा**) रस आदि से (**पुपूतनि**) पवित्रता में में हेतु होती है। ये दोनों=मित्र और वरुण (**प्रिया**) प्रिय धनों को (**अव दिदिष्टन**) देते हैं, तथा (**सूरः**) सूर्य की (**रश्मिभिः**) रश्मियों से (**निनिक्त**) पवित्र करते हैं।

भावार्थः—विशेष चिन्तन के विषयभूत मित्र और वरुण=सूर्य और वायु की अखण्डनीय पृथिवी माता है। वह द्युलोक की भांति रस आदि से

Scanned by CamScanner

पवित्रता में कारण बनती हैं। ये दोनों मित्र और वरुण प्रिय धनों को देते हैं और सूर्य की रश्मियों से सबको पवित्र करते हैं ॥६॥

युवं ह्यंप्नराजावसीदतं तिष्ठद्रथं न धूर्षदं वनर्षदम्।
ता नः कणूकयन्तीर्नृमेधस्तत्रे अंहसः सुमेधस्तत्रे अंहसः ॥७॥

पदार्थः—हे मित्र और वरणीय विद्वन्! (युवम्) आप दोनों (हि) निश्चय (असीदतम्) अपने स्थानों पर विराजमान होवें, आप दोनों (कणूकयन्तीः) शब्द करती हुई (नः) हमारी (ताः) उन शत्रु सेनाओं को दवाने के लिए (न) संप्रति (धूर्षदम्) अश्वों के वहन प्रदेश में स्थित (वनर्षदम्) वन में क्रीडन योग्य (रथम्) रथ पर (तिष्ठत्) बैठें, (नृमेधः) मनुष्यों का संघटन करने वाला (अंहसः) पाप से पाप द्वारा (तत्रे) बचाया जाता है और (सुमेधः) उत्तम ज्ञानी भी (अंहसः) पाप से पाप द्वारा (तत्रे) बचाया जाता है।

भावार्थः—हे मित्र और वरणीय विद्वन्! आप दोनों अपने स्थानों पर विराजमान होवें। शब्द करती हुई हमारी शत्रु सेनाओं को दबाने के लिए संप्रति अश्वों के वहन प्रदेश में स्थित अरण्य में क्रीडन योग्य रथ पर बैठें। मनुष्यों का संघटन करने वाला आप द्वारा पाप से बचाया जाता है और उत्तम ज्ञानी भी आप द्वारा पाप करने से बचाया जाता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में एक सौ बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

सूक्त १३३

ऋषिः १—७ सुदाः पैजवनः॥ देवता—इन्द्रः॥ छन्दः—१—३ शक्वरी। ४—६ महापङ्क्तिः। ७ विराट्त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१—३, ७ धैवतः। ४—६ पञ्चमः॥

प्रो ष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत्सङ्गे समत्सु वृत्रहास्माकं बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥

पदार्थः— (**अस्मै**) इस (**इन्द्राय**) इन्द्र=वायु के (**पुरोरथम्**) रथ के आगे विद्यमान (**शूषम्**) बल की (**सु**) सुष्ठुरूप से (**प्रो अर्चत**) प्रशंसा करो, (**समत्सु**) संग्रामों में (**संगे**) शत्रुबल के (**अभीके चित् उ**) समीप प्राप्त होने पर (**लोककृत्**) स्थितिकृत (**वृत्रहा**) वह वृत्र=मेघ का हन्ता है वह (**अस्माकम्**) हमारा (**चोदिता**) धन दाता (**बोधि**) जाना जाता है । (**अन्यकेषाम्**) शत्रुओं की (**धन्वसु अधि**) धनुष पर चढ़ी हुई (**ज्याकाः**) प्रत्यञ्चायें (**नमन्ताम्**) नष्ट हो जावें ।

भावार्थः इस वायु के चक्र के आगे विद्यमान बल की हे स्तोता लोगो ! सुष्ठुरूप से प्रशंसा करो । संग्रामों में शत्रु बल के सामने आने पर वह अपनी स्थिति को ठीक रखता है और मेघ को मारता है । हमारे लिए वह धन का दाता जाना जाता है । शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी प्रत्यंचा नष्ट हो जावे ॥१॥

त्वं सिन्धूँरवासृजोऽधराचो अहन्नहिम् ।
अशत्रुरिन्द्र जज्ञिषे विश्वं पुष्यसि वार्यं तं त्वा परि ष्वजामहे
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥२॥

पदार्थः— (**त्वम्**) यह (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु अथवा विद्युत् (**सिन्धून्**) स्यन्दनशील जलों को (**अधराचः**) अधोमुखी (**अवासृजः**) करता है, (**अहिम्**) मेघ को (**अहन्**) मारता है, यह इन्द्र (**अशत्रुः**) शत्रुरहित (**जज्ञिषे**) होता है, (**विश्वम्**) समस्त (**वार्यम्**) वरणीय धन की (**पुष्यसि**) पुष्टि करता है, (**तम्**) उस (**त्वा**) इसको हम (**परिष्वजामहे**) वश में रखते हैं जिससे (**अन्यकेषाम्**) शत्रुओं के (**धन्वसु अधि**) धनुषों पर चढ़ी हुई (**ज्याका**) प्रत्यञ्चायें (**नमन्ताम्**) नष्ट हो जावें ।

भावार्थः— यह इन्द्र=विद्युत् स्यन्दनशील जलों को अधोमुखी करके वरसाता है, मेघ को मारता है । यह इन्द्र शत्रुसहित पैदा हुआ है । वह समस्त वरणीय धन को पुष्ट करता है । उसको हम अपने प्रयोग में लाते हैं । जिससे शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ।

Scanned by CamScanner

वि षु विश्वा अरातयोऽर्यो नशन्त नो धियः ।

अस्तासि शत्रवे वधं यो न इन्द्र जिघांसति या ते रातिर्ददिर्वसु

नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥३॥

पदार्थः—(विश्वा) समस्त (अर्यः) आक्रामक (अरातयः) शत्रुभूत बल (सु) सुष्ठुरूप के (विनशन्त) नष्ट हो जावें, (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां और कर्म अच्छे रास्ते पर हों, (यः) जो (नः) हमें (जिघांसति)मारना चाहता है उस (शत्रवे) शत्रु के लिए (इन्द्र) यह वायु वा विद्युत् (वधम्) घातक वज्र का (अस्ता) प्रक्षेप्ता (असि) है (ते) उसकी (या) जो (रातिः) दानशक्ति है वह (वसु) धन को (ददिः) देने वाली हैं । शत्रुओं के धनुषों पर चढ़ी प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ।

भावार्थः—समस्त बाधक बल नष्ट हो जावें ! हमारी बुद्धियां और कर्म उत्तम मार्ग पर चलें । जो हमें मारने की इच्छा करता है उस शत्रु के लिए यह घातक वज्र का प्रक्षेप्ता है । उसकी जो देन है वह धन की दात्री है । शत्रुओं के धनुष पर चढी हुई प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ॥३॥

यो न इन्द्राभितो जनो वृकायुरादिदेशति ।

अधस्पदं तमीं कृधि विबाधो असि सासहि

र्नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥४॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (यः) जो (वृकयुः) भेड़िये की चाल चलने वाला (जनः) मनुष्य (नः) हमें (अभितः) सब ओर से (आदिदेशति) शस्त्र का निशाना बनाता है (तम्) उस (ईम्) इस शत्रु को (अधः पदम्) पैर के नीचे (कृधि) कर दे, तू (विबाधः) शत्रुओं की बाधक और (ससहिः) विनाशक (असि) है ।

भावार्थः हे राजन् ! जो भेड़िये की चाल चलने वाला मनुष्य हमें सब तरफ से शस्त्र का निशाना बनाता है उसे तू पैर के नीचे कुचल दे । तू शत्रुओं का बाधक और संहारक है ॥४॥

Scanned by CamScanner

यो न इन्द्राभिदासति सनाभिर्यश्च निष्ट्यः ।
अव तस्य बलं तिर महीव द्यौरध त्मना
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥५॥

पदार्थ—हे इन्द्र=राजन् ! (यः) जो (सनाभिः) समान जन्मा (च) और (यः) जो (निष्ट्यः) निकृष्टजन्मा (नः) हमें (अभिदासति) क्षीण करता है (अध) अनन्तर (तस्य) उसके (बलम्) बल को जो (मही) महती (द्यौः इव) द्युलोक के समान विस्तृत है (त्मना) स्वयं (अवतिर) नष्ट कर ।

भावार्थः—हे राजन् ! जो समानजन्मा अथवा असमान जन्मा शत्रु हमें पीड़ित और क्षीण करता है उसके विशाल द्युलोक के समान बल को नष्ट कर । शत्रुओं के धनुष पर चढ़ी हुई प्रत्यञ्चायें नष्ट हो जावें ॥५॥

वयमिन्द्र त्वायवः सखित्वमा रभामहे ।
ऋतस्य नः पथा नयाति विश्वानि दुरिता
नभन्तामन्यकेषां ज्याका अधि धन्वसु ॥६॥

पदार्थः— हे इन्द्र=विद्वान् योगिन् ! (त्वायवः) तुझको चाहने वाले (वयम्) हम आप के (सखित्वम्) मैत्रीभाव को (आ रभामहे) प्राप्त करने में लगे हैं, (ऋतस्य) सत्य के (पथा) मार्ग से (नः) हमें (नय) ले चल, (विश्वानि) समस्त (दुरिता) दुर्गुणों को (अतिनय) दूर कर ।

भावार्थः—हे विद्वान् योगिन् तुझको चाहने वाले हम आप के मैत्री-भाव को प्राप्त करने में लगे हैं । सत्य के मार्ग से हमें ले चल और समस्त दुर्गुणों को दूर कर । शत्रुभूत काम क्रोध आदि के प्रभाव सर्वथा नष्ट हों ॥६॥

अस्मभ्यं सु त्वमिन्द्र तां शिक्ष या दोहते प्रति वरं जरित्रे ।
अच्छिद्रोध्नी पीपयद्यथा नः सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥७॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे विद्वन् ! (त्वम्) तू (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ताम्) उस वेदवाणी को (सु) सुष्ठुरूप से (शिक्ष) प्रदान कर (या) जो

(जरित्रे) स्तावक को (वरम्) श्रेष्ठ ज्ञान को (प्रति दोहते) प्रदान करती है (अच्छिद्रोध्नी) निर्दोषरूप से देने वाला (सहस्रधारा) सहस्र वचनों से युक्त (मही) महती (गौः) वह वाणी (नः) हमें (पयसा) ज्ञान दुग्ध से (यथा) जिस प्रकार (पीपयत्) पूरित करे, वैसा करो ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! तू हमारे लिए उस वेदवाणी को प्रदान कर जो स्तोता को श्रेष्ठ ज्ञान और कर्म को प्रदान करती है। निर्दोषरूप से दोह्य वह सहस्रों वचनों वाली महती वाणी जिस प्रकार हमें ज्ञान और कर्म की भावना से पूरित करे वैसा कर ॥७॥

यह दशम मण्डल में एक सौ तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३४

ऋषिः १ – ६[1] मान्धाता यौवनाश्वः । ६[2], ७ गोधा ॥ देवता–इन्द्रः ॥
छन्दः—१—६ महापङ्क्तिः ।७ पंक्तिः ॥ स्वरः–पञ्चमः ।

उभे यदिन्द्र रोदसी आपप्राथोषाइंव ।
महान्तं त्वा महीनां सम्राजं चर्षणीनां
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥१॥

पदार्थ – हे (इन्द्र) परमैश्वर्यशालिन् परमेश्वर ! (यत्) जो तू (उषाः-इव) उषा के प्रकाश के समान (उभे) दोनों (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (आ प प्राथ) तेज से आपूरित करते हो (महीनाम्) महान् देवों के और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (सम्राजम्) सम्राट् (त्वाम्) तुझको अध्यक्ष मानकर (जनित्री) सब जगत् की उपादान कारण (देवी) प्रकृति (अजीजनत्) जगत् को उत्पन्न करती है (भद्रा) कल्याणकारिणी (जनित्री) पैदा करने वाली प्रकृति जगत् को (अजीजनत्) उत्पन्न करती है ।

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! जो तू उषा के समान द्यु और पृथिवी लोकों को अपनी व्याप्ति से पूरित करता है, उस देवों के और

मनुष्यों के सम्राट् तुझ को अधिष्ठाता मान कर जगत् का उपादान कारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है और कल्याणकारिणी वह सबको उत्पन्न करती है ॥१॥

अवं स्म दुर्हणायतो मर्तस्य तनुहि स्थिरम् ।
अधस्पदं तमीं कृधि यो अस्माँ आदिदेशति
देवी जनित्र्यजीजनद्भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥२॥

पदार्थः – हे प्रभो ! (**मर्तस्य**) मनुष्य के (**दुर्हणायतः**) पीड़ा देने वाले दुर्व्यवहारों और द्वेषों को (**स्थिरम्**) स्थिर रूप से (**अव तनुहि**) क्षीण कर, (**यः**) जो (**अस्मान्**) हमें (**आ दिदेशति**) दबाता और पीड़ा पहुँचाता है ऐसे (**तम् ईम्**) उस इस अज्ञान को (**अधस्पदम्**) उसके स्थान से भ्रष्ट करके(**अव तनुहि**) नष्ट कर । देवी····· ।

भावार्थ·—हे प्रभो ! मनुष्य के पीडक दुर्व्यवहारों और द्वेष आदि-कों को स्थिररूप से क्षीण करो। जो हमें दबाता और पीड़ा पहुँचाता है ऐसे अज्ञान को उसके स्थान से भ्रष्ट करके उसे नष्ट कर । आपके ही अधिष्ठातृत्व में जगत् को उत्पन्न करता है और वह कल्याणकारिणी प्रकृति सब जगत् को उत्पन्न करती है ॥२॥

अव त्या बृहतीरिषो विश्वश्चन्द्रा अमित्रहन् ।
शचीभिः शक्र धूनुहीन्द्र विश्वाभिरूतिभिः
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥३॥

पदार्थः हे (**अमित्रहन्**) मित्रों को न मारने वाले ! (**शक्र**) शक्तिमय (**इन्द्र**) प्रभो ! (**विश्वश्चन्द्राः**) सब को आह्लादित करने वाले (**त्याः**) उन (**बृहतीः**) महान् (**त्याः**) इन (**इषः**) ज्ञान और धनों को (**शचीभिः**) शक्तियों तथा (**विश्वाभिः**) समस्त (**ऊतिभिः**) रक्षाओं के सहित (**अव धूनुहि**) हमारी तरफ प्रेरित कर। देवी······

भावार्थः—हे मित्रों को न मारने वाले ! शक्तिशाली प्रभो ! सबको आह्लाहित करने वाले उन महान् ज्ञान और धनों को शक्तियों तथा समस्त रक्षाओं के साथ हमारी तरफ प्रेरित कर, तेरे अधिष्ठातृत्व में जगत्

Scanned by CamScanner

का उपादान का कारण प्रकृति समस्त जगत् को उत्पन्न करती है। कल्याणकारिणी वह विश्व को उत्पन्न करती है ॥३॥

अव यत्त्वं शतक्रतविन्द्र विश्वानि धूनुषे ।
रयिं न सुन्वते सचा सहस्रिणीभिरूतिभिर्
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥४॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) बहुप्रज्ञ तथा बहुकर्मन् (इन्द्र) परमेश्वर ! (त्वम्) तू (सुन्वते) यज्ञ करने वाले यजमान के लिए (यत्) जब (विश्वानि) प्रचुर धन (अव धूनुषे) देता है तब (रयिम् न) धन के समान पुत्र धन आदि को भी (सहस्रणीभिः) सहस्रों (ऊतिभिः) रक्षाओं के (सचा) साथ देता है। देवी

भावार्थः—हे अनन्त प्रज्ञ ! बहुकर्मन् परमेश्वर ! तू यज्ञ करने वाले यजमान के लिए जब प्रचुर धन देता हैं तब धन के समान उत्तम पुत्रधन आदि को भी सहस्रों रक्षाओं के साथ देता है। तुम्हारी अध्यक्षता में जगत् का उपादान कारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है और कल्याणकारिणी वह जगत् को उत्पन्न करती है ॥४॥

अव स्वेदा इवाभितो विष्वक्पतन्तु दिद्यवः ।
दूर्वायाइव तन्तवो व्य१स्मदेतु दुर्मति
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥५॥

पदार्थः—(स्वेदाः इव) शरीर से निकले पसीने के विन्दुओं के समान (अभितः) सर्वतः (दिद्यवः) प्रकाशमान परमेश्वर का ज्ञान प्रकाश (विष्वक्) नाना मुख हो (दूर्वायाः) दूर्वा के (तन्तवः) तन्तुओं के (इव) समान (अवपतन्तु) फैलें, (दुर्मतिः) दुर्बुद्धि (अस्मत्) हमसे (वि एतु) दूर हो। देवी

भावार्थः—शरीर से निकले पसीने की बूंदों के समान सर्वत्र प्रकाशमान परमेश्वर का ज्ञान प्रकाश (विष्वक्) नानामुख होकर दूर्वा घास के लच्छों के समान सर्वत्र फैले। दुर्बुद्धि हमसे दूर हो। प्रभो ! आपके अधिष्ठातृत्व में जगत् का उपादानकारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है। वही कल्याणी समस्त विश्व को उत्पन्न करती है ॥५॥

Scanned by CamScanner

दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्तिं बिभर्षि मन्तुमः ।
पूर्वेण मघवन्पदाजो वयां यथा यमो
देवी जनित्र्यजीजनद् भद्रा जनित्र्यजीजनत् ॥६॥

पदार्थः—(**मन्तुमः**) हे ज्ञानवन् ! (**मघवन्**) हे मघवन् ! आप (**शक्तिम्**) शक्ति को (**दीर्घम्**) बड़े (**अंकुशम्**) अंकुश के (**यथा**) समान (**बिभर्षि**) धारण करते हो, (**यथा**) जिस प्रकार (**अजः**) बकरा (**पूर्वेण**) पूर्व (**पदा**) पैर से (**वयाम्**) शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार आप समस्त जगत् को (**यमः**) नियन्त्रित करते हो । देवी……।

भावार्थः—हे ज्ञानाकर ! हे मघवन् प्रभो ! आप आयत अंकुश की भांति शक्ति को धारण करते हो । जिस प्रकार बकरा एक पैर से वृक्ष की शाखा को पकड़ लेता है उसी प्रकार आप जगत् को अपने नियन्त्रण में रखते हो । आप के अधिष्ठातृत्व में जगत् का उपादान कारण प्रकृति जगत् को उत्पन्न करती है । कल्याणी वह विश्व को उत्पन्न करती है ॥६॥

नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ॥७॥

पदार्थः—हे (**देवाः**) विद्वान् लोगो (**नकिः**) न कुछ हम (**मिनीमसि**) हानि पहुँचाते हैं, (**नकिः**) न कुछ (**आयोपयामसि**) गड़बड़ करते हैं, (**मंत्र-श्रुत्यम्**) मन्त्र से प्रतिपादित कर्म को (**चरामसि**) आचरण में लाते हैं (**पक्षेभिः**) अपनों और (**अपिकक्षेभिः**) सहयोगियों सहित (**अत्र**) इस लोक में (**अभि-संरभामहे**) यत्न करते हैं ।

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! न हम कुछ हिंसा का व्यवहार करते हैं, न कुछ भी गडबड़ करते हैं, मन्त्र से प्रतिपादित कर्म को करते हैं अपने तथा अपने सहयोगियों सहित इस लोक में यत्न करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १३५

ऋषिः– १– ७ कुमारो यामायनः ॥ देवता—यमः॥ छन्दः १—३, ५, ६ अनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ७ भुरिगनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

यस्मिन्वृक्षे सुपलाशे देवैः सम्पिबते यमः ।
अत्रा नो विश्पतिः पिता पुराणाँ अनु वेनति ॥१॥

पदार्थः—(**सुपलाशे**) उत्तम पत्तों वाले (**यस्मिन्**) जिस (**वृक्षे**) देहरूपी वृक्ष पर (**यमः**) इन्द्रिय आदि का स्वामी जीव (**देवैः**) इन्द्रियों के साथ (**संपिबते**) अच्छे बुरे कर्म फल के भोगों को भोगता है (**अत्र**) इसी पर (**नः**) हमारा (**पिता**) पिता (**विश्पतिः**) प्रजा का पालक परमेश्वर (**पुराणान्**) पुरातन जीवों को (**अनु**) अनुक्रम से (**वेनति**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—उत्तम वर्णों से युक्त इस शरीर रूपी वृक्ष पर जीव अपने पूर्व कृत कर्मों के भले बुरे फल को इन्द्रियों सहित भोगता है । जगत् प्रजा का पालक हमारा पिता परमेश्वर कर्म के फल की व्यवस्था के अनुसार पुरातन जीवों को इस शरीर-वृक्ष पर भोगों को प्राप्त कराता है ॥१॥

पुराणाँ अनुवेनन्तं चरन्तं पापयामुया ।
असूयन्नभ्यचाकशं तस्मा अस्पृहयं पुनः ॥२॥

पदार्थः—(**पुराणान्**) पुरातन भोगों की (**अनु वेनन्तम्**) पुनः कामना करते हुए (**अमुया**) इस (**पापया**) पापयुक्त बुद्धि से (**चरन्तम्**) कष्टों को भोगते हुए पुरुष को मैं (**असूयन्**) ईर्ष्या करता हुआ (**अभि अचाकशम्**) देखता हूं (**पुनः**) फिर भी (**तस्मै अस्पृहयम्**) उसके लिए प्रेम करता हूं ।

भावार्थः—पुरातन भोगों की कामना करते हुए पापमयी बुद्धि कष्टों को भोगते हुए पुरुष को ईर्ष्या करता हुआ देखता हूं परन्तु फिर उसी से प्रेम भी करता हूं । अर्थात् यह जानता हूं कि यह पाप का फल भोग रहा है फिर भी उसी से प्रेम करता हूं ॥२॥

यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।
एकेषं विश्वतः प्राञ्चमपश्यन्नधि तिष्ठसि ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**कुमार**) हे कुमार जीव ! (**अचक्रम्**) चक्ररहित (**एकेषम्**) एक प्राणरूपी दण्ड वाले (**विश्वतः**) सर्वत्र (**प्राञ्चम्**) जाते हुए (**यम्**) जिस (**नवम्**) नूतन (**रथम्**) शरीर रथ को तू (**मनसा**) मन से अपना (**अकृणोः**) करता है इस पर (**अपश्यन्**) उसके रहस्य को विना जाने (**अधि तिष्ठसि**) स्थित है ।

भावार्थः—हे कुमार जीव ! चक्ररहित एक प्राणरूपी दण्डवाले सर्वत्र गामी जिस नए शरीररथ को तू मन से अपना करता है उस पर उसके वास्तविक रहस्य को विना जाने सवार है ॥३॥

यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परि ।
तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्याहितम् ॥४॥

पदार्थः—(**कुमार**) हे कुमार जीव ! (**विप्रेभिः**) ज्ञान के साधन इन्द्रियों से प्रेरित होकर तू (**यम्**) जिस (**रथम्**) शरीर रथ को (**प्र अवर्तयः**) चलाता है (**तम्**) उसमें (**साम**) समन्वय और शान्ति (**अनु प्र अवर्तत**) प्रवृत्त होवे और (**इतः**) इस संसार से पार होने का साधन बने जिस प्रकार (**नावि**) नौका मे (**सम् आहिताम्**) सम्यक् रखी हुई वस्तु पार जाती है ।

भावार्थः—हे कुमार जीव ! ज्ञान के साधन इन्द्रियों से प्रेरित होकर तू जिस शरीर रथ को चलाता है उसमें समन्वय और शान्ति प्रवृत्त होवे और इस संसार से पार होने का साधन बने जिस प्रकार नौका में रखी वस्तु पार जाती है ॥४॥

कः कुमारमजनयद्रथं को निरवर्तयत् ।
कः स्वित्तदद्य नो ब्रूयादनुदेयी यथाभवत् ॥५॥

पदार्थः—(**कः**) कौन (**कुमारम्**) अबोध जीव को (**अजनयत्**) उत्पन्न करता है, (**कः**) कौन (**रथम्**) देहरथ को (**निरवर्तयत्**) निरन्तर चलाता है (**कः स्वित् नः**) कौन हमें (**अद्य**) आज (**तत्**) उस रहस्य को (**ब्रूयात्**) बतलावे (**यथा**) जिस प्रकार (**अनुदेयी**) भिन्न पदार्थ सत्ता (**अभवत्**) होती है ।

भावार्थः—कौन अबोध जीव को उत्पन्न करता है । कौन देहरथ को निरन्तर चलाता है । कौन हमें आज इस रहस्य को बतावे कि किस प्रकार से यह अपने से भिन्न सत्ता उत्पन्न होती हैं ॥५॥

Scanned by CamScanner

यथाभवदनुदेयी ततो अग्रमजायत ।
पुरस्ताद् बुध्न आततः पश्चान्निरयणं कृतम् ॥६॥

पदार्थः—(**यथा**) जिस प्रकार से (**अनुदेयी**) यह आत्मा से भिन्न आत्मा को दिया जाने वाला शरीर (**अभवत्**) होता है उसी प्रकार से (**ततः**) उसीसे (**अग्रम्**) मुख्य तत्त्व मन भी (**अजायत**) उत्पन्न होता है (**पुरस्ताद्**) उससे पूर्व (**बुध्नः**) मूल प्रकृति (**आततः**) फैली होती है, (**पश्चात्**) तदनन्तर (**निरयणम्**) निकालकर व्यक्त हुआ जगत् (**कृतम्**) बनाया जाता है ।

भावार्थः—जिस प्रकार यह आत्मा से भिन्न आत्मा को दिया जाने वाला शरीर उत्पन्न होता है उसी की तरह उसी कारण से मन भी उत्पन्न होता है । उससे पूर्व अवस्था में मूल प्रकृति फैली होती है और बाद में व्यक्त जगत् उसी से बनाया जाता है ॥६॥

इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते ।
इयमस्य धम्यते नाळीरयं गीर्भिः परिष्कृतः ॥७॥

पदार्थः—(**इदम्**) वह (**यमस्य**) आदित्य का (**सादनम्**) स्थान है (**तत्**) जो (**देवमानम्**) रश्मियों के निर्माण का साधन है, (**इयम्**) यह (**नाडी**) वाणी (**अस्य**) इसके लिए (**धम्यते**) शब्दायमान होती है (**अयम्**) यह (**गीर्भिः**) प्रशंसकों से (**परिष्कृतः**) अलंकृत वा प्रशंसित किया जाता है ।

भावार्थः—यह अन्तरिक्ष आदित्य का स्थान है । यह ही रश्मियों के निर्माण का साधनभूत है । यह वाणी इसके लिए शब्दायमान होती है और यह आदित्य प्रशंसाओं से अलंकृत होता है ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३६

ऋषिः—१—७ मुनयो वातरशनाः=१ जूतिः । २ वातजूतिः । ३ विप्रजूतिः । ४ वृषाणकः । ५ करिक्रतः । ६ एतशः । ७ ऋष्यशृंगः ॥ **देवताः**—केशिनः ॥ **छन्दः**—१ विराडनुष्टुप् । २—४, ७ अनुष्टुप् । ५, ६ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

Scanned by CamScanner

केश्य१ग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ॥१॥

पदार्थः – (केशी) रश्मिधारी सूर्य (अग्निम्) अग्नि को (बिभर्ति) धारण करता है, (केशी) सूर्य ही (विषम्) जल को धारण करता है तथा (केशी) सूर्य (रोदसी) द्यु और पृथिवी को (बिभर्ति) धारण करता है, (केशी) सूर्य (विश्वम्) व्याप्त (स्वः) समस्त जगत् को (दृशे) दर्शन के लिए करता है, (इदम्) यह मण्डलस्थ (ज्योतिः) ज्योति=सूर्य (केशी) केशी (उच्यते) कहा जाता है ।

भावार्थः—रश्मिधारी सूर्य अग्नि को धारण करता है । वह सूर्य ही जल और द्युलोक तथा पृथिवी को धारण करता है । सूर्य ही व्याप्त समस्त जगत् को देखने योग्य करता है । यह मण्डलस्थ आदित्य ज्योति ही केशी कही जाती है ॥१॥

मुनयो वातरशनाः पिशङ्गा वसते मला ।
वातस्यानु ध्राजिं यन्ति यद्देवासो अविक्षत ॥२॥

पदार्थः—(वातरशनाः) वायु है बन्धन जिनका ऐसे (मुनयः) ग्रहनक्षत्र आदि (पिशंगा) कपिल वर्ण के (मला) मलिन प्रकाश को (वसते) आच्छादित करते हैं (यत्) जब (देवासः) सूर्य किरणें (अविक्षत) आकाश में प्रवृष्ट होती हैं तब (वातस्य) वायु के (ध्राजिम्) गति को (अनुयन्ति) अनुगत होती हैं ।

भावार्थः—वायुबन्धन वाले नक्षत्र आदि कपिलवर्ण के मलिन प्रकाश को आच्छादित करते हैं अर्थात् धारण करते हैं । जब सूर्य की किरणें आकाश में प्रविष्ट होती हैं तो वे वायु की गति का अनुसरण करती हैं ॥२॥

उन्मदिता मौनेयेन वाताँ आ तस्थिमा वयम् ।
शरीरेदस्माकं यूयं मर्तासो अभि पश्यथ ॥३॥

पदार्थः—(वयम्) हम प्राण, अपान, उदान आदि प्राणगण (मौनेयेन) मननशील अन्तःकरण के भी स्वामी आत्मा से (उन्मदिताः) हर्षित किये हुए (वातान्) वायुओं पर (आ तस्थिम) आधार करके स्थित होते हैं, (मर्तासः) हे मनुष्यो ! (यूयम्)आप लोग (अस्माकम्) हमारे (शरीरा इव) शरीरों को ही (अभि पश्यथ) देखते हो, शरीर के अन्दर की बातों को नहीं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हम प्राण, अपान आदि मननशील अन्तःकरण के स्वामी आत्मा से हर्षित किये हुए वायुओं के आधार पर स्थित होते हैं। हे मर्त्य लोगो ! आप हमारे शरीरों को तो देखते हो परन्तु हमें और आन्तरिक वस्तुओं को नहीं जानते हो ॥३॥

अन्तरिक्षेण पतति विश्वा रूपावचाकशत् ।
मुनिर्देवस्यदेवस्य सौकृत्याय सखा हितः ॥४॥

पदार्थ—(**मुनिः**) विज्ञानमय मनःसत्व (**अन्तरिक्षेण**) भीतरी व्याप्तबल से (**पतति**). गति करता है (**विश्वा रूपा**) समस्त रूपों को (**अव चाकशत्**) देखता है, वह (**देवस्य देवस्य**) प्रत्येक इन्द्रिय के (**सौकृत्याय**) उत्तमता से कार्य करने के लिए (**सखा**) मित्र होकर (**हितः**) स्थित है।

भावार्थः—विज्ञानमय मनःसत्व भीतरी व्याप्तबल से गति करता है। समस्त रूपों और पदार्थों को देखता है। वह प्रत्येक इन्द्रिय के सौकर्य के लिए मित्र होकर स्थित है ॥४॥

वातस्याश्वो वायोः सखाथो देवेषितो मुनिः ।
उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ॥५॥

पदार्थः—(**मुनिः**) मनःसत्व (**वातस्य**) प्राण का (**अश्वः**) भोक्ता (**वायोः**) वायु का (**सखा**) मित्र (**देवेषितः**) इन्द्रियों से चाहने योग्य है (**यः**) जो (**पूर्वः**) पूर्व (**च**) और (**अपरः**) दूसरा (**उत**) भी (**उभौ**) दोनों (**समुद्रौ**) हृदय के दोनों पार्श्वों को (**आ क्षेति**) प्राप्त होता है।

भावार्थः—मनःसत्व प्राण का भोक्ता, वायु का मित्र, इन्द्रियों से चाहने योग्य है। वह पूर्व और दूसरे हृदय पार्श्वों को प्राप्त होता है ॥५॥

अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मदिन्तमः ॥६॥

पदार्थः—(**अप्सरसाम्**) विद्युतों (**गन्धर्वाणाम्**) मेघों के तथा (**मृगाणाम्**) मृगों के (**चरणे**) संचारस्थल में (**चरन्**) विचरने वाला (**केतस्य**) प्रज्ञापक वस्तु को (**विद्वान्**) प्राप्त हुआ (**सखा**) मित्र (**स्वादुः**) सब का ग्रहण करने वाला (**केशी**) सूर्य (**मदिन्तमः**) अतिशय सुखी करने वाला है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः - विद्युतों, और मेघों के संचार-स्थान अन्तरिक्ष में तथा मृगों के संचार-स्थल जंगल में विचरने वाला प्रज्ञापक चिन्हों को प्राप्त हुआ मित्र-भूत, सबका ग्रहण करने वाला सूर्य, अग्नि, वायु अतिशय सुखदाता है ॥६॥

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ।
केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥७॥

पदार्थः—(केशी) सूर्य (रुद्रेण) मरुद्गण अथवा वैद्युताग्नि के (सह) साथ (यत्) जब (पात्रेण) पानसाधन रश्मिजाल से (विषस्य) जल को (अपिबत्) पीता है तब (अस्मै) इस सूर्य के लिए (वायुः) वायु भूगत समस्त रसों का (उपामन्थत्) उपमन्थन करता है (कुनंनमा) माध्यमिका वाक् (पिनष्टि स्म) पीसती है ।

भावार्थः— सूर्य मरुद्गण अथवा वैद्युताग्नि के साथ जब रश्मि जाल से जल को पीता है तब इस सूर्य के लिए वायु समस्त पृथिवीस्थ रसों का उपमंथन करता है और माध्यमिका वाक् उस जल को पिसा हुआ कर देती हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३७

ऋषयः—१—७ सप्त ऋषय एकर्चाः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, ४, ६ अनुष्टुप् । २, ३, ५, ७ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

पदार्थः (उत) अपि च (देवाः) हे विद्वानो ! (अवहितम्) नीचे गिरे हुए को (उन्नयथ) ऊपर उठाओ, हे (देवाः) विद्वानो ! (उत) और (आगः) अपराध (चक्रुषम्) करने वाले को (पुनः) फिर अपराध करने से बचाओ, (देवाः) हे विद्वानो ! रक्षा करके (पुनः) फिर (जीवयथ) चिरजीवी करो ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे विद्वानो ! नीचे गिरे को ऊपर उठाओ, और अपराध करने वाले को अपराध करने से बचाओ और फिर उसको चिरजीवी करो ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः ।
दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद्रपः ॥२॥

पदार्थः—(**इमौ**) प्रत्यक्षभूत (**द्वौ**) दो (**वातौ**) वायुयें (**आ सिन्धोः**) सिन्धु पर्यन्त और (**आ परावतः**) समुद्र से परे दूर प्रदेश पर्यन्त (**वातः**) बहती हैं, हे साधक ! (**अन्यः**) एक तो (**ते**) तेरे लिए (**दक्षम्**) बल को (**आवातु**) प्राप्त करावे और (**अन्यः**) दूसरा (**यत्**) जो (**रपः**) खरावी है उसे (**परा वातु**) दूर फेंकती हैं ।

भावार्थः—प्रत्यक्षभूत दो वायुएँ सिन्धु पर्यन्त और उसके दूर के प्रदेश पर्यन्त बहती हैं । हे मनुष्य एक तो तेरे लिए बल को प्राप्त कराती है और दूसरी खराबी को दूर फेंकती है ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः ।
त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे ॥३॥

पदार्थः—(**वातः**) वायु (**भेषजम्**) औषध को (**आ वाहि**) प्राप्त कराता है, (**यद्**) जो (**रपः**) खरावी है उसे (**वातः**) वायु (**विवाहि**) दूर करता है (**त्वम्**) यह (**हि**) ही (**देवानाम्**) देवों का (**दूतः**) दूत हुआ (**विश्वभेषजः**) सारी ओषधियों के लिए (**ईयसे**) निरन्तर बहता है ।

भावार्थः—वायु औषध को प्राप्त कराता और खराबी दूर करता है, वह देवों का दूत है और सारी ओषधियां उसमें हैं । इन गुणों वाला वह निरन्तर बहता है ॥३॥

आ त्वागमं शन्तातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं ते भद्रमाभार्षं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥४॥

पदार्थः—हे रोगी मनुष्य ! मैं वैद्य (**त्वा**) तेरे पास (**शंतातिभिः**) सुखकर (**अथो**) और (**अरिष्टतातिभिः**) अहिंसा कर रक्षणों सहित (**आ अगमम्**) आता

हूँ, (ते) तेरे लिए (भद्रम्) कल्याणकारक, (दक्षम्) बल को (आ अभार्षम्) वायु के द्वारा लाता हूँ और (ते) तेरे (यक्ष्मम्) रोग को (परा सुवामि) दूर करता हूँ।

भावार्थः– हे रोगी मनुष्य ! तेरे पास मैं वैद्य सुखकर और अहिं-साकर रक्षणों के साथ आता हूं। तेरे लिए कल्याणकारक बल को वायु के द्वारा लाता हूं और तेरे रोग को नष्ट करता हूं ॥४॥

त्रायन्तामिह देवास्त्रायंतां मरुतां गणः ।
त्रायंन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥५॥

पदार्थः—(इह) इस लोक में (देवाः) सारी दिव्य शक्तियें (त्रायन्ताम्) सब की रक्षा करें, (मरुताम्) मरुतों का (गणः) समूह (त्रायताम्) सब की रक्षा करें, (विश्वा) समस्त (भूतानि) भूत जात (त्रायन्ताम्) रक्षा लरें (यथा) जिससे (अयम्) यह हमारा शरीर आदि (अरपाः) निर्दोष (असत्) रहे।

भावार्थः—इस लोक में सभी दिव्य शक्तियां सबकी रक्षा करें, मरुतों का समूह सबकी रक्षा करें, समस्त भूतजात सब की रक्षा करें जिससे यह हमारा शरीर आदि निर्दोष रहे ॥५॥

आप इद्वा उं भेषजीरापों अमीवचातनीः ।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्तें कृण्वन्तु भेषजम् ॥६॥

पदार्थः—(आपः) जलें (इत् वै उ) निश्चय ही (भेषजीः) भेषजरूप हैं, (आपः) जलें (अमीवचातनीः) रोग को दूर करने वाली हैं, (आपः) जलें (सर्वस्य) सब प्राणियों की (भेषजीः) भेषजभूत हैं अतः (ताः) वे (ते) तुझ रोगी का (भेषजम्) इलाज (कृण्वन्तु) करें।

भावार्थः—जलें निश्चय ही भेषजभूत हैं। जलें रोग को नष्ट करने वाली हैं, जलें सभी प्राणियों की भेषजभूत हैं, अतः वे तुझ रोगी का इलाज करें ॥६॥

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी ।
अनामयित्नुभ्यां त्वा ताभ्यां त्वोपं स्पृशामसि ॥७॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(दशशाखाभ्याम्) दश अंगुली वाले (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के साथ (वाचः) वाणी की (पुरोगवी) आगे को फेंकने वाली (जिह्वा) जीभ है (अनामयित्नुभ्याम्) नीरोगता उत्पन्न करने वाले (ताभ्याम्) उन दोनों हाथों से (त्वा त्वा) तुझ-तुझ को हे रोगी मनुष्य ! (उप स्पृशामसि) स्पर्श करते हैं ।

भावार्थः—दश अंगुलियों वाले दोनों हस्तों के साथ वाणी को आगे आगे फेंकने वाली जीभ है । नीरोगता देने वाले उन दोनों हाथों से, हे रोगी जनो ! तुझ तुझ को हम स्पर्श करते हैं ॥७॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१३८

ऋषिः—१—६ अंग औरवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ४, ६ पादनिचृज्जगती । २ निचृज्जगती । ३, ५, विराड्जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

तव॒ त्य इ॑न्द्र स॒ख्येषु॒ वह्न॑य ऋ॒तं म॑न्वा॒ना व्य॑दर्दिरुर्व॒लम् ।
यत्रा॑ दश॒स्यन्नु॒षसो॑ रि॒णन्न॒पः कुत्सा॑य॒ मन्म॑न्न॒ह्य॑श्च दं॒सयः॑ ॥१॥

पदार्थः—(तव) उस (इन्द्र) इन्द्र=विद्युत् के (सख्येषु) सख्यभावों में विद्यमान (त्ये) ये (वह्नयः) अग्नि की दीप्तियें (ऋतम्) जल को (मन्वानाः) जानकर (बलम्) आवरक मेघ को (व्यदर्दिरुः) अत्यन्त विदीर्ण करते हैं, (यत्र) जिस समय में (मन्मनि) स्तोत्र के होने पर (कुत्साय) स्तोता के लिए (उषसः) उषाओं को (दशस्यन्) देते हुए (अपः) जलों को (रिणन्) निगत करते हुए होते हो तब (अह्यः) वृत्र के (दंसयः) कर्म वितथ हो जाते हैं ।

भावार्थः—इस विद्युत् के संख्य भावों में विद्यमान अग्नि की दीप्तियें जलों को प्राप्त कर आवरक मेघ को अत्यन्त विदीर्ण करती हैं । जिस समय में स्तोत्र किया जाता है उस प्रभात वेला में स्तोता के लिए उषाओं को जब यह विद्युत् देता है तब वृत्र के सारे ही कर्म विफल हो जाते है ॥१॥

अवा॑सृजः प्र॒स्वः॑ श्व॒ञ्चयो॑ गि॒रीनुदा॑ज उ॒स्रा अपि॑बो॒ मधु॑ प्रि॒यम् ।
अव॑र्धयो व॒निनो॑ अस्य॒ दंस॑सा शु॒शोच॒ सूर्य॑ ऋ॒तजा॑तया गि॒रा ॥२॥

पदार्थः--यह इन्द्र=विद्युत् (**प्रस्वः**) जलों को (**अवासृजः**) उत्पन्न करता अर्थात् मेघ से गिराता है, (**गिरीन्**) मेघों को (**श्वञ्चयः**) विदारता है (**उस्राः**) किरणों को (**उदाजः**) बाहर निकालता है, (**प्रियम्**) प्रियकर (**मधु**) मधुर हवि को (**अपिबः**) पीता है, (**वनिनः**) जल युक्त समुद्रों को (**अवर्धयः**) बढ़ाता है (**अस्य**) इस इन्द्र=विद्युत् के (**दंससा**) कर्म से (**ऋत जातया**) ऋत नियम से उत्पन्न (**गिरा**) त्रयीरूप वेदवाणी से (**सूर्यः**) सूर्य (**शुशोच**) प्रदीप्त होता है।

भावार्थः--यह इन्द्र=विद्युत् जलों को मेघ से नीचे गिराती है। मेघों को विदीर्ण करती है, मेघों में छिपाई गई सूर्य किरणों को बाहर निकालती है। प्रियकर मधुर हवि को पीती है। इसके कर्म और त्रयीरूपा वेद-वाणी से सूर्य प्रदीप्त होता है ॥२॥

वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यः ।
दृळ्हानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवाँ ऋजिश्वना ॥३॥

पदार्थ--(**दिवः**) द्युलोक के (**मध्ये**) मध्य में (**सूर्यः**) सूर्य (**रथम्**) रश्मिचक्र को (**विअमुचद्**) छोड़ता है, (**आर्यः**) श्रेष्ठ अथवा महागति (**इन्द्रः**) इन्द्र=वायु (**दासाय**) उपक्षपयिता मेघ के (**प्रतिमानम्**) प्रतिकार को (**विदत्**) प्राप्त करता है। (**ऋजिश्वना**) सूर्य की ऋजुगामी किरण से (**चक्रिवान्**) मैत्री को करता हुआ (**मायिनः**) मायावी (**पिप्रोः**) जल से पूर्ण (**असुरस्य**) मेघ के (**दृढा**) दृढ़ समूहों को (**आस्यत्**) उखाड़ फेंकता है।

भावार्थः--द्युलोक के मध्य में सूर्य अपने रश्मिजाल को विखेरता है, श्रेष्ठ एवं महागति वायु सूर्य की सीधी किरणों से सहयोग करता हुआ मायावी जलपूर्ण मेघ के समूहों को नष्ट कर देता है ॥३॥

अनाधृष्टानि धृषितो व्यास्यन्निधीँरदेवाँ अमृणदयास्यः ।
मासेव सूर्यो वसु पुर्यमा ददे गृणानः शत्रूँरशृणाद्विरुक्मता ॥४॥

पदार्थः—(**धृषितः**) शत्रुओं का धर्षक (**अयास्यः**) दृढ़ इन्द्र=वायु (**अना-धृष्टानि**) अबाधित मेघबल को (**व्यस्यत्**) नष्ट करता है, उनके बलों के (**निधीन्**) धारयिता (**अदेवान्**) अदेवभूत मेघों को (**अमृणत्**) मारता है, (**मासा**) महीने के अनुसार (**सूर्य इव**) सूर्य के समान मेघों के (**पुर्यम्**) पुर में होने वाले (**वसु**) धन को (**आ ददे**) ले लेता है (**गृणानः**) निगरण करता हुआ (**विरुक्मता**) विरोचमान वज्र से (**शत्रून्**) शत्रुभूत मेघों को (**अशृणात्**) शीर्ण कर देता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—शत्रुओं का धर्षक दृढ़ वायु अबाधित मेघबल को नष्ट करता है, अदेव भूत मेघों को मारता है, और, जिस प्रकार मास मास के अनुसार सूर्य रसों को ग्रहण करता है उसी प्रकार मेघों की पुरी में होने वाले धन को हर लेता है। चमकते वज्र से शत्रुभूत मेघों को शीर्ण करता है ॥४॥

अयुद्धसेनो विभ्वा विभिन्दता दाशद्वृत्रहा तुज्यानि तेजते ।
इन्द्रस्य वज्रादबिभेदभिश्नथः प्राक्रामच्छुन्ध्यूरजहादुषा अनः ॥५॥

पदार्थः—(**अयुद्धसेनः**) विना सेना चढाये ही (**विभ्वा**) व्यापक (**विभिन्दता**) विदारक वज्र से (**वृत्रहा**) मेघ का घातक इन्द्र=वायु (**दाशत्**) प्रजा को जल धन अन्न आदि देता है, (**तुज्यानि**) प्रेर्यमाण शत्रु बलों को (**तेजते**) अल्प बनाता है, (**अभिश्नथः**) सब प्रकार से घातक (**इन्द्रस्य**) इन्द्र के (**वज्रात्**) वज्र से सभी शत्रुजन (**अबिभेत्**) डरते हैं, (**शुन्ध्युः**) सब पदार्थों का शोधक आदित्य (**प्राक्रामत्**) जगत् के प्रकाशनार्थ जाना प्रारम्भ करता है (**उषाः**) उषा (**अनः**) अपने रथ=कलेवर को (**अजहात्**) छोड़ती है।

भावार्थः—विना सेना को चढ़ाए हुए विदारक वज्र से मेघ का घातक वायु प्रजा को जल अन्न और धन आदि प्रदान करता है, प्रेर्यमाण शत्रु बलों को क्षीर्ण करता है, सभी ओर से घातक इन्द्र के वज्र से शत्रुजन डरते हैं सब पदार्थों का शोधक आदित्य जगत् के प्रकाशनार्थ उदित होता है और उषा अपने प्रकाशपुंज को समेटती है ॥५॥

एता त्या ते श्रुत्यानि केवला यदेक एकमकृणोरयज्ञम् ।
मासां विधानमदधा अधि द्यवि त्वया विभिन्नं भरति प्रधिं पिता ॥६॥

पदार्थः—(**त्या**) वे (**ते**) इस इन्द्र का (**एता**) ये (**केवला**) केवल (**श्रुत्यानि**) प्रशंसनीय पराक्रम है (**यत्**) कि (**एकः**) एकाकी वह (**एकम्**) मुख्य (**अयज्ञम्**) यज्ञहीन=असुर=मेघ को (**अकृणोः**) काटता है, (**मासाम्**) मासों के (**विधानम्**) निर्माता आदित्य को (**द्यवि अधि**) द्युलोक में (**अदधाः**) धारण करता है, (**पिता**) पालक द्युलोक (**विभिन्नम्**) मेघ से विदीर्ण किये रश्मिजल के (**प्रधिम्**) पार्श्व को (**त्वया**) इस इन्द्र=वायु के द्वारा पूरा करता है।

भावार्थः—वे ये इन्द्र के केवल स्तुत्य पराक्रम हैं जो कि वह अकेला

Scanned by CamScanner

मुख्य असुर=मेघ को काटता है, मासों के निर्माता आदित्य को द्युलोक में धारण करता है। पालक द्युलोक मेघ से विदीर्ण किए गए रश्मिजाल के पार्श्व को इस वायु के द्वारा पूरा करता है ॥६॥

यह दशम भण्डल में एकसौ अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–१३९

ऋषिः—१—६ विश्वावसुर्देवगन्धर्वः ॥ **देवता**—१—३ सविता । ४—६ विश्वावसुः ॥ **छन्दः**—१, २, ४—६ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् । **स्वरः**—धैवतः ॥

सूर्यरश्मिर्हरिकेशः पुरस्तात्सविता ज्योतिरुदयाँ अजस्रम् ।
तस्य पूषा प्रसवे याति विद्वान्त्सम्पश्यन्विश्वा भुवनानि गोपाः ॥१॥

पदार्थः—उषा के प्रादुर्भाव के अनन्तर और सूर्य के उदय से पूर्ववर्ती काल अथवा तात्कालिक सूर्य को सविता कहा जाता है।—(**सूर्यरश्मिः**) सरणशील रश्मियों वाला (**हरिकेशः**) हरणशील दीप्तिवाला (**सविता**) लोकों का प्रेरक आदित्य (**पुरस्तात्**) पूर्व दिशा में (**अजस्रम्**) अनवरत (**ज्योतिः**) तेज को (**उद् अयान्**) उदित करता है, (**तस्य**) उसके (**प्रसवे**) प्रेरण होने पर (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) लोकों को (**विद्वान्**) प्राप्त हुआ (**संपश्यन्**) दिखाता हुआ, (**गोपाः**) रक्षक (**पूषा**) वायु (**याति**) सर्वत्र विचरता है।

भावार्थः—सरणशील रश्मियों वाला हरणशील दीप्तिवाला लोकों का प्रेरक आदित्य पूर्व दिशा में अनवरत ज्योति को उदित करता है। उस की प्रेरणा में समस्त लोकों को प्राप्त हुआ, सबको दिखाता हुआ रक्षक पूषा=वायु सर्वत्र बहता है ॥१॥

नृचक्षा एष दिवो मध्य आस्त आपप्रिवान् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
स विश्वाचीरभि चष्टे घृताचीरन्तरा पूर्वमपरं च केतुम् ॥२॥

पदार्थः—(**नृचक्षाः**) मनुष्यों को समस्त पदार्थों को दिखाने वाला अथवा नयनशील रश्मियों से प्रकाशमान (**एषः**) यह सविता (**दिवः**) द्युलोक के (**मध्ये**)

मध्य में (आस्ते) स्थित है वह (रोदसी) द्यु और पृथिवी को तथा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को (आपप्रिवान्) अपने तेज से आपूरित करता हुआ विद्यमान है । (सः) वह (विश्वाचीः) सर्वव्यापिनी महा दिशाओं (घृताचीः) उपदिशाओं को भी (पूर्वम्) पूर्व भाग (केतुम्) प्रज्ञापनीय (अपरम्) पृष्ठभाग (च) और (अन्तरा) अन्तराल को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता है ।

भावार्थः—नयनशील रश्मियों से प्रकाशमान यह सविता द्यु और पृथिवी को तथा अन्तरिक्ष को अपने तेज से आपूरित करता हुआ द्युलोक के मध्य में स्थित है । वह समस्त महादिशाओं उपदिशाओं, पूर्व भाग, पृष्ठ भाग और अन्तराल को प्रकाशित करता है ॥२॥

रायो बुध्नः सङ्गमनो वसूनां विश्वा रूपाभि चष्टे शचीभिः ।
देवइव सविता सत्यधर्मेन्द्रो न तस्थौ समरे धनानाम् ॥३॥

पदार्थः—(रायः) धन का (बुध्नः) मूलभूत, (वसूनाम्) धनों का (संगमनः) प्रापक (शचीभिः) अपनी दीप्तियों से (विश्वा) समस्त (रूपा) रूपों को (अभि चष्टे) प्रकाशित करता है (देव इव) देव के समान (सविता) सविता (सत्यधर्मा) सत्य नियमों और सत्यकर्मों वाला है, लोगों के लिए (धनानाम्) धनों की (समरे) प्राप्ति के उद्योग में (इन्द्रः न) इन्द्र वायु के समान (तस्थौ) स्थित है ।

भावार्थः—धन का मूलभूत, धनों का प्रापक सविता अपनी दीप्तियों से समस्त रूपों को प्रकाशित करता है । देव=अग्नि के समान वह सत्यधर्मा और सत्यकर्मा है । लोगों के लिये धनप्राप्ति में वह इन्द्र=वायु के समान स्थित है ॥३॥

विश्वावसुं सोम गन्धर्वमापो ददृशुषीस्तदृतेना व्यायन् ।
तदन्ववैदिन्द्रो रारहाण आसां परि सूर्यस्य परिधींरपश्यत् ॥४॥

पदार्थः—(सोम) हे सौम्य पुरुष ! (गन्धर्वम्) शब्द करने वाले (विश्वावसुम्) मेघ को (यत्) जो (आपः) जलें (ददृशुषी) देखने वाली होती है (तत्) तो वह (ऋतेन) अग्नि के द्वारा (वि आयन्) विविध रूप में आती है (तत्) उस गमन को (आसाम्) इन जलों का (रारहाणः) प्रापक (इन्द्रः) इन्द्र (अन्ववैत्) प्राप्त करता है (सूर्यस्य) सूर्य के (परिधीन्) प्राची आदि दिग्भागों को (पर्यपश्यत्) सर्वथा प्रकट करता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे सौम्य पुरुष ! शब्द करने वाले मेघ को जो जलें प्राप्त होने वाली होती हैं वह अग्नि वा ताप के द्वारा विविध रूप में जाती है। उस गमन मार्ग को जलों का प्रापक इन्द्र प्राप्त करता है और सूर्य के दिग्भागों को सर्वथा प्रकट करता हैं ॥४॥

विश्वावसुरभि तन्नो गृणातु दिव्यो गन्धर्वो रजसो विमानः ।
यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म धियो हिन्वानो धिय इन्नो अव्याः ॥५॥

पदार्थः—(**दिव्यः**) द्युलोक में विद्यमान (**गन्धर्वः**) गर्जनशील, (**रजसः**) जल का (**विमानः**) निर्माता (**विश्वावसुः**) मेघ (**नः**) हमें (**तत्**) वह सब (**अभिगृणातु**) भोग योग्य बनावे, (**यत्**) जो (**घ**) निश्चय (**सत्यम्**) सत्य है (**उत्**) और (**यत्**) जिसे (**न**) नहीं (**विद्म**) जानते हैं यह (**धियः**) कर्मों को (**हिन्वानः**) बढ़ाता हुआ (**नः**) हमारी (**धियः इत्**) बुद्धियों की भी (**अव्याः**) रक्षा करता है।

भावार्थः—द्युलोकस्थ, गर्जनशील, जल निर्माता मेघ हमारे लिए उन पदार्थों को हमारा भोग्य बनाये जो सत्य हैं और जिनका हमें परिज्ञान नहीं है। यह हमारे कर्मों को बढ़ाता हुआ हमारी बुद्धियों की भी रक्षा का साधन बनता है ॥५॥

सस्निमविन्दच्चरणे नदीनामपावृणोद्दुरो अश्मव्रजानाम् ।
प्रासां गन्धर्वो अमृतानि वोचदिन्द्रो दक्षं परि जानादहीनाम् ॥६॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) सूर्य (**नदीनाम्**) नदनशील जलधारा (**चरणे**) संचरण स्थान=अन्तरिक्ष में (**सस्निम्**) मेघ को (**अविन्दत्**) प्राप्त करता है (**अश्मव्रजानाम्**) मेघ में विद्यमान जलों के (**दुरः**) द्वारों को (**अपावृणोत्**) खोल देता है, (**आसाम्**) इस नदनशील जलधाराओं के (**अमृतानि**) जलों को (**गन्धर्वः**) गर्जना रूप वाणी का धारक इन्द्र (**प्रावोचत्**) गर्जकर प्रकट करता है, वह (**अहीनाम्**) मेघों के मध्य (**दक्षम्**) जलदाता मेघ को (**परिजानात्**) सर्वथा प्रकट करता है।

भावार्थः—सूर्य नदनशील जल धाराओं के संचरण स्थान अन्तरिक्ष में मेघ को प्राप्त करता है। मेघों में विद्यमान जलों के द्वारों को खोल देता है। इन जलधाराओं को गर्जना का धारक इन्द्र गर्जकर प्रकट करता है, और मेघों में वर्तमान जलद मेघ को सर्वथा प्रकट करता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसो उन्तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१४०

ऋषिः—१—६ अग्निः पावकः॥ देवता—अग्निः॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृत्पङ्क्तिः। २ भुरिक्पङ्क्तिः। ५ संस्तारपङ्क्तिः। ६ विराट्-त्रिष्टुप्॥ स्वरः—१—५ पञ्चमः। ६ धैवतः॥

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।
बृहद्भानो शवसा वाजमुक्थ्यं१ दधासि दाशुषे कवे॥१॥

पदार्थः—(तव) उस (विभावसो) दीप्तिधन (अग्ने) अग्नि के (श्रवः) प्रशस्त (वयः) गतियुक्त (अर्चयः) अर्चियें (महि) अत्यधिक (भ्राजन्ते) चमकती हैं, (बृहद्भानो) महातेजस्क (कवे) क्रान्तदर्शन यह अग्नि (शवसा) बल से युक्त (उक्थ्यम्) प्रशंसनीय (वाजम्) अन्न को (दाशुषे) यजमान के लिए (दधासि) देता है।

भावार्थः—दीप्तिधन इस अग्नि की प्रशस्त, गतिमय उष्ण लहरें अत्यधिक चमकती हैं। महातेजस्क क्रान्तदर्शन यह यजमान के लिए बल से प्रशंसनीय अन्न को देता है॥१॥

पावकवर्चाः शुक्रवर्चा अनूनवर्चा उदियर्षि भानुना।
पुत्रो मातरा विचरन्नुपावसि पृणक्षि रोदसी उभे॥२॥

पदार्थः—(पावकवर्चाः) शोधक दीप्ति, (शुक्रवर्चाः) निर्मलतेजस्क, (अनूनवर्चाः) संपूर्ण तेज वाला यह अग्नि (भानुना) तेज से (उदियर्षि) उद्गत होता है, (पुत्रः) पुत्रभूत यह (मातरा) अरणियों में (विचरन्) विचरता हुआ (उप) यज्ञ में स्थित यजमान की (अवसि) रक्षा करता है (उभे) दोनों (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक को (पृणक्षि) हुत द्रव्य से पूरित करता है।

भावार्थः—शोधक दीप्तिवाला, निर्मल दीप्तिवाला और संपूर्ण तेज वाला यह अग्नि तेज से उद्गत होता है। पुत्रभूत यह दो अरणियों में विचरता हुआ यज्ञ में उपस्थित यजमान की रक्षा करता है। द्यु और पृथिवी दोनों को हुत द्रव्य से पूरित करता है॥२॥

ऊर्जो नपाज्जातवेदः सुशस्तिभिर्मन्दस्व धीतिभिर्हितः।
त्वे इषः सं दधुर्भूरिवर्पसश्चित्रोतयो वामजाताः॥३॥

पदार्थः—(**ऊर्जः**) तेज का (**नपात्**) पुत्रभूत (**जातवेदः**) प्रत्येक उत्पन्न वस्तु में विद्यमान यह अग्नि हमारे द्वारा की गई (**सुशस्तिभिः**) उत्तम प्रशस्तियों से (**मन्दस्व**) हमें हर्ष देता है (**धीतिभिः**) हमारे कर्मों से (**हितः**) तृप्त होता है हम लोग (**भूरिवर्णसः**) नानारूप, (**चित्रोतयः**) विचित्रतृप्ति वाले, (**वाम जाताः**) उत्तम उत्पत्ति वाले (**इषः**) अन्न आदि हवि को (**त्वे**) इस में (**संदधुः**) देते हैं।

भावार्थः—बल एवं तेज का पुत्र जातवेदस् अग्नि हमारी उत्तम प्रशस्तियों से हमें हर्ष देता है, हमारे हविर्दान आदि कर्मों से तृप्त होता है। हम लोग नानारूप विचित्र तृप्ति वाले उत्तम उत्पत्ति वाले हवि आदि हव्य पदार्थों को इसमें हवन करते हैं ॥३॥

इरज्यन्नग्ने प्रथयस्व जन्तुभिरस्मे रायो अमर्त्य ।
स दर्शतस्य वपुषो वि राजसि पृणक्षि सानसिं क्रतुम् ॥४॥

पदार्थः—हे (**अमर्त्य**) अमर (**अग्ने**) यह अग्नि (**जन्तुभिः**) मनुष्यों के साथ (**इरज्यन्**) अपने तेज से शक्तिशाली होता हुआ (**अस्मे**) हमारे लिए (**रायः**) धन को (**प्रथयस्व**) विस्तृत करता है, (**सः**) वह (**दर्शतस्य**) दर्शनीय (**वपुषः**) तेजोमय शरीर से (**विराजसि**) प्रकाशमान होता है (**सानसिम्**) संभजनीय (**क्रतुम्**) कर्म को (**पृणक्षि**) हमारे साथ संयुक्त करता है।

भावार्थः—अमर यह अग्नि मनुष्यों के साथ अपने तेज से शक्तिशाली होता हुआ हमारे लिए धन का विस्तार करता है। वह तेजोमय शरीर से प्रकाशमान होता है और संभजनीय कर्म को हमारे साथ संयुक्त करता है ॥४॥

इष्कर्तारमध्वरस्य प्रचेतसं क्षयन्तं राधसो महः ।
रातिं वामस्य सुभगां महीमिषं दधासि सानसिं रयिम् ॥५॥

पदार्थः—(**अध्वरस्य**) यज्ञ के (**इष्कर्तारम्**) संस्कर्ता (**प्रचेतसम्**) उत्कृष्ट चिन्तन के विषय (**महः**) महान् (**राधसः**) धन के (**क्षयन्तम्**) स्वामी, (**वामस्य**) वननीय धन के (**रातिम्**) देने वाले अग्नि की हम प्रशंसा करते हैं, वह (**महीम्**) महान् (**इषम्**) अन्न और (**सानसिम्**) सेवनीय (**रयिम्**) धन को यजमानों को (**दधासि**) देता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—यज्ञ के संस्कर्ता, उत्कृष्टचिन्तन के विषय, महान् धन के स्वामी और वननीय धन के दाता अग्नि के गुण कर्म की हम प्रशंसा करते हैं। वह प्रचुर अन्न और सेवनीय धन को यजमान के लिए देता है ॥५॥

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥६॥

पदार्थः—(**ऋतावानम्**) यज्ञ के साधक (**महिषम्**) महान् (**विश्वदर्शतम्**) विश्व को दिखाने वाले (**अग्निम्**) अग्नि को (**जनाः**) मनुष्य लोग (**सुम्नाय**) सुखार्थ (**पुरः**) समक्ष (**दधिरे**) धारण करते हैं (**श्रुत्कर्णं**) कानों को सुनने वाला (**सप्रथस्तमम्**) अत्यन्त विस्तार्यमाण (**दैव्यम्**) दैव्य (**त्वा**) इस अग्नि को (**मानुषा**) मानुष (**युगा**) युगल=यजमान स्त्री और पुरुष (**गिरा**) प्रशंसा वचन से प्रशंसा करते हैं।

भावार्थः—यज्ञ के साधक, महनीय और सबके दर्शन के हेतु अग्नि को मनुष्य लोग यज्ञ की वेदी में अपने समक्ष धारण करते हैं। कानों को शब्द सुनाने का साधन दैव्य इस अग्नि को मानुष युगल=यजमान स्त्री-पुरुष प्रशंसा वचनों से इसकी प्रशंसा करते हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ।

सूक्त-१४१

ऋषिः—१—६ अग्निस्तापसः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, २ निचृदनुष्टुप् । ३, ६ विराडनुष्टुप् । ४, ५ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् नः सुमना भव ।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥१॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे विद्वन् ! (**इह**) इस प्रदेश में (**नः**) हमें (**अच्छ**) उत्तम ढंग से (**वद**) उपदेश करो, (**नः**) हमारे (**प्रत्यङ्**) सम्मुख हुए (**सुमनाः**) सुमनस्क (**भव**) हो, हे (**विशस्पते**) प्रजा के पालक (**नः**) हमें (**प्रयच्छ**) ज्ञान

Scanned by CamScanner

प्रदान कर (त्वम्) तू (नः) हमारे लिए (धनदा) ज्ञानधन का दाता (असि) है ।

भावार्थः—हे विद्वन् ! तू इस प्रदेश में हमें उत्तम ढग से करणीय-अकरणीय का उपदेश कर । हमारे सम्मुख हुआ तू हमारे लिए सुमनस्क हो । हे प्रजा के पालक ! हमें ज्ञान प्रदान कर । तू हमारे लिए ज्ञानधन का दाता है ॥१॥

प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः ।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥२॥

पदार्थ--(अर्यमा) न्यायकारी मनुष्य (नः) हमें (प्रयच्छतु) न्याय देवे, (भगः) ऐश्वर्य वाला मनुष्य हमें ऐश्वर्य (प्र) दे, (बृहस्पतिः) महावेदज्ञ हमें वेदज्ञान (प्र) दे, (देवाः) दूसरे विद्वान् लोग हमें ज्ञान (प्र) दें, (उत) और (देवी) दिव्य (सूनृता) उत्तम वेदवाणी (नः) हमें (रायः) भौतिक आध्यात्मिक धनों को (ददातु) देवे ।

भावार्थः—न्यायकारी मनुष्य हमें न्याय दें, ऐश्वर्य वाला ऐश्वर्य दे, वेदज्ञ वेदका ज्ञान दे. दूसरे विद्वान् हमें बुद्धि दें, और दिव्या वेदवाणी हमें समस्त ज्ञानों और भौतिक तथा आत्मिक संपत्ति दे ॥२॥

सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे ।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥३॥

पदार्थः—(राजानम्) प्रकाशमान (सोमम्) योगी, (अग्निम्) ज्ञानी, (आदित्यान्) आदित्य=वैज्ञानिकों को (विष्णुम्) व्यापक बुद्धिवाले, (सूर्यम्) उत्तम कर्म के प्रेरक, (ब्रह्माणम्) ब्रह्मज्ञाता (च) और (बृहस्पतिम्) वेदज्ञ को हम (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (गीर्भिः) प्रशंसा वचनों से (हवामहे) पुकारते हैं ।

भावार्थः— हम अपनी रक्षा के लिए योगी, ज्ञानी, वैज्ञानिकों, व्यापक ज्ञान वाले, उत्तमकर्म के प्रेरक, ब्रह्मज्ञानी और वेद को उत्तम प्रशंसा-वचनों के साथ आहूत करते हैं ॥३॥

इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे ।
यथा नः सर्व इज्जनः सङ्गत्यां सुमना असत् ॥४॥

पदार्थः—हम (**सुहवा**) उत्तम प्रशंसा युक्त (**इन्द्रवायू**) इन्द्र=विद्युत् और वायु तथा (**बृहस्पतिम्**) अग्नि की (**इह**) इस यज्ञ में (**हवामहे**) प्रशंसा करते हैं, (**यथा**) जिससे (**सर्वः**) सब (**इत्**) ही (**जनः**) जन (**नः**) हमारे (**संगत्याम्**) धनादि की प्राप्ति के उद्योग में (**सुमनाः**) सुमनस्क (**असत्**) हो।

भावार्थः—हम उत्तमता से प्रशंसनीय विद्युत् और वायु तथा अग्नि की इस यज्ञ में प्रशंसा करते हैं जिससे समस्त लोग हमारे धन आदि की प्राप्ति के उद्योग में सुमनस्क हों ॥४॥

अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥५॥

पदार्थः—हे परमेश्वर ! आप (**अर्यमणम्**) अग्नि, (**बृहस्पतिम्**) पर्जन्य, (**इन्द्रम्**) विद्युत् (**वातम्**) वायु, (**विष्णुम्**) यज्ञ, (**सरस्वतीम्**) माध्यमिका वाक् (**च**) और (**वाजिनम्**) अन्नों वाले (**सवितारम्**) सूर्य को हमारे लिए (**दानाय**) दानार्थ (**चोदय**) प्रेरित कर।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप अग्नि, पर्जन्य, विद्युत्, वायु, यज्ञ, माध्यमिका वाक् और अन्न के उत्पादक सूर्य को हमें तत्तद् लाभों को देने के लिए प्रेरित कीजिए ॥५॥

त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥६॥

पदार्थः—हे (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**अग्निभिः**) गतिशील शक्तियों और अग्नि आदि पदार्थों से (**नः**) हमारे (**ब्रह्म**) ज्ञान (**च**) और यज्ञ को (**वर्धय**) बढ़ा, (**त्वम्**) तू (**नः**) हमें (**देवतातये**) यजभावना की पूर्ति के लिए (**रायः**) धन के (**दानाय**) प्रदान करने के लिए (**चोदय**) प्रेरित कर।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू समस्त गतिशील शक्तियों और अग्नि आदि पदार्थों से हमारे ज्ञान और यज्ञ को बढ़ा। तू हमें यज्ञ-भावना की पूर्त्ति के लिए अन्यों को धन देने के लिए प्रेरित कर ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ एकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ।

Scanned by CamScanner

सूक्त १४२

ऋषयः—१—८ शार्ङ्गाः=१, २ जरिता । ३, ४ द्रोणः । ५, ६ सारिसृक्वः । ७, ८ स्तम्बमित्रः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१—२ निचृज्जगती । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ५ आर्चीस्वराट्त्रिष्टुप् । ७ निचृदनुष्टुप् । ८ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—१, २ निषादः ३—६ धैवतः । ७, ८ गान्धारः ॥

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्य१न्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥१॥

पदार्थः—(अयम्) यह जन (अग्ने) हे परमेश्वर ! (त्वे) तुझ में (जरिता) स्तोता (अभूद् अपि) है, हे (सहसः) शक्ति के (सूनो) उत्पादक ! तुझसे (अन्यत्) भिन्न (आप्यम्) आप्तव्य (नहि) नहीं (अस्ति) है, (ते) तुम्हारा (शर्म) सुख (भद्रम् हि) कल्याणकारी और (त्रिवरूथम्) तीन भूमिकाओं वाला है, [आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक] (हिंसानाम्) हिंसक शक्तियों के (दिद्युम्) तेज को (आरे) दूर (अपाकृधि) हटा ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! यह जन तेरा स्तोता है। हे शक्ति के उत्पादक आप से भिन्न कोई आप्तव्य नहीं है। तुम्हारा हमें दिया जाने वाला सुख आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक भेद से तीन प्रकार का है और कल्याणकारी है। हे प्रभो ! हिंसक शक्तियों के तेज को दूर हटा ॥१॥

प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपाइव त्मना ॥२॥

पदार्थः—(पितूयतः) अन्न आदि हवि की इच्छा चाहते हुए (ते) उस (अग्ने) अग्नि का (जनिम) प्रादुर्भाव (प्रवत्) प्रकृष्ट होता है, यह (साचीव) सचिव के समान (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकों को (न्यृञ्जसे) वश में करता है (सप्तयः) सर्पणशील (नः) हमारे (धियः) प्रशंसावचन (प्र सनिषन्त) इस को प्राप्त होते हैं तथा (पशुपाः इव) पशुपालकों के समान (त्मना) स्वयमेव (पुरः) समक्ष (प्रचरन्ति) भली प्रकार प्रवृत्त होते हैं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हवि को प्राप्त करने वाले इस अग्नि का प्रादुर्भाव उत्कृष्ट है। यह सचिव के समान समस्त लोकों को वश में करता है। सर्पणशील हमारे प्रशंसा वचन इसको प्राप्त होते हैं तथा पशु पालकों के समान स्वयमेव सर्वात्र प्रवृत्त होते हैं ॥२॥

उत वा उ परिं वृणक्षि बप्संद्बहोरंग्न उलंपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ॥३॥

पदार्थः—(**स्वधावः अग्ने**) दीप्तिमान् यह अग्नि (**बप्सत्**) जलाता हुआ (**उत वै उ**) निश्चय ही (**बहोः**) बहुत (**उलपस्य**) तृण समूह को (**परिवृणक्षि**) नष्ट करता है (**उर्वराणाम्**) उर्वरा भूमियों के प्रदेश (**खिल्याः**) प्राणियों के गमन योग्य (**भवन्ति**) होते हैं (**ते**) इसके (**तविषीम्**) महान् (**हेतिम्**) हनन-हेतुभूत ज्वाला को (**मा**) नहीं (**चुक्रुधाम**) क्रुद्ध करते हैं।

भावार्थः—स्वयम् दीप्तिमान् यह अग्नि जलाता हुआ बहुत बड़े तृण-समूह को नष्ट करता है। उर्वरा भूमियों के प्रदेश गमन के योग्य होते हैं। इसकी ज्वाला को हम कभी कुपित नहीं करते हैं ॥३॥

यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथंगेषि प्रगर्धिनींव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेंव श्मश्रु वपसि प्र भूमं ॥४॥

पदार्थः—(**यत्**) जब (**उद्वतः**) ऊपर को जाने वाले वृक्ष आदि (**निवतः**) नीचे को जाने वाले लता गुल्म आदि को (**बप्सत्**) जलाता हुआ यह अग्नि (**यासि**) प्राप्त होता हैं तो (**प्रार्गाधनी**) परराष्ट्र में गई हुई धन आदि की कामना करने वाली (**सेना**) सेना के समान (**पृथग्**) पृथग्भूत हुआ (**एषि**) आता है, (**यदा**) जब (**वातः**) वायु (**ते**) इसके (**शोचिः**) दीप्ति को (**अनुवाति**) अनुकूल रूप में हवा देता है तब यह उसी प्रकार (**भूम**) भूमि का (**प्र वपसि**) मुण्डन करता है (**इव**) जिस प्रकार (**वप्ता**) नाई (**श्मश्रु**) दाढ़ी को मूंडता है।

भावार्थ—जब ऊपर को जाने वाले वृक्ष आदि और नीचे को फैलने वाले लता गुल्म आदि को यह अग्नि जलाता है तब परराष्ट्र को गई धन आदि को चाहने वाली सेना के समान पृथग्भूत होता हुआ आता है। जब वायु इसकी दीप्ति को अनुकूल हवा देता है तब यह उसी प्रकार भूमि का मुण्डन करता है जिस प्रकार नाई दाढ़ी को मूंडता है ॥४॥

Scanned by CamScanner

प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥५॥

पदार्थः—(अस्य) इस जलाते हुए (अग्नेः) अग्नि की (श्रेणयः) ज्वाला-पंक्तियां (एकम्) एक (नियानम्) मार्ग पर (बहवः) बहुत (रथासः) रथों के समान (प्रति ददृशे) दिखाई पड़ती हैं, (अग्ने) यह अग्नि (बाहुभ्याम्) बाहु-स्थानीय ज्वालाओं के समूह से (अनु मर्मृजानः) शोधन करता हुआ=जलाता हुआ (न्यङ्) प्रह्वीभूत होकर (यत्) जब (उत्तानाम्) ऊर्ध्वाभिमुख हुई (भूमिम्) भूमि को (अन्वेषि) प्राप्त होता है।

भावार्थः—जब यह अग्नि अपनी उठी हुई ज्वालाओं से जलाता हुआ ऊपर उठी भूमि को प्राप्त होता है तब इसकी ज्वाला पंक्तियां उसी प्रकार दिखाई पड़ती हैं जिस प्रकार एक मार्ग पर चलते हुए रथ दिखाई पड़ते हैं ॥५॥

उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥

पदार्थ—(ते अग्ने) इस अग्नि के (शुष्माः) शोषक ज्वालायें (उत् जिहताम्) ऊपर को जाती हैं (ते) इसकी (अर्चिः) अर्चि (उत्) ऊपर को जाती हैं (शशमानस्य) शीघ्र फैलने वाले (ते) इस अग्नि के (वाजाः) वेग ऊपर को जाते हैं यह (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (उच्छ्वञ्चस्व) वन में उद्गत होता है तथा (नि नम) नीचे को नमता है (त्वा) इसे (अद्य) आज (विश्वे) समस्त (वसवः) वसुगण (आ सदन्तु) प्राप्त होते हैं।

भावार्थः—इस अग्नि की शोषक ज्वालायें ऊपर को जाती हैं, इसकी अर्चि ऊपर को जाती है, शीघ्र फैलने वाले इस अग्नि के वेग भी ऊपर को उठते हैं। बढ़ता हुआ यह वन में पहुँचता है, वृक्षों को जलाता ऊपर दीखता है, नीचे को वस्तुओं को जलाता हुआ नमता दीखता है। सभी वसुगण इस को प्राप्त होते हैं ॥६॥

अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ॥७॥

पदार्थः—(**इदम्**) यह वास-स्थान (**अपाम्**) जलों का (**नि अयनम्**) ह्रद है (**समुद्रस्य**) समुद्र का (**निवेशनम्**) गृह है, अतः (**इतः**) इस स्थान से (**अन्यम्**) दूसरा (**पन्थाम्**) मार्ग (**कृणुष्व**) करता है (**तेन**) उस मार्ग से (**वशानु**) अप्रतिहत जाता है ।

भावार्थः—यह काननस्थ वासस्थान जलों का ह्रद है। समुद का गृह है। अतः अग्नि को इससे भिन्न मार्ग बनाना पड़ता है जिससे वह अप्रतिहत जाता है। गृह ऐसा होना चाहिए और जल आदि की व्यवस्था से युक्त होना चाहिए कि आग न लग सके ॥७॥

आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥८॥

पदार्थः—(**ते**) इस अग्नि के (**आयने**) आगमन में और (**परायणे**) परागमन में (**पुष्पिणीः**) फूल वाली (**दूर्वाः**) दूब घास (**रोहन्तु**) उगती हैं, (**ह्रदाः**) तालाब होते हैं, (**च**) उन ह्रदों में (**पुण्डरीकाणि**) कमल खिलें (**इमे**) ये (**समुद्रस्य**) समुद्र के (**गृहाः**) आश्रयभूत होते हैं ।

भावार्थः—इस अग्नि के आगमन और परागमन में फूल वाली दूर्वा घास उगती है। तालाब होते हैं और उनमें कमल खिलते हैं और ये समुन्द्र के आश्रयभूत होते हैं। गृह इस प्रकार के होने चाहिएं ॥८॥

यह दशम मण्डल में एक सौ बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१४३

ऋषिः—१—६ अत्रिः साङ्ख्यः ॥ **देवते**—अश्विनौ ॥ **छन्दः**—१—५ अनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः – हे अश्विनौ=अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों (**ऋतजुरम्**) सत्य व्यवहार और यज्ञ आदि में निरन्तर संलग्न, (**त्यम् चित्**) उस (**अत्रिम्**) तापत्रय रहित मनुष्य को (**अश्वम् न**) अश्व की भांति (**अर्थम्**) प्राप्तव्य की (**यातवे**) प्राप्ति के लिए (**कृणुथः**) समर्थ करते हो, (**यदि**) और (**कक्षीवन्तम्**) दृढ़प्रतिज्ञ मनुष्य को (**रथम् न**) रथ की भांति (**पुनः**) फिर (**नवम्**) नूतन (**कृणुथः**) करते हो ।

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों सत्य-व्यवहार और यज्ञ आदि में निरन्तर संलग्न इस तापत्रयरहित पुरुष को अश्व के समान प्राप्तव्य की प्राप्ति में समर्थ करते हो और दृढ़प्रतिज्ञ को रथ की भांति सदा नया करते रहते हो ॥१॥

त्वं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों (**यम्**) जिस (**वाजिनम्**) वेगवान् (**अत्रिम्**) कर्मफलों के भोक्ता जीव को (**अश्वम् न**) अश्व के समान (**अरेणवः**) अहिंसक प्राणों एवं सूक्ष्म शरीर आदि ने (**अत्नत**) बांधा है (**यविष्ठ**) बलशाली (**त्यम् चित्**) उसको (**आ रजः**) इस लोक के निमित्त (**ग्रन्थिम् न**) दृढ गांठ के समान (**विष्यतम्**) विशेषरूप से खोल दे ।

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों उस बलशाली कर्मों के फल के भोक्ता जीव को इस लोक के निमित्त दृढ़ ग्रन्थि के समान खोल दो जिसे अश्व के समान प्राण और शरीर आदि ने बांध रखा है। अर्थात् उसे इस लोक में शरीर रहित हो विना बन्धन भ्रमण करने की मोक्षावस्था को प्राप्त करावें ॥२॥

नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३॥

पदार्थः—(**नरा**) हे नेता (**दंसिष्ठौ**) दर्शनीयतम, (**शुभ्रा**) शुभ्र ज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक ! आप (**अत्रये**) तापत्रय रहित पुरुष के लिए (**धियः**) बुद्धियां (**सिषासतम्**) प्रदान करते हैं, (**नरा**) हे उत्तम कर्मों के नेता ! (**अथा**) अनन्तर (**न**) और (**दिवः**) ज्ञान से प्रकाशमय इस की (**स्तोमः**)

Scanned by CamScanner

स्तुति—प्रशंसा (वाम् हि) आप दोनों की (विशसे) प्रशंसा के लिए (पुनः) पुनः और आज भी समर्थ है ।

भावार्थः—हे उत्तम कर्मों के नेता, दर्शनीय, उत्तम ज्ञान वाले अध्यापक और उपदेशक ! तापत्रय रहित मनुष्य को आप उत्तम ज्ञान प्रदान करते हैं । अनन्तर ज्ञान से प्रकाशमान हुए उस पुरुष के प्रशंसा-वचन पुनः और आज भी आपकी प्रशंसा में समर्थ होते हैं ॥३॥

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥४॥

पदार्थः—(सुराधसा) शोभन दान वाले (अश्विना) हे अध्यापक और उपदेशक हमारी (सुमतिः) उत्तम प्रशस्ति और (रातिः) यज्ञ आदि की क्रिया आदि जो कुछ हैं (तत्) वह (वाम्) आप के (चिते) ज्ञान के लिए हैं (यत्) जो (नरा) उत्तम कर्मों के नेता आप लोग (सदने) यज्ञ गृह में (पृथौ) विस्तीर्ण (समने) यज्ञ में (ना) हमें (आ पर्षथः) रक्षण और ज्ञान आदि से परिपूर्ण करते हो ।

भावार्थः—हे शोभन ज्ञानदान वाले अध्यापक और उपदेशक ! हमारे द्वारा की जाने वाली उत्तम प्रशस्ति और यज्ञ आदि की क्रिया जो कुछ भी है वह सब आपके ज्ञान के बढ़ाने के लिए है । उत्तम कर्मों के नायक आप लोग हमारे यज्ञ गृह में होने वाले विस्तीर्ण यज्ञों में हमें रक्षण और ज्ञान आदि से परिपूर्ण करते हैं ॥४॥

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

पदार्थः—(युवम्) ये दोनों (अश्विनौ) सूर्य और अग्नि (समुद्रे) अन्तरिक्ष में (रजसः) मेघ के (पारे) प्रान्तभाग में (ईंखितम्) डोलायमान (भुज्युम्) जल को (पतत्रिभिः) पतनशील वायुओं अथवा मरुतों द्वारा (अच्छ) भली प्रकार (आ यातम्) प्राप्त होते हैं और (नासत्या) सत्यभूत ये दोनों उसे (सातये) पृथिवी आदि के लिए देने योग्य (कृतम्) करते हैं ।

भावार्थः—ये दोनों सूर्य और अग्नि अन्तरिक्ष में मेघ के प्रान्त भाग में डोलायमान जल को मरुतों के माध्यम से भली प्रकार प्राप्त होते हैं

Scanned by CamScanner

और ये सत्यभूत पदार्थद्वय उसे पृथिवी आदि के लिए वृष्टि द्वारा देने योग्य बनाते हैं ॥५॥

आ वां सुम्नैः शंयूइंव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥६॥

पदार्थः—(नरा) उत्तम कर्मों के नेता, (विश्व वेदसा) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी, (मंहिष्ठा) महनीय हे अशिना=अध्यापक और उपदेशक (शंयू इव) सुखदायक माता पिता के समान (वाम्) आप दोनों (सुम्नैः) धन और यश से (अस्मे) हमें (पिप्युषीः) प्रवृद्ध (इषः) जलों से (उत्सम् न) कूप के समान (सम्) भली प्रकार (भूषतम्) अलंकृत करते हो ।

भावार्थः—हे उत्तम कर्मों के नेता, समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी, महनीय अध्यापक और उपदेशक ! आप दोनों सुखदायक माता-पिता के समान हमें धनों और यशों से उसी प्रकार अलंकृत करते हैं जिस प्रकार उत्तम प्रवृद्ध इष्ट जलें कूप को परिपूर्ण करती हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एक सौ तैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त—१४४

ऋषिः–१–६ सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः ॥ देवता–इन्द्रः ॥
छन्दः—१, ३ निचृद्गायत्री । ४ भुरिग्गायत्री । आर्चीस्वराड्बृहती ।
५ सतो बृहती । ६ निचृत्पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१, ३, ४
षड्जः ॥ २, ५, मध्यमः । ६ पञ्चमः ॥

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते ।
दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥१॥

पदार्थः—हे प्रभो ! (अयम् हि) यह (अमर्त्यः) अमरणधर्मा (दक्षः) ज्ञान से सम्पन्न, (विश्वायुः) समस्त आयु का भोग करने वाला (इन्दुः) योगी जीव (अत्यः न) अश्व के समान (वेधसे ते) सर्व विधाता तुझ प्रभु की प्राप्ति के लिये (पत्यते) यत्न करता है ।

भावार्थः—हे प्रभो ! सर्व विधाता आप की प्राप्ति के लिए यह अमर्त्य, ज्ञान संपन्न, सब आयुओं को भोगने वाला योगी जीव अश्व के समान यत्न करता है ॥१॥

अयमस्मासु काव्यं ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥२॥

पदार्थः—(**अस्मासु**) हमारे मध्य में (**अयम्**) यह प्रभु (**काव्यः**) प्रशंसनीय (**ऋभुः**) दीप्तिमान् तथा (**दास्वते**) यज्ञ आदि कर्मों के कर्त्ता और दाता के लिए (**वज्रः**) वज्र के समान रक्षक है (**अयम्**) यह (**ऊर्ध्वकृशनम्**) ऊर्ध्वगामी अग्नि के समान तेजस्वी (**मदन्**) स्तुतिकर्त्ता को (**बिभर्ति**) धारण करता है, (**न**) जिस प्रकार (**ऋभुः**) ज्ञानी मनुष्य (**कृत्व्यम्**) कर्मशील (**मदम्**) हर्षदाता को धारण करता है ।

भावार्थः—हमारे मध्य में यह प्रभु प्रशंसनीय दीप्तिमान् तथा यज्ञ-कर्म के कर्ता और दाता के लिए वज्र के समान रक्षक है। यह ऊर्ध्वगति अग्नि के समान तेजस्वी स्तुतिकर्ता को उसी प्रकार धारण करता है जिस प्रकार ज्ञानी कर्मशील हर्षदाता को धारण करता है ॥२॥

घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः ।
अवं दीधेदहीशुवः ॥३॥

पदार्थः—(**घृषुः**) प्रकाशमान (**स्वासु**) अपनी (**आसु**) इन प्रजाओं में (**वंसगः**) वननीयरूप में व्यापक परमेश्वर (**श्येनाय**) प्रशस्त आचार वाले (**कृत्वने**) कर्मशील व्यक्ति के लिए (**अहीशुवः**) अति वृद्धि वाले पुत्र पौत्र आदि को (**अव-दीधेत्**) देता है ।

भवार्थः—प्रकाशमान तथा अपनी प्रजाओं में व्यापक परमेश्वर प्रशस्त आचार वाले कर्मशील व्यक्ति को अतिवृद्धि वाले पुत्र पौत्र आदि को देता है ॥३॥

यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।
शतचक्रं यो३ह्यो वर्तनिः ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(**श्येनस्य**) सर्वत्र व्याप्त आकाश का (**पुत्रः**) पुत्र (**सुपर्णः**) उत्तम गति वाला वायु (**शतचक्रम्**) सैंकड़ों कार्यों के साधक (**यम्**) जिस सोमतत्त्व को (**परावतः**) दूरस्थ द्युलोक से (**आभरत्**) पृथिवी आदि पर लाता है (**यः**) जो सोम (**अहृयः**) मेघ का (**वर्तनिः**) प्रेरक वा प्रवर्तक है।

भावार्थः—सर्वत्र व्याप्त आकाश का पुत्र उत्तमगति वायु दूरस्थ द्युलोक से जिस सैकड़ों कार्यों वाले सोम तत्त्व को पृथिवी आदि पर लाता है वह सोम तत्त्व मेघ और पर्जन्य आदि का प्रवर्त्तक है ॥४॥

यं ते॑ श्ये॒नश्चारु॑मवृ॒कं प॒दाभ॑रदरु॒णं मा॒नमन्ध॑सः ।

ए॒ना वयो॒ वि ता॒र्यायु॑र्जी॒वस॑ ए॒ना जा॑गार ब॒न्धुता॑ ॥५॥

पदार्थः—(**ते**) इस इन्द्र=सूर्य के लिए (**चारुम्**) चारु (**अवृकम्**) बाधारहित, (**अरुणम्**) रोचमान (**अन्धसः**) अन्न के (**मानम्**) निर्माता (**यम्**) जिस सोमतत्त्व को (**श्येनः**) वायु (**पदा**) अपनी गति से (**आ अभरत्**) लाता है (**एना**) इस सोम ने (**वयः**) अन्न और (**जीवसे**) जीवन के लिए (**आयुः**) आयु (**प्रादायि**) दी है, (**एना**) इससे ही (**बन्धुता**) जगत् का बन्धन (**जागार**) जागृत है।

भावार्थः—इस सूर्य के लिए चारु, बाधारहित, रोचमान, अन्न के निर्माता जिस सोम तत्त्व को वायु अपनी गति से लाता है उस इसने ही विश्व में अन्न और जीवन के लिए आयु दी है। इससे ही विश्व का बन्धन सदा जागृत रहता है ॥५॥

ए॒वा तदिन्द्र॒ इन्दु॑ना दे॒वेषु॑ चिद्धारयाते॒ महि॒ त्यजः॑ ।

क्रत्वा॒ वयो॒ वि ता॒र्यायुः॑ सुक्रतो॒ क्रत्वा॒यमस्मदा सु॒तः ॥६॥

पदार्थः—(**एवा**) इस प्रकार से (**तत्**) उस (**इन्दुना**) सोमतत्त्व तृप्त (**इन्द्रः**) सूर्य अथवा वायु (**देवेषु चित्**) समस्त दिव्य पदार्थों में (**महि**) महत् (**त्यजः**) तेज अथवा एक दूसरे से भिन्न रखने वाली शक्ति को (**धारयाते**) धारण करता है, (**सुक्रतो**) उत्तम कर्मों वाला यह सूर्य अथवा वायु (**क्रत्वा**) कर्म से हमारे लिए (**वयः**) अन्न और (**आयुः**) आयु (**वितारि**) देता है, (**अयम्**) यह सोम (**क्रत्वा**) यज्ञ कर्म से (**अस्मत्**) हमारे द्वारा (**आ सुतः**) संपादित किया जाता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—इस प्रकार इस सोमतत्त्व से पूरित सूर्य अथवा वायु समस्त दिव्य पदार्थों में महान् तेज और पार्थक्य गुण को धारण करता है। उत्तम कर्मों वाला सूर्य हमारे वास्ते अन्न और आयु को देता है। यह सोम यज्ञ-कर्म से हमारे द्वारा निष्पादित किया जाता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एक सौ चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १४५

ऋषिः—१—६ इन्द्राणी ॥ देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम् ॥ छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ४ अनुष्टुप् । ३ आर्चीस्वराडनुष्टुप् । ६ निचृत्-पङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—५ गान्धारः । ६ पञ्चमः ॥

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥१॥

पदार्थः—मैं वैद्य (**बलवत्तमाम्**) अति बलवाली, (**वीरुधम्**) लतामयी (**इमाम्**) इस (**ओषधिम्**) ओषधि को (**खनामि**) खोदकर निकालता हूँ (**यया**) जिसके द्वारा इसका सेवन करने वाली (**सपत्नीम्**) सपत्नीपने को (**बाधते**) हटाती है और (**यया**) जिसके द्वारा (**पतिम्**) पति को (**संविन्दते**) अधिक देर तक आसक्त कर रोक रखती है।

भावार्थः—मैं वैद्य अत्यधिक बलवाली अवरोधक लतामयी ओषधि को खोदकर निकालता हूँ जिससे उसका सेवन करने वाली स्त्री अपने पति को इतना आसक्त और अवरुद्ध कर रखती है कि वह दूसरी पत्नी करने की इच्छा ही नहीं करता है और जिसके सेवन से वह पति को ज्यादा आसक्त कर रखती है ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥२॥

पदार्थः—(**उत्तानपर्णे**) ऊपर की ओर को फैले हुए पत्तों वाली, (**सुभगे**) उत्तम ऐश्वर्य वाली, (**देवजूते**) देवों=विद्वानों के सेवित अथवा दिव्य वेगवाली, (**सहस्वति**)

Scanned by CamScanner

बहुत बल दायक यह ओषधि (मे) मेरी (सपत्नीम्) सौत को (परा धम) दूर ले जावे, और (पतिम्) पति को (केवलम्) केवल (मे) मेरा (कुरु) करे।

भावार्थः—उत्तानपर्ण, ऐश्वर्य वाली, दिव्य वेगवाली, अतिबलदात्री यह ओषधि मेरी सौत को दूर हटावे और मेरे पति को केवल मेरा बनावे ॥२॥

उत्त॑राहमु॑त्तर उत्त॒रेदुत्त॑राभ्यः ।
अथा॑ स॒पत्नी॒ या ममाध॑रा साध॑राभ्यः ॥३॥

पदार्थः--(उत्तरे) इस उत्कृष्टतर पाठा ओषधि के सेवन से मैं स्त्री (उत्तरा) उत्कृष्टतरा तथा (उत्तराभ्यः) उत्कृष्टतरा स्त्रियों से (इत) भी उत्कृष्टतर हो जाऊँ, (अथ) और (या) जो (मम) मेरी (सपत्नी) सौत है (सा) वह (अधराभ्यः) निकृष्टों से भी (अधरा) निकृष्ट हो जावे।

भावार्थः---इस उत्कृष्टतर पाठा ओषधि के सेवन से मैं स्त्री उत्कृष्ट और उत्कृष्टों से भी उत्कृष्टतर हो जाऊँ। तथा मेरी सौत अपकृष्टों से भी अपकृष्ट हो जावे ॥३॥

न॒ह्य॑स्या॒ नाम॑ गृभ्णा॒मि नो अ॒स्मिन्र॑मते॒ जने॑ ।
परा॑मे॒व प॑रा॒वतं॑ स॒पत्नीं॑ गमयामसि ॥४॥

पदार्थः—(नहि) नहीं (अस्याः) इसका (नाम) नाम (गृभ्णामि) लेती हूं, (अस्मिन्) इस (जने) जन में (नो) न कोई स्त्री (रमते) प्रसन्न ही होती हैं (सपत्नीम्) सौत को (पराम्) दूर से (एव) ही (परावतम्) दूर (गमयामसि) भेजती हूँ।

भावार्थः—मैं स्त्री सपत्नी का नाम तक उच्चारण नहीं करती हूं। सपत्नी नामक जन में कोई स्त्री कभी प्रसन्नता नहीं प्राप्त करती है। इसको मैं दूर से दूर प्रदेश में भेजती हूं ॥४॥

अ॒हम॑स्मि॒ सह॑माना॒थ त्वम॑सि सास॒हिः ।
उ॒भे सह॑स्वती भू॒त्वी स॒पत्नीं॑ मे सहावहै ॥५॥

पदार्थः—(अहम्) मैं स्त्री (सहमाना) सौत को दबाने वाली हूँ, (अथ) और (त्वम्) यह पाठा ओषधि (सासहिः) उसका अभिभव करने वाली (असि)

Scanned by CamScanner

है, अतः (उभे) दोनों ही (सहस्वती अभिभवित्री) अभिभव कर्त्री (भूत्वी) होकर (मे) मेरी सौत को (सहावहै) दबा देवें ।

भावार्थः—मैं स्त्री सौत को कुचलने वाली हूं । यह पाठा ओषधि भी उसको दबाने वाली है । अतः हम दोनों दबाने वाली होकर उसे कुचल देवें ॥५॥

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ॥६॥

पदार्थः—हे पतिदेव ! (सहमानाम्) सपत्नी को दबाने वाली ओषधि का (ते) तुम्हारे पर (उपअधाम्) प्रयोग करती हूँ, (सहीयसा) अभिभव करने वाली इस ओषधि के प्रयोग से (त्वा) तुझे (अभि अधाम्) धारण करती हूँ, (ते) तेरा (मनः) मन (वत्सम्) बछड़े को (गौः इव) गाय के समान (माम्) मेरे (अनु) पीछे (प्र धावतु) दौड़े, तथा (पथा) नीचे रास्ते से (वाः इव) जल के समान (धावतु) दौड़े ।

भावार्थः—हे पतिदेव ! इस सपत्नीबाधक ओषधि का मैं स्त्री तुझ पर प्रयोग करती हूं । अभिभूत करने वाली इस ओषधि के सेवन से तुझे धारण करती हूं । तेरा मन मेरे पीछे उसी प्रकार दौड़े जिस प्रकार गाय बछड़े के पीछे दौड़ती है और पानी निम्न मार्ग से बहता है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एक सौ पेंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१४६

ऋषिः—१—६ देवमुनिरैरम्मदः॥ देवता—अरण्यानी ॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ भुरिगनुष्टुप् । ३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४, ६ अनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।

कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दतीँ३ ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थ—(अरण्यानि अरण्यानि) यह महावन (या) जो (असौ) यह (प्रइव) रक्षणार्थ (नश्यसि) प्राप्त होता है अथवा नष्ट के समान प्रतीत होता है, (कथा) क्यों (ग्रामम्) ग्राम को (न) नहीं (पृच्छसि) पूछता (त्वा) इसे (भीः) भय (इव) सम्प्रति (न) नहीं (विन्दति) लगता है।

भावार्थः—यह महावन जो रक्षा के लिए प्राप्त है, निर्जन है। यहां ग्राम की बात कोई क्यों पूछे ? । क्या यहां रहने वाले को भय नहीं लगता है ? ।।१।।

वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ।।२।।

पदार्थः—(यत्) यदा (वृषारवाय) झंकार वाले झींगर (झिल्ली) के (वदते) बोलने के उत्तर में (चिच्चिकः) चीची करता हुआ जन्तु (आघाटिभिः) वीणाओं से (धावयन् इव) निषाद आदि स्वरों को ठीक करते हुए गायक के समान (उपावति) प्रतिध्वनि के साथ प्राप्त होता है। तब (अरण्यानी) यह महावन (महीयते) महत्व को प्राप्त होता है।

भावार्थ—जब झिल्ली झंकार के प्रत्युत्तर में चीची शब्द करता हुआ जन्तु वाणाओं से स्वर शुद्ध करते हुए गायक के समान झिल्ली को प्राप्त होता है तब इस महावन की शोभा उत्तम दीखती है ।।२।।

उत गावइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ।।३।।

पदार्थ—(उत) और (गावः) गवय आदि मृग (इव) संप्रति (अदन्ति उत) घास आदि तृणों को खाते वा चरते हैं, (उत) तथा लता गुल्म आदि से घिरा स्थान (वेश्म इव) घर के समान (दृश्यते) दिखाई पड़ता है, (उतो) तथा (अरण्यानिः) यह महावन (सायम्) संध्याकाल में (शकटीः इव) गाड़ियों के समान सूखे काष्ठ आदि से भरी लोगों की गाड़ियों को (सर्जति) विसर्जित करताहै।

भावार्थः—इस महावन में गवय आदि मृग घास को चरते हैं। तथा लता गुल्म आदि से आच्छादित स्थान गृहके समान दिखाई पड़ता है। सायं काल में यह महावन काष्ठ आदि से भरी गाड़ियों को विसर्जित करता है ।।३।।

Scanned by CamScanner

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥४॥

पदार्थः—(**अंग**) हे मनुष्यो ! (**एषः**) यह इस महारण्य में वर्तमान मनुष्य (**गाम्**) गाय को (**आह्वयति**) पुकारता है, (**अंग**) हे लोगो ! (**एषः**) यह दूसरा व्यक्ति (**दारु**) काष्ठ को (**अप अवधीत्**) काटता वा तोड़ता है, (**सायम्**) सायंकाल में (**अरण्यान्याम्**) महारण्य में (**वसन्**) बसता हुआ मनुष्य भयंकर शब्द को सुनकर (**अक्रुक्षत्**) कोई चोर आदि बोलता है (**इति**) ऐसा (**मन्यते**) समझता है ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस महारण्य में यह मनुष्य गाय को बुला रहा है, यह दूसरा व्यक्ति काष्ठ को तोड़ रहा है और सायंकाल में इसमें बसता हुआ व्यक्ति भयंकर शब्द को सुनकर डरा हुआ ऐसा मानता है कि कोई चोर आदि बोल रहा है ॥४॥

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥५॥

पदार्थः— (**न**) नहीं (**वै**) ही (**अरण्यानिः**) महावन (**हन्ति**) किसी को कष्ट देता है (**च इत्**) यदि (**अन्यः**) कोई दूसरा व्याघ्र चौर आदि (**न**) नहीं (**अभिगच्छति**) आक्रमण करता है, तो (**स्वादोः**) स्वादु (**फलस्य**) फल को (**जग्ध्वाय**) खाकर बसता हुआ मनुष्य (**यथाकामम्**) यथेच्छ (**निपद्यते**) विचरता है ।

भावार्थः—यह महारण्य किसी को कष्ट नहीं पहुँचाता है । यदि कोई दूसरा व्याघ्र, चोर आदि आक्रमण नहीं करता है तो इस महा कानन में रहने वाला स्वादु फलों को खाकर यथेच्छ विचरता है ॥७॥

आञ्जनगन्धिं सुरभिं बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥६॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं (**आञ्जनगन्धिम्**) कस्तूरी आदि की गन्ध से युक्त, (**सुरभिम्**) उत्तम सौरभ युक्त, (**बह्वन्नाम्**) बहुत फलादि अन्नों से युक्त (**अकृ-**

Scanned by CamScanner

षीवलाम्) विना कृषकों वाले (मृगाणाम्) मृगों की (मातरम्) माता=निर्माता (अरण्यानिम्) इस महावन की (प्र अशंसिषम्) प्रशंसा करता हूँ ।

भावार्थः—मैं अरण्य के रहस्य को जानने वाला कस्तूरी आदि के मोद से युक्त, उत्तम सौरभ वाले, बहुत फल आदि अन्नों से पूर्ण, विना किसान के कृषि किये सब कुछ देने वाले (अर्थात् अकृष्टपच्य) और मृगों के निर्माता इस महारण्य की प्रशंसा करता हूं ॥६॥

सूचना– यह १४६ वां सूक्त अरण्यानी का है । अरण्यानी पद स्त्रीलिङ्ग में है । परन्तु इसका अर्थ महावन, महारण्य है । 'हिमारण्ययोर्महत्त्वे, इस ४।१।४६।१ सूत्र से स्त्रीलिंग बनाया गया है । अरण्य ही नहीं ।

यह दशम मण्डल में एकसौ छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १४७

ऋषिः—१—५ सुवेदाः शैरीषिः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ विराड्जगती । २ आर्चीभुरिग्जगती । ३ जगती । ४ पादनिचृज्जगती । ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—१—४ निषादः । ५ धैवतः ॥

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥१॥

पदार्थः—(ते) उस इन्द्र=विद्युत् की (प्रथमाय) मुख्य (मन्यवे) शक्ति के लिए मैं वैज्ञानिक (श्रत्) सत्य विश्वास (दधामि) धारण करता हूँ (यत्) जिसके द्वारा (नर्यम्) नेतव्य (वृत्रम्) मेघ को (अहन्) मारता है (अपः) जलों को (विवेः) इस लोक में प्राप्त कराता है, (यत्) जब (उभे) दोनों (रोदसी) द्यु और पृथिवी लोक (त्वा अनु) इस सूर्य को अनुसरण करते वर्तमान होते हैं तब (पृथिवी चित्) विस्तीर्ण अन्तरिक्ष भी (अद्रिवः) इस वज्री इन्द्र के (शुष्मात्) बल से (रेजते) कम्पायमान होता है ।

भावार्थ—इस विद्युत् की मुख्य शक्ति के प्रति मैं वैज्ञानिक विश्वास रखता हूँ जिसके द्वारा वह नेतव्य मेघ को मारता है और जलों को इस

Scanned by CamScanner

लोक में बरसाता है। जब द्यु और पृथिवी लोक इसका अनुसरण करके वर्तमान होते हैं तब विस्तीर्ण अन्तरिक्ष इस वज्री इन्द्र के बल से कम्पायमान होता है ॥१॥

त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥२॥

पदार्थः—(अनवद्य त्वम्) यह प्रशस्त इन्द्र=विद्युत् (मायिनम्) मायावी (वृत्रम्) मेघ को (मायाभिः) माया=युक्तियों द्वारा (श्रवस्यता) लोक में अन्न देने वाले (मनसा) बल से (अर्दयः) विदीर्ण करता है (त्वाम् इत्) इसको ही (गविष्टिषु) छिपी किरणों की प्राप्ति में (नरः) मरुत् लोग (वृणते) साधन बनाते हैं (त्वाम्) इसको (विश्वासु) समस्त (हव्यासु) हवनीय (इष्टिषु) इष्टियों में (वृणते) स्वीकार करते हैं।

भावार्थ—यह प्रशस्त विद्युत् मायावी मेघ को युक्तियों द्वारा लोक को अन्न आदि देने की शक्ति और दृष्टि से विदीर्ण करता है। इसको ही मरुद्गण छिपी किरणों की प्राप्ति में साधन बनाते हैं और समस्त हवनीय इष्टियों में इसे लोग स्वीकार करते हैं ॥२॥

ऐषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥३॥

पदार्थः—(पुरुहूत मघवन्) बहुतों से प्रशस्यमान धन का दाता यह इन्द्र=विद्युदात्मक बल (एषु) इन (सूरिषु) स्तोताओं में (आ चाकन्धि) अति दीप्त रहता है, (ये) जो (वृधासः) समृद्ध हुए (मघम्) धन को (आनशुः) प्राप्त करते हैं और (मेधसाता) यज्ञ में (वाजिनम्) बलवान् इस इन्द्र की (अर्चन्ति) प्रशस्ति अथवा अर्चना करते हैं वे (तोके) पुत्र (तनये) पौत्र (परिष्टिषु) अन्य इष्ट फलों और (अह्रये) प्रशस्त (धने) धन की प्राप्ति में समर्थ होते हैं।

भावार्थः—बहुतों से प्रशस्यमान धनदाता यह विद्युदात्मक बल स्तोताओं की स्तुतियों में दीप्त रहता है। जो समृद्ध होकर धन को प्राप्त करते हैं और यज्ञ में बलवान् इस इन्द्र की यज्ञ के देवता रूप में प्रशंसा करते हैं और हवि आदि देते हैं वे पुत्र, पौत्र, अन्य इष्ट फल और प्रशस्त धन की प्राप्ति के विषय में समर्थ होते हैं ॥३॥

Scanned by CamScanner

स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥४॥

पदार्थः (सः) वह (इव) ही (नु) शीघ्र (सुभृतस्य) सुष्ठु संपादित (रायः) समृद्धि को (चाकनत्) प्राप्त करता है (यः) जो (अस्य) इस इन्द्र =विद्युत् के (रंह्यम्) वेगात्मक (मदम्) बल को (चिकेतति) प्रयोगात्मक रूप से जानता है (मघवन्) इस मघवान् (त्वावृधः) इन्द्र को बढ़ाने वाला (दाश्वध्वरः) यज्ञ आदि में प्रयुक्त करने वाला (सः) वह यजमान (नृभिः) ऋत्विजों के साथ (धना) धनों और (वाजम्) अन्न को (मक्षु) शीघ्र (भरते) संपादित करता है ।

भावार्थः – वह ही शीघ्र सुसंपादित समृद्धि को प्राप्त करता है जो इस इन्द्र=विद्युत् के वेगात्मक बल को प्रयोगात्मक रूप से जानता है। इन्द्र को बढ़ाने वाला, यज्ञ आदि कार्यों में प्रयुक्त करने वाला वह यजमान ऋत्विजों सहित धन और अन्न को शीघ्र संपादित करता है ॥४॥

त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥५॥

पदार्थः— (मघवन्) प्रभूत संपत्ति वाला, (दस्म) दृष्टि का हेतुभूत (त्वम्) यह विद्युत् (महिना) महती शक्तिवाले पदार्थ से (गृणानः) निगीर्यमाण किया हुआ (उरु) अधिक (शर्धाय) बल को (कृधि) संपन्न करता है, (रायः) धनों और वस्तुओं को (शग्धि) देता है, (विभक्ता) विविध प्रकार से बटा हुआ (त्वम्) यह (मित्रः) उदान वायु, (वरुणः) प्राण वायु के (न) समान (मायी) युक्तियों और ज्ञान से प्रयुक्त हुआ (नः) हमें (न) संप्रति (पित्वः) अन्न आदि भोग्यों को (दयसे) देता है ।

भावार्थः—प्रभूत संपत्तियों से युक्त, दृष्टि का हेतुभूत, यह विद्युत्तत्व महती शक्तिवाले पदार्थों से निगीर्यमाण किया हुआ महान् बल को उत्पन्न करता है, धनों और वस्तुओं को देता है, विविध प्रकार से कार्य में बांटा गया यह तत्त्व प्राण और उदान वायु के समान युक्तियों और ज्ञानों से प्रयोग में लाया गया हमें अनेक प्रकार के भोग्य पदार्थों को प्रदान करता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१४८

ऋषिः – १—५ पृथुर्वैन्यः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः – १ विराट्त्रिष्टुप् ॥ २ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ३, ५, पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४ आर्चीस्वराट्-त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

सुष्वाणास॑ इन्द्र स्तुमसि॑ त्वा सस॒वांस॑श्च तुविनृम्ण॒ वाज॑म् ।
आ नो॑ भर सुवि॒तं यस्य॑ चा॒कन्त्मना॒ तना॑ सनुयाम॒ त्वोता॑: ॥१॥

पदार्थः—हे (**तुविनृम्ण**) बहुधन (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**सुष्वाणासः**) उपासना एवं स्तुति करनेहारे हम (**त्वा**) आप की (**स्तुमसि**) स्तुति करते हैं, (**च**) और (**वाजम्**) अन्न को अथवा पुरोडाश आदि को (**ससवांसः**) अन्यों को अथवा यज्ञ में हविरूप में देते हुए हम आप की स्तुति करते हैं, (**यस्य**) जिस को आप (**चाकन्**) हमें देना चाहते हैं उस (**सुवितम्**) शोभन धन को (**नः**) हमें (**आ भर**) दें, (**त्वोताः**) तुमसे रक्षित हम (**त्मना**) स्वयम् (**तना**) धनों को (**सनुयाम**) प्राप्त करें ।

भावार्थः—हे बहुधन परमेश्वर ! उपासना करने हारे हम आप की स्तुति करते हैं तथा दूसरों को अन्न देते हुए अथवा यज्ञाग्नि में पुरोडाश आदि हवि को देते हुए हम आप की स्तुति करते हैं । जो धन आप देना चाहते हैं वह हमें दें । तुम से रक्षित हम स्वयं धनों को प्राप्त करें ॥१॥

ऋ॒ष्वस्त्वमि॑न्द्र शूर जा॒तो दासी॒र्विश॒: सूर्ये॑ण सह्याः ।
गुहा॑ हि॒तं गुह्यं॑ गू॒ळ्हम॒प्सु बि॑भृ॒मसि॑ प्र॒स्रव॑णे॒ न सोम॑म् ॥२॥

पदार्थः—(**शूर**) हे शूर (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**ऋष्वः**) महान्, (**जातः**) जनक=उत्पादक (**त्वम्**) तू (**दासीः**) दुष्काल डालने वाली (**विशः**) प्रजा=मेघ प्रजा को (**सूर्येण**) सूर्य के द्वारा (**सह्याः**) अभिभूत करता है, (**गुहा**) गुहा में (**हितम्**) निहित (**गुह्यम्**) अदृश्य (**अप्सु**) अन्तरिक्ष में (**गूढम्**) निगूढ़ मेघ को तू सूर्य के द्वारा अभिभूत करता है, हम भी (**प्रस्रवणे**) वर्षा के होने पर (**न**) संप्रति (**सोमम्**) उत्तम रसों आदि को (**बिभृमसि**) धारण करते हैं ।

भावार्थः—हे बलशालिन् भगवन् ! महान् उत्पादक आप दुष्काल डालने वाली मेघ प्रजा को सूर्य के द्वारा अभिभूत करते हैं । गुहा में निहित अदृश्य, अन्तरिक्ष में गूढ़ मेघ को भी सूर्य के द्वारा अभिभूत करता है । वर्षा होने पर हम उत्तम रसों वाले पदार्थों को धारण करते हैं ॥२॥

Scanned by CamScanner

अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥३॥

पदार्थः—(**विप्रः**) मेधावी, (**ऋषीणाम्**) मन्त्रद्रष्टाओं की (**सुमतिम्**) स्तुति को (**चकानः**) चाहने वाला, (**विद्वान्**) सबका ज्ञाता (**वा**) और (**अर्यः**) स्वामी यह परमेश्वर (**गिरः**) स्तोताओं की स्तुतियों को(**अभ्यर्च**) स्वीकार करता है, हम (**ते**) वे (**स्याम**) होवें, (**ये**) जो (**सोमैः**) उत्तम ज्ञानों और उपासनाओं से तुझे (**रणयन्त**) प्रसन्न करते हैं (**उत**) और (**रथोढः**) हे उत्तम सूर्य आदि रमणीय पदार्थों के धारक ! (**भक्षैः**) भक्षणीय पुरोडाश आदि पदार्थों को अग्नि में आहुत करके (**तुभ्यम**) तुम्हारी (**एना**) ये स्तुतियां की जाती हैं।

भावार्थः—मेधावी, मन्त्र द्रष्टाओं के द्वारा की गई स्तुति को चाहने वाला, सब का ज्ञाता और सबका स्वामी यह परमेश्वर स्तोताओं की स्तुतियों को स्वीकार करता है। हम वे होवें जो उत्तम ज्ञानों और उपासनाओं के साथ तुझे प्रसन्न करते हैं। हे सूर्य आदि के धारक ! उत्तम पुरोडाश आदि हवियों के साथ आपकी स्तुतियाँ की जाती हैं ॥३॥

इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥४॥

पदार्थः—हे (**शूर**) शौर्यवन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**तुभ्यम**) तुम्हारे लिये (**इमा**) ये (**ब्रह्म**) स्तोत्र (**शंसि**) कहे जाते हैं, (**नृणाम्**) मनुष्यों के मध्य (**नृभ्यः**) स्तुति कर्ताओं को (**शवः**) बल (**दाः**) दो (**येषु**) जिन स्तोताओं में (**चाकन्**) हवि आदि आप चाहते हैं उनके लिए (**तेभिः**) बल-दान आदि कर्मों द्वारा (**सुक्रतुः**) उत्तमकर्मा (**भव**) हो (**उत**) और (**गृणतः**) स्तावकों की (**त्रायस्व**) रक्षा कर (**उत**) और (**स्तीन्**) यजमानों की रक्षा कर।

भावार्थः—हे शौर्यवन् परमेश्वर ! तेरे लिए स्तोत्र उच्चारित किये जाते हैं। मनुष्यों में स्तावकों को तू बल दे। जिसको तू चाहता है उनके लिए बल-दान आदि के द्वारा अपने सुक्रतुपन को सार्थक करता है। तू स्तावकों और यजमानों की रक्षा करता है ॥४॥

श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥५॥

पदार्थः—(**शूर**) हे शौर्यवन् (**इन्द्र**) परमेश्वर ! (**पृथ्याः**) विस्तृत ज्ञान वाले मनुष्य की (**हवम्**) पुकार को (**श्रुधि**) सुन (**वेन्यस्य**) मेधावी विद्वान् के (**अर्कैः**) स्तोत्रों से (**स्तवसे**) आप स्तुत किये जाते हो (**यः**) जो (**ते**) तेरे (**घृतवन्तम्**) प्रकाश वाले (**योनिम्**) पद को (**आ अस्वाः**) स्तुति करता है अथवा घृत से युक्त (**योनिम्**) गृह—यज्ञशाला को प्राप्त होकर आपकी स्तुति करता है वह आप को प्राप्त करता है, (**निम्नैः**) निचले मार्गों से (**ऊर्मिः न**) जल-समूह की भांति (**वव्वा**) स्तोता लोग (**द्रवयन्त**) तुम्हारे पास दौड़ते हैं ।

भावार्थः—हे शौर्यवन् परमेश्वर ! विस्तृत ज्ञान वाले व्यक्ति की पुकार को सुनो । मेधावी विद्वान् के स्तोत्रों से भी तू ही स्तुत किया जाता है । जो यज्ञगृह में जाकर तेरी स्तुनि करता है वह तुझे प्राप्त करता है । जिस प्रकार जलसमूह नीचे की तरफ वाले मार्गों से बहता है उसी प्रकार स्तावक तेरे पास स्तुतियों के साथ दौड़ते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १४९

ऋषिः—१—५ अर्चन्हैरण्यस्तूपः ॥ **देवता**—सविता ॥ **छन्दः**—१, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । २, ५ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—धैवतः ॥

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१॥

पदार्थ—(**सविता**) लोकों का उत्पादक परमेश्वर (**यन्त्रैः**) अपनी नियन्त्रण शक्तियों से (**पृथिवीम्**) विस्तृत भूमि को (**अरम्णात्**) सुख से स्थापित करता है, (**सविता**) सबका उत्पादक परमेश्वर (**अस्कम्भने**) निराधार आकाश में (**द्याम्**) द्युलोक को (**अदृंहत्**) दृढ़ता से धारण करता है, (**सविता**) सर्वोत्पादक परमेश्वर (**अतूर्ते**) निरन्तर फैले हुए (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष में (**बद्धम्**) वायु पाश से बंधे हुए (**धुनिम्**) कम्पायमान (**समुद्रम्**) मेघरूप समुद्र से (**अश्वमिव**) अश्व के समान (**अधुक्षत्**) जल को दुहता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—लोकों का उत्पादक परमेश्वर अपनी धारक शक्तियों से विस्तृत भूमि को स्थापित करता है। वह ही निराधार आकाश में द्युलोक को दृढ़ करता है। वह परमेश्वर ही निरन्तर फैले हुए अन्तरिक्ष में वायु-पाश से बंधे मेघरूप समुद्र से अश्व के समान कम्पित कर जल को दुहता है ॥१॥

यत्रा समुद्रः स्कंभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥२॥

पदार्थः—(**यत्र**) जिस सर्वोत्पादक प्रभु की निमित्तता और आश्रय में (**समुद्रः**) अन्तरिक्षस्थ मेघरूप समुद्र (**स्कभितः**) वायुपाश से ठहरा हुआ (**व्यौनत्**) पृथिवी को जल से क्लिन्न वा सिक्त करता है (**अपांनपात्**) जलों और लोकों का विनाश न होने देने वाला अथवा वैद्युताग्नि से समृद्ध (**सविता**) सबका उत्पादक परमेश्वर (**तस्य**) उसके रहस्य को (**वेद**) जानता है, (**अतः**) इस की ही निमित्तता से (**भूः**) भूमि उत्पन्न होती है, (**अतः**) इसी की निमित्तता में (**रजः**) अन्तरिक्ष और लोक-लोकान्तर (**उत्थितम्**) उत्पन्न (**आ**) होते हैं (**अतः**) इसी की निमित्तता से (**द्यावापृथिवी**) द्यु और पृथिवी (**अप्रथेताम्**) विस्तीर्ण होते हैं।

भावार्थः—जिस सर्वोत्पादक भगवान् की निमित्तता और आश्रय में अन्तरिक्षस्थ मेघरूप समुद्र वायुपाश से ठहरा हुआ जल से भूमि को सिक्त करता है। जलों का और लोकों का नाश न होने देने वाला वैद्युताग्नि एवम् सर्वोत्पादक प्रभु इस समुद्र और वर्षा के रहस्य को प्राप्त है और जानता है। इस परमात्मा की निमित्तता से प्रकृतिरूपी कारण से भूमि, अन्तरिक्ष, लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं और द्यु और पृथिवी विस्तार को प्राप्त होते हैं ॥२॥

पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥३॥

पदार्थः—(**अमर्त्यस्य**) अविनाशी (**भुवनस्य**) जगत् के उत्पादक प्रभु के (**भूना**) महान् सामर्थ्य से (**पश्चात्**) उसके पीछे (**इदम्**) यह (**अन्यत्**) दूसरा (**यजत्रम्**) परस्पर संयोग से उत्पन्न (**अभवत्**) होता है अथवा उस उत्पादक

Scanned by CamScanner

की महिमा से ही उसके अतिरिक्त अन्य देव इन्द्र वरुण आदि यज्ञ में प्रयोज्य होते हैं (**अंग:**) हे विद्वन् ! (**सवितुः**) सर्वोत्पादक प्रभु की निमित्तता से ही (**सुपर्णः**) उत्तम रश्मियों वाला (**गरुत्मान्**) महापिण्ड सूर्य (**पूर्वः**) पहले (**जातः**) उत्पन्न होता है और वह (**अस्य**) इस प्रभु के (**धर्म**) धारण सामर्थ्य के (**अनु**) अनुसार अपने कार्यकलाप में समर्थ होता है ।

भावार्थः—अविनाशी जगत् के उत्पादक प्रभु की महिमा से पश्चात् यह दूसरा परस्पर संयोग से उत्पन्न जगत् होता है । हे विद्वन् ! सर्वोत्पादक प्रभु की निमित्तता से रश्मियों वाला महापिण्ड सूर्य पूर्व उत्पन्न होता है और वह इस प्रभु के धारण-सामर्थ्य के अनुसार अपने कार्यकलाप में समर्थ होता है ॥३॥

गावइव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४॥

पदार्थः—(**ग्रामम्**) ग्राम को शीघ्र जाती हुई (**गावः इव**) गौओं के समान (**अश्वान्**) अश्वों को प्राप्त करते हुए (**युयुधिः इव**) योधा के समान (**वत्सम्**) बछड़े के पास जाती हुई (**सुमनाः**) सुमनस्क (**दुहाना**) दुग्धवाली (**वाश्राः इव**) गाय के समान (**जायाम्**) जाया को (**अभि**) लक्ष्य में रखकर पास जाने वाले (**पतिः इव**) पति के समान (**दिवः**) द्युलोक आदि का (**धर्ता**) धारक (**विश्ववारः**) सबका पूज्य एवम् वरणीय (**सविता**) परमेश्वर (**नः**) हमें (**नि एतु**) प्राप्त हो ।

भावार्थः—जिस प्रकार गायें जंगल में चरने के बाद ग्राम को जाती है, योधा अश्वों को प्राप्त करता है, सुमनस्का, दोग्ध्री गौ अपने बछड़े को प्राप्त होती है और पति अपनी पत्नी को प्राप्त करता है उसी प्रकार द्यु आदि लोकों का धारक सर्वपूज्य प्रभु हमें प्राप्त हो ॥४॥

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥५॥

पदार्थः—(**सवितः**) हे सर्वोत्पादक प्रभो ! (**यथा**) जिस प्रकार (**त्वा**) तुझे (**अस्मिन्**) इस (**वाजे**) ज्ञानयज्ञ में (**आंगिरसः**) अग्निविद्याविद् विद्वान् (**जुह्वे**) पुकारता है (**एव**) इसी प्रकार (**अर्चन्**) अर्चना करने वाला (**अहम्**)

Scanned by CamScanner

मैं (त्वा) तेरी (वन्दमानः) वन्दना करता हुआ (सोमस्य) यज्ञ के (अंशुम्) भाग के (प्रति) प्रति (जागर) जागरूक रहता हूं ।

भावार्थः—हे सबके उत्पादक प्रभो ! जिस प्रकार अग्निविद्यावेत्ता विद्वान् तुझे इस ज्ञान यज्ञ में पुकारता है उसी प्रकार अर्चना करने वाला मैं तेरा वन्दना करता हुआ यज्ञ के संपादन आदि कार्य के प्रति सदा जागरूक रहता हूं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उन्चासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५०

ऋषिः—५ मृलीको वासिष्ठः॥देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, २ बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४ उपरिष्टाज्ज्योतिर्नाम जगती वा । ५ उपरिष्टाज्ज्योतिः ॥ स्वरः—१—३ मध्यमः । ४, ५ निषादः ॥

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन ।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि ॥१॥

पदार्थः—(हव्यवाहन) देवों के प्रति हवि को ले जाने वाला अग्नि (समिद्धः चित्) संदीप्त होता हुआ भी (देवेभ्यः) देवों के लिए यज्ञ में (सम् इध्यसे) प्रदीप्त किया जाता है, यह (आदित्यैः) आदित्यों, (रुद्रैः) रुद्रों, (वसुभिः) वसुओं के साथ (नः) हमें (आ गहि) ज्ञात होता है और (नः) हमारे (मृळीकाय) सुख के लिए (आ गहि) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—देवों के प्रति हवि को ले जाने वाला अग्नि स्वभावतः प्रदीप्त होता हुआ भी यज्ञ में देवों के निमित्त प्रदीप्त किया जाता है । यह बारह आदित्यों, ग्यारह रुद्रों और आठ वसुओं के साथ हमें ज्ञात होता है और हमारे सुख के लिए प्राप्त होता है ॥१॥

इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि ।
मर्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे ॥२॥

पदार्थः - यह अग्नि (**इमम्**) इस (**यज्ञम्**) यज्ञ को (**इदम्**) इस (**वचः**) स्तुति वचन को (**जुजुषाणः**) सेवन करता हुआ (**उपागहि**) हमारे ज्ञान में आता है, (**समिधान त्वा**) समिध्यमान इसको (**मर्तासः**) मनुष्य लोग (**हवामहे**) अपने ज्ञान में धारण करते हैं तथा (**सुमृडीकाय**) सुख के लिए (**हवामहे**) यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं ।

भावार्थः – यह अग्नि हमारे इस यज्ञ और इस स्तुतिवचन को सेवन करता हुआ हमारे ज्ञान में आता है । समिध्यमान इस अग्नि को मनुष्य लोग अपने ज्ञान में धारण करते हैं और सुख के लिए यज्ञ आदि कार्यों में प्रयुक्त करते हैं ॥२॥

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥३॥

पदार्थः—(**विश्ववारम्**) सबसे वरणीय, (**जातवेदसम्**) समस्त उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (**त्वाम् उ**) इस अग्नि की संपत्तियों की मैं (**धिया**) ज्ञान और प्रयोग से (**गृणे**) प्रशंसा करता हूं, (**अग्ने**) यह अग्नि (**प्रियव्रतान्**) उत्तम कर्मों वाले (**देवान्**) यज्ञदेवों को (**नः**) हमारे लिए (**आ वह**) यज्ञ में लाता है (**मृडीकाय**) सुख के लिए (**प्रियव्रतान्**) उत्तम कर्मों वाले विद्वानों को (**आ वह**) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः— सबसे वरणीय, प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान इस अग्नि की संपत्तियों की मैं ज्ञान और प्रयोग से प्रशंसा करता हूँ । यह अग्नि उत्तम कर्मों वाले यज्ञ देवों को हमारे यज्ञ में लाता है और हमारे सुख के लिए उत्तम कर्म वाले विद्वानों को प्राप्त कराता है ॥३॥

अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या३ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥४॥

पदार्थः—(**देवः**) द्योतन आदि गुणों से युक्त (**अग्निः**) यह अग्नि (**देवानाम्**) अन्य यज्ञ देवों का (**पुरोहितः**) अग्रस्थानीय (**अभवत्**) होता है (**अग्निम्**) अग्नि को (**मनुष्याः**) मनुष्य लोग और (**ऋषयः**) अतीन्द्रियार्थद्रष्टा लोग (**समीधिरे**) यज्ञ और ज्ञान में प्रदीप्त एवम् प्रकाशमान करते हैं (**अहम्**) मैं यजमान (**महः**) महान् (**धनसातौ**) धन की प्राप्ति में (**अग्निम्**) अग्नि को (**हुवे**) हवि आदि से युक्त करता हूं, (**मृडीकम्**) सुख के लिए प्रयुक्त करता हूं ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—द्योतन आदि गुणों से युक्त यह अग्नि सभी यज्ञ देवों का अग्रस्थानीय होता है। इसको मनुष्य लोग और अतीन्द्रिय अर्थों के ज्ञाता लोग प्रकाशमान रखते हैं। मैं यजमान महान् धन की प्राप्ति में अग्नि को हवि आदि से युक्त करता हूं और सुख के लिए प्रयुक्त करता हूं ॥४॥

अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥५॥

पदार्थः—यह (**अग्निः**) अग्नि (**आहवे**) संग्राम में (**अत्रिम्**) शत्रुओं को खाने वाले राजा, (**भरद्वाजम्**) अन्नदाता, (**गविष्ठिरम्**) जितेन्द्रिय, (**कण्वम्**) मेधावी, (**त्रसदस्युम्**) दस्युओं को डराने वाले सेनापति, और (**नः**) हमारी (**प्रावत्**) रक्षा करता है, (**वसिष्ठः**) याज्ञिक (**पुरोहितः**) पुरोहित (**अग्निम्**) अग्नि की (**हवते**) प्रशंसा करता है (**मृडीकाय**) सुख के लिए इसे (**पुरोहितः**) समक्ष स्थापित करता है।

भावार्थः—यह अग्नि प्रयुक्त किये जाने पर संग्राम में शत्रुभक्षक राजा, अन्नदाता, जितेन्द्रिय, मेधावी, दस्युओं को त्रास देने वाले सेनापति और हमारी रक्षा करता है। याज्ञिक पुरोहित अग्नि की प्रशंसा करता है और सुख के लिए इसे समक्ष स्थापित करता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पचासवां सूक्त समाप्त हुआ।

सूक्त—१५१

ऋषिः—१—५ श्रद्धा कामायनी ॥ **देवता**:—श्रद्धा ॥ **छन्दः**—१, ४, ५ अनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥

पदार्थः—(**श्रद्धया**) श्रद्धा अर्थात् श्रत् नाम सत्य का है उसके धारण की क्रिया और बुद्धि का नाम श्रद्धा है और इस श्रद्धा से ही (**अग्निः**) अग्नि यज्ञ

आदि में (**समिध्यते**) प्रज्वलित किया जाता है, (**श्रद्धया**) श्रद्धा के साथ (**हविः**) यज्ञ में हवि (**हूयते**) दी जाती है, (**श्रद्धाम**) श्रद्धा को (**भगस्य**) सेवनीय प्रत्येक कर्म और पराक्रम अथवा ऐश्वर्य (**मूर्धनि**) प्रधान स्थान में स्थित कर (**वचसा**) वाणी से (**वेदयामसि**) प्रकट करता हूँ ।

भावार्थः—श्रद्धा से यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की जाती है, श्रद्धा से ही हवि दी जाती है, श्रद्धा को मैं स्तोता सेवनीय प्रत्येक कर्म और पराक्रम के मुख्य स्थान में स्थित कर वाणी से उसका प्रख्यापन करता हूँ ॥१॥

प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।
प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२॥

पदार्थः—(**श्रद्धे**) हे श्रद्धे ! (**ददतः**) दाता को (**प्रियम्**) प्रिय फल मिले, हे (**श्रद्धे**) श्रद्धे (**दिदासतः**) देने की इच्छा करने वाले का (**प्रियम्**) प्रिय हो, (**भोजेषु**) भोगार्थियों का (**प्रियम**) प्रिय हो (**यज्वसु**) यज्ञ करने वालों का प्रिय हो, (**इदम्**) इस (**मे**) मेरी (**उदितम्**) उक्ति को (**प्रियम्**) प्रिय (**कृधि**) कर ।

भावार्थः—हे श्रद्धे ! देने वाले का प्रिय हो, हे श्रद्धे ! देने की इच्छा करने वाले का प्रिय हो, भोगार्थियों का और यज्ञकर्त्ताओं का प्रिय हो । इस मेरे कथन को प्रिय बना ॥२॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥३॥

पदार्थः—(**यथा**) जिस प्रकार (**देवाः**) विद्वान् लोग (**उग्रेषु**) उग्र (**असुरेषु**) बलवान् पुरुषों पर (**श्रद्धाम्**) श्रद्धा=विश्वास (**चक्रिरे**) करते हैं (**एवम्**) इसी प्रकार (**भोजेषु**) भोगार्थी (**यज्वसु**) यज्ञकर्त्ताओं में (**अस्माकम्**) हमारे (**उदितम्**) उक्त को विश्वसनीय और प्रिय (**कृधि**) कर ।

भावार्थः—हे श्रद्धे ! जिस प्रकार विद्वान् लोग उग्र बलवान् पुरुषों पर विश्वास करते हैं उसी प्रकार भोगार्थी यज्ञकर्त्ताओं में हमारे उक्त को विश्वसनीय और प्रिय कर ॥३॥

Scanned by CamScanner

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्य१याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४॥

पदार्थः—(देवाः) विद्वान् लोग (वायुगोपाः) वायु के समान बलवान् पुरुषों से रक्षित (यजमानाः) यजमान (श्रद्धाम्) श्रद्धा की (उपासते) उपासना करते हैं, तथा सभी लोग (हृदय्यथा) हृदय में होने वाले (आकूत्या) संकल्प एव भाव से (श्रद्धाम्) श्रद्धा का सेवन करते हैं, श्रद्धावाला मनुष्य (श्रद्धया) श्रद्धा से (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—विद्वान् लोग और वायु के समान बलवान् पुरुषों से रक्षित यजमान लोग श्रद्धा की उपासना करते हैं । तथा सभी लोग हृदय में होने वाले संकल्प से श्रद्धा का सेवन करते हैं । श्रद्धा वाला मनुष्य श्रद्धा से धन को प्राप्त करता है ।

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥५॥

पदार्थः—(श्रद्धाम्) श्रद्धा का हम (प्रातः) प्रातः काल में (हवामहे) आह्वान करते हैं । (श्रद्धाम्) श्रद्धा का (मध्यंदिनम्) मध्याह्न (परि) में (हवामहे) आह्वान करते हैं, (सूर्यस्य) सूर्य के (निम्रुचि) अस्तमन काल में भी श्रद्धा का आहवान करते हैं, (श्रद्धे) हे श्रद्धे ! (नः) हमें (इह) इस लोक में (श्रद्धापय) श्रद्धायुक्त कर ।

भावार्थः—हम प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल में श्रद्धा का आह्वान करते हैं । हे श्रद्धे ! तू हमें इस लोक में श्रद्धायुक्त कर ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसो इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५२

ऋषिः—१—५ शासो भारद्वाजः ॥ **देवता**—इन्द्रः ॥ **छन्दः**—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—गान्धारः ॥

Scanned by CamScanner

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥१॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर (**इत्था**) इस प्रकार से तू (**महान्**) महान् (**शासः**) शासक, (**अद्भुतः**) अद्भुत तथा (**अमित्रखादः**) काम क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करने वाला है (**यस्य**) जिसका (**सखा**) मित्र (**न**) नहीं (**हन्यते**) मारा जाता है और (**न**) नहीं (**कदाचन**) कभी भी (**जीयते**) पराजित होता है ।

भावार्थः—हे परमेश्वर ! इस प्रकार से तू महान् शासक, अद्भुत और काम, क्रोध आदि शत्रुओं का नाश करने वाला है। तू ऐसा है कि जिसका मित्र कभी न मारा जाता है और न पराजित होता है ॥१॥

स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।
वृषेन्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥२॥

पदार्थः—(**स्वस्तिदाः**) कल्याण का दाता, (**विशस्पतिः**) प्रजा का स्वामी (**वृत्रहा**) विघ्नों का विनाशक, (**विमृधः**) जगत् में होने वाले संग्रामों का कर्त्ता (**वशी**) सबको वश में रखने वाला (**वृषा**) कामनाओं की वर्षा करने वाला, (**सोमपाः**) जगत् का पालक, (**अभयंकरः**) अभयदाता (**इन्द्रः**) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (**नः**) हमारे (**पुरः**) समक्ष (**एतु**) सदा प्राप्त रहे ।

भावार्थः—कल्याणदाता , प्रजा का स्वामी, विघ्नों का निवारक जगत् के संग्रामों=व्यवहारों का कर्त्ता, सबको वश में रखने वाला, कामनाओं की वर्षा करने वाला, तथा जगत् का पालक अभयदाता परमेश्वर सदा हमारे ध्यान में समक्ष उपस्थित रहे ॥२॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥३॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! (**रक्षः**) राक्षसी भावना को (**वि जहि**) नष्ट कर, (**मृधः**) काम, क्रोध आदि को (**विजहि**) नष्ट कर, (**वृत्रस्य**) विघ्न वा आपदा की (**हनू**) हनू को (**रुज**) तोड़ दे, (**अभि दासतः**) हमारा विनाश करने वाले (**अमित्रस्य**) वैर ईर्ष्या अज्ञान आदि शत्रु के (**मन्युम्**) मन्यु का (**वृत्रहन्**) हे आपदा के हारक ! (**विजहि**) नष्ट कर ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे परमैश्वर्यवन् परमेश्वर ! राक्षसी भावना को आप नष्ट करो, काम, क्रोध आदि का नाश करो, विघ्न की हनू को तोड़ो और वैर अज्ञान आदि शत्रुओं के बल का, हे आपदाहारक ! नाश कर ॥३॥

वि न॑ इन्द्र॒ मृधो॑ जहि नी॒चा य॑च्छ पृतन्य॒तः ।

यो अ॒स्माँ अ॑भि॒दास॒त्यध॑रं गमया॒ तमः॑ ॥४॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) हे ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! आप (**नः**) हमारी (**मृधः**) विनाशकारी प्रवृत्तियों को (**वि जहि**) दूर भगा, (**पृतन्यतः**) आक्रामणकारी भावनाओं को (**नीचा**) नीचे (**यच्छ**) करदे, (**यः**) जो भाव (**अस्मान्**) हमें (**अभिदासति**) नष्ट करता है (**तम्**) उसे (**अधरम्**) निकृष्ट (**तमः**) अन्धकार में (**गमय**) डाल दे ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हमारी विनाशकारी प्रवृत्तियों को दूर भगा और आक्रमणकारी भावनाओं को नीचे गिरा । जो भाव हमें नष्ट करता हैं उसे निकृष्ट अन्धकार में डाल दे अर्था्‌ वह पुनः ज्ञान में और कर्म में न आने योग्य रहे ॥४॥

अपे॑न्द्र द्विष॒तो मनोऽप॒ जिज्या॑सतो व॒धम् ।

वि म॒न्योः शर्म॑ यच्छ॒ वरी॑यो यवया व॒धम् ॥५॥

पदार्थः—हे (**इन्द्र**) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (**द्विषतः**) द्वेष करने वाले के (**मनः**) मन को (**अप जहि**) पलट दे, (**जिज्यासतः**) हमारी वयोहानि करने वाले के (**वधम्**) हनन भाव को (**अपजहि**) हटा दे, (**मन्योः**) क्रोध को (**वि जहि**) दूर कर, (**वरीयः**) श्रेष्ठ (**शर्म**) सुख को (**यच्छ**) प्रदान कर (**वधम्**) मृत्यु को (**यवय**) हमसे दूर हटा ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो ! द्वेषकारी के मन को पलट दे कि वह द्वेष न करे , हमारी वयोहानि की इच्छा करने वाली की हनन भावना को हटा दे, क्रोध को दूर कर, श्रेष्ठ सुख हमें दे, और मृत्यु को हम से दूर रख ॥५॥

यह दशम मण्डल में एक सौ बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१५३

ऋषि:--१—५ इन्द्रमातरो देवजामयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्गायत्री । २ --५ विराड्गायत्री ।। स्वरः-- षड्जः ॥

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते ।
भेजानासः सुवीर्यम् ॥१॥

पदार्थः—(उपस्युवः) कर्मशील (सुवीर्यम्) उत्तम शौर्य को (भेजानासः) रक्षित रखती हुए प्रजायें (जातम्) प्रसिद्ध (इन्द्रम्) राजा को (ईङ्खयन्तीः) प्राप्त होती हुई (उपासते) उसका आश्रय ग्रहण करती हैं ।

भावार्थ--कर्मशील और उत्तम शौर्य को रक्षित रखती हुई प्रजायें प्रसिद्ध राजा को प्राप्त होती हुई उसका आश्रय ग्रहण करती हैं ॥१॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः ।
त्वं वृषन्वृषेदसि ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (त्वम्) तू (बलाद्) बल से (सहसः) पराभवकारी सामर्थ्य से और (ओजसः) पराक्रम से (अधि) अधिक (जातः) उत्पन्न हुआ (असि) है, (वृषन्) हे बलवन् ! (त्वम्) तू (वृषा इव) सबसे बलवान् और सुखदाता (असि) है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू बल, पराभवकारी सामर्थ्य और पराक्रम में सब से अधिक है। हे बलवन् ! तू सब से बलवान् और सुखदाता है ॥२॥

त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्य१न्तरिक्षमतिरः ।
उद् द्यामस्तभ्ना ओजसा ॥३॥

पदार्थः--(इन्द्र त्वम्) यह इन्द्र=वायु वा सूर्य (वृत्रहा) मेघ का मारने वाला (असि) है (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक को (वि अतिरः) अपवारक मेघ को नष्ट कर बढ़ाता है, (ओजसा) बल से (द्याम्) द्युलोक को (उत् अस्तभ्नाः) ऊपर ठहराता वा स्थापित करता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—यह वायु वा सूर्य मेघ का मारने वाला है। मेघरूप आवरण को हटाकर अन्तरिक्ष को बढ़ाता है। अपने बल से द्युलोक को ऊपर धारण करता है ॥३॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वोः ।
वज्रं शिशान ओजसा ॥४॥

पदार्थः—(**त्वम् इन्द्र**) यह इन्द्र=वायु अथवा सूर्य (**सजोषम्**) साथ रहने वाले (**अर्कम्**) अर्चनीय (**वज्रम्**) वज्र को (**ओजसा**) बल से (**शिशानः**) तीक्ष्ण करता हुआ (**बाह्वोः**) मित्र और वरुण रूपी बाहुओं में (**बिभर्षि**) धारण करता है ।

भावार्थः—यह वायु अथवा सूर्य साथ रहने वाले अर्चनीय वज्र को बल से तीक्ष्ण करता हुआ मित्र और वरुण=प्राण और उदान जो इसके हाथ हैं उनमें धारण करता है ॥४॥

त्वमिन्द्राभिभूरसि विश्वा जातान्योजसा ।
स विश्वा भुव आभवः ॥५॥

पदार्थः—(**इन्द्र त्वम्**) यह इन्द्र=वायु अथवा सूर्य (**विश्वा**) सब (**जातानि**) उत्पन्न पदार्थों का (**ओजसा**) अपने बल से (**अभिभूः**) अविभविता (**असि**) है, (**सः**) वह यह (**विश्वाः**) समस्त (**भुवः**) स्थानों को (**आ अभवः**) प्राप्त होता है ।

भावार्थः—यह वायु सब उत्पन्न पदार्थों का अपने बल से अभिभविता है। वह यह वायु समस्त स्थानों को प्राप्त होता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१५४

ऋषिः—१-५ यमी ॥ देवता— भाववृत्तम् ॥ छन्दः—१, ३, ४ अनुष्टुप् । २, ५ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

सोम एकेभ्यः पवते घृतमेक उपासते ।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥

पदार्थः—(एकेभ्यः) कई विद्वानों के लिए (सोमः) सामगान अथवा साम (पवते) ज्ञान देता है (एके) दूसरे (घृतम्) यजुः का (उपासते) आश्रय करते हैं (येभ्यः) जिन विद्वानों के लिए (मधु) अथर्व (प्रधावति) ज्ञान प्रदान करता है । हे जीव ! (तान्) उन तक (इद) भी (एव) ही (अपि गच्छतात्) प्राप्त हो ।

भावार्थः—हे जीव ! तू दूसरे जन्म में उनको प्राप्त हो जिन में कई एक को साम ज्ञान प्रदान करता है, दूसरों को यजुः ज्ञान देता है और जिनको अथर्व ज्ञान देता है ॥१॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

पदार्थः—(ये) जो (तपसा) तपश्चरण से युक्त और (अनाधृष्याः) अपराजित हैं तथा (ये) जो (तपसा) तप से (स्वः) ज्ञान प्रकाश को (ययुः) प्राप्त करते हैं, (ये) जो लोग (महः) महा (तपः) तप (चक्रिरे) करते हैं, हे जीव ! जन्मान्तर में तू उनको भी प्राप्त हो ।

भावार्थः—जो तप से युक्त हैं और अपराजित हैं तथा जो तप से ज्ञान-प्रकाश को प्राप्त करते हैं, हे जीव ! तू जन्मान्तर में उनको भी प्राप्त हो ॥२॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यजः ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥

पदार्थः—(शूरासः) बलवान् (ये) जो लोग (प्रधनेषु) संग्रामों में (युध्यन्ते) युद्ध करते हैं, (ये) जो (तनूत्यजः) शरीर को छोड़ने वाले होते हैं

Scanned by CamScanner

(वा) और (ये) जो (सहस्रदक्षिणाः) सहस्रों का दान करने वाले होते हैं, हे जीव ! तू जन्मान्तर में उन्हें भी प्राप्त हो ।

भावार्थः—बलवान् जो लोग संग्रामों में लड़ते हैं, जो ऐसे कार्यों में अपने शरीर को भी छोड़ने वाले होते हैं और जो सहस्रों का दान करने वाले हैं, हे जीव ! जन्मान्तर में तू उन्हें भी प्राप्त हो ॥३॥

ये चित्पूर्वं ऋतसाप ऋतावान ऋतावृधः ।
पितृन्तपस्वतो यम ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥४॥

पदार्थः—(ये चित्) जो (पूर्वे) ज्ञानपूर्ण (ऋतसापः) सत्य को मानने वाले, (ऋतावानः) यज्ञ करने वाले और (ऋतावृधः) सत्य का प्रचार और प्रसार कर उसे बढ़ाने वाले हैं (तपस्वतः) तपोनिष्ठ (तान्) उन (पितृन् चिद् अपि) जीवित माता-पिता को भी (यम) हे जीव ! तू पुनः (गच्छतात्) प्राप्त हो ।

भावार्थः—जो पूर्णज्ञानी सत्य को मानने वाले, यज्ञ करने वाले और सत्य को बढ़ाने वाले तपोनिष्ठ जीवित माता-पिता हैं, हे जीव ! तू पुनः उनको भी प्राप्त हो ॥४॥

सहस्रणीथाः कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम् ।
ऋषीन्तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ॥५॥

पदार्थः—(सहस्रणीथाः) सहस्रों प्रकार की दृष्टियों वाले, (कवयः) क्रान्त-दर्शी (ये) जो (सूर्यम्) परमेश्वर को (गोपायन्ति) अपने ज्ञान और कर्म में सुरक्षित रखते हैं, (यम) हे जितेन्द्रिय जीव ! (तपोजान्) तप में प्रसिद्ध (तपस्वतः) तपस्वी (ऋषीन्) मन्त्रद्रष्टा लोगों को (अपि) भी (गच्छतात्) पुनः प्राप्त हो ।

भावार्थः—सहस्रों दृष्टियों वाले क्रान्तदर्शी जो परमेश्वर को सदा अपने ज्ञान और कर्म में सुरक्षित रखते हैं, हे जितेन्द्रिय जीव ! तू तप में प्रसिद्ध तपस्वी उन मन्त्रद्रष्टा लोगों को भी पुनः प्राप्त हो ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१५५

ऋषिः—१—५ शिरिम्बिठो भारद्वाजः ॥ देवता—१, ४ अलक्ष्मीघ्नम् । २, ३ ब्रह्मणस्पतिः । ५ विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् ॥ ३ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अरा॑यि॒ काणे॒ विक॑टे गि॒रिं ग॑च्छ सदान्वे ।
शिरि॑म्बिठस्य॒ सत्व॑भि॒स्तेभि॑ष्ट्वा चातयामसि ॥१॥

पदार्थः—(**अरायि**) न देने वाली, (**काणे**) किसी को न देखने वाली (**विकटे**) विकराल यह दुर्भिक्ष वृत्ति (**गिरिम्**) निगीर्णत्व को (**गच्छ**) प्राप्त हो जावे हम (**त्वा**) इसे (**शिरिम्बिठस्य**) मेघ के (**तेभिः**) उन (**सत्वैः**) जलों से (**चातयामसि**) नष्ट करते हैं ।

भावार्थः—न देने वाली, किसी को न देखने वाली, और विकराल यह दुर्भिक्षवृत्ति निगीर्ण हो जावे । हम मेघ के जलों से इसको विनष्ट करते हैं ॥१॥

च॒त्तो इ॒त॒श्च॒त्तामु॒तः सर्वा॑ भ्रू॒णान्या॒रुषी॑ ।
अ॒रा॒य्यं॑ ब्रह्मणस्पते॒ तीक्ष्ण॑शृङ्गोदृ॒षन्नि॑हि ॥२॥

पदार्थः—(**इतः**) यहां से (**चत्तो**) नाश को प्राप्त (**अमुतः**) उधर से भी (**चत्ता**) नाश को प्राप्त (**सर्वा**) सारे (**भ्रूणानि**) ओषधि-अंकुरों को (**आरुषी**) नाश करने वाली है यह दुर्भिक्षवृत्ति (**अराय्यम्**) अदात्ती इस दुर्भिक्षवृत्ति को (**ब्रह्मणस्पते**) अन्तरिक्ष का पालक (**तीक्ष्णशृंगम**) तीक्ष्णतेजस्क सूर्य (**दृषन्**) दूर करता हुआ (**इहि**) प्राप्त होवे ।

भावार्थ—यहां से भी नष्ट की गई और वहां से भी नाश को प्राप्त औषधि, अन्न और घास आदि के गर्भांकुरों को खाने वाली है यह दुर्भिक्ष-वृत्ति । इस अदात्री को अन्तरिक्ष का पालक तीक्ष्ण तेजस्क सूर्य दूर करके प्राप्त होवे ॥२॥

अ॒दो यद्दारु॒ प्लव॑ते॒ सिन्धोः॒ पा॒रे अ॑पूरु॒षम् ।
तदा र॑भस्व दुर्हणो॒ तेन॑ गच्छ परस्त॒रम् ॥३॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—(अदः) वह दूर (यत्) जो (दारु) काष्ठमय नौका (सिन्धोः) समुद्र वा नदी के (पारे) पार करने के लिए (अपूरुषम्) विना पुरुष के (प्लवते) जल के ऊपर विद्यमान है हे (दुर्हणो) दुःख का निवारण चाहने वाले मनुष्य (तत्) उसका (आरभस्व) आलम्बन कर तथा (तेन) उससे (परस्तरम्) तरणीय दूर द्वीप को (गच्छ) जा ।

भावार्थः—हे दुर्भिक्ष से निवारण चाहने वाले मनुष्य ! तू जो वह काष्ठमयी नौका समुद्र वा नदी से पार करने के लिए विना किसी मनुष्य के जल के ऊपर विद्यमान है उसका आलम्बन कर और उससे तरणीय दूर देश वा द्वीप को चला जा ॥३॥

यद्ध प्राचीरजगन्तोरों मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥४॥

पदार्थः—(मण्डूरधाणिकीः) मेंढक के शब्द को धारण करने वाली (उरः) दुर्भिक्ष की नाशक (प्राचीः) पूर्व की अथवा जोर से बहती हुई जलीय हवायें (यद् ह) जब (अजगन्त) आ जाती हैं तब (इन्द्रस्य) सूर्य के (सर्वे) सब (शत्रवः) शत्रुभूत मेघ (बुद्बुदयाशवः) बुलबुले के समान होकर (हताः) नष्ट हो जाते हैं ।

भावार्थः—मेंढकों के शब्द को धारण करने वाली दुर्भिक्षवारक पूर्व की अथवा जोर से बहने वाली वाष्पमयी हवायें जब आ जाती हैं तब इन्द्र=सूर्य के शत्रु=मेघ बुलबुले के समान हुए नष्ट हो जाते हैं और वर्षा होती है ॥४॥

परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥५॥

पदार्थः—(इमे) ये विश्वेदेव लोग=समस्त दैवी शक्तियां (गाम्) सूर्य की मेघ में छिपी किरणों को (पर्यनेषत) प्राप्त करते हैं (अग्निम्) अग्नि को (पर्यहृषत) स्थापित करते हैं तथा (देवेषु) मरुत् आदि देवों में (श्रवः) बल को (अक्रत) बढ़ाते हैं (कः) कौन (इमम्) इन विश्वेदेवों को (आ दधर्षति) दबा सकता है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—ये विश्वेदेव=देवीशक्तियां मेघों में छिपी सूर्य किरणों को प्राप्त करती हैं तथा मेघ में विद्युद्रूप अग्नि को स्थापित करती हैं। ये मरुत् आदि के बल को बढ़ाती हैं और वर्षा करती हैं इनको कौन दबा सकता है ? ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५६

ऋषिः—१—५ केतुराग्नेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१, ३, ५ गायत्री । २, ४ निचृद्गायत्री । स्वरः—षड्जः ॥

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु ।
तेन जेष्म धनंधनम् ॥१॥

पदार्थः—(**नः**) हमारी (**धियः**) बुद्धियें और क्रियायें (**अग्निम्**) अग्नि को (**हिन्वन्तु**) यज्ञ के लिए बढ़ावें और प्रेरित करें, (**इव**) जिस प्रकार (**आजिषु**) संग्रामों में (**आशुम्**) शीघ्रगामी, (**सप्तिम्**) अश्व को बढ़ाते हैं (**तेन**) उस अग्नि के द्वारा (**धनं धनम्**) समस्त धनों को (**जेष्म**) जीतें।

भावार्थः—हमारी बुद्धियें और कुशल क्रियायें अग्नि को यज्ञार्थ उसी प्रकार बढ़ावें जिस प्रकार योद्धा संग्रामों में शीघ्रगामी घोड़े को बढ़ाते हैं। उस अग्नि से यज्ञ के द्वारा हम विविध धनों को प्राप्त करें ॥१॥

यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या ।
तां नो हिन्व मघत्तये ॥२॥

पदार्थः—(**अग्ने**) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! (**सेनया**) इन=स्वामी से सम्पन्न अथवा राजा से युक्त (**यया**) जिस (**तव**) तेरी (**ऊत्या**) रक्षा से हम (**गाः**) भूमि और गौ आदि को (**आ करामहे**) प्राप्त करते हैं (**ताम्**) उस रक्षा को (**मघत्तये**) धन की प्राप्ति के लिए (**नः**) हमें (**हिन्व**) प्राप्त करा।

Scanned by CamScanner

भावार्थः हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! स्वामी एवं रक्षक राजा से युक्त जिस तुम्हारी रक्षा से हम भूमि और गौ आदि को प्राप्त करते हैं उस रक्षा को हमें धनप्राप्ति के लिए प्राप्त करा ॥२॥

अग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम् ।
अङ्ग्धि खं वर्तया पणिम् ॥३॥

पदार्थः—(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू (स्थूरम्) स्थूल = प्रवृद्ध (पृथुम्) विस्तीर्ण (गोमन्तम्) गायों से युक्त (अश्विनम्) अश्वों से युक्त (रयिम्) धन को (आ भर) हमें प्रदान कर, (खम्) आकाश को वृष्टिजल से (अङ्धि) सिक्त कर (पणिम्) अदाता को (वर्तय) परिवर्तित कर दाता बना ।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू हमें वृद्धिकारक विस्तीर्ण गायों और अश्वों आदि से युक्त धन प्रदान कर । अन्तरिक्ष को वृष्टि जल से सिक्त कर और अदाता को परिवर्तित करके दाता बना ॥३॥

अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि ।
दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप (जनेभ्यः) लोगों के लिए (ज्योतिः) प्रकाश (दधत्) करते हुए (दिवि) द्युलोक में (नक्षत्रम्) सतत गतिमान् (अजरम्) जरारहित (सूर्यम्) आदित्य को (आरोहयः) स्थापित करते हो ।

भावार्थः—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप जगत् के लोगों के लिए प्रकाश करते हुए द्युलोक में निरन्तरगतिमान् सूर्य को स्थापित करते हो ॥४॥

अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत् ।
बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप (विशाम्) जगत् की प्रजाओं के (केतुः) ज्ञानदाता (प्रेष्ठः) प्रियतम (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ हो, (उप-

स्थसत्) हृदय में विराजमान हुआ तू (वयः) ज्ञान को (दधत्) देते हुये (स्तोत्रे) स्तोता के लिए (बोध) उत्तम मार्ग को बता ।

भावार्थः हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप जगत् की प्रजाओं के ज्ञानदाता, प्रियतम और श्रेष्ठ हो । हृदय में विराजमान हुए आप ज्ञान देते हुए स्तोता को उत्तम मार्ग का बोध कराइये ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५७

ऋषिः—१–५ भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥
छन्दः—द्विपदात्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१॥

पदार्थः—(इमा) इन (भुवना) समस्त भुवना को (नु) क्षिप्र हम (कम्) सुखपूर्वक (सीषधाम) वश में करें, (इन्द्रः) विद्युत् (च) और (विश्वे च) सारे ही (देवाः) देव=दिव्य पदार्थ हमें लाभकारी हों ।

भावार्थः—इस समस्त भुवनों को हम सुखपूर्वक अपने ज्ञान और कर्म से अपने वश में करें । विद्युत् और सारी ही दिव्य शक्तियें हमें लाभकारी हों ॥१॥

यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्रः) वायु (आदित्यैः) आदित्यों के (सह) साथ (यज्ञम्) यज्ञ (नः) हमारे (तन्वम्) शरीर को (च) भी, (च) और (प्रजाम्) सन्तति को (च) भी (चीक्लृपाति) सामर्थ्यवान् करता है ।

भावार्थः—वायु बारह मासों रूपी बारह आदित्यों के साथ हमारे यज्ञ, हमारे शरीर और हमारी प्रजा को सामर्थ्यवान् बनाता है ॥२॥

आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रः) शरीरस्थ विद्युत् (आदित्यैः) बारह मासों के साथ तथा (मरुद्भिः) मरुतों के साथ (सगणः) संघवाला होकर (अस्माकम्) हमारे (तनूनाम्) शरीरों का (अविता) रक्षक (भूतु) होती है ।

भावार्थः—(इन्द्र) शरीरस्थ विद्युत् बारह मासों के सूर्य के साथ तथा मरुतों=प्राण के साथ सगण होकर हमारे शरीरों की रक्षक होती है ॥३॥

हत्वायं देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥४॥

पदार्थः—(**अभि रक्षमाणाः**) समस्त विश्व की रक्षा करती हुई (**देवाः**) देवनधर्मा जगत् की शक्तियां (**यत्**) जब (**असुरान्**) मेघों को (**हत्वाय**) मार कर (**आयन्**) गतिमान् होती हैं तब ये (**देवाः**) दिव्य शक्तियां (**देवत्वम्**) वास्तविक देवत्व को प्राप्त करती हैं ।

भावार्थः—समस्त विश्व की रक्षा करती हुई देवनधर्मा जगत् की शक्तियां जब मेघों और आवरकों को मारकर गतिमती होती हैं तब ये अपने वास्तविक देवत्व को धारण करती हैं ॥४॥

प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥५॥

पदार्थः—स्तोता यजमान (**शचीभिः**) प्रज्ञा और कर्मों से (**प्रत्यञ्चम्**) इन्द्र आदि देवों के प्रति जाने वाले (**अर्कम्**) अर्चन साधन स्तोत्र को (**अनयन्**) यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं (**आत् इत्**) तदनन्तर वे (**इषिरान्**) गमनशील (**स्वधाम्**) वृष्टि के जल को (**पर्यपश्यन्**) देखते हैं ।

भावार्थः—यजमान बुद्धि और कर्मों से इन्द्र आदि यज्ञदेवों के प्रति किये जाने वाले अर्चन के साधन भूत मन्त्रों को यज्ञ में प्रयुक्त करते हैं तब गतिमयी वृष्टि को प्राप्त करते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१५८

ऋषिः—१—५ चक्षुः सौर्यः ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड्गायत्री । २ स्वराड्गायत्री । ३ गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

सूर्यो नो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् ।
अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः - (**सूर्यः**) सूर्य (**नः**) हमारी (**दिवः**) द्युलोक से (**पातु**) रक्षा करता है, (**वायुः**) वायु (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से और (**अग्निः**) अग्नि (**नः**) हमें (**पार्थिवेभ्यः**) पार्थिव पदार्थों से रक्षित रखता है।

भावार्थः - सूर्य द्युलोक में स्थित हुआ वहां से हमारी रक्षा करता है। वायु अन्तरिक्षस्थ है अतः वहां से हमारी रक्षा करता है और अग्नि पृथिवी पर रहता हुआ पार्थिव पदार्थों से हमारी रक्षा करता है ॥१॥

जोषा सवितर्यस्य ते हरः शतं सवाँ अर्हति ।

पाहि नो दिद्युतः पतन्त्याः ॥२॥

पदार्थः—(**सवितः**) सविता=सूर्य (**ते यस्य**) उस जिसका (**हरः**) तेज (**शतम्**) सैंकड़ों (**सवान्**) यज्ञों की प्राप्ति के प्रति (**अर्हति**) योग्य होता है वह (**जोष**) हमारे द्वारा प्रदत्त आहुतियों को सेवन करता है। वह प्रभु (**पतन्त्याः**) गिरती हुई (**विद्युतः**) बिजली से (**पाहि**) हमारी रक्षा करता है।

भावार्थः—यह सूर्य जिसका तेज हमारे बहुत यज्ञों की प्राप्ति के योग्य है हमारे द्वारा यज्ञ में प्रदत्त हवि को ग्रहण करता है। वह महान् परमेश्वर गिरती बिजली से हमारी रक्षा करता है ॥२॥

चक्षुर्नो देवः सविता चक्षुर्न उत पर्वतः ।

चक्षुर्धाता दधातु नः ॥३॥

पदार्थः—भगवान् की कृपा से (**देवः**) देवनधर्मा (**सविता**) सूर्य (**नः**) हमें (**चक्षुः**) नेत्र को तेज (**दधातु**) देता है, (**उत**) और (**पर्वतः**) मेघ (**नः**) हमें (**चक्षुः**) दर्शन शक्ति देता है, (**धाता**) आदित्यों में एक आदित्य (**नः**) हमें (**चक्षुः**) नेत्र का प्रकाशक तेज देता है।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से देवनधर्मा सविता=सूर्य हमें नेत्र का तेज देता है और मेघ भी हमें नेत्र की शक्ति देता है और आदित्यों में अन्यतम धाता नामक आदित्य हमें नेत्रज्योति देता है ॥३॥

चक्षुर्नो धेहि चक्षुषे चक्षुर्विख्यै तनूभ्यः ।

सं चेदं वि च पश्येम ॥४॥

पदार्थः—यह सूर्य (**नः**) हमारे (**चक्षुषे**) नेत्र के लिए (**चक्षुः**) नेत्र

Scanned by CamScanner

ज्योति (धेहि) देता है (नः) हमारे (तनूभ्यः) शरीरभूत पुत्र आदि के (विख्यै) प्रकाश के लिए (चक्षुः) नेत्रज्योति देता है, जिससे हम (इदम्) इस सारे जगत् को (संपश्येम) भली प्रकार देखते हैं (च) और (विपश्येम च) विशेष रूप से देखते हैं।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से सूर्य हमारे नेत्र में नेत्रज्योति देता है और हमारी सन्तानों को भी देखने के लिए दर्शनशक्ति देता है, जिससे हम इस सम्पूर्ण जगत् को देखते हैं और विशेष रूप से देखते हैं ।।४।।

सुसन्दृशं त्वा वयं प्रति पश्येम सूर्य ।

वि पश्येम नृचक्षसः ।।५।।

पदार्थः—(सुसंदृशम्) सबके देखने के साधन भूत (त्वा) इस (सूर्य) सूर्य को (वयम्) हम सदा (प्रतिपश्येम) देखें, (नृचक्षसः) मनुष्यों के द्वारा द्रष्टव्य पदार्थों को (विपश्येम) विशेष रूप से देखें।

भावार्थः—भगवान् की कृपा से सबके देखने के साधनभूत इस सूर्य को हम सदा देखें और मनुष्यों द्वारा द्रष्टव्य पदार्थों को विशेषरूप से देखें ।।५।।

यह दशम मण्डल में एकसौ अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

सूक्त १५९

ऋषिः—१—६ शची पौलोमी ।। देवता—शची पौलोमी ।। छन्दः—१—३, ५ निचृदनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् । ६ अनुष्टुप् ।।
स्वरः—गान्धारः ।।

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः ।

अहं तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः ।।१।।

पदार्थः—(असौ) यह (सूर्यः) सूर्य (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है (अयम्) यह (मामकः) मेरे सम्बन्धी (भगः) ऐश्वर्य अथवा सौभाग्य भी

Scanned by CamScanner

(उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है। (अहम्) मैं (तद् पतिम्) अपना पति=पालक (विद्वला) पा गई हूँ मैं (विषासहिः) शत्रुओं का पराजय करने वाली होकर (अभि असाक्षि) उनका पराजय करूँ।

भावार्थः—राजा की पत्नी कहती है कि यह सूर्य उदित हो रहा है। यह मेरा सौभाग्य भी उदय को प्राप्त हो रहा है। मैं अपने पति को पा गई हूं। मैं शत्रुओं का विनाश करने वाली होकर उनके समक्ष उनका पराजय करूँ ॥१॥

अहं केतुरहं मूर्धाहमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतुं पतिः सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

पदार्थः—(अहम्) मैं राज्ञी (केतुः) सबकी ज्ञात्री हूँ, (अहम्) मैं (मूर्धा) सब की मस्तकस्थानीय हूँ, (अहम्) मैं (उग्रा) उग्र और (विवाचनी) विशेष रूप से वाचयित्री हूं, (सेहानायाः) सपत्नी की अभिभवित्री (मम) मुझ पत्नी की (क्रतुम्) बुद्धि वा व्यवहार को (इव) ही (अनु) लक्ष्य में रखकर (पतिः) पति (उपाचरेत्) मुझे प्राप्त होवे।

भावार्थः—मैं राज्ञी सबकी ज्ञात्री हूं। मैं सबकी मूर्धा के समान हूं। मैं उग्र और विशेष वक्त्री हूं। सपत्नी को मर्दन करने वाली मुझ पत्नी की मति और कृति के अनुरूप ही पति व्यवहार करें ॥२॥

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः ॥३॥

पदार्थः—(मम) मेरे (पुत्राः) पुत्र लोग (शत्रुहणः) शत्रु का नाश करने वाले हैं, (मे) मेरी (दुहिता) पुत्री (विराट्) विशेष राजमाना है, (उत) और (अहम्) मैं (संजया) भली प्रकार जीतने वाली (अस्मि) हूँ (पत्यौ) पति में (मे) मेरा (श्लोकः) यश (उत्तमः) उत्कृष्ट है।

भावार्थः—मेरे पुत्र शत्रुओं का नाश करने वाले हैं, मेरी पुत्री विशेष राजमाना है, मैं स्वयम् विजय करने वाली हूं और पति में मेरा यश बहुत उत्तम है ॥३॥

येनेन्द्रो हविषा कृत्व्यभवद् द्युम्न्युत्तमः ।
इदं तदक्रि देवा असपत्ना किलाभुवम् ॥४॥

पदार्थ—(येन) जिस (हविषा) भोजन के द्वारा (इन्द्रः) राजा (कृत्वी) कर्मों का कुशल कर्त्ता (अभवत्) होता है तथा (उत्तमः) उत्तम (द्युम्नी) यशस्वी होता है, हे (देवाः) विद्वानो ! (इदम्) यह (तत्) वह (अक्रि) मेरे द्वारा भी किया जाता है (असपत्ना) मैं शत्रुरहिता (किल) निश्चय (अभूवम्) होऊँ ।

भावार्थः—जिस भोजन खान-पान आदि के द्वारा राजा कर्मों का कुशल कर्त्ता, उत्तम यशस्वी होता है वह मेरे द्वारा भी किया जाता है । हे विद्वानो ! मैं शत्रुरहिता होऊँ ॥४॥

असपत्ना सपत्नघ्नी जयन्त्यभिभूवरी ।
आवृक्षमन्यासां वर्चो राधो अस्थेयसामिव ॥५॥

पदार्थः—(असपत्ना) शत्रुरहिता, (सपत्नघ्नी) शत्रुनाशिनी (जयन्ती) जीतने वाली (अभिभूवरी) अभिभवित्री मैं (अस्थेयसामिव) अस्थिर तर शत्रुओं के समान (अन्यासाम्) सपत्नियों के (वर्चः) तेज और (राधः) धन को (अवृक्षम्) काटती हूँ ।

भावार्थः - शत्रुहीना, शत्रुनाशिनी, जयवाली और अभिभवित्री मैं अस्थिरतर शत्रुओं की भांति सौतों के तेज और धन को काटती हूं ॥५॥

समजैषमिमा अहं सपत्नीरभिभूवरी ।
यथाहमस्य वीरस्य विराजानि जनस्य च ॥६॥

पदार्थः—(अभिभूवरी) अभिभवित्री (अहम्) मैं राज्ञी (इमाः) इन (सपत्नीः) सौतों को (समजैषम्) जीतूं, (यथा) जिससे (अहम्) मैं (अस्य) इस (वीरस्य) वीर राज्ञी की (विराजानि) विशेष राजमाना होऊं ।

भावार्थः—अभिभवित्री मैं राज्ञी इन सौतों पर विजय प्राप्त करूँ जिससे इस वीर राजा की विशेष राजमाना पत्नी बनूं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१६०

ऋषिः—१—५ पूरणो वैश्वामित्रः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, ३ त्रिष्टुप् । २ पादनिचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

तीव्रस्याभिवयसो अस्य पाहि सर्वरथा वि हरी इह मुञ्च ।
इन्द्र मा त्वा यजमानासो अन्ये नि रीरमन्तुभ्यमिमे सुतासः ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे सेनापते तू (अस्य) इस (तीव्रस्य) अतिवेग से जाने वाले (अभिवयसः) सब प्रकार के अन्न से सम्पन्न राष्ट्र की (पाहि) रक्षा कर, (इह) यहां पर (सर्वरथा) सभी रथों को ले चलने वाले (हरी) घोड़ों को (विमुञ्च) खोल दे, (त्वा) तुझे (अन्ये) दूसरे (यजमानासः) शत्रुपक्षीय लोग (मा नि रीरमन्) न लुभालें (इमे सुतासः) तैयार किये रस आदि (तुभ्यम्) तुम्हारे लिए हैं ।

भावार्थः—हे सेनापते ! इस अति वेग से चलने वाले सब प्रकार के अन्न आदि से परिपूर्ण राष्ट्र की तू रक्षा कर । यहां पर ही सभी रथों को खींचने में समर्थ घोड़ों को मुक्त कर । तुझे शत्रुपक्षीय मनुष्य जान न लुभालें । ये तैयार किये हुए सोमरस आदि पदार्थ तुम्हारे लिये हैं ॥१॥

तुभ्यं सुतास्तुभ्यमु सोत्वासस्त्वां गिरः श्वात्र्या आ ह्वयन्ति ।
इन्द्रेदमद्य सवनं जुषाणो विश्वस्य विद्वाँ इह पाहि सोमम् ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे सेनापते ! (सुताः) ऐश्वर्य (तुभ्यम्) तेरे लिए है, (तुभ्यम् उ सोत्वासः) उत्पन्न किये जाने वाले पदार्थ भी तेरे लिए हैं, (त्वाम्) तुझको (श्वात्र्या) शुद्ध (गिरः) वाणियें (आह्वयन्ति) सब तरफ से पुकारती हैं, (अद्य) आज (इदम्) इस (सवनम्) यज्ञ को (जुषाणः) सेवन करता हुआ तू (विश्वस्य) सबको (विद्वान्) जानता हुआ (इह) इस यज्ञ में (सोमम्) सोम और ज्ञान आदि की रक्षा कर ।

भावार्थः—हे सेनापते ! ऐश्वर्य तेरे लिए हैं, भविष्य में जो ऐश्वर्य प्राप्त हों वे भी तेरे लिए हैं, इस यज्ञ को करता हुआ, सबको जानता हुआ तू इस यज्ञ में सोम आदि पदार्थ और ज्ञान-विज्ञान की रक्षा कर ॥२॥

Scanned by CamScanner

य उशता मनसा सोममस्मै सर्वहृदा देवकामः सुनोति ।
न गा इन्द्रस्तस्य परा ददाति प्रशस्तमिच्चारुमस्मै कृणोति ॥३॥

पदार्थः –(देवकामः) यज्ञ की कामना वाला (सर्वहृदः) पूर्ण हृदय वाला (यः) जो मनुष्य (अस्मै) इस सेनापति के लिए (उशता) कामना युक्त (मनसा) मन से (सोमम्) सोम आदि रस का (सुनोति) निष्पादन करता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सेनापति (तस्य) उसकी (गाः) वाणियों और भूमियों को (न) नहीं (परा ददाति) टालता वा नष्ट करता है (अस्मै) इसके लिए (प्रशस्तम्) प्रशस्त (इत्) एवम् (चारु) उत्तम धन (कृणोति) करता है ।

भावार्थः—यज्ञ की कामना वाला, पूर्ण हृदय वाला जो मनुष्य इस सेनापति के लिए कामनायुक्त मन से सोम आदि रसों को तैयार करता है, ऐश्वर्यवान् सेनापति उसकी वाणियों को नहीं टालता है और इसके लिए प्रशस्त एवम् उत्तम धन देता है ॥३॥

अनुस्पष्टो भवत्येषो अस्य यो अस्मै रेवान्न सुनोति सोमम् ।
निररत्नौ मघवा तं दधाति ब्रह्मद्विषो हन्त्यनानुदिष्टः ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो मनुष्य (रेवान् न) धन वाले के समान (अस्मै) इस सेनापति के लिए (सोमम्) सोम आदि को (सुनोति) तैयार करता है (एषः) यह सेनापति (अस्य) इसके लिए (अनु) अनुदिन (स्पष्टः) स्पष्ट (भवति) होता है, (मघवा) धनवान् सेनापति (तम्) उसको (अरत्नौ) हाथ में (निःदधाति) रखता है और (अनानुदिष्टः) और विना कहा हुआ ही (ब्रह्मद्विषः) ज्ञान और विद्वान् के द्वेषियों को (हन्ति) नष्ट करता है ।

भावार्थः—जो मनुष्य धन वाले के समान इस सेनापति के लिए सोम आदि रसों को तैयार करता है उसको यह अपने हाथ में सुरक्षित रखता है । तथा विना कहा हुआ ही ज्ञान और विद्वानों के द्वेषी को नष्ट करता है ॥४॥

अश्वायन्तो गव्यन्तो वाजयन्तो हवामहे त्वोपगन्तवा उ ।
आभूषन्तस्ते सुमतौ नवायां वयमिन्द्र त्वा शुनं हुवेम ॥५॥

पदार्थः—(अश्वायन्तः) अश्वों को चाहते वाले, (गव्यन्तः) गायों को चाहने वाले (वाजयन्तः) यज्ञ की अग्नि को जलाते हुए हम हे सेनापते ! (त्वा)

Scanned by CamScanner

तुझे (उपगन्तवै उ) प्राप्त करने के लिए (हवामहे) पुकारते हैं, (इन्द्र) हे सेनापते ! (ते) तेरी (नवायाम्) नवीन (सुमतौ) सुमति में (आभूषन्तः) वर्तमान हम (शुनम्) सुखकर (त्वा) तुझे (हुवेम) पुकारें ।

भावार्थः—हे सेनापते ! अश्वों को चाहने वाले, गौओं को चाहने वाले और यज्ञ की अग्नि को जलाते हुए हम तुझे प्राप्त करने के लिए पुकारते हैं । तेरी नूतन सुमति में वर्तमान हम तुझ सुखकारी को स्मरण करते हैं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त-१६१

ऋषिः—१—५ यक्ष्मनाशनः प्राजापत्यः । **देवता**—राजयक्ष्मघ्नम् ॥
छन्दः—१, ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् ॥ **स्वरः**—१—४ धैवतः । ५ गान्धारः ॥

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात् ।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेनं तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेनम् ॥१॥

पदार्थः—हे रोगिन् ! (त्वा) तुझे मैं वैद्य (कम्) सुखपूर्वक (जीवनाय) जीने के लिए (हविषा) ओषधि अथवा हवन द्वारा (अज्ञातयक्ष्मात्) अप्रकट यक्ष्मा रोग से (उत) और (राजयक्ष्मात्) प्रकट तपेदिक से (मुञ्चामि) छुड़ाता हूं, (यदि) यदि (ग्राहिः) शरीर को जकड़ने वाले रोग ने (जग्राह) ग्रहण किया है तो (एनम्) इसको (तस्याः) उससे भी (इन्द्राग्नी) इन्द्र=विद्युत् और अग्नि गुणों वाली ओषधियें (मुमुक्तम्) छुड़ावें ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! तुझे मैं वैद्य सुखपूर्वक जीने के लिए ओषधि और यज्ञ की हवि के द्वारा प्रकट और अकप्रट तपेदिक से छुड़ाता हूं । यदि शरीर को जकड़ने वाली व्याधि ने इसे पकड़ा है तो उससे भी विद्युत् और आग्नेय गुणों वाली ओषधियां इसे मुक्त करें ॥१॥

Scanned by CamScanner

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव ।
तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्षमेनं शतशारदाय ॥२॥

पदार्थ—(**यदि**) यदि रोगी (**क्षितायुः**) नष्ट जीवन शक्ति वाला हो गया है (**यदि**) यदि (**वा**) अथवा (**परा इतः**) सीमा से परे चला गया है (**यदि**) यदि (**मृत्योः**) मृत्यु के (**अन्तिकः**) समीप (**नीतः**) पहुँच गया (**एव**) ही है तो भी (**तम्**) उस रोगी को मैं वैद्य (**निर्ऋतेः**) कष्टप्रद रोग के (**उपस्थात्**) पंजे से (**आ हरामि**) छुड़ा लाता हूं (**शतशारदाय**) सौ शरद् ऋतुओं तक जीने के लिए (**एनम्**) इसको (**अस्पार्षम्**) बलयुक्त करता हूं।

भावार्थः—यदि रोगी नष्ट जीवनशक्ति वाला हो गया है, अथवा यदि वह सीमा से परे चला गया है, यदि वह मृत्यु के समीप पहुँच गया है तो भी उस रोगी को मैं भिषक् कष्टप्रद रोग के पंजे से छुड़ा लाता हूं और सौ शरद् ऋतुओं तक जीने के योग्य बना देता हूँ ॥२॥

सहस्राक्षेण शतशारदेन शतायुषा हविषाहार्षमेनम् ।
शतं यथेमं शरदो नयातीन्द्रो विश्वस्य दुरितस्य पारम् ॥३॥

पदार्थः–(**एनम्**) इस रोगी के लिए (**सहस्राक्षेण**) सहस्रों गुणों वाली (**शतशारदेन**) सौ शरद् ऋतु तक जीवन देने में समर्थ (**हविषा**) औषधि (**अहार्षम्**) लाता और प्रयुक्त करता हूँ (**यथा**) जिससे (**इन्द्रः**) प्राण (**शरदः शतम्**) सौ शरद् ऋतुओं तक (**विश्वस्य**) सारे (**दुरितस्य**) दुरितों के (**पारम्**) पार (**नयाति**) पहुँचावे।

भावार्थः—इस रोगी के लिए सहस्रों गुणों वाली सौ शरद् ऋतुओं तक जीवन देने वाली औषध को लाता और प्रयुक्त करता हूं जिससे प्राण इसे सौ शरद् ऋतुओं तक सारे रोगों से दूर रखें ॥३॥

शतं जीव शरदो वर्धमानः शतं हेमन्ताञ्छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता बृहस्पतिः शतायुषा हविषेमं पुनर्दुः ॥४॥

पदार्थः—हे रोगमुक्त मनुष्य तू (**शतम्**) सौ (**शरदः**) शरद् ऋतुओं तक (**वर्धमानः**) बढ़ता हुआ (**जीव**) जी, तू (**शतम्**) सौ (**हेमन्तान्**) हेमन्त ऋतुओं पर्यन्त, (**शतम् उ**) और सौ(**वसन्तान्**) वसन्त ऋतुओं पर्यन्त जीवित रह, (**इन्द्राग्नी**)

विद्युत् और अग्नि (सविता) सूर्य, (बृहस्पतिः) वायु (शतम्) सौ सम्वत्सर तक आयु (शतायुषा) सौ वर्ष तक जीवन देने में समर्थ (हविषा) शक्ति के द्वारा (इमम्) इसको (पुनः) फिर (दुः) दें।

भावार्थः—रोगमुक्त यह मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होता हुआ सौ शरद ऋतुओं पर्यन्त जीवे, सौ हेमन्त और सौ वसन्त ऋतुओं तक जीवे तथा विद्युत्, अग्नि, सूर्य, वायु आदि सौ शरद् तक जीवन जीने में समर्थ शक्ति के द्वारा इसे सौ शरद् ऋतु तक जीवन प्रदान करें ॥४॥

आहा॑र्षं त्वावि॑दं त्वा पुन॒राग॑ाः पुनर्नव ।
सर्वा॑ङ्ग॒ सर्वं॑ ते॒ चक्षुः॒ सर्व॒मायु॑श्च ते॒ऽविदम् ॥५॥

पदार्थः—हे रोगमुक्त ! मैं भिषग् (त्वा) तुझे रोग से (आहार्षम्) दूर लाया हूं, (त्वा) तुझको पुनः (अविदम्) प्राप्त किया हूं, हे (पुनर्नव) नये जीवन को धारण करने वाले (त्वा) तू (पुनः) फिर से (आ अगाः) लौटकर आया है, हे (सर्वांग) अङ्गों से युक्त ! (सर्वम्) सारी (ते) तेरी (चक्षुः) इन्द्रियों को (सर्वम्) सारी (ते) तेरी (आयुः च) आयु को भी (अविदम्) तुझे प्राप्त कराता हूँ।

भावार्थः—हे रोगमुक्त ! मैं भिषग् तुझे नये सिरे से प्राप्त किया हूं, तुझे रोग से दूर लाया हूं। हे नवीन जीवन प्राप्त करने वाले ! तू पुनः लौटकर आया है। हे सभी अङ्गों से युक्त ! मैंने तुझे सारी इन्द्रियां और सारी आयु प्राप्त कर दी है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त-१६२

ऋषिः—१—६ रक्षोहा ब्राह्मः ॥ **देवता**—गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम् ॥
छन्दः—१, २, ४ निचृदनुष्टुप् । ३, ५, ६ अनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

ब्रह्म॑णाग्निः सं॑विदा॒नो र॑क्षो॒हा बा॑धतामि॒तः ।
अमी॑वा॒ यस्ते॒ गर्भं॑ दु॒र्णामा॒ योनि॑मा॒शये॑ ॥१॥

पदार्थः—(ब्रह्मणा) वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और उपाय से (संविदानः) युक्त (रक्षोहा) कृमिनाशक (अग्निः) आग्नेय गुण वाली अथवा अग्नि नाम की ओषधि अथवा विद्युत् (इतः) इस शरीर से (बाधताम्) रोग को दूर करे (यः) जो (दुर्णामा) दुर्णामा नामक (अमीवा) अमीवा नामक रोगकृमि हे स्त्री ! (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ और (योनिम्) गर्भस्थान में (आशये) स्थान प्राप्त किये है ।

भावार्थः—वेद द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और प्रयोग की विधि से युक्त कृमि नाशक अग्नि गुणों वाली ओषधि इस शरीर से रोग को दूर करे। जो दुर्णामा नामक और अमीवा नामक रोगजन्तु हे स्त्रि ! तेरे गर्भ और गर्भ-स्थान में स्थान किये है उसे यह आग्नेय ओषधि दूर करे ॥१॥

यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये ।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (ते) तेरे (गर्भम्) गर्भ और (योनिम्) योनि में (यः) जो (अमीवा) अमीवा कृमि और (दुर्णामा) दुर्णामा कृमि (आशये) स्थित है (अग्निः) यह आग्नेय ओषधि (ब्रह्मणा) वेद प्रतिपादित प्रयोग के (सह) साथ (तम्) उस (क्रव्यादम्) कच्चा मांस खाने वाले जन्तु का (निः) निःशेषरूप से (अनीनशत्) नाश करे ।

भावार्थः—हे स्त्री ! तेरे गर्भ और गर्भस्थान में जो अमीवा नामक और दुर्णामा नामक जन्तु स्थित है यह आग्नेय ओषधि वेदप्रतिपादित प्रयोग के साथ उस कच्चे मांस खाने वाले का निःशेषरूप से नाश करे ॥२॥

यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम् ।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (यः) जो (ते) तेरे गर्भाशय में रेतस् रूप में (पतयन्तम्) जाते हुए का (हन्ति) नाश करता है, (यः) जो (निषत्स्नुम्) स्थित होते हुए गर्भ को नष्ट करता है, (यः) जो (सरीसृपम्) सर्पणशील गर्भ को नष्ट करता है, (ते) तेरे (जातम्) गर्भस्थ शिशु को (यः) जो (जिघांसति) मार देता है (तम्) उसको (इतः) इसमें से (नाशयामसि) मैं वैद्य नष्ट करता हूँ ।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो तेरे गर्भाशय में जाते रेतस् को नष्ट करता

Scanned by CamScanner

है, जो गर्भरूप में स्थित वीर्य को नष्ट करता है, जो चलते हुए गर्भ को नष्ट करता है, जो गर्भाशय में बढ़े हुए शिशु को गर्भ में ही नष्ट कर देता है उसको यहाँ से नष्ट करता हूँ ॥३॥

यस्तं ऊरू विहरत्यन्तरा दम्पती शये ।
योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि ॥४॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो (**ते**) तेरे (**ऊरु**) जंघों के बीच में (**विहरति**) घूमता है, तथा (**दम्पती**) पति और पत्नी में किसी एक के (**अन्तरा**) अन्दर देह में (**शये**) रहता है तथा (**यः**) जो (**ते**) तेरी (**योनिम्**) योनि के (**अन्तरा**) अन्दर रह कर (**आरेढि**) गर्भ को चाट जाता है (**तम्**) उसको (**इतः**) यहां से (**नाशयामसि**) दूर करे ।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो तेरी जांघों के मध्य में रहता है तथा पति-पत्नी में किसी एक के शरीर में रहता है और जो तेरी योनि के अन्दर रहकर गर्भ को चाट जाता है उसको हम यहां से नष्ट करते हैं ॥४॥

यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो जन्तु (**भ्राता**) भ्राता होकर, (**पतिः**) पति (**भूत्वा**) होकर अथवा (**जारः**) जार (**भूत्वा**) होकर (**त्वा**) तुझे (**निपद्यते**) प्राप्त होता है (**यः**) जो (**ते**) तेरी (**प्रजाम्**) सन्तति को (**जिघांसति**) नष्ट करता है (**तम्**) उसको (**इतः**) यहां से (**नाशयामसि**) हम वैद्यजन नष्ट करते हैं ।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो जन्तु भ्राता, पति और जार होकर तुम्हें प्राप्त होता है और जो तेरी सन्तति को नष्ट करता है उसको हम वैद्यजन यहां से नष्ट करते हैं ॥५॥

यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते ।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६॥

पदार्थः—हे स्त्री ! (**यः**) जो जन्तु (**स्वप्नेन तमसा**) स्वप्नावस्था की निद्रा से (**त्वा**) तुझे (**मोहयित्वा**) मूढ करके (**निपद्यते**) प्राप्त होता है तथा

Scanned by CamScanner

(ते) तेरी (प्रजाम्) सन्तति को (यः) जो (जिघांसति) नष्ट करता है (तम्) उसको (इत्) यहां से (नाशयामसि) हम वैद्यजन नष्ट करते हैं ।

भावार्थः—हे स्त्री ! जो स्वप्न की निद्रा से मुग्ध करके तुझे प्राप्त होता है और तुम्हारी सन्तति को नष्ट करता है उसको हम वैद्य जन यहां से नष्ट करते हैं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त-१६३

ऋषिः –१—६ विवृहा काश्यपः ॥ देवता —यक्ष्मघ्नम् ॥ छन्दः – १, ६ अनुष्टुप् । २—५ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्कांज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

पदार्थः – मैं वैद्य (ते) तेरी (अक्षिभ्याम्) आंखों से (यक्ष्मम्) रोग को (अधि वि वृहामि) दूर करता हूँ, (ते नासिकाभ्याम्) तेरी नासिका से, (ते कर्णाभ्याम्) तेरे कानों से और (छुबुकादधि) ठोडी से रोग को दूर करता हूं, (शीर्षण्यम्) शिर में बैठे (यक्ष्मम्) रोग को (मस्तिष्कात्) मस्तिष्क और (ते) तेरी (जिह्वायाः) जीभ से (वि वृहामि) हटाता हूं ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! मैं वैद्य तेरी आंखों, नासिका, कानों और ठोड़ी से रोग को दूर करता हूं । जो शीर्षस्थ रोग है उसे भी मस्तिष्क और तेरी जिह्वा से दूर करता हूं ॥१॥

ग्रीवाभ्यंस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य१मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२॥

पदार्थः—हे रोगिन् ! (ग्रीवाभ्यः) गर्दन की नाड़ियों से (उष्णिहाभ्यः) ऊपर जाने वाली धमनियों से (कीकसाभ्यः) हड्डियों से तथा (अनूक्यात्) संधिभाग से रोग को दूर करता हूं, (दोषण्यम्) बाहुओं में बैठे (यक्ष्मम्) यक्ष्म

Scanned by CamScanner

रोग को (ते) तेरे (अंसाभ्याम्) कन्धों और (बाहुभ्याम्) बाहुओं से (वि वृहामि) निकालता हूं।

भावार्थः—हे रोगिन्! तेरी गर्दन की नाड़ियों, ऊर्ध्व धमनियों, हड्डियों और संधि से रोग को दूर करता हूं। तथा हाथों में स्थित यक्ष्म को कन्धों से और बाहुओं से दूर करता हूं ॥२॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥

पदार्थः—हे रोगिन्! (ते) तेरी (अन्त्रेभ्यः) आंतों से (गुदाभ्यः) गुदाओं से, (वनिष्ठोः) स्थूल आंत से (हृदयाद् अधि) हृदय से, (ते) तेरे (मतस्नाभ्याम्) दोनों गुर्दों से (यक्नः) यकृत् से (प्लाशिभ्यः) तिल्ली आदि से (यक्ष्मम्) रोग को (वि वृहामि) दूर करता हूं।

भावार्थः—हे रोगिन्! तेरी आंतों, गुदाओं, स्थूल आंत हृदय, दोनों गुर्दों, यकृत् और तिल्ली आदि यन्त्रों से यक्ष्म को दूर करता हूं ॥४॥

ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससो वि वृहामि ते ॥४॥

पदार्थः—(ते) तेरी (उरुभ्याम्) जंघाओं से, (अष्ठीवद्भ्याम्) विशेष अस्थि वाले गोडों से, (पार्ष्णिभ्याम्) एडियों से, (प्रपदाभ्यां) पंजों से, (श्रोणिभ्याम्) नितम्ब भागों से (भासदात्) कटिभाग स्थित (भंससः) उपस्थ प्रदेश से (यक्ष्मम्) रोग को (वि वृहामि) दूर करता हूं।

भावार्थः—हे रोगिन्! तेरी जंघाओं, विशेष अस्थि वाले गोड़ों, एड़ियों, पंजों, नितम्बभागों, कटिभागस्थ उपस्थ प्रदेश से रोग को दूर करता हूं ॥४॥

मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्यः।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५॥

पदार्थः—(वनंकरणाद्) मूत्र पैदा करने वाले (मेहनात्) मूत्रेन्द्रिय से, (लोमभ्यः) लोमों से (ते) तेरे (नखेभ्यः) नखों से (ते) तेरे (सर्वस्माद्) सारे

Scanned by CamScanner

(आत्मनः) शरीर से (ते) तेरे (तम्) उस (इदम्) इस यक्ष्म को (वि वृहामि) दूर करता हूं ।

भावार्थः—मूत्र लाने वाले मूत्रेन्द्रिय, लोमों, नखों और समस्त शरीर से इस यक्ष्म रोग को दूर करता हूं ॥५॥

अङ्गा॑दङ्गा॒ल्लोम्नो॑लोम्नो जा॒तं पर्व॑णिपर्वणि ।
यक्ष्मं॒ सर्व॑स्मादा॒त्मन॒स्तमि॒दं वि वृ॑हामि ते ॥६॥

पदार्थः—(अंगात् अंगात्) अङ्ग-अङ्ग से, (लोम्नः लोम्नः) लोम लोम से, और (पर्वणि पर्वणि) पोर पोर में (जातम्) पैदा हुए (तम् इदम्) उस इस (यक्ष्मम्) यक्ष्मा को (सर्वस्मात् आत्मनः) समस्त देह से (वि वृहामि) दूर करता हूँ ।

भावार्थः—हे रोगिन् ! अङ्ग-अङ्ग से, लोम-लोम से, पोर-पोर में उत्पन्न उस यक्ष्म को समस्त शरीर से दूर करता हूं ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तरेसठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त १६४

ऋषिः–१—५ प्रचेताः ॥ देवता–दुःस्वप्नघ्नम् ॥ छन्दः—१ निचृदनुष्टुप् ।
२ अनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् । ३ आर्चीभुरिक्त्रिष्टुप् । ५ पङ्क्ति ॥
स्वरः—१, २, ४ गान्धारः । ३ धैवतः । ५ पञ्चमः ॥

अपे॑हि मनसस्पते॒ऽप॑ क्राम प॒रश्च॑र ।
प॒रो निर्ऋ॑त्या॒ आ च॑क्ष्व बहु॒धा जीव॑तो॒ मनः॑ ॥१॥

पदार्थः—(मनसः पते) मनको गिराने वाला पाप संकल्प (अप इहि) दूर हो, (अपक्राम) परे हो जावे, (परः चर) परे भाग जावे, (परः) दूर की (निर्ऋत्याः) विपत्ति के विषय में (आचक्ष्व) बसावे (जीवतः) जीते हुए का (मनः) मन (बहुधा) बहुत प्रकार का होता है ।

भावार्थः—मनको गिराने वाला पाप संकल्प दूर हो, परे जावे, दूर भाग जावे। दूर की विपत्ति के विषय में बतावे। जीवित का मन बहुत प्रकार का बहु वृत्तियों वाला होता है ॥१॥

भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युञ्जन्ति दक्षिणम्।

भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥२॥

पदार्थः—लोग (**भद्रम्**) शोभन (**वै**) ही (**वरम्**) वरणीय फल को (**वृणते**) चाहते हैं, (**दक्षिणम्**) वृद्धियुक्त (**भद्रम्**) शोभन फल ही (**युञ्जन्ति**) प्राप्त करते हैं, (**वैवस्वते**) विविध प्राणियों के स्वामी परमेश्वर के लिये (**चक्षुः**) दृष्टि (**भद्रम्**) शोभन हो (**जीवतः**) जीवित प्राणी का (**मनः**) मन (**बहुत्रा**) बहुत विषयों में जाने वाला होता है।

भावार्थः—शोभन एवम् वरणीय फल को ही लोग चाहते हैं, वृद्धि-युक्त शोभन फल को प्राप्त करते हैं। विविध प्राणियों के स्वामी परमेश्वर के लिए हमारी दृष्टि शोभन हो। जीवित प्राणी का मन बहुत विषयों में जाने वाला होता है ॥२॥

यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः।

अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥३॥

पदार्थः—(**यत्**) जिस बुराई को हम (**आशसा**) इच्छापूर्वक, (**निःशसा**) निराशा से अर्थात् इच्छा के विपरीत, (**अभिशसा**) चाहते हुए (**उपारिम**) प्राप्त करते हैं, (**यत्**) जिस बुराई को हम (**जाग्रतः**) जागते हुए अथवा (**स्वपन्तः**) सोते हुए प्राप्त करते हैं, (**अग्निः**) स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर अथवा विद्वान् (**अजुष्टानि**) न सेवनीय अथवा न सेवित की गई (**विश्वा**) समस्त (**दुष्कृतानि**) बुराइयों को (**अस्मत्**) हमसे (**आरे**) दूर (**अपदधातु**) रखे।

भावार्थः—हम इच्छापूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक, अथवा बार-बार चाह करके जो बुराई प्राप्त करते हैं, जो सोते हुए और जागते हुए प्राप्त करते हैं ऐसी समस्त असेवनीय एवम् न की गई हुई भविष्य में होने वाली बुराइयों को परमेश्वर और विद्वान् हमसे दूर रखें ॥३॥

Scanned by CamScanner

यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! हे (ब्रह्मणस्पते) वेद और महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! (यत्) जो हम (अभि द्रोहम्) द्रोह का आचरण (चरामसि) करें तो (प्रचेताः) प्रकृष्टचेता: (आंगिरसः) तपस्वी पुरुष (द्विषताम्) अन्त: और बाह्य शत्रुओं के (अंहसः) पाप से (नः) हमें (पातु) बचावे ।

भावार्थः—हे ऐश्वर्यवन् प्रभो !हे वेद और ब्रह्माण्ड के स्वामिन् जो! हभ द्रोह का आचरण करें तो प्रकृष्टचेता तपस्वी पुरुष हमें उससे और आन्तरिक तथा बाहरी शत्रुओं के पाप से बचावें ॥४॥

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्नः संङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं
स ऋच्छतु यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥

पदार्थः—(अद्य अजैष्म) हमने आज बुराइयों पर विजय प्राप्त कर लिया है, (वयम्) हमने (अद्य) आज (असनाम) प्राप्त करने योग्य को प्राप्त कर लिया, (वयम्) हम (अद्य) आज (अनागसः) निष्पाप (अभूम) हो गए हैं (जाग्रत्स्वप्नः) जागते और सोते समय का (पापः) पाप (संकल्पः) संकल्प (यम्) जिससे (द्विष्मः) द्वेष करते हैं (तम्) उसको (सः) वह (ऋच्छतु) प्राप्त होवे, अर्थात् जिनसे हम द्वेष करते हैं, उन बुराइयों को प्राप्त होवे, (यः) जो (नः) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (तम्) उसको (सः) वह (ऋच्छतु) प्राप्त होवे ।

भावार्थः—आज हमने बुराइयों पर विजय प्राप्त किया है, हमने प्राप्त करने योग्य को प्राप्त कर लिया है, हम निष्पाप हो गए हैं, जाग्रत और सोने के समय का पाप संकल्प जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हम से द्वेष करते हैं उन बुराइयों और पापों को ही प्राप्त हो ॥५॥

यह दशम मण्डल में एक सौ चौंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १६५

ऋषिः—१—५ कपोतो नैर्ऋतः ॥ देवता—कपोतापहतौ प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम् ॥ छन्दः—१ स्वराट्त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

देवा॑: क॒पोत॑ इषि॒तो यदि॒च्छन्दू॒तो निर्ऋ॑त्या इ॒दमा॑ज॒गाम॑ ।
तस्मा॑ अर्चाम कृ॒णवा॑म॒ निष्कृ॑तिं॒ शं नो॑ अस्तु द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे ॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (निर्ऋत्याः) परभूमि वा परदेश का (दूतः) सन्देशहर (कपोतः) कबूतर (इषितः) भेजा हुआ (यत्) जो वस्तु (इच्छत्) चाहता हुआ (इदम्) इस स्थान पर (आजगाम) आता है तो (अस्मै) इसका (अर्चाम) हम आदर करें (निष्कृतिम्) उसके श्रम का परिमार्जन करें, (नः) हमारे (द्विपदे) दो पांव वालों के लिए (शम्) सुख (अस्तु) हो, तथा (चतुष्पदे) चार पांवों वाले को (शम) सुख (अस्तु) अस्तु हो।

भावार्थः—हे विद्वानो ! दूरदेश से सन्देश लेकर भेजा हुआ कबूतर जब इस हमारे स्थान पर आता है तब हम उसका आदर करते हैं और उसके श्रम को हटाते हैं। हमारे मनुष्यों और पशुओं का कल्याण हो ॥१॥

शि॒वः क॒पोत॑ इषि॒तो नो॑ अस्त्वना॒गा दे॑वाः शकु॒नो गृ॒हेषु॑ ।
अ॒ग्निर्हि विप्रो॑ जु॒षतां॑ ह॒विर्नः॒ परि॑ हे॒तिः प॒क्षिणी॑ नो वृणक्तु ॥२॥

पदार्थः—(इषितः) दूसरे देश से भेजा हुआ (कपोतः) कबूतर (नः) हमारे लिए (शिवः) कल्याणकारक (अस्तु) हो (देवाः) हे विद्वानो ! (नः) हमारे (गृहेषु) घरों में वह (अनागाः) निरपराध हो (अग्निः हि) प्रकाशमान राष्ट्रनेता (नः) हमारे सम्बन्धी अथवा हम से दी गई (हविः) भोग सामग्री को (जुषताम्) सेवन वा स्वीकार करें (पक्षिणी) पक्षों वाली शस्त्रधारिणी (हेतिः) सेना (नः) हमें आक्रमण से छोड़ रखें।

भावार्थः—दूसरे देश से सन्देश लेकर भेजा हुआ कबूतर हम सब प्रजा के लिए कल्याणकारी हो . हे विद्वानो ! हमारे गृहों में वह निरपराध हो अर्थात् उसका अनादर न हो। राष्ट्र का नेता हमारे द्वारा प्रदत्त कर आदि को ग्रहण करे। पक्षों वाली सशस्त्र सेना का हम पर आक्रमण न हो ॥२॥

Scanned by CamScanner

हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥३॥

पदार्थः हे (देवाः) विद्वान् लोगो ! (पक्षिणी) पक्षों वाली सशस्त्र (हेतिः) सेना (अस्मान्) हमें (न) नहीं (दभाति) मारे, वह कपोत (आष्ट्र्याम्) जंगल में (अग्निधाने) अग्नि के पात्र में (पदम्) पैर को (कृणुते) डाले (च) और (नः) हमारी (गोभ्यः) गायों (च) और (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिए (शम्) कल्याण (अस्तु) होवे, (इह) हमारे स्थान में (कपोतः) यह कबूतर (नः) हमें (मा) न (हिंसीत्) मारे।

भावार्थः—हे विद्वान् लोगो ! पक्षों वाली सेना हमें न मारे। कबूतर महा जंगल में निर्जन प्रदेश में पात्र में अपना पैर डाले, हमारे स्थानों में नहीं। हमारी गायों, हमारे मनुष्यों के लिए सुख हो। हमारे स्थान में कबूतर हमें न मारें ॥३॥

यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥४॥

पदार्थः—(यत्) जब (उलूकः) घूक नाम अथवा दोष नाम का पक्षी (अमोघम्) अशोभन (वदति) बोलता है, (यत्) जब (कपोतः) कबूतर (पादम्) अपने पैर को (अग्नौ) अग्नि में विना कारण (कृणोति) डालता है तो (प्रहितः) प्रेषित (एषः) यह कबूतर (यस्य) जिसकी (दूतः) सूचना देने वाला है (तस्मै) उस (यमाय) सबको नियन्त्रण में रखने वाले (मृत्यवे) मृत्यु के लिए (एतत्) यह (नमः) नमन (अस्तु) होता है।

भावार्थः—जब घूक नाम का पक्षी किसी बीमार को देखकर अशोभन वाणी बोलता है और जब कबूतर विना किसी अन्य कारण के अपने पैर को आग डालता है तो उस समय वह रुग्ण की मृत्यु की सूचना देता है और रुग्ण की मृत्यु सम्भव है ॥४॥

ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥५॥

पदार्थ—(देवाः) हे विद्वानो ! (प्रणोदम्) दूर देश में सन्देश लेकर

भेजने योग्य (**कपोतम्**) कबूतर को (**ऋचा**) वाणी और शिक्षण से (**नुदत**) प्रेरित या शिक्षित करो, (**इषम्**) अन्न से (**मदन्तः**) उसे प्रसन्न वा तृप्त रखते हुए (**गाम्**) वाणी=सन्देश को (**परि नयध्वम्**) चारों तरफ पहुँचाओ, इस सम्बन्ध में (**विश्वा**) समस्त (**दुरितानि**) विघ्नों को (**संयोपयन्तः**) दूर करते हुए हम सावधान रहें, (**पतिष्ठः**) अत्यन्त उड़ने वाला वह कपोत (**नः**) हमारे (**ऊर्जम्**) अन्न को (**हित्वा**) न खाकर अर्थात् छोड़कर (**प्रपतात्**) उड़ता रहे ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! दूर देश में सन्देश लेकर भेजने योग्य कबूतर को वाणी और शिक्षण से प्रेरित और शिक्षित करो । अन्न से उसे तृप्त रखो और सन्देश को चारों तरफ पहुँचाओ। इस सम्बन्ध में समस्त विघ्नों को निवारण करते हुए सावधान रहो । उड़ने वाला वह कपोत हमारे अन्न को छोड़कर उड़ता रहे ॥५॥

सूचनाः—इस सूक्त में प्रथम, द्वितीय मन्त्र में कबूतर पक्षी के सन्देश भेजने का और उसके स्वभाव का वर्णन है । तीसरे और चौथे मन्त्र में यह बताया गया है कि इस कबूतर और घूक पक्षी अथवा उल्लू को मौत का परिज्ञान होता है । पांचवें मन्त्र में उसे शिक्षित करने, सन्देश भेजने और विघ्नों से सावधान रहने को कहा गया है । अपने पक्षीय जनों के अन्न-सत्कार को जहां स्वीकार किया गया है वहां पांचवें मन्त्र में बताया गया है कि सन्देशहर कबूतर अन्न का परित्याग करके उड़ता रहे । कारण यह है कि कोई विषयुक्त वस्तु प्रदान करके मार दे अथवा वह कबूतर ही अन्न का लोभी बनकर वश में हो जावे ।

यह दशम मण्डल में एक सौ पैंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१६६

ऋषिः—१—५ऋषभो वैराजः शाक्वरो वा ॥ देवता—सपत्नघ्नम् ॥
छन्दः—१, २ अनुष्टुप् । ३, ४ निचृदनुष्टुप् । ५ महापङ्क्तिः ॥
स्वरः—१—४ गान्धारः । ५ पञ्चमः ॥

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१॥

पदार्थः—हे प्रभो ! तू (मा) मुझे (समानानाम्) समान लोगों में (ऋषभम्) श्रेष्ठ (सपत्नानाम्) शत्रुओं का (विषासहिम्) नाश करने वाला (शत्रूणाम्) दुश्मनों का (हन्तारम्) हन्ता (गवाम्) गायों का (गोपतिम्) स्वामी तथा (विराजम्) विशेष दीप्तिमान् (कृधि) बना ।

भावार्थः—हे प्रभो ! तू मुझे समानों में श्रेष्ठ, विरोधियों का नाश करने वाला, शत्रुओं का हन्ता, गौओं का स्वामी और विशेष दीप्तिमान् बना ॥१॥

अहमस्मि सपत्नहेन्द्रइवारिष्टो अक्षतः ।

अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२॥

पदार्थः—(अहम्) मैं (इन्द्रः इव) राजा के समान (अरिष्टः) अपीडित (अक्षतः) अविनष्ट होकर (सपत्नहा) शत्रुका नाश करने वाला (अस्मि) हूँ, (इमे) ये ((सर्वे) सभी (सपत्नाः) शत्रु (अभिष्ठिताः) मेरे सम्मुख खड़े हुए भी (मे) मेरे (पदोः) पैरों के (अधः) नीचे हैं ।

भावार्थः—मैं राजा के समान अपीड़ित और अक्षत होकर शत्रुहन्ता हूँ । ये सारे शत्रु जो सामने खड़े हैं मुझ वीर के पैर के नीचे हैं ॥२॥

अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नीइव ज्यया ।

वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३॥

पदार्थः—(ज्यया) डोरी से धनुष् की (उभे) दोनों (आर्त्नी) किनारों के समान हे शत्रुओ ! (वः) तुम्हें (अपि) भी (अत्र एव) यहीं पर (नह्यामि) बांधता हूँ, (वाचस्पते) हे वाणी के पालक विद्वन् ! (इमान्) इन्हें (निषेध) बांध (यथा) जिससे (मत्) मुझसे (अधरम्) नीचे होकर अर्थात् दबकर (वदान्) बोलें ।

भावार्थः—जिस प्रकार डोरी से धनुष् के दोनों किनारों को बांधा जाता है उसी प्रकार मैं यहां पर ही रस्सी से हे शत्रुओ ! तुम्हें बांधता हूं । हे विद्वन् ! इन्हें रोको, मेरे नीचे दबे हुए होकर बोलें ॥३॥

अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।

आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४॥

पदार्थः—हे शत्रुओ ! (**अभिभूः**) तुम सबका अभिभव करने वाला (**अहम्**) मैं (**विश्वकर्मेण**) सभी कार्यों में क्षम (**धाम्ना**) धारक तेज के साथ (**आगमम्**) आया हूं, अतः (**वः**) तुम्हारे (**चित्तम्**) मन को (**आ ददे**) ग्रहण करता हूं, (**वः**) तुम्हारे (**व्रतम्**) कर्म=पराक्रम को (**आददे**) हरण करता हूं, (**वः**) तुम्हारे (**समितिम्**) संघ को (**अहम्**) मैं (**आददे**) हरण करता हूं ।

भावार्थः—हे शत्रुओ ! तुम सबका अभिभव करने वाला मैं सब कार्यों में क्षम तेज के साथ तुम्हारे समक्ष आ गया हूं । तुम्हारे मन, तुम्हारे पराक्रम और संघ का मैं हरण करता हूं ॥४॥

योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।
अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूकाइवोदकान्मण्डूका उदकादिव ॥५॥

पदार्थ—हे शत्रुओ ! (**वः**) तुमसे सम्बन्ध रखने वाले (**योगक्षेमम्**) योग और क्षेम [अप्राप्त की प्राप्ति का नाम योग है और प्राप्त की रक्षा का नाम क्षेम है] को (**आदाय**) हरण करके (**अहम्**) मैं (**उत्तमः**) उत्तम (**भूयासम्**) बनूंगा (**वः**) तुम्हारे (**मूर्धानम्**) मस्तक पर (**आ अक्रमीम्**) सवार होऊंगा, अनन्तर (**मे**) मेरे (**अधः पदात्**) पैर के नीचे वर्तमान तुम लोग (**उदकात्**) जल से (**मण्डूकाः इव**) मेंढक के समान और (**उदकात्**) जल से (**मण्डूकाः इव**) डूबते हुए के समान (**उद् वदत**) बोलोगे ।

भावार्थः—हे शत्रुओ तुम्हारे सम्बन्धी योगक्षेम का तुम से हरण करके मैं उत्तम होऊँगा और तुम्हारे शिर पर सवार होऊँगा । अनन्तर मेरे पैर के नीचे होकर तुम उसी प्रकार बोलोगे जिस प्रकार जल में पड़े मेंढक बोलते हैं अथवा जल में डूबता हुआ मनुष्य बोलता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एक सौ छयासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

Scanned by CamScanner

सूक्त—१६७

ऋषिः— १—४ विश्वामित्रजमदग्नी ॥ देवता—१, २, ४ इन्द्रः । ३ लिङ्गोक्ताः ॥ छन्दः—१ आर्चीस्वराड्जगती । २, ४ विराड्जगती । ३ जगती ॥ स्वरः—निषादः ॥

तुभ्येमार्मिन्द्र परिं षिच्यते मधु त्वं सुतस्यं कलशंस्य राजसि ।
त्वं रयिं पुंरुवीरांमु नस्कृधि त्वं तपंः परितप्यांजयः स्वः ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र तुभ्यम) इस इन्द्र=सूर्य के लिए (इदम्) यह सोम आदि मधुर रस और मधुर (सिच्यते) यज्ञाग्नि में सींचा जाता है । (त्वम्)) यह ही (सुतस्य) उत्पन्न (कलशस्य) लोक का (राजसि) प्रकाश करता है, (त्वम्) यह (नः) हमारे लिए (पुरुवीराम्) बहुत सन्ततियुक्त (रयिम्) धन को (कृधि) करता है, देता है, (त्वम) यह (तपः) ताप से (परितप्य) तपाकर (स्वः) अन्तरिक्ष को (अजयः) जीतता है=प्रकाशमान करता है ।

भावार्थः—इस सूर्य के लिए यह सोम आदि मधुर रस और मधु यज्ञाग्नि में सिक्त किया जाता है । यह ही उत्पन्न जगत् को प्रकाशमान करता है । यह हमारे लिए बहुत सन्तानों से युक्त धन को देता है । यह ताप से तपाकर अन्तरिक्ष को प्रकाशमान करता है ॥१॥

स्वर्जितं महिं मन्दानमन्धंसो हवामहे परिं शक्रं सुताँ उपं ।
इमं नों यज्ञमिह बोध्या गंहि स्पृधो जयंन्तं मघवांनमीमहे ॥२॥

पदार्थः—(स्वर्जितम्) स्वर्ग के जेता, (महि) महान् (अन्धसः) सोम के (मन्दानम्) तृप्त करने वाले (शक्रम्) शक्तिशाली (इन्द्रम्) सूर्य को (सुतान्) तैयार किये गए (सोमान्) सोम आदि रसों के (उप) प्रति (परिहवामहे) हम यज्ञ द्वारा संपर्क में लाते हैं यह सूर्य (इमम्) इस (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इह) इस प्रदेश में (आगहि) प्राप्त होता है और (बोधिः) जाना जाता है, (स्पृधः) स्पर्धाकारी हिंसक जन्तुओं को (जयन्तम्) दबाने वाले (मघवानम्) धनों के स्वामी सूर्य को (ईमहे) ज्ञान में प्राप्त कर धारण करते हैं ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष को प्रकाशमान कर समस्त प्रकाशक ग्रहों को जीतने वाले, सोमलता और गिलोय आदि को रस देकर तृप्त करने वाले सूर्य को तैयार किये गए सोम आदि रसों के प्रति हम यज्ञ द्वारा सम्पर्क में

Scanned by CamScanner

लाते हैं । वह हमारे यज्ञ को इस पृथिवी पर प्राप्त होता है और लोगों के द्वारा अपने गुणों और कर्मों से जाना जाता है । हिंसक जन्तुओं को दबाने वाले और धनों के स्वामी सूर्य को हम अपने ज्ञान में प्राप्त करते और धारण करते हैं ॥२॥

सोम॑स्य॒ राज्ञो॒ वरु॑णस्य॒ धर्म॑णि॒ बृह॒स्पते॒रनु॑मत्या उ॒ शर्म॑णि ।

तवा॒हम॒द्य म॑घव॒न्नुप॑स्तुतौ॒ धात॒र्विधा॑तः क॒लशाँ॑ अभक्षयम् ॥३॥

पदार्थ—(**राज्ञः**) राजमान (**सोमस्य**) सोमतत्त्व=आर्द्रता एवम् स्निग्धता (**वरुणस्य**) वायु के (**धर्मणि**) धर्म=धारक स्वभाव में (**बृहस्पतेः**) अग्नि के (**अनुमत्याः**) अनुकूलता (**शर्मणि**) स्थान=यज्ञगृह में वर्तमान (**अहम्**) मैं यजमान (**अद्य**) आज (**मघवन् तव**) धनों के स्वामी इस सूर्य के (**उपस्तुतौ**) प्रशंसा-वचन में प्रवृत्त होता हूँ, (**धातः**) सबका धारक सम्वत्सर (**विधातः**) सबका कर्ता सविता (**कलशान्**) विविध रसों से युक्त पदार्थों का (**अभक्षयम्**) भक्षण=भोग कराते हैं ।

भावार्थ—राजमान सोमतत्त्व, एवम् वायु के धर्म में अग्नि द्वारा होने वाले यज्ञ के गृह में वर्तमान मैं सूर्य के प्रशंसा वचन में प्रवृत्त होता हूं । सब का धारक सम्वत्सर और सविता=रसदायक प्रातःकालिक सूर्य मुझे विविध रसों वाले पदार्थों का भोग कराते हैं ॥३॥

प्रसू॑तो भ॒क्षम॑करं च॒राव॑पि॒ स्तोमं॑ चे॒मं प्र॑थ॒मः सू॒रिरुन्मृ॑जे ।

सु॒ते सा॒तेन॒ यद्यागमं॑ वां॒ प्रति॒ विश्वा॑मित्रजमदग्नी॒ दमे॑ ॥४॥

पदार्थः—(**विश्वामित्र जमदग्नी**) हे सब के मित्र और तपस्वीजन ! (**यदि**) जब भी मैं (**वाम् प्रति**) आप की तरफ (**आगमम्**) आऊँ तो (**सातेन**) सेवनीय ज्ञान से (**सुते**) परिष्कृत आत्मा में (**प्रथमः**) प्रथम (**सूरिः**) विद्वान् (**सन्**) हुआ (**इमम्**) इस (**स्तोमम्**) वेदस्तोम का (**उन्मृजे**) परिशोधन करूँ (**चरौ**) वरणीय मार्ग में (**प्रसूतः**) प्रेरित किया गया (**भक्षम्**) भोग का (**अकरम्**) भोक्ता बनूं ।

भावार्थः—हे सबके मित्र विद्वन् और तपस्वी पुरुष ! यदि जब भी मैं आप के प्रति आऊँ तो सेवनीय ज्ञान से परिष्कृत आत्मा में सबसे उत्तम विद्वान् होकर इस वेद ज्ञान का परिशीलन करूँ । तथा आचरणीय मार्ग में प्रेरित किया गया मैं भोग का भाग करूँ वा भोग का भोक्ता बनूं ॥४॥

यह दशम मण्डल में एक सौ सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ।

Scanned by CamScanner

सूक्त—१६८

ऋषिः–१–४ अनिलो वातायनः ॥ देवता–वायुः ॥ छन्दः—१, ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

वातस्य नु महिमानं रथस्य रुजन्नेति स्तनयन्नस्य घोषः ।
दिविस्पृग्यात्यरुणानि कृण्वन्नुतो एति पृथिव्या रेणुमस्यन् ॥१॥

पदार्थः—(**रथस्य**) रंहणशील अथवा रमणीय (**वातस्य**) वायु के (**महिमानम्**) महत्व को (**नु**) शीघ्र मैं वायुविद् बताता हूं, (**अस्य**) इसका (**घोषः**) शब्द (**स्तनयन्**) घरघराता हुआ (**रुजन्**) स्थावर जंगम को तोड़ता हुआ (**एति**) जाता है। (**दिविस्पृग्**) आकाश को छूता हुआ (**अरुणानि**) दिगन्तरों को लाल (**कृण्वन्**) करता हुआ (**याति**) बढ़ता और व्याप्त होता है, (**उता**) और (**पृथिव्याः**) पृथिवी के (**रेणुम्**) पास वा धूलि को (**अस्यन्**) फेंकता हुआ (**एति**) चलता है ।

भावार्थः—रंहणशील इस वायु के महत्व को मैं वायुविद् शीघ्र बताता हूं। इसका शब्द घरघराता हुआ जड़-जंगम को तोड़ता हुआ जाता है। आकाश को छूता हुआ, दिशाओं को लाल करता हुआ व्याप्त होता है। तथा पृथिवी की धूलि को बिखेरता और उड़ाता हुआ चलता है ॥१॥

सम्प्रेरते अनु वातस्य विष्ठा ऐनं गच्छन्ति समनं न योषाः ।
ताभिः सयुक्सरथं देव ईयतेऽस्य विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥२॥

पदार्थः—(**विष्ठाः**) विशेषरूप से स्थित वृक्ष आदि (**वातस्य**) वायु के (**अनु**) अनुरूप ही (**सं प्र ईरते**) जाते हैं (**समनम्**) संग्राम के (**न**) समान (**योषाः**) बिजलियां (**एनम्**) इसको (**आगच्छन्ति**) प्राप्त होती हैं (**ताभिः**) उन विद्युतों से (**सयुक्**) संयुक्त हुआ (**अस्य**) इस (**विश्वस्य**) समस्त (**भुवनस्य**) भुवन का (**राजा**) राजा (**देवः**) देवनशील वायु (**सरथम्**) रंहण के साथ (**ईयते**) जाता है।

भावार्थः—विशेष रूप से स्थित वृक्ष आदि पदार्थ वायु की दिशा के अनुकूल ही झूमते हैं। संग्राम में जाने वाले अश्वों के समान योषा=बिजलियां इसको प्राप्त होती हैं। इन बिजलियों से संयुक्त हुआ यह इस समस्त भुवनों का राजा देवनशील वायु रंहण=वेग के साथ बहता है ॥२॥

Scanned by CamScanner

अन्तरिक्षे पथिभिरीयमानो न नि विंशते कतमच्चनाहः ।
अपां सखा प्रथमजा ऋतावा क्वं स्विज्जातः कुत आ बंभूव ॥३॥

पदार्थः—(**अन्तरिक्षे**) अन्तरिक्ष में विद्यमान (**पथिभिः**) मार्गों से (**ईयमानः**) चलता हुआ यह वायु (**कतमत् चन**) किसी भी (**अहः**) दिन (**न**) नहीं (**निविशते**) रुकता है, सदा ही बहता है, (**अपाम्**) उदकों का (**सखा**) सखा (**प्रथमजा**) प्रथमोत्पन्न (**ऋतावा**) सत्यभूत यह वायु (**क्व स्वित् जातः**) कहां से पैदा हुआ और (**कुतः**) कहां से अथवा किस प्रकार (**आ बभूव**) इस जगत् को व्याप्त कर रहा है ।

भावार्थः—अन्तरिक्ष में विद्यमान मार्गों से चलता हुआ यह वायु किसी भी दिन बैठता नहीं । सदा ही बहता रहता है । जलों का सखा प्रथमोत्पन्न सत्यभूत यह वायु कहां से पैदा हुआ और कहां से तथा किस प्रकार इस जगत् को व्याप्त कर रहा है ॥३॥

आत्मा देवानां भुवनस्य गर्भो यथावशं चरति देव एषः ।
घोषा इदस्य शृण्विरे न रूपं तस्मै वाताय हविषा विधेम ॥४॥

पदार्थः—(**देवानाम्**) समस्त इन्द्र आदि देवों का आत्मा, (**भुवनस्य**) लोक का (**गर्भः**) धारक (**देवः**) देवनशील (**एषः**) यह वायु (**यथावशम्**) यथेच्छ=विना रोक टोक (**चरति**) विचरता है, (**अस्य**) इसके (**घोषाः**) शब्द (**इत्**) ही (**शृण्विरे**) सुनाई पड़ते हैं (**रूपम्**) स्वरूप (**न**) नहीं दिखाई पड़ता है क्योंकि रूपरहित है, (**तस्मै**) उस (**वाताय**) वायु के लिए (**हविषा**) हवि आदि से हम (**विधेम**) यज्ञ करें ।

भावार्थः—देवों का आत्मा लोक का धारक देवनशील यह वायु विना रोक-टोक बहता है । इसके शब्द सुनाई देते हैं, पर रूपरहित होने से स्वरूप नहीं देखा जाता है । इस वायु के लिए हम हवि आदि से यज्ञ करें ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १६९

ऋषिः—१—४ शबरः काक्षीवतः ॥ देवता —गावः ॥ छन्दः —१ विराट्-त्रिष्टुप् । २, ४ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

मयोभूर्वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम् ।
पीवस्वतीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥

पदार्थः—(**मयोभूः**) सुखद (**वातः**) वायु (**अभि वातु**) चारों तरफ से बहे, (**उस्राः**) गौयें (**ऊर्जस्वती**) रसयुक्त (**ओषधीः**) ओषधियों को (**आ रिशन्ताम्**) सब ओर चरें, तथा (**जीवधन्याः**) जीवों के लिए प्यारे (**पीवस्वती**) प्रवृद्ध जलों को (**पिबन्तु**) पीयें (**रुद्र**) हे परमेश्वर (**अवसाय**) खाने योग्य दुग्ध आदि पदार्थ के लिए (**पद्वते**) पैर वाले गौ आदि पशु के लिए (**मृड**) दया करें ।

भावार्थः—सब तरफ से सुखद हवायें बहें । गायें रसों से पूर्ण ओषधियों को चरें और बढ़े हुए जीवों के लिए प्रियकर जलों को पीयें । हे परमेश्वर खाने योग्य दुग्ध आदि पदार्थों को देने के लिए गौ आदि पशुओं के ऊपर दया करें ॥१॥

याः सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्ट्या नामानि वेद ।
या अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२॥

पदार्थः—(**याः**) जो गायें (**सरूपा**) समान रंग की हैं, जो (**विरूपाः**) विभिन्न वर्णों वाली हैं, जो (**एकरूपाः**) एक वर्ण की हैं, (**यासाम्**) जिनके (**नामानि**) नाम इडा, रन्ता और अदिति आदि को (**इष्टया**) इष्टि=याग आदि के कारण से जानकर (**अग्निः**) पुरोहित और आचार्य (**वेद**) जानता है (**याः**) जिन (**गाः**) गौओं को (**इह**) इस लोक में (**अंगिरसः**) तपस्वीजन (**तपसा**) तपसे (**चक्रुः**) पालन करते हैं (**पर्जन्यः**) यह मेध (**ताभ्यः**) उनके लिये (**महि**) महत् (**शर्म**) सुख (**देहि**) देवें ।

भावार्थः—जो गायें समान रंग की हैं, जो भिन्न-भिन्न रंग की हैं और जो एक ही रंग की हैं और जिन इडा, रन्ता, अदिति आदि नामों को आचार्य वा पुरोहित याग आदि के कारण जानते हैं, जिन गौओं को तपस्वीजन इस लोक में तप के साथ पालन करते हैं उन गौओं के लिए पर्जन्य=मेघ महत् सुख प्रदान करें ॥२॥

Scanned by CamScanner

या देवेषु तन्व१मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

पदार्थः—(**याः**) जो गौयें (**देवेषु**) यज्ञ देवों और विद्वानों के हेतु (**तन्वम्**) तनू से उत्पन्न होने वाले दुग्ध को (**ऐरयन्त**) देती हैं. (**यासाम्**) जिनके (**विश्वा**) सब (**रूपाणि**) रूपों और प्रकारों को (**सोमः**) यजमान (**वेद**) जानता है, (**इन्द्र**) यह सूर्य (**अस्मभ्यम्**) हमें (**पयसा**) दुग्ध से (**पिन्वमानाः**) बढ़ाने वाली (**प्रजावतीः**) बछड़े आदि से युक्त (**ताः**) उन गौओं को (**गोष्ठे**) गौशाला में (**रिरीहि**) प्राप्त करावे ।

भावार्थ—जो गौएं यज्ञ देवों और विद्वानों के हेतु दुग्ध देती हैं, जिनके समस्त प्रकारों को यजमान जानता है उन बछड़े आदि से युक्त और हमें दूध से बढ़ाने वाली गौओं को सूर्य हमारे गोष्ठ में प्राप्त करावे ॥३॥

प्रजापतिर्मह्यमेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः ।
शिवाः सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥४॥

पदार्थः - (**प्रजापतिः**) प्रजा का पालक परमेश्वर (**मह्यम्**) मुझे (**एताः**) इन गौओं को (**रराणः**) प्रदान करता हुआ (**विश्वैर्देवैः**) समस्त दिव्यशक्तियों और (**पितृभिः**) पालक किरणों आदि से (**संविदानः**) सम्बन्ध करता हुआ (**शिवाः**) कल्याणकारिणी (**सतीः**) होने वाली गौओं को (**नः**) हमारे (**गोष्ठम्**) गोशाले में (**आ अकः**) प्राप्त कराता है, (**तासाम्**) उनकी (**प्रजया**) सन्तति के साथ (**वयम्**) हम (**सं सदेम**) सुखपूर्वक रहें ।

भावार्थः—प्रजा का पालक परमेश्वर मुझे इन गौओं को देता हुआ समस्त दिव्य शक्तियों और पालक ऋतु और किरणों आदि के साथ हमारा सम्बन्ध करता हुआ कल्याणकारिणी गौओं को हमारे गोशाले में प्राप्त कराता है। उन गौओं की सन्तति के साथ हम सुखपूर्वक रहें ॥४॥

यह दशम मण्डल में एक सौ उन्हत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१७०

ऋषिः—१—४ विभ्राट् सूर्यः ॥ देवता—सूर्यः ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २ जगती । ४ आस्तारपङ्क्तिः ॥ स्वरः—१—३ निषादः । ४ पञ्चमः ॥

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम् ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१॥

पदार्थः—(**विभ्राड्**) विभ्राजमान सूर्य (**बृहत्**) प्रौढ (**सुभृतम्**) सुपुष्ट (**सोम्यम्**) सोमयुक्त (**मधु**) मधुर रस और जल को (**पिबतु**) पीता है, (**यज्ञपतौ**) यजमान में (**अविह्रुतम्**) अकुटिल (**आयुः**) आयु को (**दधत्**) धारण करता हुआ । (**वातजूतः**) वायु से प्रेरित (**यः**) जो सूर्य (**त्मना**) स्वयम् (**प्रजाः**) प्रजा की (**अभिरक्षति**) रक्षा करता है (**पुपोष**) पुष्ट करता है और (**पुरुधा**) बहुधा (**विराजति**) दीप्त होता है ।

भावार्थः—विशेष रूप से दीप्त सूर्य बढ़े हुए सुपुष्ट सोमयुक्त मधुर रस और जल को पीता है । यजमान को आयु प्रदान करता है । वायु से प्रेरित यह सूर्य स्वयम् प्रजा की रक्षा करता है, पुष्ट करता है और बहुत प्रकार से दीप्त होता है ॥१॥

विभ्राड बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२॥

पदार्थः—(**विभ्राड्**) प्रकाशमान (**बृहत्**) प्रौढ (**सुभृतम्**) सुपुष्ट (**वाजसातमम्**) अन्न आदि का देने वाली (**धर्मन्**) वायु से धारित (**दिवः**) द्युलोक के (**धरुणे**) धारक सूर्य मण्डल में (**अर्पितम्**) निक्षिप्त (**सत्यम्**) सत्यभूत (**अमित्रहा**) अभिभूत रोगों की नाशक, (**वृत्रहा**) मेघ की नाशक (**दस्युहन्तमम्**) दुष्काल पैदा करने वालों की घातक (**असुरहा**) कृमियों की नाशक (**सपत्नहा**) विघातक रोग-जन्तुओं का नाश करने वाली (**ज्योतिः**) ज्योति=सौर तेज (**जज्ञे**) प्रादुर्भूत होता है ।

भावार्थः—प्रकाशमान, प्रौढ, सुपुष्ट, अन्न आदि को देने वाली, वायु से धारित द्युलोक के धारक सूर्य मण्डल में निक्षिप्त सत्यभूत अमित्रभूत रोगों का नाश करने वाली, मेघ की विदारक, दुष्काल पैदा करने वाले

Scanned by CamScanner

मेघों की विघातक, कृमियों की नाशक और विघातक जन्तुओं का विघात करने वाली सौर ज्योति प्रादुर्भूत होती है ॥२॥

इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३॥

पदार्थः—(**इदम्**) यह सौर तेज (**श्रेष्ठम्**) श्रेष्ठ (**ज्योतिषाम्**) अन्य नक्षत्र आदि ज्योतियों की (**उत्तमम्**) उत्तम ज्योति (**विश्वजित्**) सबको जीतने वाली (**धनजित्**) धन को जीतने वाली (**बृहत्**) महती ज्योति (**उच्यते**) कही जाती है, (**विश्वभ्राट्**) विश्व का प्रकाशक (**भ्राजः**) भ्राजमान (**महि**) महान् (**सूर्यः**) सूर्य (**दृशे**) लोगों के दर्शन के लिए (**उरु**) महान् (**सहः**) अन्धकार नाशक (**अच्युतम्**) अक्षीण (**ओजः**) तेजोबल को (**पप्रथे**) विस्तारित करता है ।

भावार्थः—यह सौर तेज श्रेष्ठ, अन्य नक्षत्र आदि ज्योतियों की भी ज्योति, उत्तम, विश्वजित् धनजित् बृहत् ज्योति कही जाती है। विश्व-प्रकाशक भ्राजमान महान् सूर्य लोगों के देखने के लिए महान् अन्धकार-नाशक अक्षीण तेजो—बल का विस्तार करता है ॥३॥

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४॥

पदार्थ—यह सूर्य (**ज्योतिषा**) तेज से (**स्वः**) सब जगत् को (**विभ्राजन्**) प्रकाशमान करता हुआ (**दिवः**) द्युलोक के (**रोचनम्**) प्रकाश करने वाला हुआ (**अगच्छः**) घूमता है, (**येन**) जिस (**विश्वकर्मणा**) समस्त व्यापारियों वाले (**विश्वदेव्यावता**) समस्त देवों के हितकारी यज्ञ से युक्त सौर तेज से (**इमा**) ये (**विश्वा**) समस्त (**भुवना**) भुवन (**आभृता**) धारित और पोषित होते हैं ।

भावार्थः—यह सूर्य तेज से सब जगत् को प्रकाशमान करता, द्युलोक का प्रकाशक होकर अपनी धुरी पर घूमता है। जिस सौर तेज से ही समस्त व्यवहार यज्ञ आदि देवनिमित्तिक कार्य चलते हैं और ये समस्त भुवन धारित और पोषित हैं ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१७१

ऋषिः—१—४ इटो भार्गवः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१ निचृद्-गायत्री । २, ४ विराड्गायत्री । ३ पादनिचृद्गायत्री ॥
स्वरः—षड्जः ॥

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः ।
अशृणोः सोमिनो हवम् ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्र) हे राजन् ! (त्वम्) तू (सुतवतः) उपासना वाले अथवा पुत्र आदि वाले (इटः) ज्ञानी के (त्यम्) उस (रथम्) रमण के साधन देह की (प्रावः) रक्षा करता है और (सोमिनः) याज्ञिक पुरुष के (हवम्) रक्षा की पुकार को (अशृणोः) सुनता है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू पुत्रयुक्त गृहस्थ ज्ञानी के उस रमण साधन-भूत शरीर की रक्षा करता है और यज्ञ वाले मनुष्य की रक्षा करता है और यज्ञ करने वाले मनुष्य की रक्षा की पुकार को सुनता है ॥१॥

त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः ।
अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥२॥

पदार्थः—हे इन्द्र=राजन् ! (त्वम्) तू (मखस्य) यज्ञके (दोधतः) कंपाने वाले दुष्ट पुरुष के (शिरः) शिर को (त्वचः) त्वचामय शरीर से (अवभर) हरण करता है और (सोमिनः) याज्ञिक के (गृहम्) घर को (अगच्छः) आता है ।

भावार्थः—हे राजन् ! तू यज्ञ के विरोधी के शिर को शरीर से पृथक् करता है और यज्ञकारी के गृह पर आता है ॥२॥

त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् ।
मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् ! (त्वम्) तू (आस्त्रबुध्नाय) सर्वत्र ज्ञान बिखेरने वाले विद्वान् (मनस्यवे) मनस्वी के लिए (त्यम्) उस (वेन्यम्) कामनाओं के स्पर्धी (मर्त्यम्) मनुष्य को (मुहुः श्रथ्नाः) बार-बार दूर भगा ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—हे राजन् ! तू सर्वत्र ज्ञान विखेरने वाले मनस्वी के लिए कामनाओं की स्पर्धा वाले मनुष्य को सदा दूर भगा ॥३॥

त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि ।
देवानां चित्तिरो वशम् ॥४॥

पदार्थः—हे इन्द्र=परमेश्वर ! (**त्वम्**) तू (**देवानाम्**) देवों=विद्वानों से (**चित्**) भी (**तिरः**) तिरोहित=छिपे हुए (**वशम्**) कान्त (**त्यम्**) इस (**सूर्यम्**) सूर्य को सायंकाल में (**पश्चा**) पश्चिम में (**सन्तम्**) होते हुए दूसरे दिन (**पुरः**) पूर्व में अथवा आगे (**कृधि**) करता है ।

भावार्थः—हे प्रभो तू विद्वानों की जानकारी से भी तिरोहित कान्तिमान् सूर्य को सायंकाल में पश्चिम अथवा पश्चात् होते हुए दूसरे दिन प्रातःकाल में पूर्ववर्त्ती अथवा पुरस्तात् करते हो ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १७२

ऋषिः—१—४ संवर्तः ॥ देवता—उषा ॥ छन्दः—पिपीलिकामध्या-गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१॥

पदार्थः—उषा (**वनसा**) वननीय तेज के (**सह**) साथ (**आ याहि**) आती है (**यत्**) जो (**ऊधभिः**) ओस से युक्त हैं वे (**गावः**) किरणें (**वर्तनिम्**) उषा के रथचक्र को (**सचन्त**) सेवित करती हैं ।

भावार्थः—उषा वननीय तेज के साथ आती है । जो ओस के बिन्दुओं से युक्त है वे किरणें उषा के रथचक्र=प्रकाश चक्र में युक्त होती हैं ॥१॥

आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—यह उषा (वस्व्या) प्रशस्त (धिया) कर्म के साथ (आयाहि) आती है, यह उषःकाल (सुदानुभिः) उत्तम दाता मनुष्यों के द्वारा (मंहिष्ठः) धनों का अत्यन्त दाता हैं और (जारयन्मखः) गृहस्थ यज्ञ को पूर्णरीति से सम्पन्न करने वाला है।

भावार्थः—यह उषा प्रशस्त कर्म के साथ प्राप्त होती है। उषःकाल दानदाताओं द्वारा धनों का अत्यन्त दाता है और गृहस्थ यज्ञ को पूर्ण-रीति से सम्पन्न करने वाला है ॥२॥

पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३॥

पदार्थः—(पितुभृतः) अन्न के धारकों के (न) समान (सुदानवः) उत्तम दान वाले हम (तन्तुम्) विस्तीर्ण उषा की (प्रति दध्मः) प्रति उपायन रूप में धारण करते हैं और (यजामसि) यज्ञ करते हैं।

भावार्थः—अन्न के धारकों की भांति उत्तम दान वाले हम विस्तीर्ण उषा को प्रतिभेंट के रूप में धारण करते हैं और यज्ञ करते हैं ॥३॥

उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४॥

पदार्थः—(उषाः) यह उषा (स्वसुः) भगिनीभूत रात्रि के (तमः) अन्धकार को (सं वर्तयति) अपने तेज से दूर करती है, अपनी (सुजातता) सुजातत्व को (वर्तनिम्) तेजःचक्र के प्रति प्राप्त कराती है।

भावार्थः—यह उषा अपनी भगिनीभूत रात्रि के अन्धकार को दूर करती हैं और अपनी सुजाता को तेजःपुंज को प्राप्त कराती है ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१७३

ऋषिः—१—६ ध्रुवः ॥ देवता—राज्ञःस्तुतिः छन्दः—१, ३—५ अनुष्टुप्। २ भुरिगनुष्टुप्। ६ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे राजन् ! (त्वा) तुझे (आ हार्षम्) राजा के रूप में इस राष्ट्र में लाता हूँ तू (अन्तः) हमारे मध्य में (एधि) स्वामी बन (ध्रुवः) दृढ़ होकर (अविचाचलिः) विना विचलित हुए (तिष्ठ) स्थित हो (सर्वाः) सारी (विशः) प्रजायें (त्वा) तुझे (वाञ्छन्तु) चाहें (त्वद्) तुम्हारा (राष्ट्रम्) राष्ट्र (मा) नहीं (अधि भ्रशत्) नष्ट हो ।

भावार्थः—हे राजन् ! तुझे मैं पुरोहित इस राष्ट्र के राजा के रूप में लाता हूं । तू हमारे मध्य में स्वामी हो । सारी प्रजा तुम्हें चाहें और राष्ट्र तुम्हारे हाथ से कभी न निकल जावे ॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलिः ।
इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् ! (इह) इस राज्य में (एधि) स्वामी रूप में वर्तमान हो, (मा) मत (अपच्योष्ठाः) अपच्युत हो, (पर्वतः इव) पहाड़ के समान (अविचाचलिः) दृढ़ और स्थिर हो, (इन्द्रः इव) सूर्य के समान (इह) इस राष्ट्र में (ध्रुवः) ध्रुव (तिष्ठ) रह (राष्ट्रम् उ) राष्ट्र को (धारय) धारण कर ।

भावार्थः—हे राजन् ! इस राज्य में स्वामी रूप में तू वर्तमान हो । कभी भी अपच्युत न हो । पर्वत के समान दृढ़ और स्थिर रह । राष्ट्र में सूर्य के समान ध्रुव रह तथा राष्ट्र को धारण कर ॥२॥

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्रः) तेजस्वी राजा ही (इमम्) इस (ध्रुवम्) स्थिर राज्य को (ध्रुवेण) ध्रुव (हविषा) साधन से (अदीधरत्) धारण करता है, (तस्मै) उसके लिए (सोमः) शान्तस्वरूप विद्वान् (अधि ब्रवत्) उपदेश करता है (तस्मै उ) उस ही के लिए वेदज्ञान का स्वामी (अधि ब्रवत्) उपदेश करता है ।

भावार्थः—तेजस्वी राजा ही इस ध्रुव राष्ट्र को स्थिर साधन से धारण करता है । उसके लिए शान्तस्वरूप विद्वान् और वेद ज्ञान का स्वामी उपदेश करते हैं ॥३॥

Scanned by CamScanner

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे ।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४॥

पदार्थः—(द्यौः) द्युलोक (ध्रुवा) दृढ़ है, (पृथिवी) भूमि (ध्रुवा) ध्रुव=स्थिर है, (इमे पर्वताः) ये पहाड़ भी (ध्रुवासः) दृढ़ स्थिर हैं, (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त (जगत्) जगत् (ध्रुवम्) स्थिर है (अयम्) यह (विशाम्) प्रजाओं का (राजा) राजा भी (ध्रुवः) स्थिर हो ।

भावार्थः—द्युलोक स्थिर है । भूमि भी दृढ़ है । ये पहाड़ भी स्थिर हैं । यह समस्त जगत् भी दृढ़ है । प्रजाओं का यह राजा भी दृढ़ होवे ॥४॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः ।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५॥

पदार्थः—हे राजन् ! (राजा) राजमान (वरुणः) वायु (ध्रुवम्) स्थिर रूप धारण करे (देवः) देवनशील वेद वाणी का स्वामी विद्वान् अथवा मेघ भी राष्ट्र को दृढ़ धारण करे (इन्द्रः च) इन्द्र=सूर्य (अग्निः च) अग्नि भी (ते) तेरे (राष्ट्रम्) राष्ट्र को (ध्रुवम्) जिस प्रकार वह दृढ़ रहे ऐसा (ध्रुवम्) स्थिर (धारयताम्) धारण करे ।

भावार्थः—हे राजन् ! राजमान वायु तेरे राष्ट्र को स्थिर बनावे, वेद का विद्वान् अथवा मेघ भी इसे दृढ़ बनावे । सूर्य और अग्नि भी इसे दृढ़ता के साथ स्थिर बनावें ॥५॥

ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि ।
अथो त इन्द्रः केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

पदार्थः (ध्रुवेण) स्थिर (हविषा) साधन से (ध्रुवम्) स्थिर (सोमम्) राजा को हम विचारपूर्वक प्राप्त करते हैं (इन्द्रः) परमेश्वर ने (ते) तेरी (विश्वः) प्रजाओं को (केवली) केवल तेरी ही प्रजाएं और (ते) तेरे लिए (बलिहृतः) कर देने वाली (करत्) किया है ।

भावार्थः—स्थिर साधन से स्थिर राजा को हम विचारपूर्वक प्राप्त करते हैं । परमेश्वर ने, हे राजन् ! तेरी प्रजाओं को तेरी ही प्रजा और तेरे लिए ही कर देने वाली किया है ॥६॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १७४

ऋषिः—१—५ अभीवर्तः ॥ देवता—राज्ञः स्तुतिः ॥ छन्दः—१, ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३ विराडनुष्टुप् । ४ पादनिचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

अभीवर्तेन हविषा येनेन्द्रो अभिवावृते ।
तेनास्मान्ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्तय ॥१॥

पदार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे ज्ञान धन और ब्रह्माण्ड के पालक प्रभो ! (येन) जिस लक्ष्य को उद्देश्य में रखकर जाने योग्य (हविषा) साधन से (इन्द्रः) राजा (अभि ववृते) लक्ष्य की ओर जाता है (तेन) उससे (अस्मान्) हमें (राष्ट्राय) उत्तम राष्ट्र प्राप्त करने के लिए (अभि वर्तय) आगे बढ़ा ।

भावार्थः—हे ज्ञान और ब्रह्माण्ड के स्वामी प्रभो ! जिस उद्देश्यपूरक साधन से महान् राजा अपने लक्ष्य की ओर जाता है उससे हमें उत्तम राष्ट्र प्राप्त करने के लिए आगे बढ़ा ॥१॥

अभिवृत्य सपत्नानभि या नो अरातयः ।
अभि पृतन्यन्तं तिष्ठाभि यो न इरस्यति ॥२॥

पदार्थः—हे सेनापते ! (सपत्नान्) शत्रुओं को (अभिवृत्य) चारों तरफ से घेरकर (याः) जो (नः) हमारे (अरातयः) अदानशील लोग हैं उन्हें भी (अभितिष्ठ) दबा दे, (च) और (यः) जो (नः) हमारे लिए (इरस्यति) ईर्ष्या करता है (युतम्) उस (पृतन्यन्तम्) युत्सु को भी (अभितिष्ठ) दबा दे ।

भावार्थः—हे सेनापते ! शत्रुओं को चौतरफा घेरकर यह जो हमारे अदानशील लोग हैं इन्हें भी दबाओ । हमारे लिए जो ईर्ष्या की भावना रखता है उस युयुत्सु को भी दबा दे ॥२॥

अभि त्वा देवः सविताभि सोमो अवीवृतत् ।
अभि त्वा विश्वा भूतान्यभीवर्तो यथाससि ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् ! (त्वा) तुझे (देवः) द्योतनशील (सविता) सूर्य (अभि अवीवृतत्) उत्साह दे, (सोमः) सोम=वायु उत्साह दे, (विश्वा) समस्त

Scanned by CamScanner

(**भूतानि**) पृथिवी आदि पदार्थ (**त्वा**) तुझे (**अभि**) उत्साहित करें (**यथा**) जिससे तू (**अभीवतः**) सर्वत्र विद्यमान (**असति**) होवे ।

भावार्थः—हे राजन् ! तुझे द्योतनशील सूर्य और वायु उत्साह दें । समस्त भूत जात तुझे उत्साहित करें जिससे तू सर्वत्र विद्यमान हुआ राष्ट्र के कार्य को देखे ॥३॥

येनेन्द्रो॑ ह॒विषा॑ कृ॒त्व्यभ॑वद् द्यु॒म्न्यु॑त्त॒मः ।
इ॒दं तद॑क्रि देवा असप॒त्नः किला॑भुवम् ॥४॥

पदार्थः—(**येन**) जिस (**हविषा**) पुरोडाश आदि हवि से (**इन्द्रः**) सूर्य (**कृत्वी**) वृत्रवध में कृतकार्य होता है (**द्युम्नो**) यशस्वी अथवा अन्नवाला और (**उत्तमः**) उत्कृष्ट होता है (**इदम्**) यह (**तत्**) वह सब (**देवाः**) हे विद्वानो ! (**अक्रि**) मैंने कर दिया है अतः मैं (**असपत्नः**) अशत्रु (किल) निश्चय से (**अभवम्**) होऊँ ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस पुरोडाश आदि से युक्त हवि के प्रदान से इन्द्र=सूर्य वृत्रवध में कृतकार्य होता है और यशस्वी एवम् उत्कृष्ट होता है यह सब मैंने कर दिया है । अतः मैं अशत्रु होऊँ ॥४॥

अ॒स॒प॒त्नः स॑पत्न॒हाभिरा॑ष्ट्रो विषास॒हिः ।
यथा॒हमे॒षां भू॒तानां॑ वि॒राजा॑नि॒ जन॑स्य च ॥५॥

पदार्थः—मैं राजा (**सपत्नहा**) शत्रुओं का हन्ता अतः (**असपत्नः**) शत्रु-रहित होऊँ, (**अभिराष्ट्रः**) प्राप्तराष्ट्र होकर (**विषासहिः**) शत्रुओं का अभि-भविता होऊँ, (**यथा**) जिससे (**अहम्**) मैं (**एषाम्**) इन (**भूतानाम्**) प्राणियों (**च**) और (**जनस्य**) अपने सेवक, तथा अमात्य आदि का (**विराजानि**) स्वामी होऊँ ।

भावार्थः—मैं राजा शत्रुओं का हन्ता हूं अतः शत्रुरहित होऊँ । राष्ट्र को प्राप्त करके शत्रुओं को दबाने वाला होऊँ । जिससे मैं इन प्राणियों और अपने सेवक तथा अमात्य आदि का स्वामी बनूं ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१७५

ऋषिः—१—४ ऊर्ध्वग्रावार्बुदः॥ देवता—ग्रावाणः॥ छन्दः—१, २, ४ गायत्री। ३ विराड्गायत्री॥ स्वरः—षड्जः॥

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा।
धूर्षु युज्यध्वं सुनुत॥१॥

पदार्थः—हे (ग्रावाणः) विद्वानो! (सविता देवः) ऐश्वर्यवान् स्वामी परमेश्वर (वः) आप लोगों को (प्र सुवतु) उत्तम प्रेरणा दें, आप लोग (धूर्षु) उत्तम कार्य के पदों पर (युज्यध्वम्) युक्त होओ और (सुनुत) उत्तम कार्य का संपादन करो।

भावार्थः—हे विद्वानो! ऐश्वर्यवान् स्वामी परमेश्वर! आप लोगों को उत्तम प्रेरणा दे। आप भार के उच्च पदों पर लगो और उनके कार्यों का संपादन करो॥१॥

ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम्।
उस्राः कर्तन भेषजम्॥२॥

पदार्थः—हे (ग्रावाणः) विद्वानो! (दुच्छुनां) दुःखदायी अज्ञान, अविद्या और अभाव को (अप सेधत) दूर करो, (दुर्मतिम्) दुर्बुद्धि को (अपसेधत) दूर हटाओ, (उस्राः) किरणों के समान होकर (भेषजम्) रोग के दूर करने का उपाय (कर्तन) करो।

भावार्थः—हे विद्वानो! दुःखदायी अज्ञान, अविद्या और अभाव को तथा दुर्बुद्धि को दूर करो। किरणों के समान प्रकाशमान हुए रोग के निवारण का उपाय करो॥२॥

ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः।
वृष्णो दधतो वृष्ण्यम्॥३॥

पदार्थः—(वृष्णे) सुख की वृष्टि करने वाले नायक में (वृष्ण्यम्) बल को (दधतः) स्थापित करते हुए (ग्रावाणः) विद्वान् लोग (सजोषसः) परस्पर प्रेमभाव युक्त हुए (उपरेषु) समीपस्थ जनों में (आ महीयन्ते) विशेष आदर पाते हैं।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सुखवर्षक नायक में बल को धारण करते हुए विद्वान् लोग प्रीतिभाव से रहते हुए सभी जनों में महत्व और आदर को प्राप्त होते हैं ॥३॥

ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा ।
यजमानाय सुन्वते ॥४॥

पदार्थः—(**ग्रावाणः**) हे विद्वानो ! (**वः**) आप लोगों को (**सविता**) सबका उत्पादक (**देवः**) देव परमेश्वर (**धर्मणा नु**) धर्म के द्वारा (**सुवतु**) प्रेरणा देता है, (**यजमानाय**) यज्ञ करने वाले के लिए (**सुन्वते**) उत्तम मार्ग बताता है ।

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोगों को सबका उत्पादक परमेश्वर वेद धर्म के द्वारा प्रेरणा देता है और यज्ञकर्ता के लिए उत्तम मार्ग बताता है ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ।

सूक्त १७६

ऋषिः—१-४ सूनुरार्भवः ॥ देवता—१ ऋभवः । २—४ अग्निः ॥
छन्दः—१, ४ विराडनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् । २ निचृद्गायत्री ॥
स्वरः—१, ३, ४ गान्धारः । २ षड्जः ॥

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥१॥

पदार्थः—(**ऋभूणाम्**) सूर्य किरणों के (**सूनवः**) पुत्रभूत तेज (**बृहत्**) महान् (**वृजना**) संसार के व्यवहार को (**प्रनवन्त**) प्राप्त करते (**ये**) जो (**विश्वधायसः**) सभी रसों को पीने वाली सूर्य किरणें (**मातरम्**) माता (**धेनुम्**) धेनु के (**न**) समान (**क्षामा**) भूमि को (**अश्नन्**) व्याप्त करती है ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—सूर्य किरणों के पुत्रभूत तेज=ऋभु, विभ्वा और वाज (बृहत्) महान् व्यवहार को प्राप्त होते हैं। जो ऋभु=सूर्य किरणें सभी रसों का पान करती हुई उसी प्रकार भूमि को व्याप्त करती हैं जिस प्रकार माता गाय के दूध को उसका वत्स पीता है ॥१॥

प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् ।
हव्या नो वक्षदानुषक् ॥२॥

पदार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! (**देवम्**) द्योतन दान आदि गुणों से युक्त (**जातवेदसम्**) अग्नि को (**देव्या**) दीप्त (**धिया**) घी और क से (**प्र भरत**) पूरित करो, यह अग्नि (**नः**) ह ारे (**हव्या**) हवि को (**आनुषक्**) अनुक्रम से (**वहत्**) प्राप्त करता है ।

भावार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! द्योतन और दान आदि गुणों से युक्त अग्नि को दीप्त घी और कर्म के साथ हवि से पूरित करो। यह अग्नि हमारे हवि को अनुक्रम से सभी यज्ञदेवों को प्राप्त कराता है ॥२॥

अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥३॥

पदार्थ—(**अयम् उ**) यह ही (**स्यः**) वह अग्नि (**देवयु**) देवों को हवि प्राप्त कराने वाला और (**होता**) हवि का ग्रहण करने वाला है, (**यज्ञाय**) यज्ञ के लिए (**प्रणीयते**) लाया जाता है, (**रथः**) रंहणशील सूर्य के (**न**) समान (**घृणीवान्**) दीप्तिमान् (**योः**) हवि को प्राप्त कराने वाला (**अभीवृतः**) ऋत्विग् और यजमानों से घिरा हुआ अग्नि (**त्मना**) स्वयम् (**चेतति**) देवों को प्राप्त करता है ।

भावार्थः—यह ही अग्नि देवों को हवि प्राप्त कराने वाला और हवि का ग्रहण करने वाला है। यह यज्ञ के लिए सामने लाया जाता है। रंहण=वेग से युक्त सूर्य के समान दीप्तिमान, हवि का प्रापक ऋत्विग् और यजमान से घिरा हुआ यह स्वयम् देवों को प्राप्त कराता है ॥३॥

अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥४॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः – (**अयम्**) यह अग्नि (**अमृताद् इव**) देव सम्बन्धी अर्थात् आधिदैविक भय के सामान (**जन्मनः**) मानुष=आधिभौतिक और आध्यात्मिक भय से (**उरुष्यति**) रक्षा करता है, (**सहसः चित्**) बलवान् से भी (**सहीयान्**) बलवान् यह (**देवः**) देवनशील अग्नि भगवान् के द्वारा (**जीवातवे**) जीवन के लिए (**कृतः**) बनाया गया है।

भावार्थः -- यह अग्नि आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक भय से रक्षा करता है। बलवान् से भी बलवत्तर देवनशील यह अग्नि भगवान् के द्वारा जीवन के लिए बनाया गया है ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त–१७७

ऋषिः—१ - ३ पतंगः प्राजापत्यः ॥ **देवता** – मायाभेदः ॥ **छन्दः** – १ जगती । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ **स्वरः**—१ निषादः । २, ३ धैवतः ॥

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ।
समुद्रे अन्तः कवयो वि चक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥१॥

पदार्थः—(**असुरस्य**) प्राणों में रमण करने वाले अर्थात् प्राणों के भी प्राण परमेश्वर की (**मायया**) बुद्धि की चातुरी से (**अक्तम्**) शरीर के साथ व्यक्त (**पतंगम्**) जीवन को (**विपश्चितः**) ज्ञानीजन (**हृदा मनसा**) हृदयस्थ मन से (**पश्यन्ति**) देखते हैं (**कवयः**) क्रान्तदर्शी लोग (**समुद्रे**) सबके उत्पादक परमेश्वर के (**अन्तः**) अन्दर स्थित मुक्त जीव को (**वि चक्षते**) देखते हैं (**वेधसः**) ज्ञानीजन (**मरीचीनाम्**) समस्त प्रकाशों के (**पदम्**) उत्कृष्ट पद परमेश्वर को (**इच्छन्ति**) चाहते हैं।

भावार्थः—प्राणों के प्राण परमेश्वर की बुद्धिचातुरी से शरीर के साथ व्यक्त को ज्ञानी जन हृदयस्थमन से देखते हैं क्रान्तदर्शीजन परमेश्वर में विद्यमान मुक्त जीवों को देखते हैं और ज्ञानी जन समस्त प्रकाशों के उत्कृष्ट पद परमेश्वर को चाहते हैं ॥१॥

Scanned by CamScanner

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः ।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥२॥

पदार्थः—(**पतंगः**) जीव (**मनसा**) मन से (**वाचम्**) वाणी को (**बिभर्ति**) धारण करता है, (**ताम्**) उस शब्दमयी वाणी को (**गन्धर्वः**) प्राण (**गर्भे**) शरीर के (**अन्तः**) मध्य वर्तमान होकर (**अवदत्**) प्रेरित करता है। (**द्योतमानाम्**) प्रकाशमान (**मनीषाम्**) मन की स्वामिनी (**स्वर्यम्**) आकाश को प्राप्त होने वाली (**ताम्**) उस शब्द सन्तान रूप वाणी को (**कवयः**) क्रान्त दर्शन किरणें अथवा वायु के कम्पन (**अमृतस्य**) जल के (**पदे**) स्थान में (**निपान्ति**) सुरक्षित करते हैं।

भावार्थः—जीव मन से वाणी को धारण करता है। उस शब्दमयी वाणी को शरीरस्थ प्राण प्रेरित करता है। प्रकाशमान और मन की स्वामिनी आकाश में फैलने वाली शब्दसन्तान वाली इस वाणी को क्रान्त-दर्शी वायु के कम्पन सुरक्षित करते हैं ॥२॥

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥३॥

पदार्थः—(**गोपाम्**) इन्द्रियों के स्वामी इस जीव को (**अनिपद्यमानम्**) न नष्ट होते हुए=अविनश्वर को (**आच**) इस मार्ग और (**परा च**) उस (**पथिभिः**) मार्गों=अर्थात् नीचे-ऊँचे योनियों में (**चरन्तम्**) विचरते (**अपश्यम्**) देखता हूँ (**सः**) वह (**सध्रीचीः**) उत्तम सीधी (**विषूचीः**) विपरीत शरीरों को (**वसानः**) धारण करता हुआ विचरता है, (**सः**) वह (**भुवनेषु**) लोकों के (**अन्तः**) मध्य अपने कर्म के अनुसार (**आवरीवर्ति**) वार-वार उत्पन्न होता है।

भावार्थः—अविनाशी जीव को विभिन्न ऊँची-नीची योनियों के मार्ग से विचरते हुए मैं ज्ञानी देखता हूं। वह सीध्रीची:=उत्तम और विषूची=अनुत्तम शरीरों को धारण करता हुआ विचरता है तथा वह अपने कर्मानुसार लोकों के मध्य वार-वार उत्पन्न होता है अर्थात् जन्म धारण करता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १७८

ऋषिः—१—३ अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः ॥ देवता—तार्क्ष्यः ॥ छन्दः १ विराट्त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥१॥

पदार्थः—(सुवाजिनम्) अत्यन्त बली पुष्ट (देवजूतम्) योग्य वैज्ञानिकों द्वारा संचालित अथवा प्रयुक्त (सहवानम्) बल वाले (रथानाम्) उत्तम रमणीय शब्दों के, अथवा वेगवान् शब्दों के (तरुतारम्) सूक्ष्म तार के माध्यम से स्वतन्त्र पहुँचाने वाले (अरिष्टनेमिम्) कभी भी नष्ट न होने वाले वा ढीला न होने वाले साधन से युक्त (पृतनाजम्) सेना में भी प्रयुक्त किये जाने वाले (आशुम्) शीघ्र-कारी एवम् शीघ्र पहुँचाने वाले (तार्क्ष्यम्) विद्युत् को (इह) इस तारवर्की के कार्य में (हुवे) प्रयुक्त करता हूँ ।

भावार्थः—मैं वैज्ञानिक अत्यन्तवली, योग्य वैज्ञानिकों द्वारा संचा-लित करने योग्य, बल वाले वेगयुक्त रमणीय शब्दों को (तरुतारम्) सूक्ष्म-तार द्वारा सवत्र पहुँचाने वाले कभी भी ढीला न पड़ने वाले साधन युक्त सेना में प्रयोज्य शीघ्रकारी इस बिजली को तारवर्की आदि कार्यों में प्रयुक्त करता हूं ॥१॥

इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतौ रिषाम ॥२॥

पदार्थः—हम (इन्द्रस्य इव रातिम्) उस परमैश्वर्यवान् वायु के तुल्य विद्युत् के दान=कार्य को (आजोहुवानाः) पुनः-पुनः प्राप्त करते हुए उस विद्युत् की शक्ति और क्रिया को (स्वस्तये) कल्याणार्थ (नावम् इव) नौका के समान (आ रुहेम) धारण करें वा काबू में करें, (उर्वीः) विस्तृत पृथिवी के (न) समान विस्तृत (बहुले) महती (पृथ्वी) प्रथित (वाम्) ये दोनों (गभीरे) द्यु और पृथिवी लोक में (एतौ) आने (परेतौ) जाने [के तार व्यवहार में] (मा मा) न (रिषाम) हम विघ्न को न प्राप्त करें ।

भावार्थः—हम ऐश्वर्यवान् वायु के समान विद्युत् के दान=कार्यों को पुनः पुनः-प्राप्त करते हुए उस विद्युत् की शक्ति और क्रिया को कल्याणार्थ

Scanned by CamScanner

नौका के समान धारण करें अथवा काबू में करें। विस्तृत पृथिवी के समान प्रथित महती द्यु और पृथिवी में आने और जाने के तार-व्यवहार में विघ्न को न प्राप्त करें ॥२॥

सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥३॥

पदार्थः— (**सद्यः चित्**) शीघ्र ही (**यः**) जो ताक्ष्य=विद्युत् (**शवसा**) बल युक्त (**ज्योतिषा**) तेज से (**सूर्यः इव**) सूर्य के समान (**अपः**) जलों को (**ततान**) विस्तारित करती है, (**शर्याम्**) सरकण्डे की बनी इषु (**युवतिम्**) लक्ष्य से मिश्रित होने वाली के समान (**अस्य**) इसकी (**रंहिः**) वेगगति (**सहस्रसाः**) सहस्रों (**शतसाः**) सैकड़ों कार्यों की साधक है (**न**) कोई भी नहीं (**वरन्ते स्म**) इसका निवारण कर सकते हैं।

भावार्थः—शीघ्र ही यह विद्युत् बल पूर्ण ज्योति से सूर्य के समान जलों का वर्षा रूप में विस्तारित करती है। सरकण्डे की बनी धनुषयुक्त लक्ष्य को प्राप्त इषु के समान इसकी वेग शक्ति को कोई रोक नहीं सकता है। यह सैकड़ों-सहस्रों कार्यों की साधक है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१७९

ऋषिः—१ शिविरौशीनरः। २ प्रतर्दनः काशिराजः। ३ वसुमना रौहिदश्वः॥
देवता—इन्द्रः॥ **छन्दः**—१ निचृदनुष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥
स्वरः—१ गान्धारः। २, ३ धैवतः॥

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥१॥

पदार्थः—हे ऋत्विग्जन ! (**उत्तिष्ठत**) उठो (**ऋत्वियम्**) ऋतु के अनुसार होने वाले (**इन्द्रस्य**) सूर्य के (**भागम्**) हविर्भाग का (**अव पश्यत**) निरीक्षण करो, (**यदि**) यदि वह भाग (**श्रातः**) पक गया है तो (**जुहोतन**) अग्नि में

आहुत करो (यदि) यदि (अश्रातः) अपक्व है तो पकने की सामग्री से (ममत्तन) तृप्त करो ।

भावार्थः— हे ऋत्विग् लोगो ! उठो और इन्द्र को ऋतु के अनुसार दिये जाने वाले यज्ञ भाग का निरीक्षण करो ! यदि वह परिपक्व है तो उसे अग्नि में आहुत करो । यदि अपरिपक्व है तो उसे पकने के साधनों और सामग्री से युक्त करो ॥१॥

श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम् ।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥२॥

पदार्थः—(इन्द्र) इन्द्र=सूर्य की (हविः) हवि (ओ आ उ सु) भली प्रकार (श्रातम्) परिपक्व है, (याहि) उसे प्राप्त होवे वा वह प्राप्त करे (सूरः) सूर्य (अध्वनः) गन्तव्य मार्ग का (विमध्यम) कुछ कम मध्य मार्ग (जगाम) पार कर चुका है । (सखायः) समान ख्याति वाले ऋत्विग् लोग (निधिभिः) सोम और सामग्री आदि के साथ (चरन्तम्) जाते हुए (व्राजपतिम्) गृह के पालक को (कुलपाः) वंश के रक्षक पुत्रों के (न) समान (त्वा) इस (इन्द्र) सूर्य को (परि आसते) भली प्रकार प्रकट करते हैं ।

भावार्थः—सूर्य के निमित्त दी जाने वाली हवि भली प्रकार परिपक्व है वह इसे प्राप्त करे । सूर्य अपने मार्ग का मध्य के लगभग भाग पार कर चुका है । अर्थात् मध्याह्न होने वाला है । ऋत्विक् लोग सोम और सामग्री आदि के साथ उसी प्रकार इसको प्रकट करते और संपर्क करते हैं जिस प्रकार कुल के रक्षक जाते हुए गृहपति के पास उपस्थित होते हैं ॥२॥

श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः ।
माध्यंन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥३॥

पदार्थः—यह दधि रूप हवि (ऊधनि) गौ के स्तन में दूध रूप में (श्रातम्) पकी है ऐसा (मन्ये) मानता हूँ, दूध पुनः (अग्नौ) आग पर (श्रातम्) पका है अतः (सुश्रातम्) भली प्रकार पका है ऐसा (मन्ये) मानता हूं, इस लिए (तत्) वह हवि (ऋतम्) सत्यभूत और (नवीयः) ताजी है (वज्रिन्) वज्री, (पुरुकृत्) विविध कर्मों का कर्ता (इन्द्रः) सूर्य (जुषाणः) प्राप्त करता हुआ (माध्यंदिनस्य) मध्याह्न (सवनस्य) सवन के (दध्नः) दधि का (पिब) पान करें ।

Scanned by CamScanner

भावार्थः– यह दधि गाय के स्तन में दूध रूप में पकी है ऐसा मैं पुरोहित मानता हूं। दुग्ध पुनः आग पर पका है अतः यह दधि रूप हवि पूर्ण परिपक्व है ऐसा मानता हूँ। यह हवि सत्यभूत और ताजी है। विविध कर्मों का कर्ता सूर्य इसे प्राप्त करता हुआ माध्यन्दिन सवन की हवि इस दधि का पान करे ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ उनासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८०

ऋषिः—१—३ जयः ॥ देवता—इन्द्रः ॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रूञ्ज्येष्ठस्ते शुष्म इह रातिरस्तु ।
इन्द्रा भर दक्षिणेना वसूनि पतिः सिन्धूनामसि रेवतीनाम् ॥१॥

पदार्थः—(**पुरुहूत**) बहुतों द्वारा प्रशंसित (**इन्द्र**) विद्युत् अथवा सूर्य (**शत्रून्**) मेघरूपी शत्रुओं को (**प्रससहिषे**) अभिभूत करता है। (**ते**) इसकी (**शुष्मः**) शोषक बल (**ज्येष्ठः**) बहुत बढ़ा हुआ है, (**इह**) इस कर्म में (**रातिः**) इसका दान (**अस्तु**) हमारे लिए हो, वह (**दक्षिणेन**) दक्षता पूर्ण ढंग से (**वसूनि**) धनों को (**आ भर**) प्रदान करता है, वह (**रेवतीनाम्**) धनों से युक्त (**सिन्धूनाम्**) नदियों का (**पतिः**) स्वामी है।

भावार्थः—बहुतों द्वारा प्रशंसित विद्युत् अथवा सूर्य मेघरूपी शत्रुओं को अभिभूत करता है। इसका शोषक बल बहुत बढ़ा-चढ़ा है। इस कर्म में यह इसका दान हमारे लिए हो। वह दक्षतापूर्ण ढंग से धनों को प्रदान करता है। वह धनों से युक्त नदियों का स्वामी है ॥१॥

मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः परावत आ जगन्था परस्याः ।
सृकं संशाय पविमिन्द्र तिग्मं वि शत्रून्ताळ्हि वि मृधो नुदस्व ॥२॥

पदार्थः—(**इन्द्र**) विद्युत् (**भीमः**) भयंकर (**मृगः न**) सिंह के समान (**कुचरः**) भूमि पर विचरने वाली (**गिरिष्ठाः**) मेघ में स्थित (**परस्याः परावतः**) दूर से दूर देश से भी (**आ जगन्थ**) आ जाती है (**सृकम्**) वेग से युक्त (**पविम्**)

वज्र को (तिग्मम्) तीक्ष्ण (संशाय) करके (शत्रून्) मेघों को (ताढि) मारती है (मृधः) कृमिकीट को (विनुदस्व) नष्ट करती है ।

भावार्थः— विद्युत् भयंकर सिंह के समान भूमि पर विचरने वाली और मेघ में भी स्थित है । वह दूर से दूर देश से भी आती है । वेग से युक्त वज्र को तीक्ष्णकर मेघों को मारती और कृमिकीटों को नष्ट करती हैं ॥२॥

इन्द्रं क्षत्रमभि वाममोजोऽजायथा वृषभ चर्षणीनाम् ।
अपानुदो जनममित्रयन्तमुरुं देवेभ्यो अकृणोरु लोकम् ॥३॥

पदार्थः—(इन्द्र) विद्युत् (क्षत्रम्) क्षत से बचाने वाले (वामम्) वननीय (ओजः) ओज को (अभि अजायथा) उत्पन्न करती है वह (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (वृषभः) कामों का वर्षक है, (अमित्रयन्तम्) शत्रुवत् व्यवहार करने वाले (जनम्) प्राणी को (अपानुदः) दूर करती है (देवेभ्यः) दिव्य शक्तियों के लिए (उरुम्) विस्तृत (लोकम् उ) प्रकाश को (अकृणोः) करती हे ।

भावार्थः—इन्द्र=विद्युत् शरीरस्थ कमी पूर्ण करने वाले श्रेष्ठ ओज को उत्पन्न करती है और वह मनुष्यों के कामों की वर्षक है । शत्रुवत् व्यवहार करने वाले प्राणी को वह दूर करती है तथा दिव्य शक्तियों के लिए विस्तृत प्रकाश को देती है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८१

ऋषिः—१ प्रथो वासिष्ठः । २ सप्रथो भारद्वाजः । ३ घर्मः सौर्यः ॥ देवताः—विश्वेदेवाः ॥ छन्दः—१ निचृत्त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ पादनिचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—जिसका (**प्रथः**) विस्तार वाला (**च**) तथा (**सप्रथः**) सर्व प्रकार से प्रथित (**नाम**) नाम वा तेज उस अग्नि और (**आनुष्टुभस्य**) प्रजापति सम्बन्धी अनुष्टुप् छन्दोयुक्त (**हविः**) हवन साधनभूत (**हविः**) जो हवि है उसको (**वसिष्ठ**) यज्ञ विज्ञान-विद् पुरोहित प्रकट करता है । वह (**धातुः**) धाता (**द्युतानात्**) द्योतमान (**सवितुः**) सविता (**च**) और (**विष्णोः**) विष्णु इन तीनों प्रकार के आदित्यों से (**रथन्तरम्**) रथन्तर साम को (**आजभार**) ग्रहण करता है ।

भावार्थः जिसका विस्तृत और सुप्रथित तेज है उस अग्नि और प्रजापति सम्बन्धी अनुष्टुप् छन्दोयुक्त हवनीय हवि को यज्ञविद् पुरोहित प्रकट करता है । वह तीन प्रकार के आदित्यों धाता, सविता और विष्णु से रथन्तर साम को ग्रहण करता है ॥१॥

अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥२॥

पदार्थः—(**ते**) वे विश्वेदेव लोग (**यज्ञस्य**) यज्ञ का (**यत्**) जो (**धाम**) ज्ञान (**अतिहितम्**) देवगणों में छिपा (**आसीत्**) होता है (**यत्**) जो (**परमम्**) परम (**गुहा**) रहस्य है (**तत्**) उसको (**अविन्दत्**) प्राप्त करते हैं, (**धातुः**) धाता (**द्युतानात्**) प्रकाशमान (**सवितुः**) सविता (**च**) और (**विष्णोः**) विष्णु इन तीन आदित्यों से तथा (**अग्नेः**) अग्नि से (**भरद्वाजः**) ज्ञान का पोषक याज्ञिक (**बृहत्**) बृहत् साम को (**आचक्रे**) ग्रहण करता है ।

भावार्थः—ये विश्वेदेव लोग यज्ञ का जो ज्ञान देवों में छिपा रहता है तथा उसका जो परम रहस्य है उसे प्राप्त करते हैं धाता, सविता, विष्णु आदित्यों और अग्नि से ज्ञान का पोषक याज्ञिक बृहत् साम को ग्रहण करता है ॥२॥

तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥३॥

पदार्थः—(**ते**) वे (**एते**) ये विश्वे देव और समस्त विद्वान्जन (**दीध्यानाः**) प्रदीप्त होकर (**मनसा**) अपनी आन्तरिक शक्ति अथवा मन से (**देवयनाम्**) यज्ञ में देवों के प्राप्त होने के साधनभूत (**स्कन्नम्**) आसेचनीय (**प्रथमम्**) पहले (**यजुः**)

यजुः=यागकर्म को प्राप्त करते हैं। (धातुः) धाता (द्युतानात्) द्योतमान (सवितुः) सविता (च) और (विष्णोः) विष्णु इन तीनों आदित्यों से (आसूर्यात्) सूर्य से (घर्मम्) घर्म को (आभरन्) प्राप्त करते हैं।

भावार्थः— वे ये विश्वेदेव और समस्त विद्वान् लोग प्रदीप्त होकर अपनी आन्तरिक शक्ति से यज्ञ में देवों के प्राप्त होने के साधनभूत आसेचनीय प्रथम यजुः=याग कर्म को प्राप्त करते हैं और धाता, द्योतमान सविता, विष्णु, और सूर्य से घर्म को ग्रहण करते हैं॥३॥

यह दशम मण्डल में एक सौ इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ॥

सूक्त—१८२

ऋषिः— १—३ तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः॥ देवता—बृहस्पतिः॥ छन्दः—१ भुरिक्त्रिष्टुप्। २ विराट्त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥ स्वरः—धैवतः॥

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः॥१॥

पदार्थः—(दुर्गहा) कठिनाई से ग्रहण किया जाने वाला (बृहस्पतिः) वेदज्ञान और ब्रह्माण्ड का स्वामी (तिरः नयतु) तिरस्करणीय कर्मों को दूर करे, (पुनः) और (अघशंसाय) दुर्भावना वाले जन के लिए (मन्म) ज्ञान और दण्ड (नेषत्) प्रयोग करें (अशस्तिम्) बुराई को (क्षिपत्) हमसे दूर करें (दुर्मतिम्) दुर्बुद्धि को (अपहन्) समाप्त करें (अथ) अनन्तर (यजमानाय) यजमान के लिए (शम्) दुःख आदि शमन और (योः) भय आदि का यावन=दूरीकरण (करत्) करे।

भावार्थः—बहुत कठिनाई से ग्रहण करने योग्य वेदज्ञान और ब्रह्माण्डों का स्वामी परमेश्वर तिरस्करणीय कर्मों को हमसे दूर हटावे और दुर्भावना वाले जन के लिए ज्ञान और दण्ड का प्रयोग करे तथा बुराई हमसे परे भगावे। वह दुर्बुद्धि को हटावे और यजमान को रोग आदि से शमन और भय आदि का दूरीकरण करे॥१॥

Scanned by CamScanner

नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥२॥

पदार्थः—(नाराशंसः) नरों = ऋत्विजों के द्वारा शंसनीय अग्नि (हवेषु) हवनीय (प्रयाजे) प्रयाज में (नः) हमारी (अवतु) रक्षा करता है, (अनुयाजः) अनुयाज (नः) हमें (शम्) सुखकारी (अस्तु) होता है। वह बुराई को दूर फेंकता है, दुर्बुद्धि को हटाता है और यजमान के रोग आदि का शमन तथा भय आदि का दूरीकरण करता है।

भावार्थः—नराशंस=अग्नि हवनीय प्रयाज में हमारी रक्षा करता है अनुयाज हमारे लिए कल्याणकारी होता है। बुराई को दूर करता है, दुर्बुद्धि को हटाता है तथा यजमान के लिए रोग आदि का शमन और भय आदि का दूरीकरण करता है ॥२॥

तपुर्मूर्धा तपतु रक्षसो ये ब्रह्मद्विषः शरवे हन्तवा उ ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥३॥

पदार्थः—(तपुर्मूर्धा) तापकारीशिरस्क बृहस्पति=वेदज्ञ (ये) जो (ब्रह्म-द्विषः) ज्ञान के द्वेषी (रक्षसः) राक्षस लोग हैं उनको तथा (शरवे) हिंसक वृत्ति के (हन्तवं उ) निवारण के लिए (तपतु) तपाता है, (अथ) अनन्तर वह बुराई को दूर करता है, दुर्मति को हटाता है और यजमान के लिए (शम्) कल्याण तथा (योः) भयमुक्ति देता है।

भावार्थः—लोगों के शिर को तपाने वाला वेदज्ञ विद्वान् हिंसक वृत्ति के मारने के लिए ज्ञान के द्वेषी जो राक्षस हैं उन्हें संतप्त कर देता है। अनन्तर बुराई को दूर करता है, दुर्बुद्धि को हटाता है और यजमान के लिए कल्याण और भयमुक्ति को देता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ बयासीवां सूक्त समाप्त हुआ।

Scanned by CamScanner

सूक्त १८३

ऋषिः—१—३ प्रजावान्प्राजापत्यः ॥ देवता – अन्वृचं यजमानयजमानपत्नी-होत्राशिषः ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २, ३ विराट्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः—धैवतः ॥

अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं तपसो जातं तपसो विभूतम् ।
इह प्रजामिह रयिं रराणः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकाम ॥१॥

पदार्थः—हे यजमान (**त्वा**) तुझे (**चेकितानम्**) कर्म का विचार करता हुआ, (**तपसः**) दीक्षारूप तपसे (**जातम्**) पुनः उत्पन्न (**तपसः**) यज्ञरूपी तप से (**विभूतम्**) व्याप्त (**मनसा**) मन से (**अपश्यम्**) मैं यजमानपत्नी देखती हूँ, (**पुत्रकाम**) हे पुत्र की कामना वाले ! तू (**इह**) इस लोक में (**प्रजाम्**) सन्तति, (**इह**) इस लोक में (**रयिम्**) धन को (**रराणः**) प्राप्त करते हुए, (**प्रजया**) प्रजन से (**प्रजायस्व**) पुत्र आदि रूप में उत्पन्न हो ।

भावार्थः—हे यजमान ! मैं यजमानपत्नी दीक्षारूप तप से पुनः उत्पन्न और यज्ञरूप तप से अभिव्याप्त तुझको मन से देखती हूं । हे पुत्र की कामना वाले ! तू इस लोक में सन्तति, इस लोक में धन को धारण करता हुआ पुत्र आदि रूप से उत्पन्न हो ॥१॥

अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां स्वायां तनू ऋत्व्ये नाधमानाम् ।
उप मामुच्चा युवतिर्बभूयाः प्र जायस्व प्रजया पुत्रकामे ॥२॥

पदार्थः—हे यजमा नपत्नि ! मैं यजमान (**दीध्यानाम्**) दीप्यमान (**स्वायाम्**) अपने (तनू) शरीर में (**ऋत्व्ये**) ऋतुकाल में (**नाधमानाम्**) सौभाग्य-सम्पन्न (**त्वा**) तुझको (**मनसा**) मन से (**अपश्यम्**) देखता हूं, तू (**बभूयाः**) यौवन से सम्पन्न हुई (**माम्**) मेरे (**उप**) समीप (**उच्चा**) आदर से (**बभूयाः**) प्राप्त हो (**पुत्रकामे**) हे पुत्र की कामना करने वाली तू (**प्रजया**) प्रजा द्वारा (**प्रजायस्व**) उत्तम सन्तान से युक्त हो ।

भावार्थः—हे यजमानपत्नि ! मैं यजमान दीप्यमान, अपने शरीर में ऋतु काल में सौभाग्यसम्पन्न तुझको मन से देखता हूं । यौवन से युक्त तू मेरे समीप आदर से प्राप्त हो । हे पुत्र की कामना करने वाली ! तू प्रजा युक्त से होकर उत्तम सन्तान वाली बन ॥२॥

Scanned by CamScanner

अहं गर्भमदधामोषधीष्वहं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।
अहं प्रजा अंजनयं पृथिव्यामहं जनिभ्यो अपरीषु पुत्रान् ॥३॥

पदार्थः—(**अहम्**) मैं यज्ञ का होता याग के द्वारा (**ओषधीषु**) ओषधियों में (**गर्भम्**) गर्भ को (**अदधाम्**) धारण करता हूं, (**अहम्**) मैं (**विश्वेषु**) समस्त (**भुवनेषु**) भुवनों के (**अन्तः**) मध्य गर्भ धारण करता हूं, (**अहम्**) मैं यज्ञ द्वारा (**पृथिव्याम्**) पृथिवी पर (**प्रजाः**) प्रजा को (**अजनयम्**) उत्पन्न करता हूं (**अहम्**) मैं (**जनिभ्यो**) जायाओं के लिए (**अपरीषु**) मनुष्यों की अपनी-अपनी स्त्रियों में (**पुत्रान्**) पुत्रों को उनके द्वारा यज्ञ से उत्पन्न करता हूं।

भावार्थ- मैं यज्ञ का होता याग के द्वारा ओषधियों में गर्भ को धारण कराता हूं। मैं समस्त भुवनों=भूत जातों में यज्ञ के द्वारा उनके नर-मादाओं के द्वारा गर्भ धारण कराता हूं। मैं जायाओं के लिए अपने-अपने पति द्वारा अपनी-अपनी स्त्री में यज्ञ के माध्यम से पुत्रों को उत्पन्न कराता हूं ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८४

ऋषिः - १–३ त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः ॥ देवताः—लिङ्गोक्ताः (गर्भार्थाशीः) ॥ छन्दः–१, २ अनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् ॥ स्वरः—गान्धारः ॥

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥१॥

पदार्थः—(**विष्णुः**) गर्भ का देवता प्राण वायु (**योनिम्**) योनि को (**कल्पयति**) समर्थ करता है, (**त्वष्टा**) रूपों का देवता सूर्य (**रूपाणि**) रूपों को (**पिंशतु**) बनाता है (**प्रजापतिः**) गृहस्थ पुरुष अपनी स्त्री में (**आ सिञ्चतु**) वीर्य का सेचन करता है, (**धाता**) सबका विधाता परमेश्वर हे स्त्रि ! (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ को तुझमें धारण कराता है।

भावार्थः गर्भ का देवता प्राण वायु योनि को समर्थ करता है। रूपों

Scanned by CamScanner

का देवता सूर्य रूप प्रदान करता है। गृहस्थ पुरुष अपनी स्त्री में वीर्य का सेक करता है और सब का विधाता परमेश्वर हे स्त्रि ! तेरे में तेरे गर्भ को धारण कराता है ॥१॥

गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावाधत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

पदार्थः—हे (**सिनीवालि**) प्रेम बन्धन में पुरुष को बांधने वाली पत्नि ! (**गर्भम्**) गर्भ को (**धेहि**) धारण कर, (**सरस्वति**) हे उत्तम ज्ञान वाली पत्नि ! (**गर्भम्**) गर्भ को (**धेहि**) धारण कर, (**पुष्करस्रजौ**) हृदय कमल को छूने वाले (**देवौ**) दिव्य गुणों वाले (**अश्विनौ**) प्राण और अपान (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ को (**आधत्ताम्**) धारण करावें।

भावार्थः—हे पति को प्रेम-बन्धन में बाँधने वाली पत्नी तू गर्भ को धारण कर, हे ज्ञान वाली पत्नी तू गर्भ को धारण कर। हृदयकमल को छूने वाले ये प्राण और अपान देव तेरे गर्भ को धारण करावें। प्राण और अपान ही गर्भ के धारण और अधारण में कारण हैं ॥२॥

हिरण्ययीं अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥

पदार्थः—(**हिरण्ययी अरणी**) प्रकाशवाली अरणियों के तुल्य (**अश्विना**) स्त्री और पुरुष (**निर्मन्थतः**) मथन करते हैं और (**यम्**) जिस के तुल्य गर्भ को धारण करते हैं (**तम्**) उस (**ते**) तेरे (**गर्भम्**) गर्भ को हे स्त्रि (**दशमे**) दशवें मास में (**सूतवे**) उत्पन्न होने के लिए (**हवामहे**) भगवान् से प्रार्थना करते हैं।

भावार्थः—जिस प्रकार दो अरणियों के मन्थन से यजमान-पुरोहित अग्नि को जो उसमें छिपा है निकालते हैं उसी प्रकार जिस गर्भ को पति-पत्नी ने अपने रजवीर्य से धारण किया है उसे हे स्त्रि ! दशवें मास में उत्पन्न होने के लिए हम भगवान् से प्रार्थना करते हैं ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त-१८५

ऋषिः – १—३ सत्यधृतिर्वारुणिः ॥ देवता—अदितिः (स्वस्त्ययनम्) ॥
छन्दः—१, ३ विराड्गायत्री । २ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः – षड्जः ॥

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः ।
दुराधर्षं वरुणस्य ॥१॥

पदार्थः—(त्रीणाम्) तीनों (मित्रस्य) मित्र, (वरुणस्य) वरुण (अर्यम्णः) अर्यमा के (द्युक्षम्) दीप्तिमान् (दुराधर्षम्) अबाधनीय (महि) महत् (अवः) रक्षण हमें परमेश्वर की कृपा से (अस्तु) प्राप्त रहे ।

भावार्थः—अदिति प्रकृति के पुत्र तीनों मित्र, वरुण और अर्यमा का अबाधनीय, प्रकाशमय महान् रक्षण परमेश्वर की कृपा से हमें सदा प्राप्त रहे ॥१॥

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु ।
ईशे रिपुरघशंसः ॥२॥

पदार्थः—(तेषाम्) इन तीनों आदित्यों के रक्षण को प्राप्त करने वाले को (अमाचन) गृहों में, (अध्वसु) मार्गों में (वारणेषु) वार्य स्थानों में भी (अघशंसः) अनर्थकारी (रिपुः) शत्रु (न) नहीं (ईशे) समर्थ होता है ।

भावार्थः—तीनों आदित्यों का रक्षण जिसे प्राप्त है उस पर गृहों में मार्गों में, निवार्य स्थानों में अनर्थकारी शत्रु हानि पहुंचाने में समर्थ नहीं होता है ॥२॥

यस्मै पुत्रासो अदितेः प्र जीवसे मर्त्याय ।
ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम् ॥३॥

पदार्थः (अदितेः) प्रकृति के (पुत्रासः) मित्र, वरुण और अर्यमा (यस्मै) जिस (मर्त्याय) मनुष्य को (प्रजीवसे) जीने के लिए (अजस्रम्) अविच्छिन्न (ज्योतिः) तेज (प्रयच्छन्ति) देते हैं उसको कोई शत्रु दबा नहीं सकता है ।

भावार्थः—प्रकृति के पुत्र मित्र,वरुण और अर्यमा जिस मनुष्य को जीने के लिए अविच्छिन्न तेज देते हैं उसको कोई शत्रु दबा नहीं सकता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ पचासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १८६

ऋषि:—१—३ उलो वातायनः ॥ देवता—वायुः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री । ३ निचृद्गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

वात आ वातु भेषजं शम्भु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूँषि तारिषत् ॥१॥

पदार्थ—(वातः) वायु (भेषजम्) ओषधि को जो (नः) हमारे (हृदे) हृदय के लिए (शम्भु) कल्याणकारक हैं, (मयोभु) आनन्ददायी हैं उसको (आ वातु) प्राप्त कराता है और (नः) हमारे (आयूंषि) आयुओं को (प्रातारिषत्) बढ़ाता है ।

भावार्थ—वायु हमारे हृदय के स्वास्थ्य के लिए कल्याणकारक आरोग्य-कर ओषधि को प्राप्त कराता है और हमारी आयुओं को बढ़ाता है ॥१॥

उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा ।
स नो जीवातवे कृधि ॥२॥

पदार्थः—(उत) और (वातः) वायु (नः) हमारा (पिता) पालक (उत) और (भ्राता) बन्धुवत् भरण-पोषण करने वाला (उत) और (नः) हमारा (सखा) मित्रवत् कल्याणकारी है । वह (नः) हमें (जीवातवे) जीवनहेतु (कृधि) करता है ।

भावार्थः—यह वायु हमारा पितृवत् पालक, बन्धुवत् धारक पोषक और मित्रवत् सुखकर्त्ता है और हमें जीवन वाला करता है ॥२॥

यददो वात ते गृहे३ऽमृतस्य निधिर्हितः ।
ततो नो देहि जीवसे ॥३॥

पदार्थः—(ते) इस (वातः) वायु के (गृहे) गृह में (यत्) जो (अदः) यह (अमृतस्य) अमरत्व की (निधिः) निक्षेप=धरोहर (हितः) स्थापित है (ततः) उससे (नः) हमारे (जीवसे) जीवन के लिए (देहि) देता है ।

भावार्थः—इस वायु के घर अन्तरिक्ष में जो वह अमरता का निक्षेप भगवान् द्वारा स्थापित है उससे यह वायु हमारे जीवन के लिए जीवनतत्त्व प्रदान करता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ छयासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त १८७

ऋषिः—१—५ वत्स आग्नेयः ॥ देवता—अग्निः ॥ छन्दः—१ निचृद्-गायत्री । २—५ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्राग्नये वाचमीरय वृषभाय क्षितीनाम् ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (क्षितीनाम्) मनुष्यों के (वृषभाय) स्वामी (अग्नये) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के लिए (वाचम्) स्तुति (प्रेरय) कर (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) शत्रुभूत काम क्रोध आदि से (अतिपर्षत) पार करता है ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! प्रजा के स्वामी प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करो। वही हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें पार करता है ॥१॥

यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो परमेश्वर (परस्याः) दूरसे (परावतः) दूर स्थान से (तिरः धन्व) अन्तरिक्ष को भी पार कर (अति रोचते) अति प्रकाशित हो रहा है (सः) वह (नः) हमें (द्विषः) बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओं से (अतिपर्षत्) पार करता है ।

भावार्थः—जो परमेश्वर दूर से भी दूर देश से आकाशवत् सबको पार करके प्रकाशमान हो रहा है वह हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें पार करता है ॥२॥

यो रक्षांसि निजूर्वति वृषा शुक्रेण शोचिषा ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥३॥

पदार्थः—(यः) जो प्रभु (वृषा) प्रबल (शुक्रेण) अति शुद्ध (शोचिषा) तेज से (रक्षांसि) राक्षसी वृत्तियों को (निजूर्वति) नाश करता है (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें (अतिपर्षत्) पार करता है ।

भावार्थः—जो परमेश्वर प्रबल अतिशुद्ध तेज और ज्ञान से राक्षसी

Scanned by CamScanner

वृत्तियों का नाश करता है वही हमें हमारे आन्तरिक शत्रुओं काम क्रोध आदि से पार लगाता है ॥३॥

यो विश्वाभि विपश्यति भुवना सं च पश्यति ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो प्रभु (विश्वा) समस्त (भुवना) लोकों को (अभि विपश्यति) सर्वथा देखता है (च) और (संपश्यति) अच्छी प्रकार देखता है (सः) वह (नः) हमारे (द्विषः) काम क्रोध आदि शत्रुओं से (अतिपर्षत्) हमें पार लगाता है।

भावार्थः—जो परमेश्वर समस्त लोकों को सर्वथा देखता है और भली प्रकार देखता है वह हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से हमें पार करता है ॥४॥

यो अस्य पारे रजसः शुक्रो अग्निरजायत ।
स नः पर्षदति द्विषः ॥५॥

पदार्थः—(शुक्रः) पवित्र (यः) जो (अग्निः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर (अस्य) इस (रजसः) अन्तरिक्ष से भी (पारे) परे (अजायत) पदार्थों को उत्पन्न करता है (सः) वह (नः) हमें (द्विषः) काम क्रोध आदि शत्रुओं से पार करता है।

भावार्थः—जो परमेश्वर इस अन्तरिक्ष से भी परे पदार्थों को उत्पन्न करता है वह हमें हमारे काम क्रोध आदि शत्रुओं से पार करता है ॥५॥

यह दशम मण्डल में एकसौ सतासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त—१८८

ऋषिः—१—३ श्येन आग्नेयः ॥ देवताः—अग्निर्जातवेदाः ॥ छन्दः—गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

प्र नूनं जातवेदसमश्वं हिनोत वाजिनम् ।
इदं नो बर्हिरासदे ॥१॥

Scanned by CamScanner

पदार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! (वाजिनम्) बलशाली अथवा अन्न वाले (अश्वम्) व्यापनशील (जातवेदसम्) अग्नि को (नूनम्) निश्चय ही (प्रहिणोत) बढ़ाओ (इदम्) यह (नः) हमारे (बर्हिः) यज्ञ में (आ सदे) स्थापित करता है ।

भावार्थः—हे ऋत्विग् और यजमानो ! बलशाली और व्यापनशील अग्नि को निश्चय ही बढ़ाओ । यह हमारे यज्ञ में स्थापित होना है ॥१॥

अस्य प्र जातवेदसो विप्रवीरस्य मीळ्हुषः ।
महीमियर्मि सुष्टुतिम् ॥२॥

पदार्थः—(विप्रवीरस्य) मेधावी लोग जिसके वीर हैं, (मीढुषः) सेचक (अस्य) इस (जातवेदसः) अग्नि की (महीम्) महती (सुष्टुतिम्) प्रशंसा को (प्रेर्यमि) प्रेरित करता हूँ ।

भावार्थः—मैं यजमान वा पुरोहित मेधावी वीरों से प्रयोग में लाये जाने वाले इस अग्नि की महती प्रशंसा करता हूं ॥२॥

या रुचो जातवेदसो देवत्रा हव्यवाहनीः ।
ताभिर्नो यज्ञमिन्वतु ॥३॥

पदार्थः—(जातवेदसः) अग्नि की (याः) जो काली कराली आदि सात प्रकार (रुचः) अर्चियां (देवत्रा) देवों = यज्ञ देवों के प्रति (हव्यवाहनीः) हव्य को वहन करने वाली हैं (ताभिः) उन ज्वालाओं से यह अग्नि (नः) हमारी (यज्ञम्) प्रदत्त हवि को देवों को (इन्वतु) प्राप्त कराता है ।

भावार्थः—अग्नि की जो काली, कराली आदि सात प्रकार की देवों के प्रति हवि ले जाने वाली ज्वालाय हैं उन्हीं से यह अग्नि हमारे यज्ञ में अग्नि को दिये गए हव्यों को यज्ञदेवों को पहुंचाता है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ अठासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

Scanned by CamScanner

सूक्त—१८९

ऋषिः—१—३ सार्पराज्ञी ॥ देवता—सार्पराज्ञी सूर्यो वा ॥ छन्दः—
१ निचृद्गायत्री । २ विराड्गायत्री । ३ गायत्री ॥ स्वरः—षड्जः ॥

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः ।
पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥१॥

पदार्थः—(अयम्) यह (गौः) पृथिवी (पृश्निः) आकाश में (आ अक्रमीत्) भ्रमण करती है, (मातरम्) जल को (पुरः) आगे लिये हुए (असदत्) विराजती है (च) और (पितरम्) पिताभूत (स्वः) सूर्य के चारों तरफ (प्रयन्) परिक्रमा करती है ।

भावार्थः—यह भूगोल आकाश में भ्रमण करता है। वह जल को भी अपने साथ लिए रहता है और पिताभूत सूर्य की परिक्रमा करता है ॥१॥

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती ।
व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥२॥

पदार्थः—(अस्य) इस सूर्य की (रोचना) रोचमान दीप्ति (प्राणादपानती) प्राण और अपान की क्रिया को शरीरों से करती हुई (अन्तः) शरीरों में (चरति) गति करती है, (महिषः) महान् सूर्य (दिवम्) द्युलोक को (व्यख्यत्) प्रकाशित करता है ।

भावार्थः—इस सूर्य की रोचमान दीप्ति शरीरों से प्राण और अपान की क्रिया को करती हुई शरीरों में गति करती है। महान् सूर्य (दिवम्) द्युलोक को प्रकाशित करता है ॥२॥

त्रिंशद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते ।
प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥३॥

पदार्थः—(वस्तोः) दिन और रात्रि के अवयवभूत (त्रिंशद्) तीन (धाम) मुहूर्त (अह) निश्चय ही (द्युभिः) सूर्य की दीप्तियों से (विराजति) विशेष रूप से प्रकाशमान होते हैं (वाक्) वाणी=प्रशंसा उक्ति (पतंगाय) सूर्य के लिए (प्रतिधीयते) स्तोताओं से धारण की जाती है ।

भावार्थ दिन और रात्रि के अवयवभूत तीस मुहूर्त सूर्य की दीप्ति से प्रकाशमान होते हैं। प्रशंसा की उक्ति सूर्य के लिए स्तोताओं द्वारा धारण की जाती है ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ नवासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त —१९०

ऋषिः—१—३ अघमर्षणो माधुच्छन्दसः ॥ **देवता**—भाववृत्तम् ॥
छन्दः—१ विराडनुष्टुप्। २ अनुष्टुप्। ३ पादनिचृदनुष्टुप् ॥
स्वरः—गान्धारः ॥

ऋतं च॑ सत्यं चाभी॑द्धात्तप॒सोऽध्य॑जायत ।
ततो॒ रात्र्य॑जायत॒ तत॑: समु॒द्रो अ॑र्ण॒वः ॥१॥

पदार्थः—(**अभीद्धात्**) सर्वतः प्रकाशमान (**तपसः**) परमेश्वर के द्वारा दिये गए ताप से (**ऋतम्**) सृष्टि नियम (**च**) और (**सत्यम्**) कार्यरूप प्रकृति (**अधि अजायत**) प्रकट होते हैं, (**ततः**) उसी से (**रात्र्यजायत**) रात्रि=प्रलय की रात्रि उत्पन्न होती है (**ततः**) उसी तप से (**अर्णवः**) जलयुक्त (**समुद्रः**) आकाशीय समुद्र (**अजायत**) उत्पन्न होता है।

भावार्थः—परमेश्वर के सर्वतोव्याप्त प्रकाशमान तपः=ताप से ऋत और कार्यरूप प्रकृति प्रकट होते हैं। और उसी से प्रलय की अन्धकारमयी रात्रि उत्पन्न होती है और उसीसे आकाशीय समुद्र उत्पन्न होता है ॥१॥

स॒मु॒द्राद॑र्ण॒वादधि॑ संवत्स॒रो अ॑जायत ।
अ॒हो॒रा॒त्राणि॑ वि॒दध॒द्विश्व॑स्य मिष॒तो व॒शी ॥२॥

पदार्थः—(**अर्णवात्**) जलीय (**समुद्रात्**) आकाशस्थ समुद्र से (**सम्वत्सरः**) काल की गति अथवा काल का मानदण्ड सूर्य (**अध्यजायत**) उत्पन्न होता है, सम्वत्सरः=जो भाग प्रकाशमान है वह सम्वत् है जो नहीं प्रकाशमान है वह सर है अतः आदित्य भी सम्वत्सर है (**मिषतः**) निमेष आदि को प्राप्त जंगम तथा जड़ (**विश्वस्य**) जगत् का (**वशी**) स्वामी परमेश्वर (**अहो रात्राणि**) दिन और रात्रि के भेद को (**विदधत्**) बनाता है।

Scanned by CamScanner

भावार्थः—उस आकाशीय समुद्र से काल की गति उत्पन्न होती है, जगत् को वश में रखने वाला प्रभु दिन और रात्रि के भेद को बनाता है ॥२॥

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥

पदार्थः—(**धाता**) जगत् का कर्ता परमेश्वर (**सूर्याचन्द्रमसौ**) सूर्य और चन्द्रमा आदि को (**यथापूर्वम्**) पूर्वकल्प के समान और जैसा हो सकते हैं वैसा ही बना लेता है और बनायेगा भी, (**दिवम्**) द्युलोक (**च**) और (**पृथिवीम्**) पृथिवी (**च**) और (**अन्तरिक्षम्**) अन्तरिक्ष (**अथ**) तथा (**स्वः**) प्रकाशमान पदार्थों को बनाता है ।

भावार्थः—जगत् का कर्ता परमेश्वर सूर्य और चन्द्रमा आदि समस्त जगत् को पूर्वकल्प के समान ही बनाता है अतः वैसा ही बना लिया था । द्युलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाश्य अप्रकाश्य समस्त पदार्थों को पूर्व-कल्प के समान ही बनाता और बनायेगा भी ॥३॥

यह दशम मण्डल में एकसौ नब्बेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

सूक्त १९१

ऋषिः—१—४ संवननः ॥ **देवता**—१ अग्निः । २—४ संज्ञानम् ॥
छन्दः—१ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥
स्वरः—१, २, ४ गान्धारः । ३ धैवतः ॥

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥१॥

पदार्थः—(**वृषन्**) हे समस्त सुखों के बरसाने वाले (**अग्ने**) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (**अर्यः**) स्वामी तू (**विश्वानि**) समस्त प्राणियों और तत्त्वों को (**संयुवसे**) मिलाता है, (**इडः**) वाणी के (**पदे**) परम पद ओम् के रूप में (**समिध्यसे**)

प्रकाशमान होता है (स) वह तू (नः) हमें (वसूनि) धन (आभर) प्रदान कर ।

भावार्थः—हे समस्त सुखों के बरसाने वाले ! प्रकाश स्वरूप प्रभो! सब का स्वामी तू ! समस्त प्राणियों और तत्त्वों को मिलाता है । तू वाणी के परम पद ओम् रूप में प्रकाशमान होता है । वह तू हमें धन प्रदान कर ॥१॥

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (संगच्छध्वम्) मिलकर चलो, (संवदध्वम्) परस्पर मिलकर बात करो ! (वः) तुम्हारे (मनांसि) चित्त (सं जानताम्) एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें, (यथा) जिस प्रकार (पूर्वे) पूर्व (देवाः) विद्वान्, ज्ञानी-जन (भागम्) सेवनीय प्रभु को (जानानाः) जानते हुए (समुपासते) उपासना करते आये हैं वैसे ही तुम भी किया करो ।

भावार्थः-- हे मनुष्यो ! तुम परस्पर मिलकर चलो, परस्पर मिलकर बात करो । तुम्हारे मन एक समान होकर ज्ञान को प्राप्त करें । जिस प्रकार पूर्ण विद्वान् ज्ञानी जन सेवनीय प्रभु को जानकर उसकी उपासना करते आये हैं वैसे ही तुम भी किया करो ॥२॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम् ।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥

पदार्थः—(एषाम्) इन सबका (मंत्रः) विचार (समानः) समान हो, (समितिः) समिति सभा समान हो, (मनः) मन (समानम्) समान हो (चित्तम्) चित्त (सह) एक साथ वा समान उद्देश्य वाला हो, हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर (वः) तुम्हें (समानम्) समान (मन्त्रम्) विचार वाला (अभिमन्त्रये) बनाता हूं (वः) तुम्हें (समानेन) समान (हविषा) खान पान से (जुहोमि) युक्त करता हूँ अथवा समान हवि और यज्ञ भावनाओं से यज्ञ करने की प्रेरणा देता हूँ ।

भावार्थः-- इन सब मनुष्यों का विचार समान हो । इनकी समिति और सभा समान हो, इनका मन समान हो, और चित्त एक साथ समान उद्देश्य वाला हो । हे मनुष्यो ! मैं परमेश्वर तुम्हें समान विचारों वाला करता हूँ और समान खान-पान और यज्ञ भावना से युक्त करता हूं ॥३॥

Scanned by CamScanner

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः ।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (**वः**) तुम्हारे (**आकूतिः**) संकल्प (**समानी**) समान हो, (**वः**) तुम्हारे (**हृदयानि**) हृदय (**समाना**) परस्पर मिले हुए हों (**वः**) तुम्हारे (**मनः**) मन (**समानम्**) समान हों (**यथा**) जिससे (**वः**) तुम लोग (**सह सु असति**) परस्पर मिल कर रहो ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम्हारे संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे मन समान हों, जिससे तुम लोग परस्पर मिलकर एक होकर रहो ॥४॥

यह दशम मण्डल में एकसौ इक्यानवेवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

श्री आचार्य वैद्यनाथ शास्त्रिकृत
दशम मण्डल का आर्यभाषा-भाष्य समाप्त हुआ ।
इस प्रकार ऋग्वेद भाष्य भी समाप्त हुआ ।

Scanned by CamScanner